Chapter चौदह

ब्रह्मा द्वारा कृष्ण की स्तुति

इस अध्याय में ब्रह्मा द्वारा नन्दनन्दन भगवान् कृष्ण की स्तुति का वर्णन हुआ है।

भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ब्रह्मा ने सर्वप्रथम उनके दिव्य अंगों की स्तुति की और फिर यह घोषित किया कि उनकी माधुरी की मूल पहचान को समझ पाना उनके ऐश्वर्य की अपेक्षा अधिक कठिन है। वैदिक प्रमाणों से प्राप्त दिव्य ध्वनि के श्रवण तथा कीर्तन की भक्तिमयी विधि द्वारा ही भगवान् की अनुभूति हो सकती है। वैदिक प्रमाण के अतिरिक्त अन्य विधियों से ईश्वर की अनुभूति करने का प्रयास व्यर्थ है।

असीम आध्यात्मिक गुणों के आगार भगवान् का रहस्य अचिन्त्य है। इसे समझ पाना निर्विशेष ब्रह्म से भी अधिक कठिन है। केवल भगवत्कृपा से ही उनके यश को समझा जा सकता है। अन्त में इसकी अनुभूति होने पर ब्रह्मा ने अपने कार्यों की बारम्बार भर्त्सना की और यह माना कि ब्रह्माण्ड के परम आश्रय श्रीकृष्ण ही उनके अपने पिता, आदि नारायण हैं। इस तरह ब्रह्मा ने भगवान् से क्षमा-याचना की।

तत्पश्चात् ब्रह्मा ने भगवान् के अचिन्त्य ऐश्वर्य का गुणगान किया और जिन जिन बातों में ब्रह्मा तथा शिव विष्णु से भिन्न हैं, जिन जिन कारणों से भगवान् देवताओं, पशुओं इत्यादि की योनियों में जन्म लेते हैं, जिस तरह से भगवान् लीलाएँ करते हैं, उन सबका तथा भौतिक जगत की नश्वरता आदि का वर्णन किया। भगवान् को जान लेने पर जीवात्मा भव-बन्धन से मोक्ष प्राप्त कर सकता है। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि मोक्ष तथा बन्धन दोनों ही असत्य हैं क्योंकि जीव के बद्ध होने से ही बन्धन तथा मोक्ष उत्पन्न होते हैं। भगवान् कृष्ण के साकार रूप को भ्रामक मानकर मूर्ख लोग भगवान् के चरणकमलों को छोड़कर परमात्मा की अन्यत्र खोज करते हैं। किन्तु उनकी व्यर्थ की यह खोज उनकी मूर्खता का स्पष्ट प्रमाण है। भगवान् की कृपा के बिना भगवान् के सत्य को समझने का कोई भी सरल उपाय नहीं है।

इस निष्कर्ष पर पहुँच कर ब्रह्मा ने व्रजवासियों के सौभाग्य का विश्लेषण किया और तब स्तुति की

कि अच्छा होता यदि वे स्वयं एक तृण, कुंज या लता के रूप में वहाँ उत्पन्न हुए होते। वृन्दावनवासियों के आवास भौतिक जगत के बन्दीगृह नहीं हैं अपितु ज्ञानियों तथा योगियों द्वारा भी इन आवासों की कामना की जाती है। दूसरी ओर, कोई भी आवास जिसका भगवान् कृष्ण से सम्बन्ध नहीं होता है, वह भौतिक जगत का बन्दीगृह है। अन्त में ब्रह्मा ने भगवान् के चरणकमलों पर अपने आप को पूर्णतया समर्पण कर दिया और बारम्बार प्रशंसा करते हुए उनकी प्रदक्षिणा की और विदा ली।

तत्पश्चात् कृष्ण ने ब्रह्मा द्वारा चुराये गये सारे पशुओं को एकत्र किया और उनको लेकर यमुना तट पर पहुँचे जहाँ ग्वालबाल भोजन कर रहे थे। जो मित्रगण, पहले से वहाँ बैठे थे वे ही अभी भी वहीं पर थे। कृष्ण की माया के कारण उन्हें इसका रंच भर भी पता नहीं चला कि क्या हुआ है। अत: जब कृष्ण बछड़ों के साथ आये तो उन्होंने पूछा, ''अरे! आप तो इतनी जल्दी लौट आये। बहुत अच्छा हुआ। जब तक आप नहीं थे, हमने एक कौर भी नहीं तोड़ा। आइये और खाइये।''

ग्वालबालों की बात पर भगवान् कृष्ण हँसते हुए उनके साथ भोजन करने लगे। भोजन करते हुए कृष्ण ने किशोर मित्रों से अजगर के चर्म की ओर संकेत किया, तो बालकों ने सोचा, ''शायद कृष्ण ने अभी अभी इस भयानक सर्प को मारा है।'' बाद में उन्होंने वृन्दावनवासियों को कृष्ण द्वारा अघासुर के वध का वृत्तान्त कह सुनाया। इस तरह ग्वालबालों ने भगवान् कृष्ण की बाल्यकाल (१–५ वर्ष) की लीलाओं का वर्णन किया यद्यपि भगवान् की पौगण्ड आयु (६–१० वर्ष) प्रारम्भ हो चुकी थी।

शुकदेव गोस्वामी यह बताते हुए इस अध्याय को समाप्त करते हैं कि गोपियाँ किस तरह कृष्ण को अपने पुत्रों से भी अधिक प्यार करती थीं।

श्रीब्रह्मोवाच
नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्मा ने कहा; **नौमि**—मैं यशोगान करता हूँ; **ईड्य**—हे पूज्य; **ते**—आपका; **अभ्र**—काले बादल की तरह; **वपुषे**—शरीर वाले; **तडित्**—बिजली की भाँति; **अम्बराय**—जिसके वस्त्र; **गुञ्जा**—घुंघुची से बने; **अवतंस**—(कान के) आभूषण; **परिपिच्छ**—तथा मोर पंख; **लसत्**—शोभायमान; **मुखाय**—जिसका मुखमंडल; **वन्य-स्रजे**—वन फूलों की माला

पहने; कवल—कौर; वेत्र—दंड; विषाण—भैंस के सींग का बना बिगुल; वेणु—तथा बाँसुरी; लक्ष्म—लक्षणों से युक्त; श्रिये—जिसका सौंदर्य; मृदु—मुलायम; पदे—जिसके पाँव; पशु-प—ग्वाले (नन्द महाराज) के; अङ्ग-जाय—पुत्र को।

ब्रह्मा ने कहा : हे प्रभु, आप ही एकमात्र पूज्य भगवान् हैं अतएव आपको प्रसन्न करने के लिए मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ और आपकी स्तुति करता हूँ। हे ग्वालनरेश पुत्र, आपका दिव्य शरीर नवीन बादलों के समान गहरा नीला है; आपके वस्त्र बिजली के समान देदीप्यमान हैं और आपके मुखमण्डल का सौन्दर्य गुञ्जा के बने आपके कुण्डलों से तथा सिर पर लगे मोरपंख से बढ़ जाता है। अनेक वन-फूलों तथा पत्तियों की माला पहने तथा चराने की छड़ी (लकुटी), शृंग और वंशी से सज्जित आप अपने हाथ में भोजन का कौर लिए हुए सुन्दर रीति से खड़े हुए हैं।

तात्पर्य : पिछले अध्याय में ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण के ग्वालमित्रों तथा उनके बछड़ों को चुरा कर उनकी परीक्षा लेनी चाही थी। किन्तु जब कृष्ण ने रंच भर अपनी योगशक्ति प्रदर्शित की तो ब्रह्माजी पूर्णतया मोहित हो गये और अब वे अत्यन्त विनय एवं भक्ति भाव से उन्हें सादर नमस्कार करके उनकी स्तुति करते हैं।

इस श्लोक में *कवल* शब्द कृष्ण द्वारा बाएँ हाथ में चावल तथा दही के कौर का सूचक है। सनातन गोस्वामी के अनुसार कृष्ण अपने हाथ में गाय चराने वाली छड़ी लिये थे और बाईं काँख में शृंग दबाये थे। उनकी वंशी उनकी कमर पेटी के नीचे लगी थी। रंग-बिरंगे जंगली खनिजों से अलंकृत सुन्दर बाल-कृष्ण वैकुण्ठ के ऐश्वर्य को लजा रहे थे। यद्यपि ब्रह्मा ने भगवान् के असंख्य चतुर्भुज रूप देखे थे किन्तु अब उन्होंने द्विभुज कृष्ण के चरणकमलों में अपने आपको समर्पित कर दिया जो नन्द महाराज के पुत्र रूप में प्रकट हुए थे। ब्रह्माजी ने इसी रूप की स्तुति की।

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि ।
नेशे महि त्ववसितुं मनसान्तरेण
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

अस्य—इसका; अपि—भी; देव—हे प्रभु; वपुषः—शरीर; मत्-अनुग्रहस्य—जिसने मेरे ऊपर कृपा दिखलाई है; स्व-इच्छा-मयस्य—जो अपने शुद्ध भक्तों की इच्छा से प्रेरित होकर प्रकट होते हैं; न—नहीं; तु—दूसरी ओर; भूत-मयस्य—पदार्थ की उपज; कः—ब्रह्मा; अपि—भी; न ईशे—मैं समर्थ नहीं हूँ; महि—शक्ति; तु—निस्सन्देह; अवसितुम्—अनुमान लगाने में;

मनसा—मन से; अन्तरेण—जो नियंत्रित होती तथा विरत होती है; साक्षात्—प्रत्यक्ष; तव—आपकी; एव—निस्सन्देह; किम् उत—क्या कहा जाय; आत्म—आप में; सुख—सुख के; अनुभूतेः—आपके अनुभव का।.

हे प्रभु, न तो मैं, न ही अन्य कोई आपके इस दिव्य शरीर के सामर्थ्य का अनुमान लगा सकता है, जिसने मुझ पर इतनी कृपा दिखाई है। आपका शरीर आपके शुद्ध भक्तों की इच्छा पूरी करने के लिए प्रकट होता है। यद्यपि मेरा मन भौतिक कार्यकलापों से पूरी तरह विरत है, तो भी मैं आपके साकार रूप को नहीं समझ पाता। तो भला मैं आपके ही अन्तर में आपके द्वारा अनुभूत सुख को कैसे समझ सकता हूँ?

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ''भगवान् श्रीकृष्ण'' (१ अध्याय १४) में लिखते हैं कि इस श्लोक में ब्रह्मा ने निम्नलिखित स्तुतिपूर्ण भाव व्यक्त किया, ''ग्वालबाल के रूप में आपका आविर्भाव भक्तों के लाभ के लिए हुआ है। यद्यपि मैंने आपकी गौवें, बालक तथा बछड़े चुराकर आपके चरणकमलों में अपराध किया है किन्तु मैं समझ सकता हूँ कि अब आप मुझ पर कृपा दिखा रहे हैं। यह तो आपका दिव्य गुण है कि आप अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त वत्सल हैं। अपने प्रति आपके वात्सल्य के बावजूद मैं आपके शारीरिक कार्यों के सामर्थ्य का अनुमान नहीं लगा सकता। जब इस ब्रह्माण्ड का सर्वोपरि पुरुष मैं, बह्मा, भगवान् के बाल-रूप शरीर का अनुमान नहीं लगा सकता तो अन्यों के विषय में क्या कहा जाय? और यदि मैं आपके बाल-रूप शरीर की आध्यात्मिक शक्ति का अनुमान नहीं लगा सकता तो भला आपकी दिव्य लीलाओं को कैसे समझ सकता हूँ? अतएव, जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, जो कोई भगवान् की दिव्य लीलाओं, उनके प्राकट्य तथा तिरोधान को रंचमात्र भी समझता है, वह इस भौतिक शरीर को त्यागने के बाद भगवद्धाम में प्रवेश करने का पात्र बन जाता है। वेदों में इसकी पुष्टि इन शब्दों में सहज रूप में हुई है : पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जान लेने पर मनुष्य जन्म-मृत्यु के बन्धन से पार पा सकता है। इसलिए मैं तो यही कहूँगा कि लोग आपको मानसिक ज्ञान द्वारा समझने का प्रयास न करें।''

जब ब्रह्मा ने भगवान् के पद का अनादर किया, तो कृष्ण ने सर्वप्रथम उन्हें अपनी दिव्य शक्ति प्रदर्शित करके मोहित किया। जब ब्रह्मा उनके विनीत भक्त बन गये तो उन्होंने अपना साक्षात् दर्शन दिया।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार भगवान् कृष्ण का दिव्य शरीर अपने स्वांशों द्वारा अपने

कार्य सम्पन्न कर सकता है, जिन्हें *विष्णु-तत्व* कहते हैं। ब्रह्मा ने *ब्रह्मसंहिता* (५.३२) में कहा है—*अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रिय वृत्तिमन्ति।* यह श्लोक न केवल इतना ही सूचित करता है कि भगवान् अपने शरीर का कोई भी कार्य अपने किसी अंग द्वारा सम्पन्न कर सकते हैं अपितु वे अपने विष्णु अंश के या किसी भी जीव के नेत्रों द्वारा देख भी सकते हैं। इसी प्रकार वे विष्णु या जीव-अंश के कानों से सुन सकते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इंगित करते हैं कि भगवान् अपनी किसी भी इन्द्रिय से कोई भी कार्य कर सकते हैं किन्तु कृष्ण रूप में अपनी लीलाओं में वे सामान्यतया अपनी ही आँखों से देखते हैं, अपने ही हाथों से छूते हैं और अपने ही कानों से सुनते हैं। इस तरह वे अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर ग्वालबाल की तरह आचरण करते हैं।

वैदिक ज्ञान का विस्तार ब्रह्मा से होता है जिन्हें *श्रीमद्‌भागवत* के प्रथम श्लोक में आदि कवि कहा गया है। तो भी ब्रह्माजी भगवान् कृष्ण के दिव्य शरीर को जान नहीं पाये क्योंकि वह सामान्य वैदिक ज्ञान की पहुँच से बाहर है। भगवान् के समस्त दिव्य रूपों में गोविन्द का द्विभुज रूप—कृष्ण—ही आदि एवं परम रूप है। अत: गोविन्द द्वारा मक्खन चुराने, गोपियों का स्तन-पान करने, बछड़े चराने, वंशी बजाने तथा बालक्रीड़ाएँ करने की लीलाएँ भगवान् विष्णु के अंशों के कार्यकलापों की तुलना में अद्वितीय हैं।

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

ज्ञाने—ज्ञान के लिए; प्रयासम्—प्रयास; उदपास्य—त्यागकर; नमन्तः—नमस्कार करते हुए; एव—केवल; जीवन्ति—जीवित रहते हैं; सत्-मुखरिताम्—शुद्ध भक्तों द्वारा उच्चारित; भवदीय-वार्ताम्—आपकी कथा; स्थाने—अपने भौतिक स्थान में; स्थिताः—स्थित रहकर; श्रुति-गताम्—सुन करके प्राप्त; तनु—अपने शरीर द्वारा; वाक्—शब्द; मनोभिः—तथा मन के द्वारा; ये—जो; प्रायशः—अधिकांशतः; अजित—हे अजेय; जितः—जीते गये; अपि—फिर भी; असि—हो जाते हो; तैः—उनके द्वारा; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों में।

जो लोग अपने प्रतिष्ठित सामाजिक पदों पर रहते हुए ज्ञान-विधि का तिरस्कार करते हैं और मन, वचन और कर्मों से आपके तथा आपके कार्यकलापों के गुणगान के प्रति सम्मान व्यक्त करते हैं और आप तथा आपके द्वारा गुंजित इन कथाओं में अपना जीवन न्योछावर कर देते हैं, वे

निश्चित रूप से आपको जीत लेते हैं अन्यथा आप तीनों लोकों में किसी के द्वारा भी अजेय हैं।

तात्पर्य : *उदपास्य* शब्द स्पष्ट सूचित करता है कि मानसिक चिन्तन की विधि (ज्ञान) द्वारा परम सत्य को समझने का तनिक भी प्रयास नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे ईश्वर का अपूर्ण एवं निर्विशेष ज्ञान ही प्राप्त हो सकता है। *जीवन्ति* शब्द इसका द्योतक है कि जो भक्त कृष्ण का सदैव श्रवण करता है, वह भगवद्धाम जाता है भले ही वह कुछ भी न करे और केवल भगवान् विषयक कथाएँ ही सुनता रहे।

श्रील सनातन गोस्वामी ने *तनुवाङ्मनोभिः* शब्दों की व्याख्या तीन प्रकार से की है। भक्तों के प्रसंग में, कि वे मनसा-वाचा-कर्मणा भगवान् कृष्ण को जीतने में समर्थ होते हैं। इस तरह कृष्णभावनामृत में पूर्ण बनकर वे अपने हाथों से उनके चरणकमलों का स्पर्श कर सकते हैं, अपनी वाणी से उन्हें बुला सकते हैं और उनका चिन्तन करके अपने मन के भीतर उनका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।

अभक्तों के प्रसंग में, *तनुवाङ्मनोभिः* शब्द *अजित* के द्योतक हैं और सूचित करते हैं कि जो लोग कृष्ण की प्रेमाभक्ति नहीं करते वे अपने शारीरिक बल, वाक्चातुर्य या मानसिक शक्ति से परम सत्य को जीत नहीं सकते। सारे प्रयासों के बावजूद परम सत्य उनकी पहुँच के परे रह जाता है।

जितः शब्द के प्रसंग में *तनुवाङ्मनोभिः* शब्द यह सूचित करते हैं कि शुद्ध भक्तगण भगवान् कृष्ण के तन, मन तथा वाणी को जीत लेते हैं। भगवान् कृष्ण अपने शुद्ध भक्तों के पास रहने के कारण तन से जीत लिए जाते हैं और अपने भक्तों का गुणगान करते रहने से वाणी से तथा अपने प्रिय भक्तों का निरन्तर चिन्तन करने से मन से जीत लिये जाते हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *तनुवाङ्मनोभिः* शब्दों की व्याख्या *नमन्तः* के साथ जोड़ते हुए की है। वे बतलाते हैं कि भक्तगण मनसा-वाचा-कर्मणा भगवान् विषयक कथाओं का आदर करते हुए उनका पूरा लाभ उठा सकते हैं। भगवान् की कथाओं को नमस्कार करते समय भक्त को चाहिए कि अपने हाथों तथा सिर से भूमि स्पर्श करते हुए शरीर को सेवा में लगाये। वह *श्रीमद्भागवत* तथा *भगवद्गीता* जैसे दिव्य ग्रंथों एवं इन ग्रंथों का प्रचार करने वाले भक्तों की प्रशंसा करने में अपनी वाणी को लगाए तथा भगवान् की कथाओं का श्रवण करते समय आदर तथा आनन्द का अनुभव करने में अपने मन को लगाए। इस तरह जिस निष्ठावान भक्त ने कृष्ण विषयक स्वल्प ज्ञान भी प्राप्त कर लिया

है, वह उनको जीत सकता है और उनके पास नित्य जीवन बिताने के लिए भगवद्धाम वापस जा सकता है।

श्रेय:सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्रेय:—परम लाभ का; सृतिम्—मार्ग; भक्तिम्—भक्ति; उदस्य—त्याग करके; ते—वे; विभो—हे सर्वशक्तिमान भगवान्; क्लिश्यन्ति—क्लेश सहन करते हैं; ये—जो; केवल—एकमात्र; बोध—ज्ञान की; लब्धये—प्राप्ति के लिए; तेषाम्—उनके लिए; असौ—यह; क्लेशल:—झंझट; एव—केवल; शिष्यते—रहती है; न—कुछ नहीं; अन्यत्—दूसरा; यथा—जिस तरह; स्थूल-तुष—थोथी भूसी; अवघातिनाम्—मारनेवालों के लिए।

हे प्रभु, आत्म-साक्षात्कार का सर्वोत्तम मार्ग तो आपकी ही भक्ति है। यदि कोई इस मार्ग को त्याग करके ज्ञान के अनुशीलन में प्रवृत्त होता है, तो उसे क्लेश उठाना होगा और वांछित फल भी नहीं मिल पाएगा। जिस तरह थोथी भूसी को पीटने से अन्न (गेहूँ) नहीं मिलता उसी तरह जो केवल चिन्तन करता है उसे आत्म-साक्षात्कार नहीं हो पाता। उसके हाथ केवल क्लेश लगता है।

तात्पर्य : परम पुरुष की प्रेमाभक्ति प्रत्येक जीव का सहज तथा नित्य कर्म है। यदि कोई व्यक्ति अपने वैधानिक कर्म को त्यागकर निर्विशेष ज्ञान के माध्यम से तथाकथित प्रकाश की खोज करता है, तो बनावटी प्रक्रिया का अनुसरण करने से मिलने वाले क्लेश के अतिरिक्त कुछ भी उसके हाथ नहीं लगता। कोई मूर्ख थोथी भूसी को कितना ही क्यों न पीटे किन्तु वह उसमें से अन्न नहीं प्राप्त कर सकता। इसी तरह जो व्यक्ति भगवान् की शरण में गये बिना अपने मन को बारम्बार ज्ञान की खोज में लगाता है, वह मूर्ख है क्योंकि ज्ञान का सार तथा लक्ष्य तो भगवान् ही हैं जिस तरह कि कृषि-कर्म के सारे प्रयासों का एकमात्र लक्ष्य अन्न प्राप्त करना है। वैदिक ज्ञान, या यों कहें कि ईश्वरविहीन भौतिक विज्ञान थोथी भूसी के समान है।

कोई तर्क कर सकता है कि योगाभ्यास द्वारा या निर्विशेष ज्ञान के अनुशीलन से मनुष्य को प्रतिष्ठा, धन, योगशक्ति या निर्विशेष मुक्ति का लाभ होता है। किन्तु ये तथाकथित लाभ व्यर्थ हैं क्योंकि इनसे जीव को परमेश्वर की प्रेमाभक्ति करने का वैधानिक पद प्राप्त नहीं हो पाता। अत: ऐसे लाभ क्षणिक होते हैं। जैसाकि *नृसिंहपुराण* में कहा गया है—*पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोयेष्वक्रीतलभ्येषु वदैव सत्सु/ भक्त्या सुलभ्ये पुरुषे पुराणे मुक्त्यै किमर्थं क्रियते प्रयत्न:*—जब आदि पुरुष सहज ही उपलब्ध

होनेवाली वस्तुओं यथा पत्र, पुष्प, फूल तथा जल से प्राप्त किये जा सकते हैं, तो फिर मुक्ति के लिए अलग से प्रयास करने की क्या आवश्यकता है ?

यद्यपि भगवान् कृष्ण की भक्तिविधि अत्यन्त सरल है किन्तु उद्दंड बद्धजीवों को भगवान् के समक्ष पूर्णतया विनीत बनने और चौबीसों घण्टे उनकी सेवा में लगे रहने में अत्यधिक कठिनाई होती है। ऐसे पथभ्रष्ट जीव जो ईश्वर की अवज्ञा करके भोग करना चाहते हैं उनके लिए भक्तिभाव अभिशाप है। जब ऐसे उद्दंड जीव ज्ञान, तप तथा योग जैसे गर्वित प्रयासों से भगवदर्पण से बच निकलना चाहते हैं, तो वे ईश्वर के सशक्त नियमों द्वारा भौतिक जगत में वापस लौटा दिये जाते हैं और भौतिक संसार नामक भवसागर में डुबो दिये जाते हैं।

पुरेह भूमन्बहवोऽपि योगिन-
स्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया
प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

पुरा—भूतकाल में; इह—इस संसार में; भूमन्—हे सर्वशक्तिमान; बहवः—अनेक; अपि—निस्सन्देह; योगिनः—योगीजन; त्वत्—आपके प्रति; अर्पित—अर्पित; ईहाः—अपने सारे प्रयास; निज-कर्म—अपने नियत कर्तव्यों से; लब्धया—जो प्राप्त किया जाता है; विबुध्य—समझने पर; भक्त्या—भक्ति के द्वारा; एव—निस्सन्देह; कथा-उपनीतया—आपकी कथाओं के श्रवण तथा कीर्तन के माध्यम से अनुशीलित; प्रपेदिरे—समर्पण द्वारा उन्होंने प्राप्त किया; अञ्जः—सरलता से; अच्युत—हे अच्युत; ते—आपका; गतिम्—गन्तव्य; पराम्—परम।

हे सर्वशक्तिमान, भूतकाल में इस संसार में अनेक योगीजनों ने अपने कर्तव्य निभाते हुए तथा अपने सारे प्रयासों को आपको अर्पित करते हुए भक्तिपद प्राप्त किया है। हे अच्युत, आपके श्रवण तथा कीर्तन द्वारा सम्पन्न ऐसी भक्ति से वे आपको जान पाये और आपकी शरण में जाकर आपके परमधाम को प्राप्त कर सके।

तथापि भूमन्महिमागुणस्य ते
विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ।
अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतो
ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तथा अपि—फिर भी; भूमन्—हे असीम; महिमा—शक्ति; अगुणस्य—भौतिक गुणों से रहित; ते—आपकी; विबोद्धुम्—समझने के लिए; अर्हति—समर्थ होता है; अमल—निष्कलंक; अन्तः-आत्मभिः—मन तथा इन्द्रियों से; अविक्रियात्—भौतिक

भेद पर निराश्रित; स्व-अनुभवात्—परमात्मा के अनुभव से; अरूपतः—भौतिक रूपों के प्रति अनुरक्त हुए बिना; हि—निस्सन्देह; अनन्य-बोध्य-आत्मतया—बिना किसी अन्य प्रकाशक के, जैसाकि स्वतः प्रकट; न—नहीं; च—तथा; अन्यथा—नहीं तो।

किन्तु अभक्तगण आपके पूर्ण साकार रूप में आपका अनुभव नहीं कर सकते। फिर भी हृदय के अन्दर आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति द्वारा वे निर्विशेष ब्रह्म के रूप में आपका अनुभव कर सकते हैं। किन्तु वे ऐसा तभी कर सकते हैं जब वे अपने मन तथा इन्द्रियों को सारी भौतिक उपाधियों तथा इन्द्रिय-विषयों के प्रति आसक्ति से शुद्ध कर लें। केवल इस विधि से ही उन्हें आपका निर्विशेष स्वरूप प्रकट हो सकेगा।

तात्पर्य : परमेश्वर के समस्त दिव्य स्वरूपों को समझ पाना बद्धजीवों के लिए कठिन है। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* के प्रथम स्कंध (१.२.११) में पुष्टि हुई है—*ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते।* ईश्वर के अस्तित्व को क्रमशः निर्विशेष तेज, घट-घट-वासी अन्तर्यामी परमात्मा तथा अपने नित्य धाम में वास करने वाले भगवान् के रूप में समझा जाता है। कृष्ण का अस्तित्व भौतिक गुणों के परे है। इसीलिए यहाँ पर भगवान् को *अगुणस्य* कहा गया है।

योगाभ्यास करने या उच्च दार्शनिक चिन्तन करने पर भी भौतिक गुणों से परे दिव्य अस्तित्व को समझ पाना कठिन है। और ये सारी विधियाँ एक तरह से भगवान् के अनन्त दिव्य गुणों को समझने में व्यर्थ होती हैं। केवल भगवान् के शुद्ध भक्तों की कृपा से या भगवान् की संगति करने से ही ईश्वर के साकार रूप का अनुभव किया जा सकता है—यह वह विधि है, जो शुद्ध कृष्णभावनामृत में जाकर अन्त होती है—यही ज्ञान की अन्तिम तथा चरम सिद्धि है।

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं
हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पै-
र्भूपांशवः खे मिहिका द्युभासः ॥ ७॥

शब्दार्थ

गुण-आत्मनः—समस्त उत्तम गुणों से सम्पन्न व्यक्ति का; ते—आप; अपि—निश्चय ही; गुणान्—गुणों को; विमातुम्—गिनने के लिए; हित-अवतीर्णस्य—जो समस्त जीवों के हित के लिए अवतीर्ण हुआ है; के—कौन; ईशिरे—समर्थ है; अस्य—ब्रह्माण्ड का; कालेन—कालक्रम में; यैः—जिसके द्वारा; वा—अथवा; विमिताः—गिना हुआ; सु-कल्पैः—महान् विज्ञानियों द्वारा; भू-पांशवः—पृथ्वी लोक के परमाणु; खे—आकाश में; मिहिकाः—बर्फ के कण; द्यु-भासः—तारों तथा ग्रहों का प्रकाश।

समय के साथ, विद्वान दार्शनिक या विज्ञानी, पृथ्वी के सारे परमाणु, हिम के कण या

शायद सूर्य, नक्षत्र तथा ग्रहों से निकलने वाले ज्योति कणों की भी गणना करने में समर्थ हो सकते हैं किन्तु इन विद्वानों में ऐसा कौन है, जो आप में अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर में निहित असीम दिव्य गुणों का आकलन कर सके। ऐसे भगवान् समस्त जीवात्माओं के कल्याण के लिए इस धरती पर अवतरित हुए हैं।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी बतलाते हैं कि भगवान् कृष्ण *गुणात्मा* हैं क्योंकि वे गुणों को जीवन्त करते हैं। उदाहरणार्थ, उदारता, बुद्धि तथा दया जैसे गुणों की विवेचना तो की जा सकती है किन्तु वे सजीव तभी होते हैं जब कोई सजीव व्यक्ति उन्हें प्रकट करता है। अत: कृष्ण गुणात्मा हैं क्योंकि वे इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं और अपने ईश्वरीय गुणों को प्रकट करके तथा अन्यों में उनकी प्रेरणा देकर धर्म की पुन: स्थापना करते हैं। जो जीव भगवान् में प्राप्य दिव्य गुणों को विकसित करता है उसे असीम लाभ प्राप्त होता है और अन्तत:वह भगवद्धाम जाता है जहाँ जाने पर सारे जीव मुक्त हो जाते हैं और दिव्य स्वभाव को प्राप्त होते हैं।

श्रील सनातन गोस्वामी आगे यह भी बतलाते हैं कि भगवान् हर जीव के लाभ हेतु एक विशिष्ट आध्यात्मिक गुण प्रदर्शित करते हैं। चूँकि इस सृष्टि में असंख्य जीव हैं अतएव भगवान् अनन्त गुण प्रकट करते हैं। इस तरह प्रत्येक बद्धजीव भगवान् को विशिष्ट रूप से जान सकता है।

यहाँ पर उदाहरण दिया गया है कि भले ही सबसे विद्वान पंडितगण पृथ्वी, हिम तथा प्रकाश के कणों की गणना कर लें किन्तु तो भी वे भगवान् के गुणों को समझ नहीं पाएंगे। इस उदाहरण में पृथ्वी, हिम तथा प्रकाश उत्तरोत्तर सूक्ष्म होते जाते हैं अतएव उनके अनन्त कणों की गणना कर सकना एक प्रकार से बहुत ही कठिन है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार भगवान् संकर्षण जैसे महापुरुषों ने पृथ्वी के ही नहीं अपितु सारे ब्रह्माण्ड भर के परमाणुओं की संख्या की गणना की है। फिर भी संकर्षण जैसे व्यक्ति जो कि अनादि काल से भगवान् की महिमा का निरन्तर गुणगान करते आ रहे हैं उन गुणों की गणना के अन्तिम दौर में भी नहीं पहुँच पाये।

भगवान् कृष्ण वृन्दावन में अपनी बाललीलाओं के समय आश्चर्यजनक गुण प्रदर्शित करते हैं—वहाँ वे गोपिकाओं का माखन चुराते हैं, अपनी सखियों के साथ नाचते हैं और अपने प्रिय संगी ग्वालबालों

के साथ उनके सर्वाधिक प्रिय सखा के रूप में क्रीड़ा करते हैं। यद्यपि ये सामान्य मानवी क्रीड़ाएँ प्रतीत होती हैं किन्तु इन दिव्य लीलाओं में कृष्ण के असंख्य सुन्दर गुण निहित रहते हैं, जो शुद्ध भक्तों के जीवनाधार हैं।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तत्—अत:; ते—आपकी; अनुकम्पाम्—दया की; सु-समीक्षमाण:—आशा रखते हुए; भुञ्जान:—सहन करते हुए; एव—निश्चय ही; आत्म-कृतम्—अपने से किया गया; विपाकम्—कर्म फल; हृत्—हृदय; वाक्—वाणी; वपुर्भि:—तथा शरीर से; विदधन्—अर्पित करते हुए; नम:—नमस्कार; ते—आपको; जीवेत—जीवित रहता है; य:—जो; मुक्ति-पदे—मुक्ति पद के लिए; स:—वह; दाय-भाक्—असली उत्तराधिकारी।

हे प्रभु, जो व्यक्ति अपने विगत दुष्कर्मों के फलों को धैर्यपूर्वक सहते हुए तथा अपने मन, वाणी तथा शरीर से आपको नमस्कार करते हुए सत्यनिष्ठा से आपकी अहैतुकी कृपा प्रदत्त किये जाने की प्रतीक्षा करता है, वह अवश्य ही मोक्ष का भागी होता है क्योंकि यह उसका अधिकार बन जाता है।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी टीका करते हुए बतलाते हैं कि जिस प्रकार वैध पुत्र को पिता का उत्तराधिकारी बनने के लिए केवल जीवित रहना होता है उसी तरह जो व्यक्ति भक्तियोग के नियमों का पालन करते हुए कृष्णभावनामृत को अपना प्राणाधार बनाता है उसे भगवत्कृपा प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में, वह भगवद्धाम को जाता है।

सुसमीक्षमाण शब्द सूचित करता है कि भक्त अपने पूर्व पापकृत्यों के कष्टकारक फलों का भोग करते हुए भी भगवान् की कृपा की प्रतीक्षा करता है। भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* में कहा है कि जो भक्त उनकी शरण में चला जाता है उसे पूर्वकर्म का फल नहीं भोगना पड़ता। फिर भी चूँकि भक्त के मन में अपनी पूर्वपाप मनोवृत्ति के अवशेष रह सकते हैं अत: भगवान् कभी कभी अपने भक्त को दण्ड देते प्रतीत होते हैं, जो पाप के फलों जैसा हो सकता है। ईश्वर की सम्पूर्ण सृष्टि का उद्देश्य जीव की उस प्रवृत्ति को सुधारना है, जिसमें वह ईश्वर के बिना भोग करना चाहता है, अत: किसी पापकर्म के लिए विशेष दण्ड दिया जाना उस मनोवृत्ति को कम करने के लिए होता है, जिससे वह कर्म हुआ होता है।

यद्यपि भक्त भगवान् की भक्ति के अधीन रहता है किन्तु जब तक वह कृष्णभावनामृत में पूरी तरह दक्ष नहीं हो लेता तब तक उसमें इस जगत के मिथ्या सुख को भोगने की थोड़ी थोड़ी प्रवृत्ति रह जाती है। इसलिए भगवान् इस बची हुई भोग-प्रवृत्ति को समूल नष्ट करने के लिए विशिष्ट स्थिति उत्पन्न करते हैं। निष्ठावान् भक्त द्वारा भोगा जाने वाला दुख कर्मफल नहीं है प्रत्युत यह भगवान् की विशिष्ट कृपा होती है कि वे उसे भौतिक जगत छोड़कर भगवद्धाम वापस जाने की प्रेरणा देते हैं।

निष्ठावान भक्त भगवद्धाम जाने के लिए इच्छुक रहता है, इसलिए वह खुशी खुशी भगवान् के दयापूर्ण दण्ड को स्वीकार करता है और वह मन, वचन तथा कर्म से भगवान् को आदर देता है तथा नमस्कार करता है। भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए भगवान् का ऐसा प्रामाणिक दास ईश्वर का वैध पुत्र बन जाता है जैसाकि *दायभाक्* शब्दों से सूचित होता है। जिस प्रकार स्वयं अग्नि बने बिना कोई भी व्यक्ति सूर्य के पास नहीं पहुँच सकता उसी तरह कठोर शुद्धीकरण विधि का पालन किए बिना कोई परम पवित्र कृष्ण तक नहीं पहुँच सकता—यह शुद्धीकरण भले ही कष्ट जैसा प्रतीत हो किन्तु यह भगवान् के हाथों द्वारा किया गया उपचार होता है।

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये
परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि ।
मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं
ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

पश्य—जरा देखें तो; ईश—हे प्रभु; मे—मेरा; अनार्यम्—निन्दनीय आचरण; अनन्ते—अनन्त के विरुद्ध; आद्ये—आदि; पर-आत्मनि—परमात्मा; त्वयि—तुम; अपि—भी; मायि-मायिनि—माया के स्वामियों के लिए; मायाम्—(मेरी) माया; वितत्य—विस्तृत होकर; ईक्षितुम्—देखने के लिए; आत्म—आपकी; वैभवम्—शक्ति को; हि—निस्सन्देह; अहम्—मैं; कियान्—कितनी; ऐच्छम्—मैंने इच्छा की; इव—सदृश; अर्चिः—चिनगारी; अग्नौ—अग्नि की तुलना में।

हे प्रभु, मेरी अशिष्टता को जरा देखें! आपकी शक्ति की परीक्षा करने के लिए मैंने अपनी मायामयी शक्ति से आपको आच्छादित करने का प्रयत्न किया जबकि आप असीम तथा आदि परमात्मा हैं, जो मायापतियों को भी मोहित करनेवाले हैं। आपके सामने भला मैं क्या हूँ? विशाल अग्नि की उपस्थिति में मैं छोटी चिनगारी की तरह हूँ।

तात्पर्य : विशाल अग्नि से अनेक चिनगारियाँ निकलती हैं, जो उसकी तुलना में नगण्य होती हैं। यदि एक छोटी चिनगारी मूल अग्नि को जलाने का प्रयास करे तो यह प्रयास उपहासात्मक होगा। इसी

प्रकार अखिल ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ब्रह्मा भी ईश्वर की शक्ति की नगण्य चिनगारी हैं इसलिए ब्रह्मा द्वारा परमेश्वर को मोहित करने का प्रयास निश्चित रूप से हास्यास्पद था।

ब्रह्मा यहाँ पर भगवान् कृष्ण को *ईश* कहकर सम्बोधित करते हैं, जो यह सूचित करता है कि कृष्ण न केवल सबों के स्वामी हैं अपितु भगवान् के निर्देशन में ब्रह्माण्ड का सृजन करनेवाले उन ब्रह्मा के भी स्वामी हैं, जो भगवान् के ही शरीर से उत्पन्न हैं।

भगवान् कृष्ण को छलने के प्रयास के कारण ब्रह्मा को अपनी अशिष्टता पर लज्जा आई अतएव वे उनके द्वारा दण्डित होने या क्षमा किये जाने के लिए पूर्णतया राजी थे। यदि भगवान् कृष्ण अपने भक्तों को अनुचित कार्य करने पर दण्ड नहीं दें तो उनकी मूर्खता बढ़ती जाये और वह उनके भक्ति-भावों को पूर्णतया आच्छादित कर ले। इसलिए भगवान् कृष्ण कृपा करके अपने भक्तों को अनुशासित रखते हैं और उन्हें भगवद्धाम के मार्ग की ओर अग्रसर होने देते हैं।

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो
ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ।
अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष
एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अतः—अतएव; क्षमस्व—कृपया क्षमा कर दें; अच्युत—हे अच्युत प्रभु; मे—मुझको; रजः-भुवः—रजोगुण में उत्पन्न; हि—निस्सन्देह; अजानतः—अज्ञान होने से; त्वत्—आपसे; पृथक्—भिन्न; ईश—नियन्ता; मानिनः—अपने को मानते हुए; अज—अजन्मा; अवलेप—आवरण; अन्ध-तमः—अज्ञान के ऐसे अंधकार से; अन्ध—अन्धी; चक्षुषः—मेरी आँखें; एषः—यह व्यक्ति; अनुकम्प्यः—दया दिखानी चाहिए; मयि—मुझ पर; नाथ-वान्—अपने स्वामी के रूप में पाकर; इति—ऐसा सोचते हुए।

अतएव हे अच्युत भगवान्, मेरे अपराधों को क्षमा कर दें। मैं रजोगुण से उत्पन्न हुआ हूँ और स्वयं को आपसे पृथक् (स्वतंत्र) नियन्ता मानने के कारण मैं निरा मूर्ख हूँ। अज्ञान के अंधकार से मेरी आँखें अंधी हो चुकी हैं जिसके कारण मैं अपने को ब्रह्माण्ड का अजन्मा स्त्रष्टा समझ रहा हूँ। किन्तु मुझे आप अपना सेवक मानें और अपनी दया का पात्र बना लें।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने अपनी टीका में बतलाया है कि ब्रह्मा भगवान् के समक्ष निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करना चाह रहे थे: "हे प्रभु! चूँकि मैंने बहुत बुरा कर्म किया है इसलिए मैं दण्ड का पात्र हूँ। साथ ही चूँकि मैं इतना बड़ा अज्ञानी हूँ इसलिए आप मुझे अबोध मूर्ख मानकर मुझ पर कृपा कीजिये। इस तरह यद्यपि मैं दण्ड तथा क्षमा दोनों का पात्र हूँ किन्तु मेरी विनम्र

याचना है कि आप इस विषय में सहिष्णुता बरतते हुए मुझे क्षमा कर दें और मुझ पर कृपा करें।''

नाथवान् इति शब्दों के द्वारा ब्रह्माजी भगवान् कृष्ण को जताना चाह रहे थे कि आखिर वे उनके पिता और स्वामी हैं अतएव वे अपने इस विनीत सेवक के अपराध को क्षमा कर दें। प्रत्येक बद्धजीव, चाहे वह ब्रह्मा हो या क्षुद्र चींटी, अपनी पहचान भौतिक जगत से बनाना चाहता है और इस तरह भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को भूल जाता है। ब्रह्माजी भी इस विराट जगत के स्रष्टा के प्रतिष्ठित पद पर होने के कारण अपनी पहचान इस जगत के स्वामी के रूप में करते हैं और कभी कभी वे भूल जाते हैं कि वे परमेश्वर के तुच्छ सेवक हैं। अब भगवान् कृष्ण की कृपा से यह मिथ्या पहचान सही की जा रही है और ब्रह्माजी ईश्वर के नित्यदास के रूप में अपनी स्थिति का स्मरण कर रहे हैं।

क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भू-
संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या-
वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

क्व—कहाँ; अहम्—मैं; तमः—भौतिक प्रकृति; महत्—सम्पूर्ण भौतिक शक्ति; अहम्—मिथ्या अहंकार; ख—आकाश; चर—वायु; अग्नि—आग; वाः—जल; भू—पृथ्वी; संवेष्टित—घिरा हुआ; अण्ड-घट—घड़े के सदृश ब्रह्माण्ड; सप्त-वितस्ति—सात बालिश्त; कायः—शरीर; क्व—कहाँ; ईदृक्—इसके; विधा—सदृश; अविगणित—असीम; अण्ड—ब्रह्माण्ड; पर-अणु—परमाणु की धूल सदृश; चर्या—चलायमान; वात-अध्व—वायु के छेद; रोम—शरीर के रोमों के; विवरस्य—छेदों के; च—भी; ते—आपकी; महित्वम्—महानता।

कहाँ मैं अपने हाथ के सात बालिश्तों के बराबर एक क्षुद्र प्राणी जो भौतिक प्रकृति, समग्र भौतिक शक्ति, मिथ्या अहंकार, आकाश, वायु, जल तथा पृथ्वी से बने घड़े-जैसे ब्रह्माण्ड से घिरा हुआ हूँ! और कहाँ आपकी महिमा! आपके शरीर के रोमकूपों से होकर असंख्य ब्रह्माण्ड उसी प्रकार आ-जा रहे हैं जिस तरह खिड़की की जाली के छेदों से धूल कण आते-जाते रहते हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *चैतन्य-चरितामृत* (आदि लीला ५.७२) में इस श्लोक का सारांश इस प्रकार दिया है, ''कृष्ण की गौवों तथा ग्वालमित्रों को चुराने के बाद जब ब्रह्माजी लौटे तो देखा कि गौवें तथा ग्वालबाल अब भी कृष्ण के साथ टहल रहे हैं, तो उन्होंने अपनी पराजय में यह स्तुति की। बद्धजीव, यहाँ तक कि समग्र ब्रह्माण्ड के कामकाज चलाने वाले ब्रह्माजी भी भगवान् की बराबरी नहीं

कर सकते क्योंकि भगवान् अपने शरीर के रोमछिद्रों से निकलने वाली आध्यात्मिक किरणों से असंख्य ब्रह्माण्डों की सृष्टि कर सकते हैं। भौतिक विज्ञानियों को ब्रह्माजी के इन शब्दों से ईश्वर के समक्ष अपनी नगण्यता के विषय में शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। ब्रह्माजी की इन स्तुतियों में उन लोगों के लिए बहुत कुछ सीखने को है, जो शक्ति के संचय से गर्वित हो उठे हैं।''

श्रील प्रभुपाद ''भगवान् श्रीकृष्ण'' (भाग १, अध्याय १४) में इस श्लोक की टीका करते हुए आगे कहते हैं, ''ब्रह्माजी को अपनी असली स्थिति का अनुभव हुआ। निश्चित ही वे इस ब्रह्माण्ड के परम गुरु हैं और भौतिक ब्रह्माण्ड के सृजन के लिए उत्तरदायी हैं, जो पूर्ण भौतिक तत्त्वों, मिथ्या अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी से बना हुआ है। भले ही ऐसा ब्रह्माण्ड विशाल हो किन्तु उसे मापा जा सकता है, जिस तरह हम शरीर को सात बालिश्तों में मापते हैं। सामान्यत: हरेक के अपने शरीर की आप उसके अपने हाथों के साथ यह ब्रह्माण्ड भले ही विशाल शरीर प्रतीत हो किन्तु यह ब्रह्माजी के सात बालिश्तों के बराबर है।''

इस ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त अन्य असंख्य ब्रह्माण्ड हैं, जो इन ब्रह्माजी के अधिकार-क्षेत्र के बाहर हैं। जिस प्रकार खिड़की की जाली के छेदों से होकर असंख्य सूक्ष्म कण गुजरते रहते हैं उसी तरह महाविष्णु के रोमछिद्रों से करोड़ों ब्रह्माण्ड बीज रूप में निकलते रहते हैं और स्वयं महाविष्णु भगवान् कृष्ण के स्वांश मात्र हैं। ऐसी दशा में यद्यपि ब्रह्माजी इस ब्रह्माण्ड में सबसे बड़े प्राणी हैं किन्तु कृष्ण के समक्ष उनकी महत्ता ही क्या है?

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयो:
किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं
तवास्ति कुक्षे: कियदप्यनन्त: ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

उत्क्षेपणम्—लात मारना; गर्भ-गतस्य—गर्भस्थ शिशु; पादयो:—दोनों पाँवों का; किम्—क्या; कल्पते—मूल्य है; मातु:—माता के लिए; अधोक्षज—हे दिव्य प्रभु; आगसे—अपराध के रूप में; किम्—क्या; अस्ति—है; न अस्ति—नहीं है; व्यपदेश—उपाधि से; भूषितम्—अलंकृत; तव—आपका; अस्ति—है; कुक्षे:—उदर के; कियत्—कितना; अपि—भी; अनन्त:—बाह्य।

हे प्रभु अधोक्षज, क्या कोई माता अपने गर्भ के भीतर स्थित शिशु द्वारा लात मारे जाने को अपराध समझती है? क्या आपके उदर के बाहर वास्तव में ऐसी किसी वस्तु का अस्तित्व है,

जिसे दार्शनिक जन ''है'' या ''नहीं है'' की उपाधि प्रदान कर सकें ?

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने ''भगवान् श्रीकृष्ण'' (भाग १ अध्याय १४) में इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है, ''अत: ब्रह्मा ने अपनी बराबरी किसी माता के गर्भ में स्थित एक शिशु से की। यदि शिशु गर्भ के भीतर हाथ-पैर चलाता है और वे माता के शरीर से छू जाते हैं, तो क्या माता इस शिशु से रूष्ट होती है ? निस्सन्देह नहीं। इसी तरह ब्रह्मा भले ही महान् पुरुष हों किन्तु न केवल ब्रह्मा अपितु हर वस्तु भगवान् के उदर में स्थित है। भगवान् की शक्ति सर्वव्यापक है। सृष्टि में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ यह शक्ति क्रियाशील न हो। सारी वस्तुएँ भगवान् की शक्ति के ही अन्तर्गत विद्यमान हैं अत: इस ब्रह्माण्ड के ब्रह्माजी अथवा अन्य करोड़ों ब्रह्माण्डों के ब्रह्मा भी भगवान् की शक्ति के अन्तर्गत स्थित हैं। इसीलिए भगवान् को माता माना जाता है और माता के गर्भ के भीतर स्थित प्रत्येक वस्तु शिशु मानी जाती है। अच्छी माता कभी भी शिशु का अपराध नहीं मानती भले ही वह अपने पाँवों से माता के शरीर पर पाद-प्रहार क्यों न करे।''

जगत्त्रयान्तोदधिसम्प्लवोदे
नारायणस्योदरनाभिनालात् ।
विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ्न वै मृषा
किन्त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

जगत्-त्रय—तीनों लोकों की; अन्त—विजय में; उदधि—सारे समुद्रों में; सम्प्लव—पूर्ण आप्लावन का; उदे—जल में; नारायणस्य—भगवान् नारायण के; उदर—उदर से उग कर; नाभि—नाभि; नालात्—कमल के डंठल से; विनिर्गत:—बाहर निकले; अज:—ब्रह्मा; तु—निस्सन्देह; इति—इस प्रकार कहते हुए; वाक्—शब्द; न—नहीं हैं; वै—निश्चय ही; मृषा—झूठा; किन्तु—इस प्रकार; ईश्वर—हे ईश्वर; त्वत्—आपसे; न—नहीं; विनिर्गत:—विशेष रूप से निकला; अस्मि—मैं हूँ।.

हे प्रभु, ऐसा कहा जाता है कि जब प्रलय के समय तीनों लोक जलमग्न हो जाते हैं, तो आपके अंश, नारायण, जल में लेट जाते हैं, उनकी नाभि से धीरे-धीरे एक कमल का फूल निकलता है और उस फूल से ब्रह्मा का जन्म होता है। अवश्य ही ये वचन झूठे नहीं हैं। तो क्या मैं आपसे उत्पन्न नहीं हूँ ?

तात्पर्य : यद्यपि सारे जीव ईश्वर की सन्तान हैं किन्तु ब्रह्माजी यहाँ पर विशेष दावा करते हैं क्योंकि उनका जन्म भगवान् नारायण की नाभि से निकले कमल के फूल से हुआ है। अन्ततोगत्वा सारे जीव भगवान् के दिव्य शरीर के एक अंश हैं। लेकिन ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने से ब्रह्माजी का उनसे घनिष्ट

सम्बन्ध है इसीलिए वे भगवान् की विशेष दया की याचना करते हुए *विनिर्गत* शब्द के साथ *वि* उपसर्ग लगाते हैं। ब्रह्माजी *अज* कहलाते हैं क्योंकि वे किसी माता से उत्पन्न न होकर सीधे भगवान् के शरीर से उत्पन्न हुए हैं। जैसाकि श्रील प्रभुपाद ने ''भगवान् श्रीकृष्ण'' में लिखा है, ''इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि नारायण ही ब्रह्मा की माता हैं।'' इन्हीं कारणों से ब्रह्माजी अपने अपराधों के लिए विशेष क्षमायाचना करते हैं।

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिना-
मात्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी ।
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायना-
त्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ १४॥

शब्दार्थ

नारायणः—भगवान् नारायण; त्वम्—तुम; न—नहीं; हि—क्या; सर्व—सभी; देहिनाम्—देहधारी जीवों के; आत्मा—परमात्मा; असि—हो; अधीश—हे परम नियन्ता; अखिल—सम्पूर्ण; लोक—लोकों के; साक्षी—गवाह; नारायणः—श्री नारायण; अङ्गम्—अंश; नर—भगवान् से; भू—निकलकर; जल—जल के; अयनात्—प्रकट करने वाले स्रोत होने से; तत्—वह अंश; च—तथा; अपि—निस्सन्देह; सत्यम्—सच; न—नहीं; तव—तुम्हारा; एव—तनिक भी; माया—मोहक शक्ति।

हे परम नियन्ता, प्रत्येक देहधारी जीव के आत्मा तथा समस्त लोकों के शाश्वत साक्षी होने के कारण क्या आप आदि नारायण नहीं हैं? निस्सन्देह, भगवान् नारायण आपके ही अंश हैं और वे नारायण इसलिए कहलाते हैं क्योंकि ब्रह्माण्ड के आदि जल के जनक हैं। वे सत्य हैं, आपकी माया से उत्पन्न नहीं हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *चैतन्य-चरितामृत* (आदि लीला, २.३०)में इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है ''यह ब्रह्मा का कथन है जब वे भगवान् कृष्ण द्वारा योगशक्ति प्रकट किये जाने पर पराजित होकर उनकी स्तुति कर रहे थे। ब्रह्मा ने यह देखने के लिए भगवान् कृष्ण की परीक्षा लेनी चाही थी कि ग्वाल-बाल के रूप में खेलनेवाले कृष्ण सचमुच भगवान् ही हैं। ब्रह्मा ने अन्य सारे बालकों तथा उनकी गौवों को चरागाह से चुरा लिया किन्तु जब वे लौटे तो देखा कि सारे बालक तथा गौवें चरागाह में ही थे क्योंकि भगवान् ने फिर से उनकी सृष्टि कर दी थी। जब ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण की इस योगशक्ति को देखा तो उन्होंने हार मान ली और भगवान् को अपना स्वामी तथा सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का द्रष्टा एवं समस्त जीवों के भीतर स्थित परमात्मा के रूप में सम्बोधित करते हुए उनकी स्तुति की। भगवान् कृष्ण नारायण हैं अर्थात् ब्रह्मा के पिता हैं क्योंकि कृष्ण के अंश रूप गर्भोदकशायी

विष्णु ने गर्भोदक में शयन करते हुए ब्रह्मा को अपने शरीर से उत्पन्न किया था। कारणार्णव में महाविष्णु और सबों के हृदय में वास करनेवाले परमात्मा स्वरूप क्षीरोदकशायी विष्णु भी परम सत्य के अंश हैं।''

श्रील सनातन गोस्वामी ने इस श्लोक की टीका करते हुए भगवान् के आदि स्वरूप श्रीकृष्ण के अवतार विष्णु या नारायण के अंश की विस्तृत व्याख्या की है। इसका सार यह है कि यद्यपि ब्रह्माजी नारायण से उत्पन्न हुए थे किन्तु अब ब्रह्मा समझ रहे हैं कि नारायण तो आदि भगवान् श्रीकृष्ण के ही अंश हैं।

तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः
किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ।
किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव
किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥ १५॥

शब्दार्थ

तत्—वह; चेत्—यदि; जल-स्थम्—जल में स्थित था; तव—तुम्हारा; सत्—असली; जगत्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आश्रय देते हुए; वपुः—दिव्य शरीर; किम्—क्यों; मे—मेरे द्वारा; न दृष्टम्—नहीं देखा गया; भगवन्—हे भगवन्; तदा एव—उसी समय; किम्—क्यों; वा—अथवा; सु-दृष्टम्—भलीभाँति देखा हुआ; हृदि—हृदय में; मे—मेरे द्वारा; तदा एव—तभी ही; किम्—क्यों; न—नहीं; उ—दूसरी ओर; सपदि—अचानक; एव—निस्सन्देह; पुनः—फिर; व्यदर्शि—देखा गया।

हे प्रभु, यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को शरण देने वाला आपका यह दिव्य शरीर वास्तव में जल में शयन करता है, तो फिर आप मुझे तब क्यों नहीं दिखे जब मैं आपको खोज रहा था? और तब क्यों आप सहसा प्रकट नहीं हो गये थे यद्यपि मैं अपने हृदय में आपको ठीक से देख नहीं पाया था।

तात्पर्य : यहाँ पर ब्रह्माजी विराट सृष्टि के प्रारम्भ के अपने अनुभव का उल्लेख कर रहे हैं। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* के द्वितीय स्कन्ध में कहा गया है कि ब्रह्मा का जन्म उस विशाल कमलासन से हुआ जिसकी नाल नारायण की नाभि से निकली थी। ब्रह्मा अपने विषय में, अपने कार्य तथा अपनी पहचान के बारे में मोहित थे अतएव सही जानकारी पाने के उद्देश्य से वे कमलनाल के उद्गम का पता लगाना चाह रहे थे। भगवान् को न पाकर ब्रह्मा अपने आसन पर लौट आये और अदृश्य किन्तु दिव्य भगवद्वाणी द्वारा आदेश दिये जाने पर घोर तपस्या में लग गये। दीर्घ ध्यान के बाद ब्रह्मा ने भगवान् को देखा किन्तु वे तुरन्त ही ओझल हो गये। इस तरह ब्रह्मा ने निष्कर्ष निकाला कि भगवान् का दिव्य शरीर

भौतिक नहीं अपितु अचिन्त्य योगशक्तियों से ओतप्रोत नित्य आध्यात्मिक स्वरूप है। दूसरे शब्दों में, ब्रह्मा ने समस्त योगशक्ति के स्वामी भगवान् को ललकार कर अच्छा नहीं किया।

अत्रैव मायाधमनावतारे
ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य ।
कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या
मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥ १६॥

शब्दार्थ

अत्र—इसी; एव—ही; माया-धमन—हे माया को वश में करने वाले; अवतारे—अवतार में; हि—निश्चय ही; अस्य—इस; प्रपञ्चस्य—सृजित जगत का; बहिः—बाहर से; स्फुटस्य—दृश्य; कृत्स्नस्य—सम्पूर्ण; च—तथा; अन्तः—भीतर; जठरे—आपके उदर में; जनन्याः—आपकी माता के; मायात्वम्—आपकी मायावी शक्ति; एव—निस्सन्देह; प्रकटी-कृतम्—प्रकट की जा चुकी है; ते—आपके द्वारा।

हे प्रभु, आपने इसी अवतार में यह सिद्ध कर दिया है कि आप माया के परम नियंत्रक हैं। यद्यपि आप अब इस ब्रह्माण्ड के भीतर हैं किन्तु सारा ब्रह्माण्ड आपके दिव्य शरीर के भीतर है—आपने इस तथ्य को माता यशोदा के समक्ष अपने उदर के भीतर ब्रह्माण्ड दिखलाकर प्रदर्शित कर दिया है।

तात्पर्य : यहाँ पर ब्रह्माजी भगवान् की अचिन्त्य आध्यात्मिक शक्ति का वर्णन कर रहे हैं। हम घर के भीतर घट को तो देखते हैं किन्तु इसी घट के भीतर घर के होने की अपेक्षा नहीं करते। किन्तु भगवान् इस ब्रह्माण्ड के भीतर प्रकट होकर अपने शरीर के भीतर समस्त ब्रह्माण्डों को प्रदर्शित कर सकते हैं। कोई यह तर्क कर सकता है कि चूँकि माता यशोदा ने भगवान् कृष्ण के उदर के भीतर जो ब्रह्माण्ड देखे थे वे उनके शरीर के भीतर ही थे अतएव वे बाह्य रूप से प्रकट मायामय भौतिक ब्रह्माण्डों से भिन्न हैं। किन्तु ब्रह्माजी उस तर्क का निराकरण करते हैं । भगवान् कृष्ण *मायाधमन* हैं—माया के परम नियन्ता हैं। भगवान् अपनी परम योगशक्ति से साक्षात् माया को मोहित कर सकते हैं। इस तरह भगवान् ने अपने शरीर के भीतर सचमुच ही सारे भौतिक ब्रह्माण्डों को प्रदर्शित किया। यह *मायात्वम्* है—भगवान् की चकित कर देने वाली परम शक्ति।

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ।
तत्त्वय्यपीह तत्सर्वं किमिदं मायया विना ॥ १७॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; कुक्षौ—उदर में; इदम्—यह विराट जगत; सर्वम्—सारा; स-आत्मम्—अपने समेत; भाति—प्रकट किया जाता है; यथा—जिस तरह; तथा—उसी तरह; तत्—वह; त्वयि—तुम में; अपि—यद्यपि; इह—बाह्य रूप से यहाँ; तत्—वह विराट जगत; सर्वम्—सम्पूर्ण; किम्—क्या; इदम्—यह; मायया—आपकी अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव के; विना—बिना।

जिस तरह आप समेत यह सारा ब्रह्माण्ड आपके उदर में प्रदर्शित किया गया था उसी तरह अब यह उसी रूप में यहाँ पर प्रकट हुआ है। आपकी अचिन्त्य शक्ति की व्यवस्था के बिना भला ऐसा कैसे घटित हो सकता है?

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने ''भगवान् श्रीकृष्ण'' में इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है, ''इसमें ब्रह्मा ने बल दिया है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्ति को स्वीकार किये बिना वस्तुओं की, वे जिस रूप में हैं, व्याख्या नहीं की जा सकती।''

अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शित-
मेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ।
तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासिता-
स्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥ १८॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; एव—ही; त्वत् ऋते—आपसे पृथक्; अस्य—इस ब्रह्माण्ड का; किम्—क्या; मम—मुझको; न—नहीं; ते—आपके द्वारा; मायात्वम्—आपकी अचिन्त्य शक्ति का आधार; आदर्शितम्—दिखलाया हुआ; एकः—अकेले; असि—हो; प्रथमम्—सर्वप्रथम; ततः—तब; व्रज-सुहृत्—आपके वृन्दावन के ग्वालबाल मित्र; वत्साः—तथा बछड़े; समस्ताः—सारे; अपि—भी; तावन्तः—उतने ही; असि—हो गये; चतुः-भुजाः—भगवान् विष्णु की चार भुजाएँ; तत्—तब; अखिलैः—सबों के द्वारा; साकम्—साथ; मया—मेरे द्वारा; उपासिताः—पूजित होकर; तावन्ति—उतनी ही संख्या के; एव—भी; जगन्ति—ब्रह्माण्ड; अभूः—बन गये; तत्—तब; अमितम्—असंख्य; ब्रह्म—परम सत्य; अद्वयम्—अद्वितीय; शिष्यते—अब आप शेष हैं।

क्या आपने आज मुझे यह नहीं दिखलाया कि आप स्वयं तथा इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु आपकी अचिन्त्य शक्ति के ही प्राकट्य हैं? सर्वप्रथम आप अकेले प्रकट हुए, तत्पश्चात् आप वृन्दावन के बछड़ों तथा अपने मित्र ग्वालबालों के रूप में प्रकट हुए। इसके बाद आप उतने ही चतुर्भुजी विष्णु रूपों में प्रकट हुए जो मुझ समेत समस्त जीवों द्वारा पूजे जा रहे थे। तत्पश्चात् आप उतने ही संपूर्ण ब्रह्माण्डों के रूप में प्रकट हुए। तदनन्तर आप अद्वितीय परम ब्रह्म के अपने अनन्त रूप में वापस आ गये हैं।

तात्पर्य : वैदिक वाङ्मय में कहा गया है—*सर्वं खल्विदं ब्रह्म*—सारी विद्यमान वस्तुएँ भगवान् के अंश हैं। इस तरह प्रत्येक वस्तु भगवान् का अंश है। भगवान् कृष्ण की अहैतुकी कृपा से ब्रह्मा ने स्वयं अनुभव किया कि सारा जगत ईश्वर की शक्ति होने के कारण उनसे अभिन्न है।

अजानतां त्वत्पदवीमनात्म-
न्यात्मात्मना भासि वितत्य मायाम् ।
सृष्टाविवाहं जगतो विधान
इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अजानताम्—अज्ञान में रहनेवाले मनुष्यों के लिए; त्वत्-पदवीम्—आपके दिव्य पद का; अनात्मनि—भौतिक शक्ति में; आत्मा—स्वयं; आत्मना—स्वयं से; भासि—प्रकट होते हो; वितत्य—विस्तार करके; मायाम्—अपनी अचिन्त्य शक्ति को; सृष्टौ—सृष्टि के बारे में; इव—मानो; अहम्—मैं, ब्रह्मा; जगतः—ब्रह्माण्ड के; विधाने—पालन पोषण में; इव—मानो; त्वम् एषः—आप ही; अन्ते—संहार में; इव—मानो; त्रि-नेत्रः—शिवजी।

आपकी वास्तविक दिव्य स्थिति से अपरिचित व्यक्तियों के लिए आप इस जगत के अंश रूप में अपने को अपनी अचिन्त्य शक्ति के अंश द्वारा प्रकट करते हुए अवतरित होते हैं। इस तरह ब्रह्माण्ड के सृजन के लिए आप मेरे (ब्रह्मा) रूप में, इसके पालन के लिए अपने ही (विष्णु) रूप में तथा इसके संहार के लिए आप त्रिनेत्र (शिव) के रूप में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : यद्यपि निर्विशेष मायावादी दार्शनिक यह सोचते हैं कि देवतागण माया हैं किन्तु ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु को यहाँ पर भगवान् का अंश कहा गया है फलतः वे सत्य हैं। वे ब्रह्माण्ड के अद्वितीय शक्तिशाली नियंत्रक हैं। परम सत्य सर्वोच्च एवं सुन्दर पुरुष है इसलिए ईश्वर की सृष्टि में हमें साकारता का आभास होता है।

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि
तिर्यक्षु यादःस्वपि तेऽजनस्य ।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय
प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सुरेषु—देवताओं में से; ऋषिषु—ऋषियों में; ईश—हे प्रभु; तथा—और; एव—निस्सन्देह; नृषु—मनुष्यों में; अपि—तथा; तिर्यक्षु—पशुओं में; यादःसु—जलचरों में; अपि—भी; ते—आपका; अजनस्य—अजन्मा; जन्म—जन्म; असताम्—अभक्तों का; दुर्मद—मिथ्या अहंकार; निग्रहाय—दमन करने के लिए; प्रभो—हे स्रष्टा; विधातः—हे स्रष्टा; सत्—आज्ञाकारी भक्तों पर; अनुग्रहाय—अनुग्रह दिखाने के लिए; च—तथा।

हे प्रभु, हे परम स्रष्टा एवं स्वामी, यद्यपि आप अजन्मा हैं किन्तु श्रद्धाविहीन असुरों के मिथ्या गर्व को चूर करने तथा अपने सन्त-सदृश भक्तों पर दया दिखाने के लिए आप देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों, पशुओं तथा जलचरों तक के बीच में जन्म लेते हैं।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण देवताओं के बीच वामनदेव के रूप में, ऋषियों में परशुराम, मनुष्यों में

साक्षात् कृष्ण तथा रामचन्द्र के रूप में और पशुओं में वराह के रूप में अवतरित होते हैं। वे जलचरों के मध्य मत्स्य रूप में प्रकट होते हैं। भगवान् के मूल विस्तार असंख्य हैं क्योंकि वे इस ब्रह्माण्ड में नास्तिकों के मिथ्या दर्प को चूर करने तथा सन्त सदृश भक्तों पर दया दिखाने के लिए दयार्द्र होकर अवतरित होते हैं। दूसरे शब्दों में, चूँकि भगवान् शाश्वत रूप से विद्यमान हैं अतएव वे कभी प्रकट नहीं होते। उनका प्राकट्य सूर्य के समान है, जो आकाश में सदैव रहता है किन्तु वह हमें कभी कभी दृष्टिगोचर होता है।

को वेत्ति भूमन्भगवन्परात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन्क्रीडसि योगमायाम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; वेत्ति—जानता है; भूमन्—हे विराट; भगवन्—भगवान्; पर-आत्मन्—हे परमात्मा; योग-ईश्वर—हे योग के स्वामी; ऊतीः—लीलाएँ; भवतः—आपकी; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों में; क्व—कहाँ; वा—अथवा; कथम्—कैसे; वा—अथवा; कति—कितने; वा—अथवा; कदा—कब; इति—इस प्रकार; विस्तारयन्—विस्तार करते हुए; क्रीडसि—खेलते हो; योग-मायाम्—अपनी आध्यात्मिक शक्ति से।

हे भूमन, हे भगवन्, हे परमात्मा, हे योगेश्वर, आपकी लीलाएँ इन तीनों लोकों में निरन्तर चलती रहती हैं किन्तु इसका अनुमान कौन लगा सकता है कि आप कहाँ, कैसे और कब अपनी आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग कर रहे हैं और इन असंख्य लीलाओं को सम्पन्न कर रहे हैं? इस रहस्य को कोई नहीं समझ सकता कि आपकी आध्यात्मिक शक्ति किस प्रकार से कार्य करती है।

तात्पर्य : इसके पूर्व ब्रह्माजी कह चुके हैं कि भगवान् कृष्ण देवताओं, मनुष्यों, पशुओं, इत्यादि के बीच अवतरित होते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि अपने अवतारों से भगवान् निरादृत होते हैं। जैसाकि ब्रह्माजी यहाँ पर स्पष्ट करते हैं भगवान् के कार्यकलापों की दिव्य प्रकृति को कोई भी नहीं समझ सकता क्योंकि ये उनकी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा सम्पन्न होते हैं। वे भूमन् होते हुए भी परम सुन्दर व्यक्ति हैं अर्थात् तिसपर भी वे भगवान् ही हैं, जो अपने धाम में प्रेममयी लीलाएँ करते रहते हैं। इसके साथ ही वे परमात्मा हैं, जो सारे बद्धजीवों के कार्यकलापों की अनुमति देते हैं और उनके साक्षी हैं। *योगेश्वर* शब्द से भगवान् की विविध पहचान होती है। परम सत्य समस्त योगशक्तियों

के स्वामी हैं। यद्यपि वे एक हैं तथा सर्वोच्च होते हुए भी वे विविध प्रकारों से अपनी महानता तथा ऐश्वर्य प्रदर्शित करते हैं।

ऐसे उच्च आध्यात्मिक विषयों को तुच्छ भौतिक शरीर से स्वयं की पहचान करनेवाले मूर्ख व्यक्ति मुश्किल से समझ पायेंगे। ऐसे बद्धजीव, यथा नास्तिक विज्ञानी अपनी गर्वित बुद्धि को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। माया में दृढ विश्वास करने के कारण वे प्रकृति के गुणों में फँस जाते हैं और ईश-ज्ञान से दूर धकेल दिए जाते हैं।

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं
स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ।
त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते
मायात उद्यदपि यत्सदिवावभाति ॥ २२॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतः; इदम्—यह; जगत्—संसार; अशेषम्—सम्पूर्ण; असत्-स्वरूपम्—क्षणिक होने के अर्थ में जिसकी स्थिति असत् है; स्वप्न-आभम्—स्वप्न की तरह; अस्त-धिषणम्—जिसमें चेतनता आच्छादित हो जाती है; पुरु-दुःख-दुःखम्—बारम्बार कष्टों से पूर्ण; त्वयि—तुम में; एव—निस्सन्देह; नित्य—शाश्वत; सुख—सुखी; बोध—चेतना; तनौ—निजी स्वरूप में; अनन्ते—अनन्त; मायातः—माया के द्वारा; उद्यत्—से निकल कर; अपि—यद्यपि; यत्—जो; सत्—असली; इव—मानो; अवभाति—प्रकट होता है।

अतः यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जो कि स्वप्न के तुल्य है प्रकृति से असत् है फिर भी असली (सत्) प्रतीत होता है और इस तरह यह मनुष्य की चेतना को प्रच्छन्न कर लेता है और बारम्बार दुख का कारण बनता है। यह ब्रह्माण्ड सत्य इसलिए लगता है क्योंकि यह आप से उद्भूत माया की शक्ति द्वारा प्रकट किया जाता है जिनके असंख्य दिव्य रूप शाश्वत सुख तथा ज्ञान से पूर्ण हैं।

तात्पर्य : यह ब्रह्माण्ड भोग की वस्तु या बद्धजीवों के स्थायी निवास के रूप में निश्चय ही भ्रम है, स्वप्न के सिवा कुछ नहीं है। कोई यह दृष्टान्त प्रस्तुत कर सकता है कि मरुस्थल में अत्यधिक जल का दृष्टिगोचर होना स्वप्न के सिवाय कुछ नहीं है, यद्यपि असली जल कहीं और रहता है। इसी तरह घर, सुख तथा पदार्थ के भीतर वास्तविकता का दर्शन होना मूर्खों के स्वप्न के सिवाय कुछ नहीं जिसमें बारम्बार कष्ट प्रकट होते हैं।

किन्तु दूसरे अर्थ में ब्रह्माण्ड सत्य है। *वेदान्त-सूत्र* के भाष्य में श्रील मध्वाचार्य ने वैदिक श्रुति मंत्रों को उद्धृत करते हुए इसकी पुष्टि की है—*सत्यं ह्येवेदं विश्वमसृजत*—भगवान् द्वारा सृजित यह ब्रह्माण्ड

सत्य है। यद्यपि वेदों का यह सम्यक् प्रमाण ब्रह्माण्ड के सत्य होने की पुष्टि करता है फिर भी माया द्वारा हमारा ज्ञान अपहृत होने के कारण (*अस्त-धिषणम्* शब्दों से लक्षित), हम इस ब्रह्माण्ड को या इस ब्रह्माण्ड के सृजनकर्ता भगवान् को सही ढंग से जान नहीं सकते। भगवान् कृष्ण का अंश होने के कारण यह ब्रह्माण्ड सत्य है और भगवान् की सेवा में लगे रहने के निमित्त है। जो भगवद्धाम को अपना घर, भगवान् को प्रेम की वस्तु तथा इस ब्रह्माण्ड को भगवान् की सेवा की साज-सामग्री मानता है, वह शाश्वत सत्य के अन्तर्गत निवास करता है, चाहे वह भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों में कहीं भी क्यों न रहे।

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः
सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः
पूर्णाद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

एकः—एक; त्वम्—तुम; आत्मा—परमात्मा; पुरुषः—परम पुरुष; पुराणः—सबसे पुराना; सत्यः—परम सत्य; स्वयम्-ज्योतिः—स्वतः प्रकट; अनन्तः—अन्तहीन; आद्यः—अनादि; नित्यः—शाश्वत; अक्षरः—अनश्वर; अजस्र-सुखः—जिसके सुख में व्यवधान नहीं डाला जा सकता; निरञ्जनः—कल्मषरहित; पूर्ण—पूर्ण; अद्वयः—अद्वितीय; मुक्तः—स्वतंत्र, मुक्त; उपाधितः—सारी भौतिक उपाधियों से; अमृतः—मृत्युरहित, अमर।

आप ही परमात्मा, आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, परम सत्य, स्वयंप्रकट, अनन्त तथा अनादि हैं। आप शाश्वत तथा अच्युत, पूर्ण, अद्वितीय तथा समस्त भौतिक उपाधियों से मुक्त हैं। न तो आपके सुख को रोका जा सकता है, न ही आपका भौतिक कल्मष से कोई नाता है। आप विनाशरहित और अमृत हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने बतलाया है कि इस श्लोक के विविध शब्द इस बात के द्योतक हैं कि भगवान् कृष्ण का शरीर भौतिक शरीरों के गुणों से सर्वथा स्वतंत्र है। सारे भौतिक शरीरों में छह परिवर्तन होते हैं—जन्म, वृद्धि, प्रौढ़ता, प्रजनन, ह्रास तथा विनाश। किन्तु भगवान् कृष्ण जन्म नहीं लेते क्योंकि वे आदि सत्य हैं जैसाकि *आद्य* शब्द से पुष्ट होता है। हम विशेष वातावरण के अन्तर्गत जन्म लेते हैं और हमारे शरीर विभिन्न भौतिक तत्त्वों के मिश्रणों से बने होते हैं। चूँकि भगवान् कृष्ण किसी भौतिक वायुमण्डल या किसी तत्त्व की सृष्टि के बहुत पहले से विद्यमान हैं अतएव उनके दिव्य शरीर के लिए जन्म लेने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इसी तरह *पूर्ण* शब्द इस धारणा का निराकरण करता है कि कृष्ण इसीलिए बढ़ सके क्योंकि वे सदैव पूर्णता को प्राप्त रहते हैं। जब मनुष्य का शरीर प्रौढ़ हो जाता है, तो वह युवावस्था जैसा आनन्द-भोग नहीं कर सकता लेकिन *अजस्र सुख* शब्द जिनका अर्थ है ''निरंतर सुख को भोगने वाला,'' सूचित करते हैं कि भगवान् कृष्ण का शरीर कभी भी तथाकथित मध्यावस्था को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि वह सदैव दिव्य तरुणाई के आनन्द से पूर्ण रहता है। *अक्षर* शब्द कृष्ण के शरीर के वृद्ध होने या उसके ह्रास की संभावना का निराकरण करानेवाला है। इसी तरह *अमृत* शब्द मृत्यु की सम्भावना का निषेध करता है।

दूसरे शब्दों में, कृष्ण का दिव्य शरीर भौतिक शरीरों के रूपान्तरों (विकारों) से मुक्त है। किन्तु भगवान् असंख्य जगतों की सृष्टि करते हैं और असंख्य जीवों के रूप में अपना विस्तार करते हैं। तो भी भगवान् का यह प्रजनन पूर्णतया आध्यात्मिक है।

भगवान् ने *श्रुति* में कहा है—*पूर्वमेवाहमिहासम्*—प्रारम्भ में केवल मैं ही था। इसीलिए यहाँ पर भगवान् को *पुरुष:पुराण:* कहा गया है। आदि पुरुष अपना विस्तार परमात्मा के रूप में करता है और प्रत्येक जीव में प्रवेश कर जाता है। तो भी अन्तत: वह परम सत्य या कृष्ण रहता है जैसाकि *गोपाल तापनी उपनिषद्* में कहा गया है—*य: साक्षात् परब्रह्मेति गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहं वृन्दावनसुरभूरुहतलासीनम्*—परम सत्य साक्षात् गोविन्द हैं, जो सच्चिदानन्द विग्रह हैं और वृन्दावन के कल्पवृक्ष की छाया में बैठे हुए हैं। यह परम सत्य भौतिक अज्ञान से परे है और सामान्य आध्यात्मिक ज्ञान से भी परे है जैसाकि *गोपाल तापनी श्रुति* में ही कहा गया है—*विद्याविद्याभ्यां भिन्न: ।* इस तरह वैदिक साहित्य में भगवान् कृष्ण की श्रेष्ठता अनेक प्रकार से स्थापित की जा चुकी है और यहाँ पर ब्रह्माजी द्वारा उसी की पुष्टि हुई है।

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि
स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ।
गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा
ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

एवम्-विधम्—इस प्रकार वर्णित; **त्वाम्**—तुमको; **सकल**—सभी; **आत्मनाम्**—आत्माओं के; **अपि**—निस्सन्देह; **स्व-आत्मानम्**—आत्मा; **आत्म-आत्मतया**—परमात्मा के रूप में; **विचक्षते**—देखते हैं; **गुरु**—गुरु से; **अर्क**—जो सूर्य के समान है;

लब्ध—प्राप्त; उपनिषत्—गुह्य ज्ञान का; सु-चक्षुषा—पूर्ण आँख से; ये—जो; ते—वे; तरन्ति—पार करते हैं; इव—सरलता से; भव—संसार; अनृत—जो सच नहीं है; अम्बुधिम्—सागर को।

जिन्होंने सूर्य जैसे आध्यात्मिक गुरु से ज्ञान की स्पष्ट दृष्टि प्राप्त कर ली है वे आपको समस्त आत्माओं की आत्मा तथा हर एक के परमात्मा के रूप में देख सकते हैं। इस तरह आपको आदि पुरुषस्वरूप समझकर वे मायारूपी भव-सागर को पार कर सकते हैं।

तात्पर्य : जैसी कि *भगवद्गीता* (४.९) में पुष्टि की गई है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत: ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

"जो मेरे प्राकट्य तथा कर्मों की दिव्य प्रकृति को जानता है, वह शरीर-त्याग के बाद इस भौतिक जगत में पुन: जन्म नहीं लेता, अपितु हे अर्जुन! वह मेरे धाम को प्राप्त होता है।"

आत्मानमेवात्मतयाविजानतां
तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ।
ज्ञानेन भूयोऽपि च तत्प्रलीयते
रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

आत्मानम्—अपने को; एव—निस्सन्देह; आत्मतया—परमात्मा के रूप में; अविजानताम्—न जाननेवालों के लिए; तेन—उससे; एव—अकेले; जातम्—उत्पन्न होता है; निखिलम्—सम्पूर्ण; प्रपञ्चितम्—भौतिक जगत; ज्ञानेन—ज्ञान से; भूय: अपि—एक बार पुन:; च—तथा; तत्—वह भौतिक जगत; प्रलीयते—लुप्त हो जाता है; रज्ज्वाम्—रस्सी के भीतर; अहे:—सर्प का; भोग—शरीर का; भव-अभवौ—प्राकट्य तथा विलोप; यथा—जिस तरह।

जिस व्यक्ति को रस्सी से सर्प का भ्रम हो जाता है, वह भयभीत हो उठता है किन्तु यह अनुभव करने पर कि तथाकथित सर्प तो था ही नहीं, वह अपना भय त्याग देता है। इसी प्रकार जो लोग आपको समस्त आत्माओं (जीवों) के परमात्मा के रूप में नहीं पहचान पाते उनके लिए विस्तृत मायामय संसार उत्पन्न होता है किन्तु आपका ज्ञान होने पर वह तुरन्त दूर हो जाता है।

तात्पर्य : जो लोग माया में निमग्न रहते हैं, वे भौतिक जगत को उसी तरह असीम देखते हैं जिस तरह जल में डूबा हुआ व्यक्ति अपने चारों ओर जल ही जल देखता है। उदाहरणार्थ, भौतिक विज्ञानी तथा दार्शनिकगण भव-सागर में निमग्न होने के कारण यह कल्पना करते हैं कि भौतिक प्रकृति का सभी दिशाओं में अनन्त विस्तार है। वस्तुत: भौतिक जगत अज्ञान का सीमित सागर है, जिसमें भगवान् के आदेश से मूर्ख जीव यथा भौतिक विज्ञानी डुबो दिये गये हैं।

जिस जगत में सारी वस्तुएँ उत्पन्न होती और मरती हैं उसमें फँस जाना सचमुच भयावह अनुभव है। स्वाभाविक है कि अंधकारपूर्ण स्थान में फँसा व्यक्ति डर जाता है । चूँकि भौतिक जीवन अज्ञान के अंधकार से सदैव आवृत रहता है इसलिए प्रत्येक बद्धजीव भयभीत रहता है। भौतिक प्रकृति चरमसत्य नहीं है, अत: पदार्थ के विश्लेषण से अन्तिम प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल सकता। यह अंधकारपूर्ण सर्प-जैसा जीवन जो कि भौतिक जीवन कहलाता है कृष्णभावनामृत का प्रखर प्रकाश पाते ही आँखें खुलने पर तुरन्त विलुप्त हो जाता है।

अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ
द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ।
अजस्रचित्यात्मनि केवले परे
विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अज्ञान—अज्ञान से प्रकट होनेवाली; संज्ञौ—उपाधियाँ; भव-बन्ध—संसार का बन्धन; मोक्षौ—तथा मुक्ति; द्वौ—दो; नाम—निस्सन्देह; न—नहीं; अन्यौ—पृथक्; स्तः—हैं; ऋत—सत्य; ज्ञ-भावात्—ज्ञान से; अजस्र-चिति—अबाध चेतना वाला; आत्मनि—आत्मा; केवले—पदार्थ से भिन्न; परे—शुद्ध; विचार्यमाणे—उचित ढंग से पहचानने पर; तरणौ—सूर्य के भीतर; इव—जिस तरह; अहनी—दिन-रात।

भव-बन्धन तथा मोक्ष दोनों ही अज्ञान की अभिव्यक्तियाँ हैं। सच्चे ज्ञान की सीमा के बाहर होने के कारण, इन दोनों का अस्तित्व मिट जाता है जब मनुष्य ठीक से यह समझ लेता है कि शुद्ध आत्मा, पदार्थ से भिन्न है और सदैव पूर्णतया चेतन है। उस समय बन्धन तथा मोक्ष का कोई महत्व नहीं रहता जिस तरह सूर्य के परिप्रेक्ष्य में दिन तथा रात का कोई महत्व नहीं होता।

तात्पर्य : भव-बन्धन तो भ्रम (मोह) है क्योंकि जीवात्मा का भौतिक जगत से कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं होता । मिथ्या अहंकारवश बद्धजीव अपनी पहचान पदार्थ से करने लगता है। इसलिए तथाकथित मोक्ष एक तरह से भ्रम का परित्याग होता है न कि वास्तविक बन्धन से मुक्ति। तो भी यदि हम भौतिक भ्रम के दुख को वास्तविक मानें और इस तरह मोक्ष को दुख से सार्थक मुक्ति मान लें तो भी वास्तविक आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति की तुलना में भौतिक जगत की अनुपस्थिति नगण्य है। अन्ततोगत्वा कृष्णभावनामृत या शुद्ध भगवत्प्रेम ही महत्वपूर्ण है, सार्थक है और प्रत्येक जीवात्मा का स्थायी पद है।

चूँकि रात्रि का अंधकार सूर्य की अनुपस्थिति के कारण होता है, अत: सूर्य के भीतर रात्रि का

अनुभव नहीं हो सकता, न ही दिन और रात पृथक्-पृथक् लग सकते हैं। इसी तरह शुद्ध जीव के भीतर भौतिक अंधकार नहीं होता अत: ऐसे अंधकार से मुक्ति का अनुभव भी नहीं होता। जब बद्धजीव शुद्ध चेतना के इस स्तर को प्राप्त होता है, तो वह भगवद्धाम में भगवान् की संगति करने का पात्र बन जाता है।

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ।
आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताज्ञता ॥ २७॥

शब्दार्थ

त्वाम्—तुमको; आत्मानम्—असली आत्मा; परम्—अन्य कुछ; मत्वा—मानकर; परम्—अन्य कुछ; आत्मानम्—आपको; एव—निस्सन्देह; च—भी; आत्मा—परमात्मा; पुनः—फिर; बहिः—बाहर; मृग्यः—खोजा जाना चाहिए; अहो—ओह; अज्ञ—अज्ञानी; जनता—लोगों की; अज्ञता—अज्ञानता।

जरा उन अज्ञानी पुरुषों की मूर्खता तो देखिये जो आपको मोह की भिन्न अभिव्यक्ति मानते हैं और अपने (आत्मा) को, जो कि वास्तव में आप हैं, अन्य कुछ—भौतिक शरीर—मानते हैं। ऐसे मूर्खजन इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि परमात्मा की खोज परम पुरुष आप से बाहर अन्यत्र की जानी चाहिए।

तात्पर्य : ब्रह्मा को बद्धजीवों की निपट मूर्खता पर आश्चर्य हो रहा है, जो कृष्ण के परम आध्यात्मिक शरीर को भौतिक मानते हैं। ऐसे लोग भगवान् के आध्यात्मिक स्वरूप से अपरिचित रहने के कारण अपने शरीरों को ही स्व मान बैठते हैं अतएव वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आध्यात्मिक सचाई को परम पुरुष कृष्ण से बाहर खोजना चाहिए। कभी कभी ऐसे मूर्खजन कृष्ण को उन अनेक जीवों में से एक मान बैठते हैं, जो मिलकर निर्विशेष जीव की सृष्टि करते हैं। दुर्भाग्यवश ऐसे ज्ञानी न तो भगवान् के मुख से सुनना चाहते हैं न ही ब्रह्मा सरीखे भगवान् के प्रामाणिक प्रतिनिधियों से। चूँकि वे मनमाने ढंग से परम पुरुष की कल्पना करते हैं अतएव अन्ततः भ्रम एवं अज्ञान ही उनके हाथ लगता है, जिसे वे "जीवन का रहस्य" बताते हैं।

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव
ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः ।
असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण
सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः ॥ २८॥

शब्दार्थ

अन्तः-भवे—शरीर के भीतर; अनन्त—हे अनन्त प्रभु; भवन्तम्—आप; एव—निस्सन्देह; हि—निश्चय ही; अतत्—आपसे पृथक् हर वस्तु; त्यजन्तः—त्याग करते हुए; मृगयन्ति—खोज करते हैं; सन्तः—सन्त भक्तगण; असन्तम्—अवास्तविक असत्; अपि—भी; अन्ति—पास ही उपस्थित; अहिम्—(भ्रम के) सर्प को; अन्तरेण—के बिना; सन्तम्—असली; गुणम्—रस्सी को; तम्—उस; किम् उ—क्या; यन्ति—जानते हैं; सन्तः—आध्यात्मिक पद को प्राप्त व्यक्ति।

हे अनन्त भगवान्, सन्तजन आपसे भिन्न हर वस्तु का तिरस्कार करते हुए अपने ही शरीर के भीतर आपको खोज निकालते हैं। निस्सन्देह, विभेद करनेवाले व्यक्ति भला किस तरह अपने समक्ष पड़ी हुई रस्सी की असली प्रकृति को जान सकते हैं जब तक वे इस भ्रम का निराकरण नहीं कर लेते कि यह सर्प है?

तात्पर्य : कोई तर्क कर सकता है कि मनुष्य को चाहिए कि आत्म-साक्षात्कार का अनुशीलन करने के साथ ही साथ वह भौतिक शरीर के लिए इन्द्रियतृप्ति में लगा रहे। इसका निराकरण यहाँ पर रस्सी को सर्प समझने के दृष्टांत द्वारा किया गया है। भ्रमवश रस्सी को सर्प समझनेवाला व्यक्ति भयभीत हो उठता है और तथाकथित सर्प के विषय में सोचता है। किन्तु यह पता चल जाने पर कि तथाकथित सर्प वास्तव में रस्सी है उसे भिन्न भाव—राहत—का अनुभव होता है और तब वह रस्सी के प्रति उदासीन हो जाता है। इसी तरह चूँकि हम भौतिक शरीर को भ्रमवश 'स्व' मान लेते हैं अतएव शरीर को ले कर अनेक भावों की हमें अनुभूति होती है। किन्तु यह पता चलने पर कि यह शरीर भौतिक रसायनों की पोटली मात्र है हम ध्यानपूर्वक सोचते हैं कि यह भ्रम किस तरह उत्पन्न हुआ और तब शरीर के प्रति हमारी रुचि नहीं रह जाती। यह जान लेने पर कि हम शरीर के भीतर शाश्वत आत्मा हैं यह स्वाभाविक है कि हम अपना ध्यान असली आत्मा पर एकाग्र करते हैं।

जो लोग सन्त स्वभाव के तथा बुद्धिमान हैं, वे सदैव आध्यात्मिक ज्ञान अर्थात् कृष्णभावनामृत का अनुशीलन करते हैं क्योंकि वे शरीर को 'स्व' मानने की मूर्खतापूर्ण गलत पहचान को त्याग चुके होते हैं। ऐसे कृष्णभावनाभावित व्यक्तियों को शरीर के भीतर परमात्मा रूप में वास करनेवाले भगवान् की अनुभूति होती है, जो प्रत्येक जीव का साक्षी एवं मार्गदर्शक है। परमात्मा तथा आत्मा की अनुभूति इतनी सुखद तथा सन्तोषप्रद होती है कि सिद्ध व्यक्ति उन सारी बातों को स्वयमेव छोड़ देता है, जो उसकी आध्यात्मिक प्रगति से सम्बन्ध नहीं रखती।

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-
प्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

अथ—अतः; अपि—निस्सन्देह; ते—आपका; देव—हे प्रभु; पद-अम्बुज-द्वय—दो चरणकमलों को; प्रसाद—दया का; लेश—रंचमात्र; अनुगृहीतः—दया दिखाया गया; एव—निश्चय ही; हि—निस्सन्देह; जानाति—जानता है; तत्त्वम्—सत्य; भगवत्—भगवान् की; महिम्नः—महानता का; न—कभी नहीं; च—तथा; अन्यः—दूसरा; एकः—एक; अपि—यद्यपि; चिरम्—दीर्घकाल तक; विचिन्वन्—विचार करते हुए।

हे प्रभु, यदि किसी पर आपके चरणकमलों की लेशमात्र भी कृपा हो जाती है, तो वह आपकी महानता को समझ सकता है। किन्तु जो लोग भगवान् को समझने के लिए चिन्तन करते हैं, वे अनेक वर्षों तक वेदों का अध्ययन करते रहने पर भी आपको जान नहीं पाते।

तात्पर्य : उपर्युक्त पाठ श्रील प्रभुपाद कृत *चैतन्य-चरितामृत* (मध्य लीला ६.८४) से उद्‌धृत किया गया है।

भगवान् कृष्ण उन बद्धजीवों पर जो भगवान् की भ्रामक शक्ति माया से व्यर्थ ही संघर्ष करते रहते हैं अपनी कृपा प्रदान करने के लिए अत्यधिक उत्सुक रहते हैं। बद्धजीव सुख के लिए इन्द्रियतृप्ति के द्वारा और ज्ञान के लिए मानसिक चिन्तन के द्वारा संघर्ष करता है। इन दोनों विधियों से उसे दुखमय तथा निराशाजनक स्थिति का सामना करना पड़ता है। किन्तु यदि बद्धजीव भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है और इस तरह उनकी रंचमात्र भी अहैतुकी कृपा प्राप्त कर लेता है, तो सारी स्थिति बदल जाती है और जीव कृष्णभावनामृत में आनन्द तथा ज्ञान का असली जीवन प्रारम्भ कर सकता है।

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तत्—अतएव; अस्तु—ऐसा ही हो; मे—मेरे; नाथ—हे स्वामी; सः—वह; भूरि-भागः—अहोभाग्य; भवे—जन्म में; अत्र—यह; वा—अथवा; अन्यत्र—किसी अन्य जन्म में; तु—निस्सन्देह; वा—अथवा; तिरश्चाम्—पशुओं में; येन—जिससे; अहम्—मैं; एकः—एक; अपि—भी; भवत्—अथवा आपके; जनानाम्—भक्तों में से; भूत्वा—बनकर; निषेवे—आपकी सेवा में लग सकूँ; तव—तुम्हारे; पाद-पल्लवम्—चरणकमलों में।

अतः हे प्रभु, मेरी प्रार्थना है कि मैं इतना भाग्यशाली बन सकूँ कि इसी जीवन में ब्रह्मा के

रूप में या दूसरे जीवन में जहाँ कहीं भी जन्म लूँ, मेरी गणना आपके भक्तों में हो। मैं प्रार्थना करता हूँ कि चाहे पशु योनि में ही सही, मैं जहाँ कहीं भी होऊँ, आपके चरणकमलों की भक्ति में लग सकूँ।

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्य:
स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना
यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वरा: ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

अहो—**ओह**; अति-धन्या:—**परम भाग्यशाली**; व्रज—**वृन्दावन की**; गो—**गौवें**; रमण्य:—**तथा गोपियाँ**; स्तन्य—**स्तन का दूध**; अमृतम्—**अमृत के तुल्य**; पीतम्—**पिया गया**; अतीव—**पूर्णतया**; ते—**आपके द्वारा**; मुदा—**सन्तोष के साथ**; यासाम्—**जिसका**; विभो—**हे सर्वशक्तिमान**; वत्सतर-आत्मज-आत्मना—**बछड़ों तथा ग्वालिनों के पुत्रों के रूप में**; यत्—**जिसके**; तृप्तये—**सन्तोष के लिए**; अद्य अपि—**आज तक**; न—**नहीं**; च—**तथा**; अलम्—**पर्याप्त**; अध्वरा:—**वैदिक यज्ञ**।

हे सर्वशक्तिमान भगवान्, वृन्दावन की गौवें तथा स्त्रियाँ कितनी भाग्यशालिनी हैं जिनके बछड़े तथा पुत्र बनकर आपने परम प्रसन्नतापूर्वक एवं संतोषपूर्वक उनके स्तनपान का अमृत पिया है! अनन्तकाल से अब तक सम्पन्न किये गये सारे वैदिक यज्ञों से भी आपको उतना सन्तोष नहीं हुआ होगा।

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

अहो—**कितना बड़ा**; भाग्यम्—**भाग्य**; अहो—**कितना महान**; भाग्यम्—**भाग्य**; नन्द—**महाराज नन्द का**; गोप—**अन्य ग्वालों का**; व्रज-ओकसाम्—**व्रजभूमि के निवासियों का**; यत्—**जिनके**; मित्रम्—**मित्र**; परम-आनन्दम्—**परम आनन्द**; पूर्णम्—**पूर्ण**; ब्रह्म—**परम सत्य**; सनातनम्—**सनातन, नित्य**।

नन्द महाराज, सारे ग्वाले तथा व्रजभूमि के अन्य सारे निवासी कितने भाग्यशाली हैं! उनके सौभाग्य की कोई सीमा नहीं है क्योंकि दिव्य आनन्द के स्रोत परम सत्य अर्थात् सनातन परब्रह्म उनके मित्र बन चुके हैं।

तात्पर्य : यह अनुवाद प्रभुपाद कृत *श्रीचैतन्य-चरितामृत* (मध्य लीला ६.१४९) से उद्धृत है।

एषां तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्ता-
मेकादशैव हि वयं बत भूरिभागा: ।

एतद्धृषीकचषकैरसकृत्पिबामः
शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते ॥ ३३॥

शब्दार्थ

एषाम्—इनके (वृन्दावन वासियों का); तु—तो; भाग्य—सौभाग्य की; महिमा—महानता; अच्युत—हे अच्युत; तावत्—इतनी; आस्ताम्—हो; एकादश—ग्यारह; एव हि—निस्सन्देह; वयम्—हम; बत—ओह; भूरि-भागाः—परम भाग्यशाली हैं; एतत्—इन भक्तों की; हृषीक—इन्द्रियों से; चषकैः—(जो) प्यालों (की तरह हैं); असकृत्—बारम्बार; पिबामः—हम पी रहे हैं; शर्व-आदयः—शिवजी तथा अन्य प्रमुख देवगण; अङ्घ्रि-उदज—चरणकमल; मधु—शहद; अमृत-आसवम्—जो अमृत तुल्य मादक पेय है; ते—आपका।.

वृन्दावन के इन वासियों की सौभाग्य सीमा का अनुमान नहीं लगाया जा सकता; फिर भी विविध इन्द्रियों के ग्यारह अधिष्ठाता देवता हम, जिनमें शिवजी प्रमुख हैं, परम भाग्यशाली हैं क्योंकि वृन्दावन के इन भक्तों की इन्द्रियाँ वे प्याले हैं जिनसे हम आपके चरणकमलों का अमृत तुल्य मादक मधुपेय बारम्बार पीते हैं।

तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम् ।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तत्—वह; भूरि-भाग्यम्—महानतम सौभाग्य; इह—यहाँ; जन्म—जन्म; किम् अपि—कोई भी; अटव्याम्—(वृन्दावन के) जंगल में; यत्—जो; गोकुले—गोकुल में; अपि—भी; कतम—किसी (भक्त) के; अङ्घ्रि—चरणों की; रजः—धूल से; अभिषेकम्—स्नान; यत्—जिसका; जीवितम्—जीवन; तु—निस्सन्देह; निखिलम्—पूरा; भगवान्—भगवान्; मुकुन्दः—मुकुन्द; तु—लेकिन; अद्य अपि—अब भी; यत्—जिसके; पाद-रजः—चरणों की धूल; श्रुति—वेदों द्वारा; मृग्यम्—खोजी जानेवाली; एव—निश्चय ही।.

मेरा संभावित परम सौभाग्य यह होगा कि मैं गोकुल के इस वन में जन्म ले सकूँ और इसके निवासियों में से किसी के भी चरणकमलों से गिरी हुई धूल से अपने सिर का अभिषेक करूँ। उनका सारा जीवनसार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मुकुन्द हैं जिनके चरणकमलों की धूल की खोज आज भी वैदिक मंत्रों में की जा रही है।

तात्पर्य : यह श्लोक इंगित करता है कि ब्रह्माजी वृन्दावन में घास का एक क्षुद्र तिनका भी बनकर जन्म लेने की आकांक्षा करते हैं जिससे भगवद्धाम के पवित्र निवासी उनके सिर के ऊपर से होकर गुजरें और अपने चरणों की धूल से आशीर्वाद दें। यथार्थवादी होने के नाते ब्रह्माजी सीधे भगवान् कृष्ण के चरणों की धूल प्राप्त करना नहीं चाहते; प्रत्युत वे भगवान् के भक्तों की कृपा की कामना करते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि ब्रह्माजी भगवान् के घर के आँगन का पत्थर तक बनकर

जन्म लेने की इच्छा करते हैं। चूँकि ब्रह्माजी अखिल ब्रह्माण्ड के स्रष्टा हैं अतएव हम अनुमान लगा सकते हैं कि वृन्दावनवासियों की यशस्वी स्थिति क्या थी।

भगवद्भक्त अनन्य भक्ति तथा प्रेम के द्वारा अपना उच्च पद प्राप्त करते हैं। ऐसा आध्यात्मिक ऐश्वर्य निजी प्रगति की गर्वित भौतिक विधियों से प्राप्त नहीं किया जा सकता। ''भगवान् श्रीकृष्ण'' में श्रील प्रभुपाद ने ब्रह्मा के मन की बात का उद्घाटन इस प्रकार किया है, ''किन्तु यदि मैं इतना भाग्यशाली नहीं हूँ कि वृन्दावन के जंगल में जन्म ले सकूँ तो वृन्दावन के आसपास के क्षेत्र में जन्म लेने की मुझे अनुमति दी जाय जिससे जब भक्तगण बाहर जायें तो वे मेरे ऊपर से होकर गुजरें। मेरे लिए यही परम सौभाग्य होगा। मैं तो ऐसे जन्म की आकांक्षा करता हूँ जिसमें भक्तों की चरण-धूल मुझे स्पर्श करती रहे।''

एषां घोषनिवासिनामुत भवान्किं देव रातेति नश्
चेतो विश्वफलात्फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति ।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

एषाम्—इन; घोष-निवासिनाम्—ग्वाल जाति के निवासियों में; उत—निस्सन्देह; भवान्—आप; किम्—क्या; देव—हे भगवन्; राता—प्रदान करेंगे; इति—ऐसा सोचते हुए; नः—हमारा; चेतः—मन; विश्व-फलात्—समस्त वरों के परम स्रोत की अपेक्षा; फलम्—पुरस्कार; त्वत्—आपकी अपेक्षा; अपरम्—दूसरा; कुत्र अपि—कहीं भी; अयत्—विचार करने पर; मुह्यति—मोहित हो जाता है; सत्-वेषात्—भक्त के वेश में; इव—निस्सन्देह; पूतना—पूतना राक्षसी; अपि—भी; स-कुला—अपने परिवारवालों बकासुर तथा अघासुर के साथ; त्वाम्—आपको; एव—निश्चय ही; देव—हे प्रभु; आपिता—प्राप्त कराई गई; यत्—जिसके; धाम—घर; अर्थ—धन; सुहृत्—मित्रगण; प्रिय—प्रिय सम्बन्धीजन; आत्म—शरीर; तनय—सन्तानें; प्राण—प्राण वायु; आशयाः—तथा मन; त्वत्-कृते—आपको समर्पित।

मेरा मन मोहग्रस्त हो जाता है जब मैं यह सोचने का प्रयास करता हूँ कि कहीं भी आपके अतिरिक्त अन्य कोई पुरस्कार (फल) क्या हो सकता है? आप समस्त वरदानों के साकार रूप हैं, जिन्हें आप वृन्दावन के ग्वाल जाति के निवासियों को प्रदान करते हैं। आपने पहले ही उस पूतना द्वारा भक्त का वेश बनाने के बदले में उसे तथा उसके परिवारवालों को अपने आप को दे डाला है। अतएव वृन्दावन के इन भक्तों को देने के लिए आपके पास बचा ही क्या है जिनके घर, धन, मित्रगण, प्रिय परिजन, शरीर, सन्तानें तथा प्राण और हृदय—सभी केवल आपको समर्पित हो चुके हैं?

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम् ।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तावत्—तब तक; राग-आदयः—भौतिक आसक्ति इत्यादि; स्तेनाः—चोर; तावत्—तब तक; कारा-गृहम्—जेल, बन्दीगृह; गृहम्—किसी का घर; तावत्—तब तक; मोहः—पारिवारिक स्नेह का मोह; अङ्घ्रि—उनके चरणों में; निगडः—जंजीरें, बेड़ियाँ; यावत्—जब तक; कृष्ण—हे कृष्ण; न—नहीं हो जाते; ते—आपके (भक्त); जनाः—लोग।

हे भगवान् कृष्ण, जब तक लोग आपके भक्त नहीं बन जाते तब तक उनकी भौतिक आसक्तियाँ तथा इच्छाएँ चोर बनी रहती हैं; उनके घर बन्दीगृह बने रहते हैं और अपने परिजनों के प्रति उनकी स्नेहपूर्ण भावनाएँ पाँवों की बेड़ियाँ बनी रहती हैं।

तात्पर्य : ऊपरी तौर से, भगवान् कृष्ण के धाम वृन्दावन के निवासी सीधेसादे गृहस्थ हैं, जो गौवों को पालने, भोजन बनाने, बच्चों का पालनपोषण करने तथा धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करने जैसे सामान्य कामकाजों में लगे रहते हैं। किन्तु ये सारे कार्यकलाप भगवान् कृष्ण की प्रेमाभक्ति में सम्पन्न होते रहते हैं। वृन्दावन के निवासी अपने सारे कार्यकलाप शुद्ध कृष्णभावनामृत में करते हैं अतएव मुक्त जीवन के सर्वोच्च पद पर स्थित रहते हैं। अन्यथा कृष्णभावनामृत से रहित ये ही कार्यकलाप भवबन्धन बन जाते हैं।

अतएव न तो वृन्दावन वासियों के उच्च पद के बारे में किसी प्रकार की भ्रान्ति होनी चाहिए, न ही किसी को केवल सामान्य गृहस्थी के कामकाज को उत्साहपूर्वक किन्तु कृष्णभावना-रहित सम्पन्न करके अपने आपको बड़ा भारी धार्मिक मानना चाहिए। हम अपने परिवार तथा समाज पर रागात्मक आसक्ति केन्द्रित करके कृष्णभावनामृत के प्रगतिशील पथ से विपथ हो जाते हैं। इसके विपरीत, यदि हम अपने परिवार को भगवान् की प्रेमाभक्ति में लगाते हैं, तो अपने परिवार के पालनपोषण के हमारे सारे प्रयास हमारे प्रगतिशील आध्यात्मिक कर्तव्यों के अंगभूत बन जाते हैं।

निष्कर्ष यह निकला कि वृन्दावनवासियों की अद्वितीय स्थिति का अध्ययन करके हम यह देख सकते हैं कि उनके जीवन का आवश्यक गुण शुद्ध कृष्णभावनामृत हैं जिसमें किसी भी प्रकार की भौतिक इच्छा या मनोरथ के बिना प्रेमाभक्ति संपन्न की जाती है। आदि भगवान् की ऐसी प्रेमाभक्ति से श्री वृन्दावन धाम में भगवद्धाम का वातावरण तुरन्त उत्पन्न हो जाता है।

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले ।
प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ॥ ३७॥

शब्दार्थ

प्रपञ्चम्—भौतिक; निष्प्रपञ्चः—पूर्णतया आध्यात्मिक; अपि—यद्यपि; विडम्बयसि—आप अनुकरण करते हैं; भू-तले—पृथ्वी पर; प्रपन्न—शरणागत; जनता—लोगों का; आनन्द-सन्दोहम्—नाना प्रकार के आनन्द; प्रथितुम्—विस्तार करने के लिए; प्रभो—हे स्वामी।

हे स्वामी, यद्यपि भौतिक जगत से आपको कुछ भी लेना-देना नहीं रहता किन्तु आप इस धरा पर आकर अपने शरणागत भक्तों के लिए आनन्द-भाव की विविधताओं को विस्तृत करने के लिए भौतिक जीवन का अनुकरण करते हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इंगित करते हैं कि जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में दीपक का प्रकाश उतना उदीप्त नहीं जान पड़ता जितना कि छाया में जान पड़ता है, अथवा एक हीरा चाँदी की थाली में उतना नहीं चमकता जितना कि नीले काँच की तस्तरी में, उसी तरह गोविन्द रूप भगवान् की लीलाएँ वैकुण्ठ धाम में उतनी आश्चर्यजनक नहीं लगतीं जितनी कि माया के भौतिक परिदृश्य में। भगवान् कृष्ण इस धरा में आकर अपने भक्तों के साथ आज्ञाकारी पुत्र, सखा, पति, पिता, मित्र इत्यादि के रूप में व्यवहार करते हैं और संसार के अंधकार में ये तेजस्वी उन्मुक्त लीलाएँ भगवान् के शरणागत भक्तों को असीम आनन्द प्रदान करती हैं।

श्रील प्रभुपाद ने "भगवान् श्रीकृष्ण" में ब्रह्मा के कथन को इस रूप में उद्धृत किया है, "मैं यह भी समझ सकता हूँ कि छोटे से ग्वालबाल के रूप में आपका प्राकट्य कोई भौतिक कृत्य नहीं है। आप उनके स्नेह से इतने दबे हुए हैं कि आप अपनी दिव्य उपस्थिति से उन्हें अधिकाधिक प्रेमाभक्ति करने के लिए प्रोत्साहित करने यहाँ आते हैं।"

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ ३८॥

शब्दार्थ

जानन्तः—ऐसे व्यक्ति जो सोचते हैं कि वे आपकी असीम शक्ति से अवगत हैं; एव—निश्चय ही; जानन्तु—ऐसा सोचा करें; किम्—क्या लाभ; बहु-उक्त्या—अनेक वचनों से; न—नहीं; मे—मेरे; प्रभो—हे स्वामी; मनसः—मन का; वपुषः—शरीर का; वाचः—वाणी का; वैभवम्—ऐश्वर्य; तव—आपकी; गो-चरः—परिधि में।

ऐसे लोग भी हैं, जो यह कहते हैं कि वे कृष्ण के विषय में सब कुछ जानते हैं—वे ऐसा सोचा करें। किन्तु जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं इस विषय में कुछ अधिक नहीं कहना चाहता। हे

प्रभु, मैं तो इतना ही कहूँगा कि जहाँ तक आपके ऐश्वर्यों की बात है वे मेरे मन, शरीर तथा शब्दों की पहुँच से बाहर हैं।

तात्पर्य : उक्त कथन श्रील प्रभुपाद कृत *चैतन्य-चरितामृत* (मध्य-लीला २१.२७) से उद्धृत है।

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ।
त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

अनुजानीहि—**कृपया जाने दें**; माम्—**मुझको**; कृष्ण—**हे भगवान् कृष्ण**; सर्वम्—**हर वस्तु**; त्वम्—**तुम (आप)**; वेत्सि—**जानते हो**; सर्व-दृक्—**सर्वदर्शी**; त्वम्—**तुम**; एव—**अकेले**; जगताम्—**सारे ब्रह्माण्डों के**; नाथः—**स्वामी**; जगत्—**ब्रह्माण्ड**; एतत्—**यह**; तव—**आपको**; अर्पितम्—**अर्पित है**।

हे कृष्ण, अब मैं आपसे विदा लेने की अनुमति के लिए विनीत भाव से अनुरोध करता हूँ। वास्तव में आप सारी वस्तुओं के ज्ञाता तथा द्रष्टा हैं। आप समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं फिर भी मैं आपको यह एक ब्रह्माण्ड अर्पित करता हूँ।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने ''भगवान् श्रीकृष्ण'' में ब्रह्मा के वचनों को इस प्रकार उद्धृत किया है, ''हे प्रभु, यद्यपि समस्त सृष्टि के परम स्वामी आप हैं किन्तु कभी कभी मैं मिथ्या चिन्तन करता हूँ कि इस ब्रह्माण्ड का स्वामी मैं हूँ। भले ही मैं इस ब्रह्माण्ड का स्वामी होऊँ किन्तु ब्रह्माण्ड असंख्य हैं और उनके अधिष्ठाता ब्रह्मा भी असंख्य हैं। किन्तु उन सबके वास्तविक स्वामी आप हैं। प्रत्येक हृदय में परमात्मा के रूप में आप हर बात के ज्ञाता हैं। अत: आप मुझे अपना शरणागत सेवक स्वीकार करें। आशा है कि आप मुझे अपने मित्रों तथा बछड़ों के साथ लीलाओं में हस्तक्षेप करने के लिए क्षमा कर देंगे। अब यदि आप अनुमति दें तो मैं तुरन्त विदा लूँ जिससे आप मेरी अनुपस्थिति में अपने मित्रों तथा बछड़ों के साथ आनन्दमग्न हो सकें।''

यहाँ *सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक्* शब्द अत्यन्त सार्थक हैं। कृष्ण सब कुछ जानते हैं और हर वस्तु को देखते हैं अतएव भगवान् के साथ प्रेममय सम्पर्क बनाये रखने के लिए ब्रह्मा का वृन्दावन में रहना आवश्यक नहीं है। वस्तुत: ब्रह्माण्ड के स्रष्टा के रूप में ब्रह्माजी वृन्दावन के सीधेसादे आनन्दमय वातावरण में खप नहीं रहे थे जहाँ भगवान् कृष्ण गौवें चराने, आमोद-प्रमोद करने इत्यादि में अपना परम वैभव प्रदर्शित कर रहे थे।

यह देखने के बाद कि वृन्दावनवासियों में कृष्ण के लिए कितना गहन प्रेम है, ब्रह्मा ने अपने को

वहाँ रहने के अयोग्य समझा। वे भगवान् की संगति छोड़ना तो नहीं चाहते थे किन्तु उन्होंने ब्रह्मलोक में जाकर भक्ति करना श्रेयस्कर समझा। भगवान् को मोहित करने के अपने मूर्खतापूर्ण प्रयास के कारण दुखी तथा चिन्तित ब्रह्माजी ने भगवान् की उपस्थिति का आनन्द-लाभ न उठाकर अपनी आध्यात्मिक प्रेमाभक्ति में फिर से लग जाने को श्रेयस्कर समझा।

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन्
क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ।
उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रु-
गाकल्पमार्कमर्हन्भगवन्नमस्ते ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-कृष्ण—हे कृष्ण; वृष्णि-कुल—यदु वंश के; पुष्कर—कमल; जोष—आनन्द; दायिन्—देनेवाले; क्ष्मा—पृथ्वी के; निर्जर—देवतागण; द्विज—ब्राह्मण; पशु—तथा जानवर; उदधि—सागर की; वृद्धि—वृद्धि; कारिन्—कारणस्वरूप; उद्धर्म—नास्तिक सिद्धान्तों के; शार्वर—अंधकार को; हर—भगाने वाले; क्षिति—पृथ्वी पर; राक्षस—असुरों का; ध्रुक्—विरोधी; आ-कल्पम्—ब्रह्माण्ड के अन्त तक; आ-अर्कम्—जब तक सूर्य चमकता है; अर्हन्—हे परम पूज्य विग्रह; भगवन्—हे भगवन्; नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; ते—आपको।

हे कृष्ण, आप कमल तुल्य वृष्णि कुल को सुख प्रदान करनेवाले हैं और पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण तथा गौवों से युक्त महासागर को बढ़ाने वाले हैं। आप अधर्म के गहन अंधकार को दूर करते हैं और इस पृथ्वी में प्रकट हुए असुरों का विरोध करते हैं। हे भगवन्, जब तक यह ब्रह्माण्ड बना रहेगा और जब तक सूर्य चमकेगा मैं आपको सादर नमस्कार करता रहूँगा।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी के अनुसार ब्रह्माजी यहाँ पर *नाम सङ्कीर्तन* के आनन्द में मग्न हैं जिससे भगवान् कृष्ण के उन विभिन्न पवित्र नामों की महिमा बढ़ती है, जो उनकी विभिन्न लीलाओं की ओर संकेत करते हैं। भगवान् कृष्ण ने दक्षतापूर्वक उस पृथ्वी के असुरों का दमन किया जो कंस, जरासन्ध तथा शिशुपाल जैसे आसुरी राजनीतिज्ञों के प्रादुर्भाव से असह्य हो उठी थी। इसी तरह आधुनिक समाज में ईश्वर से तथाकथित डरने वाले अनेक लोग हैं, जो वास्तव में आसुरी जगत के प्रति आकृष्ट होते हैं। ऐसे लोग सूर्यास्त होते ही मानो जी उठते हैं और अँधेरे में भोजनालयों, नाइटक्लबों, होटलों इत्यादि में जीवन का आनन्द लूटते हैं। ये सारे साधन अवैध यौन, नशा, द्यूत क्रीड़ा तथा मांसाहार के निमित्त होते हैं। इसके अलावा वे लोग हैं, जो अपने को नास्तिक तथा असुर घोषित करते हुए ईश्वर तथा उनके नियमों की अवहेलना करते हैं। ईश्वर के गुप्त तथा प्रकट दोनों प्रकार के शत्रु

पृथ्वी का भार बनते हैं और इस भार को हटाने के लिए ही कृष्ण अवतरित होते हैं।

यहाँ पर ब्रह्माजी अप्रत्यक्ष रूप से कहते हैं कि भगवान् कृष्ण को चाहिए कि उनकी (ब्रह्मा की) सूक्ष्म नास्तिकता को दूर करें जिसके कारण उन्होंने कृष्ण को छलना चाहा था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार ब्रह्मा ने लज्जावश अपने को सत्यलोक से आये *ब्रह्मराक्षस* जैसा अनुभव किया जो भगवान् कृष्ण तथा उनके घनिष्ट मित्रों एवं बछड़ों को परेशान करने के लिए इस धरा पर आया हो। ब्रह्मा पछता रहे हैं कि यद्यपि कृष्ण परम पूज्य, समस्त ईश्वरों के ईश्वर हैं किन्तु वे उनके सामने सीधेसादे वेश में—लकुटी, शंख, आभूषण, गेरू, मोर पंख इत्यादि से अलंकृत वेश में तथा ग्वालबाल सखाओं के साथ खेलते हुए—प्रकट हुए थे; इसीलिए ब्रह्मा को साहस हुआ कि वे उन्हें ललकारें।

ब्रह्मा की स्तुति के विषय में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं, ''ब्रह्मा की यह स्तुति जो सारे संशयों को दूर करनेवाली तथा भक्ति का विस्तार करने वाली है मेरी चेतना की आधारशिला का सुन्दर कौशल बने।''

श्रीशुक उवाच
इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ।
नत्वाभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; अभिष्टूय—प्रशंसा करते हुए; भूमानम्—अनन्त भगवान् के प्रति; त्रिः—तीन बार; परिक्रम्य—प्रदक्षिणा करके; पादयोः—उनके चरणों पर; नत्वा—झुककर; अभीष्टम्—वांछित; जगत्—ब्रह्माण्ड का; धाता—स्त्रष्टा; स्व-धाम—अपने घर को; प्रत्यपद्यत—लौट गया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार स्तुति करने के बाद ब्रह्माजी ने अपने आराध्य अनन्त भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा की और फिर उनके चरणों पर नतमस्तक हुए। तत्पश्चात् ब्रह्माण्ड के नियुक्त स्त्रष्टा अपने लोक में लौट आये।

तात्पर्य : यद्यपि ब्रह्माजी ने प्रार्थना की थी कि वे वृन्दावन में या वृन्दावन के निकटवर्ती क्षेत्र में ही घास के तिनके के रूप में जन्म लेना चाहेंगे किन्तु भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मा की स्तुति पर मौन संकेत करते हुए यह सूचित किया कि ब्रह्मा अपने घर लौट जाँय। सर्वप्रथम ब्रह्मा को ब्रह्माण्ड की सृष्टि का सेवाकार्य पूरा करना चाहिए, तत्पश्चात् ही वे वृन्दावन आकर वहाँ के निवासियों का अनुग्रह प्राप्त करें। दूसरे शब्दों में, भक्त को अपनी व्यक्तिगत आध्यात्मिक सेवा को समुचित रूप से सम्पन्न करने के प्रति

सदैव सतर्क रहना चाहिए। यह भगवद्धाम में रहने के प्रयास की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

ततोऽनुज्ञाप्य भगवान्स्वभुवं प्रागवस्थितान् ।
वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अनुज्ञाप्य—अनुमति देकर; भगवान्—भगवान्; स्व-भुवम्—अपने पुत्र (ब्रह्मा) को; प्राक्—पहले से; अवस्थितान्—स्थित; वत्सान्—बछड़े; पुलिनम्—नदी के तट पर; आनिन्ये—ले आये; यथा-पूर्व—पहले की तरह; सखम्—जहाँ पर मित्रगण उपस्थित थे; स्वकम्—अपने।

अपने पुत्र ब्रह्मा को प्रस्थान की अनुमति देकर भगवान् ने बछड़ों को साथ ले लिया, जो अब भी वहीं थे जहाँ वे एक वर्ष पूर्व थे और उन्हें नदी के तट पर ले आये जहाँ पर भगवान् स्वयं पहले भोजन कर रहे थे और जहाँ पर उनके ग्वालबाल मित्र पूर्ववत् थे।

तात्पर्य : *स्व-भुवम्* शब्द, जिसका अर्थ है "अपने पुत्र को," सूचित करता है कि भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मा द्वारा किये अपराध को क्षमा कर दिया था और उसे अब अपने पुत्र के समान स्नेह कर रहे थे। इस श्लोक में यह कहा गया है कि असली ग्वालबाल सखा तथा बछड़े पूर्ववत् यमुना तट पर तथा जंगल में थे। इससे पूर्व बछड़े जंगल में खो गये थे और कृष्ण उन्हें ढूँढ़ने गये थे। उन्हें न पाकर वे अपने ग्वाल मित्रों से स्थिति पर विचारविमर्श करने लौट आये थे किन्तु वे भी वहाँ से लुप्त हो चुके थे। अब पुनः गौवें जंगल में थीं और भोजन करने के लिए ग्वालबाल नदी के तट पर थे। श्रील सनातन गोस्वामी के अनुसार बछड़े तथा ग्वालबाल क्रमशः जंगल तथा नदी तट पर एक साल तक रहते रहे। ब्रह्माजी वास्तव में उन्हें किसी अन्य स्थान पर नहीं ले गये। भगवान् की सर्वशक्तियुत माया से गोपियों तथा वृन्दावन के अन्य वासियों ने न तो बछड़ों तथा बालकों की ओर ध्यान दिया, न ही बछड़ों तथा बच्चों ने एक वर्ष की अवधि गुजरते देखी या भूख, प्यास अथवा ठंड का अनुभव किया। भगवान् की माया द्वारा ये सारी लीलाएँ नियोजित थीं। ब्रह्मा ने सोचा, "मैंने गोकुल के सारे बालकों तथा बछड़ों को अपनी योगशक्ति की शय्या पर सुला रखा है और वे सब आज तक नहीं जगे हैं। उतनी ही संख्या में बालक तथा बछड़े पूरे वर्ष भर भगवान् कृष्ण के साथ खेलते रहे हैं किन्तु जिन्हें मैंने योगशक्ति द्वारा मोहित किया है उनसे ये भिन्न हैं। तो फिर वे कौन हैं? वे कहाँ से आये?"

भगवान् से कुछ भी अदृश्य नहीं है। इसीलिए भगवान् कृष्ण बछड़ों तथा बालकों को खोजते हुए ब्रह्मा को मोहित करने की नाटकीय लीला का स्वाँग कर रहे थे। जब ब्रह्मा स्तुति कर चुके तो कृष्ण

असली बालकों तथा बछड़ों के पास लौट आये जो बिल्कुल पहले की ही तरह लग रहे थे यद्यपि एक वर्ष की अवधि बीतने के कारण उनके कद में कुछ वृद्धि हो गई थी।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार चूँकि कृष्ण वृन्दावन में भोले-भाले किशोर ग्वालबाल की क्रीड़ा कर रहे थे अत: जब चतुर्मुख ब्रह्मा स्तुति कर चुके तो कृष्ण उनके समक्ष मौन बने रहे। कृष्ण की चुप्पी से निम्नलिखित भाव इंगित होते हैं—"ये चतुर्मुख ब्रह्मा कहाँ से आये? वे क्या कर रहे हैं? वे क्या बोले चले जा रहे हैं? मैं तो अपने बछड़ों की खोज करने में व्यस्त हूँ। मैं तो ग्वालबाल ठहरा। मैं यह सब क्या समझूँ।" ब्रह्मा ने कृष्ण को सामान्य ग्वालबाल समझकर उनके साथ व्यवहार किया था। ब्रह्मा की स्तुति स्वीकार करने के बाद कृष्ण ग्वालबाल की तरह खेलते रहे। उन्होंने चतुर्मुख ब्रह्मा को कोई उत्तर नहीं दिया। कृष्ण को अपने ग्वालबाल मित्रों से मिलने और यमुना नदी के तट पर भोजन करने की अधिक चिन्ता थी।

एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तरात्मनः ।
कृष्णमायाहता राजन्क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

एकस्मिन्—एक; अपि—यद्यपि; याते—बीत जाने पर; अब्दे—वर्ष; प्राण-ईशम्—उनके प्राणों के स्वामी; च—तथा; अन्तरा—रहित; आत्मनः—उनसे; कृष्ण—कृष्ण की; माया—मायाशक्ति से; आहताः—प्रच्छन्न; राजन्—हे राजन्; क्षण-अर्धम्—आधा क्षण; मेनिरे—सोचा; अर्भकाः—बालकों ने।

हे राजन्, यद्यपि बालकों ने अपने प्राणेश से विलग रहकर पूरा एक वर्ष बिता दिया था किन्तु वे कृष्ण की मायाशक्ति से आवृत कर दिये गये थे अत: उन्होंने उस वर्ष को केवल आधा क्षण ही समझा।

किं किं न विस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः ।
यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

किम् किम्—क्या क्या; न विस्मरन्ति—लोग भूल नहीं जाते हैं; इह—इस संसार में; माया-मोहित—माया द्वारा मोहित किये गये; चेतसः—मन वाले; यत्—जिससे; मोहितम्—मोहित हुए; जगत्—संसार; सर्वम्—सम्पूर्ण; अभीक्ष्णम्—निरन्तर; विस्मृत-आत्मकम्—अपने तक को भूलकर।

जिनके मन भगवान् की मायाशक्ति द्वारा मोहित हों, भला उन्हें क्या नहीं भूल जाता? माया की शक्ति से यह निखिल ब्रह्माण्ड निरन्तर मोहग्रस्त रहता है और इस विस्मृति के वातावरण में

कोई अपनी पहचान नहीं समझ सकता।

तात्पर्य : यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मोहित है। अत: इन्द्र तथा ब्रह्मा जैसे बड़े बड़े देवता तक इस विस्मृति के सिद्धान्त से बचे हुए नहीं हैं। चूँकि भगवान् कृष्ण ने ग्वाल मित्रों तथा बछड़ों पर अन्तरंगा मायाशक्ति का प्रयोग किया अत: इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उन्हें एक वर्ष तक अपनी स्थिति का स्मरण नहीं हुआ। भगवान् की बहिरंगा शक्ति के द्वारा बद्धजीव अपने अस्तित्व को एक वर्ष क्या लाखों वर्ष तक भूले रह सकते हैं क्योंकि वे अज्ञान के लोक में, जिसे भौतिक जगत कहते हैं, देहान्तरण करते रहते हैं।

ऊचुश्च सुहृद: कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ।
नैकोऽप्यभोजि कवल एहीत: साधु भुज्यताम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

ऊचु:—बोले; च—तथा; सुहृद:—मित्रगण; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण से; सु-आगतम्—वापस आ गये हो; ते—तुम; अति-रंहसा—बहुत जल्दी; न—नहीं; एक:—एक; अपि—भी; अभोजि—खाया गया है; कवल:—कौर; एहि—आओ; इत:—यहाँ; साधु—ठीक से; भुज्यताम्—अपना भोजन करो।

ग्वाल मित्रों ने भगवान् कृष्ण से कहा ''तुम इतनी जल्दी आ गये! तुम्हारी अनुपस्थिति में हमने एक कौर भी नहीं खाया। आओ और अच्छी तरह से अपना भोजन करो।''

तात्पर्य : *स्वागतं तेऽतिरंहसा* शब्दों से सूचित होता है कि ग्वालबाल कृष्ण को जंगल से इतनी जल्दी बछड़े लौटा लाने के लिए बधाई दे रहे थे। अब कृष्ण के प्रिय मित्र उनसे ठीक से बैठ जाने और जी भर के खाने का अनुरोध करने लगे हैं। श्रील प्रभुपाद कृत ''भगवान् श्रीकृष्ण'' के अनुसार ग्वाल मित्रों को अतीव हर्ष हुआ और वे अपने प्रिय मित्र कृष्ण के साथ भोजन करने के लिए लालायित थे।

ततो हसन्हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकै: ।
दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनाद्व्रजम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

तत:—तब; हसन्—मुसकाते हुए; हृषीकेश:—सबों की इन्द्रियों के स्वामी भगवान् कृष्ण ने; अभ्यवहृत्य—भोजन करते हुए; सह—साथ; अर्भकै:—ग्वालबालों के; दर्शयन्—दिखलाते हुए; चर्म—चमड़ा; आजगरम्—अघासुर अजगर का; न्यवर्तत—लौट आये; वनात्—जंगल से; व्रजम्—व्रज के ग्राम को।

तत्पश्चात् भगवान् हृषीकेश ने हँसते हुए अपने गोपमित्रों के साथ अपना भोजन समाप्त किया। जब वे जंगल से व्रज में स्थित अपने घरों को लौट रहे थे तो भगवान् कृष्ण ने ग्वालबालों

को अघासुर अजगर की खाल दिखलाई।

बर्हप्रसूनवनधातुविचित्रिताङ्गः
प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः ।
वत्सान्गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्ति-
र्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

बर्ह—मोरपंख; प्रसून—फूलों; वन-धातु—जंगल के खनिजों से; विचित्रित—अलंकृत; अङ्गः—दिव्य शरीर; प्रोद्दाम—विशाल; वेणु-दल—बाँस की टहनी से बना; शृङ्ग—वंशी की; रव—प्रतिध्वनि से; उत्सव—उत्सव समेत; आढ्यः—दीप्त; वत्सान्—बछड़ों को; गृणन्—पुकारते हुए; अनुग—अपने संगियों द्वारा; गीत—गाया गया; पवित्र—शुद्ध करने वाला; कीर्तिः—उनकी महिमा; गोपी—गोपियों की; दृक्—आँखों के लिए; उत्सव—त्यौहार; दृशिः—उनकी दृष्टि; प्रविवेश—प्रविष्ट हुए; गोष्ठम्—चरागाह में।.

भगवान् कृष्ण का दिव्य शरीर मोरपंखों तथा फूलों से सजा था और जंगल के खनिजों से रँगा हुआ था और बाँस की उनकी वंशी उच्च एवं उल्लासपूर्ण स्वर में गूँज रही थी। जब वे बछड़ों का नाम लेकर पुकारते तो उनके ग्वालमित्र उनकी महिमा का गान करते और सारे संसार को पवित्र बना देते। इस तरह कृष्ण भगवान् अपने पिता नन्द महाराज की चरागाह में प्रविष्ट हुए। उनके सौन्दर्य पर दृष्टि पड़ते ही समस्त गोपियों की आँखों के लिए एक महोत्सव सा उत्पन्न हो गया।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार यहाँ पर जिन गोपियों का उल्लेख हुआ है वे माता यशोदा जैसी अधिक आयुवाली ग्वालिनें थीं जो कृष्ण को माता-पिता के समान प्यार करती थीं। कृष्ण के ग्वालमित्र उनके अद्‌भुत कार्यों पर इतने गर्वित थे कि गाँव में प्रवेश करते हुए वे सब उनके गुणों का गायन करने लगे।

अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना ।
हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; अनेन—उनके द्वारा; महा-व्यालः—विशाल सर्प; यशोदा—यशोदा; नन्द—तथा महाराज नन्द के; सूनुना—पुत्र द्वारा; हतः—मारा गया है; अविताः—बचाये गये हैं; वयम्—हम सभी; च—तथा; अस्मात्—उस असुर से; इति—इस प्रकार; बालाः—बालकों ने; व्रजे—वृन्दावन में; जगुः—गाया।.

व्रज ग्राम पहुँचते ही बालकों ने गुणगान किया, ''आज कृष्ण ने एक विशाल सर्प मारकर हम सबों को बचाया है।'' कुछ बालकों ने कृष्ण को यशोदानन्दन के रूप में तो कुछ ने नन्द

महाराज के पुत्र के रूप में बखान किया।

तात्पर्य : वास्तव में भगवान् कृष्ण ने अघासुर का वध एक वर्ष पूर्व किया था किन्तु ये बालक ब्रह्मा की योगशक्ति से एक वर्ष तक मोहित रहने के कारण समय को बीतते जान नहीं पाये। अत: उन्होंने सोचा कि भगवान् कृष्ण ने अघासुर का वध उसी दिन किया है और अब उन सबों के साथ घर वापस आ रहे हैं।

श्रीराजोवाच
ब्रह्मन्परोद्भवे कृष्णे इयान्प्रेमा कथं भवेत् ।
योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने कहा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण, शुकदेव; पर-उद्भवे—दूसरे की सन्तान; कृष्णे—कृष्ण के लिए; इयान्—इतना अधिक; प्रेमा—प्रेम; कथम्—क्यों; भवेत्—हो सकता है; य:—जो; अभूत-पूर्व:—अभूतपूर्व; तोकेषु—बालकों के लिए; स्व-उद्भवेषु—अपने ही जन्मे; अपि—भी; कथ्यताम्—कृपया बतलाइये।

राजा परीक्षित ने कहा, "हे ब्राह्मण, ग्वालों की पत्नियों में एक पराये पुत्र कृष्ण के लिए ऐसा अभूतपूर्व शुद्ध प्रेम किस प्रकार उत्पन्न हुआ—ऐसा प्रेम जिसका अनुभव उन्हें अपने पुत्रों के प्रति भी नहीं उत्पन्न हुआ? कृपया इसे बतलाइये।"

श्रीशुक उवाच
सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभ: ।
इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सर्वेषाम्—समस्त; अपि—निस्सन्देह; भूतानाम्—जीवों में; नृप—हे राजन्; स्व-आत्मा—अपनी ही आत्मा, स्व; एव—निश्चय ही; वल्लभ:—प्रियतम; इतरे—अन्य; अपत्य—सन्तानें; वित्त—धन; आद्या:—इत्यादि; तत्—उस आत्मा के; वल्लभतया—प्रियत्व पर आश्रित; एव हि—निस्सन्देह।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, प्रत्येक प्राणी के लिए स्वयं ही सर्वाधिक प्रिय होता है। सन्तान, धन इत्यादि अन्य समस्त वस्तुओं की प्रियता केवल आत्म-प्रियता के कारण है।

तात्पर्य : कभी कभी आधुनिक चिन्तक नैतिक आचरण के मनोविज्ञान का अध्ययन करते समय चकरा जाते हैं। जैसाकि यहाँ पर बतलाया गया है, कि प्रत्येक जीव आत्म-रक्षण के प्रति उन्मुख रहता है किन्तु कभी-कभी कोई व्यक्ति अपने स्वार्थ की बलि—यथा अन्यों के लाभ के लिए अपना धन

देकर या राष्ट्रीय हित के लिए अपना जीवन देकर—स्वेच्छा से कर देता है। ऐसा तथाकथित निस्वार्थ आचरण भौतिक आत्म-केन्द्रता तथा आत्म-रक्षण के सिद्धान्त का विरोधी प्रतीत होता है।

किन्तु जैसाकि इस श्लोक में बतलाया गया है जीव अपने समाज, राष्ट्र, परिवार इत्यादि की सेवा इसीलिए करता है क्योंकि ये प्रिय वस्तुएँ मिथ्या अहंकार की विस्तारित विचारधारा को ही प्रदर्शित करने वाली हैं। देशभक्त अपने को महान् राष्ट्र के महान् सेवक के रूप में देखता है अतएव वह अपने अहंभाव की तुष्टि के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर देता है। इसी तरह यह सुपरिचित तथ्य है कि मनुष्य अपनी पत्नी तथा अपनी सन्तान को प्रसन्न करने के लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर देता है। अपने को अपने परिवार तथा अपनी जाति के निस्वार्थ शुभचिन्तक के रूप में देखते हुए मनुष्य को परम अहमन्यता का सुख प्राप्त होता है। ऐसा विरोधमूलक आचरण भौतिक जीवन के माया-मोह का अन्य प्रत्यक्ष प्रमाण है, जो अलौकिक आत्मा के निपट अज्ञान की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

तद्राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ।
न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतएव; राज-इन्द्र—हे राजाओं में श्रेष्ठ; यथा—जिस तरह; स्नेहः—स्नेह; स्व-स्वक—प्रत्येक व्यक्ति की; आत्मनि—आत्मा के लिए; देहिनाम्—देहधारी प्राणियों के; न—नहीं; तथा—उसी तरह; ममता-आलम्बि—उसके लिए जो अपने को अपनी वस्तुओं के रूप में मानता है; पुत्र—पुत्र; वित्त—धन; गृह—घर; आदिषु—इत्यादि में।.

अतएव इसीलिए हे राजाओं में श्रेष्ठ, देहधारी जीव आत्मकेन्द्रित होता है। वह सन्तान, धन तथा घर इत्यादि वस्तुओं की अपेक्षा अपने शरीर तथा अपनी ओर अधिक आसक्त होता है।

तात्पर्य : अब सारे विश्व में यह प्रचलन हो गया है कि यदि माता को किसी सन्तान को जन्म देने में असुविधा होती है, तो वह अपने गर्भ के भीतर ही उस सन्तान को मार डालती है। इसी तरह बड़े होने पर सन्तानें अपनी सुविधा के लिए वृद्ध माता-पिता को घर में न रखकर अनाथालयों में रख देती हैं। ये तथा अन्य सैकड़ों उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि लोग सामान्यतया अपने शरीर तथा अपनी ओर अधिक अनुरक्त रहते हैं क्योंकि ये "अहंभाव" के सूचक हैं जबकि परिवार तथा अन्य वस्तुएँ "ममत्व" की सूचक हैं। यद्यपि बद्धजीव अपने समाज, परिवार इत्यादि के प्रति प्रेम पर बहुत गर्व का अनुभव करते हैं किन्तु वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक बद्ध आत्मा स्थूल या सूक्ष्म स्वार्थ के स्तर पर

ही कर्म करता है।

देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ।
यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

देह-आत्म-वादिनाम्—शरीर को ही आत्मा मानने वाले; पुंसाम्—मनुष्यों के लिए; अपि—निस्सन्देह; राजन्य-सत्-तम—हे राजाओं में श्रेष्ठ; यथा—जिस तरह; देहः—शरीर; प्रिय-तमः—सर्वाधिक प्रिय; तथा—उसी प्रकार; न—नहीं; हि—निश्चय ही; अनु—की तुलना में; ये—जो वस्तुएँ; च—तथा; तम्—उसको।

हे राजाओं में श्रेष्ठ, जो लोग शरीर को ही अपना सर्वस्व मानते हैं उनके लिए वे वस्तुएँ जिनका महत्व शरीर के लिए होता है कभी भी शरीर जितनी प्रिय नहीं होतीं।

देहोऽपि ममताभाक्चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत्प्रियः ।
यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन्जीविताशा बलीयसी ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

देहः—शरीर; अपि—भी; ममता—स्वामित्व का; भाक्—केन्द्रबिन्दु; चेत्—यदि; तर्हि—तब; असौ—वह शरीर; न—नहीं; आत्म-वत्—आत्मा के समान; प्रियः—प्रिय; यत्—क्योंकि; जीर्यति—वृद्ध होते हुए; अपि—भी; देहे—शरीर में; अस्मिन्—इस; जीवित-आशा—जीवित रहने की आकांक्षा; बलीयसी—अत्यन्त प्रबल।

यदि मनुष्य शरीर को ''मैं'' न मानकर ''मेरा'' मानने की अवस्था तक पहुँच जाता है, तो वह निश्चित रूप से शरीर को अपने आप जितना प्रिय नहीं मानेगा। यही कारण है कि शरीर के जीर्णशीर्ण हो जाने पर भी जीवित रहते जाने की आशा प्रबल रहती है।

तात्पर्य : यहाँ पर *ममताभाक्* शब्द अत्यन्त सार्थक है। सामान्य मूर्ख व्यक्ति सोचता है कि ''मैं यह शरीर हूँ।'' किन्तु अधिक विवेकवान बुद्धिमान व्यक्ति सोचता है कि ''यह मेरा शरीर है।'' साहित्य में तथा सामान्य लोगों की लोक-कथाओं में वृद्ध एवं जर्जर व्यक्ति में एक नया तरुण शरीर प्राप्त करने की अभिलाषा सामान्यतया पायी जाती है। इस तरह सामान्य व्यक्तियों तक में आत्म-साक्षात्कार का विचार पैदा हो जाता है और वे सहजभाव से समझते हैं कि अनेक शरीरों में आत्मा के लिए रह पाना सम्भव है।

बुद्धिमान व्यक्ति का शरीर ज्यों ज्यों जीर्णशीर्ण होता जाता है उसमें जीवित रहने की आकांक्षा बलवती होती जाती है, यद्यपि वह यह जानता रहता है कि उसका शरीर अधिक काल तक चल नहीं सकता। इससे यह सूचित होता है कि धीरे धीरे वह इस तथ्य से अवगत होता जाता है कि इस शरीर

की तुलना में उसकी आत्मा अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस तरह जीविताशा से मनुष्य अप्रत्यक्षतः आत्म-साक्षात्कार की प्रारम्भिक जानकारी की ओर जाने लगता है। मनुष्य की मूलभूत आसक्ति अपनी आत्मा से रहती है, अपने से सम्बद्ध वस्तुओं से नहीं।

यहाँ यह इंगित कर दिया जाय कि राजा परीक्षित तथा शुकदेव गोस्वामी के बीच आत्मा के प्रियत्व को लेकर होनेवाला समूचा संवाद इस विषय को छेड़ना है कि वृन्दावन की गौवें तथा गोपियाँ कृष्ण को अपने आप से भी अधिक प्रिय, यहाँ तक कि अपनी सन्तानों से भी अधिक प्रिय क्यों मानती थीं। यह संवाद आगे बढ़ता है।

तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।
तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥५४॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; प्रिय-तमः—अत्यन्त प्रिय; स्व-आत्मा—अपनी आत्मा; सर्वेषाम्—समस्त; अपि—निस्सन्देह; देहिनाम्—देहधारी जीवों के लिए; तत्-अर्थम्—उसी के हेतु; एव—निश्चय ही; सकलम्—सम्पूर्ण; जगत्—संसार; एतत्—यह; चर-अचरम्—चर तथा अचर जीवों समेत।.

इसलिए हर देहधारी जीव को अपना आप (स्वात्म) ही सर्वाधिक प्रिय है और इसी की तुष्टि के लिए यह समस्त चराचर जगत विद्यमान है।

तात्पर्य : *चराचरम्* शब्द पशु जैसे सचल और वृक्ष जैसे अचल प्राणियों का द्योतक है। अथवा यह शब्द चल सम्पत्ति यथा परिवार तथा पालतू पशुओं एवं अचल सम्पत्ति यथा घर-बार का भी द्योतक है।

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥५५॥

शब्दार्थ

कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; एनम्—इन; अवेहि—समझने का प्रयत्न करो; त्वम्—तुम; आत्मानम्—आत्मा को; अखिल-आत्मनाम्—समस्त जीवों के; जगत्-हिताय—सारे ब्रह्माण्ड के लाभ हेतु; सः—वह; अपि—निश्चय ही; अत्र—यहाँ; देही—मानव; इव—सदृश; आभाति—प्रकट होता है; मायया—अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा।.

तुम कृष्ण को समस्त जीवों की आदि आत्मा करके जानो। वे अपनी अहैतुकी कृपावश, समस्त जगत के लाभ हेतु, सामान्य मानव के रूप में प्रकट हुए हैं। ऐसा उन्होंने अपनी अन्तरंगा शक्ति के बल पर किया है।

तात्पर्य : *चैतन्य-चरितामृत* (मध्य लीला, २०.१६२) में श्रील प्रभुपाद ने इस श्लोक की टीका इस

प्रकार की है : ''परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा कि वृन्दावन के वासियों को कृष्ण इतने प्रिय क्यों हैं—वे उन्हें अपनी सन्तान या अपने जीवन से भी अधिक प्यार करते हैं? श्री शुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया कि देहधारी सारे जीवों को अपनी *आत्मा* सर्वाधिक प्रिय है। किन्तु यह आत्मा कृष्ण का अंश है अतएव कृष्ण हर जीव को अत्यन्त प्रिय हैं। हर एक को अपना शरीर अत्यन्त प्रिय है और वह सभी प्रकार से अपने शरीर की रक्षा करना चाहता है क्योंकि शरीर के भीतर आत्मा का निवास है। आत्मा तथा शरीर के मध्य घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण ही शरीर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और हर एक को प्रिय है। इसी प्रकार कृष्ण का अंश होने से आत्मा हर जीव को अत्यधिक प्रिय है। दुर्भाग्यवश आत्मा अपनी वैधानिक स्थिति भूल जाता है और अपने को मात्र शरीर समझता है (*देहात्मबुद्धि*)। फलतः आत्मा को भौतिक प्रकृति के विधिविधानों को मानना पड़ता है। जब जीव अपनी बुद्धि के बल से कृष्ण के प्रति अपने आकर्षण को जागृत करता है, तो उसकी समझ में आता है कि वह शरीर नहीं अपितु कृष्ण का अंश है। इस तरह ज्ञान से पूरित होने पर वह शरीर तथा शरीर से सम्बद्ध वस्तुओं के प्रति अनुरक्ति के वशीभूत होकर श्रम नहीं करता (*जनस्य मोहोऽयमहं ममेति*)। यह जगत भी जिसमें मनुष्य सोचता है कि ''मैं शरीर हूँ और यह मेरा है,'' मायामय है। मनुष्य को चाहिए कि कृष्ण के प्रति ध्यान लगाये। *श्रीमद्भागवत* (१.२.७) में कहा गया है—

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्॥

''भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करने से मनुष्य को अहैतुक ज्ञान तथा संसार से विरक्ति प्राप्त होती है।''

वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ।
भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किञ्चन ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

वस्तुतः—वास्तव में; जानताम्—जानने वालों के लिए; अत्र—इस संसार में; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; स्थास्नु—अचल; चरिष्णु—चल; च—तथा; भगवत्-रूपम्—भगवान् का प्रकट रूप; अखिलम्—सर्वस्व; न—कुछ भी नहीं; अन्यत्—अन्य; वस्तु—वस्तु; इह—यहाँ; किञ्चन—तनिक भी।

इस जगत में जो लोग भगवान् कृष्ण को यथारूप में समझते हैं, वे समस्त चर या अचर वस्तुओं को भगवान् के व्यक्त रूप में देखते हैं। ऐसे प्रबुद्ध लोग भगवान् कृष्ण से परे अन्य

किसी यथार्थ (वास्तविकता) को नहीं मानते।

तात्पर्य : प्रत्येक वस्तु कृष्ण में और प्रत्येक वस्तु में कृष्ण विद्यमान रहते हैं। फिर भी प्रगमन की दिशा शक्तिमान से विस्तारित शक्ति की ओर होती है। भगवान् कृष्ण आदि सत्ता हैं जिनसे अन्य सारी सत्ताएँ उद्‌भूत होती हैं। वे परम शक्तिमान हैं जिनसे सभी प्रकार की शक्तियाँ प्रकट होती हैं। इस तरह हमारे शरीर, आत्मा, परिवार, मित्र, राष्ट्र, लोक, ब्रह्माण्ड इत्यादि भगवान् की ही अभिव्यक्तियाँ हैं, जो अपनी निजी शक्तियों के माध्यम से विस्तार करते हैं। निश्चय ही कृष्ण हमारे प्रेम तथा आकर्षण के चरम लक्ष्य हैं जबकि शरीर, परिवार तथा घर गौण लक्ष्य हैं। यही नहीं, प्रेम के ये गौण लक्ष्य भी कृष्ण की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। निष्कर्ष यही है कि भगवान् कृष्ण हमारे एकमात्र मित्र तथा प्रेम के लक्ष्य हैं।

श्रील प्रभुपाद ने इस श्लोक की टीका ''भगवान् श्रीकृष्ण'' में इस प्रकार की है : ''कृष्ण का अंश हुए बिना कोई भी वस्तु आकर्षक नहीं बन सकती। विश्व में जो भी आकर्षक है, वह कृष्ण के कारण है। अतएव कृष्ण समस्त आनन्द के आगार हैं। कृष्ण हर वस्तु के सार हैं और उच्च अध्यात्मवादी प्रत्येक वस्तु को उनसे सम्बन्धित देखते हैं। *चैतन्य-चरितामृत* में कहा गया है कि *महाभागवत* अर्थात् उच्च श्रेणी का भक्त कृष्ण को समस्त चराचर जीवों का सक्षम आधार मानता है। इसलिए वह इस जगत की प्रत्येक वस्तु को कृष्ण से सम्बन्धित देखता है।''

सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ।
तस्यापि भगवान्कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥५७॥

शब्दार्थ

सर्वेषाम्—सभी; अपि—निस्सन्देह; वस्तूनाम्—वस्तुओं का; भाव-अर्थः—प्रकृति की आदि अव्यक्त कारण-अवस्था; भवति—होती है; स्थितः—स्थापित; तस्य—अव्यक्त प्रकृति का; अपि—भी; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; किम्—क्या; अतत्—उनसे पृथक्; वस्तु—वस्तु; रूप्यताम्—निर्धारित की जा सकती है।

प्रकृति का आदि अव्यक्त रूप समस्त भौतिक वस्तुओं का स्रोत है और यहाँ तक कि इस सूक्ष्म प्रकृति के स्रोत तो भगवान् कृष्ण हैं। तो भला उनसे पृथक् किसको कहा जा सकता है?

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं
महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं
पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ॥५८॥

शब्दार्थ

समाश्रिताः—शरणागत; ये—जो लोग; पद—पैरों का; पल्लव—फूल की कलियों के समान; प्लवम्—नौका रूप; महत्—सम्पूर्ण जगत के अथवा महात्माओं के; पदम्—शरण; पुण्य—अत्यन्त पुनीत; यशः—जिनका यश; मुर-अरेः—मुर नामक असुर के शत्रु का; भव—संसार का; अम्बुधिः—सागर; वत्स-पदम्—बछड़े का खुर; परम् पदम्—परम धाम, वैकुण्ठ; पदम् पदम्—पग पग पर; यत्—जहाँ; विपदाम्—विपदाएँ; न—एक भी नहीं; तेषाम्—उनके लिए।

दृश्यजगत के आश्रय एवं मुर राक्षस के शत्रु मुरारी के नाम से प्रसिद्ध भगवान् के चरणकमल रूपी नाव को जिन्होंने स्वीकार किया है उनके लिए यह भव-सागर बछड़े के खुर चिन्ह में भरे जल के समान है। उनका लक्ष्य *परं पदम्* अर्थात् वैकुण्ठ होता है जहाँ भौतिक विपदाओं का नामोनिशान नहीं होता, न ही पग पग पर कोई संकट होता है।

तात्पर्य : उपर्युक्त उद्धरण श्रील प्रभुपाद लिखित *भगवद्गीता* यथारूप की टीका (२.५१) से लिया गया है। श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार इस श्लोक में *श्रीमद्भागवत* के इस अध्याय का सार प्रस्तुत किया गया है। भगवान् कृष्ण के चरणकमलों को *पल्लव* कहा गया है क्योंकि वे अत्यन्त कोमल तथा गुलाबी रंग के हैं। श्रील सनातन गोस्वामी के अनुसार *पल्लव* शब्द से यह भी सूचित होता है कि भगवान् कृष्ण के चरणकमल कल्पवृक्ष के समान हैं, जो भगवान् के शुद्ध भक्तों की सारी इच्छाओं को पूरा करनेवाले हैं। श्रीनारद जैसे उच्चस्थ भक्त, जो स्वयं इस ब्रह्माण्ड के बद्धजीवों के परम आश्रय हैं, भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं। अत: स्वाभाविक है कि जब भगवान् कृष्ण वृन्दावन के समस्त ग्वालबालों तथा बछड़ों के रूप में अपने को प्रकट करते हैं, तो उनके माता-पिता पहले की अपेक्षा उनके प्रति अधिक आकृष्ट होते हैं। भगवान् कृष्ण समस्त आनन्द के आगार हैं और सर्वाकर्षक होने के कारण हर एक के प्रेम के चरम लक्ष्य हैं।

एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।
तत्कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; ते—आपसे; सर्वम्—सभी; आख्यातम्—वर्णन किया; यत्—जो; पृष्टः—पूछा गया; अहम्—मैंने; इह—इस सम्बन्ध में; त्वया—तुम्हारे द्वारा; तत्—वह; कौमारे—बाल्यकाल में (पाँच वर्ष की अवस्था में); हरि-कृतम्—भगवान् हरि द्वारा सम्पन्न; पौगण्डे—बाल्यकाल के बाद (छठे वर्ष से लेकर आगे); परिकीर्तितम्—गुणानुवाद किया हुआ।

चूँकि आपने मुझसे पूछा था इसलिए मैंने भगवान् हरि की उन लीलाओं का संपूर्ण वर्णन किया जो उन्होंने अपनी आयु के पाँचवें वर्ष में सम्पन्न की थीं किन्तु छठा वर्ष लगने तक प्रशस्त नहीं हुई थीं।

एतत्सुहृद्भिश्चरितं मुरारे-
रघार्दनं शाद्वलजेमनं च ।
व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं
शृण्वन्गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

एतत्—ये; सुहृद्भिः—अपने ग्वाल मित्रों के साथ; चरितम्—लीलाएँ; मुरारेः—भगवान् मुरारी की; अघ-अर्दनम्—अघासुर का दमन; शाद्वल—जंगल की घास पर; जेमनम्—भोजन करते हुए; च—तथा; व्यक्त-इतरत्—अलौकिक; रूपम्—भगवान् का दिव्य रूप; अज—ब्रह्मा द्वारा; उरु—विस्तृत; अभिष्टवम्—स्तुति; शृण्वन्—श्रवण; गृणन्—कीर्तन; एति—प्राप्त करता है; नरः—कोई मनुष्य; अखिल-अर्थान्—सारी मनवांछित वस्तुएँ।

मुरारी द्वारा ग्वालबालों के साथ सम्पन्न इन लीलाओं को—यथा अघासुर वध, जंगल की घास पर बैठकर भोजन करना, भगवान् द्वारा दिव्य रूपों का प्राकट्य तथा ब्रह्मा द्वारा की गई अद्भुत स्तुति को जो भी व्यक्ति सुनता है या उनका कीर्तन करता है उसकी सारी आध्यात्मिक मनोकामनाएँ अवश्य पूरी होती हैं।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी के अनुसार भगवान् कृष्ण की लीलाओं को सुनने तथा उनका कीर्तन करने के प्रति मात्र प्रवृत्ति रखनेवाला व्यक्ति भी आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करेगा। कृष्णभावनामृत के प्रचार-प्रसार में तन्मयता से लगे बहुत से भक्तगण प्राय: इतने व्यस्त रहते हैं कि वे जी भरकर भगवान् की लीलाओं का कीर्तन तथा श्रवण नहीं कर पाते। किन्तु केवल भगवान् कृष्ण का सदैव कीर्तन एवं श्रवण करने की प्रबल इच्छा के कारण वे आध्यात्मिक सिद्धि लाभ करेंगे। किन्तु जहाँ तक सम्भव हो, भगवान् की इन दिव्य लीलाओं का वास्तविक उच्चारण करना चाहिए।

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विहारैः—लीलाओं से; कौमारैः—बाल्यकाल की; कौमारम्—पाँच वर्ष तक की बाल्यावस्था; जहतुः—उन्होंने बिता दी; व्रजे—व्रजभूमि में; निलायनैः—आँखमिचौनी खेल में; सेतु-बन्धैः—पुल बनाने में; मर्कट-उत्प्लवन—बन्दरकूद; आदिभिः—इत्यादि में।

इस प्रकार व्रज भूमि में आँखमिचौनी का खेल खेलते, खेल में ही पुल बनाते, बन्दरों की तरह कूदफाँद करते तथा अन्य ऐसे ही खेलों में लगे रहकर बालकों ने अपना बाल्यकाल बिताया।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी के अनुसार *निलायनै* शब्द लुका-छिपी या आँखमिचौनी जैसे खेलों का द्योतक है। कभी कभी बालकगण भगवान् रामचन्द्र की सेना के बन्दरों की तरह कूदते और तालाबों या झीलों में पुल बनाकर श्रीलंका में बन्दरों द्वारा सेतु बनाने की नकल करते। कभी ये बालक क्षीरसागर मन्थन की नकल उतारते और कभी गेंद खेलते। आध्यात्मिक जगत में हमें पूर्ण आनन्द मिल सकता है बशर्ते कि हर कार्य शुद्ध भगवत्प्रेम अर्थात् कृष्णभावनामृत में सम्पन्न किया जाय।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''ब्रह्मा द्वारा कृष्ण की स्तुति'' नामक चौदहवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter पन्द्रह

धेनुकासुर का वध

इस अध्याय में वर्णन हुआ है कि किस तरह बलराम तथा कृष्ण ने वृन्दावन की चरागाहों में गौवें चराते हुए धेनुकासुर का वध किया, किस तरह व्रजवासियों को ताल वृक्ष के फल खाने दिये तथा तरुण गाय-भैंसों आदि पशु-समूह को कालिय-विष से बचाया।

पौगण्डावस्था की लीलाएँ प्रकट करते-करते एक दिन राम (बलराम) तथा कृष्ण अपनी गौवें चराते चराते एक आकर्षक वन में प्रविष्ट हुए जिसमें एक स्वच्छ सरोवर था। वे अपने मित्रों के साथ खेलकूद करने लगे। थकान का बहाना करके बलदेव ने अपना सिर एक ग्वालबाल की गोद में रख दिया और कृष्ण अपने बड़े भाई की थकान दूर करने के लिए उनके पाँव दबाने लगे। तत्पश्चात् कृष्ण ने भी अपना सिर एक ग्वालबाल की गोद में रख दिया और एक अन्य ग्वालबाल उनका पाँव दबाने लगा। इस तरह कृष्ण, बलराम तथा उनके ग्वाल मित्रों ने विविध लीलाओं का रस लिया।

खेलते हुए श्रीदामा, सुबल, स्तोककृष्ण तथा अन्य ग्वालबालों ने राम तथा कृष्ण से उस दुष्ट तथा दुर्दम धेनुकासुर का बखान किया जिसने गधे का वेश धारण कर रखा था और जो गोवर्धन पर्वत के निकट के तालवन में रह रहा था। इस वन में अनेक प्रकार के मधुर फल थे किन्तु इस असुर के भय से कोई भी व्यक्ति इन फलों का आस्वादन करने का साहस नहीं जुटा पाया। इसलिए आवश्यक था कि

इस असुर तथा इसके संगियों का वध किया जाय। इस स्थिति को सुनकर राम तथा कृष्ण अपने संगियों की इच्छापूर्ति के लिए इस वन की ओर चल पड़े।

तालवन पहुँच कर ज्योंही बलराम ने तालवृक्षों को हिलाकर बहुत से फल गिराये तभी धेनुकासुर उन पर आक्रमण करने के लिए तेजी से दौड़ा। लेकिन बलराम ने उसकी पिछली टांगों को एक हाथ से दबोच लिया, उसे घुमाया और एक वृक्ष की चोटी पर फेंक दिया। इस तरह उसका वध कर दिया। तब धेनुकासुर के सभी साथी क्रुद्ध होकर आक्रमण करने के लिये झपटे किन्तु राम तथा कृष्ण ने एक एक करके उनको पकड़ कर घुमाने के बाद मार डाला। इस तरह सारा उत्पात समाप्त हो गया। जब कृष्ण तथा बलराम ग्वाल-समुदाय के बीच लौट कर आये तो यशोदा तथा रोहिणी ने उन्हें गोद में उठा लिया, उनके मुखड़े चूमे, अच्छा भोजन कराया और सुला दिया।

कुछ दिन बाद कृष्ण अपने मित्रों के साथ गौवें चराने कालिन्दी तट पर गये किन्तु बलराम साथ में न थे। गौवें तथा ग्वालबाल बहुत ही प्यासे थे अत: उन्होंने कालिन्दी का थोड़ा-सा जल पिया। किन्तु यह जल विष से कलुषित था इसलिए वे सब नदी के तट पर बेहोश हो गये। कृष्ण ने अपनी चितवन की दया-वृष्टि से उन्हें फिर से जीवित किया। होश में आने पर उन सबों ने इस महान् दया की भूरि भूरि प्रशंसा की।

श्रीशुक उवाच
ततश्च पौगण्डवय:श्रीतौ व्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभि: समं पदै-
र्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतु: ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तत:—तब; च—तथा; पौगण्ड वय:—पौगण्ड अवस्था (६ से १० वर्ष तक); श्रितौ—प्राप्त करके; व्रजे—वृन्दावन में; बभूवतु:—बन गये; तौ—दोनों (राम तथा कृष्ण); पशु-पाल—ग्वालों के रूप में; सम्मतौ—नियुक्त; गा:—गौवें; चारयन्तौ—चराते हुए; सखिभि: समम्—अपने मित्रों के साथ साथ; पदै:—पाँवों के चिह्नों से; वृन्दावनम्—श्री वृन्दावन को; पुण्यम्—पावन; अतीव—अत्यन्त; चक्रतु:—उन्होंने बना दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : वृन्दावन में रहते हुए जब राम तथा कृष्ण ने पौगण्ड अवस्था (६-१० वर्ष) प्राप्त कर ली तो ग्वालों ने उन्हें गौवें चराने के कार्य की अनुमति प्रदान कर दी। इस तरह अपने मित्रों के साथ इन दोनों बालकों ने वृन्दावन को अपने चरणकमलों के चिन्हों से

अत्यन्त पावन बना दिया।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण अपने उन ग्वालबाल मित्रों को प्रोत्साहित करना चाहते थे जिन्हें पहले अघासुर ने निगल लिया था और बाद में ब्रह्माजी चुरा ले गये थे। फलतः भगवान् ने तय किया कि वे उन्हें तालवन ले जायेंगे जहाँ स्वादिष्ट पके हुए बहुत से फल थे। चूँकि अब कृष्ण का आध्यात्मिक शरीर, आयु तथा बल में कुछ बढ़ा हुआ दिखने लगा था अतः नन्द महाराज समेत वृन्दावन के गुरुजनों ने कृष्ण को बछड़े चराने वाले से बढ़ाकर नियमित गोपालक के पद पर प्रोन्नत करने का निश्चय किया। अब कृष्ण प्रौढ़ गौवों, साँड़ों तथा बैलों की रखवाली किया करते थे। इसके पूर्व नन्द महाराज स्नेहवश कृष्ण को नन्हा जानकर तथा गाय-बैलों की रखवाली करने में अक्षम मानते रहे। *पद्मपुराण* के कार्तिक माहात्म्य अनुभाग में कहा गया है :

शुक्लाष्टमी कार्त्तिक तु स्मृता गोपाष्टमी बुधै।

तद्दिनाद् वासुदेवोऽभूद् गोपः पूर्वं तु वत्सपः ॥

"विद्वान लोग कार्तिक मास की शुक्लाष्टमी को गोपाष्टमी के नाम से जानते हैं। उसी दिन से भगवान् वासुदेव गौवों की सेवा करने लगे जबकि इसके पूर्व वे बछड़े चराते थे।"

पदै शब्द से सूचित होता है कि भगवान् कृष्ण ने पृथ्वी को अपने चरणकमलों से पवित्र बनाया। वे न तो जूता पहनते थे, न कोई अन्य पदत्राण। अपितु वे नंगे पाँव जंगल में घूमते थे जिससे वृन्दावन की बालाओं को महान् चिन्ता रहती थी कि उनके कोमल चरणकमलों को कहीं चोट न लग जाय।

तन्माधवो वेणुमुदीरयन्वृतो
गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ।
पशून्पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्
विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥ २॥

शब्दार्थ

तत्—इस प्रकार; माधवः—श्री माधव; वेणुम्—अपनी वंशी; उदीरयन्—बजाते हुए; वृतः—घिरे हुए; गोपैः—ग्वालबालों से; गृणद्भिः—कीर्तन करते हुए; स्व-यशः—अपना यश; बल-अन्वितः—बलराम सहित; पशून्—पशुओं को; पुरस्कृत्य—आगे करके; पशव्यम्—गौवों के लिए पोषण से पूर्ण; आविशत्—प्रवेश किया; विहर्तु-कामः—विहार करने की इच्छा से; कुसुम-आकरम्—फूलों से परिपूर्ण; वनम्—वन में।

इस तरह अपनी लीलाओं का आनंद उठाने की इच्छा से अपनी वंशी बजाते हुए और अपने गुणगान कर रहे ग्वालबालों से घिरे हुए तथा बलदेव के साथ जाते हुए माधव ने गौवों को अपने

आगे कर लिया और वृन्दावन के जंगल में प्रवेश किया जो फूलों से लदा था और पशुओं के स्वास्थ्य-प्रद चारे से भरा पड़ा था।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी ने *माधव* शब्द के विविध अर्थों की व्याख्या की है, जो इस प्रकार है माधव सामान्यतया उस कृष्ण का सूचक है, जो ''लक्ष्मी के प्रेमी'' हैं। उक्त नाम यह भी बताता है कि वे कृष्ण मधु वंश में अवतरित हुए। चूँकि वसन्त ऋतु का भी नाम माधव है अतएव ज्योंही कृष्ण ने वृन्दावन जंगल में प्रवेश किया, तो उसमें स्वत: वसन्त-वैभव छा गया। वह फूलों से, शीतल मन्द वायु से तथा स्वर्गिक वातावरण से परिपूर्ण हो गया। कृष्ण का माधव नाम से विख्यात होने का यह भी कारण है कि वे माधुर्य प्रेम के स्वाद—मधु—में अपनी लीलाएँ करते हैं।

भगवान् कृष्ण श्रीवृन्दावन के जंगल में प्रवेश करते ही जोर से अपनी वंशी बजाते जिससे उनकी जन्मस्थली व्रजधाम के निवासियों को अचिन्त्य आनन्द प्राप्त होता था। जंगल में प्रवेश करने, वंशी बजाने आदि की ये सरल लीलाएँ वृन्दावन धाम में नित्य ही सम्पन्न होती थीं।

तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं
महन्मन:प्रख्यपय:सरस्वता ।
वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना
निरीक्ष्य रन्तुं भगवान्मनो दधे ॥ ३॥

शब्दार्थ

तत्—उस (वन); मञ्जु—सुहावनी; घोष—ध्वनि; अलि—भौंरे; मृग—पशु; द्विज—तथा पक्षी; आकुलम्—पूर्ण; महत्—महात्माओं के; मन:—मन; प्रख्य—सदृशता रखने वाले; पय:—जिसका जल; सरस्वता—सरोवर समेत; वातेन—हवा से; जुष्टम्—सेवित; शत-पत्र—सौ पंखड़ियों वाले कमल की; गन्धिना—सुगन्धि से; निरीक्ष्य—देखकर; रन्तुम्—आनन्द लूटने के लिए; भगवान्—भगवान् ने; मन:—अपना मन; दधे—फेरा।

भगवान् ने उस जंगल पर दृष्टि दौड़ाई जो भौंरों, पशुओं तथा पक्षियों की मनोहर गुंजार से गूँजायमान हो रहा था। इसकी शोभा महात्माओं के मन के समान स्वच्छ जल वाले सरोवर से तथा सौ पंखड़ियों वाले कमलों की सुगन्धि ले जाने वाली मन्द वायु से भी बढ़कर थी। यह सब देखकर भगवान् कृष्ण ने इस पवित्र वातावरण का आनन्द लेने का निश्चय किया।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने देखा कि वृन्दावन जंगल पाँचों इन्द्रियों को आनन्द प्रदान कर रहा था। भौंरे, पक्षी तथा पशु मनोहर ध्वनि कर रहे थे, जो कानों को मधुर लग रही थी। वायु पारदर्शी सरोवर की नमी लेकर जंगल में बह रही थी और भगवान् की सच्ची सेवा कर रही थी जिससे स्पर्शेन्द्रिय को

सुख मिल रहा था। वायु की मधुरता से स्वाद की भी अनुभूति हो रही थी और कमल के फूलों की सुगन्ध नथुनों को आनन्द प्रदान कर रही थी। सम्पूर्ण जंगल में स्वर्गीय सौन्दर्य छाया था जिससे नेत्रों को आध्यात्मिक आनन्द मिल रहा था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक के महत्त्व की व्याख्या इस रूप में की है।

स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया
फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ।
स्पृशच्छिखान्वीक्ष्य वनस्पतीन्मुदा
स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥ ४॥

शब्दार्थ

सः—वह; तत्र तत्र—चारों ओर; अरुण—लाल-लाल; पल्लव—कलियों के; श्रीया—सौन्दर्य से; फल—उनके फलों; प्रसून—तथा फूलों के; उरु-भरेण—भारी बोझ से; पादयोः—उनके दोनों चरणों को; स्पृशत्—छूते हुए; शिखान्—उनकी डालों के सिरे; वीक्ष्य—देखकर; वनस्पतीन्—शानदार वृक्षों को; मुदा—हर्ष से; स्मयन्—हँसते हुए; इव—प्रायः; आह—बोले; अग्र-जम्—अपने बड़े भाई बलराम से; आदि-पूरुषः—आदि परमेश्वर।

आदि परमेश्वर ने देखा कि शानदार वृक्ष अपनी सुन्दर लाल-लाल कलियों तथा फलों और फूलों के भार से लदकर अपनी शाखाओं के सिरों से उनके चरणों को स्पर्श करने के लिए झुक रहे हैं। तब मन्द हास करते हुए वे अपने बड़े भाई से बोले।

तात्पर्य : *मुदा स्मयन् इव शब्द* इंगित करते हैं कि भगवान् कृष्ण को परिहास सूझ रहा था। वे जानते थे कि वृक्ष उनकी पूजा करने के लिए सचमुच नीचे झुक रहे हैं किन्तु जैसाकि अगले श्लोक से प्रकट है वे मित्र की तरह परिहास करते हुए इसका श्रेय अपने बड़े भाई बलराम को देते हैं।

श्रीभगवानुवाच
अहो अमी देववरामरार्चितं
पादाम्बुजं ते सुमनःफलार्हणम् ।
नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मन-
स्तमोऽपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा; अहो—ओह; अमी—ये; देव-वर—देवताओं में श्रेष्ठ (श्री बलराम); अमर—अमर देवताओं द्वारा; अर्चितम्—पूजित; पाद-अम्बुजम्—चरणकमलों पर; ते—आपके; सुमनः—फूल; फल—तथा फल की; अर्हणम्—भेंट; नमन्ति—वे नमन कर रहे हैं; उपादाय—प्रस्तुत करते हुए; शिखाभिः—अपने शिरों से; आत्मनः—उनका अपना; तमः—अज्ञान का अंधकार; अपहत्यै—दूर करने के लिए; तरु-जन्म—वृक्षों के रूप में उनका जन्म; यत्—जिससे अज्ञान; कृतम्—उत्पन्न हुआ।

भगवान् ने कहा : हे देवश्रेष्ठ, देखें न, ये वृक्ष जो अमर देवताओं द्वारा पूज्य हैं आपके

चरणकमलों पर किस तरह अपना सिर झुका रहे हैं। ये वृक्ष उस गहन अज्ञान को दूर करने के लिए आपको अपने फल तथा फूल अर्पित कर रहे हैं जिसके कारण उन्हें वृक्षों का जन्म धारण करना पड़ा है।

तात्पर्य : वृन्दावन के वृक्ष यह सोच रहे थे कि पूर्व अपराधों के कारण ही उन्हें अब वृक्ष के रूप में जन्म लेना पड़ा है और अचर होने के कारण वे कृष्ण द्वारा पूरे वृन्दावन क्षेत्र में घूमने में उनका साथ नहीं दे पा रहे थे। दरअसल, वृन्दावन के वृक्ष, गौएँ तथा सभी प्राणी महान् आत्माएँ थीं जिन्हें भगवान् का सान्निध्य प्राप्त था। किन्तु वियोग भाव के कारण वृक्ष अपने को अज्ञान-ग्रस्त मानकर कृष्ण तथा बलराम के चरणकमलों में नतमस्तक होकर अपने को पवित्र बनाने का प्रयास कर रहे थे। भगवान् कृष्ण उनके मनोभावों को समझ कर उन पर स्नेह-दृष्टि डालते हुए अपने बड़े भाई बलराम से उन सबकी भक्ति की प्रशंसा करने लगे।

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं
गायन्त आदिपुरुषानुपथं भजन्ते ।
प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या
गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

एते—ये; अलिनः—भौंरे; तव—आपका; यशः—कीर्ति; अखिल-लोक—समस्त जगतों के लिए; तीर्थम्—तीर्थस्थान; गायन्तः—गुणगान कर रहे हैं; आदि-पुरुष—हे आदि भगवान्; अनुपथम्—मार्ग में आपका अनुसरण करते हुए; भजन्ते—पूजा कर रहे हैं; प्रायः—अधिकांशतः; अमी—ये; मुनि-गणाः—मुनि जन; भवदीय—आपके भक्तों में; मुख्याः—अतीव घनिष्ठ; गूढम्—छिपाया हुआ; वने—जंगल में; अपि—यद्यपि; न जहति—नहीं छोड़ते; अनघ—हे निष्पाप; आत्म-दैवम्—अपने आराध्य देव को।

हे आदिपुरुष, ये भौंरे अवश्य ही महान् मुनि तथा आपके परम सिद्ध भक्त होंगे क्योंकि ये मार्ग में आपका अनुसरण करते हुए आपकी पूजा कर रहे हैं और आपके यश का कीर्तन कर रहे हैं, जो सम्पूर्ण जगत के लिए स्वयं तीर्थस्थल हैं। यद्यपि आपने इस जंगल में अपना वेश बदल रखा है किन्तु हे अनघ, वे अपने आराध्यदेव, आपको छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में *गूढम्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। यह इंगित करता है कि यद्यपि कृष्ण या बलराम के रूप में भगवान् इस भौतिक जगत में सामान्य व्यक्ति जैसे लगते हैं किन्तु बड़े-बड़े ऋषि मुनि भगवान् को परब्रह्म के रूप में हमेशा पहचान लेते हैं। ईश्वर के सारे दिव्य स्वरूप सच्चिदानन्दमय हैं—

हमारे भौतिक शरीरों के सर्वथा विपरीत जो कि अस्थायी तथा दुख एवं अज्ञान से पूर्ण होते हैं।

तीर्थ शब्द का एक अर्थ है ''भौतिक संसार पार करने का साधन।'' भगवान् के यश के श्रवण या कीर्तन मात्र से मनुष्य तुरन्त ही भव-सागर के परे आध्यात्मिक पद को प्राप्त होता है। इसीलिए भगवान् के दिव्य यश का वर्णन यहाँ प्रत्येक मानव के लिए *तीर्थ* के रूप में हुआ है। *गायन्तः* शब्द सूचित करता है कि मुनिगण अपना मौन-व्रत भंग करके एवं अन्य निजी कार्य का त्याग करके भगवान् के कार्यकलापों का गुणगान करते हैं। असली मौन का अर्थ है व्यर्थ न बोलना, अपनी वाणी को भगवान् की प्रेमाभक्ति से सम्बन्धित ध्वनि तथा बातचीत तक ही सीमित रखना।

अनघ शब्द बतलाता है कि भगवान् कभी कोई पाप कर्म या अपराध नहीं करते। यह शब्द इस बात को भी सूचित करता है कि वे अपने निष्ठावान भक्त द्वारा अकस्मात् किये गये पाप या अपराध को तुरन्त क्षमा कर देते हैं। इस श्लोक के विशेष संदर्भ में *अनघ* शब्द यह सूचित करता है कि बलराम जी लगातार पीछा करने वाले भौंरों से तनिक भी विचलित नहीं हो रहे थे। उन्होंने उन्हें यह आशीर्वाद दिया, ''हे भौंरो! मेरे गोपनीय कुंज में आओ और इसकी सुगन्धि का आनन्द लो।''

नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः
कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ।
सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय
धन्या वनौकस इयान्हि सतां निसर्गः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

नृत्यन्ति—नाच रहे हैं; अमी—ये; शिखिनः—मयूर; ईड्य—हे आराध्य देव; मुदा—हर्ष से; हरिण्यः—हिरणियाँ; कुर्वन्ति—कर रही हैं; गोप्यः—गोपियाँ; इव—मानो; ते—आपके लिए; प्रियम्—प्रिय; ईक्षणेन—अपनी चितवन से; सूक्तैः—वैदिक स्तुतियों से; च—तथा; कोकिल-गणाः—कोयलें; गृहम्—अपने घर में; आगताय—आकर; धन्याः—भाग्यशाली; वन-ओकसः—जंगल के निवासी; इयान्—ऐसा; हि—निस्सन्देह; सताम्—सन्त पुरुषों की; निसर्गः—प्रकृति।

हे आराध्य ईश्वर, ये मोर प्रसन्नता के मारे आपके समक्ष नाच रहे हैं, हिरणियाँ अपनी स्नेहिल चितवनों से आपको गोपियों की भाँति प्रसन्न कर रही हैं। ये कोयलें आपका सम्मान वैदिक स्तुतियों द्वारा कर रही हैं। जंगल के ये सारे निवासी परम भाग्यशाली हैं और आपके प्रति इनका बर्ताव किसी महात्मा द्वारा अपने घर में आये अन्य महात्मा के स्वागत के अनुरूप है।

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्-

पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकै-
र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

धन्या—भाग्यशाली; इयम्—यह; अद्य—अब; धरणी—पृथ्वी; तृण—घास; वीरुधः—तथा झाड़ियाँ; त्वत्—आपके; पाद—पैरों का; स्पृशः—स्पर्श पाकर; द्रुम—वृक्ष; लताः—तथा लताएँ; कर-ज—अपने हाथ के नाखूनों से; अभिमृष्टाः—स्पर्श की जाकर; नद्यः—नदियाँ; अद्रयः—तथा पर्वत; खग—पक्षी; मृगाः—तथा पशु; सदय—कृपापूर्ण; अवलोकैः—आपकी चितवनों से; गोप्यः—गोपियाँ; अन्तरेण—बीच में; भुजयोः—आपकी दो भुजाओं के; अपि—निस्सन्देह; यत्—जिसके लिए; स्पृहा—इच्छा रखती है; श्रीः—लक्ष्मी जी।.

अब यह धरती परम धन्य हो गई है क्योंकि आपने अपने पैरों से इसकी घास तथा झाड़ियों का, अपने नाखूनों से इसके वृक्षों तथा लताओं का स्पर्श किया है और आपने इसकी नदियों, पर्वतों, पक्षियों तथा पशुओं पर अपनी कृपा-दृष्टि डाली है। इनसे भी बढ़ कर, आपने अपनी तरुणी गोपियों को अपनी दोनों भुजाओं में भर कर उनका आलिंगन किया है, जिसके लिए स्वयं लक्ष्मी जी लालायित रहती हैं।

तात्पर्य : *अद्य* शब्द इस धरा पर बलराम तथा कृष्ण के प्राकट्य का समय सूचित करता है। वराह का रूप धारण करके भगवान् कृष्ण ने स्वयं पृथ्वी को बचाया था और यह माना जाता है कि धरती स्थायी रूप से शेष के बल पर टिकी है। वराह तथा शेष दोनों ही बलराम के अंश हैं और स्वयं बलराम आदि भगवान् कृष्ण के अंश हैं। श्रीकृष्ण का कथन कि "यह धरती अब धन्य हो गई है" (*धन्येयमद्य धरणी*) यह इंगित करती है कि कृष्ण के रूप में भगवान् के आशीर्वाद के तुल्य कुछ भी नहीं है क्योंकि श्रीकृष्ण अपने अंश बलराम सहित प्रकट हुए हैं। *करजाभिमृष्टाः* अर्थात् नाखूनों से स्पर्श सामासिक पद है, जो सूचित करता है कि कृष्ण तथा बलराम साथ-साथ जंगल में जाते तो वृक्षों, झाड़ियों तथा लताओं से फल तथा फूल तोड़ते जाते और इनका उपयोग अपनी लीलाओं में करते। कभी कभी वे तोड़ी हुई पत्तियों को पुष्पों के साथ लगाकर अपने शरीरों को अलंकृत करते थे।

कृष्ण तथा बलराम वृन्दावन की समस्त नदियों, पहाड़ियों तथा प्राणियों को प्रेम तथा दया की दृष्टि से देखते थे। किन्तु कृष्ण द्वारा गोपियों को बाहुओं में भरकर आलिंगन किया जाना सबसे बड़ा वर था जिसके लिए लक्ष्मीजी भी तरसती लालायित थीं। वैकुण्ठ में भगवान् नारायण के वक्षस्थल पर निवास करने वाली लक्ष्मीजी को एक बार इच्छा हुई कि वे श्रीकृष्ण के वक्षस्थल से आलिंगनबद्ध हों तो इसके लिए उन्हें कठोर तपस्या करनी पड़ी। श्रीकृष्ण ने उन्हें बतलाया कि उनका वास्तविक स्थान वैकुण्ठ में

है और वे वृन्दावन में उनके वक्षस्थल पर निवास नहीं कर सकतीं। फलतः लक्ष्मीजी ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे उन्हें एक स्वर्णिम रेखा के रूप में अपने वक्षस्थल में रहने दें और भगवान् ने उन्हें यह वर दे दिया। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने पुराणों से यह घटना सुनाई है।

श्रीशुक उवाच

एवं वृन्दावनं श्रीमत्कृष्णः प्रीतमनाः पशून् ।
रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधःसु सानुगः ॥ ९॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह; वृन्दावनम्—वृन्दावन के जंगल तथा उसके निवासियों के प्रति; श्रीमत्—सुन्दर; कृष्णः—भगवान् कृष्ण ने; प्रीत-मनाः—मन में संतुष्ट हुए; पशून्—पशुओं को; रेमे—हर्ष का अनुभव किया; सञ्चारयन्—चराने में; अद्रेः—पर्वत के निकट; सरित्—नदी के; रोधःसु—किनारों पर; स-अनुगः—अपने साथियों समेत।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार वृन्दावन के रम्य जंगल तथा वृन्दावन के निवासियों के प्रति संतोष व्यक्त करते हुए भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत की तलहटी में यमुना नदी के तट पर अपने मित्रों सहित गौवों तथा अन्य पशुओं को चराने का आनन्द लिया।

क्वचिद्गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः ।
उपगीयमानचरितः पथि सङ्कर्षणान्वितः ॥ १०॥
अनुजल्पति जल्पन्तं कलवाक्यैः शुकं क्वचित् ।
क्वचित्सवल्गु कूजन्तमनुकूजति कोकिलम्
क्वचिच्च कालहंसानामनुकूजति कूजितम् ।
अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन्क्वचित् ॥ ११॥
मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगान्पशून् ।
क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥ १२॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी; गायति—गाते हैं; गायत्सु—उनके गाने पर; मद-अन्ध—मद से अंधे होकर; अलिषु—भौंरे; अनुव्रतैः—अपने मित्रों के साथ; उपगीयमान—संगीत अलापते हुए; चरितः—लीलाएँ; पथि—रास्ते में; सङ्कर्षण-अन्वितः—बलराम के साथ; अनुजल्पति—नकल करते हैं; जल्पन्तम्—चहचहाने की; कल-वाक्यैः—तोतली वाणी में; शुकम्—तोतों की; क्वचित्—कभी; क्वचित्—कभी; स—सहित; वल्गु—मोहक; कूजन्तम्—कोयल की कूक; अनुकूजति—कू कू की नकल करते हैं; कोकिलम्—कोयल की; क्वचित्—कभी कभी; च—भी; कल-हंसानाम्—हंसों के; अनुकूजति कूजितम्—कोयल की कूक का अनुकरण करते हैं; अभिनृत्यति—नाचते हैं; नृत्यन्तम्—नाचते हुए; बर्हिणम्—मोर के समक्ष; हासयन्—हँसते हुए; क्वचित्—कभी; मेघ—बादल के समान; गम्भिरया—गम्भीर; वाचा—अपनी वाणी से; नामभिः—नाम लेकर; दूर-गान्—भटक कर दूर गए हुए; पशून्—पशुओं को; क्वचित्—कभी; आह्वयति—टेरते हैं; प्रीत्या—स्नेहपूर्वक; गो—गौवों; गोपाल—तथा ग्वालबालों को; मनः-ज्ञया—मन को मोहने वाली (वाणी) से।

कभी कभी वृन्दावन में भौंरे आनन्द में इतने मग्न हो जाते थे कि वे अपनी आँखें बन्द करके

गाने लगते थे। श्रीकृष्ण अपने ग्वालमित्रों तथा बलदेव के साथ जंगल में विचरण करते हुए अपने राग में उनके गुनगुनाने की नकल उतारते थे और उनके मित्र उनकी लीलाओं का गायन करते थे। भगवान् कृष्ण कभी कोयल की बोली की नकल उतारते तो कभी हंसों के कलरव की नकल उतारते। कभी वे मोर के नृत्य की नकल उतारते जिस पर उनके ग्वालमित्र खिलखिला पड़ते। कभी कभी वे बादलों जैसे गम्भीर गर्जन के स्वर में झुंड से दूर गये हुए पशुओं का नाम लेकर बड़े प्यार से पुकारते जिससे गौवें तथा ग्वालबाल मुग्ध हो जाते।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी लिखते हैं कि भगवान् कृष्ण अपने मित्रों से मजाक किया करते, ''देखो न, यह मोर ठीक से नाचना नहीं जानता।'' और तब वे बड़े जोश से मोर के नाच की नकल करते जिससे उनके मित्रों में हँसी के फौव्वारे छूटते। वृन्दावन के भौंरे फूलों का रस पीते और इस अमृत तथा श्रीकृष्ण की संगति के संयोग से वे मदान्ध हो होकर अपनी आँखें बन्द करके गुनगुनाकर अपनी तुष्टि व्यक्त करते। श्रीकृष्ण इस गुनगुनाने का बड़ी ही कुशलता से अनुकरण करते थे।

चकोरक्रौञ्चचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः ।
अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

चकोर-क्रौञ्च-चक्राह्व-भारद्वाजान् च—चकोर, कौंच, चक्राह्व तथा भारद्वाज नामक पक्षी; बर्हिणः—मोर; अनुरौति स्म—उनकी नकल उतारते; सत्त्वानाम्—अन्य प्राणियों सहित; भीत-वत्—डरे हुए की तरह; व्याघ्र-सिंहयोः—बाघों तथा सिंहों से।.

कभी कभी वे चकोर, क्रौंच, चक्राह्व, भारद्वाज जैसी पक्षियों की नकल करके चिल्लाते और कभी छोटे पशुओं के साथ बाघों तथा शेरों के बनावटी भय से भागने लगते।

तात्पर्य : *भीतवत्* अर्थात् ''मानो भयभीत हो'' सूचित करता है कि श्रीकृष्ण सामान्य बालक की तरह क्रीड़ा करते और बाघों तथा सिंहों के बनावटी भय से वे जंगल के क्षुद्र प्राणियों के साथ भागते थे। वस्तुतः भगवान् के धाम वृन्दावन में बाघ तथा सिंह हिंस्र नहीं होते अतः किसी प्रकार का भय होने का कोई कारण नहीं था।

क्वचित्क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम् ।
स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥ १४॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी कभी; क्रीडा—खेलने से; परिश्रान्तम्—थके हुए; गोप—ग्वालबाल की; उत्सङ्ग—गोद; उपबर्हणम्—तकिया बना कर; स्वयम्—स्वयं भी; विश्रमयति—थकान मिटाते; आर्यम्—अपने बड़े भाई की; पाद-संवाहन-आदिभिः—उनके पाँव दबाकर तथा अन्य सेवाएँ करके।

जब उनके बड़े भाई खेलते खेलते थक कर अपना सिर किसी ग्वालबाल की गोद में रखकर लेट जाते तो भगवान् कृष्ण स्वयं बलराम के पाँव दबाकर तथा अन्य सेवाएँ करके उनकी थकान दूर करते।

तात्पर्य : *पाद-संवाहनादिभिः* शब्द सूचित करता है कि भगवान् कृष्ण बलराम के पाँव दबाते, पंखा झलते और पीने के लिए नदी से जल लाते।

नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ।
गृहीतहस्तौ गोपालान्हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

नृत्यतः—नाचते हुए; गायतः—गाते हुए; क्व अपि—कभी कभी; वल्गतः—घूम-घूम कर; युध्यतः—झगड़ते हुए; मिथः—परस्पर; गृहीत-हस्तौ—एक दूसरे के हाथ पकड़ कर; गोपालान्—ग्वालबालों को; हसन्तौ—हँसते हुए; प्रशशंसतुः—वे दोनों प्रशंसा करते थे।

कभी कभी, जब ग्वालबाल नाचते, गाते, इधर उधर घूमते और खेल खेल में एक दूसरे से झगड़ते तो पास ही हाथ में हाथ डाले खड़े होकर कृष्ण तथा बलराम अपने मित्रों के कार्यकलापों की प्रशंसा करते और हँसते।

क्वचित्पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः ।
वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्सङ्गोपबर्हणः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी; पल्लव—नई कोपलों से बनी; तल्पेषु—शय्याओं पर; नियुद्ध—झगड़ने से हुई; श्रम—थकावट से; कर्शितः—थके हुए; वृक्ष—वृक्ष की; मूल—जड़ के पास; आश्रयः—शरण लेकर; शेते—लेट जाते; गोप-उत्सङ्ग—किसी ग्वालबाल की गोद को; उपबर्हणः—तकिया बनाकर।

कभी कभी भगवान् कृष्ण झगड़ने से थक जाते और वृक्ष की जड़ के पास कोमल टहनियों तथा कलियों से बने हुए बिस्तर पर अपने किसी ग्वालबाल सखा की गोद को तकिया बना कर लेट जाते।

तात्पर्य : *पल्लव-तल्पेषु* शब्द बतलाता है कि भगवान् कृष्ण ने अनेक रूपों में अपना विस्तार किया और अपने उत्साही ग्वालमित्रों द्वारा टहनियों, पत्तियों तथा फूलों से जल्दी जल्दी बनाये गये बिस्तर पर लेट गये।

पादसंवाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः ।
अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

पाद-संवाहनम्—पैर दबाने का कार्य; चक्रुः—किया; केचित्—किसी ने; तस्य—उनके; महा-आत्मनः—महान् आत्माओं ने; अपरे—अन्य; हत-पाप्मानः—समस्त पापों से मुक्त; व्यजनैः—पंखों से; समवीजयन्—भलीभाँति पंखा झला।

तब कुछ ग्वालबाल जो सब के सब महान् आत्माएँ थे, उनके चरणकमल मलते और अन्य ग्वालबाल निष्पाप होने के कारण बड़ी ही कुशलतापूर्वक भगवान् पर पंखा झलते।

तात्पर्य : *समवीजयन्* शब्द सूचित करता है कि ग्वालबाल बड़ी ही पटुता से भगवान् के ऊपर पंखा झल रहे थे जिससे शीतल वायु उत्पन्न हो रही थी।

अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ।
गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

अन्ये—अन्य; तत्-अनुरूपाणि—समयोचित; मनः-ज्ञानि—मन को आकृष्ट करने वाले; महा-आत्मनः—महापुरुष (कृष्ण) के; गायन्ति स्म—गाते थे; महा-राज—हे राजा परीक्षित; स्नेह—स्नेह से; क्लिन्न—द्रवित; धियः—उनके हृदय; शनैः—धीरे धीरे।

हे राजन्, अन्य बालक समयोचित मनोहर गीत गाते और उनके हृदय भगवान् के प्रति प्रेम से द्रवित हो उठते।

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया
गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् ।
रेमे रमालालितपादपल्लवो
ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; निगूढ—छिपाया हुआ; आत्म-गतिः—निजी ऐश्वर्य; स्व-मायया—अपनी ही योग शक्ति से; गोप-आत्मजत्वम्—ग्वाले का पुत्रत्व; चरितैः—अपने कार्यकलापों से; विडम्बयन्—बहाना करते हुए; रेमे—आनन्द लिया; रमा—लक्ष्मीजी द्वारा; लालित—सेवित; पाद-पल्लवः—कोमल नवीन कली जैसे पाँव; ग्राम्यैः समम्—ग्रामीण लोगों के साथ; ग्राम्य-वत्—ग्रामीण पुरुष की भाँति; ईश-चेष्टितः—भगवान् के अद्वितीय कार्य भी प्रदर्शित करते हुए।

इस तरह भगवान् जिनके कोमल चरणकमलों की सेवा लक्ष्मीजी स्वयं करती हैं, अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा अपने दिव्य ऐश्वर्य को छिपा कर ग्वालपुत्र की तरह कार्य करते। अन्य ग्रामवासियों के साथ ग्रामीण बालक की भाँति विचरण करते हुए वे कभी कभी ऐसे करतब दिखलाते जो केवल ईश्वर ही कर सकता है।

श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयो: सखा ।
सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपा: प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्रीदामा नाम—श्रीदामा नामक; गोपाल:—ग्वालबाल; राम-केशवयो:—राम तथा कृष्ण दोनों का; सखा—मित्र; सुबल-स्तोककृष्ण-आद्या:—सुबल, स्तोककृष्ण तथा अन्य; गोपा:—ग्वालबाल; प्रेम्णा—प्रेमपूर्वक; इदम्—यह; अब्रुवन्—बोले।

एकबार राम तथा कृष्ण के अत्यन्त घनिष्ट मित्र श्रीदामा, सुबल, स्तोककृष्ण तथा अन्य ग्वालबाल बड़े ही प्रेमपूर्वक इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : *प्रेम्णा* शब्द सूचित करता है कि कृष्ण तथा बलराम के सामने प्रस्तुत की जाने वाली याचना प्रेम से प्रेरित थी, किसी व्यक्तिगत इच्छा से नहीं। ग्वालबाल इच्छुक थे कि कृष्ण तथा बलराम असुरों के संहार तथा तालवन के मधुर फलों के खाने की लीलाएँ प्रदर्शित करें। इसीलिए इन्होंने निम्नानुसार अनुरोध किया।

राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण ।
इतोऽविदूरे सुमहद्वनं तालालिसङ्कुलम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

राम राम—हे राम; महा-बाहो—हे शक्तिशाली भुजाओं वाले; कृष्ण—हे कृष्ण; दुष्ट-निबर्हण—दुष्टों का अन्त करने वाले; इत:—यहाँ से; अविदूरे—दूर नहीं; सु-महत्—अत्यन्त विस्तृत; वनम्—जंगल; ताल-आलि—ताड़ वृक्षों की पंक्तियों से; सङ्कुलम्—परिपूर्ण।

[ग्वालबालों ने कहा]: हे राम, हे महाबाहु, हे कृष्ण, हे दुष्टों के संहर्ता, यहाँ से कुछ ही दूरी पर एक बहुत ही विशाल जंगल है, जो ताड़ वृक्षों की पाँतों से परिपूर्ण है।

तात्पर्य : *वराह पुराण* में कहा गया है—

अस्ति गोवर्धनं नाम क्षेत्रं परमदुर्लभम्।

मथुरापश्चिमे भागे अदूराद् योजनद्वयम्।

''मथुरा के पश्चिम दो योजन (सोलह मील) की दूरी पर गोवर्धन नामक एक पवित्र स्थान है, जिसे प्राप्त कर पाना अत्यन्त कठिन है।'' *वराह पुराण* में यह भी कहा गया है :

अस्ति तालवनं नाम धेनुकासुररक्षितम्।

मथुरापश्चिमे भागे अदूराद् एकयोजनम्॥

''मथुरा से पश्चिम दिशा में निकट ही एक योजन (आठ मील) की दूरी पर तालवन नामक जंगल

है, जिसकी रखवाली धेनुकासुर करता था। ''अत: ऐसा प्रतीत होता है कि तालवन मथुरा तथा गोवर्धन पर्वत के बीचोबीच स्थित है। *श्रीहरिवंश पुराण* में तालवन का वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है :

स तु देश: सम: स्निग्ध: सुमहान् कृष्णमृत्तिक: ।

दर्भप्राय: स्थुलीभूतो लोष्ट्र-पाषाणवर्जित: ॥

''यहाँ की भूमि समतल एवं अत्यन्त विस्तीर्ण है। उसकी मिट्टी काली है, दर्भ घास से ढकी है और कंकड़-पत्थर से रहित है।''

फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च ।
सन्ति किन्त्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

फलानि—फलों; तत्र—वहाँ; भूरीणि—अनेकानेक; पतन्ति—गिरते रहते हैं; पतितानि—पहले ही गिर चुके हैं; च—तथा; सन्ति—हैं; किन्तु—फिर भी; अवरुद्धानि—नियंत्रण में रखे हुए; धेनुकेन—धेनुक द्वारा; दुरात्मना—दुष्ट।.

उस तालवन में वृक्षों से अनेकानेक फल गिरते रहते हैं और बहुत से फल पहले से ही जमीन पर पड़े हुए हैं। किन्तु इन सारे फलों की रखवाली दुष्ट धेनुक द्वारा की जा रही है।

तात्पर्य : धेनुकासुर तालवन के ताड़ वृक्षों के स्वादिष्ट पके फलों को किसी को खाने नहीं देता था अत: कृष्ण के तरुण मित्रों ने जनता के इस जंगल के फलों का मजा लूटने के अधिकार से अनुचित तौर पर वंचित होने का विरोध किया।

सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक् ।
आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृत: ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

स:—वह; अति-वीर्य:—अत्यन्त शक्तिशाली; असुर:—असुर; राम—हे राम; हे कृष्ण—हे कृष्ण; खर-रूप—गधे का रूप; धृक्—धारण करके; आत्म-तुल्य—अपने समान; बलै:—जिनकी शक्ति; अन्यै:—अन्य; ज्ञातिभि:—साथियों के साथ; बहुभि:—अनेक; वृत:—घिरा हुआ।.

हे राम, हे कृष्ण, धेनुक अत्यन्त बलशाली असुर है और उसने गधे का वेश बना रखा है। उसके आसपास अनेक मित्र हैं जिन्होंने उसी जैसा ही रूप धारण कर रखा है और वे उसी के समान बलशाली हैं।

तस्मात्कृतनराहाराद्भीतैर्नृभिरमित्रहन् ।

न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसङ्घैर्विवर्जितम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

तस्मात्—उससे; कृत-नर-आहारात्—मनुष्यों को खा जाने वाले से; भीतैः—डरे हुए; नृभिः—मनुष्यों के द्वारा; अमित्र-हन्—हे शत्रुओं का वध करने वाले; न सेव्यते—सेवन नहीं किया जाता; पशु-गणैः—विभिन्न पशुओं के द्वारा; पक्षि-सङ्घैः—पक्षियों के झुंड द्वारा; विवर्जितम्—परित्यक्त।.

धेनुकासुर ने जीवित मनुष्यों को खा लिया है इसलिए सारे लोग तथा पशु तालवन जाने से डरते हैं। हे शत्रुहन्ता, पक्षी तक उड़ने से डरते हैं।

तात्पर्य : कृष्ण तथा बलराम के ग्वालमित्रों ने दोनों भाइयों को प्रोत्साहित किया कि वे तुरन्त तालवन जाकर धेनुकासुर का वध करें। वे उन्हें *अमित्र-हन्* कहकर सम्बोधित करते हैं जिसका अर्थ है ''शत्रु का हन्ता।'' ग्वालबालों ने भगवान् की शक्ति का आनन्दमय चिन्तन करते हुए तर्क किया, ''कृष्ण पहले ही बक तथा अघ जैसे भयानक असुरों का वध कर चुके हैं अतएव इस घृणास्पद धेनुक नामक गर्दभ के विषय में वह कौन सी विशेष बात हो सकती है, जिसके कारण यह वृन्दावन का कट्टर शत्रु बना हुआ है।''

ग्वालबाल चाहते थे कि कृष्ण तथा बलराम इन असुरों का वध करें जिससे वृन्दावन के पुण्यात्मा निवासी तालवन के फलों का आस्वादन कर सकें। इस तरह उन्होंने विशेष कृपा किये जाने की प्रार्थना की कि गर्दभ-असुरों का वध किया जाय।

विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च ।
एष वै सुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥ २५॥

शब्दार्थ

विद्यन्ते—उपस्थित हैं; अभुक्त-पूर्वाणि—इसके पूर्व कभी भी जिनका स्वाद नहीं लिया गया; फलानि—फल; सुरभीणि—सुगन्धित; च—तथा; एषः—यह; वै—निस्सन्देह; सुरभिः—सुगन्धित; गन्धः—सुगन्धि; विषूचीनः—सर्वत्र फैली हुई; अवगृह्यते—अनुभव की जाती है।.

तालवन में ऐसे मधुर गन्ध वाले फल हैं, जिन्हें किसी ने कभी नहीं चखा। तालफलों की चारों ओर फैली खुशबू को हम अब भी सूँघ सकते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार तालफलों की मधुर सुगंध पुरवा हवा द्वारा ले जाई जाती थी जो वृन्दावन में वर्षा कराने में लाभदायी होती है। यह पुरवा हवा सामान्यतया भादों मास में चलती हैं और इस तरह फलों की सर्वोच्च पक्वता को सूचित करती है। यह तथ्य कि बालगण सुगन्ध को जान गए यह बतलाता है कि तालवन निकट ही था।

प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम् ।
वाञ्छास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

प्रयच्छ—कृपया दीजिये; तानि—उनको; नः—हमको; कृष्ण—हे कृष्ण; गन्ध—सुगन्धि से; लोभित—लुब्ध; चेतसाम्—जिनके मन; वाञ्छा—इच्छा; अस्ति—है; महती—विशाल; राम—हे राम; गम्यताम्—हमें जाने दें; यदि—यदि; रोचते—अच्छा विचार जैसा लगता है।

हे कृष्ण! आप हमारे लिए वे फल ला दें। हमारे मन उनकी सुगन्ध से अत्यधिक आकृष्ट हैं। हे बलराम, उन फलों को पाने की हमारी इच्छा अत्यन्त प्रबल है। यदि आप सोचते हैं कि यह विचार अच्छा है, तो चलिये उस तालवन में चलें।

तात्पर्य : यद्यपि तालवन तक न मनुष्य, न ही पशु-पक्षी पहुँच पाते थे किन्तु ग्वालबालों को कृष्ण तथा बलराम पर इतना भरोसा था कि उन्होंने पक्का मान लिया था कि ये दोनों स्वामी बिना प्रयास के पापी गर्दभ असुरों को मार कर स्वादिष्ट तालफल प्राप्त कर सकते हैं। कृष्ण के ग्वालबाल मित्र अत्यन्त उच्च स्वरूपसिद्ध आत्माएँ हैं, जो सामान्यतया मीठे फलों के लिए ललचाने वाले न थे। वस्तुत: वे भगवान् से केवल हँसी-मजाक कर रहे हैं और उन्हें तालवन में अभूतपूर्व वीरतापूर्वक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। वृन्दावन में कृष्ण के रहते हुए असंख्य असुरों ने वहाँ के दिव्य वातावरण को क्षुब्ध कर रखा था और भगवान् उनको अपनी दैनिक लीला के रूप में मार देंगे।

चूँकि कृष्ण बहुत से असुरों का वध कर चुके थे अत: आज के दिन उन्होंने बलराम को यह श्रेय देना चाहा कि उन्हें प्रथम असुर धेनुकासुर का वध करना होगा। *यदि रोचते* कथन से ग्वालबालों का आशय यह है कि कृष्ण तथा बलराम इस असुर का वध ग्वालबालों को तुष्ट करने के लिए नहीं अपितु उन्हें ठीक लगे तभी करें।

एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया ।
प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥ २७॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सुहृत्—अपने मित्रों के; वचः—शब्द; श्रुत्वा—सुनकर; सुहृत्—मित्रों को; प्रिय—हर्ष; चिकीर्षया—प्रदान करने की इच्छा से; प्रहस्य—हँस कर; जग्मतुः—दोनों गये; गोपैः—ग्वालबालों के द्वारा; वृतौ—घिरे हुए; ताल-वनम्—तालवन तक; प्रभू—दोनों स्वामी।

अपने प्रिय सखाओं के वचन सुनकर कृष्ण तथा बलराम हँस पड़े और उन्हें खुश करने के

लिए वे अपने ग्वालमित्रों के साथ तालवन के लिए रवाना हो गये।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण सोच रहे थे, ''भला गर्दभ इतना विचित्र कैसे हो सकता है?'' अत: अपने बालमित्रों के अनुनय-विनय पर उन्हें हँसी आ गई। जैसाकि भगवान् कपिल ने *श्रीमद्भागवत* (३.२८.३२) में कहा है—*हासं हरेरवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम्*—भगवान् की हँसी अत्यन्त उदार होती है। जो लोग भगवान् के समक्ष नतमस्तक होते हैं, उनके इस जगत के कष्टों से उत्पन्न अश्रुओं के सागर को भगवान् की हँसी सुखा देती है। अत: अपने बालसखाओं को प्रोत्साहित करने के लिए कृष्ण तथा बलराम हँसे और तुरन्त ही उनको साथ लेकर तालवन के लिए चल पड़े।

बल: प्रविश्य बाहुभ्यां तालान्सम्परिकम्पयन् ।
फलानि पातयामास मतङ्गज इवौजसा ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

बल:—बलराम ने; प्रविश्य—घुस कर; बाहुभ्याम्—अपनी दोनों भुजाओं से; तालान्—ताड़ वृक्षों को; सम्परिकम्पयन्—झकझोरते हुए; फलानि—फलों को; पातयाम् आस—गिरा दिया; मतम्-गज:—मतवाला हाथी; इव—सदृश; ओजसा—अपने बल से।

भगवान् बलराम सबसे पहले तालवन में प्रविष्ट हुए। तब अपने दोनों हाथों से मतवाले हाथी का बल लगाकर वृक्षों को हिलाने लगे जिससे ताड़ के फल भूमि पर आ गिरें।

फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभ: ।
अभ्यधावत्क्षितितलं सनगं परिकम्पयन् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

फलानाम्—फलों के; पतताम्—गिरते हुए; शब्दम्—शब्द को; निशम्य—सुनकर; असुर-रासभ:—गर्दभ वेशधारी असुर; अभ्यधावत्—आगे दौड़ा; क्षिति-तलम्—पृथ्वी की सतह को; स-नगम्—वृक्षों समेत; परिकम्पयन्—हिलाता हुआ।

गिरते हुए फलों की ध्वनि सुनकर गर्दभ असुर धेनुक पृथ्वी तथा वृक्षों को थरथराता हुआ आक्रमण करने के लिए उनकी ओर दौड़ा।

समेत्य तरसा प्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली ।
निहत्योरसि काशब्दं मुञ्चन्पर्यसरत्खल: ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

समेत्य—उनसे मिल कर; तरसा—तेजी से; प्रत्यक्—पिछला; द्वाभ्याम्—दोनों; पद्भ्याम्—पैरों से; बलम्—बलदेव को; बली—बलशाली असुर ने; निहत्य—वार करके; उरसि—छाती पर; का-शब्दम्—भद्दी रेंकने की आवाज; मुञ्चन्—करते हुए; पर्यसरत्—चारों ओर दौड़ने लगा; खल:—दुष्ट गधा।

वह बलशाली असुर बलराम की ओर झपटा और उनकी छाती पर अपने पिछले पैरों के खुरों से कठोर वार किया। तत्पश्चात् धेनुक जोर जोर से रेंकता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगा।

पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक्स्थितः ।
चरणावपरौ राजन्बलाय प्राक्षिपद्रुषा ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

पुनः—फिर से; आसाद्य—उनके निकट आकर; संरब्धः—प्रचण्ड, उग्र; उपक्रोष्टा—गधे ने; पराक्—उनकी ओर अपनी पीठ करके; स्थितः—खड़े होकर; चरणौ—दोनों पैर; अपरौ—पिछले; राजन्—हे राजा परीक्षित; बलाय—बलराम पर; प्राक्षिपत्—चलाया; रुषा—क्रोध से।

हे राजन्, वह क्रुद्ध गधा फिर से बलराम की ओर बढ़ा और अपनी पीठ उनकी ओर करके खड़ा हो गया। तत्पश्चात् क्रोध से रेंकते हुए उस असुर ने उन पर दुलत्ती चलाई।

तात्पर्य : *उपक्रोष्टा* शब्द न केवल गधे को अपितु पास ही रेंकते हुए गधे को सूचित करता है। इस तरह यहाँ यह इंगित हुआ है कि बलशाली धेनुक क्रोध भरी भयानक आवाज निकाल रहा था।

स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना ।
चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

सः—उन्होंने; तम्—उसको; गृहीत्वा—पकड़ कर; प्रपदोः—खुर से; भ्रामयित्वा—घुमा कर; एक-पाणिना—एक हाथ से; चिक्षेप—फेंक दिया; तृण-राज-अग्रे—तालवृक्ष की चोटी पर; भ्रामण—घुमाने से; त्यक्त—त्याग कर; जीवितम्—अपने प्राण।

बलराम ने धेनुक के खुर पकड़े, उसे एक हाथ से घुमाया और ताड़वृक्ष की चोटी पर फेंक दिया। इस तरह तेजी से घुमाने के कारण वह असुर मर गया।

तेनाहतो महातालो वेपमानो बृहच्छिराः ।
पार्श्वस्थं कम्पयन्भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तेन—उस (धेनुकासुर के मृत शरीर) से; आहतः—चोट खाकर; महा-तालः—ताड़ का विशाल वृक्ष; वेपमानः—हिलता हुआ; बृहत्-शिराः—विशाल चोटी वाला; पार्श्व-स्थम्—पास ही स्थित अन्य वृक्षों को; कम्पयन्—हिलाता हुआ; भग्नः—टूटा हुआ; सः—वह; च—तथा; अन्यम्—दूसरे को; सः—वह; अपि—भी; च—तथा; अपरम्—अगले, अन्य को।

बलराम ने धेनुकासुर के मृत शरीर को जंगल के सबसे ऊँचे ताड़ वृक्ष के ऊपर फेंक दिया और जब यह मृत शरीर उस वृक्ष की चोटी पर जा गिरा तो वह वृक्ष हिलने लगा। इस विशाल वृक्ष से पास का एक अन्य वृक्ष भी चरमराया और असुर के भार के कारण टूट गया। इसके

निकट का वृक्ष भी इसी तरह हिल कर टूट गया। इस तरह एक एक करके जंगल के अनेक वृक्ष हिले और टूट गये।

तात्पर्य : बलराम ने धेनुकासुर को इतनी तेजी से विशाल ताड़ वृक्ष के ऊपर पटका कि प्रतिक्रियाओं की एक शृंखला पैदा हो गई जिसके फलस्वरूप अनेक ऊँचे-ऊँचे ताड़ वृक्ष हिल हिल कर, घोर अड़भड़ाहट टूट कर, भूमि पर गिर पड़े।

बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः ।
तालाश्चकम्पिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥ ३४॥

शब्दार्थ

बलस्य—बलराम की; लीलया—लीला से; उत्सृष्ट—ऊपर फेंका हुआ; खर-देह—गधे के शरीर से; हत-आहताः—एक दूसरे से भिड़ कर; तालाः—ताल के वृक्ष; चकम्पिरे—चरमराये; सर्वे—सभी; महा-वात—प्रबल वायु द्वारा; ईरिताः—उड़ाये हुए; इव—मानो।.

बलराम द्वारा इस गर्दभ असुर के शरीर को सबसे ऊँचे ताड़वृक्ष के ऊपर फेंकने की लीला से सारे वृक्ष चरमराने लगे और एक दूसरे से भिड़ने लगे मानो प्रबल झंझा के द्वारा झकझोरे गये हों।

नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे ।
ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वङ्ग यथा पटः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतत्—यह; चित्रम्—आश्चर्यजनक; भगवति—भगवान् के लिए; हि—निस्सन्देह; अनन्ते—अनन्त; जगत्-ईश्वरे—ब्रह्माण्ड के स्वामी; ओत-प्रोतम्—ऊपर नीचे फैला हुआ (ताना बाना); इदम्—यह ब्रह्माण्ड; यस्मिन्—जिसमें; तन्तुषु—इसके धागों पर; अङ्ग—हे परीक्षित; यथा—जिस तरह.

हे परीक्षित, बलराम को अनन्त भगवान् एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियन्ता जान लेने पर बलराम द्वारा धेनुकासुर का मारा जाना उतना आश्चर्यजनक नहीं है। निस्सन्देह, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उन पर उसी प्रकार टिका है, जिस तरह बुना हुआ वस्त्र तानों-बानों पर टिका रहता है।

तात्पर्य : अभागे व्यक्ति भगवान् की आनन्दमय लीलाओं को नहीं समझ सकते। इस प्रसंग में, श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि भगवान् में असीम शक्ति है जैसाकि *अनन्ते* शब्द से प्रकट है। भगवान् विशेष अवसर की आवश्यकता के अनुसार अपनी शक्ति के एक सूक्ष्म अंश का प्रदर्शन करते हैं। बलराम जी ने तालवन में अवैध रूप से कब्जा करने वाले आसुरी गधों के झुंड को विनष्ट करना

चाहा। अत: उन्होंने धेनुकासुर तथा अन्य असुरों को सहज ही मार डालने भर की दिव्य शक्ति का प्रदर्शन किया।

ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये ।
क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन्सर्वे संरब्धा हतबान्धवाः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; कृष्णम्—कृष्ण पर; च—तथा; रामम्—बलराम पर; च—तथा; ज्ञातयः—घनिष्ट मित्र गण; धेनुकस्य—धेनुक के; ये—जो; क्रोष्टारः—गधों ने; अभ्यद्रवन्—आक्रमण किया; सर्वे—सभी; संरब्धाः—क्रुद्ध; हत-बान्धवाः—अपने मित्र के मारे जाने से।

धेनुकासुर के घनिष्ठ मित्र, अन्य गर्दभ असुर, उसकी मृत्यु देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और वे तुरन्त कृष्ण तथा बलराम पर आक्रमण करने के लिए दौड़े।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है "यहाँ यह कहा गया है कि गर्दभासुरों ने सर्वप्रथम कृष्ण पर हमला किया और तब बलराम पर (*कृष्णं च रामं च*)। इसका एक कारण यह हो सकता है कि ये असुर बलराम के शौर्य को देख चुके थे अत: पहले उन्होंने कृष्ण पर वार करना उचित समझा। अथवा यह हो सकता है कि अपने बड़े भाई के स्नेहवश, कृष्ण बलराम तथा इन असुरों के बीच आ गये हों। *कृष्णं च रामं च* शब्दों से यह भी सूचित हो सकता है कि अपने छोटे भाई के स्नेहवश बलराम कृष्ण की ओर चले गये हों।"

तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया ।
गृहीतपश्चाच्चरणान्प्राहिणोत्तृणराजसु ॥ ३७॥

शब्दार्थ

तान् तान्—एक एक करके, वे सभी; आपततः—आक्रमण करते हुए; कृष्णः—कृष्ण ने; रामः—बलराम ने; च—तथा; नृप—हे राजन्; लीलया—सरलता से; गृहीत—पकड़ कर; पश्चात्-चरणान्—पिछली टाँगों को; प्राहिणोत्—फेंक दिया; तृण-राजसु—ताड़ के वृक्षों के ऊपर।

हे राजन्, जब असुरों ने आक्रमण किया कृष्ण तथा बलराम ने उनकी पिछली टाँगों से पकड़-पकड़ कर उन सब को ताड़ वृक्षों के ऊपर फेंक दिया।

फलप्रकरसङ्कीर्णं दैत्यदेहैर्गतासुभिः ।
रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

फल-प्रकर—फलों के ढेर से; सङ्कीर्णम्—ढकी; दैत्य-देहै:—असुरों के शरीरों से; गत-असुभि:—प्राणविहीन; रराज—सुशोभित; भू:—पृथ्वी; स-ताल-अग्रै:—ताड़ वृक्षों की चोटियों समेत; घनै:—बादलों से; इव—जिस तरह; नभ:-तलम्—आकाश।

इस तरह फलों के ढेरों से तथा ताड़ वृक्ष की टूटी चोटियों में फँसे असुरों के मृत शरीरों से ढकी हुई पृथ्वी अत्यन्त सुन्दर लग रही थी मानो बादलों से आकाश अलंकृत हो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार असुरों के शरीर काले तथा नीले बादलों जैसे काले थे और उनके शरीरों से बड़ी मात्रा में बहकर निकला रक्त चमकीले लाल बादलों जैसा लग रहा था। इस तरह सारा दृश्य अत्यन्त सुन्दर था। राम तथा कृष्ण जैसे विविध रूपों में भगवान् सदैव दिव्य लगते हैं और जब वे अपनी दिव्य लीलाएँ करते हैं, तो परिणाम भी सुन्दर और दिव्य होता है भले ही वे कट्टर गर्दभासुरों के वध जैसे उग्र कार्य क्यों न कर रहे हों।

तयोस्तत्सुमहत्कर्म निशम्य विबुधादय: ।
मुमुचु: पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवु: ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तयो:—दोनों भाइयों के; तत्—उस; सु-महत्—अत्यन्त महान; कर्म—कार्य को; निशम्य—सुनकर; विबुध-आदय:—देवता गण तथा अन्य उच्च जीवों ने; मुमुचु:—छोड़ा; पुष्प-वर्षाणि—फूलों की वर्षा; चक्रु:—सम्पन्न किया; वाद्यानि—संगीत; तुष्टुवु:—स्तुति की।

दोनों भाइयों का यह सुन्दर करतब (लीला) सुनकर देवताओं तथा अन्य उच्चस्थ प्राणियों ने फूलों की वर्षा की और उनकी प्रशंसा में गीत गाये तथा स्तुतियाँ कीं।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी टीका करते हैं कि देवता, ऋषिमुनि तथा अन्य उच्च प्राणी तालवन में कृष्ण तथा बलराम द्वारा अत्यन्त शक्तिशाली गर्दभ असुरों का इतनी तेजी और आसानी से मारा जाना देख कर चकित एवं हर्षित थे।

अथ तालफलान्यादन्मनुष्या गतसाध्वसा: ।
तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; ताल—ताड़ वृक्षों के; फलानि—फलों को; आदन्—खाया; मनुष्या:—मनुष्यगण; गत-साध्वसा:—निडर होकर; तृणम्—घास; च—तथा; पशव:—पशुगण; चेरु:—चरने लगे; हत—मारा गया; धेनुक—धेनुकासुर का; कानने—जंगल में।

जिस वन में धेनुकासुर मारा गया था, उसमें लोग मुक्त भाव से फिर से जाने लगे और निडर होकर ताड़ वृक्षों के फल खाने लगे। अब गौवें भी वहाँ पर स्वतंत्रतापूर्वक घास चरने लगीं।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार निम्न जाति के लोग, यथा पुलिन्द ताड़वृक्ष के फल खाते थे किन्तु कृष्ण के ग्वालमित्रों ने उन्हें खाना उचित नहीं समझा क्योंकि वे गधों के रक्त से सन चुके थे।

कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कृष्णः—भगवान् कृष्ण; कमल-पत्र-अक्षः—कमल की पंखड़ियों के समान नेत्रों वाले; पुण्य-श्रवण-कीर्तनः—जिनका श्रवण तथा कीर्तन अत्यन्त पुण्य कार्य माना जाता है; स्तूयमानः—स्तुति किया गया; अनुगैः—अपने अनुयायी; गोपैः—ग्वालबालों के द्वारा; स-अग्र-जः—अपने बड़े भाई बलराम के साथ साथ; व्रजम्—व्रज; आव्रजत्—लौट आये।

तत्पश्चात् कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्ण, जिनके यश को सुनना और जिनका कीर्तन करना अत्यन्त पवित्र है, अपने बड़े भाई बलराम के साथ अपने घर व्रज लौट आये। रास्ते भर उनके श्रद्धावान अनुयायी ग्वालबालों ने उनके यश का गान किया।

तात्पर्य : जब कृष्ण के यश का उच्चारण किया जाता है, तो वक्ता तथा श्रोता दोनों ही शुद्ध एवं पवित्र हो जाते हैं।

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्ह-
वन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ।
वेणुम्क्वणन्तमनुगैरुपगीतकीर्तिं
गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन्समेताः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; गो-रजः—गायों के चलने से उठी हुई धूल से; छुरित—सने; कुन्तल—बालों के भीतर; बद्ध—बँधा हुआ; बर्ह—मोरपंख; वन्य-प्रसून—जंगली फूल; रुचिर-ईक्षण—मोहने वाली आँखें; चारु-हासम्—तथा सुन्दर मुसकान; वेणुम्—बाँसुरी; क्वणन्तम्—बजाते हुए; अनुगैः—अपने साथियों के द्वारा; उपगीत—गायी जाकर; कीर्तिम्—उनकी कीर्ति; गोप्यः—गोपियाँ; दिदृक्षित—देखने के लिए उत्सुक; दृशः—उनकी आँखें; अभ्यगमन्—आगे बढ़ीं; समेताः—एकसाथ।

गौवों के द्वारा उड़ाई गई धूल से सने श्रीकृष्ण के बाल मोर पंख तथा जंगली फूलों से सज्जित किये गये थे। भगवान् कृष्ण अपनी वंशी बजाते हुए मोहक दृष्टि से देख रहे थे और सुन्दर ढंग से हँस रहे थे तथा उनके संगी उनके यश का गान कर रहे थे। सारी गोपियाँ एकसाथ उनसे मिलने चली आईं क्योंकि उनके नेत्र दर्शन करने के लिए अत्यन्त व्यग्र थे।

तात्पर्य : बाह्य रूप से गोपियाँ विवाहित तरुणियाँ थीं फलतः वे श्रीकृष्ण जैसे सुन्दर तरुण से आँखें मिलाने में संकोच कर रही थीं और डर रही थीं। किन्तु श्रीकृष्ण तो भगवान् हैं और सारे जीव

उनके नित्य दास हैं। इसलिए गोपियाँ, यद्यपि हृदय से अत्यन्त शुद्ध आत्माएँ थीं किन्तु वे सुन्दर तरुण श्रीकृष्ण के दर्शन करके प्रेमपीड़ित आँखों को तुष्ट करने के लिए आगे आने में तनिक भी नहीं सकुचाईं। गोपियों ने उनकी वंशी की मधुर ध्वनि का तथा उनके शरीर की मोहक सुगन्ध का भी आस्वादन किया।

पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गै-
स्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि ।
तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं
सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

पीत्वा—पीकर; मुकुन्द-मुख—भगवान् मुकुन्द के मुख का; सारघम्—मधु; अक्षि-भृङ्गैः—भौंरे जैसे नेत्रों से; तापम्—पीड़ा; जहुः—त्याग दिया; विरह-जम्—विरह से उत्पन्न; व्रज-योषितः—वृन्दावन की स्त्रियों ने; अह्नि—दिन में; तत्—उस; सत्-कृतिम्—आदर करते हुए; समधिगम्य—पूरी तरह स्वीकार करके; विवेश—उन्होंने प्रवेश किया; गोष्ठम्—ग्वालों के गाँव में; स-व्रीड—लज्जा सहित; हास—हँसी; विनयम्—तथा विनयशीलता; यत्—जो; अपाङ्ग—तिरछी चितवनों का; मोक्षम्—डाला जाना।

वृन्दावन की स्त्रियों ने अपने भ्रमर रूपी नेत्रों से मुकुन्द के सुन्दर मुख का मधुपान किया और इस तरह दिन में वियोग के समय उन्हें जो पीड़ा हुई थी उसे उन्होंने त्याग दिया। वृन्दावन की तरुण स्त्रियों ने भगवान् पर तिरछी चितवन डाली जो लाज, हँसी तथा विनय से पूर्ण थी तथा कृष्ण ने इस चितवन को समुचित सम्मान मानते हुए गोप-ग्राम में प्रवेश किया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* में इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है ''कृष्ण की अनुपस्थिति के कारण सारी गोपियाँ वृन्दावन में अत्यधिक उदास रहती थीं। वे सारा दिन या तो जंगल में विचरण कर रहे या चरागाह में गौवें चराते कृष्ण का चिन्तन करती रहतीं। किन्तु जब उन्होंने कृष्ण को लौटकर आते देखा तो उनकी सारी चिन्ताएँ दूर हो गईं और वे कृष्ण के मुख की ओर उसी प्रकार देखने लगीं जिस तरह कमल के फूल के मधु के लिए भौंरे मँडराते हैं। जब कृष्ण गाँव में प्रविष्ट हुए तो तरुण गोपियाँ मुसकाने लगीं। अपनी वंशी बजाते कृष्ण ने गोपियों के सुन्दर हँसमुख चेहरों का आनन्द लूटा।''

भगवान् श्रीकृष्ण शृंगार कौशल के परम स्वामी हैं। उन्होंने वृन्दावन की तरुण गोपियों के साथ प्रेमालाप किया। जब कोई कुमारी युवती प्रेम करती है, तो वह अपने प्रेमी को लज्जा, हर्ष तथा विनय

के साथ तिरछी नजरों से देखती है। जब प्रेमी उसकी चितवन का प्रेम-निमंत्रण स्वीकार कर लेता है और उससे संतुष्ट हो जाता है, तो प्रेमिका का हृदय सुख से ओतप्रोत हो उठता है। ये सचमुच में सुन्दर तरुण कृष्ण तथा वृन्दावन की प्रेमपिपासु गोपियों के बीच चल रहे प्रेमालाप के आदान-प्रदान थे।

तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ।
यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तयोः—दोनों; यशोदा-रोहिण्यौ—यशोदा तथा रोहिणी (कृष्ण तथा बलराम की माताओं) ने; पुत्रयोः—पुत्रों को; पुत्र-वत्सले—अपने पुत्रों के स्नेहसिक्त; यथा-कामम्—अपनी अपनी इच्छाओं के अनुरूप; यथा-कालम्—परिस्थितियों के अनुरूप; व्यधत्ताम्—प्रस्तुत किया; परम-आशिषः—उत्तम भेंटें।

माता यशोदा तथा रोहिणी ने अपने दोनों पुत्रों के प्रति अत्यधिक स्नेह दर्शाते हुए उन्हें उनकी इच्छा के अनुसार तथा समयानुकूल उत्तमोत्तम वस्तुएँ प्रदान कीं।

तात्पर्य : *परमाशिषः* शब्द प्रेममयी माताओं के आशीर्वाद को सूचित करता है, जिसके अन्तर्गत उत्तम भोजन, सुन्दर वस्त्र, आभूषण, खिलौने तथा स्थायी स्नेह निहित हैं। *यथाकामं यथाकालम्* यह बतलाते हैं कि यद्यपि यशोदा तथा रोहिणी ने कृष्ण तथा बलराम की सारी इच्छाएँ पूरी कर दीं किन्तु साथ ही उन्होंने अपने पुत्रों के कार्यकलापों को भी नियमित बनाया। दूसरे शब्दों में, उन्होंने अपने पुत्रों के लिए उत्तम भोजन तैयार किया किन्तु साथ ही उन्होंने इसका भी ध्यान रखा कि वे समय से भोजन करें। इसी तरह उनके द्वारा उचित समय पर खेलने और उचित समय से सोने का भी ध्यान रखा। *यथाकामम्* का अर्थ यह नहीं हैं कि माताओं ने अपने पुत्रों को मनमाना करने की छूट दे दी थी अपितु उन्होंने शिष्ट ढंग से अपने पुत्रों पर आशीष की वर्षा की थी।

श्रील सनातन गोस्वामी टीका करते हैं कि माताएँ अपने पुत्रों को इतना अधिक प्यार करती थीं कि जब वे उनका आलिंगन करतीं तो ठीक से देखतीं कि उनके सारे अंग स्वस्थ तथा पुष्ट तो हैं।

गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ।
नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

गत—दूर हो गयी; अध्वान-श्रमौ—चलते रहने से उत्पन्न थकान; तत्र—वहाँ (घर में); मज्जन—स्नान; उन्मर्दन—मालिश; आदिभिः—इत्यादि के द्वारा; नीवीम्—अधोवस्त्रों को; वसित्वा—पहन कर; रुचिराम्—मनोहर; दिव्य—दिव्य; स्रक्—माला; गन्ध—तथा सुगन्धि से; मण्डितौ—अलंकृत।

स्नान करने तथा मालिश से उन दोनों की ग्रामीण रास्तों में चलने से उत्पन्न थकान दूर हो गई। इसके बाद उन्हें सुन्दर वस्त्रों से सजाया गया और दिव्य मालाओं तथा सुगन्धित पदार्थों से अलंकृत किया गया।

जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्यन्नमुपलालितौ ।
संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

जननी—अपनी माताओं के द्वारा; उपहृतम्—प्रदत्त; प्राश्य—अच्छी तरह खाकर; स्वादु—स्वादिष्ट; अन्नम्—भोजन; उपलालितौ—लाड़ प्यार किये जाकर; संविश्य—प्रवेश करके; वर—श्रेष्ठ; शय्यायाम्—बिस्तर पर; सुखम्—सुखपूर्वक; सुषुपतुः—दोनों सो गये; व्रजे—व्रज में।

अपनी माताओं द्वारा प्रदत्त स्वादिष्ट भोजन को पेट-भर खाने तथा विविध प्रकार से दुलारे जाने के बाद वे दोनों भाई व्रज में अपने अपने उत्तम बिछौनों पर लेट गये और सुखपूर्वक सो गये।

एवं स भगवान्कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित् ।
ययौ राममृते राजन्कालिन्दीं सखिभिर्वृतः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सः—वह; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; वृन्दावन-चरः—वृन्दावन में विचरण करते हुए; क्वचित्—एक बार; ययौ—गये; रामम् ऋते—बलराम के बिना; राजन्—हे राजा परीक्षित; कालिन्दीम्—यमुना नदी के तट पर; सखिभिः—अपने मित्रों के द्वारा; वृतः—घिरे।

हे राजन्, इस प्रकार भगवान् कृष्ण अपनी लीलाएँ करते हुए वृन्दावन क्षेत्र में विचरण करते थे। एक बार वे अपने मित्रों समेत यमुना नदी के तट पर गये। तब बलराम उनके साथ नहीं थे।

अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ।
दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृष्णार्ता विषदूषितम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; गावः—गौवें; च—तथा; गोपाः—ग्वालबाल; च—तथा; निदाघ—ग्रीष्म की; आतप—कड़ी धूप से; पीडिताः—संतप्त; दुष्टम्—प्रदूषित; जलम्—जल को; पपुः—पी लिया; तस्याः—उस नदी का; तृष-आर्ताः—प्यास से पीड़ित; विष—विष से; दूषितम्—दूषित।

उस समय गौवें तथा ग्वालबाल ग्रीष्म की कड़ी धूप से अत्यन्त संतप्त हो उठे। प्यास से व्याकुल होने के कारण उन्होंने यमुना नदी का जल पिया। किन्तु यह जल विष से दूषित था।

विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ।
निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलान्ते कुरूद्वह ॥ ४९ ॥
वीक्ष्य तान्वै तथाभूतान्कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।
ईक्षयामृतवर्षिण्या स्वनाथान्समजीवयत् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

विष-अम्भः—विषाक्त जल; तत्—उस; उपस्पृश्य—स्पर्श मात्र से; दैव—भगवान् की योग शक्ति से; उपहत—खो दी; चेतसः—अपनी चेतना; निपेतुः—गिर पड़े; व्यसवः—निर्जीव; सर्वे—सभी; सलिल-अन्ते—जल के किनारे; कुरु-उद्वह—हे कुरुवंशी वीर; वीक्ष्य—देखकर; तान्—उनको; वै—निस्सन्देह; तथा-भूतान्—ऐसी अवस्था में; कृष्णः—भगवान् कृष्ण ने; योग-ईश्वर-ईश्वरः—योगेश्वरों के ईश्वर; ईक्षया—अपनी चितवन से; अमृत-वर्षिण्या—अमृत रूपी वर्षा से; स्व-नाथान्—उन्हें ही अपना स्वामी मानने वाले; समजीवयत्—पुनःजिला दिया।

विषैले जल का स्पर्श करते ही सारी गौवें तथा ग्वालबाल भगवान् की दैवी शक्ति से अचेत हो गये और निर्जीव होकर नदी के तट पर गिर पड़े। हे कुरु-वीर, उन्हें इस अवस्था में देखकर, समस्त योगेश्वरों के ईश्वर भगवान् कृष्ण को अपने उन भक्तों पर दया आ गई जिनका उनके अतिरिक्त अन्य कोई स्वामी नहीं था। इस तरह उन्होंने अपनी अमृत-चितवन की वृष्टि द्वारा उन्हें तुरन्त पुनः जीवित कर दिया।

ते सम्प्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात् ।
आसन्सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; सम्प्रतीत—पुनः प्राप्त करने पर; स्मृतयः—अपनी स्मृति; समुत्थाय—उठकर; जल-अन्तिकात्—जल के बाहर से; आसन्—हो गये; सु-विस्मिताः—अत्यधिक चकित; सर्वे—सभी; वीक्षमाणाः—देखते हुए; परस्परम्—एक दूसरे को।

अपनी पूर्ण चेतना वापस पाकर सारी गौवें तथा बालक जल के बाहर आकर उठ खड़े हुये और बड़े ही आश्चर्य से एक दूसरे को देखने लगे।

अन्वमंसत तद्राजन्गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ।
पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

अन्वमंसत—अतः उन्होंने सोचा; तत्—वह; राजन्—हे राजा परीक्षित; गोविन्द—गोविन्द की; अनुग्रह-ईक्षितम्—कृपा-दृष्टि के कारण; पीत्वा—पीकर; विषम्—विष; परेतस्य—जीवन से हाथ धो बैठने वालों का; पुनः—फिर से; उत्थानम्—उत्थान, उठ खड़े होना; आत्मनः—अपने से।

हे राजन्, तब उन ग्वालबालों ने सोचा कि यद्यपि वे विषैला जल पीकर सचमुच ही मर चुके थे किन्तु गोविन्द की कृपादृष्टि से ही उनको पुनः जीवनदान मिला है और अपने बल पर उठ खड़े हुए हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''धेनुकासुर का वध'' नामक पन्द्रहवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सोलह

कृष्ण द्वारा कालिय नाग को प्रताड़ना

इस अध्याय में भगवान् कृष्ण द्वारा यमुना नदी के सन्निकट स्थित सरोवर के भीतर कालिय नाग–दमन की लीला तथा नागपत्नियों द्वारा स्तुति किये जाने पर कालिय पर कृपा किये जाने का वर्णन हुआ है।

कालिय के विष से दूषित यमुना जल को फिर से शुद्ध करने के लिए भगवान् कृष्ण नदी तट पर एक कदम्ब वृक्ष पर चढ़ गये और वहाँ से जल में कूद पड़े। तत्पश्चात् वे निर्भीक होकर जल के भीतर मदमस्त हाथी की तरह क्रीड़ा करने लगे। कालिय को कृष्ण का इस तरह उसके निजी वास में घुसना सहन नहीं हो पाया अत: उसने भगवान् के पास जाकर छाती में डस लिया। जब कृष्ण के मित्रों ने यह देखा तो वे मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। उसी समय व्रजभूमि में तरह तरह के अपशकुन प्रकट होने लगे—पृथ्वी काँपने लगी, उल्कापात होने लगा और प्राणियों के वाम अंग फड़कने लगे।

वृन्दावनवासी विचार करने लगे, ''आज कृष्णजी बलराम के बिना ही जंगल गये हैं अत: न जाने उन पर कौन विपत्ति आ पड़ी हो।'' ऐसा सोचते हुए वे कृष्ण के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए यमुना के तट पर पहुँचे। उन्होंने यमुना नदी के सन्निकट सरोवर के जल के भीतर अपने प्राणप्रिय कृष्ण को कालिय नाग की कुण्डली में लिपटा हुआ देखा। वृन्दावनवासियों को तीनों लोक शून्य से दिखने लगे और उन सबों ने जल में प्रवेश करने की तैयारी कर ली। किन्तु भगवान् बलराम ने उन सबों को रोका क्योंकि उन्हें कृष्ण की शक्ति का पूरा पूरा पता था।

तब अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों को इस तरह विक्षुब्ध देखकर कृष्ण ने अपने शरीर का अत्यधिक विस्तार कर लिया जिससे सर्प को अपनी कुण्डली को ढीला करना पड़ा और कृष्ण को छोड़ना पड़ा। इसके बाद वे उस सर्प के फनों पर नाचने लगे। अपने इस अद्भुत प्रचण्ड नृत्य से श्रीकृष्ण ने सर्प के

एक हजार फनों को कुचल डाला जिससे उसका शरीर शिथिल पड़ गया। मुख से रक्त वमन करता हुआ कालिय अंत में समझ गया कि कृष्ण आदिपुरुष नारायण हैं, जो चराचर के स्वामी हैं अत: उसने उनकी शरण ग्रहण की।

नागपत्नियों ने देखा कि कालिय अत्यधिक थक गया है, अत: उन्होंने भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर अपना शीश झुकाया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने पति को मुक्त कराने की आशा से विविध स्तुतियाँ कीं, ''अच्छा ही हुआ कि आपने हमारे अत्याचारी पति की यह दशा बना दी है। आपके क्रोध से उसे महान् लाभ हुआ है। कालिय ने अपने पूर्व-जन्मों में कितना पुण्य कमाया था! आज उसने अपने सिर पर भगवान् के चरणकमलों की वह धूल धारण की है, जिसे पाना ब्रह्माण्ड की जननी, माता लक्ष्मी के लिए भी दुर्लभ है। अब कृपा करके कालिय द्वारा अज्ञानवश किये गये अपराध को क्षमा कर दें और उसे जीवित रहने दें।''

नागपत्नियों की प्रार्थना से प्रसन्न होकर कृष्ण ने कालिय को छोड़ दिया। उसे धीरे धीरे चेतना हो आई और उसने अपनी महान् शक्तियों को पुन: पा लिया। तब कालिय ने संतप्त स्वर से अपने द्वारा किये गये अपराध को स्वीकार किया और कृष्ण की कई प्रकार से स्तुति की। उसने कहा कि वह उनका आदेश पालने के लिए तैयार है। कृष्ण ने उससे कहा कि वह सपरिवार यमुना के सरोवर (कुंड) को छोड़ दे और रमणक द्वीप चला जाये।

श्रीशुक उवाच

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्ण: कृष्णाहिना विभु: ।
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन्सर्पं तमुदवासयत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; विलोक्य—देखकर; दूषिताम्—प्रदूषित; कृष्णाम्—यमुना नदी को; कृष्ण:—भगवान् श्रीकृष्ण ने; कृष्ण-अहिना—काले सर्प (कालिय) द्वारा; विभु:—सर्वशक्तिमान; तस्या:—नदी की; विशुद्धिम्—शुद्धि की; अन्विच्छन्—इच्छा करते हुए; सर्पम्—सर्प को; तम्—उस; उदवासयत्—भगा दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् श्रीकृष्ण ने यह देखकर कि काले सर्प कालिय ने यमुना नदी को दूषित कर रखा है, उसे शुद्ध करने की इच्छा की और इस तरह उन्होंने कालिय को उसमें से निकाल भगाया।

श्रीराजोवाच
कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद्भगवानहिम् ।
स वै बहुयुगावासं यथासीद्विप्र कथ्यताम् ॥ २॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; कथम्—कैसे; अन्तः-जले—जल के भीतर; अगाधे—अथाह; न्यगृह्णात्—दमन किया; भगवान्—भगवान् ने; अहिम्—सर्प को; सः—वह, कालिय; वै—निस्सन्देह; बहु-युग—अनेक युगों से; आवासम्—निवास स्थान बनाये हुए; यथा—किस तरह; आसीत्—हो गया; विप्र—हे विद्वान ब्राह्मण; कथ्यताम्—कृपा करके बतलायें।

राजा परीक्षित ने पूछा: हे विद्वान मुनि, कृपा करके यह बतलायें कि किस तरह भगवान् ने यमुना के अगाध जल में कालिय नाग को प्रताड़ित किया और वह कालिय किस तरह अनेक युगों से वहाँ पर रह रहा था?

ब्रह्मन्भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छन्दवर्तिनः ।
गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥ ३॥

शब्दार्थ

ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; भगवतः—भगवान् का; तस्य—उस; भूम्नः—अनन्त; स्व-छन्द-वर्तिनः—अपनी इच्छा से कर्म करनेवाले; गोपाल—ग्वालबाल के रूप में; उदार—उदार; चरितम्—लीलाएँ; कः—कौन; तृप्येत—तृप्त की जा सकती है; अमृतम्—ऐसी अमृतमय; जुषन्—भाग लेते हुए, सेवन करने से।

हे ब्राह्मण, अनन्त भगवान् अपनी इच्छानुसार स्वतंत्र रूप से कर्म करते हैं। उन्होंने वृन्दावन में ग्वालबाल के रूप में जो अमृत तुल्य उदार लीलाएँ सम्पन्न कीं भला उन्हें सुनकर कौन तृप्त हो सकता है?

श्रीशुक उवाच
कालिन्द्यां कालियस्यासीद् ह्रदः कश्चिद्विषाग्निना ।
श्रप्यमाणपया यस्मिन्पतन्त्युपरिगाः खगाः ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; कालिन्द्याम्—यमुना नदी के भीतर; कालियस्य—कालिय नाग का; आसीत्—था; ह्रदः—झील, सरोवर, कुंड; कश्चित्—कोई; विष—उसके विष की; अग्निना—अग्नि से; श्रप्यमाण—गर्मी से उबलकर; पयाः—इसका जल; यस्मिन्—जिसमें; पतन्ति—गिर पड़ते थे; उपरि-गाः—ऊपर से जाते हुए; खगाः—पक्षीगण।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कालिन्दी (यमुना) नदी के भीतर एक सरोवर (कुंड) था जिसमें कालिय नाग रह रहा था जिसके अग्नि-तुल्य विष से उसका जल निरन्तर उबलता रहता था। इस तरह से उत्पन्न भाप इतनी विषैली होती थी कि दूषित सरोवर के ऊपर से उड़नेवाले पक्षी उसमें गिर पड़ते थे।

तात्पर्य : इस प्रसंग में आचार्यों की व्याख्या है कि कालिय कुंड (सरोवर) नदी की मुख्य धारा से

अलग स्थित था अन्यथा यमुना का जल मथुरा जैसे नगरों तथा उसके आगे के स्थानों में भी विषैला हो गया होता।

विप्रुष्मता विषदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ।
म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

विप्रुट्-मता—जल की बूँदों से युक्त; विष-द—विषैली; ऊर्मि—लहरें; मारुतेन—वायु के द्वारा; अभिमर्शिताः—स्पर्श करते; म्रियन्ते—मर जाते; तीर-गाः—तट पर स्थित; यस्य—जिसके; प्राणिनः—सारे जीव; स्थिर-जङ्गमाः—चर तथा अचर।

उस घातक सरोवर के ऊपर से बहने वाली हवा जल की बूँदों को तट तक ले जाती थी। उस विषैली वायु के सम्पर्क में आने से ही तट की सारी वनस्पति तथा जीवजन्तु मर जाते थे।

तात्पर्य : स्थिर शब्द वृक्ष समेत सभी प्रकार की वनस्पति का द्योतक है और जङ्गम शब्द सचल प्राणियों, यथा पशुओं, सरीसृपों, पक्षियों और कीटों का द्योतक है। श्रील श्रीधर गोस्वामी ने श्री हरिवंश पुराण (विष्णु पर्व ११.४२, ४४, ४६) से इस सरोवर के विषय में उद्धरण दिया है—

दीर्घं योजनविस्तारं दुस्तरं त्रिदशैरपि।
गंभीरं अक्षोभ्यजलं निष्कम्पमिव सागरम्॥
दुःखोपसर्पं तीरेषु ससर्पैर्विपुलैर्बिलै।
विषारणिभवस्याग्नेर्धूमेन परिवेष्टितम्॥
तृणेष्वपि पतत्स्वप्सु ज्वलन्तमिव तेजसा।
समन्ताद् योजनं साग्रं तीरेष्वपि दुरासदम्॥

"सरोवर कहीं कहीं पर आठ मील तक चौड़ा था और देवता तक उसे पार नहीं कर सकते थे। सरोवर का जल काफी गहरा था और समुद्र की अचल गहराइयों की भाँति क्षुब्ध नहीं हो सकता था। उस सरोवर तक पहुँचना कठिन था क्योंकि इसके किनारे पर अनेक बिल थे जिनमें सर्प रहते थे। सरोवर के चारों ओर सर्पों के विष की अग्नि से उत्पन्न कुहरा था और यह शक्तिशाली अग्नि जल में गिरने वाले घास के तिनके तक को तुरन्त भस्म कर देती थी। सरोवर से आठ मील की दूरी तक वायुमण्डल अत्यन्त निकृष्ट था।"

श्रील सनातन गोस्वामी कहते हैं कि जल स्तम्भ के गुह्य विज्ञान से अर्थात् जल से ठोस वस्तुएँ

बनाने की विद्या से कालिय ने सरोवर के भीतर अपना नगर बना रखा था।

तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन
दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ।
कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्ग-
मास्फोट्य गाढरशनो न्यपतद्विषोदे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस कालिय को; चण्ड-वेग—डरावनी शक्ति का; विष—विष; वीर्यम्—प्रबल; अवेक्ष्य—देखकर; तेन—उसके द्वारा; दुष्टाम्—प्रदूषित; नदीम्—नदी को; च—तथा; खल—ईर्ष्यालु असुर; संयमन—दमन करने के लिए; अवतारः—आध्यात्मिक जगत से अवतरण हुआ है, जिसका; कृष्णः—कृष्ण; कदम्बम्—कदम्ब वृक्ष में; अधिरुह्य—चढ़कर; ततः—उसमें से; अति-तुङ्गम्—अत्यन्त ऊँचा; आस्फोट्य—अपनी भुजाएँ ठोंकते हुए; गाढ-रशनः—दृढ़ता से फेंटा बाँधते हुए; न्यपतत्—कूद पड़े; विष-उदे—विषैले जल में।

भगवान् कृष्ण ने देखा कि कालिय नाग ने किस तरह अपने अत्यन्त प्रबल विष से यमुना नदी को दूषित कर रखा था। चूँकि कृष्ण आध्यात्मिक जगत से ईर्ष्यालु असुरों का दमन करने के लिए ही विशेष रूप से अवतरित हुए थे इसलिए वे तुरन्त एक बहुत ऊँचे कदम्ब वृक्ष की चोटी पर चढ़ गये और उन्होंने युद्ध के लिए अपने को तैयार कर लिया। उन्होंने अपना फेंटा बाँधा, बाहुओं में ताल दी और फिर विषैले जल में कूद पड़े।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार भगवान् कृष्ण ने कालिय से युद्ध करने की तैय्यारी में अपने बालों को भी पीछे बाँध लिया।

सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेग-
सङ्क्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः ।
पर्यक्प्लुतो विषकषायबिभीषणोर्मि-
र्धावन्धनुःशतमनन्तबलस्य किं तत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सर्प-ह्रदः—सर्प का सरोवर; पुरुष-सार—परम आदरणीय भगवान् के; निपात-वेग—बलपूर्वक गिरने से; सङ्क्षोभित—पूरी तरह से विचलित; उरग—सर्पों का; विष-उच्छ्वसित—विष में ही श्वास लेते हुए; अम्बु-राशिः—जिसका सारा जल; पर्यक्—चारों ओर; प्लुतः—बढ़ा हुआ; विष-कषाय—विष से दूषित होने से; बिभीषण—भयावनी; ऊर्मिः—लहरें; धावन्—उठती हुई; धनुः-शतम्—एक सौ धनुष की दूरी; अनन्त-बलस्य—असीम बल वाले के लिए; किम्—क्या; तत्—वह।

भगवान् जब सर्प के सरोवर में कूदे तो सारे सर्प उत्तेजित हो उठे और तेजी से साँस लेने लगे जिसके कारण विष की मात्रा से जल और भी दूषित हो उठा। भगवान् के प्रविष्ट होने के वेग से सरोवर चारों ओर उमड़ने लगा और भयंकर विषैली लहरों ने एक सौ धनुष-दूरी तक की सारी

भूमि को आप्लावित कर दिया। किन्तु अनन्त शक्ति रखने वाले भगवान् के लिए यह तनिक भी विस्मयजनक नहीं है।

तस्य ह्रदे विहरतो भुजदण्डघूर्ण-
वार्घोषमङ्ग वरवारणविक्रमस्य ।
आश्रुत्य तत्स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य
चक्षुःश्रवाः समसरत्तदमृष्यमाणः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उनके; ह्रदे—सरोवर में; विहरतः—क्रीड़ा करते हुए; भुज-दण्ड—अपनी बलशाली भुजाओं को; घूर्ण—घुमाया; वाः—जल की; घोषम्—ध्वनि; अङ्ग—हे राजा; वर-वारण—विशाल हाथी की तरह; विक्रमस्य—शौर्यका; आश्रुत्य—सुनकर; तत्—वह; स्व-सदन—अपने निवास का; अभिभवम्—अतिक्रमण; निरीक्ष्य—देखकर; चक्षुः-श्रवाः—कालिय; समसरत्—आगे आया; तत्—उसे; अमृष्यमाणः—सहन न कर सकने से।.

कालिय-सरोवर में कृष्ण अपनी विशाल बाहें घुमाते और तरह तरह से जल में गूँज पैदा करते हुए, शाही हाथी की तरह क्रीड़ा करने लगे। जब कालिय ने ये शब्द सुने तो वह जान गया कि कोई उसके सरोवर में घुस आया है। वह इसे सहन नहीं कर पाया अतः वह तुरन्त ही बाहर निकला।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार भगवान् कृष्ण जल के भीतर केवल अपने हाथ-पाँव पटककर अद्‍भुत संगीतमय ध्वनि उत्पन्न कर रहे थे।

तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं
श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम् ।
क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रि
सन्दश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उनको; प्रेक्षणीय—देखने में आकर्षक; सु-कुमार—अत्यन्त सुकोमल; घन—बादल की तरह; अवदातम्—सफेद चमकता; श्रीवत्स—श्रीवत्स चिह्न धारण किये; पीत—तथा पीला; वसनम्—वस्त्र; स्मित—हँसते हुए; सुन्दर—सुन्दर; आस्यम्—मुख वाले; क्रीडन्तम्—क्रीड़ा करते हुए; अप्रति-भयम्—अन्यों के भय के बिना; कमल—कमल के; उदर—भीतरी भाग जैसा; अङ्घ्रिम्—चरण; सन्दश्य—काटते हुए; मर्मसु—वक्षस्थल पर; रुषा—क्रोध से; भुजया—कुण्डली से; चछाद—लपेट लिया।.

कालिय ने देखा कि पीले रेशमी वस्त्र धारण किये श्रीकृष्ण अत्यन्त सुकोमल लग रहे थे, उनका आकर्षक शरीर सफेद बादलों की तरह चमक रहा था, उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह था, उनका मुखमंडल सुमधुर हँसी से युक्त था और उनके चरण कमल के फूल के गुच्छों

के सदृश थे। भगवान् निडर होकर जल में क्रीड़ा कर रहे थे। उनके अद्‌भुत रूप के बावजूद ईर्ष्यालु कालिय ने क्रुद्ध होकर उनके वक्षस्थल पर डस लिया और फिर उन्हें अपनी कुंडली में पूरी तरह से लपेट लिया।

तं नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्ट-
मालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः ।
कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा
दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तम्—उनको; नाग—सर्प की; भोग—कुंडली के भीतर; परिवीतम्—घिरा हुआ; अदृष्ट-चेष्टम्—किसी प्रकार की गति न दिखलाते हुए; आलोक्य—देखकर; तत्-प्रिय-सखाः—उनके प्रिय सखा; पशु-पाः—ग्वाले; भृश-आर्ताः—अत्यधिक विचलित; कृष्णे—कृष्ण को; अर्पित—अर्पित किया; आत्म—स्वयं को; सु-हृत्—अपने सम्बन्धी; अर्थ—सम्पत्ति; कलत्र—पत्नियाँ; कामाः—तथा सारी भोग्य वस्तुएँ; दुःख—पीड़ा से; अनुशोक—पश्चात्ताप; भय—तथा डर; मूढ—मोहित; धियः—बुद्धि; निपेतुः—भूमि पर गिर पड़े।

जब ग्वाल समुदाय के सदस्यों ने, जिन्होंने कृष्ण को अपना सर्वप्रिय मित्र मान रखा था, उन्हें नाग की कुण्डली में लिपटा हुआ और गतिहीन देखा तो वे अत्यधिक विचलित हो उठे। उन्होंने कृष्ण को अपना सर्वस्व—अपने आप को, अपने परिवार, अपनी सम्पत्ति, अपनी पत्नियाँ तथा सारे आनन्द—अर्पित कर रखा था। भगवान् को कालिय सर्प के चंगुल में देखकर उनकी बुद्धि शोक, पश्चात्ताप तथा भय से भ्रष्ट हो गई और वे पृथ्वी पर गिर पड़े।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी बतलाते हैं कि ग्वालबाल, कुछ गोप तथा आस-पास के किसान जो कृष्ण के भक्त थे वे भूमि पर इस प्रकार गिर पड़े मानों जड़ से कटे हुए वृक्ष हों।

गावो वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः ।
कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदन्त्य इव तस्थिरे ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

गावः—गौवें; वृषाः—बैल; वत्सतर्यः—बछिया; क्रन्दमानाः—जोर से चिल्लाते हुए; सु-दुःखिताः—अत्यधिक दुखित; कृष्णे—कृष्ण पर; न्यस्त—गड़ा दिया; ईक्षणाः—अपनी नजर; भीताः—भयभीत; रुदन्त्यः—रोते हुए; इव—मानो; तस्थिरे—बिना हिले-डुले खड़े रहे।

गौवें, बैल तथा बछड़ियाँ सभी अत्यधिक दुखारी होकर करुणापूर्वक कृष्ण को पुकारने लगीं। वे पशु उन पर अपनी दृष्टि गड़ाये हुए भयवश बिना हिले-डुले खड़े रहे मानो चिल्लाना चाह रहे हों परन्तु आघात के कारण अश्रु न बहा सकते हों।

अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ।
उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; व्रजे—वृन्दावन में; महा-उत्पाताः—बड़े बड़े उपद्रव; त्रि-विधाः—तीन प्रकार के; हि—निस्सन्देह; अति-दारुणाः—अत्यन्त भयावने; उत्पेतुः—प्रकट हुए; भुवि—पृथ्वी पर; दिवि—आकाश में; आत्मनि—जीवों के शरीरों में; आसन्न—निकट; भय—खतरा; संशिनः—घोषणा करते हुए, सूचना देते हुए।

तब वृन्दावन क्षेत्र में सभी तीन प्रकार के—पृथ्वी पर होनेवाले, आकाश में होनेवाले तथा जीवों के शरीर में होनेवाले—भयावने अपशकुन प्रकट होने लगे जो तुरन्त आने वाले खतरे की चेतावनी कर रहे थे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार अपशकुन इस प्रकार थे: पृथ्वी में कंपन उत्पन्न होने लगे, आकाश से उल्कापात होने लगा और जीवों के शरीर में कम्पन के साथ ही बाईं आँख तथा शरीर के अन्य अंग फड़कने लगे। ये अपशकुन तुरंत आने वाले संकट की सूचना देते हैं।

तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नन्दपुरोगमाः ।
विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥ १३ ॥
तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः ।
तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥ १४ ॥
आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः ।
निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तान्—उन संकेतों को; आलक्ष्य—देखकर; भय-उद्विग्नाः—भय से विचलित; गोपाः—ग्वाले; नन्द-पुरः-गमाः—नन्द महाराज इत्यादि; विना—रहित; रामेण—बलराम के; गाः—गौवें; कृष्णम्—कृष्ण को; ज्ञात्वा—जानकर; चारयितुम्—चराने के लिए; गतम्—गया हुआ; तैः—उनसे; दुर्निमित्तैः—अपशकुनों से; निधनम्—विनाश; मत्वा—मानकर; प्राप्तम्—प्राप्त किया; अतत्-विदः—उनके ऐश्वर्य को न जानने से; तत्-प्राणाः—उन्हें अपना प्राण मानकर; तत्-मनस्काः—उन्हीं में लीन मन; ते—वे; दुःख—दुख; शोक—शोक; भय—तथा भय से; आतुराः—विह्वल; आ-बाल—बच्चों समेत; वृद्ध—बूढ़े लोग; वनिताः—तथा स्त्रियाँ; सर्वे—सभी; अङ्ग—हे राजा परीक्षित; पशु-वृत्तयः—जिस तरह वत्सल गाय अपने बछड़े के साथ करती है; निर्जग्मुः—बाहर चले गये; गोकुलात्—गोकुल से; दीनाः—दीन समझकर; कृष्ण-दर्शन—कृष्ण को देखने के लिए; लालसाः—उत्सुक, लालायित।

इन अपशकुनों को देखकर नन्द महाराज तथा अन्य ग्वाले भयभीत थे क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि उस दिन कृष्ण अपने बड़े भाई बलराम के बिना गाय चराने गये थे। चूँकि उन्होंने कृष्ण को अपना प्राण मानते हुए अपने मन उन्हीं पर वार दिये थे क्योंकि वे उनकी महान् शक्ति तथा ऐश्वर्य से अनजान थे। इस तरह उन्होंने इन अपशकुनों से यह अर्थ निकाला कि कृष्ण की मृत्यु हो गई है

और वे दु:ख, पश्चात्ताप तथा भय से अभिभूत हो गये थे। बालक, स्त्रियाँ तथा वृद्ध पुरुषों समेत वृन्दावन के सारे निवासी कृष्ण को उसी तरह मानते थे जिस तरह गाय अपने निरीह नवजात बछड़े को मानती है। इस तरह ये दीन-दुखी लोग उन्हें ढूँढ़ने के इरादे से गाँव से बाहर दौड़ पड़े।

तांस्तथा कातरान्वीक्ष्य भगवान्माधवो बल: ।
प्रहस्य किञ्चिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य स: ॥ १६॥

शब्दार्थ

तान्—उन्हें; तथा—इस तरह; कातरान्—व्याकुल; वीक्ष्य—देखकर; भगवान्—भगवान्; माधव:—समस्त योग विद्या के स्वामी; बल:—बलराम; प्रहस्य—मुसकाते हुए; किञ्चित्—थोड़ा-सा; न—नहीं; उवाच—कहा; प्रभाव-ज्ञ:—बल को जानने वाले; अनुजस्य—छोटे भाई के; स:—उन्होंने।

समस्त दिव्य ज्ञान के स्वामी भगवान् बलराम हँसने लगे और वृन्दावन-वासियों को इस तरह व्याकुल देखकर कुछ भी नहीं बोले क्योंकि उन्हें अपने छोटे भाई के असाधारण बल का पता था।

तात्पर्य : श्रीबलराम भगवान् कृष्ण के ही स्वांश हैं अत: उनसे अभिन्न हैं। वस्तुत: वे पृथक् रूपों में एक ही परम सत्य हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार भगवान् बलराम हँस रहे थे क्योंकि उन्होंने सोचा, ''कृष्ण मेरे शेषनाग रूप में वाले मुझसे कभी नहीं खेलते लेकिन अब वे कालिय नामक सामान्य संसारी सर्प से खेल रहे हैं।''

यह प्रश्न किया जा सकता है कि कृष्ण तथा बलराम ने क्यों अपने प्रिय भक्तों को कालिय नाग की कुण्डली के भीतर कृष्ण के बन्दी रहने की क्षणिक अवधि तक इतनी वेदना में रखा। यह स्मरण रखना चाहिए कि क्योंकि वृन्दावन के वासी नितान्त मुक्तात्मा थे अतएव उन्हें भौतिक भावों का अनुभव नहीं हुआ। जब उन्होंने अपने प्रिय कृष्ण को क्षणिक संकट में देखा तो उनका कृष्ण के लिए प्रेम पराकाष्ठा तक पहुँच गया और इस तरह वे उनके प्रेमभाव से पूर्णतया मग्न हो गये। सारी परिस्थिति को आध्यात्मिक दृष्टि से देखना होगा अन्यथा यह दिखाई नहीं पड़ेगी।

तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदै: ।
भगवल्लक्षणैर्जग्मु: पदव्या यमुनातटम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

ते—वे; अन्वेषमाणाः—ढूँढ़ते हुए; दयितम्—अपने प्रियतम; कृष्णम्—कृष्ण को; सूचितया—चिन्हित (पथ); पदैः—पैर के निशानों से; भगवत्-लक्षणैः—भगवान् के चिह्नों से; जग्मुः—गये; पदव्या—रास्ते से होकर; यमुना-तटम्—यमुना के किनारे तक।

वृन्दावन के निवासी कृष्ण के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए अपने सर्वप्रिय कृष्ण की खोज में यमुना के किनारे की ओर दौड़े चले गये क्योंकि उन पदचिन्हों में भगवान् के अनूठे चिन्ह थे।

ते तत्र तत्राब्जयवाङ्कुशाशनि-
ध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः ।
मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे
निरीक्षमाणा ययुरङ्ग सत्वराः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; तत्र तत्र—यहाँ वहाँ; अब्ज—कमल के फूल; यव—जौ; अङ्कुश—हाथी हाँकने का अंकुश; अशनि—वज्र; ध्वज—तथा पताका से; उपपन्नानि—विभूषित; पदानि—पदचिह्नों को; विट्-पतेः—ग्वाल जाति के स्वामी, भगवान् कृष्ण के; मार्गे—रास्ते में; गवाम्—गौवों के; अन्य-पद—तथा अन्य पदचिह्न; अन्तर-अन्तरे—बीच बीच में; निरीक्षमाणाः—देखकर; युयुः—गये; अङ्ग—हे राजन्; स-त्वराः—तेजी से।

समस्त ग्वाल समुदाय के स्वामी भगवान् कृष्ण के पदचिन्ह कमल के फूल, जौ, हाथी के अंकुश, वज्र तथा पताका से युक्त थे। हे राजा परीक्षित, मार्ग में गौवों के पदचिन्हों के बीच बीच में उनके पदचिन्हों को देखते हुए वृन्दावन के निवासी तेजी से दौड़े चले गये।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी इस प्रकार टीका करते हैं: ''चूँकि कृष्ण कुछ समय पहले उस मार्ग से होकर निकले थे तो फिर उनके पदचिह्न गौवों, ग्वालबालों इत्यादि के पदचिह्नों से घिरकर मिट क्यों नहीं गये? वृन्दावन के पशुओं तथा पक्षियों के पदचिह्नों से वे क्यों नहीं मिटे थे? इसका उत्तर विश्पति शब्द द्वारा सूचित होता है। चूँकि भगवान् कृष्ण सभी जीवों की सम्पत्ति हैं अतएव व्रज के जंगल के सारे निवासी उनके चरणचिह्नों को जो पृथ्वी के आभूषण समान थे महान् कोष की तरह सुरक्षित रखेंगे। वृन्दावन के अन्तर्गत एक भी प्राणी कृष्ण के पदचिह्नों के ऊपर कभी भी नहीं चला होगा।''

अन्तर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात्
कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते ।
गोपांश्च मूढधिषणान्परितः पशूंश्च

सङ्क्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्ताः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अन्तः—भीतर; ह्रदे—सरोवर के; भुजग—सर्प के; भोग—शरीर के भीतर; परीतम्—लिपटे; आरात्—दूर से ही; कृष्णम्—कृष्ण को; निरीहम्—निश्चेष्ट; उपलभ्य—देखकर; जल-आशय—जलाशय के; अन्ते—भीतर; गोपान्—ग्वालबालों को; च—तथा; मूढ-धिषणान्—अचेत; परितः—घेरकर; पशून्—पशुओं को; च—तथा; सङ्क्रन्दतः—चिल्लाते हुए; परम-कश्मलम्—महानतम मोह; आपुः—अनुभव किया; आर्ताः—पीड़ित होने से।

ज्योंही वे यमुना नदी के किनारे की ओर भागे जा रहे थे त्योंही उन्होंने दूर से देखा कि कृष्ण सरोवर में काले साँप की कुण्डली में निश्चेष्ट पड़े हैं। उन्होंने यह भी देखा कि सारे ग्वालबाल मूर्छित होकर पड़े हैं और सारे पशु उनके चारों ओर खड़े होकर कृष्ण के लिए रम्भा रहे हैं। यह दृश्य देखकर वृन्दावनवासी वेदना तथा भ्रम के कारण विह्वल हो उठे।

तात्पर्य : हड़बड़ीमें एवं शोकाकुल वृन्दावनवासियों ने यह पता लगाने का प्रयास किया कि कहीं कालिय कृष्ण को किनारे से जल में बलपूर्वक घसीट तो नहीं ले गया था या कृष्ण स्वयं किनारे से कूदकर सर्प के चंगुल में जा पहुँचे थे। उन्हें परिस्थिति के विषय में कुछ भी नहीं पता चल पाया और कृष्ण के ग्वालसखा अचेत होने के कारण उनसे कुछ भी नहीं बता सकते थे। गौवें तथा बछड़े कृष्ण के लिए रम्भा रहे थे। सारी परिस्थिति विह्वल बनाने वाली थी जिससे वृन्दावन के वासियों के मन में आघात तथा वेदना उत्पन्न हो गयी थी।

गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते
तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः ।
ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदु:खतप्ताः
शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियाँ; अनुरक्त-मनसः—उनसे अनुरक्त मनवाली; भगवति—भगवान् में; अनन्ते—अनन्त; तत्—उनका; सौहृद—प्रेमपूर्ण; स्मित—मुसकान; विलोक—चितवन; गिरः—तथा वचन; स्मरन्त्यः—स्मरण कर करके; ग्रस्ते—पकड़े जाकर; अहिना—सर्प द्वारा; प्रिय-तमे—सबसे प्यारे; भृश—अत्यन्त; दु:ख—पीड़ा से; तप्ताः—पीड़ित; शून्यम्—रिक्त; प्रिय-व्यतिहृतम्—अपने प्रिय से विलग होकर; ददृशुः—उन्होंने देखा; त्रि-लोकम्—तीनों लोकों (सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) को।

जब युवती गोपियों ने, जिनके मन निरंतर अनन्त भगवान् कृष्ण में अनुरक्त रहते थे, देखा कि वे कालिय के चंगुल में हैं, तो उन्हें उनकी मित्रता, उनकी मुसकान-भरी चितवन तथा उनके बचनों का स्मरण हो आया। अत्यन्त शोक से संतप्त होने के कारण उन्हें सारा ब्रह्माण्ड शून्य (रिक्त) दिखाई पड़ने लगा।

ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां
तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः ।
तास्ता व्रजप्रियकथाः कथयन्त्य आसन्
कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ताः—वे; कृष्ण-मातरम्—कृष्ण की माता (यशोदा); अपत्यम्—अपने पुत्र पर; अनुप्रविष्टाम्—अपनी दृष्टि टिकाये; तुल्य—समान रूप से; व्यथाः—व्यथित; समनुगृह्य—दृढ़तापूर्वक पकड़कर; शुचः—शोक की बाढ़; स्रवन्त्यः—उमड़ते हुए; ताः ताः—उनमें से हर शब्द को; व्रज-प्रिय—व्रज के परम प्रिय की; कथाः—कथाएँ; कथयन्त्यः—कहते हुए; आसन्—वे खड़ी रहीं; कृष्ण-आनने—कृष्ण के मुख पर; अर्पित—चढ़ायी, अर्पित की हुई; दृशः—अपनी आँखें; मृतक—शव; प्रतीकाः—तुल्य।

यद्यपि प्रौढ़ गोपियों को उन्हीं के बराबर पीड़ा थी और उनमें शोकपूर्ण अश्रुओं की झड़ी लगी हुई थी किन्तु उन्होंने बलपूर्वक कृष्ण की माता को पकड़े रखा, जिनकी चेतना पूर्णतया अपने पुत्र में समा गयी थी। ये गोपियाँ शवों की तरह खड़ी रहकर, अपनी आँखें कृष्ण के मुख पर टिकाये, बारी बारी से व्रज के परम लाड़ले की लीलाएँ कहे जा रही थीं।

कृष्णप्राणान्निर्विशतो नन्दादीन्वीक्ष्य तं ह्रदम् ।
प्रत्यषेधत्स भगवान्रामः कृष्णानुभाववित् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण-प्राणान्—जिनके प्राण कृष्ण थे; निर्विशतः—प्रवेश करते; नन्द-आदीन्—नन्द महाराज इत्यादि को; वीक्ष्य—देखकर; तम्—उस; ह्रदम्—सरोवर में; प्रत्यषेधत्—मना किया; सः—वे; भगवान्—भगवान्; रामः—बलराम ने; कृष्ण—कृष्ण की; अनुभाव—शक्ति; वित्—भलीभाँति जानते हुए।

तत्पश्चात् भगवान् बलराम ने देखा कि नन्द महाराज तथा कृष्ण को अपना जीवन अर्पित करनेवाले अन्य ग्वाले सर्प-सरोवर में प्रवेश करने जा रहे हैं। भगवान् होने के नाते बलराम को कृष्ण की वास्तविक शक्ति का पूरा पूरा ज्ञान था अतएव उन्होंने उन सबों को रोका।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी लिखते हैं कि भगवान् बलराम ने कुछ ग्वालों से बातें करके, कुछ को पकड़कर और कुछ पर अपनी शक्तिदायिनी हँसीभरी मुसकान बिखेरकर रोका। सारे ग्वाले इस स्थिति से व्यग्र होकर कृष्ण के लिए सर्प-सरोवर में घुसकर अपने प्राण देने के लिए तैयार थे।

इत्थम्स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य
सस्त्रीकुमारमतिदु:खितमात्महेतोः ।
आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः

स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरङ्गबन्धात् ॥ २३॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस तरह से; स्व-गोकुलम्—गोकुल के अपने कुल में; अनन्य-गतिम्—(उनके अतिरिक्त) कोई अन्य गन्तव्य या आश्रय न होने से; निरीक्ष्य—देखकर; स-स्त्री—स्त्रियों समेत; कुमारम्—तथा बच्चे; अति-दु:खितम्—अत्यन्त दुखी; आत्म-हेतो:—अपने कारण; आज्ञाय—जानकर; मर्त्य-पदवीम्—मरने वालों की तरह; अनुवर्तमान:—अनुकरण करते हुए; स्थित्वा—रहे आकर; मुहूर्तम्—कुछ काल तक; उदतिष्ठत्—उठ खड़े हुए; उरङ्ग—सर्प के; बन्धात्—बन्धन से।

भगवान् कुछ काल तक सामान्य मर्त्यप्राणी के व्यवहार का अनुकरण करते हुए सर्प की कुंडली के भीतर पड़े रहे। किन्तु जब उन्हें इसका भान हुआ कि उनके गोकुल ग्राम की स्त्रियाँ, बच्चे तथा अन्य निवासी अपने जीवन के एकमात्र आधार उनके प्रेम के कारण विकट दुखी हैं, तो वे कालिय सर्प के बन्धन से तुरन्त उठ खड़े हुए।

तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोग-
स्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपित: स्वफणान्भुजङ्ग: ।
तस्थौ श्वसञ्छ्वसनरन्ध्रविषाम्बरीष-
स्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाण: ॥ २४॥

शब्दार्थ

तत्—उनके (कृष्ण के); प्रथ्यमान—बढ़ते हुए; वपुषा—दिव्य शरीर के द्वारा; व्यथित—पीड़ित; आत्म—अपना; भोग:—शरीर; त्यक्त्वा—उन्हें त्यागकर; उन्नमय्य—ऊँचे उठते हुए; कुपित:—क्रुद्ध; स्व-फणान्—अपने फनों को; भुजङ्ग—सर्प; तस्थौ—चुपचाप खड़ा रहा; श्वसन्—तेजी से साँस लेता हुआ, फुफकारता; श्वसन-रन्ध्र—उसके नथुने; विष-अम्बरीष—विष उबालने के दो पात्रों की तरह; स्तब्ध—स्थिर; ईक्षण—उसकी आँखें; उल्मुक—लपटों की तरह; मुख:—उसका मुँह; हरिम्—भगवान् को; ईक्षमाण:—देखता हुआ।

जब भगवान् के शरीर का विस्तार होने से कालिय की कुंडली दुखने लगी तो उसने उन्हें छोड़ दिया। तब वह सर्प बहुत ही क्रुद्ध होकर अपने फनों को ऊँचे उठाकर स्थिर खड़ा हो गया और जोर जोर से फुफकारने लगा। उसके नथुने विष पकाने के पात्रों जैसे लग रहे थे और उसके मुखपर स्थित घूरती आँखें आग की लपटों की तरह लग रही थीं। इस तरह उस सर्प ने भगवान् पर नजर डाली।

तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं
द्वे सृक्वणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् ।
क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेन्द्रो
बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाण: ॥ २५॥

शब्दार्थ

तम्—उसको, कालिय को; जिह्वया—अपनी जीभ से; द्वि-शिखया—दोमुही; परिलेलिहानम्—बारबार चाटता हुआ; द्वे—दो; सृक्वणी—होंठ; हि—निस्सन्देह; अति-कराल—अत्यन्त भयावने; विष-अग्नि—विषैली अग्नि से पूर्ण; दृष्टिम्—जिसकी दृष्टि; क्रीडन्—खेलती हुई; अमुम्—उसको; परिससार—चारों ओर घूम गई; यथा—जिस तरह; खग-इन्द्रः—पक्षिराज गरुड़; बभ्राम—चारों ओर घूमा; सः—कालिय; अपि—भी; अवसरम्—(प्रहार करने का) अवसर; प्रसमीक्षमाणः—ध्यानपूर्वक देखते हुए, की ताक में।.

कालिय बारम्बार अपनी दोमुही जीभ से अपने होंठों को चाटता और विषैली विकराल अग्नि से पूर्ण अपनी दृष्टि से कृष्ण को घूरता जा रहा था। किन्तु कृष्ण ने मानो खेल-खेल में ही उसका उसी तरह चक्कर लगाया जिस तरह गरुड़ सर्प से खिलवाड़ करता है। प्रतिक्रिया के रूप में, कालिय भी उनके साथ साथ घूमता जाता था और भगवान् को काटने का अवसर ढूँढ़ रहा था।

तात्पर्य : कृष्ण इतनी चतुराई से कालिय के चारों ओर घूम रहे थे कि कालिय को उसे काटने का अवसर ही नहीं मिल पाया। इस तरह श्रीकृष्ण की दिव्य चंचलता के द्वारा सर्प पराजित हो गया।

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांस-
मानम्य तत्पृथुशिरःस्वधिरूढ आद्यः ।
तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्र-
पादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; परिभ्रम—भगवान् द्वारा उसके चारों ओर चक्कर लगाने के कारण; हत—विनष्ट; ओजसम्—जिसका बल; उन्नत—ऊपर उठा; अंसम्—जिसके कंधे; आनम्य—झुकने के लिए बाध्य करके; तत्—उसके; पृथु-शिरःसु—चौड़े सिर पर; अधिरूढः—चढ़कर; आद्यः—हर वस्तु के मूल; तत्—उसके; मूर्ध—सिरों पर; रत्न-निकर—अनेकानेक रत्न; स्पर्श—छूने से; अति-ताम्र—अत्यधिक लाल हुए; पाद-अम्बुजः—चरणकमल; अखिल-कला—समस्त कलाओं के; आदि-गुरुः—मूल गुरु; ननर्त—नाचने लगे।.

लगातार चक्कर लगाते लगाते सर्प के बल को बुरी तरह क्षीण करके, समस्त वस्तुओं के मूल श्रीकृष्ण ने कालिय के उभरे हुए कन्धों को नीचे दबा दिया और उसके चौड़े फनों पर चढ़ गये। इस तरह समस्त कलाओं के आदि गुरु भगवान् श्रीकृष्ण नृत्य करने लगे और सर्प के फनों पर स्थित असंख्य मणियों के स्पर्श से उनके चरण गहरे लाल रंग के हो गये।

तात्पर्य : श्री हरि वंश में लिखा है कि *शिरः स कृष्णो जग्राह स्व-हस्तेनावनम्य*—कृष्ण ने अपने हाथ से कालिय का सिर दबोच लिया और उसे जबरदस्ती झुका दिया। इस संसार में अधिकांश लोग परम पुरुष, परम सत्य को शीश झुकाने में आनाकानी करते हैं। भौतिक चेतना की दूषित अवस्था में हम बद्ध आत्मा अपने नगण्य पद पर इठलाने लगते हैं और भगवान् के समक्ष शीश झुकाने में

आनाकानी करते हैं। किन्तु जिस तरह भगवान् कृष्ण ने बलपूर्वक कालिय के सिरों को नीचे दबाकर उसे हरा दिया उसी तरह भगवान् की शक्ति अटल काल के रूप में सारी बद्ध आत्माओं को मार डालती है और उनके दम्भी सिरों को झुकने के लिए विवश कर देती है। अत: हमें चाहिए कि हम भौतिक जीवन के बनावटी पद को त्यागकर भगवान् के चरणकमलों पर विनत होकर उनके आज्ञाकारी सेवक बन जायें।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि भगवान् के चरणकमल ताँबे के समान लाल इसलिए हो गये क्योंकि वे कालिय के फनों पर लगी असंख्य कठोर मणियों के संपर्क में आ गए थे। तब भगवान् कृष्ण उन तेजमय लाल चरणों से सर्प के फनों की अस्थिर, गतिमान सतह पर नाचकर अपनी कला-चातुरी का प्रदर्शन करने लगे। नृत्य कला का यह असामान्य प्रदर्शन वृन्दावन की तरुण स्त्रियों को आनन्द प्रदान करने के निमित्त था, जो कृष्ण के साथ प्रेम में बुरी तरह फँसी थीं।

तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीय-
गन्धर्वसिद्धमुनिचारणदेववध्वः ।
प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीत-
पुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥ २७॥

शब्दार्थ

तम्—उनको; नर्तुम्—नाचने में; उद्यतम्—लगा हुआ; अवेक्ष्य—देखकर; तदा—तब; तदीय—उनके सेवक; गन्धर्व-सिद्ध—गन्धर्व तथा सिद्धगण; मुनि-चारण—ऋषि तथा चारण; देव-वध्वः—देवपत्नियाँ; प्रीत्या—हर्षपूर्वक; मृदङ्ग-पणव-आनक—विभिन्न प्रकार के ढोल; वाद्य—बाजों समेत; गीत—गीत; पुष्प—फूल; उपहार—अन्य भेंटें; नुतिभिः—तथा स्तुतियों द्वारा; सहसा—तुरन्त; उपसेदुः—आ गये।

भगवान् उनको नाचते देखकर स्वर्गलोक के उनके सेवक—गन्धर्व, सिद्ध, मुनि, चारण तथा देवपत्नियाँ—वहाँ तुरन्त आ गये। वे मृदंग, पणव तथा आनक जैसे ढोल बजा-बजाकर कृष्ण के नृत्य का साथ देने लगे। उन्होंने गीत, फूल तथा स्तुतियों की भेंटें भी दीं।

तात्पर्य : जब देवताओं तथा उच्च लोक के अन्य निवासियों को पता चला कि कृष्ण नृत्य कला का अद्‌भुत प्रदर्शन स्वयं कर रहे हैं, तो वे तुरन्त उनकी सेवा में उपस्थित हो गये। जब नृत्य के साथ मृदंग वादन, गायन तथा स्तुति उच्चारण भी किया जाता है, तो उस नृत्य को देखना और भी सुन्दर तथा आनन्ददायक हो जाता है। कालिय सर्प के फनों पर आनंदपूर्वक नाचने में व्यस्त भगवान् श्रीकृष्ण पर असंख्य फूलों की वर्षा होने से कलात्मक परिवेश में और वृद्धि हो गई।

यद्यच्छिरो न नमतेऽङ्ग शतैकशीर्ष्णस्
तत्तन्ममर्द खरदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः ।
क्षीणायुषो भ्रमत उल्बणमास्यतोऽसृङ्
नस्तो वमन्परमकश्मलमाप नागः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यत् यत्—जो जो; शिरः—सिर; न नमते—नहीं झुकते थे; अङ्ग—हे राजा परीक्षित; शत-एक-शीर्ष्णः—१०१ सिरों वाला; तत् तत्—उन उन को; ममर्द—कुचल डाला; खर—दुष्टों को; दण्ड—सजा; धरः—देने वाले भगवान्; अङ्घ्रि-पातैः—अपने पैरों के प्रहार से; क्षीण-आयुषः—आयु क्षीण हो रहे कालिय का; भ्रमतः—जो अब भी घूम रहा था; उल्बणम्—भयावह; आस्यतः—मुखों से; असृक्—रक्त; नस्तः—नथुनों से; वमन्—कै; परम—अत्यन्त; कश्मलम्—कष्ट; आप—अनुभव किया; नागः—सर्प ने।

हे राजन्, कालिय के १०१ सिर थे और यदि इनमें से कोई एक नहीं झुकता था, तो क्रूर कृत्य करनेवालों को दंड देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने पाद-प्रहार से उस उद्दण्ड सिर को कुचल देते थे। जब कालिय मृत्यु के निकट पहुँच गया तो वह अपने सिरों को चारों ओर घुमाने लगा और अपने मुखों तथा नथुनों से बुरी तरह से रक्त वमन करने लगा। इस तरह सर्प को अत्यन्त पीड़ा तथा कष्ट का अनुभव होने लगा।

तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरःसु
यद्यत्समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ।
नृत्यन्पदानुनमयन्दमयां बभूव
पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान्पुराणः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसकी; अक्षिभिः—आँखों से; गरलम्—विषैला कूड़ा; उद्वमतः—वमन करता हुआ; शिरःसु—सिरों में से; यत् यत्—जो जो; समुन्नमति—ऊपर उठता; निःश्वसतः—श्वास लेता हुआ; रुषा—क्रोध से; उच्चैः—काफी अधिक; नृत्यन्—नाचते हुए; पदा—अपने पाँव से; अनुनमयन्—झुकाते हुए; दमयाम् बभूव—दमन कर दिया; पुष्पैः—फूलों से; प्रपूजितः—पूजा जाकर; इव—सदृश; इह—इस अवसर पर; पुमान्—पुरुष; पुराणः—आदि।

कालिय अपनी आँखों से विषैला कीचड़ निकालते हुए रह रहकर अपने किसी एक सिर को ऊपर उठाने का दुस्साहस करके क्रोध से फुफकारता था। तब भगवान् उसपर नाचने लगते और अपने पाँव से नीचे झुकाकर उसका दमन कर देते। देवताओं ने इन सभी प्रदर्शनों को उचित अवसर जानकर आदि पुरुष की पूजा पुष्पवर्षा द्वारा की।

तच्चित्रताण्डवविरुग्नफणासहस्रो

रक्तं मुखैरुरु वमन्नृप भग्नगात्रः ।
स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं
नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तत्—उनके; चित्र—विस्मयकारी; ताण्डव—शक्तिशाली नृत्य से; विरुग्न—भग्न; फणा-सहस्र:—अपने एक हजार फन; रक्तम्—रक्त; मुखैः—मुख से; उरु—अत्यधिक; वमन्—उगलते हुए; नृप—हे राजा परीक्षित; भग्न-गात्रः—कुचले अंगों वाला; स्मृत्वा—स्मरण करके; चर-अचर—सारे जड़ तथा जंगम प्राणियों के; गुरुम्—गुरु; पुरुषम्—पुरुष; पुराणम्—प्राचीन; नारायणम्—नारायण को; तम्—उन; अरणम्—शरण के लिए; मनसा—मन में.

हे राजा परीक्षित, भगवान् कृष्ण के द्वारा विस्मयजनक शक्तिशाली नृत्य करने से कालिय के सभी एक हजार फण कुचलकर टूट गये। तब अपने मुखों से बुरी तरह रक्त वमन करते हुए सर्प ने श्रीकृष्ण को समस्त चराचर के शाश्वत स्वामी आदि भगवान् श्रीनारायण के रूप में पहचाना। इस तरह कालिय ने मन ही मन भगवान् की शरण ग्रहण कर ली।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण (भाग १, अध्याय १६) में दिखलाया है कि इसके पूर्व जो कालिय विष उगल रहा था, वही अब विष समाप्त हो जाने से रक्त वमन करने लगा। इस तरह उसका हृदय विष रूपी कलुष से धुल गया। स्मृत्वा शब्द अत्यन्त सार्थक है। कालिय की पत्नियाँ वास्तव में सच्चे रूप से कृष्ण-भक्त थीं और आचार्यों का कथन है कि उन पत्नियों ने प्राय: अपने पति को भगवान् की शरण ग्रहण करने के लिए मनाने का, प्रयास किया था। अन्त में असह्य पीड़ा के कारण कालिय ने अपनी पत्नियों की सलाह का स्मरण किया और भगवान् की शरण ग्रहण कर ली। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि परम्परा से कालिय का प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी विष्णुवाहन गरुड़ रहा है। किन्तु कालिय ने यह अनुभव किया कि अब ऐसे प्रतिद्वन्द्वी से उसका पाला पड़ा है, जो गरुड़ से हजारों गुना बलशाली है अतएव हो न हो वह भगवान् ही हो सकता है। इस तरह कालिय ने भगवान् कृष्ण की शरण ग्रहण की।

कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं
पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्नफणातपत्रम् ।
दृष्ट्वाहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य
आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

कृष्णस्य—कृष्ण के; गर्भ—उदर में; जगतः—सारा ब्रह्माण्ड पाया जाता है; अति-भर—अत्यधिक भार से; अवसन्नम्—थका हुआ; पार्ष्णि—एड़ियों के; प्रहार—चोट से; परिरुग्न—क्षत-विक्षत; फणा—फन; आतपत्रम्—छातों की तरह; दृष्ट्वा—देखकर;

अहिम्—सर्प को; आद्यम्—आदि भगवान् के; उपसेदुः—निकट आयीं; अमुष्य—कालिय की; पत्न्यः—पत्नियाँ; आर्ताः—पीड़ित; श्लथत्—बिखरे हुए; वसन—वस्त्र; भूषण—आभूषण; केश-बन्धाः—तथा केशपाश।

जब कालिय की पत्नियों ने देखा कि अखिल ब्रह्माण्ड को अपने उदर में धारण करनेवाले भगवान् कृष्ण के अत्यधिक भार से सर्प कितना थक गया है और किस तरह कृष्ण की एडियों के प्रहार से कालिय के छाते जैसे फन छिन्न-भिन्न हो गये हैं, तो उन्हें अतीव पीड़ा हुई। तब अपने वस्त्र, आभूषण तथा केश बिखराये हुए वे आदि भगवान् के निकट आईं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार कालिय की पत्नियाँ अपने पति के आसुरी कार्यों से तंग आ चुकी थीं। वे यही सोचती रहतीं थीं, ''यदि यह नास्तिक भगवान् के दण्ड से मारा जाता है, तो इसे मरने दें। हम विधवा होकर भगवान् की पूजा में लग जायेंगी।'' किन्तु जब उन स्त्रियों ने कालिय के मुख तथा अन्य अंगों की अभिव्यक्ति देखी तो समझ गईं कि कालिय ने मन ही मन भगवान् की शरण ग्रहण कर ली है। यह देखकर कि वह विनयशीलता, पश्चात्ताप, शोक तथा सन्देह के लक्षण व्यक्त कर रहा है, उन्होंने सोचा, ''देखो न, हम कितनी भाग्यशालिनी हैं! अब हमारा पति वैष्णव बन गया है। अतएव अब हमें उसकी रक्षा करनी चाहिए।'' उनमें अपने पश्चात्ताप करनेवाले पति के कष्ट तथा उसकी दयनीय अवस्था पर स्नेह उमड़ आया और वे सब की सब भगवान् के समक्ष आईं।

तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः
कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ।
साध्व्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्तुर्
मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

ताः—वे, कालिय की पत्नियाँ; तम्—उसको; सु-विग्न—अत्यन्त उद्विग्न; मनसः—मन; अथ—तब; पुरः-कृत—सामने करके; अर्भाः—अपने बच्चे; कायम्—अपने शरीर को; निधाय—रखकर; भुवि—भूमि पर; भूत-पतिम्—समस्त प्राणियों के स्वामी को; प्रणेमुः—प्रणाम किया; साध्व्यः—साध्वी स्त्रियाँ; कृत-अञ्जलि-पुटाः—हाथ जोड़कर; शमलस्य—पापी; भर्तुः—पति की; मोक्ष—मुक्ति; ईप्सवः—इच्छा करती हुईं; शरण-दम्—शरण देनेवाले; शरणम्—शरण के लिए; प्रपन्नाः—निकट आईं।

अत्यन्त उद्विग्नमना उन साध्वी स्त्रियों ने अपने बच्चों को अपने आगे कर लिया और तब समस्त प्राणियों के स्वामी के समक्ष भूमि पर गिरकर साष्टांग प्रणाम किया। वे अपने पापी पति का मोक्ष एवं परम शरणदाता भगवान् की शरण चाहती थीं अतः नम्रता से हाथ जोड़े हुए वे उनके निकट आईं।

नागपत्न्य ऊचुः

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिं-
स्तवावतारः खलनिग्रहाय ।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टि-
र्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

नाग-पत्न्यः ऊचुः—नाग की पत्नियों ने कहा; न्याय्यः—सही न्यायपूर्ण; हि—निस्सन्देह; दण्डः—दण्ड, सजा; कृत-किल्बिषे—अपराध करनेवाले के लिए; अस्मिन्—इस व्यक्ति ने; तव—आपका; अवतारः—अवतार; खल—दुष्टों के; निग्रहाय—दमन के लिए; रिपोः—शत्रु पर; सुतानाम्—अपने ही पुत्रों पर; अपि—भी; तुल्य-दृष्टिः—समान दृष्टि रखनेवाला; धत्से—आप देते हैं; दमम्—दंड; फलम्—फल; एव—निस्सन्देह; अनुशंसम्—विचार करते हुए।

कालिय सर्प की पत्नियों ने कहा : इस अपराधी को जो दण्ड मिला है, वह निस्संदेह उचित ही है। आपने इस जगत में ईर्ष्यालु तथा क्रूर पुरुषों का दमन करने के लिए ही अवतार लिया है। आप इतने निष्पक्ष हैं कि आप शत्रुओं तथा अपने पुत्रों को समान भाव से देखते हैं क्योंकि जब आप किसी जीव को दण्ड देते हैं, तो आप यह जानते होते हैं कि अन्ततः यह उसके हित के लिए है।

अनुग्रहोऽयं भवतः कृतो हि नो
दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ।
यद्दन्दशूकत्वममुष्य देहिनः
क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव सम्मतः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

अनुग्रहः—कृपा; अयम्—यह; भवतः—आपके द्वारा; कृतः—की गई; हि—निस्सन्देह; नः—हम पर; दण्डः—दण्ड, सजा; असताम्—दुष्टों का; ते—आपके द्वारा; खलु—निस्सन्देह; कल्मष-अपहः—उनके कल्मष को दूर करते हुए; यत्—क्योंकि; दन्दशूकत्वम्—सर्प के रूप में प्रकट होने की अवस्था; अमुष्य—इस कालिय की; देहिनः—बद्धजीव; क्रोधः—क्रोध; अपि—भी; ते—आपकी; अनुग्रहः—कृपा; एव—वास्तव में; सम्मतः—स्वीकार है।

आपने जो कुछ यहाँ किया है, वह वास्तव में हम पर अनुग्रह है क्योंकि आप दुष्टों को जो दण्ड देते हैं वह निश्चित रूप से उनके कल्मष को दूर कर देता है। चूँकि यह बद्धजीव हमारा पति इतना पापी है कि इसने सर्प का शरीर धारण किया है अतएव उसके प्रति आपका यह क्रोध उसके प्रति आपकी कृपा ही समझी जानी चाहिए।

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में श्रील मध्वाचार्य इंगित करते हैं कि जब इस जगत में कोई पवित्र व्यक्ति कष्ट भोगता है, तो वह यह अनुभव करता है कि, ‘‘भगवान् द्वारा दिया जाने वाला यह दण्ड वास्तव में

उनकी अहैतुकी कृपा है।'' किन्तु ईर्ष्यालु व्यक्ति अपने शुद्धिकरण के हेतु दण्डित होने पर भी भगवान् से ईर्ष्या करना नहीं छोड़ते और आक्रोश से भरे रहते हैं। इसी मनोभाव के कारण वे परम ब्रह्म को नहीं समझ पाते।

तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं
निरस्तमानेन च मानदेन ।
धर्मोऽथ वा सर्वजनानुकम्पया
यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तपः—तपस्या; सु-तप्तम्—ठीक से की गई; किम्—क्या; अनेन—इस कालिय द्वारा; पूर्वम्—पूर्वजन्मों में; निरस्त-मानेन—मिथ्या अहंकार से रहित होने से; च—तथा; मान-देन—अन्यों का सम्मान करते हुए; धर्मः—धार्मिक कर्तव्य; अथ वा—या अन्य कुछ; सर्व-जन—सभी लोगों के लिए; अनुकम्पया—अनुकम्पापूर्वक; यतः—जिससे; भवान्—आप; तुष्यति—प्रसन्न होते हैं; सर्व-जीवः—समस्त जीवों के प्राणाधार।

क्या हमारे पति ने पूर्वजन्म में गर्वरहित होकर तथा अन्यों के प्रति आदरभाव से पूरित होकर सावधानी से तपस्या की थी? क्या इसीलिए आप उससे प्रसन्न हैं? अथवा क्या उसने किसी पूर्वजन्म में समस्त जीवों के प्रति दयापूर्वक धार्मिक कर्तव्य पूरा किया था और क्या इसीलिए समस्त जीवों के प्राणाधार आप अब उससे सन्तुष्ट हैं?

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* (भाग १, अध्याय १६) में इस तरह टीका की है, ''नागपत्नियाँ इसकी पुष्टि करती हैं कि जब तक किसी ने अपने पूर्वजन्मों में भक्ति द्वारा पुण्यकर्म नहीं किये होते, वह कृष्ण के सम्पर्क में नहीं आ सकता। जैसाकि भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिक्षाष्टक में उपदेश दिया है—मनुष्य को चाहिए कि अपने को मार्ग के तृण से भी नीचे समझते हुए तथा अपने सम्मान की आशा न रखते हुए अन्यों का सभी प्रकार सम्मान करते हुए हरे कृष्ण मंत्र का विनम्र होकर कीर्तन करते हुए भक्ति करे। नागपत्नियाँ विस्मित थीं कि यद्यपि अत्यन्त पापपूर्ण कृत्यों के कारण कालिय को सर्प का शरीर मिला था किन्तु अब उसके फनों पर भगवान् के चरणकमलों का स्पर्श हो रहा है। निश्चय ही यह किसी सामान्य पुण्यकर्म का फल नहीं था। ये दो विरोधी तथ्य उन्हें विस्मित कर रहे थे।''

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे

तवाङ्घ्रिरेणुस्परशाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो
विहाय कामान्सुचिरं धृतव्रता ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

कस्य—किसका; अनुभावः—फल; अस्य—इस सर्प का; न—नहीं; देव—हे प्रभु; विद्महे—हम जानती हैं; तव—आपके; अङ्घ्रि—चरणकमलों की; रेणु—धूलि का; स्परश—स्पर्श करने के लिए; अधिकारः—पात्रता, योग्यता; यत्—जिसके लिए; वाञ्छया—इच्छा से; श्रीः—लक्ष्मीजी ने; ललना—(सर्वश्रेष्ठ) स्त्री; आचरत्—सम्पन्न की; तपः—तपस्या; विहाय—छोड़कर; कामान्—सारी इच्छाओं को; सु-चिरम्—दीर्घकाल तक; धृत—धारण किया; व्रता—अपना व्रत, प्रतिज्ञा।

हे प्रभु, हम नहीं जानतीं कि इस कालिय नाग ने किस तरह आपके चरणकमलों की धूल को स्पर्श करने का सुअवसर प्राप्त किया। इसके लिए तो लक्ष्मीजी ने अन्य सारी इच्छाएँ त्यागकर कठोर व्रत धारण करके सैकड़ों वर्षों तक तपस्या की थी।

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
वाञ्छन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; नाक-पृष्ठम्—स्वर्ग; न च—न तो; सार्व-भौमम्—सर्वोपरि सत्ता; न—नहीं; पारमेष्ठ्यम्—ब्रह्मा का सर्वोच्च पद; न—नहीं; रस-अधिपत्यम्—पृथ्वी के ऊपर शासन; न—नहीं; योग-सिद्धीः—योग की सिद्धियाँ; अपुनः-भवम्—पुनर्जन्म से छुटकारा; वा—अथवा; वाञ्छन्ति—इच्छा करते हैं; यत्—जिसके; पाद—चरणकमलों की; रजः—धूल; प्रपन्नाः—जिन्होंने प्राप्त कर ली है।

जिन्होंने आपके चरणकमलों की धूल प्राप्त कर ली है वे न तो स्वर्ग का राज्य, न असीम वर्चस्व, न ब्रह्मा का पद, न ही पृथ्वी का साम्राज्य चाहते हैं। उन्हें योग की सिद्धियों अथवा मोक्ष तक में कोई रुचि नहीं रहती।

तदेष नाथाप दुरापमन्यै-
स्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ।
संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो
यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; एषः—यह कालिय; नाथ—हे प्रभु; आप—प्राप्त कर चुका है; दुरापम्—दुष्प्राप्य; अन्यैः—अन्यों के द्वारा; तमः-जनिः—तमोगुण में उत्पन्न; क्रोध-वशः—क्रोध के वशीभूत; अपि—भी; अहि-ईशः—सर्पराज; संसार-चक्रे—संसार के चक्कर में; भ्रमतः—घूमता हुआ; शरीरिणः—जीवधारियों के लिए; यत्—जिससे (चरणों की धूल से); इच्छतः—भौतिक इच्छाओं वाला; स्यात्—प्रकट करता है; विभवः—सारे ऐश्वर्य; समक्षः—अपने सामने।

हे प्रभु, यद्यपि इस सर्पराज कालिय का जन्म तमोगुण में हुआ है और यह क्रोध के वशीभूत

है किन्तु इसने अन्यों के लिए जो दुष्प्राप्य है उसे भी प्राप्त कर लिया है। इच्छाओं से पूर्ण होकर जन्म-मृत्यु के चक्कर में भ्रमण करनेवाले देहधारी जीव आपके चरणकमलों की धूल प्राप्त करने से ही अपने समक्ष सारे आशीर्वादों को प्रकट होते देख सकते हैं।

तात्पर्य : बद्धजीव के लिए अपने आपको मोह के कल्मष से छुड़ाकर परब्रह्म की पूर्ण चेतना को प्राप्त कर पाना अत्यन्त दुर्लभ है। तो भी कालिय को यह आशीर्वाद प्राप्त हो सका क्योंकि भगवान् ने अपने चरणकमलों से उस सर्प के फणों पर स्वयं नृत्य किया। भले ही हम बद्धजीवों को अपने सिर पर भगवान् के नृत्य होने की कृपा प्राप्त न हो सके किन्तु भगवान् के प्रतिनिधि, प्रामाणिक गुरु, के माध्यम से ब्रह्म के चरणकमलों की धूल तो प्राप्त हो ही सकती है। इस तरह ब्रह्माण्ड के कष्ट तथा अज्ञान से हमेशा के लिए मुक्त होकर हम भगवद्धाम वापस जा सकते हैं।

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—आपको; भगवते—भगवान्; पुरुषाय—परमात्मा रूप में भीतर उपस्थित; महा-आत्मने—सर्वव्यापी; भूत-आवासाय—भौतिक तत्त्वों (क्षिति, जल, पावक इत्यादि) के आश्रय रूप; भूताय—सृष्टि के भी पूर्व से विद्यमान; पराय—परम कारण को; परम-आत्मने—भौतिक कारणों से परे।

हे भगवन्, हम आपको सादर नमस्कार करती हैं। यद्यपि आप सभी जीवों के हृदयों में परमात्मा रूप में स्थित हैं, तो भी आप सर्वव्यापक हैं। यद्यपि आप सभी उत्पन्न भौतिक तत्त्वों के आदि आश्रय हैं किन्तु आप उनके सृजन के पूर्व से विद्यमान हैं। यद्यपि आप हर वस्तु के कारण हैं किन्तु परमात्मा होने से आप भौतिक कार्य-कारण से परे हैं।

तात्पर्य : वक्ता तथा श्रोता के दिव्य आनन्द हेतु इस सुन्दर संस्कृत श्लोक का जोर से उच्चारण करना चाहिए।

ज्ञानविज्ञाननीधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अगुणायाविकाराय नमस्ते प्राकृताय च ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

ज्ञान—चेतना; विज्ञान—तथा आध्यात्मिक शक्ति के; निधये—सागर का; ब्रह्मणे—परब्रह्म को; अनन्त-शक्तये—असीम शक्तिमान को; अगुणाय—द्रव्य के गुणों से न प्रभावित होनेवाले को; अविकाराय—भौतिक विकार न होनेवाले को; नमः—नमस्कार; ते—आपको; प्राकृताय—प्रकृति के आदि संचालक; च—तथा।

हे परम सत्य, हम आपको नमस्कार करती हैं। आप समस्त दिव्य चेतना एवं शक्ति के आगार हैं और अनन्त शक्तियों के स्वामी हैं। यद्यपि आप भौतिक गुणों एवं विकारों से पूर्णतया मुक्त हैं किन्तु आप भौतिक प्रकृति के आदि संचालक हैं।

तात्पर्य : जो लोग अपने को बौद्धिक, दार्शनिक या मिलनसार मानते हैं उन्हें यह ध्यानपूर्वक जान लेना चाहिए कि परम सत्य या भगवान् समस्त ज्ञान तथा चेतना के सागर हैं। अतएव भगवान् की शरण जाने का अर्थ यह नहीं है कि अपनी मिलनसारी को त्याग दिया जाय। प्रत्युत इससे तो मनुष्य मिलनसार तर्कपूर्ण ज्ञान के सागर में लीन होता है। भगवान् समस्त ज्ञान तथा विज्ञान की सिद्धि हैं। केवल ईर्ष्यालु तथा क्षुद्राशय व्यक्ति ही इस स्पष्ट बात से इनकार करेंगे।

कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ।
विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कालाय—काल को; काल-नाभाय—काल के आश्रय को; काल-अवयव—काल की विभिन्न अवस्थाओं के; साक्षिणे—गवाह को; विश्वाय—विश्व रूप को; तद्-उपद्रष्ट्रे—इसके प्रेक्षक को; तत्-कर्त्रे—इसके स्रष्टा को; विश्व—विश्व के; हेतवे—सम्पूर्ण कारण को।

हम आपको नमस्कार करती हैं। आप साक्षात् काल, काल के आश्रय तथा काल की विभिन्न अवस्थाओं के साक्षी हैं। आप ब्रह्माण्ड हैं और इसके पृथक् द्रष्टा भी हैं। आप इसके स्रष्टा हैं और इसके समस्त कारणों के कारण हैं।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् विभिन्न अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं किन्तु उन्हें काल के द्वारा बाँधा नहीं जा सकता क्योंकि वे स्वयं काल, काल के आश्रय तथा काल की विभिन्न अवस्थाओं के साक्षी हैं।

भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ।
त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥
नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ।
नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

भूत—भौतिक तत्त्वों के; मात्र—अनुभूति के सूक्ष्म आधार; इन्द्रिय—इन्द्रियों; प्राण—प्राणवायु; मनः—मन; बुद्धि—बुद्धि; आशय—तथा भौतिक चेतना के; आत्मने—परमात्मा में; त्रि-गुणेन—तीन गुणों से; अभिमानेन—झूठी पहचान से; गूढ—आच्छन्न; स्व—निज; आत्म—अपनी; अनुभूतये—अनुभूति को; नमः—नमस्कार; अनन्ताय—अनन्त भगवान् को; सूक्ष्माय—

अत्यन्त सूक्ष्म को; कूट-स्थाय—केन्द्र में स्थिर; विपश्चिते—सर्वज्ञ को; नाना—विविध; वाद—दर्शन के; अनुरोधाय—स्वीकृति प्रदाता को; वाच्य—व्यक्त विचारों के; वाचक—तथा व्यक्त शब्द; शक्तये—शक्तिमान को।

आप भौतिक तत्त्वों के, अनुभूति के सूक्ष्म आधार के, इन्द्रियों के, प्राणवायु के तथा मन, बुद्धि एवं चेतना के परमात्मा हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं। आपकी ही व्यवस्था के फलस्वरूप सूक्ष्मतम चिन्मय आत्माएँ प्रकृति के तीनों गुणों के रूप में अपनी झूठी पहचान बनाती हैं फलस्वरूप उनकी स्व की अनुभूति प्रच्छन्न हो जाती है। हे अनन्त भगवान्, हे परम सूक्ष्म एवं सर्वज्ञ भगवान्, हम आपको प्रणाम करती हैं, जो सदैव स्थायी दिव्यता में विद्यमान रहते हैं, विभिन्न वादों के विरोधी विचारों को स्वीकृति देते हैं और व्यक्त विचारों तथा उनको व्यक्त करनेवाले शब्दों को प्रोत्साहन देने वाली शक्ति हैं।

नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ।
प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥ ४४॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; प्रमाण—आधिकारिक साक्ष्य के; मूलाय—आधार को; कवये—लेखक को; शास्त्र—शास्त्र के; योनये—स्रोत को; प्रवृत्ताय—इन्द्रिय तृप्ति के लिए प्रोत्साहित करनेवाले को; निवृत्ताय—त्याग के प्रति प्रोत्साहित करनेवाले को; निगमाय—दोनों प्रकार के शास्त्रों के उद्गम को; नमः नमः—बारम्बार नमस्कार।

समस्त प्रमाणों के आधार, शास्त्रों के प्रणेता तथा परम स्रोत, इन्द्रिय तृप्ति को प्रोत्साहित करनेवाले (प्रवृत्ति मार्ग) तथा भौतिक जगत से विराग उत्पन्न करनेवाले वैदिक साहित्य में अपने को प्रकट करनेवाले आपको हम बारम्बार नमस्कार करती हैं।

तात्पर्य : यदि हममें अनुभूति तथा संज्ञान की शक्तियाँ न होतीं तो प्रमाण का प्रेषण न हो पाता और यदि हम प्रमाण के विशिष्ट गुणों में विश्वास न करते होते तो विश्वसनीयता न हो पाती। इस तरह अनुभूति, संज्ञान, विश्वास तथा प्रेषण—ये सारी विधियाँ भगवान् की विविध शक्तियों द्वारा ही घटित होती हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण स्वयं महानतम पंडित तथा बुद्धिमान पंडित हैं। वे ब्रह्मा तथा नारद जैसे महाभागवतों के हृदयों के भीतर दिव्य शास्त्रों को प्रकट करते हैं और समस्त वैदिक ज्ञान के रचयिता वेदव्यास के रूप में भी अवतरित होते हैं। भगवान् नाना प्रकार से धार्मिक शास्त्रों को उत्पन्न करते हैं, जिससे बद्धजीव विभिन्न स्थितियों में से गुजरने के पश्चात् क्रमशः भगवद्धाम वापस जाते हैं।

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ।

प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; कृष्णाय—भगवान् कृष्ण को; रामाय—भगवान् राम को; वसुदेव-सुताय—वसुदेव के पुत्र; च—तथा; प्रद्युम्नाय—भगवान् प्रद्युम्न को; अनिरुद्धाय—अनिरुद्ध को; सात्वताम्—भक्तों के; पतये—स्वामी को; नमः—नमस्कार।

हम वसुदेव के पुत्र, भगवान् कृष्ण तथा भगवान् राम को और भगवान् प्रद्युम्न तथा भगवान् अनिरुद्ध को सादर नमस्कार करती हैं। हम विष्णु के समस्त सन्त सदृश भक्तों के स्वामी को सादर नमस्कार करती हैं।

नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च ।
गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; गुण-प्रदीपाय—विभिन्न गुणों को प्रकट करनेवाले को; गुण—भौतिक गुणों से; आत्म—स्वयं; छादनाय—वेश बदलनेवाले को; च—तथा; गुण—गुणों के; वृत्ति—कार्य करने से; उपलक्ष्याय—सुनिश्चित किये जा सकने वाले को; गुण-द्रष्ट्रे—गुणों के पृथक् साक्षी को; स्व—अपने भक्तों को; संविदे—ज्ञात।

नाना प्रकार के भौतिक तथा आध्यात्मिक गुणों को प्रकट करनेवाले, हे भगवन्, आपको हमारा नमस्कार। आप अपने को भौतिक गुणों से छिपा लेते हैं किन्तु अन्ततः उन्हीं भौतिक गुणों के अन्तर्गत हो रहे कार्य आपके अस्तित्व को प्रकट कर देते हैं। आप साक्षी रूप में भौतिक गुणों से पृथक् रहते हैं और एकमात्र अपने भक्तों द्वारा भलीभाँति ज्ञेय हैं।

तात्पर्य : गुण के अनेक अर्थ हैं—प्रकृति के तीन गुण—सतो, रजो तथा तमोगुण; शुद्धता तथा आध्यात्मिक उन्नति के कारण प्रकट किये गये उत्तम गुण; अथवा मन, बुद्धि जैसी आन्तरिक इन्द्रियाँ। प्रदीपाय का अर्थ है "प्रकट होनेवाले या प्रकाश करनेवाले को।" इस तरह नागपत्नियाँ यहाँ पर भगवान् को सम्बोधित कर रही हैं कि आप समस्त भौतिक तथा आध्यात्मिक गुणों को प्रकट करनेवाले हैं एवं जीवों को चेतन बनानेवाले हैं। कोई भी व्यक्ति भौतिक प्रकृति के पर्दे से ऊपर उठकर ही भगवान् का दर्शन कर सकता है इसीलिए उन्हें गुणात्मच्छादनाय कहा गया है। यदि कोई विधिवत् तथा बुद्धिमानी के साथ भौतिक गुणों की कार्यप्रणाली का अध्ययन करे तो वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि भगवान् का अस्तित्व है और वे अपनी मायाशक्ति उन्हीं को चकराने के लिए दिखलाते हैं, जो उनकी शरण ग्रहण नहीं करता।

चूँकि भगवान् गुणों के साक्षी हैं अतएव वे इनसे कभी प्रभावित नहीं होते। वे गुण-द्रष्ट्रे कहलाते

हैं। स्व का अर्थ "अपने ही" है, अत: स्व-संविदे का अर्थ है कि भगवान् कृष्ण अपने ही लोगों—भक्तों—द्वारा जाने जा सकते हैं और केवल भगवान् ही अपने आपको भलीभाँति जान सकते हैं। अतएव हमें *भगवद्गीता* में दिये गये कृष्ण के उपदेशों को ग्रहण करके इस सही निष्कर्ष—भगवान् के चरणकमलों पर पूर्ण समर्पण—पर पहुँचना चाहिए। इस तरह हमें नागपत्नियों के उदाहरण का पालन करते हुए भगवान् का विनीत भाव से गुणगान करना चाहिए।

अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७॥

शब्दार्थ

अव्याकृत-विहाराय—अगाध महिमा वाले; सर्व-व्याकृत—सभी वस्तुओं के सृजन तथा प्राकट्य; सिद्धये—अस्तित्व वाले को; हृषीक-ईश—हे इन्द्रियों के प्रेरक; नम:—नमस्कार; ते—आपको; अस्तु—होए; मुनये—मौन रहनेवाले को; मौन-शीलिने—मौन अवस्था में ही कर्म करनेवाले को।

हे इन्द्रियों के स्वामी, हृषीकेश, हम आपको नमस्कार करती हैं क्योंकि आपकी लीलाएँ अचिन्त्य रूप से महिमामयी हैं। आपके अस्तित्व को समस्त दृश्य जगत के लिए स्रष्टा तथा प्रकाशक की आवश्यकता से समझा जा सकता है। यद्यपि आपके भक्त आपको इस रूप में समझ सकते हैं किन्तु अभक्तों के लिए आप आत्मलीन रह कर मौन बने रहते हैं।

परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नम: ।
अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

पर-अवर—उत्तम तथा निष्कृष्ट दोनों ही तरह की वस्तुओं के; गति—गन्तव्य; ज्ञाय—जाननेवाले को; सर्व—सभी वस्तुओं के; अध्यक्षाय—नियन्ता को; ते—आपको; नम:—हमारा नमस्कार; अविश्वाय—ब्रह्माण्ड से पृथक् रहनेवाले को; च—तथा; विश्वाय—भौतिक जगत की माया प्रकट करनेवाले को; तत्-द्रष्ट्रे—ऐसी माया के साक्षी को; अस्य—इस जगत के; च—तथा; हेतवे—मूल कारण को।

उत्तम तथा अधम समस्त वस्तुओं के गन्तव्य को जाननेवाले तथा समस्त जगत के अध्यक्ष नियन्ता आपको हमारा नमस्कार। आप इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि से पृथक् हैं फिर भी आप वह मूलाधार हैं जिस पर भौतिक सृष्टि की माया का विकास होता है। आप इस माया के साक्षी भी हैं। निस्सन्देह आप अखिल जगत के मूल कारण हैं।

तात्पर्य : *पर* तथा *अवर* शब्द उत्तम सूक्ष्म तत्त्वों तथा निकृष्ट स्थूल तत्त्वों का बोध करानेवाले हैं। ये शब्द उत्तम पुरुषों अर्थात् भगवद्भक्तों तथा उन निकृष्ट पुरुषों के भी सूचक हैं, जो भगवान् की

महिमा से अनजान होते हैं। भगवान् कृष्ण समस्त उत्तम तथा निकृष्ट जीवों एवं चराचर के भाग्य को जानते हैं और परब्रह्म के रूप में वे सबों के ऊपर अपने अनन्य पद पर बने रहते हैं जैसाकि *सर्वाध्यक्षाय* शब्द से इंगित होता है।

त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो
गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक् ।
तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोधयन्सतः
समीक्षयामोघविहार ईहसे ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; हि—निस्सन्देह; अस्य—इस ब्रह्माण्ड के; जन्म-स्थिति-संयमान्—सृजन, पालन तथा संहार; विभो—हे सर्वशक्तिमान; गुणैः—प्रकृति के गुणों द्वारा; अनीहः—किसी भी भौतिक प्रयास में निहित न होते हुए भी; अकृत—अनादि; काल-शक्ति—काल की शक्ति के; धृक्—धारण करनेवाले; तत्-तत्—प्रत्येक गुण के; स्व-भावान्—लक्षणों को; प्रतिबोधयन्—जाग्रत करते हुए; सतः—सुप्त अवस्था में रह रहे; समीक्षया—अपनी चितवन से; अमोघ-विहारः—अमोघ क्रीड़ाओं वाले; ईहसे—आप कर्म करते हैं।

हे सर्वशक्तिमान प्रभु, यद्यपि आपके भौतिक कर्म में फँसने का कोई कारण नहीं है, फिर भी आप इस ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन तथा संहार की व्यवस्था करने के लिए अपनी शाश्वत कालशक्ति के माध्यम से कर्म करते हैं। इसे आप सृजन के पूर्व सुप्त पड़े प्रकृति के प्रत्येक गुण के विशिष्ट कार्य को जाग्रत करते हुए सम्पन्न करते हैं। ब्रह्माण्ड-नियंत्रण के इन सारे कार्यों को आप खेल खेल में केवल अपनी चितवन से पूर्णतया सम्पन्न कर देते हैं।

तात्पर्य : संशयवादी प्रश्न कर सकते हैं कि परमेश्वर ने जन्म, पालन तथा मृत्यु से भरी-पूरी भौतिक जगत की सृष्टि क्यों की। यहाँ पर नागपत्नियाँ संकेत करती हैं कि भगवान् की लीलाएँ अमोघ अर्थात् त्रुटि-रहित हैं। वास्तव में कृष्ण यही चाहते हैं कि सारे बद्धजीव उनके साथ उनके दिव्य धाम में रहें किन्तु वे भुलक्कड़ जीवात्माएँ जो ईश्वर के इस प्रेम-सम्बन्ध को द्वेष की दृष्टि से देखती हैं उन्हें भौतिक जगत में जाना पड़ता है और काल की स्थितियाँ भोगनी पड़ती हैं। भाग्यशाली बद्धजीवों को भगवान् के प्रिय सेवकों के रूप में अपने वास्तविक पद का स्मरण कराकर सतर्क कर दिया जाता है, तो भगवान् उनके हृदय के भीतर से उन्हें भगवद्धाम वापस आने के लिए प्रोत्साहित करते हैं जहाँ काल अनुपस्थित रहता है और जहाँ दृश्य जगत के सृजन तथा संहार जैसे विचलित करनेवाले नाटकीय कृत्य शाश्वत एवं आनन्दमय जगत द्वारा पछाड़ दिये जाते हैं।

तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां
शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः ।
शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनावितुं सतां
स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

तस्य—उनका; एव—निस्सन्देह; ते—आपका; अमूः—ये; तनवः—भौतिक शरीर; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों में; शान्ताः—शान्त (सतोगुण में); अशान्ताः—अशान्त (रजोगुण में); उत—और भी; मूढ-योनयः—अज्ञानी योनियों में उत्पन्न; शान्ताः—सतोगुणी शान्त व्यक्ति; प्रियाः—प्रिय; ते—आपको; हि—निश्चय ही; अधुना—अब; अवितुम्—रक्षा करने के लिए; सताम्—साधु भक्तों की; स्थातुः—उपस्थित; च—तथा; ते—आपके; धर्म—धर्म के सिद्धान्त; परीप्सया—पालन करने की इच्छा से; ईहतः—कार्य करनेवाला।

इसलिए तीनों लोकों भर में सारे भौतिक शरीर—जो सतोगुणी होने के कारण शान्त हैं, जो रजोगुणी होने से विक्षुब्ध हैं तथा जो तमोगुणी होने से मूर्ख हैं—आपकी ही सृष्टियाँ हैं। तो भी जिनके शरीर सतोगुणी हैं, वे आपको विशेष रूप से प्रिय हैं और उन्हीं के पालन हेतु तथा उन्हीं के धर्म की रक्षा करने के लिए ही अब आप इस पृथ्वी पर विद्यमान हैं।

अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ।
क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन्मूढस्य त्वामजानतः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

अपराधः—अपराध; सकृत्—एक बार; भर्त्रा—स्वामी द्वारा; सोढव्यः—सहन किया जाना चाहिए; स्व-प्रजा—आपकी प्रजा द्वारा; कृतः—किया गया; क्षन्तुम्—सहने के लिए; अर्हसि—आपको शोभा देता है; शान्त-आत्मन्—हे शान्त रहनेवाले; मूढस्य—मूर्ख के; त्वाम्—आपको; अजानतः—न समझने वाला।

स्वामी को चाहिए कि अपनी सन्तान या प्रजा द्वारा किये गये अपराध को कम से कम एक बार तो सह ले। इसलिए हे परम शान्त आत्मन्, आप हमारे इस मूर्ख पति को क्षमा कर दें जो यह नहीं समझ पाया कि आप कौन हैं।

तात्पर्य : अत्यधिक चिन्ता के कारण कालिय की पत्नियाँ इस श्लोक में एक ही भाव को—कि परमात्मा उनके मूर्ख पति को क्षमा कर दें—दो बार व्यक्त करती हैं। भगवान् परम शान्तात्मा हैं अतएव नागपत्नियाँ यह सुझाव देती हैं कि अज्ञानी कालिय द्वारा किये गये महान् अपराध को कम से कम इस बार क्षमा करना उनके लिए उपयुक्त होगा।

अनुगृह्णीष्व भगवन्प्राणांस्त्यजति पन्नगः ।

स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

अनुगृह्णीष्व—कृपा करें; भगवन्—हे भगवान्; प्राणान्—प्राणों को; त्यजति—त्याग रहा है; पन्नगः—सर्प; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के लिए; नः—हम; साधु-शोच्यानाम्—साधु पुरुषों द्वारा क्षम्य; पतिः—पति; प्राणः—जीवन स्वरूप; प्रदीयताम्—वापस दे दिया जाय।

हे भगवन्, आप हम पर कृपालु हों। साधु पुरुष को हम-जैसी स्त्रियों पर दया करना उचित है। यह सर्प अपना प्राण त्यागने ही वाला है। कृपया हमारे जीवन तथा आत्मा रूप हमारे पति को हमें वापस कर दें।

विधेहि ते किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ।
यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन्वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

विधेहि—आज्ञा दें; ते—आपकी; किङ्करीणाम्—दासियों द्वारा; अनुष्ठेयम्—जो किया जाना हो; तव—आपकी; आज्ञया—आज्ञा से; यत्—जो; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; अनुतिष्ठन्—सम्पन्न करते हुए; वै—निश्चय ही; मुच्यते—मुक्त हुआ जा सके; सर्वतः—सभी; भयात्—भय से।

अब कृपा करके अपनी दासियों को बतलायें कि हम क्या करें। यह निश्चित है कि जो भी आपकी आज्ञा को श्रद्धापूर्वक पूरा करता है, वह स्वतः सारे भय से मुक्त हो जाता है।

तात्पर्य : अब कालिय की पत्नियों का समर्पण पूर्ण हो चुका था और कृष्ण ने तुरन्त ही उन्हें अपनी कृपा प्रदान कर दी जैसाकि अगले श्लोकों में वर्णन हुआ है।

श्रीशुक उवाच
इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान्समभिष्टुतः ।
मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जाङ्घ्रिकुट्टनैः ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस तरह; सः—उन भगवान् कृष्ण ने; नाग-पत्नीभिः—कालिय की पत्नियों द्वारा; भगवान्—भगवान् ने; समभिष्टुतः—पूरी तरह से प्रशंसित; मूर्च्छितम्—मूर्च्छित, बेहोश; भग्न-शिरसम्—कुचले हुए सिरवाले; विससर्ज—जाने दिया; अङ्घ्रि-कुट्टनैः—पाँवों के प्रहार से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह नागपत्नियों द्वारा प्रशंसित भगवान् ने उस कालिय सर्प को छोड़ दिया, जो मूर्छित होकर गिर चुका था और जिसके सिर भगवान् के चरणकमलों के प्रहार से क्षत-विक्षत हो चुके थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार भगवान् कृष्ण अपने निर्णय पर पहुँचकर तुरन्त ही कालिय के फनों से नीचे कूद पड़े और सर्प तथा उसकी पत्नियों के समक्ष खड़े हो गये। हमें

स्मरण रखना चाहिए कि जब भगवान् कृष्ण ने ये लीलाएँ सम्पन्न कीं तो वे वृन्दावन के एक ग्रामीण बालक मात्र थे।

प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् ।
कृच्छ्रात्समुच्छ्वसन्दीनः कृष्णं प्राह कृताञ्जलिः ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

प्रतिलब्ध—पुनः प्राप्त करके; इन्द्रिय—इन्द्रियों का कार्य; प्राणः—तथा अपनी जीवनी शक्ति; कालियः—कालिय; शनकैः—धीरे धीरे; हरिम्—भगवान्; कृच्छ्रात्—कठिनाई से; समुच्छ्वसन्—तेजी से साँस लेता; दीनः—दुखी; कृष्णम्—कृष्ण से; प्राह—बोला; कृत-अञ्जलिः—विनीत होकर।

धीरे धीरे कालिय को अपनी जीवनी शक्ति तथा इन्द्रियों की क्रियाशीलता प्राप्त हो गई। तब कष्टपूर्वक जोर-जोर से साँस लेते हुए बेचारे सर्प ने विनीत भाव से भगवान् श्रीकृष्ण को सम्बोधित किया।

कालिय उवाच
वयं खलाः सहोत्पत्त्या तमसा दीर्घमन्यवः ।
स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

कालियः उवाच—कालिय ने कहा; वयम्—हम; खलाः—दुष्ट; सह उत्पत्त्या—अपने जन्म से ही; तामसाः—तामसी प्रकृति के; दीर्घ-मन्यवः—निरन्तर क्रुद्ध; स्वभावः—स्वभाव; दुस्त्यजः—जिसे छोड़ पाना अत्यन्त कठिन है; नाथ—हे स्वामी; लोकानाम्—सामान्य जनों के लिए; यत्—जिससे; असत्—असत्य तथा अशुद्ध की; ग्रहः—स्वीकृति।

कालिय नाग ने कहा : सर्प के रूप में जन्म से ही हम ईर्ष्यालु, अज्ञानी तथा निरन्तर क्रुद्ध बने हुए हैं। हे नाथ, मनुष्यों के लिए अपना बद्ध स्वभाव, जिससे वे असत्य से अपनी पहचान करते हैं, छोड़ पाना अत्यन्त कठिन है।

तात्पर्य : सनातन गोस्वामी संकेत करते हैं कि अपनी दीन दशा के कारण ही कालिय भगवान् के लिए मौलिक स्तुतियाँ नहीं रच सका इसीलिए वह अपनी पत्नियों द्वारा की गई कुछ स्तुतियों का शब्दान्तरण कर रहा था। *असद्ग्रह* शब्द बतलाता है कि बद्धजीव अस्थायी तथा अशुद्ध वस्तुओं को ही दृढ़ता से पकड़ता है—यथा अपना शरीर, अन्यों के शरीर तथा नाना प्रकार के भौतिक इन्द्रिय विषय। ऐसी भौतिक आसक्ति का अन्तिम फल दुराशा, निराशा तथा क्रोध होता है, जो उस बेचारे सर्प कालिय को अब स्पष्ट हो चुका था।

त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम् ।
नानास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

त्वया—आपके द्वारा; सृष्टम्—उत्पन्न; इदम्—यह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; धातः—हे विधाता; गुण—भौतिक गुणों की; विसर्जनम्—विविध सृष्टि; नाना—विविध; स्व-भाव—स्वभाव; वीर्य—नाना प्रकार की शक्ति; ओजः—तथा शारीरिक शक्ति; योनि—गर्भ; बीज—बीज; आशय—मनोवृत्ति; आकृति—तथा रूप।

हे परम विधाता, आप ही भौतिक गुणों की विविध व्यवस्था से निर्मित इस ब्रह्माण्ड के बनाने वाले हैं। इस प्रक्रिया में आप नाना प्रकार के व्यक्तित्व तथा योनियाँ, नाना प्रकार की ऐन्द्रिय तथा शारीरिक शक्तियाँ तथा भाँति भाँति की मनोवृत्तियों एवं आकृतियों वाले माता-पिताओं को प्रकट करते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक की टीका करते हुए श्रील मध्वाचार्य ने नारद पुराण का यह उद्धरण दिया है "हिरण्यगर्भ ब्रह्मा से इस ब्रह्माण्ड की दुबारा सृष्टि होती है, परन्तु मूल सृष्टि तो साक्षात् विष्णु द्वारा ही की जाती है। इस प्रकार विष्णु मूल स्रष्टा हैं और चतुरानन मात्र केवल गौण स्रष्टा हैं।"

वयं च तत्र भगवन्सर्पा जात्युरुमन्यवः ।
कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; च—तथा; तत्र—उस भौतिक सृष्टि के भीतर; भगवन्—हे भगवन्; सर्पाः—सर्पगण; जाति—जाति, योनि; उरु-मन्यवः—अत्यन्त क्रोधी; कथम्—कैसे; त्यजामः—हम त्याग सकते हैं; त्वत्-मायाम्—आपकी मायाशक्ति को; दुस्त्यजाम्—जिसे त्याग पाना असम्भव है; मोहिताः—मोहित; स्वयम्—अपने आप।

हे भगवन्, आपकी भौतिक सृष्टि में जितनी भी योनियाँ हैं उनमें से हम सर्पगण स्वभाव से सदैव क्रोधी हैं। इस तरह आपकी दुस्त्यज मायाशक्ति से मुग्ध होकर भला हम उस स्वभाव को अपने आप कैसे त्याग सकते हैं?

तात्पर्य : कालिय यहाँ पर अप्रत्यक्ष रीति से भगवान् की कृपा की याचना कर रहा है क्योंकि उसे अनुभव हो रहा है कि वह अपने आप कभी भी मोह तथा कष्ट से मुक्त नहीं हो सकता। भगवान् की शरण में जाकर और उनकी कृपा प्राप्त करके ही कोई व्यक्ति भौतिक जीवन के कष्टों से छुटकारा पा सकता है।

भवान्हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ।
अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

भवान्—आप; हि—निश्चय ही; कारणम्—कारण; तत्र—उस मामले में (मोह हटाने में); सर्व-ज्ञः—सबकुछ जाननेवाले; जगत्-ईश्वरः—ब्रह्माण्ड के परम नियन्ता; अनुग्रहम्—कृपा; निग्रहम्—दंड; वा—अथवा; मन्यसे—जो आप उचित समझें; तत्—वह; विधेहि—व्यवस्था करें; नः—हमारे लिए।

हे ईश्वर, ब्रह्माण्ड के सर्वज्ञ भगवान् होने के कारण आप मोह से छूटने के वास्तविक कारण हैं। कृपा करके आप जो भी उचित समझें, हमारे लिए व्यवस्था करें, चाहे हम पर कृपा करें या दण्ड दें।

श्रीशुक उवाच

इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान्कार्यमानुषः ।
नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् ।
स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यते नदी ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आकर्ण्य—सुनकर; वचः—ये शब्द; प्राह—तब बोले; भगवान्—भगवान्; कार्य-मानुषः—मनुष्य जैसे कार्य करनेवाले; न—नहीं; अत्र—यहाँ; स्थेयम्—ठहरना चाहिए; त्वया—तुमको; सर्प—हे सर्प; समुद्रम्—समुद्र में; याहि—जाओ; मा चिरम्—बिना देरी किये; स्व—अपने; ज्ञाति—साथियों के द्वारा; अपत्य—बच्चे; दार—तथा पत्नी को; आढ्यः—साथ लेकर; गो—गौवों के द्वारा; नृभिः—तथा मनुष्यों द्वारा; भुज्यते—भोगी जाने दो; नदी—यमुना नदी।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कालिय के शब्द सुनकर मनुष्य की भूमिका सम्पन्न कर रहे भगवान् ने उत्तर दिया: हे सर्प, अब तुम और अधिक यहाँ मत रुको। तुरन्त ही अपने बच्चों, पत्नियों, अन्य मित्रों तथा सम्बन्धियों समेत समुद्र में लौट जाओ। अब इस नदी को गौवों तथा मनुष्यों द्वारा भोगी जाने दो।

य एतत्संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ।
कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; एतत्—इसे; संस्मरेत्—स्मरण करता है; मर्त्यः—प्राणी; तुभ्यम्—तुमको; मत्—मेरा; अनुशासनम्—आदेश; कीर्तयन्—कीर्तन करते हुए; उभयोः—दोनों; सन्ध्योः—दिन के सन्धिकालों पर; न—नहीं; युष्मत्—तुमसे; भयम्—भय; आप्नुयात्—प्राप्त करता है।

यदि कोई व्यक्ति तुम्हें दिये गये मेरे इस आदेश का (वृन्दावन छोड़कर समुद्र में जाने का) स्मरण करता है और प्रातः तथा संध्या समय इस कथा को बाँचता है, तो वह तुमसे कभी भयभीत नहीं होगा।

योऽस्मिन्स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ।
उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; अस्मिन्—इस में (यमुना नदी के कालिय सरोवर में); स्नात्वा—स्नान करके; मत्-आक्रीडे—मेरी लीला के स्थान पर; देव-आदीन्—देवतागण तथा अन्य पूज्य व्यक्ति को; तर्पयेत्—तृप्त करता है; जलैः—(सरोवर के) जल से; उपोष्य—उपवास रखकर; माम्—मुझको; स्मरन्—स्मरण करते हुए; अर्चेत्—पूजा करता है; सर्व-पापैः—सारे पापों से; प्रमुच्यते—छूट जाता है।

यदि कोई व्यक्ति मेरी क्रीड़ा के इस स्थल पर स्नान करता है और इस सरोवर का जल देवताओं तथा अन्य पूज्य पुरुषों को अर्पित करता है अथवा यदि कोई उपवास करता है, मेरी पूजा करता है और मेरा स्मरण करता है, तो वह समस्त पापों से अवश्य छूट जाएगा।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार, भगवान् ने यह श्लोक कालिय को यह स्पष्ट करने के लिए कहा कि वह किसी भी हालत में यमुना के सरोवर में रह नहीं सकता था। यद्यपि भगवान् ने कृपापूर्वक सर्प को क्षमा दान दे दिया था और उसको अपने सभी साथियों समेत समुद्र में जाने का आदेश दे दिया था, कालिय को भूलकर भी उस सरोवर में रहने की प्रार्थना नहीं करनी चाहिए क्योंकि आध्यात्मिक यात्रियों के लिए इसे अब पवित्र तीर्थ स्थल बनना था।

द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः ।
यद्भयात्स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलाञ्छितम् ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ

द्वीपम्—द्वीप को; रमणकम्—रमणक नामक; हित्वा—त्यागकर; ह्रदम्—छोटे सरोवर को; एतम्—इस; उपाश्रितः—शरण लिए हुए; यत्—जिसके; भयात्—भय से; सः—वह; सुपर्णः—गरुड़; त्वाम्—तुम्हें; न अद्यात्—नहीं खायेगा; मत्-पाद—मेरे चरणों से; लाञ्छितम्—अंकित।

तुम गरुड़ के भय से रमणक द्वीप छोड़कर इस सरोवर में शरण लेने आये थे। किन्तु अब तुम्हारे ऊपर मेरे चरणचिन्ह अंकित होने से, गरुड़ तुम्हें खाने का प्रयास कभी नहीं करेगा।

श्रीऋषिरुवाच
मुक्तो भगवता राजन्कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ

श्री-ऋषिः उवाच—ऋषि (शुकदेव) ने कहा; मुक्तः—मुक्त; भगवता—भगवान् द्वारा; राजन्—हे राजा परीक्षित; कृष्णेन—कृष्ण के द्वारा; अद्भुत-कर्मणा—अद्भुत कार्यकलाप वाले; तम्—उनकी; पूजयाम् आस—पूजा की; मुदा—हर्षपूर्वक; नाग—सर्प की; पत्न्यः—पत्नियों ने; च—तथा; स-आदरम्—आदरपूर्वक।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजन्, अद्भुत कार्यकलाप वाले भगवान् कृष्ण के

द्वारा छोड़े जाने पर कालिय नाग ने अपनी पत्नियों का बड़े ही हर्ष तथा आदर के साथ उनकी पूजा करने में साथ दिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : *अद्भुत-कर्मणा* शब्द भगवान् के द्वारा कालिय से वृन्दावनवासियों की रक्षा, गरुड़ से कालिय को बचाना तथा हिंसा करनेवाले और हिंसा किये जानेवाले दोनों पर ही कृपा करना—जैसे अद्भुत कार्यकलापों को इंगित करता है। *कृष्णेन* शब्द "कृष्ण के द्वारा" यह सूचित करता है कि क्योंकि कालिय की पत्नियाँ कृष्ण की महान् भक्त थीं और उन्हें अत्यधिक स्नेह प्रदान किया था इसलिए कृष्ण ने भगवद्भक्त गरुड़ के प्रति तथा अपने प्रिय वृन्दावनवासियों के प्रति कालिय द्वारा किये गये अपराधों को वापस ले लिया (कर्षणम्)।

दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः परार्ध्यैरपि भूषणैः ।
दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ।
पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् ॥ ६५ ॥
ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवन्द्य तम् ।
सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह ॥ ६६ ॥
तदैव सामृतजला यमुना निर्विषाभवत् ।
अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ

दिव्य—दैवी; अम्बर—वस्त्र; स्रक्—माला; मणिभिः—तथा मणियों से; पर-अर्ध्यैः—अत्यन्त मूल्यवान; अपि—भी; भूषणैः—आभूषणों से; दिव्य—दैवी; गन्ध—सुगन्धि; अनुलेपैः—तथा लेप से; च—तथा; महत्या—सुन्दर; उत्पल—कमल की; मालया—माला से; पूजयित्वा—पूजकर; जगत्-नाथम्—जगत के स्वामी को; प्रसाद्य—तुष्ट करके; गरुड-ध्वजम्—जिसकी ध्वजा में गरुड़ चिह्न अंकित है, उसे; ततः—तब; प्रीतः—सुख का अनुभव करते हुए; अभ्यनुज्ञातः—जाने की अनुमति दिया जाकर; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; अभिवन्द्य—नमस्कार करके; तम्—उन्हें; स—सहित; कलत्र—अपनी पत्नी; सुहृत्—मित्रगण; पुत्रः—तथा बच्चे; द्वीपम्—द्वीप को; अब्धेः—समुद्र में; जगाम—चला गया; ह—निस्सन्देह; तदा एव—उसी क्षण; स-अमृत—अमृत तुल्य; जला—जल वाली; यमुना—यमुना नदी; निर्विषा—विष से रहित; अभवत्—हो गई; अनुग्रहात्—कृपा से; भगवतः—भगवान् की; क्रीडा—क्रीड़ाओं के लिए; मानुष—मनुष्य जैसा; रूपिणः—रूप धारण करके।

कालिय ने सुन्दर वस्त्र, मालाएँ, मणियाँ तथा अन्य मूल्यवान आभूषण, दिव्य सुगन्धियाँ तथा लेप और कमलफूलों की बड़ी माला भेंट करते हुए जगत के स्वामी की पूजा की। इस तरह गरुड़-ध्वज भगवान् को प्रसन्न करके कालिय को सन्तोष हुआ। जाने की अनुमति पाकर कालिय ने उनकी परिक्रमा की और उन्हें नमस्कार किया। तब अपनी पत्नियों, मित्रों तथा बच्चों को साथ लेकर वह समुद्र में स्थित अपने द्वीप चला गया। कालिय के जाते ही यमुना नदी अपने

मूल रूप में, विष से विहीन तथा अमृतोपम जल से पूर्ण हो गई। यह सब उन भगवान् की कृपा से सम्पन्न हुआ जो अपनी लीलाओं का आनन्द मनाने के लिए मनुष्य के रूप में प्रकट हुए थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की विशद टीका की है। *मणिभि:* शब्द की व्याख्या करने के लिए आचार्य ने रूप गोस्वामी कृत *श्री राधा-कृष्ण गणोद्देश दीपिका* से निम्नलिखित उद्धरण दिया है—

कौस्तुभाख्यो मणिर्येन प्रविश्य ह्रदमौरगम्।

कालियप्रेयसिवृन्दहस्तैरात्मोपहारित: ॥

''भगवान् ने अपनी कौस्तुभ मणि को सर्प के सरोवर में प्रविष्ट करा दिया था और फिर कालिय की पत्नियों से उसे स्वयं को अर्पित कराया था।'' दूसरे शब्दों में, चूँकि भगवान् कृष्ण सामान्य व्यक्ति का सा आचरण करना चाहते थे अतएव उन्होंने दिव्य कौस्तुभ मणि को अदृश्य करके कालिय के कोष में प्रविष्ट करा दिया। तत्पश्चात् जब अनेक मणियों तथा आभूषणों से कालिय द्वारा पूजा करने का उचित समय आया तो भगवान् की दिव्य चालाकी से अनजान सर्प की पत्नियों ने वह कौस्तुभ मणि यह सोचकर कि यह उनके पास रखी एक सामान्य मणि है भगवान् को भेंट कर दी।

आचार्य ने यह भी टीका की है कि भगवान् कृष्ण को *गरुड़ध्वज* (वे जिनकी पताका उनके वाहन गरुड़ के निशान से अंकित है) इसलिए कहा गया है कि कालिय भी कृष्ण का वाहन बनना चाह रहा था। गरुड़ तथा सर्पगण मूलत: भाई भाई हैं अत: कालिय कृष्ण को यह बतलाना चाह रहा था ''यदि आप कहीं दूर जाना चाहें तो मुझे भी अपना निजी वाहन मानें। मैं आपके दास का दास हूँ और पलक झपकते ही मैं करोड़ों योजन की यात्रा कर सकता हूँ।'' इस तरह पुराणों में बतलाया गया है कि भगवान् कृष्ण अपनी शाश्वत लीलाओं के चक्र में, जब कंस उन्हें मथुरा आने का आदेश देते हैं, तो वे कभी कभी कालिय पर सवार होकर जाते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण द्वारा कालिय नाग को प्रताड़ना'' नामक सोलहवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सत्रह

कालिय का इतिहास

इस अध्याय में बतलाया गया है कि कालिय ने किस तरह सर्पों के द्वीप को छोड़ा था और सोए हुए वृन्दावनवासी किस तरह जंगल की आग से बचाये गये थे।

जब राजा परीक्षित ने कालिय द्वारा सर्पों के निवास रमणक द्वीप को छोड़ने तथा गरुड़ द्वारा उसके प्रति शत्रुभाव प्रदर्शित किये जाने के बारे में पूछा तो श्री शुकदेव गोस्वामी ने इस प्रकार उत्तर दिया: उस द्वीप के सारे सर्प भयभीत थे कि कहीं गरुड़ उन्हें निगल न जाय। उसे प्रसन्न करने के लिए वे प्रति मास एक वटवृक्ष के नीचे भाँति भाँति की भेंटें चढ़ा आते थे। किन्तु कालिय मिथ्या अभिमानवश इन भेंटों को स्वयं खा जाता था। यह सुनकर गरुड़ अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और कालिय को मारने चल पड़ा तो इस सर्प ने विराट पक्षी गरुड़ को डँसना शुरू कर दिया। गरुड़ ने प्रचण्डतापूर्वक अपने पंख से उसे मारा जिससे कालिय अपनी जान बचाने के लिए यमुना नदी के सरोवर में भाग आया।

इस घटना के पूर्व गरुड़ एक बार यमुना नदी में आया था और मछलियाँ खाने लगा था। सौभरि ऋषि ने उसे रोकना चाहा किन्तु भूख का मारा गरुड़ ऋषि के निषेध को नहीं मान पाया अत: ऋषि ने उसे शाप दे दिया था कि यदि वह दुबारा वहाँ आया तो तुरन्त मर जायेगा। कालिय ने यह सुन लिया था इसलिए वह वहाँ निड़र होकर रहता था। किन्तु अन्त में कृष्ण ने उसे भगा दिया।

जब बलराम तथा वृन्दावन के सारे वासियों ने श्रीकृष्ण को विभिन्न प्रकार के मणियों तथा आभूषणों से अलंकृत होकर उस सरोवर से ऊपर निकलते देखा तो हर्ष से उन्होंने उनका आलिंगन किया। तब आध्यात्मिक गुरुओं, पुरोहितों तथा विद्वान ब्राह्मणों ने ग्वालों के राजा नन्द महाराज को बतलाया कि यद्यपि उनके पुत्र को कालिय ने अपने चंगुल में पकड़ रखा था किन्तु राजा के भाग्य से अब वह पुन: मुक्त हो चुका है।

चूँकि वृन्दावन के निवासी भूख, प्यास तथा थकावट के कारण त्रस्त थे अतएव उन्होंने वह रात यमुना के तट पर ही बिताई। अर्धरात्रि के समय जंगल में अग्नि भड़क उठी क्योंकि ग्रीष्मऋतु में यह जंगल सूख गया था। जब सोते हुए वृन्दावनवासियों को आग ने घेर लिया तो वे सहसा जगे और रक्षा के लिए कृष्ण की ओर दौंड़े। तब असीम बलशाली श्रीकृष्ण अपने प्रिय सम्बन्धियों तथा मित्रों को इस तरह पीड़ित देख तुरन्त ही उस दावाग्नि को पी गये।

श्रीराजोवाच

नागालयं रमणकं कथं तत्याज कालियः ।
कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने कहा; नाग—सर्पों का; आलयम्—वासस्थान; रमणकम्—रमणक नामक द्वीप; कथम्—क्यों; तत्याज—त्याग दिया; कालियः—कालिय ने; कृतम्—वाध्य किया गया; किम् वा—तथा क्यों; सुपर्णस्य—गरुड़ की; तेन—उससे, कालिय से; एकेन—अकेले; असमञ्जसम्—शत्रुता।

[इस प्रकार कृष्ण ने कालिय की प्रताड़ना की उसे सुनकर] राजा परीक्षित ने पूछा: कालिय ने सर्पों के निवास रमणक द्वीप को क्यों छोड़ा और गरुड़ उसीका से इतना विरोधी क्यों बन गया?

श्रीशुक उवाच

उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः
वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ।
स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि
गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; उपहार्यैः—भेंट पाने के पात्र; सर्प-जनैः—सर्प जाति के द्वारा; मासि मासि—हर महीने; इह—यहाँ (नागालय में); यः—जो; बलिः—भेंट; वानस्पत्यः—वृक्ष के नीचे; महा-बाहो—हे बलिष्ट भुजाओं वाले परीक्षित; नागानाम्—सर्पों के लिए; प्राक्—पहले से; निरूपितः—निश्चित; स्वम् स्वम्—अपना अपना; भागम्—अंश; प्रयच्छन्ति—भेंट करते; नागाः—सर्पगण; पर्वणि पर्वणि—मास में एक बार; गोपीथाय—रक्षा हेतु; आत्मनः—अपनी अपनी; सर्वे—सभी; सुपर्णाय—गरुड़ को; महा-आत्मने—बलशाली।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : गरुड़ द्वारा खाये जाने से बचने के लिए सर्पों ने पहले से उससे यह समझौता कर रखा था कि उनमें से हर सर्प मास में एक बार अपनी भेंट लाकर वृक्ष के नीचे रख जाया करेगा। इस तरह हे महाबाहु परीक्षित, प्रत्येक मास हर सर्प अपनी रक्षा के मूल्य के रूप में विष्णु के शक्तिशाली वाहन को अपनी भेंट चढ़ाया जाया करता था।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने इस श्लोक की एक दूसरी भी व्याख्या दी है। *उपहार्यैं* शब्द का एक दूसरा अर्थ भी किया जा सकता है "जिन्हें खाया जाना है उनके द्वारा।" इसी तरह *सर्प-जनै* का अर्थ है "वे मनुष्य जो सर्प जाति के अधीन थे या उससे सम्बन्धित थे।" इस पाठ के अनुसार, मनुष्यों का एक समुदाय सर्पों के अधीन हो गया था और उनके द्वारा खाये जा सकते थे। इससे बचने के लिए ये लोग सर्पों को मासिक भेंट चढ़ाते थे जिसमें से एक अंश वे गरुड़ को देते थे ताकि वह उन्हें न खा

जाय। यहाँ जो विशेष अर्थ प्रस्तुत किया गया है, वह श्रील सनातन गोस्वामी की टीका तथा श्रील प्रभुपाद द्वारा 'भगवान् कृष्ण' नामक ग्रन्थ के पर आधारित है। हर हालत में, सारे आचार्यों में मतैक्य है कि सर्पों ने गरुड़ से सुरक्षा मोल ले रखी थी।

विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः ।
कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

विष—विष; वीर्य—तथा शक्ति के कारण; मद—नशे में; आविष्टः—लीन; काद्रवेयः—कद्रु का पुत्र; तु—दूसरी ओर; कालियः—कालिय; कदर्थी-कृत्य—अवहेलना करके; गरुडम्—गरुड़ की; स्वयम्—खुद; तम्—उस; बुभुजे—खाता था; बलिम्—भेंट को।

यद्यपि अन्य सभी सर्पगण ईमानदारी से गरुड़ को भेंट दे जाया करते थे किन्तु एक सर्प, कद्रु-पुत्र अभिमानी कालिय, इन सभी भेंटों को गरुड़ के पाने से पहले ही खा जाया करता था। इस तरह कालिय भगवान् विष्णु के वाहन का प्रत्यक्ष अनादर करता था।

तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन्भगवान्भगवत्प्रियः ।
विजिघांसुर्महावेगः कालियं समपाद्रवत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; श्रुत्वा—सुनकर; कुपितः—क्रुद्ध; राजन्—हे राजा; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली गरुड़; भगवत्-प्रियः—भगवान् का प्रिय भक्त; विजिघांसुः—मारने की इच्छा से; महा-वेगः—फुर्ती से; कालियम्—कालिय की ओर; समुपाद्रवत्—दौड़ा।

हे राजन्, जब भगवान् के अत्यन्त प्रिय, परम शक्तिशाली गरुड़ ने यह सुना तो वह क्रुद्ध हो उठा। वह कालिय को मार डालने के लिए उसकी ओर तेजी से झपटा।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी बतलाते हैं कि महावेग शब्द इस बात का सूचक है कि गरुड़ की अत्यधिक गति को कोई नहीं रोक सकता।

तमापतन्तं तरसा विषायुधः
प्रत्यभ्ययादुत्थितनैकमस्तकः ।
दद्भिः सुपर्णं व्यदशद्ददायुधः
करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसपर; आपतन्तम्—आक्रमण करता हुआ गरुड़; तरसा—तेजी से; विष—विषैले; आयुधः—हथियार लिये हुए; प्रति—की ओर; अभ्ययात्—दौड़ा; उत्थित—उठाया; न एक—अनेक; मस्तकः—अपने सिर; दद्भिः—विषैले दाँतों से; सुपर्णम्—

गरुड़ को; व्यदशत्—काट लिया; दत्-आयुधः—दाँतरूपी हथियारों से; कराल—भयावनी; जिह्वा—जीभ; उच्छ्वसित—फैला दिया; उग्र—तथा भीषण; लोचनः—आँखें।

ज्योंही गरुड़ तेजी से कालिय पर झपटा त्योंही विष के हथियार से लैस उसने वार करने के लिए अपने अनेक सिर उठा लिये। अपनी भयावनी जीभें दिखलाते और अपनी उग्र आँखें फैलाते हुए उसने अपने विष-दत्त हथियारों से गरुड़ को काट लिया।

तात्पर्य : आचार्यों का कहना है कि कालिय ने विष वमन करके शत्रु पर विष आयुध का इस्तेमाल दूर से और अपने भयावने दाँतों से डसकर निकट से किया।

तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान्
प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः ।
पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा
जघान कद्रुसुतमुग्रविक्रमः ॥ ७॥

शब्दार्थ

तम्—उस कालिय को; तार्क्ष्य-पुत्रः—कश्यप का पुत्र; सः—वह गरुड़; निरस्य—झटककर; मन्यु-मान्—क्रोध से भरा; प्रचण्ड-वेगः—अत्यन्त तेजी से, गति करते हुए; मधुसूदन-आसनः—मधुसूदन कृष्ण का वाहन; पक्षेण—अपने पंख से; सव्येन—बाएँ; हिरण्य—स्वर्ण जैसे; रोचिषा—तेज वाले; जघान—वार किया; कद्रु-सुतम्—कद्रु-पुत्र (कालिय) पर; उग्र—प्रचणड; विक्रमः—पराक्रम।

तार्क्ष्य का क्रुद्ध पुत्र कालिय के वार को पीछे धकेलने के लिए प्रचंड वेग से आगे बढ़ा। उस अत्यन्त शक्तिशाली भगवान् मधुसूदन के वाहन ने कद्रु के पुत्र पर अपने स्वर्ण जैसे चमकीले बाएँ पंख से प्रहार किया।

सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः ।
ह्रदं विवेश कालिन्द्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८॥

शब्दार्थ

सुपर्ण—सुपर्ण के; पक्ष—पंख से; अभिहतः—चोट खाकर; कालियः—कालिय; अतीव—अत्यधिक; विह्वलः—बेचैन; ह्रदम्—सरोवर में; विवेश—घुस गया; कालिन्द्याः—यमुना नदी के; तत्-अगम्यम्—गरुड़ द्वारा थाह पा सकने में अक्षम; दुरासदम्—घुसने में कठिन।

गरुड़ के पंख की चोट खाने से कालिय अत्यधिक बेचैन हो उठा अतः उसने यमुना नदी के निकटस्थ सरोवर में शरण ले ली। गरुड़ इस सरोवर में नहीं घुस सका। निस्सन्देह, वह वहाँ तक पहुँच भी नहीं सका।

तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् ।
निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ (उस सरोवर में); एकदा—एक बार; जल-चरम्—जल के प्राणी को; गरुडः—गरुड़ ने; भक्ष्यम्—अपना खाद्य; ईप्सितम्—इच्छा की; निवारितः—मना किया गया; सौभरिणा—सौभर मुनि द्वारा; प्रसह्य—साहस करके; क्षुधितः—भूखा; अहरत्—खा लिया।

उसी सरोवर में गरुड़ ने एक बार एक मछली को, जो कि उसका सामान्य भक्ष्य है, खाना चाहा। जल के भीतर ध्यानमग्न सौभरि मुनि के मना करने पर भी गरुड़ ने साहस किया और भूखा होने के कारण उस मछली को पकड़ लिया।

तात्पर्य : अब शुकदेव गोस्वामी बता रहे हैं कि गरुड़ यमुना नदी के उस सरोवर तक क्यों नहीं पहुँच सका। मछलियों को खाना पक्षियों का स्वभाव है, अतः यदि गरुड़ भगवान् की व्यवस्था के फलस्वरूप मछली खाकर अपना जीवन निर्वाह करता है, तो वह कोई अपराध नहीं करता। किन्तु सौभरि मुनि द्वारा एक महानतर प्राणी को अपनी भोज्य वस्तु खाने से मना किया जाना एक अपराध बन जाता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार सौभरि ने दो अपराध किये—एक तो यह कि उन्होंने गरुड़ जैसे उच्च महात्मा को आदेश देने का साहस दिखलाया और दूसरा यह कि उन्होंने गरुड़ को उसकी इच्छा तृप्त करने से रोका।

मीनान्सुदुःखितान्दृष्ट्वा दीनान्मीनपतौ हते ।
कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

मीनान्—मछलियों को; सु-दुःखितान्—अत्यन्त दुखी; दृष्ट्वा—देखकर; दीनान्—दीन; मीन-पतौ—मछलियों का राजा; हते—मारे जाने से; कृपया—कृपावश; सौभरिः—सौभरि; प्राह—बोला; तत्रत्य—वहाँ पर रह रहे; क्षेमम्—कुशलता; आचरन्—आचरण करते हुए।

उस सरोवर की अभागिनी मछलियों को अपने स्वामी की मृत्यु के कारण अत्यन्त दुखी देखकर सौभरि मुनि ने इस आशय से शाप दे दिया कि वे उस सरोवर के रहनेवालों के कल्याण हेतु कृपापूर्ण कर्म कर रहे हैं।

तात्पर्य : इस प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि जब हमारी तथाकथित दया भगवान् के आदेश से मेल नहीं खाती तो उससे केवल उत्पात मचता है। चूँकि सौभरि ने उस सरोवर में आने से गरुड़ को मना किया था अतएव कालिय उसमें घुस गया और उसने उसे अपना आवास बना

लिया। इस तरह सरोवर के सभी निवासियों पर शाप आ गिरा।

अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान्स खादति ।
सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अत्र—इस सरोवर में; प्रविश्य—घुसकर; गरुडः—गरुड़; यदि—यदि; मत्स्यान्—मछलियों को; सः—वह; खादति—खाता है; सद्यः—तुरन्त; प्राणैः—प्राणों से; वियुज्येत—हाथ धोना पड़ता; सत्यम्—सही सही; एतत्—यह; ब्रवीमि—कह रहा हूँ; अहम्—मैं।

"यदि गरुड़ ने फिर कभी इस सरोवर में घुसकर मछलियाँ खाईं तो वह तुरन्त अपने प्राणों से हाथ धो बैठेगा। मैं जो कह रहा हूँ वह सत्य है।"

तात्पर्य : इस प्रसंग में आचार्यों की व्याख्या यह है कि सौभरि मुनि ने मछली के प्रति भौतिक अनुरक्ति एवं स्नेह के कारण, स्थिति पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार नहीं किया। *श्रीमद्भागवत* के नवें स्कंध में इसी अपराध के कारण उनका पतन दिखलाया गया है। मिथ्या दम्भ के कारण सौभरि मुनि की तपोशक्ति जाती रही और इसी के साथ उनका आध्यात्मिक सौन्दर्य तथा सुख भी। जब गरुड़ यमुना नदी में आया तो सौभरि मुनि ने सोचा, "वह भले ही भगवान् का निजी पार्षद क्यों न हो मैं उसे शाप देकर रहूँगा और यदि मेरे आदेश का पालन नहीं करेगा तो मार भी डालूँगा।" किसी प्रतिष्ठित वैष्णव के विरुद्ध ऐसा आक्रामक रवैया जीवन में किसी के भी पवित्र पद को निस्सन्देह विनष्ट कर देगा।

नवें स्कन्ध में बतलाया गया है कि सौभरि मुनि ने अनेक सुन्दर स्त्रियों से विवाह किया और उनकी संगति से भारी कष्ट सहे। किन्तु चूँकि उन्होंने वृन्दावन में यमुना की शरण ले रखी थी इसलिए उन्हें ख्याति प्राप्त हो गई और अन्त में उनका उद्धार हो गया।

तत्कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः ।
अवात्सीद्गरुडाद्भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तम्—वह; कालियः—कालिय; परम्—एकमात्र; वेद—जानता था; न—नहीं; अन्यः—दूसरा; कश्चन—कोई; लेलिहः—सर्प; अवात्सीत्—रहता था; गरुडात्—गरुड़ से; भीतः—भयभीत; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; च—तथा; विवासितः—निकाला गया।

सारे सर्पों में केवल कालिय ही इस बात को जानता था और गरुड़ के भय से उसने यमुना के सरोवर में अपना निवास बना रखा था। बाद में कृष्ण ने उसे निकाल भगाया।

कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रान्तं दिव्यस्त्रग्गन्धवाससम् ।
महामणिगणाकीर्णं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥
उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः ।
प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याभिरेभिरे ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

कृष्णम्—कृष्ण को; ह्रदात्—सरोवर से बाहर; विनिष्क्रान्तम्—निकलकर; दिव्य—दिव्य; स्रक्—मालाएँ पहने; गन्ध—सुगन्धि; वाससम्—तथा वस्त्र; महा-मणि-गण—अनेक सुन्दर मणियों से; आकीर्णम्—ढका हुआ; जाम्बूनद—सोने से; परिष्कृतम्—अलंकृत; उपलभ्य—देखकर; उत्थिताः—ऊपर उठते; सर्वे—सभी लोग; लब्ध-प्राणाः—जिन्हें प्राण मिल गये हों; इव—सदृश; असवः—इन्द्रियाँ; प्रमोद—हर्षपूर्वक; निभृत-आत्मानः—पूरित होकर; गोपाः—ग्वालों ने; प्रीत्या—स्नेहपूर्वक; अभिरेभिरे—उनका आलिंगन किया।

[कृष्ण द्वारा कालिय की प्रताड़ना का वर्णन फिर से प्रारम्भ करते हुए शुकदेव गोस्वामी ने कहा]: कृष्ण दिव्य मालाएँ, सुगन्धियाँ तथा वस्त्र धारण किये, अनेक उत्तम मणियों से आच्छादित एवं स्वर्ण से अलंकृत होकर उस सरोवर से ऊपर उठे। जब ग्वालों ने उन्हें देखा तो वे सब तुरन्त उठ खड़े हो गये मानों किसी मूर्छित व्यक्ति की इन्द्रियाँ पुनः जीवित हो उठी हों। उन्होंने अतीव हर्ष से सराबोर होकर स्नेहपूर्वक उनको गले लगा लिया।

यशोदा रोहिणी नन्दो गोप्यो गोपाश्च कौरव ।
कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसन्शुष्का नगा अपि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

यशोदा रोहिणी नन्दः—यशोदा, रोहिणी तथा नन्द महाराज; गोप्यः—गोपियाँ; गोपाः—ग्वाले; च—तथा; कौरव—हे कुरुवंशी परीक्षित; कृष्णम्—कृष्ण से; समेत्य—मिलकर; लब्ध—फिर से प्राप्त करके; ईहाः—चेतना; आसन्—हो गये; शुष्काः—सूखे हुए; नगाः—वृक्ष; अपि—भी।

अपनी जीवनदायी चेतनाएँ वापस पाकर यशोदा, रोहिणी, नन्द तथा अन्य सारी गोपियाँ एवं ग्वाले कृष्ण के समीप पहुँच गये। हे कुरुवंशी, ऐसे में सूखे वृक्ष भी सजीव हो उठे।

रामश्चाच्युतमालिङ्ग्य जहासास्यानुभाववित् ।
प्रेम्णा तमङ्कमारोप्य पुनः पुनरुदैक्षत ।
गावो वृषा वत्सतर्यो लेभिरे परमां मुदम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

रामः—बलराम; च—तथा; अच्युतम्—अच्युत, भगवान् कृष्ण को; आलिङ्ग्य—आलिंगन करके; जहास—हँसे; अस्य—उनका; अनुभाव-वित्—सर्वशक्ति को जानते हुए; प्रेम्णा—प्रेमवश; तम्—उनको; अङ्कम्—अपनी गोद में; आरोप्य—उठाकर; पुनः पुनः—फिर फिर; उदैक्षत—देखा-भाला; गावः—गौवों; वृषाः—साँडों; वत्सतर्यः—बछियों ने; लेभिरे—प्राप्त किया; परमाम्—परम; मुदम्—आनन्द।

भगवान् बलराम ने अपने अच्युत भाई का आलिंगन किया और कृष्ण की शक्ति को अच्छी

तरह जानते हुए हँसने लगे। अत्यधिक प्रेमभाव के कारण बलराम ने कृष्ण को अपनी गोद में उठा लिया और बारम्बार उनकी ओर देखा। गौवों, साँडों तथा बछियों को भी परम आनन्द प्राप्त हुआ।

नन्दं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः ।
ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ॥ १७॥

शब्दार्थ

नन्दम्—नन्द महाराज को; विप्राः—सारे ब्राह्मण; समागत्य—आकर; गुरवः—गरुजन; स-कलत्रकाः—अपनी अपनी पत्नियों समेत; ऊचुः—कहा; ते—वे; कालिय-ग्रस्तः—कालिय द्वारा पकड़ा हुआ; दिष्ट्या—दैव से; मुक्तः—छोड़ा गया; तव—तुम्हारा; आत्म-जः—पुत्र।

सारे गुरुजन ब्राह्मण अपनी पत्नियों सहित नन्द महाराज को बधाई देने आये। उन्होंने उनसे कहा, ''तुम्हारा पुत्र कालिय के चंगुल में था किन्तु दैवकृपा से अब वह छूट आया है।''

देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे ।
नन्दः प्रीतमना राजन्गाः सुवर्णं तदादिशत् ॥ १८॥

शब्दार्थ

देहि—दीजिये; दानम्—दान; द्वि-जातीनाम्—ब्राह्मणों को; कृष्ण-निर्मुक्ति—कृष्ण की रक्षा; हेतवे—हेतु; नन्दः—नन्द महाराज ने; प्रीत-मनाः—प्रसन्न मन से; राजन्—हे राजा परीक्षित; गाः—गौवें; सुवर्णम्—सोना; तदा—तब; आदिशत्—दिया।

तब, ब्राह्मणों ने नन्द महाराज को सलाह दी, ''तुम्हारा पुत्र कृष्ण सदैव संकट से मुक्त रहे, इससे आश्वस्त रहने के लिए तुम्हें चाहिए कि ब्राह्मणों को दान दो।'' हे राजन्, तब प्रसन्नचित्त नन्द महाराज ने हर्षपूर्वक उन्हें गौवों तथा स्वर्ण की भेंटें दीं।

यशोदापि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ।
परिष्वज्याङ्कमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः ॥ १९॥

शब्दार्थ

यशोदा—माता यशोदा; अपि—तथा; महा-भागा—परम भाग्यशालिनी; नष्ट—खोकर; लब्ध—पुनः पाकर; प्रजा—अपना पुत्र; सती—साध्वी स्त्री; परिष्वज्य—आलिंगन करके; अङ्कम्—गोद में; आरोप्य—उठाकर; मुमोच—टपकाया; अश्रु—आसुँओं की; कलाम्—झड़ी; मुहुः—बारम्बार।

परम भाग्यशालिनी माता यशोदा ने अपने खोये हुए पुत्र को फिर से पाकर उसे अपनी गोद में ले लिया। उनको बारम्बार गले लगाते हुए उस साध्वी ने आँसुओं की झड़ी लगा दी।

**तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्षिताः ।
ऊषुर्व्रयौकसो गावः कालिन्द्या उपकूलतः ॥ २० ॥**

शब्दार्थ

ताम्—उस; रात्रिम्—रात्रि में; तत्र—वहाँ; राज-इन्द्र—हे राजाओं में श्रेष्ठ; क्षुत्-तृड्भ्याम्—भूख तथा प्यास से; श्रम—थकान से; कर्षिताः—निर्बल हुए; ऊषुः—रहे आये; व्रज-ओकसः—वृन्दावन के लोग; गावः—तथा गौवें; कालिन्द्याः—यमुना नदी के; उपकूलतः—तट के निकट।

हे नृपश्रेष्ठ (परीक्षित), चूँकि वृन्दावन के निवासी भूख, प्यास तथा थकान के कारण अत्यन्त निर्बल हो रहे थे अतः उन्होंने तथा गौवों ने कालिन्दी के तट के निकट ही लेटकर वहीं रात बिताई।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने संकेत किया है कि यद्यपि लोग भूख तथा प्यास से निर्बल हो गये थे किन्तु वहाँ पर उपस्थित गौवों का दूध उन्होंने नहीं पिया क्योंकि उन्हें भय था कि उनका दूध सर्प के विष से दूषित न हो गया हो। वृन्दावनवासी अपने प्रिय कृष्ण को वापस पाकर इतने अधिक प्रसन्न थे कि वे अपने अपने घरों को जाना नहीं चाह रहे थे। वे कृष्ण के साथ यमुना तट पर ही ठहरना चाहते थे जिससे वे उन्हें लगातार देख सकें। इसीलिए उन्होंने नदी के तट के निकट विश्राम करने का निश्चय किया।

**तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो व्रजम् ।
सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥ २१ ॥**

शब्दार्थ

तदा—तभी; शुचि—ग्रीष्मकालीन; वन—जंगल में; उद्भूतः—उत्पन्न; दाव-अग्निः—ज्वाला; सर्वतः—सारी दिशाओं में; व्रजम्—वृन्दावन के लोगों को; सुप्तम्—सोये हुए; निशीथे—अर्धरात्रि में; आवृत्य—घेरकर; प्रदग्धुम्—जलाने; उपचक्रमे—लगी।

रात्रि में जब वृन्दावन के सभी लोग सोये हुए थे तो सूखे ग्रीष्मकालीन जंगल में भीषण आग भड़क उठी। इस आग ने चारों ओर से व्रजवासियों को घेर लिया और उन्हें झुलसाने लगी।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने टीका की है कि कदाचित् कालिय के किसी विश्वसनीय मित्र ने अपने मित्र का बदला लेने के लिए दावाग्नि का रूप धारण कर लिया था या फिर कंस के किसी अनुयायी असुर ने वह आग लगाई होगी।

**तत उत्थाय सम्भ्रान्ता दह्यमाना व्रजौकसः ।
कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥ २२ ॥**

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; उत्थाय—जगकर; सम्भ्रान्ताः—विक्षुब्ध; दह्यमानाः—जलने जा रहे; व्रज-ओकसः—व्रज के लोग; कृष्णम्—कृष्ण के पास; ययुः—गये; ते—वे; शरणम्—शरण के लिए; माया—अपनी शक्ति से; मनुजम्—मनुष्य की भाँति प्रकट होनेवाले; ईश्वरम्—ईश्वर को।

तब उन्हें जलाने जा रही विशाल अग्नि से अत्यधिक विचलित होकर वृन्दावनवासी जग पड़े। उन्होंने दौड़कर भगवान् कृष्ण की शरण ली जो आध्यात्मिक शक्ति से सामान्य मनुष्य के रूप में प्रकट हुए थे।

तात्पर्य : श्रुति या वैदिक मंत्र कहते हैं—*स्वरूपभूतया नित्य-शक्त्या मायाख्यया*—भगवान् की शाश्वत शक्ति जिसका नाम माया है उनके आदि रूप में निहित है। इस तरह भगवान् के शाश्वत आध्यात्मिक शरीर में असीम शक्ति रहती है, जो परम सत्य की सर्वज्ञ इच्छा के अनुसार सारे जगत का बिना प्रयास संचालन करती है। वृन्दावनवासियों ने यह सोचते हुए कृष्ण की शरण ली कि यह वरप्राप्त बालक अवश्य ही हमें बचाने के लिए ईश्वर द्वारा शक्तिप्रदत्त होगा। उन्होंने कृष्ण के जन्मदिवस पर गर्गमुनि द्वारा कहे गये वचनों का स्मरण किया—*अनेन सर्वदुर्गाणि यूयम् अञ्जस्तरिष्यथ*—उनके बल पर आप सारे अवरोधों को पार कर सकेंगे (भागवत १०.८.१६)। इसलिए कृष्ण पर पूर्ण विश्वास रखनेवाले वृन्दावनवासियों ने इस आशा के साथ कृष्ण की शरण ग्रहण की कि वे दावाग्नि से होने वाली बरबादी से बचाये जा सकेंगे।

कृष्ण कृष्ण महाभग हे रामामितविक्रम ।
एष घोरतमो वह्निस्तावकान्ग्रसते हि नः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण—हे कृष्ण; कृष्ण—हे कृष्ण; महा-भाग—समस्त वैभव के स्वामी; हे राम—हे बलराम, हे समस्त आनन्द के स्रोत; अमित-विक्रम—असीम शक्तिवाले; एषः—यह; घोर-तमः—अत्यन्त भयानक; वह्निः—अग्नि; तावकान्—आपके लोगों को; ग्रसते—निगले जा रही है; हि—निस्सन्देह; नः—हमको।

[वृन्दावन वासियों ने कहा] हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे समस्त वैभव के स्वामी, हे असीम शक्ति के स्वामी राम, यह अत्यन्त भयानक अग्नि आपके भक्तों को निगल ही जाएगी।

सुदुस्तरान्नः स्वान्पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो ।
न शक्नुमस्त्वच्चरणं सन्त्यक्तुमकुतोभयम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

सु-दुस्तरात्—दुर्लंघ्य; नः—हम; स्वान्—अपने भक्तों की; पाहि—रक्षा कीजिये; काल-अग्नेः—कालरूपी अग्नि से; सुहृदः—आपके असली मित्रगण; प्रभो—हे परम स्वामी; न शक्नुमः—हम अक्षम हैं; त्वत्-चरणम्—आपके पाँवों को; सन्त्यक्तुम्—छोड़ सकने में; अकुतः-भयम्—सारे भय को भगानेवाले।.

हे प्रभु, हम आपके सच्चे मित्र तथा भक्त हैं। कृपा करके आप इस दुर्लंघ्य कालरूपी अग्नि से हमारी रक्षा कीजिये, समस्त भय को भगाने वाले आपके चरणकमलों को हम कभी नहीं त्याग सकते।

तात्पर्य : वृन्दावनवासियों ने कृष्ण से कहा, ''यदि यह भयानक अग्नि हमें परास्त कर देती है, तो हम आपके चरणकमलों से बिछुड़ जायेंगे जो कि हमारे लिए असह्य है। अत: आप हमारी रक्षा करें जिससे हम आपके चरणकमलों की सेवा करते रहें।''

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ।
तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥ २५॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार से; स्व-जन—अपने ही भक्तों की; वैक्लव्यम्—विकलता; निरीक्ष्य—देखकर; जगत्-ईश्वरः—जगत के स्वामी; तम्—उस; अग्निम्—अग्नि को; अपिबत्—पी लिया; तीव्रम्—भयानक; अनन्तः—अनन्त भगवान् ने; अनन्त-शक्ति-धृक्—असीम शक्ति को धारण करनेवाले।.

अपने भक्तों को इतना व्याकुल देखकर जगत के अनन्त स्वामी तथा अनन्त शक्ति को धारण करनेवाले श्रीकृष्ण ने उस भयंकर दावाग्नि को निगल लिया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''कालिय का इतिहास'' नामक सत्रहवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter अठारह

भगवान् बलराम द्वारा प्रलम्बासुर का वध

इस अध्याय में प्रलम्बासुर के मारे जाने का वर्णन हुआ है। वृन्दावन में आनन्दमय क्रीड़ा करते समय भगवान् बलदेव प्रलम्बासुर के कन्धों पर चढ़ गये और उसके सिर पर मुष्टिक-प्रहार करके उसका अन्त कर दिया।

कृष्ण तथा बलराम की लीला-भूमि वृन्दावन ग्रीष्मकाल में भी वसन्त ऋतु के सभी गुणों से

सज्जित रहती थी। उस समय बलराम तथा अन्य ग्वालों से घिर कर श्रीकृष्ण नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में मग्न हो जाते थे। एक दिन वे जी भर कर नाच रहे थे, गा रहे थे तथा खेल रहे थे। तभी प्रलम्ब नामक असुर ग्वालबाल का वेश बनाकर उनके बीच में घुस आया। सर्वज्ञ श्रीकृष्ण ने उस वेश में उसे पहचान लिया और कैसे उसे मारा जाय इस की योजना बनाते हुए भी उसके साथ मित्र–जैसा बर्ताव करते रहे।

तब कृष्ण ने बलदेव तथा अपने तरुण मित्रों से कहा कि वे पारस्परिक विरोधी टोलियों में बँटकर कोई खेल खेलें। कृष्ण तथा बलराम ने अगुवई करते हुए बालकों को दो टोलियों में बाँट दिया और यह तय किया जो खेल में हारेगा वह जीतने वाले को अपने कंधों पर उठाएगा। इस तरह जब बलराम की टोली के सदस्य श्रीदामा तथा वृषभ जीत गये तो कृष्ण तथा उनकी टोली के एक और बालक ने उन सबों को अपने कंधों पर चढ़ाया। प्रलम्बासुर ने सोचा कि अजेय कृष्ण से टक्कर लेना मुश्किल होगा अत: वह बलराम से भिड़ गया और हार गया। उसने बलराम को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया और तेजी से ले जाने लगा किन्तु बलराम सुमेरु पर्वत के समान भारी हो गये और उन्हें ले जाने में असमर्थ होने के कारण उस असुर ने अपना असली रूप प्रचण्ड किया। जब बलराम ने उसके भयानक रूप को देखा तो उन्होंने अपनी मुष्टिका से उसके सिर पर घोर प्रहार किया। इस प्रहार से असुर का सिर उसी प्रकार विदीर्ण हो गया जिस प्रकार इन्द्र के वज्र से पर्वत चूर चूर हो जाते हैं। वह असुर बारम्बार रक्त वमन करता हुआ भूमि पर गिर पड़ा। जब ग्वालबालों ने बलराम को वापस आते देखा तो उन्होंने बधाइयाँ दीं और प्रसन्नतापूर्वक उनका आलिंगन किया तथा देवताओं ने स्वर्ग से पुष्पवर्षा करते हुए उनका यशोगान किया।

श्रीशुक उवाच

अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ।
अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—इसके बाद; कृष्णः—कृष्ण; परिवृतः—घिर कर; ज्ञातिभिः—अपने संगियों से; मुदित-आत्मभिः—स्वभाव से प्रसन्न रहने वाले; अनुगीयमानः—यश का गान किया जाता हुआ; न्यविशत्—प्रविष्ट हुए; व्रजम्—व्रज में; गो-कुल—गायों के झुंडों से; मण्डितम्—सुशोभित।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अपने आनन्द-विभोर साथियों से घिरे हुए, जो निरन्तर उनके

यश का गान कर रहे थे, श्रीकृष्ण व्रज ग्राम में प्रविष्ट हुए जो गौवों के झुंडों से मण्डित था।

व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया ।
ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

व्रजे—वृन्दावन में; विक्रीडतोः—दोनों के खेलते हुए; एवम्—इस प्रकार; गोपाल—ग्वालबालों का; छद्म—वेश बनाकर; मायया—माया द्वारा; ग्रीष्मः—गर्मी; नाम—नामक; ऋतुः—ऋतु; अभवत्—आ गई; न—नहीं; अति-प्रेयान्—अत्यधिक अनुकूल; शरीरिणाम्—देहधारियों के लिए।

जब कृष्ण तथा बलराम इस तरह से सामान्य ग्वालबालों के वेश में वृन्दावन में जीवन का आनन्द ले रहे थे तो शनै-शनै ग्रीष्म ऋतु आ गई। यह ऋतु देहधारियों को अधिक सुहावनी नहीं लगती।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* (भाग १ अध्याय १८) में इस प्रकार टीका की है, ‘‘भारत में ग्रीष्म ऋतु का अधिक स्वागत नहीं होता क्योंकि गर्मी बहुत पड़ती है किन्तु वृन्दावन में हर व्यक्ति प्रसन्न था क्योंकि ग्रीष्म वसन्त के समान लग रही थी।’’

स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः ।
यत्रास्ते भगवान्साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (ग्रीष्म ऋतु); च—फिर भी; वृन्दावन—वृन्दावन के; गुणैः—दिव्य गुणों के कारण; वसन्तः—वसन्त ऋतु; इव—सदृश; लक्षितः—लक्षण प्रकट करती हुई; यत्र—जिसमें (वृन्दावन); आस्ते—रहते हैं; भगवान्—भगवान्; साक्षात्—स्वयं; रामेण सह—बलराम सहित; केशवः—श्रीकृष्ण।

फिर भी चूँकि साक्षात् भगवान् कृष्ण बलराम सहित वृन्दावन में रह रहे थे अतएव ग्रीष्म ऋतु वसन्त के गुण प्रकट कर रही थी। वृन्दावन की भूमि के ऐसे हैं गुण।

यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् ।
शश्वत्तच्छीकरर्जीषद्रुममण्डलमण्डितम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जिस (वृन्दावन) में; निर्झर—झरनों की; निर्ह्राद—तीव्र ध्वनि ने; निवृत्त—रोक दिया; स्वन—ध्वनि; झिल्लिकम्—झींगुरों की; शश्वत्—निरन्तर; तत्—उन (झरनों) की; शीकर—जल की बूँदों से; ऋजीष—भीगे; द्रुम—वृक्षों के; मण्डल—समूहों से; मण्डितम्—सुशोभित।

वृन्दावन में झरनों की तीव्र ध्वनि से झींगुरों की झंकार छिप गई और उन झरनों की फुहार से निरन्तर नम रहते हुए वृक्षों के समूहों ने सम्पूर्ण क्षेत्र को मण्डित कर दिया।

तात्पर्य : इस श्लोक में तथा अगले तीन श्लोकों में वृन्दावन में ग्रीष्म ऋतु में भी वसन्त के लक्षण प्रकट होने का वर्णन हुआ है।

सरित्सर:प्रस्रवणोर्मिवायुना
कह्लारकञ्जोत्पलरेणुहारिणा ।
न विद्यते यत्र वनौकसां दवो
निदाघवह्न्यर्कभवोऽतिशाद्वले ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

सरित्—नदियों; सर:—झीलों का; प्रस्रवण—धाराओं का (स्पर्श करके); ऊर्मि—तथा लहरें; वायुना—वायु द्वारा; कह्लार-कञ्ज-उत्पल—कह्लार, कंज तथा उत्पल (कमलों) के; रेणु—पराग-कण; हारिणा—ले जाते हुए; न विद्यते—नहीं था; यत्र—जिसमें; वन-ओकसाम्—जंगल के निवासियों के लिए; दव:—तपती धूप; निदाघ—ग्रीष्म ऋतु की; वह्नि—दावाग्नि से; अर्क—तथा सूर्य से; भव:—उत्पन्न; अति-शाद्वले—जहाँ प्रचुर हरी भरी घास थी।

सरोवरों की लहरों तथा बहती हुई नदियों का स्पर्श करती हुई अनेक प्रकार के कमलों तथा कमलिनियों के पराग-कण अपने साथ लेती हुई वायु सम्पूर्ण वृन्दावन को शीतल बनाती थी। इस तरह वहाँ के निवासियों को ग्रीष्म की जलती धूप तथा मौसमी दावाग्नियों से उत्पन्न गर्मी से कष्ट नहीं उठाना पड़ता था। निस्सन्देह वृन्दावन ताजी हरीभरी घास से भरापुरा था।

अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभि-
र्द्रवत्पुरीष्या: पुलिनै: समन्तत: ।
न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा
भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अगाध—बहुत गहरा; तोय—जल; ह्रदिनी—नदियों के; तट—किनारों पर; ऊर्मिभि:—लहरों से; द्रवत्—द्रवीभूत; पुरीष्या:—कीचड़; पुलिनै:—रेतीले तटों से; समन्तत:—चारों ओर; न—नहीं; यत्र—जिस पर; चण्ड—सूर्य की; अंशु-करा:—किरणें; विष—विष के समान; उल्बणा:—विकराल; भुव:—पृथ्वी पर; रसम्—रस; शाद्वलितम्—हरियाली; च—तथा; गृह्णते—लेती हैं।

गहरी नदियाँ अपनी उठती लहरों से अपने तटों को तर करके उन्हें गीला तथा दलदला बना देती थीं। इस तरह विष की तरह विकराल सूर्य की किरणें न तो पृथ्वी के रस को उड़ा पातीं न इसकी हरी घास को सुखा पातीं।

वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ।
गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

वनम्—जंगल; कुसुमितम्—फूलों से पूर्ण; श्रीमत्—अत्यन्त सुन्दर; नदत्—शोर करते; चित्र—नाना प्रकार के; मृग—पशु; द्विजम्—तथा पक्षियों को; गायन्—गाते हुए; मयूर—मोर; भ्रमरम्—तथा भौंरों को; कूजत्—कुहू कुहू करते; कोकिल—कोयलों; सारसम्—तथा सारसों को।

फूलों से वृन्दावन बड़े ही सुन्दर ढंग से सजा हुआ था और नाना प्रकार के पशु तथा पक्षी अपनी ध्वनि से उसे पूरित कर रहे थे। मोर तथा भौंरे गा रहे थे और कोयल तथा सारस कुहू कुहू कर रहे थे।

क्रीडिष्यमाणस्तत्कृष्णो भगवान्बलसंयुतः ।
वेणुं विरणयन्गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

क्रीडिष्यमाणः—क्रीड़ा करने की इच्छा से; तत्—उस (वृन्दावन); कृष्णः—कृष्ण; भगवान्—भगवान्; बल-संयुतः—बलराम के साथ; वेणुम्—अपनी वंशी; विरणयन्—बजाते हुए; गोपैः—ग्वालबालों से; गो-धनैः—गौवों से, जो कि उनकी सम्पति हैं; संवृतः—घिरे हुए; अविशत्—प्रविष्ट हुए।

क्रीड़ा करने की इच्छा से, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ग्वालबालों भगवान् बलराम सहित तथा गौवों से घिर कर अपनी बाँसुरी बजाते हुए वृन्दावन के जंगल में प्रविष्ट हुए।

प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः ।
रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

प्रवाल—कोंपलें; बर्ह—मोर पंख; स्तबक—छोटे छोटे फूलों के गुच्छे; स्रक्—मालाएँ; धातु—तथा रंगीन खनिज (गेरू); कृत-भूषणाः—उन्हें अपना आभूषण बनाकर; राम-कृष्ण-आदयः—बलराम, कृष्ण इत्यादि; गोपाः—ग्वालबाल; ननृतुः—नाचने लगे; युयुधुः—लड़ने लगे; जगुः—गाने लगे।

कोंपलों, मोरपंखों, मालाओं, फूल की कलियों के गुच्छों तथा रंगविरंगे खनिज पदार्थों से अपने आपको सजाकर बलराम, कृष्ण तथा उनके ग्वालमित्र नाचने लगे, कुश्ती लड़ने तथा गाने लगे।

कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् ।
वेणुपाणितलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ॥ १० ॥

शब्दार्थ

कृष्णस्य नृत्यतः—कृष्ण के नाचते समय; केचित्—उनमें से कोई; जगुः—गाने लगा; केचित्—कोई; अवादयन्—बजाने लगा; वेणु—वंशी; पाणि-तलैः—खड़ तालियों से; शृङ्गैः—सींग से; प्रशशंसुः—प्रशंसा (वाहवाही) करने लगे; अथ—तथा; अपरे—अन्य लोग।

जब कृष्ण नाचने लगे तो कुछ बालक गाकर और कुछ बाँसुरी, हाथ के मंजीरे तथा भैसों

के सींग बजा बजाकर उनका साथ देने लगे तथा कुछ अन्य बालक उनके नाच की प्रशंसा करने लगे।

तात्पर्य : श्रीकृष्ण को प्रोत्साहन देने की इच्छा से कुछ ग्वालबालों ने उनके नाच की खुल कर प्रशंसा की।

गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणौ ।
ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

गोप-जाति—ग्वालों की जाति के सदस्यों के रूप में; प्रतिच्छन्नाः—वेश बनाये; देवाः—देवताओं ने; गोपाल-रूपिणौ—ग्वालबालों का रूप धारण किये; ईडिरे—पूजा की; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम की; च—तथा; नटाः—पेशेवर नर्तकों; इव—सदृश; नटम्—अन्य नर्तक; नृप—हे राजन्।

हे राजन्, देवताओं ने गोप जाति के सदस्यों का वेश बनाया और जिस तरह नाटक के नर्तक दूसरे नर्तक की प्रशंसा करते हैं उसी तरह उन्होंने ग्वालबालों के रूप में प्रकट हुए कृष्ण तथा बलराम की पूजा की।

भ्रमणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ।
चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

भ्रमणैः—चक्कर लगाकर; लङ्घनैः—कूदफाँद कर; क्षेपैः—फेंककर; आस्फोटन—पटकी देकर; विकर्षणैः—तथा घसीट कर; चिकृईडतुः—उन्होंने (कृष्ण तथा बलराम ने) क्रीड़ा की; नियुद्धेन—लड़ते हुए; काक-पक्ष—बालों के गुच्छा दोनों ओर लटकते; धरौ—पकड़ते हुए; क्वचित्—कभी।

कृष्ण तथा बलराम चक्कर काटते, कूदते, फेंकते, थपथपाते तथा लड़ते भिड़ते हुए अपने ग्वाल सखाओं के साथ खेलने लगे। कभी कभी कृष्ण तथा बलराम बालकों के सिरों की चुटिया खींच लेते थे।

तात्पर्य : आचार्यों ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है *भ्रमणै* शब्द बताता है कि बालक मशीनों का अनुकरण करते हुए कभी कभी तब तक चक्कर लगाते जब तक घुमरी नहीं आने लगती थी। कभी कभी वे कूदते *(लंघनैः)*। *क्षेपैः* शब्द बतलाता है कि वे कभी कभी गेंद या पत्थर जैसी वस्तु फेंकते और कभी कभी वे एक दूसरे को अपनी भुजाओं में जकड़ कर दूर पटक देते। *आस्फोटन* का अर्थ है कि वे एक दूसरे के कंधे थपथपाते या पीठ ठोंकते। *विकर्षणै* शब्द सूचित करता है कि खेल

खेल में वे एक दूसरे को घसीटते थे। *नियुद्धेन* शब्द ताल ठोंककर कुश्ती लड़ने तथा अन्य प्रकार की मैत्रीपूर्ण लड़ाई करने को सूचित करता है। *काकपक्षधरौ* का अर्थ है कि कभी कभी कृष्ण तथा बलराम खेल-खेल में अन्य बालकों की चुटिया पकड़ कर खींच लेते थे।

क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् ।
शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ ॥ १३॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी; नृत्यत्सु—नृत्य करते समय; च—तथा; अन्येषु—अन्यों के; गायकौ—दोनों (कृष्ण तथा बलराम) गाते हुए; वादकौ—दोनों बाजा बजाते हुए; स्वयम्—स्वयं; शशंसतु:—प्रशंसा करते; महा-राज—हे महान् राजा; साधु साधु इति—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा; वादिनौ—कहते हुए।

हे राजन्, जब अन्य बालक नाचते होते तो कृष्ण तथा बलराम कभी कभी गीत तथा वाद्य संगीत से उनका साथ देते और कभी कभी वे दोनों 'बहुत अच्छा', 'बहुत अच्छा' कहकर लड़कों की प्रशंसा करते थे।

क्वचिद्बिल्वैः क्वचित्कुम्भैः क्वचामलकमुष्टिभिः ।
अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥ १४॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी; बिल्वैः—बेल के फल से; क्वचित्—कभी; कुम्भैः—कुम्भ फलों से; क्वच—तथा कभी; आमलक-मुष्टिभिः—मुट्ठी भर आँवलों से; अस्पृश्य—छुई-छुऔअल खेल; नेत्र-बन्ध—आँख मिचौनी में एक दूसरे को पहचानने की कोशिश करते हुए; आद्यैः—इत्यादि द्वारा; क्वचित्—कभी; मृग—पशु; खग—तथा पक्षियों की तरह; ईहया—नकल करते हुए।

ग्वालबाल कभी बिल्व या कुम्भ फलों से खेलते और कभी मुट्ठी में आमलक फलों को लेकर खेलते। कभी वे एक दूसरे को छूने का या आँख मिचौनी के समय किसी को पहचानने का खेल खेलते तो कभी वे पशुओं तथा पक्षियों की नकल उतारते।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी व्याख्या करते हैं कि आद्यैशब्द एक दूसरे का पीछा करने तथा पुल बनाने जैसे खेलों का संकेत करता है। दोपहर में जब कृष्ण विश्राम करते होते तो एक अन्य लीला होती थी। पास से गीत गाती तरुण गोपिकाएँ गुजरतीं तो कृष्ण के मित्र उनसे दूध का भाव पूछने का बहाना करते। तब ये लड़के उनका दही तथा अन्य वस्तुएँ चुरा लेते और भाग जाते। कृष्ण, बलराम तथा उनके मित्र नावों द्वारा नदी पार करने का भी खेल खेला करते थे।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इसके आगे व्याख्या करते हैं कि कुछ बालक फलों को हवा में उछाल

कर दूसरे फलों को फेंक कर उन्हें मारने का खेल खेलते। नेत्रबन्ध ऐसे खेल का सूचक है, जिसमें एक लड़का आँख मूँदे हुए बालक के पीछे से आकर उसकी आँखों पर अपनी हथेली रखता था। तब उसकी हथेली को छूकर ही आँख मूँदे लड़के को बतलाना पड़ता कि वह कौन है। ऐसे सभी खेलों में लड़के दाँव लगाते थे जिससे जीतने वाले को इनाम में वंशी या छड़ी देनी पड़ती। कभी कभी लड़के जंगली जानवरों के लड़ने की विधियों की नकल उतारते और कभी पक्षियों की तरह चीं चीं करते।

क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ।
कदाचित्स्यन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥ १५॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी कभी; च—तथा; दर्दुर—मेढकों की तरह; प्लावैः—कूद कर; विविधैः—अनेक प्रकार के; उपहासकैः—ठिठोलियों से; कदाचित्—कभी कभी; स्यन्दोलिकया—झूले में पेंग मार कर; कर्हिचित्—कभी कभी; नृप-चेष्टया—राजा की नकल करके।

कभी कभी वे मेढ़कों की तरह फुदक फुदक कर चलते, कभी तरह तरह के हास परिहास करते, कभी झूले में झूलते और कभी राजाओं की नकल उतारते।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *नृपचेष्टया* शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है : वृन्दावन में एक स्थान था, जहाँ पर यमुना को पार करने वालों को थोड़ा-सा कर देना पड़ता था। कभी कभी ग्वालबाल इस स्थान पर एकत्र होकर वृन्दावन की तरुण गोपियों को नदी पार करने से पहले कर देने के लिए बाध्य करते। ऐसे कार्य हँसी-मजाक से भरे होते थे।

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ।
नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरःसु च ॥ १६॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; तौ—वे दोनों, कृष्ण तथा बलराम; लोक-सिद्धाभिः—मानव समाज में भली भाँति ज्ञात; क्रीडाभिः—क्रीड़ाओं से; चेरतुः—घूमते हुए; वने—जंगल में; नदी—नदियों; अद्रि—पर्वतों; द्रोणि—घाटियों; कुञ्जेषु—तथा कुंजों के बीच; काननेषु—छोटे जंगलों में; सरःसु—सरोवरों के किनारे; च—तथा।

इस तरह से कृष्ण तथा बलराम वृन्दावन की नदियों, पर्वतों, घाटियों, कुंजों, वृक्षों तथा सरोवरों के बीच घूमते हुए सभी प्रकार के प्रसिद्ध खेल खेलते रहते।

पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः ।
गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७॥

शब्दार्थ

पशून्—पशुओं को; चारयतोः—दोनों व्यक्ति चराते हुए; गोपैः—ग्वालबालों के साथ; तत्-वने—उस जंगल में, वृन्दावन में; राम-कृष्णयोः—राम तथा कृष्ण; गोप-रूपी—ग्वालबाल का रूप धारण कर; प्रलम्बः—प्रलम्ब; अगात्—आया; असुरः—असुर; तत्—उनको; जिहीर्षया—उठाकर भाग जाने (हरण करने) की इच्छा से।

इस तरह जब उस वृन्दावन के जंगल में राम, कृष्ण तथा उनके ग्वालमित्र गौवें चरा रहे थे तो प्रलम्ब नामक असुर उनके बीच में घुस आया। कृष्ण तथा बलराम का हरण करने के इरादे से उसने ग्वालबाल का वेश बना लिया था।

तात्पर्य : कृष्ण तथा बलराम द्वारा सामान्य बालकों की तरह कार्य करने का वर्णन करने के बाद अब शुकदेव गोस्वामी भगवान् की ऐसी दिव्य लीला का उद्घाटन करने जा रहे हैं, जो मानव-कार्यों की सीमा से परे है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार प्रलम्बासुर ने उस बालक विशेष का वेश धारण किया था, जो उस दिन किसी कार्यवश अपने घर पर ही रह गया था।

तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान्सर्वदर्शनः ।
अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस प्रलम्बासुर को; विद्वान्—भलीभाँति जानते हुए; अपि—यद्यपि; दाशार्हः—दशार्ह के वंशज; भगवान्—भगवान् ने; सर्व-दर्शनः—सर्वज्ञ; अन्वमोदत—स्वीकार कर ली; तत्—उसके साथ; सख्यम्—मित्रता; वधम्—वध; तस्य—उसका; विचिन्तयन्—सोचते हुए।

चूँकि दशार्ह वंश में उत्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण सब कुछ देखते हैं अतएव वे जान गये कि वह असुर कौन है। फिर भी भगवान् ने ऐसा दिखावा किया जैसे कि वे उसे अपना मित्र मान चुके हों जबकि वे गम्भीरतापूर्वक यह विचार कर रहे थे कि उसको कैसे मारा जाय।

तत्रोपाहूय गोपालान्कृष्णः प्राह विहारवित् ।
हे गोपा विहरिष्यामो द्वन्द्वीभूय यथायथम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्र—तत्पश्चात्; उपाहूय—बुलाकर; गोपालान्—ग्वालबालों को; कृष्णः—कृष्ण ने; प्राह—कहा; विहार-वित्—समस्त क्रीड़ाओं के ज्ञाता; हे गोपाः—हे ग्वालबालो; विहरिष्यामः—चलो खेलें; द्वन्द्वी-भूय—दो टोलियों में बँटकर; यथा-यथम्—उचित रीति से।

तब समस्त क्रीड़ाओं के ज्ञाता कृष्ण ने सारे ग्वालबालों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा : हे ग्वालबालो, अब चलो खेलें, हम अपने आपको दो समान टोलियों में बाँट लें।

तात्पर्य : *यथायथम्* शब्द का अर्थ यह है कि कृष्ण निस्सन्देह चाहते थे कि दोनों टोलियाँ

एकसमान हों जिससे खेल अच्छा हो सके। खेल का आनन्द लूटने के साथ ही इस खेल का उद्देश्य प्रलम्बासुर को मारना था।

तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ ।
कृष्णसङ्घट्टिनः केचिदासन्रामस्य चापरे ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्र—उस खेल में; चक्रुः—उन्होंने बनाये; परिवृढौ—दो अगुआ; गोपाः—ग्वालबाल; राम-जनार्दनौ—बलराम तथा कृष्ण; कृष्ण-सङ्घट्टिनः—कृष्ण की टोली के सदस्य; केचित्—उनमें से कुछ; आसन्—हो गये; रामस्य—बलराम के; च—तथा; अपरे—अन्य।

ग्वालबालों ने कृष्ण तथा बलराम को दोनों टोलियों का अगुआ (नायक) चुन लिया। कुछ बालक कृष्ण की ओर थे और कुछ बलराम के साथ थे।

आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ।
यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

आचेरुः—सम्पन्न किया; विविधाः—तरह तरह के; क्रीडाः—खेल; वाह्य—ले जाये जाने वाले द्वारा; वाहक—ले जाने वाला; लक्षणाः—लक्षणों से युक्त; यत्र—जिसमें; आरोहन्ति—चढ़ते हैं; जेतारः—जीतने वाले; वहन्ति—ढोते हैं, ले जाते हैं; च—तथा; पराजिताः—हारने वाले।

बालकों ने तरह तरह के खेल खेले जिनमें पीठ पर चढ़ना तथा उठाना जैसे खेल होते हैं। इन खेलों में जीतने वाले हार जाने वालों की पीठ पर चढ़ते हैं और हारने वाले उन्हें अपनी पीठ पर चढ़ाते हैं।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी ने विष्णु पुराण (५.९.१२) से निम्नलिखित श्लोक इस संदर्भ में उद्धृत किया है—

हरिणाक्रीडनं नाम बालक्रीडणकं ततः ।

प्रकीडता हि ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन् ॥

''इसके बाद उन्होंने बालकों का खेल खेला जो *हरिणा क्रीडनम्* कहलाता है, जिसमें प्रत्येक बालक विपक्ष से अपनी जोड़ी बनाता है और सारे बालक एकसाथ अपने अपने प्रतिद्वन्द्वी पर धावा बोलते हैं।''

वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् ।
भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥ २२॥

शब्दार्थ

वहन्तः—चढ़ते; वाह्यमानाः—चढ़ाते हुए; च—तथा; चारयन्तः—चराते हुए; च—भी; गो-धनम्—गौवों को; भाण्डीरकम् नाम—भाण्डीरक नामक; वटम्—बरगद के पेड़ तक; जग्मुः—गये; कृष्ण-पुरः-गमाः—कृष्ण को आगे करके।

इस तरह एक दूसरे पर चढ़ते और चढ़ाते हुए और साथ ही गौवें चराते सारे बालक कृष्ण के पीछे पीछे भाण्डीरक नामक बरगद के पेड़ तक गये।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी ने *श्री हरिवंश* (विष्णु पर्व ११.१८-२२) से निम्नलिखित श्लोक उद्‌धृत किये हैं जिनमें वटवृक्ष का वर्णन हुआ है :

ददर्श विपुलोदग्रशाखिनं शाखिनां वरम्।
स्थितं धरण्यां मेघाभं निबिडं दलसञ्चयै॥
गगनार्धोच्छ्रिताकारं पर्वताभोगधारिणम् ।
नीलचित्राङ्गवर्णैश्च सेवितं बहुभिः खगै॥
फलै प्रवालैश्च घनै सेन्द्रचापघनोपमम्।
भवनाकारविटपं लतापुष्प सुमंडितम्॥
विशालमूलावनतं पावनाम्भोदधारिणम्।
आधिपत्यमिवान्येषां तस्य देशस्य शाखिनाम्॥
कुर्वाणं शुभकर्माणं निरावर्षमनातपम्।
न्यग्रोधं पर्वताग्राभं भाण्डीरं नाम नामतः॥

"उन्होंने सबसे बढ़िया उस वृक्ष को देखा जिसमें अनेक लम्बी लम्बी शाखाएँ थीं। अपनी घनी पत्तियों के आच्छादन से वह ऐसा लगता था मानो पृथ्वी पर कोई बादल बैठा हो। इसका स्वरूप इतना विराट था कि यह आधे आकाश को ढके हुए पर्वत के समान लग रहा था। उस विशाल वृक्षमें नीले पंख वाले अनेक सुन्दर पक्षी आते थे जिससे यह वृक्ष अपने सघन फलों तथा पत्तियों के कारण उस बादल के समान प्रतीत होता था जिसमें इन्द्रधनुष उगा हो या कोई घर हो जिसे लताओं तथा पुष्पों से सजाया गया हो। इसकी चौड़ी जड़ें नीचे की ओर फैल रही थीं और यह अपने ऊपर पवित्र बादलों को धारण किये हुए था। वह वटवृक्ष आसपास के अन्य वृक्षों का स्वामी तुल्य था क्योंकि यह वर्षा तथा

धूप को दूर रखने का सर्वमंगलमय कार्य करता था। यह न्यग्रोध, जिसका नाम भाण्डीर था, एक विशाल पर्वत की चोटी जैसा लगता था।''

रामसङ्घट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः ।
क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

राम-सङ्घट्टिनः—बलराम की टोली के सदस्य; यर्हि—जब; श्रीदाम-वृषभ-आदयः—श्रीदामा, वृषभ तथा अन्य (यथा सुबल); क्रीडायाम्—खेलों में; जयिनः—विजयी; तान् तान्—इनमें से प्रत्येक; ऊहुः—चढ़ाते थे; कृष्ण-आदयः—कृष्ण तथा उनकी टोली के अन्य सदस्य; नृप—हे राजन्।

हे राजा परीक्षित, जब इन खेलों में भगवान् बलराम की टोली के श्रीदामा, वृषभ तथा अन्य सदस्य विजयी होते तो कृष्ण तथा उनके साथियों को उन सबों को अपने ऊपर चढ़ाना पड़ता था।

उवाह कृष्णो भगवान्श्रीदामानं पराजितः ।
वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

उवाह—चढ़ाते थे; कृष्णः—कृष्ण; भगवान्—भगवान्; श्रीदामानम्—अपने भक्त तथा सखा श्रीदामा को; पराजितः—हार कर; वृषभम्—वृषभ को; भद्रसेनः—भद्रसेन; तु—तथा; प्रलम्बः—प्रलम्ब; रोहिणी-सुतम्—रोहिणी पुत्र (बलराम) को।

हार कर, भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीदामा को अपने ऊपर चढ़ा लिया। भद्रसेन ने वृषभ को तथा प्रलम्ब ने रोहिणी पुत्र बलराम को चढ़ा लिया।

तात्पर्य : कोई यह प्रश्न कर सकता है कि भगवान् को उनके मित्र किस तरह हरा सकते हैं। इसका उत्तर यह है कि ईश्वर अपने मूल रूप में अत्यन्त खिलाड़ी प्रकृति के होते हैं और कभी कभी अपने प्रिय मित्रों की इच्छा या बल के समक्ष झुक कर आनन्द लेते हैं। कभी कभी पिता अपने छोटे से प्रिय पुत्र द्वारा प्रहार किये जाने पर खेल खेल में जमीन पर गिर पड़ता है। स्नेह-भरे इन कार्यों से सारे लोगों को आनन्द प्राप्त होता है। इस तरह श्रीदामा अपने प्रिय मित्र श्रीकृष्ण को जो यों तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् थे, प्रसन्न करने के लिए उनके कन्धों पर चढ़ने के लिए राजी हो गये।

अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुङ्गवः ।
वहन्द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

अविषह्यम्—दुर्दम; मन्यमानः—विचार करते हुए; कृष्णम्—कृष्ण को; दानव-पुङ्गवः—वह अग्रगण्य असुर; वहन्—ले जाते हुए; द्रुत-तरम्—तेजी से; प्रागात्—चलने लगा; अवरोहणतः परम्—उतारने के लिए निश्चित स्थान से आगे।

भगवान् कृष्ण को दुर्दम सोच कर वह जाना आना असुर (प्रलम्ब), बलराम को तेजी से उस स्थान से बहुत आगे ले गया जहाँ उतारना निश्चित किया गया था।

तात्पर्य : प्रलम्ब बलराम को भगवान् कृष्ण की नजर से दूर ले जाना चाहता था जिससे वह उन पर वार कर सके।

तमुद्वहन्धरणिधरेन्द्रगौरवं
महासुरो विगतरयो निजं वपुः ।
स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ
तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उन्हें, बलदेव को; उद्वहन्—ऊँचे ले जाकर; धरणि-धर-इन्द्र—पर्वतों के राजा सुमेरु की तरह; गौरवम्—भार; महा-असुरः—महान् असुर; विगत-रयः—अपना वेग खो कर; निजम्—अपने असली; वपुः—शरीर को; सः—वह ना; आस्थितः—स्थित होकर; पुरट—सुनहरे; परिच्छदः—आभूषणों से युक्त; बभौ—चमक रहा था; तडित्—बिजली की तरह; द्यु-मान्—चमकीला; उडु-पति—चन्द्रमा; वाट्—वहन करते हुए; इव—सदृश; अम्बु-दः—बादल।

जब वह महान् असुर बलराम को लिये जा रहा था, तो वे विशाल सुमेरु पर्वत की तरह भारी हो गये जिससे प्रलम्ब को अपना गति धीमी करनी पड़ी। इसके बाद उसने अपना असली रूप धारण किया—तेजमय शरीर जो सुनहरे आभूषणों से ढका था और उस बादल के समान लग रहा था जिसमें बिजली चमक रही हो और जो अपने साथ चन्द्रमा लिये जा रहा हो।

तात्पर्य : यहाँ पर प्रलम्बासुर की उपमा बादल से, उसके सुनहरे आभूषणों की उपमा बादल के भीतर चमकने वाली बिजली से तथा बलराम की उपमा बादल के भीतर चमक रहे चन्द्रमा से दी गई है। महान् असुर अपनी योग शक्ति से अनेक रूप धारण कर सकते हैं किन्तु जब भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति उनकी शक्ति को कम कर देती है, तो उन्हें अपना कृत्रिम रूप त्याग कर असली आसुरी शरीर धारण करना पड़ता है। भगवान बलराम सहसा विशाल पर्वत के समान भारी हो गये जिससे वह असुर उन्हें अपने कंधों पर ऊँचे चढ़ा कर नहीं ले जा सका।

निरीक्ष्य तद्वपुरलमम्बरे चरत्
प्रदीप्तदृग्भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ।

ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डल-
त्विषाद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥ २७॥

शब्दार्थ

निरीक्ष्य—देखकर; तत्—उस प्रलम्बासुर का; वपुः—शरीर; अलम्—तेजी से; अम्बरे—आकाश में; चरत्—विचरण करते; प्रदीप्त—प्रज्ज्वलित; दृक्—आँखें; भ्रु-कुटि—अपनी भौंहों पर के गुस्से का; तट—किनारे पर; उग्र—भयानक; दंष्ट्रकम्—दाँतों को; ज्वलत्—अग्नि तुल्य; शिखम्—बाल; कटक—अपने बाजूबन्द; किरीट—मुकुट; कुण्डल—तथा कुंडलों के; त्विषा—तेज से; अद्भुतम्—आश्चर्यजनक; हल-धरः—हल धारण करने वाले, बलराम; ईषत्—टुक, थोड़ा; अत्रसत्—भयभीत हुए।

जब हलधर भगवान् बलराम ने आकाश में विचरण करते हुए उस असुर की जलती हुई आँखें, अग्नि सदृश बाल, भौंहों तक उठे भयानक दाँत तथा उसके बाजूबन्दों, मुकुट तथा कुंडलों से उत्पन्न आश्चर्यजनक तेज युक्त विराट शरीर को देखा तो वे कुछ कुछ भयभीत से हो गये।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी ने भगवान् बलदेव के तथाकथित भय की व्याख्या इस प्रकार की है : बलराम एक सामान्य ग्वालबाल के रूप में क्रीड़ा कर रहे थे अतएव इस लीला-भाव को बनाये रखने के लिए वे असुर के भयानक शरीर से कुछ कुछ विचलित हो गये। दूसरे यह कि वह असुर कृष्ण के ग्वालमित्र के रूप में प्रकट हुआ था और कृष्ण ने उसे मित्र मान लिया था अतएव बलदेव उसको जान से मारने में हिचकिचा रहे थे। बलराम की चिन्ता का एक कारण यह भी हो सकता था कि यह वास्तव में ग्वालबाल के वेश में असुर था, तो हो सकता है कि उसी क्षण ऐसा ही कोई दूसरा असुर कृष्ण पर भी आक्रमण कर रहा हो। इस तरह सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान भगवान् बलदेव ने भयावने प्रलम्बासुर के समक्ष कुछ कुछ शिथिल होने की लीला प्रकट की।

अथागतस्मृतिरभयो रिपुं बलो
विहाय सार्थमिव हरन्तमात्मनः ।
रुषाहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना
सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥ २८॥

शब्दार्थ

अथ—तब; आगत-स्मृतिः—अपना स्मरण करते हुए; अभयः—निर्भय; रिपुम्—शत्रु को; बलः—बलराम ने; विहाय—छोड़कर; सार्थम्—साथ; इव—निस्सन्देह; हरन्तम्—हरण करते हुए; आत्मनः—अपने आप; रुषा—क्रोध के साथ; अहनत्—प्रहार किया; शिरसि—सिर के ऊपर; दृढेन—कठोर; मुष्टिना—अपनी मुट्ठी से; सुर-अधिपः—देवताओं के राजा, इन्द्र; गिरिम्—पर्वत पर; इव—सदृश; वज्र—वज्र का; रंहसा—फुर्ती से।

वास्तविक स्थिति का स्मरण करते हुए निर्भीक बलराम की समझ में आ गया कि यह असुर मेरा अपहरण करके मुझे मेरे साथियों से दूर ले जाने का प्रयास कर रहा है। तब वे क्रुद्ध हो उठे

और उन्होंने असुर के सिर पर अपनी कठोर मुट्ठी से उसी तरह प्रहार किया जिस प्रकार देवताओं के राजा इन्द्र अपने वज्र से पर्वत पर प्रहार करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् बलराम की बलिष्ठ मुट्ठी असुर के सिर पर ऐसे पड़ी कि उस के टुकड़े टुकड़े हो गये जिस तरह विशाल वज्रपात से पर्वत चूर चूर हो जाता है। *विहाय सार्थम् इव* पद का सन्धि-विच्छेद *विहायसा अर्थम् इव* के रूप में भी किया जा सकता है, जिसका अर्थ होगा कि वह असुर *विहायस* अर्थात् आकाश के विराट पथ पर बलराम को ले जाने के उद्देश्य से उड़ रहा था क्योंकि वे ही उसके अर्थम् अर्थात् खोज की वस्तु थे।

स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको
मुखाद्वमन्रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ।
महारवं व्यसुरपतत्समीरयन्
गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, प्रलम्बासुर; आहतः—प्रहार किया गया; सपदि—तुरन्त; विशीर्ण—विदीर्ण; मस्तकः—सिर; मुखात्—मुँह से; वमन्—उगलता हुआ; रुधिरम्—रक्त; अपस्मृतः—बेहोश; असुरः—असुर; महा-रवम्—भीषण शब्द; व्यसुः—निर्जीव; अपतत्—गिर पड़ा; समीरयन्—आवाज करता हुआ; गिरिः—पर्वत; यथा—जिस तरह; मघवतः—इन्द्र के; आयुध—हथियार से; आहतः—चोट खाकर।

बलराम की मुट्ठी के प्रहार से प्रलम्ब का सिर तुरन्त ही फट गया। वह मुख से रक्त उगलने लगा और बेहोश हो गया। तत्पश्चात् वह निष्प्राण होकर पृथ्वी पर भीषण धमाके के साथ ऐसे गिर पड़ा मानो इन्द्र द्वारा विनष्ट कोई पर्वत हो।

दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना ।
गोपाः सुविस्मिता आसन्साधु साध्विति वादिनः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; प्रलम्बम्—प्रलम्बासुर को; निहतम्—मारा गया; बलेन—बलराम द्वारा; बल-शालिना—बलशाली; गोपाः—ग्वालबाल; सु-विस्मिताः—अत्यन्त चकित; आसन्—हुए; साधु साधु—''अति उत्तम ,'' ''अति उत्तम''; इति—ये शब्द; वादिनः—कहते हुए।

ग्वालबाल यह देखकर अत्यन्त चकित थे कि बलशाली बलराम ने किस तरह प्रलम्बासुर को मार डाला और वे सभी ''बहुत खूब'' ''बहुत खूब'' कहकर चिल्ला उठे।

आशिषोऽभिगृणन्तस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् ।
प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

आशिषः—आशीर्वाद; अभिगृणन्तः—भेंटें देते हुए; तम्—उन्हें; प्रशशंसुः—प्रशंसा की; तत्-अर्हणम्—उस सुपात्र को; प्रेत्य—मरकर; आगतम्—वापस आया हुआ; इव—मानो; आलिन्य—आलिंगन करते हुए; प्रेम—प्रेमवश; विह्वल—भावविभोर; चेतसः—मन।

उन्होंने बलराम को खूब आशीर्वाद दिया और सभी तरह की प्रशंसा के पात्र होने के कारण उनकी खूब प्रशंसा की। उनके मन प्रेम से विभोर हो उठे और उन्होंने उनका इस प्रकार आलिंगन किया मानो वे मरकर लौटे हों।

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः ।
अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

पापे—पापी; प्रलम्बे—प्रलम्बासुर पर; निहते—मारे जाने पर; देवाः—देवताओं ने; परम—अत्यधिक; निर्वृताः—प्रसन्न; अभ्यवर्षन्—बरसाया; बलम्—बलराम को; माल्यैः—मालाओं से; शशंसुः—स्तुतियाँ की; साधु साधु इति—''अति उत्तम'' ''अति उत्तम'' आलाप करते हुए।''

पापी प्रलम्बासुर के मारे जाने पर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने बलराम पर फूलमालाओं की वर्षा की। उन्होंने उनके उत्तम कार्य की प्रशंसा की।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''बलराम द्वारा प्रलम्बासुर का वध'' नामक अठारहवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter उन्नीस

दावानल पान

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस प्रकार कृष्ण ने मुञ्जारण्य में लगी महाग्नि से गौवों तथा ग्वालों की रक्षा की।

एक दिन सारे ग्वालबाल खेल में मग्न हो गये तो गौवें घने जंगल में चरने निकल गईं। सहसा दावाग्नि भड़क उठी तो लपटों से बचने के लिए गौवों ने मूँज के कुंज में जाकर शरण ली। जब ग्वालबालों को अपनी गाएँ न दिखाई दीं, तब वे उनके पदचिह्नों और उनसे रौंदने से या दाँतों से तोड़े

जाने से घास के तिनकों तथा दूसरे पौधों से बनी लकीर का पीछा करते हुए तलाश में निकल पड़े। अन्त में गौवें उन्हें मुंजवन में मिलीं और उन्होंने उन्हें वहाँ से हटा लिया। किन्तु तब तक आग जोर पकड़ चुकी थी और उससे गौवों तथा बालकों को खतरा पैदा हो गया था। इस तरह बालकों ने योगेश्वर कृष्ण की शरण ली। कृष्ण ने उनसे आँखें मूँदने को कहा। जब उन्होंने ऐसा किया, तो श्रीकृष्ण ने क्षण-भर में उस भयंकर दावाग्नि को निगल लिया और उन सबों को भाण्डीर वृक्ष के पास ले आये जिसका उल्लेख पिछले अध्याय में किया गया है। इस योगशक्ति के अद्भुत चमत्कार को देखकर ग्वालबालों ने सोचा कि कृष्ण अवश्य ही देवता हैं अत: वे उनकी प्रशंसा करने लगे। इसके बाद सभी लोग घर लौट आये।

श्रीशुक उवाच
क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ।
स्वैरं चरन्त्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; क्रीडा—खेल में; आसक्तेषु—पूरी तरह लीन; गोपेषु—ग्वालबालों में; तत्-गावः—उनकी गौवें; दूर-चारिणीः—दूर दूर तक घूमने वाली; स्वैरम्—स्वतंत्र रूप से; चरन्त्यः—चरती हुई; विविशुः—घुसीं; तृण—घास के; लोभेन—लालच से; गह्वरम्—घने जंगल में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब ग्वालबाल खेलने में पूरी तरह मग्न थे तो उनकी गौवें दूर चली गईं। अधिक घास के लोभ में तथा कोई उनकी देखभाल करनेवाला न होने से वे घने जंगल में घुस गईं।

अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद्वनम् ।
ईषीकाटवीं निर्विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

अजाः—बकरियाँ; गावः—गौवें; महिष्यः—भैंसे; च—तथा; निर्विशन्त्यः—प्रवेश करतीं; वनात्—एक जंगल से; वनम्—दूसरे जंगल को; ईषीका-अटवीम्—मूंज के जंगल में; निर्विविशुः—प्रविष्ट हुई; क्रन्दन्त्यः—चिल्लाती हुई; दाव—जंगल की अग्नि के कारण; तर्षिताः—प्यासी।

विशाल जंगल के एक भाग से दूसरे भाग में जाते हुए बकरियाँ, गौवें तथा भैंसें अन्ततः मूंज से आच्छादित क्षेत्र में घुस गईं। पास के जंगल की अग्नि की गर्मी से उन्हें प्यास लग पड़ी और वे कष्ट के कारण रँभाने लगीं।

तेऽपश्यन्तः पशून्गोपाः कृष्णरामादयस्तदा ।
जातानुतापा न विदुर्विचिन्वन्तो गवां गतिम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; अपश्यन्तः—न देखते हुए; पशून्—पशुओं को; गोपाः—ग्वालबाल; कृष्ण-राम-आदयः—कृष्ण, राम इत्यादि; तदा—तब; जात-अनुतापाः—पश्चात्ताप अनुभव करते हुए; न विदुः—नहीं जान पाये; विचिन्वन्तः—ढूँढ़ते हुए; गवाम्—गौवों को; गतिम्—रास्ता। .

गौवों को सामने न देखकर, कृष्ण, राम तथा उनके ग्वालमित्रों को सहसा अपनी असावधानी पर पछतावा हुआ। उन बालकों ने चारों ओर ढूँढ़ा किन्तु यह पता न लगा पाये कि वे कहाँ चली गई हैं।

तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरङ्कितैर्गवाम् ।
मार्गमन्वगमन्सर्वे नष्टाजीव्या विचेतसः ॥ ४॥

शब्दार्थ

तृणैः—तिनकों से; तत्—उन गायों के; खुर—खुरों से; दत्—तथा दाँतों से; छिन्नैः—तोड़े गये; गोः-पदैः—गायों के खुरों के निशानों से; अङ्कितैः—पृथ्वी पर बने; गवाम्—गायों के; मार्गम्—रास्ता; अन्वगमन्—पीछा किया; सर्वे—सबों ने; नष्ट-आजीव्याः—अपनी जीविका के नष्ट हो जाने की; विचेतसः—चिन्ता में।.

तब बालकों ने गौवों के खुरों के चिन्हों तथा उनके खुरों तथा दाँतों से तोड़ी गई घास के तिनकों को देखकर उनके रास्ते का पता लगाना शुरू किया। सारे ग्वालबाल अत्यधिक चिन्तित थे क्योंकि वे अपनी जीविका का साधन खो चुके थे।

मुञ्जाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनम् ।
सम्प्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते सन्न्यवर्तयन् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

मुञ्जा-अटव्याम्—मुञ्जा वन में; भ्रष्ट-मार्गम्—अपना रास्ता खोकर; क्रन्दमानम्—चिल्लाती हुई; स्व—अपनी; गो-धनम्—गौवें (तथा अन्य पशु); सम्प्राप्य—पाकर; तृषिताः—प्यासे; श्रान्ताः—तथा थके; ततः—तब; ते—वे बालक; सन्न्यवर्तयन्—उन सबों को बहोर लाये।.

अन्त में ग्वालबालों को अपनी बहुमूल्य गौवें मुञ्जा वन में मिलीं जो अपना रास्ता भटक जाने से चिल्ला रही थीं। तब प्यासे तथा थके-माँदे ग्वालबाल उन गौवों को घर के रास्ते पर वापस ले आये।

ता आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा ।
स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

ताः—वे गौवें; आहूताः—बुलाई गई; भगवता—भगवान् द्वारा; मेघ-गम्भीरया—बादल की तरह गम्भीर; गिरा—वाणी से; स्व-नाम्नाम्—अपने अपने नामों की; निनदम्—ध्वनि; श्रुत्वा—सुनकर; प्रतिनेदुः—उत्तर दिया; प्रहर्षिताः—अत्यधिक हर्षित होकर।

भगवान् ने उन पशुओं को गरजते बादल की तरह गूँजती वाणी से पुकारा। अपने-अपने नामों की ध्वनि सुनकर गौवें अत्यधिक हर्षित हुईं और हुंकार भर कर भगवान् को उत्तर देने लगीं।

ततः समन्ताद्दवधूमकेतु-
र्यदृच्छयाभूत्क्षयकृद्वनौकसाम् ।
समीरितः सारथिनोल्बणोल्मुकै-
र्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान्महान् ॥ ७॥

शब्दार्थ

ततः—तब; समन्तात्—चारों ओर; दव-धूमकेतुः—भीषण जंगल की अग्नि; यदृच्छया—सहसा; अभूत्—प्रकट हुई; क्षय-कृत्—नष्ट करने पर तुली; वन-ओकसाम्—जंगल में उपस्थित प्राणियों को; समीरितः—हाँकी गई; सारथिना—सारथी तुल्य हवा द्वारा; उल्बण—भयानक; उल्मुकैः—उल्का जैसी चिनगारियों से युक्त; विलेलिहानः—चाटती हुई; स्थिर-जङ्गमान्—समस्त चर तथा अचर प्राणियों को; महान्—महान।

सहसा चारों दिशाओं में महान् दावाग्नि प्रकट हुई जिससे जंगल के समस्त प्राणियों के नष्ट होने का संकट उत्पन्न हो गया। सारथी तुल्य वायु, अग्नि को आगे बढ़ाती जा रही थी और चारों ओर भयानक चिनगारियाँ निकल रही थीं। निस्सन्देह, इस महान् अग्नि ने अपनी ज्वालाओं रूपी जिह्वाओं को समस्त चल और अचर प्राणियों की और लपलपा दिया था।

तात्पर्य : अभी कृष्ण, बलराम तथा ग्वालबाल अपनी गौवें लेकर घर लौटने ही वाले थे कि जो दावाग्नि लगी थी वह काबू के बाहर हो गई और उसने उन सबों को घेर लिया।

तमापतन्तं परितो दवाग्निं
गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ।
ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना
यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; आपतन्तम्—उन पर आन पड़ी हुई; परितः—चारों ओर; दव-अग्निम्—जंगल की आग को; गोपाः—ग्वालबालों ने; च—तथा; गावः—गौवों ने; प्रसमीक्ष्य—ठीक से देखकर; भीताः—डरे हुए; ऊचुः—सम्बोधन किया; च—तथा; कृष्णम्—कृष्ण को; स-बलम्—तथा बलराम को; प्रपन्नाः—शरणागत; यथा—जिस प्रकार; हरिम्—भगवान् को; मृत्यु—मृत्यु के; भय—भय से; अर्दिताः—पीड़ित; जनाः—व्यक्ति।

जब गौवों तथा ग्वालबालों ने चारों ओर से दावाग्नि को अपने ऊपर आक्रमण करते देखा तो वे बहुत डर गये। अत: वे रक्षा के लिए कृष्ण तथा बलराम के निकट गये जिस तरह मृत्यु-भय से विचलित लोग भगवान् की शरण में जाते हैं। उन बालकों ने उन्हें इस प्रकार से सम्बोधित किया।

कृष्ण कृष्ण महावीर हे रामामोघ विक्रम ।
दावाग्निना दह्यमानान्प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथ: ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; महा-वीर—हे अत्यन्त बलशाली; हे राम—हे राम; अमोघ-विक्रम—अमोघ शक्तिवाले; दाव-अग्निना—जंगल की आग से; दह्यमानान्—जलते हुओं को; प्रपन्नान्—शरणागतों को; त्रातुम् अर्हथ:—कृपया बचायें।

[ग्वालबालों ने कहा] हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे महावीर, हे राम, हे अमोघ शक्तिशाली, कृपा करके अपने उन भक्तों को बचायें जो जंगल की इस अग्नि से जलने ही वाले हैं और आपकी शरण में आये हैं।

नूनं त्वद्बान्धवा: कृष्ण न चार्हन्त्यवसादितुम् ।
वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणा: ॥ १० ॥

शब्दार्थ

नूनम्—अवश्य ही; त्वत्—आपके; बान्धवा:—मित्रगण; कृष्ण—हमारे प्यारे कृष्ण; न—कभी नहीं; च—और; अर्हन्ति—योग्य हैं; अवसादितुम्—विनष्ट होने के; वयम्—हम; हि—यही नहीं; सर्व-धर्म-ज्ञ—समस्त जीवों को भलीभाँति जाननेवाले; त्वत्-नाथा:—आपको अपने स्वामी के रूप में पाकर; त्वत्-परायणा:—आपकी ही भक्ति में लगे हुए।

कृष्ण! निस्सन्देह आपके अपने मित्रों को तो नष्ट नहीं होना चाहिए। हे समस्त वस्तुओं की प्रकृति को जाननेवाले, हमने आपको अपना स्वामी मान रखा है और हम आपके शरणागत हैं।

श्रीशुक उवाच
वचो निशम्य कृपणं बन्धूनां भगवान्हरि: ।
निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; वच:—वचन; निशम्य—सुनकर; कृपणम्—दयनीय; बन्धूनाम्—अपने मित्रों के; भगवान्—भगवान्; हरि:—हरि ने; निमीलयत—बन्द कर लो; मा भैष्ट—मत डरो; लोचनानि—आँखों को; इति—इस प्रकार; अभाषत—कहा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अपने मित्रों के ऐसे दयनीय वचन सुनकर भगवान् कृष्ण ने उनसे कहा : ''तुम लोग, बस अपनी आँखें मूँद लो और डरो नहीं।''

तात्पर्य : इस श्लोक से कृष्ण तथा उनके शुद्ध भक्तों के बीच का सरल दिव्य सम्बन्ध स्पष्ट होता है। परम सत्य परम शक्तिमान भगवान् वास्तव में एक तरुण आनन्दमय ग्वालबाल हैं जिसका नाम कृष्ण है। भगवान् असल में तरुण हैं और उनकी प्रकृति खिलाड़ी की है। जब उन्होंने देखा कि उनके प्रिय मित्र दावाग्नि से भयभीत हो चुके हैं, तो उन्होंने उनसे इतना ही कहा कि तुम लोग अपनी आँखें बन्द कर लो और डरो मत। तब कृष्ण ने जो कुछ किया वह अगले श्लोक में बतलाया गया है।

तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम् ।
पीत्वा मुखेन तान्कृच्छ्राद्योगाधीशो व्यमोचयत् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तथा—बहुत अच्छा; इति—ऐसा कहकर; मीलित—बन्द करते हुए; अक्षेषु—अपनी आँखें; भगवान्—भगवान्; अग्निम्—अग्नि को; उल्बणम्—भयानक; पीत्वा—पीकर; मुखेन—मुख से; तान्—उनको; कृच्छ्रात्—संकट से; योग-अधीशः—समस्त योगशक्ति के परम नियन्ता; व्यमोचयत्—उद्धार कर दिया।

बालकों ने उत्तर दिया "बहुत अच्छा" और तुरन्त ही उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं। तब समस्त योगशक्ति के स्वामी भगवान् ने अपना मुख खोला और उस भयानक अग्नि को निगलकर अपने मित्रों को संकट से बचा लिया।

तात्पर्य : ग्वालबाल अत्यधिक थकान, भूख तथा प्यास से त्रस्त थे और वे विकराल दावाग्नि से भस्म होने ही वाले थे। इस स्थिति का संकेत *कृच्छ्रात्* शब्द से मिल जाता है।

ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः ।
निशम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; च—तथा; ते—वे; अक्षीणि—अपनी आँखें; उन्मील्य—खोलते हुए; पुनः—फिर; भाण्डीरम्—भाण्डीर तक; आपिताः—ले गये; निशम्य—देखकर; विस्मिताः—चकित; आसन्—हुए; आत्मानम्—अपने आपको; गाः—गौवों को; च—तथा; मोचिताः—बचा लिया।

ग्वालबालों ने अपनी आँखें खोलीं तो यह देखकर चकित हुए कि न केवल उन्हें तथा गौवों को उस विकराल अग्नि से बचा लिया गया है अपितु वे भाण्डीर वृक्ष के पास वापस ला दिये गये हैं।

कृष्णस्य योगवीर्यं तद्योगमायानुभावितम् ।
दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

कृष्णस्य—कृष्ण की; योग-वीर्यम्—योगशक्ति; तत्—वह; योग-माया—माया की अन्तरंगा शक्ति द्वारा; अनुभावितम्—प्रभावित; दाव-अग्नेः—दावाग्नि से; आत्मनः—अपना; क्षेमम्—उद्धार; वीक्ष्य—देखकर; ते—उन्होंने; मेनिरे—सोचा; अमरम्—देवता।

जब ग्वालबालों ने देखा कि भगवान् की अन्तरंगा शक्ति से प्रकट योगशक्ति द्वारा उन्हें दावाग्नि से बचाया जा चुका है, तो वे सोचने लगे कि कृष्ण अवश्य ही कोई देवता हैं।

तात्पर्य : वृन्दावन के ग्वालबाल कृष्ण को अपना एकमात्र मित्र तथा पूजनीय मानते थे। कृष्ण ने इन सबों के आनन्द को बढ़ाने के लिए अपनी योगशक्ति का प्रदर्शन किया और उन्हें उस भयानक दावाग्नि से बचा लिया।

ये ग्वालबाल किसी भी दशा में कृष्ण से अपनी आनन्दमयी एवं प्रेममयी मित्रता का परित्याग नहीं कर सकते थे। अत: उन्होंने जब उनकी यह असाधारण शक्ति देखी तो सोचा कि कृष्ण ईश्वर नहीं, अपितु शायद कोई देवता हैं। किन्तु कृष्ण उनके प्रिय मित्र थे अत: वे उन्हीं के समान स्तर पर थे। अतएव उन्होंने अपने आपको भी देवता तुल्य ही सोचा। इस तरह कृष्ण के ग्वालमित्र आनन्दविभोर हो उठे।

गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः ।
वेणुं विरणयन्गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

गाः—गौवें; सन्निवर्त्य—लौटाकर; साय-अह्ने—दोपहर बीत जाने के बाद; सह-रामः—बलराम सहित; जनार्दनः—श्रीकृष्ण; वेणुम्—अपनी वंशी; विरणयन्—विशेष ढंग से बजाते हुए; गोष्ठम्—ग्वालों के गाँव में; अगात्—गये; गोपैः—ग्वालबालों द्वारा; अभिष्टुतः—प्रशंसित होकर।

अब दोपहर ढल चुकी थी और बलराम सहित भगवान् कृष्ण ने गौवों को घर की ओर मोड़ा। अपनी वंशी को एक विशिष्ट ढंग से बजाते हुए कृष्ण अपने ग्वाल मित्रों के साथ गोपग्राम लौटे और ग्वालबाल उनके यश का गान कर रहे थे।

गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने ।
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

गोपीनाम्—गोपियों के लिए; परम-आनन्दः—सर्वोच्च सुख; आसीत्—हुआ; गोविन्द-दर्शने—गोविन्द को देखने में; क्षणम्—एक क्षण; युग-शतम्—एक सौ युग; इव—सदृश; यासाम्—जिनके लिए; येन—जिसके (कृष्ण); विना—बिना; अभवत्—हो गया।

गोविन्द को घर आते देखकर तरुण गोपियों को अत्यन्त आनंद प्राप्त हुआ क्योंकि उनकी संगति के बिना एक क्षण भी उन्हें सौ युगों के समान प्रतीत हो रहा था।

तात्पर्य : ग्वालबालों को दावाग्नि से बचाने के बाद कृष्ण ने अपने विरह की अग्नि में जलती हुई गोपियों को बचाया। श्रीमती राधारानी इत्यादि गोपियों के मन में कृष्ण के प्रति अतीव प्रेम है और उनसे एक क्षण का भी वियोग उनके लिए लाखों वर्ष के तुल्य बन जाता है। गोपियाँ कृष्ण की सबसे महान् भक्त हैं और कृष्ण के साथ उनकी विशिष्ट लीलाएँ अगले अध्यायों में वर्णित हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत "दावानल का निगला जाना" नामक उन्नीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बीस

वृन्दावन में वर्षा ऋतु तथा शरद् ऋतु

श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन को विस्तार देने के लिए इस अध्याय में श्री शुकदेव गोस्वामी शरद तथा वर्षा ऋतुओं में वृन्दावन की शोभा का वर्णन करते हैं। ऐसा करते समय वे विविध रूपकों के द्वारा मनोहारी उपदेश देते हैं।

श्रीशुक उवाच
तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ।
गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तयोः—उन दोनों (कृष्ण तथा बलराम) का; तत्—वह; अद्भुतम्—अद्भुत; कर्म—कार्य; दाव-अग्नेः—दावाग्नि से; मोक्षम्—उद्धार; आत्मनः—अपना; गोपाः—ग्वालबाल; स्त्रीभ्यः—स्त्रियों से; समाचख्युः—विस्तार से बतलाया; प्रलम्ब-वधम्—प्रलम्बासुर का मारा जाना; एव—निस्सन्देह; च—भी।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : तब ग्वालबालों ने वृन्दावन की स्त्रियों से दावाग्नि से बचाए जाने और प्रलम्बासुर का बध किये जाने के कृष्ण तथा बलराम के अद्भुत कार्यों का विस्तार से वर्णन किया।

गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ।
मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥ २ ॥

शब्दार्थ

गोप-वृद्धाः—बूढ़े ग्वाले; च—तथा; गोप्यः—गोपियाँ; च—भी; तत्—से; उपाकर्ण्य—सुनकर; विस्मिताः—आश्चर्यचकित; मेनिरे—विचार किया; देव-प्रवरौ—दो प्रतिष्ठित देवता; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम दोनों भाई; व्रजम्—वृन्दावन में; गतौ-चोमे.

यह वर्णन सुनकर बड़े-बूढ़े गोप तथा स्त्रियाँ आश्चर्यचकित हो गये और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कृष्ण तथा बलराम अवश्य ही महान् देवता हैं, जो वृन्दावन में प्रकट हुए हैं।

ततः प्रावर्तत प्रावृट्सर्वसत्त्वसमुद्भवा ।
विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; प्रावर्तत—शुरू हुई; प्रावृट्—वर्षा ऋतु; सर्व-सत्त्व—सारे जीवों की; समुद्भवा—उत्पत्ति की स्त्रोत; विद्योतमान—बिजली से चमकता; परिधिः—क्षितिज; विस्फूर्जित—(गरज से) विक्षुब्ध; नभः-तला—आकाश।.

इसके बाद वर्षा ऋतु का शुभारम्भ हुआ जो समस्त जीवों को जीवनदान देती है। आकाश गर्जना से गूँजने लगा और क्षितिज पर बिजली चमकने लगी।

सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ।
अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

सान्द्र—घने; नील—नीले; अम्बुदैः—बादलों से; व्योम—आकाश; स-विद्युत्—बिजली सहित; स्तनयित्नुभिः—तथा गरज के साथ; अस्पष्ट—धूमिल; ज्योतिः—प्रकाश; आच्छन्नम्—ढका हुआ; ब्रह्म—आत्मा; इव—मानो; स-गुणम्—भौतिक गुणों से युक्त; बभौ—प्रकट हो गया हो।.

तत्पश्चात् बिजली तथा गरज से युक्त घने नीले बादलों से आकाश आच्छादित हो गया। इस तरह आकाश तथा उसकी प्राकृतिक ज्योति उसी तरह ढक गये जिस तरह आत्मा प्रकृति के तीन गुणों से आच्छादित हो जाता है।

तात्पर्य : बिजली की उपमा सतोगुण से, गर्जना की रजोगुण से तथा बादलों की तमोगुण से दी गई है। इस तरह वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने पर बादलों से ढका आकाश उस शुद्ध आत्मा के सदृश है, जो प्रकृति के गुणों से विचलित हो जाता है क्योंकि तब यह आच्छादित हो जाता है, जिससे उसकी मूल ज्योतिर्मयी प्रकृति भौतिक गुणों के कुहासे से मन्द मन्द प्रतिबिम्बित हो पाती है।

अष्टौ मासान्निपीतं यद्भूम्याश्चोदमयं वसु ।
स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

अष्टौ—आठ; मासान्—महीनों के दौरान; निपीतम्—पिया हुआ; यत्—जो; भूम्याः—पृथ्वी का; च—तथा; उद-मयम्—जल से युक्त; वसु—सम्पत्ति; स्व-गोभिः—अपनी ही किरणों से; मोक्तुम्—मुक्त करने के लिए; आरेभे—प्रारम्भ कर दिया; पर्जन्यः—सूर्य ने; काले—उचित समय; आगते—आ जाने पर।

सूर्य ने अपनी किरणों से आठ मास तक पृथ्वी की जल रूपी सम्पत्ति का शोषण किया था। अब उपयुक्त समय आ गया था और सूर्य अपने उस संचित संपत्ति को मुक्त करने लगा।

तात्पर्य : आचार्यगण सूर्य द्वारा पृथ्वी की जल सम्पत्ति के भाप बनने की तुलना राजा द्वारा कर वसूल करने से करते हैं। श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* (भाग १, अध्याय २०) में इस रूपक की व्याख्या इस प्रकार की है, ''बादल धूप द्वारा पृथ्वी से खींचा गया संचित जल हैं। सूर्य लगातार आठ मास तक पृथ्वी की सतह से सभी प्रकार के जल को भाप बनाकर उड़ाता है और यह जल बादलों के रूप में संचित होता है, जो आवश्यकतानुरूप जल के रूप में बँट जाते हैं। इसी प्रकार सरकार नागरिकों पर तरह तरह के कर लगाती है, जिसे नागरिक समुदाय कृषि, व्यापार तथा उद्योग जैसे अपने भौतिक कार्यों से चुकता करता है। इस तरह सरकार आयकर तथा विक्रीकर के रूप में भी कर लगा सकती है। इसकी उपमा सूर्य द्वारा पृथ्वी से जल खींचने से दी गई है। जब पृथ्वी पर पुन: जल की आवश्यकता होती है, तो वही सूर्य की धूप इस जल को बादल में बदलकर सारे विश्व में वितरित करती है। इसी प्रकार सरकार द्वारा संगृहीत करों को जनता में शैक्षणिक कार्य, जन कार्य, सफाई कार्य इत्यादि के रूप में वितरित कर देना चाहिए। अच्छी सरकार के लिए यह अनिवार्य है। सरकार को व्यर्थ में लुटाने के लिए ही कर नहीं लगाना चाहिए प्रत्युत संग्रहीत कर का उपयोग राज्य के जनकल्याण में किया जाना चाहिए।''

तडिद्वन्तो महामेघाश्चण्ड श्वसन वेपिताः ।
प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तडित्-वन्तः—बिजली का प्रदर्शन करते; महा-मेघाः—बड़े बड़े बादल; चण्ड—उग्र; श्वसन—वायु द्वारा; वेपिताः—हिलाये गये; प्रीणनम्—तृप्ति; जीवनम्—उनका जीवन (जल); हि—निस्सन्देह; अस्य—इस जगत का; मुमुचुः—मुक्त किया; करुणाः—दयालु व्यक्ति; इव—सदृश।

बिजली चमकाते बड़े बड़े बादल प्रचण्ड वायु के द्वारा हिलाये-डुलाये जाकर दूर ले जाये

गये थे। ये बादल दयालु पुरुषों की तरह इस संसार की खुशी के लिए अपना जीवन दान कर रहे थे।

तात्पर्य : जिस तरह कभी कभी महान् दयालु व्यक्ति समाज के सुख हेतु अपने जीवन या धन का उत्सर्ग कर देते हैं उसी तरह बादलों ने सूखी पृथ्वी पर जल बरसाया। यद्यपि इस तरह से बादल विनष्ट हो गये किन्तु पृथ्वी की खुशी के लिए उन्होंने मुक्तभाव से वर्षा की।

श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* में इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : ''वर्षा ऋतु में सारे देश के ऊपर प्रबल वायु झकझोरती है और जल बाँटने के लिए बादलों को एक से दूसरे स्थान तक ले जाती है। जब ग्रीष्म ऋतु के बाद पानी की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है, तो ये बादल एक धनी पुरुष की भाँति होते हैं। जिस तरह आवश्यकता पड़ने पर धनपति अपना सारा कोष खाली हो जाने पर भी, धन लुटा देता है उसी तरह ये बादल पृथ्वी की सतह पर अपना सारा जल वितरित करके स्वयं रिक्त हो जाते हैं।

कहा जाता है कि जब भगवान् रामचन्द्र के पिता महाराज दशरथ अपने शत्रुओं से लड़ते थे तो वे उनके पास इस तरह पहुँचते थे जैसे कोई किसान अनावश्यक पौधों और वृक्षों को उखाड़ता है। और जब दान देने की आवश्यकता पड़ती तो वे धन का वितरण इस तरह करते मानो बादल जल वितरित कर रहा हो। बादलों द्वारा जल का वितरण इतना उदार होता था कि इसकी तुलना महान् दानी व्यक्ति द्वारा धन वितरण से की जाती है। बादल से इतनी प्रचुर वर्षा होती है कि यह जल चट्टानों तथा पर्वतों पर और जहाँ आवश्यकता नहीं है उन सागरों पर भी बरसता है। बादल उस दानी व्यक्ति की तरह होता है, जो वितरण के लिए अपना कोष खोल देता है और पात्र या कुपात्र का भेदभाव नहीं करता। वह मुक्तहस्त दान देता है।''

अलंकारिक भाषा में बादलों में जो बिजली चमकती है, वह ऐसा प्रकाश है, जिससे वे पृथ्वी की दुखित अवस्था को देखते हैं। तेज बहनेवाली हवाएँ उनके गहरे साँस हैं जैसाकि किसी दुखी व्यक्ति में देखा जाता है। पृथ्वी की दुखित अवस्था देखकर बादल वायु में दयालु व्यक्ति की तरह काँपते हैं और इसलिए वे जल बरसाते हैं।

तपःकृशा देवमीढा आसीद्वर्षीयसी मही ।
यथैव काम्यतपसस्तनुः सम्प्राप्य तत्फलम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

तपः-कृशा—ग्रीष्म के ताप से दुर्बल; देव-मीढा—जलदेव द्वारा कृपापूर्वक छिड़की; आसीत्—हो गयी; वर्षीयसी—पूर्णतया पोषित; मही—पृथ्वी; यथा एव—जिस तरह; काम्य—इन्द्रिय तृप्ति पर आधारित; तपसः—तपस्वी का; तनुः—शरीर; सम्प्राप्य—प्राप्त करके; तत्—उस तपस्या का; फलम्—फल।

ग्रीष्म के ताप से पृथ्वी कृषकाय हो चुकी थी किन्तु वर्षा के देवता द्वारा तर किये जाने पर पुनः पूरी तरह हरीभरी हो गई। इस तरह पृथ्वी उस व्यक्ति के समान थी जिसका शरीर भौतिक कामना से की गई तपस्या के कारण कृषकाय हो जाता है किन्तु तपस्या का फल प्राप्त हो जाने पर वह पुनः पूरी तरह हृष्ट पुष्ट हो उठता है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* में इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : "वर्षा के पूर्व सारी पृथ्वी सभी प्रकार की शक्तियों से क्षीण होकर अत्यन्त दुबली प्रतीत होने लगती है। वर्षा के बाद पृथ्वी की सम्पूर्ण सतह वनस्पति से हरीभरी हो उठती है और अत्यन्त स्वस्थ तथा बलिष्ठ दिखने लगती है। यहाँ पर भौतिक इच्छा की पूर्ति के लिए तपस्या करनेवाले व्यक्ति से इसकी तुलना की गई है। वर्षा ऋतु के बाद पृथ्वी की लहलहाती अवस्था की तुलना भौतिक इच्छाओं की पूर्ति होने से की गई है। कभी कभी जब कोई देश अवांछित सरकार द्वारा पराधीन बना लिया जाता है, तो सरकार पर नियंत्रण पाने के लिए व्यक्तियों तथा दलों को कठिन तपस्या करनी पड़ती है और जब वे उस पर नियंत्रण पा लेते हैं, तो वे खूब वेतन लेकर समृद्ध बन जाते हैं। यह भी वर्षा ऋतु में पृथ्वी के लहलहाने के तुल्य है। वस्तुतः मनुष्य को आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त करने के लिए ही कठोर तपस्या करनी चाहिए। *श्रीमद्भागवत* में संस्तुति की गई है कि परमेश्वर के साक्षात्कार हेतु ही तपस्या करनी चाहिए। भक्ति में तपस्या स्वीकार करके मनुष्य अपने आध्यात्मिक जीवन को फिर से पा लेता है और आध्यात्मिक जीवन प्राप्त होते ही वह असीम आध्यात्मिक आनन्द का भोग करता है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी भौतिक लाभ के लिए तपस्या करता है, तो जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, उसे जो फल प्राप्त होता है, वह क्षणिक होता है और केवल अल्प ज्ञानी ही ऐसे फल की कामना करते हैं।"

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः ।
यथा पापेन पाषण्डा न हि वेदाः कलौ युगे ॥ ८॥

शब्दार्थ

निशा-मुखेषु—सांध्यकालीन धुंधलके के समय; खद्योताः—जुगनू; तमसा—अंधकार के कारण; भान्ति—चमकते हैं; न—नहीं; ग्रहाः—नक्षत्रगण; यथा—जिस तरह; पापेन—पापकर्मों के कारण; पाषण्डाः—नास्तिक सिद्धान्त; न—नहीं; हि—निश्चय ही; वेदाः—वेद; कलौ युगे-इन् थे अगे ओफ् कलि.

वर्षा ऋतु के साँझ के धुंधलेपन में, अंधकार के कारण जुगनू तो चमक रहे थे किन्तु नक्षत्रगण प्रकाश नहीं बिखेर पा रहे थे, जिस प्रकार कि कलियुग में पापकृत्यों की प्रधानता से नास्तिक सिद्धान्त वेदों के असली ज्ञान को आच्छादित कर देते हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका इस प्रकार है : ''वर्षा ऋतु में संध्या समय वृक्षों की चोटियों पर यत्रतत्र बहुत से जुगनू दिखते हैं और वे प्रकाश की तरह चमकते हैं किन्तु आकाश के नक्षत्र—यथा चाँद और सितारे—दृष्टिगोचर नहीं होते। इसी प्रकार कलियुग में नास्तिक अथवा दुष्ट लोगों की प्रधानता हो जाती है किन्तु आध्यात्मिक उत्थान के लिए वैदिक सिद्धान्तों का वास्तव में पालन करनेवाले व्यक्तियों का प्रायः लोप हो जाता है। इस कलियुग की तुलना वर्षा ऋतु से की गई है। इस युग में असली ज्ञान भौतिक सभ्यता की प्रगति के प्रभाव से ढक जाता है। सस्ते मनोधर्मी, नास्तिक तथा तथाकथित धार्मिक सिद्धान्त बनानेवाले लोग जुगनुओं की तरह प्रधान बन जाते हैं जबकि वैदिक सिद्धान्तों अथवा शास्त्रों के आदेशों का दृढ़ता से पालन करनेवाले व्यक्ति इस युग के बादलों द्वारा आच्छादित हो जाते हैं।

लोगों को चाहिए कि वे आकाश के वास्तविक ग्रहों—सूर्य, चन्द्रमा तथा तारों—का लाभ उठायें, जुगनुओं के प्रकाश का नहीं। वस्तुतः ये जुगनू रात्रि के अंधकार में कोई प्रकाश नहीं दे सकते। जिस तरह वर्षा ऋतु में भी कभी कभी बादल छट जाते हैं, तो सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे दीख पड़ते हैं उसी तरह इस कलियुग में भी कभी कभी कुछ लाभ मिलते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु का वैदिक आन्दोलन—जो हरे कृष्ण मंत्र कीर्तन का वितरण है—इसी तरह से समझा जाता है। जो लोग गम्भीरतापूर्वक असली जीवन की खोज करते हैं उन्हें चाहिए कि वे मनोधर्मियों तथा नास्तिकों के तथाकथित प्रकाश को न ग्रहण करके इस आन्दोलन से लाभ उठायें।''

श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डुकाः ससृजुर्गिरः ।
तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्ब्राह्मणा नियमात्यये ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; पर्जन्य—वर्षा के बादलों की; निनदम्—प्रतिध्वनि; मण्डुकाः—मेंढकों ने; ससृजुः—निकाली; गिरः—अपनी ध्वनि; तूष्णीम्—मौन भाव से; शयानाः—लेटे हुए; प्राक्—पहले; यद्वत्—जिस तरह; ब्राह्मणाः—ब्राह्मण छात्र; नियम-अत्यये—प्रातःकालीन कृत्यों को समाप्त करके।

वे मेंढक जो अभी तक मौन पड़े हुए थे, वर्षा ऋतु के बादलों की गर्जना सुनकर अचानक टर्राने लगे मानो शान्त भाव से प्रातःकालीन कृत्य करनेवाले ब्राह्मण विद्यार्थी अपने गुरु द्वारा बुलाए जाने पर अपना पाठ सुनाने लगे हों।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने इसकी टीका इस प्रकार की है : "प्रथम वर्षा के बाद जब बादलों में गर्जना होती है, तो सारे मेंढक टर्राने लगते हैं मानो एकाएक विद्यार्थीगण अपना पाठ पढ़ने लगे हों। विद्यार्थी सामान्यतः प्रातःकाल जल्दी जग जाते हैं। किन्तु वे स्वेच्छा से नहीं उठते अपितु जब मन्दिर या सांस्कृतिक संस्थान में घंटी बजती है तभी उठते हैं। वे आध्यात्मिक गुरु के आदेश से तुरन्त उठ जाते हैं और प्रातःकालीन नित्यकर्म करने के बाद वेदों का अध्ययन करने या वैदिक मंत्रों का उच्चारण करने बैठ जाते हैं। इसी तरह कलियुग के अंधकार में हर व्यक्ति सोता रहता है किन्तु किसी महान् आचार्य के पुकारते ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए हर व्यक्ति वेदों का अध्ययन करने लगता है।"

आसन्नुत्पथगामिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः ।
पुंसो यथास्वतन्त्रस्य देहद्रविण सम्पदः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

आसन्—हो गये; उत्पथ-गामिन्यः—अपने अपने मार्गों से विपथ; क्षुद्र—नगण्य; नद्यः—नदियाँ; अनुशुष्यतीः—सूखकर के; पुंसः—मनुष्य का; यथा—जिस तरह; अस्वतन्त्रस्य—जो स्वतंत्र नहीं है उसका (अपनी इन्द्रियों के वशीभूत); देह—शरीर; द्रविण—शारीरिक सम्पत्ति; सम्पदः—तथा सम्पत्ति।

वर्षा ऋतु के आगमन के साथ ही सूखी हुई क्षुद्र नदियाँ बढ़ने लगीं और अपने असली मार्गों को छोड़कर इधर उधर बहने लगीं मानो इन्द्रियों के वशीभूत किसी मनुष्य के शरीर, सम्पत्ति तथा धन हों।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका इस प्रकार है : "वर्षा ऋतु में अनेक पोखर, सरोवर तथा छोटी छोटी नदियाँ जल से भर जाती हैं अन्यथा वर्ष की शेष अवधि में सूखी रहती हैं। इसी तरह से भौतिकतावादी व्यक्ति शुष्क होते हैं किन्तु कभी कभी जब वे तथाकथित ऐश्वर्यशाली स्थिति में होते हैं—उनके घरबार, बालबच्चे या थोड़ी बहुत बैंक-बचत हो जाती है वे फलते-फूलते प्रतीत होते हैं किन्तु बाद में वे शीघ्र ही उसी तरह शुष्क हो जाते हैं जिस तरह छोटी छोटी नदियाँ तथा पोखर सूख

जाते हैं। विद्यापति कवि ने कहा है कि मित्र, परिवार, सन्तान, पत्नी इत्यादि की संगति में निश्चय ही कुछ आनन्द होता है किन्तु वह आनन्द मरुस्थल में एक बूँद के समान है। हर व्यक्ति सुख के पीछे उसी तरह पगलाया रहता है, जैसे कि मरुस्थल में हर व्यक्ति पानी के पीछे। यदि मरुस्थल में एक बूँद जल हो, तो कहने को तो जल है किन्तु उस जल की बूँद से होनेवाला लाभ नाममात्र का ही है। हम भौतिकवादी जीवन में सुख के समुद्र के पीछे पड़े रहते हैं किन्तु समाज, मित्र तथा संसारी प्रेम के रूप में हमें उसकी एक बूँद से अधिक नहीं मिल पाती है। हमारी तृप्ति कभी नहीं हो पाती जिस तरह कि छोटी छोटी नदियाँ, सरोवर तथा ताल-तलैया शुष्क मौसम में कभी जल से पूर्ण नहीं हो पाते।''

हरिता हरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपैश्च लोहिता ।
उच्छिलीन्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

हरिताः—हरिताभ; हरिभिः—हरी; शष्पैः—नई उगी घास से; इन्द्रगोपैः—इन्द्रगोप कीटों (बीरबहूटी) से; च—तथा; लोहिता—लालाभ; उच्छिलीन्ध्र—कुकुरमुत्तों द्वारा; कृत—की गई; छाया—छाया; नृणाम्—मनुष्यों के; श्रीः—ऐश्वर्य; इव—सदृश; भूः—पृथ्वी; अभूत्—हो गई।

नई उगी घास से पृथ्वी पन्ने (मरकत) की तरह हरी हो रही थी, इन्द्रगोप कीटों ने उसमें लाल रंग मिला दिया और श्वेत रंग के कुकुरमुत्तों ने और भी रंगत ला दी। इस प्रकार पृथ्वी उस व्यक्ति जैसी लगने लगी जो सहसा धनी बन जाता है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है कि *नृणाम्* शब्द राजसी व्यक्तियों का सूचक है। इस तरह गहरे हरे खेत जो चमकीले लाल कीड़ों तथा श्वेत रंग के कुकुरमुत्तों रूपी छत्तों से रंगबिरंगे लग रहे थे उनकी तुलना शाही सैन्य-शक्ति के प्रदर्शन से की जा सकती है।

क्षेत्राणि शष्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ।
मानिनामनुतापं वै दैवाधीनमजानताम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

क्षेत्राणि—खेत; शष्य-सम्पद्भिः—अपनी अनाज की सम्पत्ति से; कर्षकाणाम्—कृषकों को; मुदम्—हर्ष; ददुः—प्रदान किया; मानिनाम्—मिथ्या गर्व करनेवालों को; अनुतापम्—जलन, पश्चात्ताप; वै—निस्सन्देह; दैव-अधीनम्—भाग्य के अधीन; अजानताम्—न जाननेवालों को।

अपनी अन्नरूपी सम्पदा से सारे खेत किसानों को प्रफुल्लित कर रहे थे। किन्तु वही खेत उन लोगों के हृदयों में पश्चात्ताप उत्पन्न कर रहे थे, जो इतने घमण्डी थे कि खेती के कार्य में नहीं

लगना चाहते थे और यह नहीं समझ पाते थे कि किस तरह हर वस्तु भगवान् के अधीन है।

तात्पर्य : अधिक वर्षा होने पर बड़े शहरों में रहने वाले लोगों का घबड़ा उठना एक सामान्य बात है। वे या तो समझते नहीं या भूल चुके हैं कि यह वर्षा उन फसलों को लहलहायेगी जिनसे प्राप्त अन्न को वे खाएँगे। उन्हें खाना तो अच्छा लगता है किन्तु वे भूल जाते हैं कि भगवान् इस वर्षा से न केवल मनुष्यों को अन्नदान दे रहे हैं अपितु पौधौं, पशुओं तथा स्वयं पृथ्वी को पोषित कर रहे हैं।

आधुनिक नजाकत भरे लोग कृषिकर्म में लगे व्यक्तियों पर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। अमरीकी लोकभाषा में सीधेसादे कम बुद्धिमान व्यक्ति को कभी कभी ''किसान'' (फार्मर) कहा जाता है। कुछ ऐसी सरकारी एजेंसियाँ भी हैं, जो कृषि-उत्पादन को सीमित रखना चाहती हैं क्योंकि कुछ पूँजीपति डरते रहते हैं कि इसका प्रभाव बाजार-मूल्यों पर पड़ सकता है। आधुनिक सरकारें नाना प्रकार के कृत्रिम एवं चालाकी के कार्यों में लगी रहती हैं जिससे विश्व-भर में, यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमरीका में भी, गरीबों में, अन्न की कमी पाई जाती है फिर भी कुछ सरकारें फसल न बोने के लिए किसानों को पैसा देती हैं। कभी कभी ये सरकारें पर्याप्त खाद्य वस्तुओं को समुद्र में फेंकवा देती हैं। इस तरह अहंवादी तथा अज्ञानी प्रशासन जो इतने घमंडी होते हैं कि भगवान् के नियमों का पालन नहीं करना चाहते या इतने बेसमझ होते हैं कि उन्हें मानना नहीं चाहते, लोगों में निराशा उत्पन्न करते रहेंगे जबकि ईशभावनाभावित सरकारें सबों को प्रचुर अन्न तथा सुख प्रदान करती रहेंगी।

जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया ।
अबिभ्रन्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥ १३॥

शब्दार्थ

जल—जल के; स्थल—तथा स्थल के; ओकसः—निवासी; सर्वे—सभी; नव—नवीन; वारि—जल का; निषेवया—सेवन करने से; अबिभ्रन्—ग्रहण किया; रुचिरम्—आकर्षक; रूपम्—रूप; यथा—जिस तरह; हरि-निषेवया—भगवान् की भक्ति करने से।.

चूँकि जल तथा स्थल के समस्त प्राणियों ने नवीन वर्षाजल का लाभ उठाया इसलिए उनके रूप आकर्षक एवं सुहावने हो गये जिस तरह कोई भक्त भगवान् की सेवा में लगने पर सुन्दर लगने लगता है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने इस प्रकार टीका की है : ''इस्कान में हमें अपने विद्यार्थियों के साथ इसका व्यावहारिक अनुभव है। विद्यार्थी बनने के पूर्व वे गंदे लगते थे भले ही उनके अंग-प्रत्यंग

रूपवान थे। किन्तु कृष्णभावनामृत के विषय में कोई जानकारी न रखने के कारण वे गन्दे और दुखियारे से लगते थे। अब कृष्णभावनामृत ग्रहण करने के अनन्तर उनका स्वास्थ्य सुधर गया है और यम-नियमों का पालन करने से उनकी शारीरिक कान्ति भी बढ़ गई है। जब वे केसरिया वस्त्र धारण करके अपने मस्तक पर तिलक लगा लेते हैं और अपने हाथों में तथा गले में मालाएँ लिये रहते हैं, तो वे इस तरह लगते हैं मानो सीधे वैकुण्ठ से चले आ रहे हों।''

सरिद्भिः सङ्गतः सिन्धुश्चुक्षोभ श्वसनोर्मिमान् ।
अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा ॥ १४॥

शब्दार्थ

सरिद्भिः—नदियों समेत; सङ्गतः—मिलने से; सिन्धुः—सागर; चुक्षोभ—क्षुब्ध हो उठा; श्वसन—वायु से उड़कर; ऊर्मि-मान्—लहरों से युक्त; अपक्व—अप्रौढ़; योगिनः—योगी का; चित्तम्—मन; काम-अक्तम्—कामवासना से रंजित; गुण-युक्—इन्द्रिय तृप्ति के विषयों से सम्बन्ध रखने से; यथा—जिस तरह।

जहाँ जहाँ नदियाँ आकर समुद्र से मिलीं, वहाँ समुद्र विक्षुब्ध हो उठा और हवा से इसकी लहरें इधर उधर उठने लगीं, जिस तरह कि किसी अपरिपक्व योगी का मन कामवासना से रंजित होने तथा इन्द्रियतृप्ति के विषयों के प्रति अनुरक्त होने से डगमगाने लगता है।

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः ॥ १५॥

शब्दार्थ

गिरयः—पर्वत; वर्ष-धाराभिः—जल धारण किये हुए बादलों द्वारा; हन्यमानाः—चोट खाकर; न विव्यथुः—हिले नहीं; अभिभूयमानाः—प्रहार किये जाने पर; व्यसनैः—संकटों से; यथा—जिस तरह; अधोक्षज-चेतसः—भगवान् में लीन मन वाले।

जिस प्रकार भगवान् में लीन मन वाले भक्तगण सभी प्रकार के संकटों से प्रहार किये जाने पर भी शान्त बने रहते हैं उसी प्रकार वर्षा ऋतु में जलवाही बादलों द्वारा बारम्बार प्रहार किये जाने पर भी पर्वत तनिक भी विचलित नहीं हुए।

तात्पर्य : पर्वत मूसलाधार वर्षा होने पर तनिक भी विचलित नहीं होते प्रत्युत उनकी गर्त धुल जाती है और वे सुन्दर तथा दीप्तिमान लगने लगते हैं। इसी प्रकार भगवान् का उच्च भक्त विषम परिस्थितियों में भी अपने भक्ति सम्बन्धी कार्यों से चलायमान नहीं होता प्रत्युत इससे इस जगत की अनुरक्ति रूपी उसके हृदय की धूल साफ हो जाती है। इस तरह कठिन परिस्थितियों को सहन करने से भक्त सुन्दर तथा कान्तिमान लगने लगता है। वस्तुतः एक भक्त जीवन की सारी पराजयों को भगवान्

की कृपा के रूप में स्वीकार करता है और सारे कष्टों को अपने पूर्व दुष्कर्मों का फल मानता है।

मार्गा बभूवु: सन्दिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृता: ।
नाभ्यस्यमाना: श्रुतयो द्विजै: कालेन चाहता: ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

मार्गा:—रास्ते; बभूवु:—हो गये; सन्दिग्धा:—अस्पष्ट; तृणै:—घास से; छन्ना:—ढके हुए; हि—निस्सन्देह; असंस्कृता:—अस्वच्छ; न अभ्यस्यमाना:—न पढ़े जाने से; श्रुतय:—शास्त्र; द्विजै:—ब्राह्मणों द्वारा; कालेन—समय के प्रभाव से; च—तथा; आहता:—भ्रष्ट।

वर्षा ऋतु में रास्तों को साफ न करने से वे घास-फूस और कूड़े-करकट से ढक गये और उन्हें पहचान पाना कठिन हो गया। ये रास्ते उन धार्मिक शास्त्रों (श्रुतियों) के तुल्य थे, जो ब्राह्मणों द्वारा अध्ययन न किये जाने से भ्रष्ट हो गये हों और कालक्रम से आच्छादित हो चुके हों।

लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदा: ।
स्थैर्यं न चक्रु: कामिन्य: पुरुषेषु गुणिष्विव ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

लोक—सारे जगत के; बन्धुषु—मित्र; मेघेषु—बादलों में; विद्युत:—बिजली; चल-सौहृदा:—जिनकी मित्रता चलायमान है; स्थैर्यम्—स्थिरता; न चक्रु:—नहीं बनाये रखते; कामिन्य:—कामुक स्त्रियाँ; पुरुषेषु—पुरुषों में; गुणिषु—गुणवान; इव—जिस तरह।

यद्यपि बादल सारे जीवों के शुभैषी मित्र होते हैं लेकिन दुर्बलमना चंचल बिजली बादलों के एक समूह से दूसरे समूह में इस तरह गति करने लगी मानो गुणवान पुरुषों के प्रति भी विश्वासघात करनेवाली कामुक स्त्रियाँ हों।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : ''वर्षा ऋतु में बिजली एक क्षण बादलों के एक समूह में प्रकट होती है, तो दूसरे क्षण दूसरे समूह में। इस घटना की तुलना उस कामुक स्त्री से की गई है, जो अपना चित्त किसी एक पुरुष पर नहीं टिका पाती। बादल की तुलना योग्य व्यक्ति से की गई है क्योंकि वह वर्षा द्वारा अनेक लोगों को जीवन-दान देता है। इसी तरह योग्य पुरुष अनेक प्राणियों का—यथा अपने परिवार अथवा व्यापार के अनेक काम करनेवालों का—भरण-पोषण करता है। दुर्भाग्यवश उसका सारा जीवन उसको तलाक देनेवाली पत्नी के कारण विक्षुब्ध हो सकता है और जब पति क्षुब्ध रहता है, तो सारा परिवार बरवाद हो जाता है, बच्चे अस्तव्यस्त हो जाते हैं, व्यापार ठप्प हो जाता है और हर काम पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अत: संस्तुति की जाती है कि जो स्त्री कृष्णभावनामृत में आगे

बढ़ना चाहती हो वह अपने पति के साथ शान्ति से रहे और पति-पत्नी किसी भी परिस्थिति में एक-दूसरे से अलग न हों। पति-पत्नी को मैथुन में संयम बरतना चाहिए और अपने मन को कृष्णभावनामृत में केन्द्रित करना चाहिए जिससे उनका जीवन सफल हो सके। आखिर इस भौतिक जगत में पुरुष को स्त्री की और स्त्री को पुरुष की आवश्यकता पड़ती है। जब वे मिल जाँय तो उन्हें कृष्णभावनामृत में शान्तिपूर्वक रहना चाहिए और बादलों के एक समूह से दूसरे समूह में चमकनेवाली बिजली की तरह चंचल नहीं होना चाहिए।''

धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ।
व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान्पुरुषो यथा ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

धनुः—धनुष (इन्द्रधनुष); वियति—आकाश में; माहा-इन्द्रम्—इन्द्र का; निर्गुणम्—गुणहीन (प्रत्यंचारहित); च—यद्यपि; गुणिनि—आकाश में, जिसमें ध्वनि जैसा निश्चित गुण पाया जाता है; अभात्—प्रकट हुआ; व्यक्ते—व्यक्त जगत के भीतर; गुण-व्यतिकरे—भौतिक गुणों की पारस्परिक क्रियाओं वाले; अगुण-वान्—भौतिक गुणों से सम्बन्ध न रखनेवाले; पुरुषः—परम पुरुष; यथा—जिस तरह।

जब उस आकाश में इन्द्रधनुष प्रकट हुआ जिसमें गर्जना करने का गुण था, तो वह सामान्य धनुषों से भिन्न था क्योंकि वह प्रत्यञ्चा पर टिका हुआ नहीं था। इसी प्रकार जब भगवान् इस जगत में, जो कि भौतिक गुणों की पारस्परिक क्रिया स्वरूप है, प्रकट होते हैं, तो वे सामान्य पुरुषों से भिन्न होते हैं क्योंकि वे समस्त भौतिक गुणों से मुक्त तथा समस्त भौतिक दशाओं से स्वतंत्र होते हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका इस प्रकार है : ''कभी कभी बादलों की गर्जना के अतिरिक्त इन्द्रधनुष निकलता है, जो प्रत्यञ्चारहित धनुष जैसा प्रतीत होता है। सामान्यतया धनुष वक्र स्थिति में इसीलिए बना रहता है क्योंकि इसके दोनों सिरे प्रत्यञ्चा (डोरी) द्वारा बँधे रहते हैं किन्तु इन्द्रधनुष में कोई ऐसी प्रत्यञ्चा नहीं होती फिर भी वह आकाश में बहुत अच्छी तरह टिका रहता है। इसी प्रकार जब भगवान् इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं, तो वे सामान्य व्यक्ति की तरह प्रकट तो होते हैं किन्तु वे किसी भौतिक अवस्था पर टिके नहीं होते। *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं कि वे अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा, जो कि बाह्य शक्ति के बन्धन से मुक्त है, प्रकट होते हैं। जो सामान्य प्राणी के लिए बन्धन है, वही भगवान् के लिए स्वतंत्रता है।''

न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः ।
अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

न रराज—चमका नहीं; उडुपः—चन्द्रमा; छन्नः—ढका हुआ; स्व-ज्योत्स्ना—अपनी चाँदनी से; राजितैः—प्रकाशित; घनैः—बादलों से; अहम्-मत्या—मिथ्या अहंकार से; भासितया—प्रकाशित; स्व-भासा—अपनी ही द्युति से; पुरुषः—जीव; यथा—जिस तरह।

वर्षा ऋतु में बादलों से ढके रहने के कारण चन्द्रमा के प्रकट होने में व्यवधान पड़ता था और यही बादल चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित होते थे। इसी प्रकार इस भौतिक जगत में मिथ्या अहंकार के आवरण से जीव प्रत्यक्ष प्रकट नहीं हो पाता जबकि वह स्वयं शुद्ध आत्मा की चेतना से प्रकाशित होता है।

तात्पर्य : यहाँ पर दिया गया दृष्टान्त अत्युत्तम है। वर्षा ऋतु में हम आकाश में चन्द्रमा को नहीं देख सकते क्योंकि वह बादलों से ढका रहता है। किन्तु ये बादल चन्द्रमा की ही किरणों के प्रकाश से चमकीले बनते हैं। इसी प्रकार इस बद्ध जगत में हम प्रत्यक्षत: आत्मा को नहीं देख पाते क्योंकि हमारी चेतना मिथ्या अहंकार से आवृत रहती है, जो भौतिक जगत और भौतिक शरीर से एक मिथ्या पहचान है। तो भी आत्मा की निजी चेतना से ही मिथ्या अहंकार प्रकाशित होता है।

जैसाकि *गीता* में वर्णन हुआ है, आत्मा की शक्ति चेतना है और जब यह चेतना मिथ्या अहंकार के पर्दे से होकर प्रकट होती है, तो वह धुँधली भौतिक चेतना के रूप में प्रकट होती है, जिसमें आत्मा या ईश्वर की प्रत्यक्ष दृष्टि नहीं होती। भौतिक जगत में बड़े से बड़े दार्शनिक परम सत्य के विषय में बोलते समय अंतत: धुँधले द्वैत का सहारा लेते हैं जिस प्रकार कि बादल से ढका आकाश चन्द्रमा की चाँदनी को धुँधले तथा अप्रत्यक्ष रूप में ही प्रदर्शित करता है।

भौतिक जीवन में हमारा मिथ्या अहंकार प्राय: उत्साहप्रद, आशापूर्ण तथा विभिन्न सांसारिक मामलों से परिचित-सा लगता है और ऐसी चेतना ही हमें इस जगत में आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती है। किन्तु सचाई तो यह है कि हम अपनी मूल शुद्ध चेतना के, जो कि कृष्णभावनामृत अर्थात् आत्मा और ईश्वर का सीधा निरूपण है, धुँधले प्रतिबिम्ब का ही अनुभव करते हैं। इसकी परवाह न करते हुए कि यह मिथ्या अहंकार हमारी असली आध्यात्मिक चेतना को जो पूर्णरूपेण ज्योतिर्मय और आनंदमय है मन्द बनाता है। हम त्रुटिवश सोचते हैं कि भौतिक चेतना ज्ञान तथा आनन्द से ओतप्रोत

है। इसकी तुलना इस विचार से की जा सकती है कि प्रकाशवान बादल रात में आकाश को प्रकाशित करते हैं जबकि तथ्य यह है कि चाँदनी आकाश को प्रकाशित करती है और बादल तो चाँदनी के मार्ग में बाधक बनते हैं और उसे मन्द बनाते हैं। बादल इसलिए प्रकाशमय प्रतीत होते हैं क्योंकि वे चन्द्रमा की चमकीली किरणों को छानते तथा अवरुद्ध करते हैं। इसी प्रकार कभी कभी भौतिक चेतना आनन्दमय या प्रकाशयुक्त प्रतीत होती है क्योंकि यह आत्मा से आनेवाली मूल आनन्दमय तथा प्रकाशित चेतना को रोक या छान रही होती है। यदि हम इस श्लोक में दिये हुए कुशल दृष्टान्त को समझ सकें तो सरलता से कृष्णभावनामृत में आगे बढ़ सकते हैं।

मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दञ्छिखण्डिनः ।
गृहेषु तप्तनिर्विण्णा यथाच्युतजनागमे ॥ २० ॥

शब्दार्थ

मेघ—बादलों का; आगम—आगमन होने से; उत्सवाः—उत्सव मनानेवाले; हृष्टाः—प्रसन्न हुए; प्रत्यनन्दन्—अभिनन्दन हेतु चिल्ला पड़े; शिखण्डिनः—मोरगण; गृहेषु—अपने घरों में; तप्त—दुखित; निर्विण्णाः—और तब सुखी बनते हैं; यथा—जिस तरह; अच्युत—अच्युत भगवान् के; जन—भक्तों के; आगमे—आगमन पर।

जब मोरों ने बादलों को आते देखा तो वे उल्लासित हो गये और हर्षयुक्त अभिनन्दन में टेरने लगे जिस तरह गृहस्थ जीवन में दुखित लोग अच्युत भगवान् के शुद्ध भक्तों के आगमन पर हर्षित हो जाते हैं।

तात्पर्य : शुष्क ग्रीष्म ऋतु के बाद प्रथम गर्जन करते वर्षा के बादलों के आगमन के साथ ही मोर प्रफुल्लित हो उठते हैं और अत्यधिक सुख में नाचने लगते हैं। श्रील प्रभुपाद की टीका है : ‘‘हमें इसका व्यावहारिक अनुभव है कि कृष्णभावनामृत में सम्मिलित होने के पूर्व हमारे बहुत से शिष्य शुष्क और खिन्न थे किन्तु भक्तों के सम्पर्क में आने के बाद वे अब प्रफुल्लित मोरों की तरह नाच रहे हैं।’’

पीत्वापः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः ।
प्राक्क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

पीत्वा—पीकर; आपः—जल; पाद-पाः—वृक्ष; पद्भिः—अपने पाँवों से; आसन्—धारण कर लिया; नाना—विविध; आत्म-मूर्तयः—शारीरिक स्वरूप; प्राक्—पहले; क्षामाः—क्षीण; तपसा—तपस्या से; श्रान्ताः—थके हुए; यथा—जिस तरह; काम-अनुसेवया—प्राप्त वांछित फलों को भोगकर के।

जो वृक्ष दुबले हो गए थे तथा सूख गये थे उनके शरीर के विभिन्न अंग अपनी जड़ों (पाँवों)

से वर्षा का नया जल पाकर लहलहा उठे। इसी तरह तपस्या के कारण जिसका शरीर पतला और दुर्बल हो जाता है, वह पुनः उस तपस्या के माध्यम से प्राप्त भौतिक वस्तुओं का भोग करके स्वस्थ शरीरवाला दिखने लगता है।

तात्पर्य : *पाद* शब्द का अर्थ है ''पाँव'' तथा *पा* का अर्थ है ''पीना''। वृक्ष *पादप* कहलाते हैं क्योंकि वे अपनी जड़ों से जल पीते हैं, जो उनके पैरों के तुल्य हैं। वर्षा का नवीन जल पीकर वृन्दावन के वृक्षों में नई पत्तियाँ, कलियाँ तथा फूल आने लगे और उनमें नवीन वृद्धि होने लगी। इसी तरह भौतिकतावादी व्यक्ति प्रायः अपनी अभीप्सित वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए तपस्या करते हैं। उदाहरणार्थ, अमरीका के राजनैतिक व्यक्ति अपने चुनाव के अभियान के समय देहातों की यात्रा करते समय कठोर तपस्या करते हैं। इसी तरह व्यापारी लोग भी अपने व्यापार को सफल बनाने के लिए निजी सुख-सुविधा को तिलांजलि दे देते हैं। ऐसे तपस्वी व्यक्ति तपस्या का फल प्राप्त करने पर पुनः स्वस्थ तथा संतुष्ट हो जाते हैं जिस तरह वृक्ष शुष्क तथा तप्त ग्रीष्म की तपस्या सहन करने के बाद वर्षा का जल उत्सुकता से पीकर बढ़ने लगते हैं।

सरःस्वशान्तरोधःसु न्यूषुरङ्गापि सारसाः ।
गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सरःसु—सरोवरों में; अशान्त—बेचैन; रोधःसु—तटों पर; न्यूषुः—रहे आते हैं; अङ्ग—हे राजा; अपि—निस्सन्देह; सारसाः—सारस पक्षी; गृहेषु—अपने अपने घरों में; अशान्त—बेचैन; कृत्येषु—कार्यों में; ग्राम्याः—भौतिकतावादी व्यक्ति; इव—निस्सन्देह; दुराशयाः—दूषित विचारवाले।

वर्षाकाल में सरोवरों के तटों के विक्षुब्ध होने पर भी सारस पक्षी तटों पर रहते रहे जिस तरह दूषित मनवाले भौतिकतावादी व्यक्ति अनेक उत्पातों के बावजूद घरों पर ही रहते जाते हैं।

तात्पर्य : वर्षा ऋतु के दौरान प्रायः सरोवरों के किनारों पर कीचड़ फैल जाता है और कभी कभी काँटेदार झाड़ियाँ, कूड़ा-करकट एवं पत्थर एकत्र हो जाते हैं। इन असुविधाओं के बावजूद बत्तखें तथा सारस पक्षी सरोवर के तटों पर ही मँडराते रहते हैं। इसी तरह गृहस्थ जीवन में असंख्य पीड़ाजनक घटनाएँ होती रहने के बावजूद भौतिकतावादी व्यक्ति अपने सयाने पुत्रों के हाथ में परिवार का भार सौंपने और आध्यात्मिक प्रगति की ओर अग्रसर होने का नाम तक नहीं लेता। वह ऐसे विचार को असभ्य और दिल दहलानेवाला मानता है क्योंकि वह परब्रह्म और उनसे अपने सम्बन्ध के विषय में

पूरी तरह अनजान रहता है।

जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे ।
पाषण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

जल-ओघैः—बाढ़ के पानी से; निरभिद्यन्त—टूटे हुए; सेतवः—बाँध; वर्षति—जब वृष्टि होती है; ईश्वरे—इन्द्र; पाषण्डिनाम्—नास्तिकों के; असत्-वादैः—झूठे सिद्धान्तों से; वेद-मार्गाः—वेदों के पथ; कलौ—कलियुग में; यथा—जिस तरह।.

जब इन्द्र ने अपनी वर्षा छोड़ भेजी तो बाढ़ के पानी से खेतों में सिंचाई के बाँध उसी तरह टूट गये जिस तरह कलियुग में नास्तिकों के सिद्धान्तों से वैदिक आदेशों की सीमाएँ टूट जाती हैं।

व्यमुञ्चन्वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्यश्चामृतं घनाः ।
यथाशिषो विश्पतयः काले काले द्विजेरिताः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

व्यमुञ्चन्—मुक्त किया; वायुभिः—वायु के द्वारा; नुन्नाः—प्रेरित; भूतेभ्यः—सारे जीवों के लिए; च—तथा; अमृतम्—अमृत तुल्य जल; घनाः—बादल; यथा—जिस तरह; आशिषः—दातव्य आशीर्वाद; विट्-पतयः—राजा; काले काले—समय समय पर; द्विज—ब्राह्मणों द्वारा; ईरिताः-एन्चोउरगेद्.

वायु द्वारा प्रेरित बादलों ने सारे जीवों के लाभ हेतु अपना अमृत तुल्य जल उसी तरह विमुक्त किया जिस तरह राजागण अपने ब्राह्मण पुरोहितों के आदेशानुसार अपनी प्रजा में दान बाँटते हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : ‘‘वर्षा ऋतु में वायु द्वारा उछाले गये बादल जल प्रदान करते हैं जिसका स्वागत अमृत के समान होता है। जब वेदों के अनुयायी ब्राह्मणजन राजा तथा धनी व्यापारी जैसे समृद्ध व्यक्तियों को बड़े बड़े यज्ञ सम्पन्न करने के लिए दान देने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, तो ऐसी सम्पत्ति का वितरण भी अमृत तुल्य होता है। मानव समाज के चातुर्वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—पारस्परिक सहयोग से शान्तिपूर्वक रहने के लिए हैं किन्तु ऐसा तभी सम्भव है जब उनका मार्गदर्शन ऐसे कुशल वैदिक ब्राह्मण करें जो यज्ञ करते हों और धन का समान वितरण करें।

एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जुरजम्बुमत् ।
गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; वनम्—जंगल में; तत्—उस; वर्षिष्ठम्—अतीव शोभायमान; पक्व—पके; खर्जुर—खजूर; जम्बु—तथा जामुन; मत्—से युक्त; गो—गौवों; गोपालैः—तथा ग्वालबालों द्वारा; वृतः—घिरे हुए; रन्तुम्—खेलने के उद्देश्य से; स-बलः—बलराम सहित; प्राविशत्—प्रवेश किया; हरिः—कृष्ण ने।

जब वृन्दावन का जंगल पके खजूरों तथा जामुन के फलों से लदकर इस प्रकार शोभायमान था, तो भगवान् श्रीकृष्ण अपनी गौवों तथा ग्वालबालों से घिरकर एवं श्रीबलराम के साथ उस वन में आनन्द मनाने के लिए प्रविष्ट हुए।

धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा ।
ययुर्भगवताहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनाः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

धेनवः—गौवें; मन्द-गामिन्यः—मन्द गति से चलनेवाली; ऊधः—अपने थनों के; भारेण—भार से; भूयसा—अत्यधिक; ययुः—गईं; भगवता—भगवान् द्वारा; आहूताः—बुलाई जाने पर; द्रुतम्—शीघ्र; प्रीत्या—स्नेहवश; स्नुत—नम; स्तनाः—स्तन, या चूचुक।

गौवों को अपने दूध से भरे थनों के भार के कारण मन्द गति से चलना पड़ा किन्तु ज्योंही भगवान् ने उन्हें बुलाया वे तुरन्त दौड़ पड़ीं और उनके प्रति स्नेह के कारण उनके स्तन गीले हो गये।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : ''गौवें नई घास चरकर काफी पुष्ट हो गईं थी और उनके थन दूध से भर गये। जब भगवान् कृष्ण ने नाम ले लेकर उन्हें पुकारा तो वे स्नेहवश तुरन्त उनके पास आ गईं और उनकी इस हर्षावस्था में उनके थनों से दूध बहने लगा।''

वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः ।
जलधारा गिरेर्नादादासन्ना ददृशे गुहाः ॥ २७॥

शब्दार्थ

वन-ओकसः—वनवासी कन्याएँ; प्रमुदिताः—हर्षित; वन-राजीः—जंगल के वृक्ष; मधु-च्युतः—मीठा रस टपकाते हुए; जल-धाराः—झरने; गिरेः—पर्वतों पर; नादात्—उनकी प्रतिध्वनि से; आसन्नाः—निकट ही; ददृशे—देखा; गुहाः—गुफाएँ।

भगवान् ने हर्षित वनवासी कन्याओं, मधुर रस टपकाते वृक्षों तथा पर्वतीय झरनों को देखा जिनकी प्रतिध्वनि से सूचित हो रहा था कि पास ही गुफाएँ हैं।

क्वचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ।
निर्विश्य भगवान्रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥ २८॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी कभी; वनस्पति—वृक्ष के; क्रोडे—कोटर में; गुहायाम्—गुफा में; च—अथवा; अभिवर्षति—वर्षा होने पर; निर्विश्य—प्रवेश करके; भगवान्—भगवान् ने; रेमे—रमण किया; कन्द-मूल—कन्दमूल, जड़ें; फल—तथा फल; अशनः—खाकर।

जब वर्षा होती तो भगवान् कभी किसी गुफा में, तो कभी वृक्ष के कोटर में घुस जाते जहाँ वे खेलते तथा कन्दमूल और फल खाते।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी बतलाते हैं कि वर्षा ऋतु में कन्दमूल अत्यन्त कोमल तथा स्वादिष्ट हो जाते हैं और भगवान् कृष्ण जंगली फलों के साथ साथ उन्हें भी खाया करते थे। कृष्ण तथा उनके बालमित्र कभी किसी वृक्ष के कोटर में या फिर गुफा के भीतर बैठकर वर्षा के रुकने तक प्रतीक्षा करते हुए क्रीड़ाओं का आनन्द उठाते थे।

दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलान्तिके ।
सम्भोजनीयैर्बुभुजे गोपैः सङ्कर्षणान्वितः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

दधि-ओदनम्—दही के साथ मिला भात; समानीतम्—भेजा हुआ; शीलायाम्—पत्थर की चट्टान पर; सलिल-अन्तिके—जल के निकट; सम्भोजनीयैः—अपने साथ भोजन करनेवाले; बुभुजे—भोजन किया; गोपैः—ग्वालबालों के साथ; सङ्कर्षण-अन्वितः—बलराम समेत।

भगवान् कृष्ण श्रीबलराम तथा ग्वालबालों के साथ बैठकर घर से भेजे गये दही-भात को भगवान् संकर्षण और ग्वालबालों के साथ खाते जो सदैव उनके साथ ही भोजन किया करते थे। वे पानी के निकट के किसी विशाल शिला पर बैठकर भोजन करते।

शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् ।
तृप्तान्वृषान्वत्सतरान्गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥ ३० ॥
प्रावृट्श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वकालसुखावहाम् ।
भगवान्पूजयां चक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

शाद्वल—घास के मैदान के; उपरि—ऊपर; संविश्य—बैठकर; चर्वतः—चरती हुई; मीलित—बन्द; ईक्षणान्—आँखों को; तृप्तान्—संतुष्ट; वृषान्—साँड़ों को; वत्सतरान्—बछड़ों को; गाः—गौवों को; च—और; स्व—अपने अपने; ऊधः—थनों के; भर—भार से; श्रमाः—थकी; प्रावृट्—वर्षा ऋतु का; श्रियम्—ऐश्वर्य; च—तथा; ताम्—उसको; वीक्ष्य—देखकर; सर्व-काल—सदैव; सुख—आनन्द; आवहाम्—देते हुए; भगवान्—भगवान् ने; पूजयाम् चक्रे—सम्मान किया; आत्म-शक्ति—अपनी अन्तरंगा शक्ति से; उपबृंहिताम्—विस्तार किया।

भगवान् कृष्ण ने हरी घास पर बैठे और आँखें बन्द किये चरते हुए संतुष्ट साँड़ों, बछड़ों तथा गौवों पर नजर डाली और देखा कि गौवें अपने दूध से भरे भारी थनों के भार से थक गई हैं। इस

तरह परम आनन्द के शाश्वत स्रोत वृन्दावन की वर्षा ऋतु के सौन्दर्य और ऐश्वर्य का निरीक्षण करते हुए भगवान् ने उस ऋतु को नमस्कार किया जो उन्हीं की अन्तरंगा शक्ति का विस्तार थी।

तात्पर्य : वृन्दावन में वर्षा ऋतु का अनुपम सौन्दर्य श्रीकृष्ण के आनन्द-विहार में वृद्धि करने के हेतु है। इसलिए भगवान् के प्रेमालापों के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए उनकी अन्तरंगा शक्ति इस अध्याय में वर्णित सारे प्रबन्ध करती है।

एवं निवसतोस्तस्मिन्रामकेशवयोर्व्रजे ।
शरत्समभवद्व्यभ्रा स्वच्छाम्ब्वपरुषानिला ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; निवसतोः—दोनों के रहते हुए; तस्मिन्—उस; राम-केशवयोः—राम तथा केशव के; व्रजे—वृन्दावन में; शरत्—शरद ऋतु; समभवत्—पूरी तरह प्रकट हो आई; व्यभ्रा—बादलों से मुक्त आकाश; स्वच्छ-अम्बु—स्वच्छ जल वाले; अपरुष-अनिला—तथा मन्द वायु।

इस तरह जब भगवान् राम तथा भगवान् केशव वृन्दावन में रह रहे थे तो शरद ऋतु आ गई जिसमें आकाश बादलों से रहित, जल स्वच्छ तथा वायु मन्द हो जाती है।

शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ।
भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

शरदा—शरद ऋतु के प्रभाव से; नीरज—कमल के फूल; उत्पत्त्या—फिर से उत्पन्न करनेवाला; नीराणि—जल समूह; प्रकृतिम्—अपनी प्राकृतिक अवस्था में (स्वच्छ); ययुः—हो गये; भ्रष्टानाम्—पतितों के; इव—सदृश; चेतांसि—मन; पुनः—एक बार फिर; योग—भक्ति के; निषेवया—अभ्यास से।

कमलपुष्पों को पुनः उत्पन्न करनेवाली शरद ऋतु ने विविध जलाशयों को पूर्ववत् स्वच्छ (निर्मल) बना दिया जिस तरह कि भक्तियोग पतित योगियों के मनों को पुनः इस ओर लौटने पर शुद्ध बनाता है।

व्योम्नोऽब्भ्रं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् ।
शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाशुभम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

व्योम्नः—आकाश में; अप्-भ्रम्—बादल; भूत—पशुओं की; शाबल्यम्—बहुलता; भुवः—पृथ्वी के; पङ्कम्—कीचड़; अपाम्—जल का; मलम्—मैल; शरत्—शरद ऋतु ने; जहार—हटा दिया; आश्रमिणाम्—मानव समाजके चारों आश्रमों के सदस्यों का; कृष्णे—कृष्ण में; भक्तिः—भक्ति; यथा—जिस तरह; अशुभम्—सारे अशुभ को।

शरद ऋतु ने आकाश से बादलों को हटा दिया, पशुओं को भीड़भाड़ भरी जगहों से

निकाल लिया, पृथ्वी के कीचड़ को साफ कर दिया तथा जल के गँदलेपन को दूर कर दिया जिस तरह कि भगवान् कृष्ण की प्रेमाभक्ति चारों आश्रमों के सदस्यों को उनकी अपनी अपनी व्याधियों से मुक्त कर देती है।

तात्पर्य : हर व्यक्ति को चार आश्रमों में से अपने आश्रम के अनुरूप नियत कर्तव्य करने चाहिए। ये आश्रम हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। ब्रह्मचारी को विद्यार्थी जीवन में अनेक निम्न कार्य करने होते हैं किन्तु ज्यों ज्यों वह कृष्ण की प्रेमाभक्ति में आगे बढ़ता जाता है उसके गुरुजन उसके आध्यात्मिक पद को मान्यता देते हुए उससे उच्चतर कर्तव्य करने को कहते हैं। गृहस्थ को पत्नी तथा सन्तान के लिए निरन्तर अनगनित कार्य करते रहने से ऊब जाना पड़ता है किन्तु ज्योंही वह कृष्ण की प्रेमाभक्ति में आगे बढ़ पड़ता है उसके भौतिक कार्य घटकर कम से कम होते जाते हैं।

वानप्रस्थ आश्रम में रहनेवाले लोगों को भी अनेक कार्य करने होते हैं जिनके स्थान पर कृष्ण की भावमयी प्रेमाभक्ति की जा सकती है। इसी तरह संन्यास आश्रम में भी अनेक प्राकृतिक कठिनाइयाँ हैं जिनमें से प्रमुख है परब्रह्म के निराकार पक्ष का ध्यान करने की प्रवृत्ति। *भगवद्गीता* (१२.५) में कहा गया है—*क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम्*—जिनके मन भगवान् के अव्यक्त निर्विशेष स्वरूप में आसक्त हैं उनके लिए प्रगति कर पाना अत्यधिक पीड़ाजनक होता है। किन्तु ज्योंही संन्यासी हर नगर तथा हर ग्राम में कृष्ण की महिमा का प्रचार करना शुरू कर देता है, तो उसका जीवन सुन्दर आध्यात्मिक साक्षात्कार की ओर अग्रसर होता हुआ आनन्दमय बन जाता है।

शरद ऋतु में आकाश पुनः प्राकृतिक नीला रंग धारण कर लेता है। बादलों का समाप्त हो जाना ब्रह्मचारी जीवन के कष्टप्रद कर्तव्यों के समाप्त होने जैसा है। चूँकि ग्रीष्म के तुरन्त बाद वर्षा ऋतु आती है इसलिए पशु कभी कभी मूसलाधार वर्षा से विचलित होकर पास-पास ठुँस जाते हैं। किन्तु शरद ऋतु संकेत देती है कि वे अपने अपने क्षेत्रों में जाकर शान्तिपूर्वक रहें। यह गृहस्थ द्वारा पारिवारिक कर्तव्यों की उलझन से छूटकर अपने तथा अपने परिवार के असली लक्ष्य आध्यात्मिक उत्तरदायित्वों में अधिक समय लगाने के तुल्य है। पृथ्वी से कीचड़ हटने की तुलना वानप्रस्थ जीवन की असुविधाओं के हटाये जाने से की जा सकती है और जल का स्वच्छ होना, मैथुन-कामना के बिना, कृष्ण-महिमा के प्रचार द्वारा, संन्यास-जीवन के शुद्धीकरण के तुल्य है।

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ।
यथा त्यक्तैषणाः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

सर्व-स्वम्—पास की हर वस्तु; जल-दाः—बादल; हित्वा—त्यागकर; विरेजुः—चमकने लगे; शुभ्र—शुद्ध; वर्चसः—अपना तेज; यथा—जिस प्रकार; त्यक्त-एषणाः—समस्त इच्छाओं का परित्याग करनेवाले; शान्ताः—शान्त; मुनयः—मुनिगण; मुक्त-किल्बिषाः—बुरी लालसाओं से मुक्त।

बादल अपना सर्वस्व त्यागकर शुद्ध तेज से उसी तरह चमकने लगे जिस तरह शान्त मुनिगण अपनी समस्त भौतिक इच्छाएँ त्यागने पर पापपूर्ण लालसाओं से मुक्त हो जाते हैं।

तात्पर्य : जब बादल जल से पूरित होते हैं, तो वे श्याम रंग के हो जाते हैं और सूर्य की किरणों को ढक लेते हैं जिस तरह अशुद्ध मनुष्य का भौतिक मन भीतर चमकनेवाली आत्मा को ढक लेता है। किन्तु जब बादल अपना जल बरसाकर सफेद पड़ जाते हैं तब वे चमकीली सूर्य की किरणों को प्रतिबिम्बित करते हैं जिस तरह कि भौतिक इच्छाओं तथा पापपूर्ण लालसाओं को त्याग देनेवाला व्यक्ति शुद्ध बन जाता है और तब वह अपनी आत्मा तथा अन्तस्थ परमात्मा को अच्छी तरह प्रतिबिम्बित करता है।

गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् ।
यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

गिरयः—पर्वतों ने; मुमुचुः—मुक्त किया; तोयम्—अपना जल; क्वचित्—कभी कभी; न मुमुचुः—नहीं मुक्त किया; शिवम्—शुद्ध; यथा—जिस तरह; ज्ञान—दिव्य ज्ञान रूपी; अमृतम्—अमृत; काले—उपयुक्त समय पर; ज्ञानिनः—ज्ञानी लोग; ददते—प्रदान करते हैं; न वा—अथवा नहीं।

इस ऋतु में पर्वत कभी तो अपना शुद्ध जल मुक्त करते थे और कभी नहीं करते थे जिस तरह कि दिव्य विज्ञान में पटु लोग कभी तो दिव्य ज्ञान रूपी अमृत प्रदान करते हैं और कभी कभी नहीं करते।

तात्पर्य : इस अध्याय के प्रथम भाग में वर्षा ऋतु का वर्णन हुआ है और दूसरे भाग में वर्षा के बाद आनेवाली शरद ऋतु का। वर्षा ऋतु में पर्वतों से जल सदैव बहता रहता है किन्तु शरद ऋतु में कभी बहता है और कभी नहीं भी बहता। इसी तरह महान् सन्त उपदेशक कभी तो आध्यात्मिक ज्ञान के विषय में विस्तार से बतलाते हैं और कभी कभी मौन रहते हैं। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति परमात्मा के

निकट सम्पर्क में रहता है, अतः परमात्मा की इच्छानुसार पटु आध्यात्मिक विज्ञानी परिस्थिति-विशेष को देखते हुए परब्रह्म के विषय में बातें कर भी सकते हैं और नहीं भी कर सकते।

नैवाविदन्क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः ।
यथायुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अविदन्—जान पाये; क्षीयमाणम्—कम होते हुए; जलम्—जल को; गाध-जले—छिछले जल में; चराः—गति करनेवाले; यथा—जिस तरह; आयुः—उनकी आयु; अनु-अहम्—प्रतिदिन; क्षय्यम्—घटती हुई; नराः—लोग; मूढाः—मूर्ख; कुटुम्बिनः—परिवार के सदस्यों के साथ रहते हुए।

अत्यन्त छिछले जल में तैरनेवाली मछलियाँ यह नहीं जान पाईं कि जल घट रहा है, जिस तरह कि परिवार के मूर्ख लोग यह नहीं देख पाते कि हर दिन के बीतने पर उनकी बाकी आयु किस तरह क्षीण होती जा रही है।

तात्पर्य : वर्षा ऋतु के बाद जल क्रमशः घटता जाता है किन्तु बेखबर मछलियाँ इसे नहीं समझ पातीं अतः वे झील तथा नदियों के तट पर प्रायः भटक जाती हैं। इसी तरह गृहस्थ जीवन में व्यस्त रहनेवाले लोग यह नहीं समझ पाते कि उनकी बाकी आयु निरन्तर घटती जा रही है। इस तरह वे अपनी कृष्णभक्ति पूरी नहीं कर पाते और जन्म-मृत्यु के चक्कर में भटक जाते हैं।

गाधवारिचरास्तापमविन्दञ्छरदर्कजम् ।
यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥ ३८॥

शब्दार्थ

गाध-वारि-चराः—छिछले जल में घूमनेवाली; तापम्—कष्ट; अविन्दन्—अनुभव किया; शरत्-अर्क-जम्—शरद ऋतु के सूर्य के कारण; यथा—जिस तरह; दरिद्रः—निर्धन व्यक्ति; कृपणः—कंजूस; कुटुम्बी—पारिवारिक जीवन में मग्न; अविजित-इन्द्रियः—इन्द्रियों पर संयम न करनेवाला।

जिस प्रकार कंजूस तथा निर्धन कुटुम्बी अपनी इन्द्रियों को वश में न रखने के कारण कष्ट पाता है उसी तरह छिछले जल में तैरनेवाली मछलियों को शरदकालीन सूर्य का ताप सहना पड़ता है।

तात्पर्य : पिछले श्लोक के अनुसार यद्यपि बेखबर मछलियों को जल घटने का कोई पता नहीं चल पाता, किन्तु यह सोचा जा सकता है कि तब भी ये मछलियाँ सुखी होंगी क्योंकि कहावत है "अज्ञान वरदान होता है।" किन्तु अज्ञानी मछलियाँ भी शरदकालीन सूर्य के ताप से झुलसने लगती हैं।

इसी तरह भले ही कोई आसक्त कुटुम्बी आध्यात्मिक जीवन के प्रति अपने अज्ञान को वरदान माने किन्तु पारिवारिक जीवन की समस्याओं से वह सदैव विचलित होता रहता है और उसकी अनियंत्रित इन्द्रियाँ उसे दरअसल वेदना की स्थिति में डाल देती हैं।

शनैः शनैर्जहुः पङ्कं स्थलान्यामं च वीरुधः ।
यथाहंममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

शनैः शनैः—धीरे धीरे; जहुः—त्याग दिया; पङ्कम्—अपना कीचड़; स्थलानि—स्थल के स्थानों ने; आमम्—कच्ची अवस्था में; च—तथा; वीरुधः—पौधे; यथा—जिस तरह; अहम्-ममताम्—अहंभाव तथा ममता को; धीराः—धीर मुनि; शरीर-आदिषु—भौतिक शरीर तथा अन्य बाह्य वस्तुओं पर केन्द्रित; अनात्मसु—आत्मा से सर्वथा पृथक्।

धीरे धीरे स्थल के विभिन्न भागों ने अपनी कीचड़-युक्त अवस्था त्याग दी और पौधे अपनी कच्ची अवस्था से आगे बढ़ गये। यह उसी तरह हुआ जिस तरह कि धीर मुनि अपना अहंभाव तथा ममता त्याग देते हैं। ये वास्तविक आत्मा—अर्थात् भौतिक शरीर तथा इसके उत्पादों से सर्वथा भिन्न वस्तुओं—पर आधृत होते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में आगत *आदिषु* शब्द शरीर के उप-उत्पादों—यथा सन्तान, घर तथा सम्पत्ति—का सूचक है।

निश्चलाम्बुरभूत्तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ।
आत्मन्युपरते सम्यङ्मुनिर्व्युपरतागमः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

निश्चल—जड़; अम्बुः—जल; अभूत्—हो गया; तूष्णीम्—शान्त; समुद्रः—समुद्र; शरत्—शरद ऋतु के; आगमे—आगमन से; आत्मनि—जब आत्मा; उपरते—भौतिक कार्यों से विरक्त; सम्यक्—पूरी तरह; मुनिः—मुनि; व्युपरत—त्यागकर; आगमः—वैदिक मंत्रों का पाठ।

शरद ऋतु के आते ही समुद्र तथा सरोवर शान्त हो गये, उनका जल उस मुनि की तरह शान्त हो गया जो सारे भौतिक कार्यों से विरत हो गया हो और जिसने वैदिक मंत्रों का पाठ बन्द कर दिया हो।

तात्पर्य : मनुष्य भौतिक उन्नति, योगशक्ति तथा निर्विशेष मोक्ष के हेतु सामान्य वैदिक मंत्रों का पाठ करता है। किन्तु जब मुनि निजी इच्छाओं से पूर्णतया मुक्त होता है, तो वह एकमात्र परमेश्वर के दिव्य यश का उच्चारण करता है।

केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन्कर्षका दृढसेतुभिः ।
यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

केदारेभ्यः—जलभरे धान के खेतों से; तु—तथा; अपः—जल; अगृह्णन्—ले लिया; कर्षकाः—कृषकों ने; दृढ—मजबूत; सेतुभिः—बाँधों से; यथा—जिस तरह; प्राणैः—इन्द्रियों से; स्रवत्—बहती हुई; ज्ञानम्—चेतना को; तत्—उन इन्द्रियों के; निरोधेन—संयम से; योगिनः—योगीगण।

जिस तरह योग का अभ्यास करनेवाले अपनी चेतना को क्षुब्ध इन्द्रियों द्वारा बाहर निकलने से रोकने के लिए अपनी इन्द्रियों को कठोर नियंत्रण में रखते हैं उसी तरह किसानों ने अपने धान के खेतों से जल को बहकर बाहर न जाने देने के लिए मजबूत मेंड़ें उठा दीं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : "शरद में किसान अपने खेतों के भीतर का जल बचाने के लिए मजबूत मेड़ें बना देते हैं जिससे खेतों के भीतर का पानी बाहर न जा सके। चूँकि अब नई वर्षा की कोई आशा नहीं रहती अतएव वे खेत में जो भी पानी रहता है उसे बचाना चाहते हैं। इसी तरह जो व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार में वास्तव में बढ़ा-चढ़ा होता है, वह अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित करके अपनी शक्ति की रक्षा करता है। यह सलाह दी जाती है कि पचास वर्ष की आयु होने पर मनुष्य पारिवारिक जीवन से विरक्त हो ले और अपनी शारीरिक शक्ति का उपयोग कृष्णभावनामृत की उन्नति हेतु करे। जब तक मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में करके उन्हें मुकुन्द की दिव्य प्रेमाभक्ति में नहीं लगाता तब तक मोक्ष की कोई सम्भावना नहीं रहती।"

शरदर्कांशुजांस्तापान्भूतानामुडुपोऽहरत् ।
देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

शरत्-अर्क—शरदकालीन सूर्य की; अंशु—किरणों से; जान्—उत्पन्न; तापान्—कष्ट; भूतानाम्—सारे जीवों का; उडुपः—चन्द्रमा ने; अहरत्—हर लिया है; देह—शरीर के साथ; अभिमान-जम्—मिथ्या पहचान पर आधारित; बोधः—ज्ञान; मुकुन्दः—भगवान् कृष्ण ने; व्रज-योषिताम्—वृन्दावन की स्त्रियों के।

शरदकालीन चन्द्रमा ने सूर्य की किरणों से उत्पन्न कष्ट से सभी जीवों को छुटकारा दिला दिया जिस प्रकार कि मनुष्य का ज्ञान उसे अपने भौतिक शरीर से अपनी पहचान करने से उत्पन्न होनेवाले दुख से छुटकारा दिला देता है और जिस तरह भगवान् मुकुन्द वृन्दावन की स्त्रियों को उनके वियोग से उत्पन्न कष्ट से छुटकारा दिला देते हैं।

खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ।
सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

खम्—आकाश; अशोभत—चमकने लगा; निर्मेघम्—बादलों से रहित; शरत्—शरद ऋतु में; विमल—स्वच्छ; तारकम्—तथा तारों से युक्त; सत्त्व-युक्तम्—सात्विक अच्छाई से प्रदत्त; यथा—जिस तरह; चित्तम्—चित्त को; शब्द-ब्रह्म—वैदिक शास्त्र का; अर्थ—तात्पर्य; दर्शनम्—प्रत्यक्ष अनुभव किया जानेवाला।.

बादलों से रहित तथा साफ दिखते तारों से भरा हुआ शरदकालीन आकाश उसी तरह चमकने लगा, जिस प्रकार वैदिक शास्त्रों के तात्पर्य का प्रत्यक्ष अनुभव करनेवाले की आध्यात्मिक चेतना करती है।

तात्पर्य : स्वच्छ तथा तारों से पूरित शरदकालीन आकाश की उपमा भक्त के शुद्ध हृदय से भी दी जा सकती है। आध्यात्मिक प्रकृति सदैव तेजोमय, स्वच्छ तथा आनन्दमय होती है और *वैकुण्ठ* कहलाने वाली यह आध्यात्मिक प्रकृति तुरन्त ही आत्मा की सारी इच्छाओं को तुष्ट कर देती है। कृष्णभावनामृत का यही रहस्य है।

अखण्डमण्डलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ।
यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

अखण्ड—अटूट; मण्डलः—गोला; व्योम्नि—आकाश में; रराज—चमकने लगा; उडु-गणैः—तारों के साथ; शशी—चन्द्रमा; यथा—जिस तरह; यदु-पतिः—यदुवंश के स्वामी; कृष्णः—कृष्ण; वृष्णि-चक्र—वृष्णियों के घेरे से; आवृतः—घिरे; भुवि—पृथ्वी पर।.

पूर्ण चन्द्रमा तारों से घिरकर आकाश में उसी तरह चमकने लगा, जिस तरह यदुवंश के स्वामी श्रीकृष्ण समस्त वृष्णियों से घिरकर पृथ्वी पर सुशोभित हो उठे।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी बतलाते हैं कि वृन्दावन में सदैव पूर्ण चन्द्रमा उदित रहता है और यह पूर्ण चन्द्रमा परब्रह्म श्रीकृष्ण की पूर्ण अभिव्यक्ति के तुल्य है। जब भगवान् कृष्ण इस धरा पर प्रकट थे तो वे वृष्णि वंश के प्रमुख सदस्यों यथा नन्द, उपनन्द, वसुदेव तथा अक्रूर से घिरे हुए होते थे।

आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् ।
जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

आश्लिष्य—आलिंगन करके; सम—समान; शीत-उष्णम्—सर्द तथा गर्म के बीच; प्रसून-वन— पुष्पवन की; मारुतम्—वायु; जनाः—आम जनता; तापम्—कष्ट; जहुः—छोड़ सके; गोप्यः—गोपियाँ; न—नहीं; कृष्ण—कृष्ण द्वारा; हृत—चुराये गये; चेतसः—हृदय वाली।

गोपियों के हृदय कृष्ण द्वारा हर लिये गये थे अतः उनके अतिरिक्त सारे लोग पुष्पों से लदे वन से आनेवाली वायु का आलिंगन करके अपने अपने कष्ट भूल गये। यह वायु न तो गर्म थी, न सर्द।

गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाभवन् ।
अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

गावः—गौवें; मृगाः—मृगियाँ; खगाः—चिड़ियाँ; नार्यः—स्त्रियाँ; पुष्पिण्यः—अपने अपने रजोकाल में; शरदा—शरद के कारण; अभवन्—हो गईं; अन्वीयमानाः—पीछा की गईं; स्व-वृषैः—अपने अपने संगियों द्वारा; फलैः—उत्तम परिणामों से; ईश-क्रियाः—भगवान् की सेवा में सम्पन्न कार्य; इव—सदृश।

शरद ऋतु के प्रभाव से सारी गौवें, मृगियाँ, स्त्रियाँ तथा चिड़ियाँ ऋतुमती हो गईं और मैथुन सुख की खोज में उनके अपने-अपने जोड़े उनका पीछा करने लगे जिस प्रकार भगवान् की सेवा में किये गये कार्य स्वतः सभी प्रकार के लाभप्रद फल देते हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : "शरद ऋतु के आगमन पर सारी गौवें, मृगियाँ, चिड़ियाँ तथा सभी स्त्रियाँ गर्भिणी हो जाती हैं, क्योंकि इस ऋतु में सामान्यतः सबके पति कामेच्छा के वशीभूत हो जाते हैं। यह उसी तरह है जैसे कि भगवान् की कृपा से अध्यात्मवादियों को जीवन-लक्ष्य का वर प्रदान किया जाता है। श्रील रूप गोस्वामी ने *उपदेशामृत* में उपदेश दिया है कि मनुष्य को चाहिए कि अतीव उत्साह, धैर्य तथा संकल्प के साथ भक्ति करे, यम-नियमों का पालन करे, अपने को भौतिक कल्मष से दूर रखे और भक्तों की संगति करे। इन नियमों का पालन करने पर उसे भक्ति का वांछित फल अवश्य प्राप्त होगा। जो मनुष्य धैर्यपूर्वक भक्ति के यम-नियमों का पालन करता है, वह कालक्रम में फल पाता है, जिस तरह पत्नियाँ गर्भ धारण करके वाँछित फल प्राप्त करती हैं।"

उदहृष्यन्वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना ।
राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून्विना नृप ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

उदहृष्यन्—प्रचुर मात्रा में फूल उठे; वारि-जानि—कमल; सूर्य—सूर्य; उत्थाने—उग आने पर; कुमुत्—कुमुदिनी, जो रात में फूलती है; विना—के अतिरिक्त; राज्ञा—राजा की उपस्थिति में; तु—निस्सन्देह; निर्भयाः—निडर; लोकाः—जनता; यथा—जिस तरह; दस्यून्—चोरों के; विना—अतिरिक्त; नृप—हे राजा।

हे राजा परीक्षित, जब शरदकालीन सूर्य उदित हुआ तो रात में फूलनेवाली कुमुदिनी के अतिरिक्त सारे कमल के फूल प्रसन्नतापूर्वक खिल गये जिस तरह कि सशक्त शासक की उपस्थिति में चोरों के अतिरिक्त सारे लोग निर्भय रहते हैं।

पुरग्रामेष्वाग्रयणैरिन्द्रियैश्च महोत्सवैः ।
बभौ भूः पक्वशष्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

पुर—नगरों; ग्रामेषु—तथा ग्रामों में; आग्रयणैः—नवान्न ग्रहण करने के लिए वैदिक यज्ञ सम्पन्न करके; इन्द्रियैः—अन्य (सांसारिक) समारोहों द्वारा; च—तथा; महा-उत्सवैः—बड़े बड़े उत्सवों द्वारा; बभौ—सुशोभित हो उठी; भूः—पृथ्वी; पक्व—पका; शष्य—अन्न से; आढ्या—समृद्ध; कला—भगवान् की अंश रूप; आभ्याम्—उन दोनों (कृष्ण तथा बलराम) के साथ; नितराम्—अत्यधिक; हरेः—भगवान् का।

सभी नगरों तथा ग्रामों में लोगों ने नई फसल के नवान्न का स्वागत और आस्वादन करने के लिए वैदिक अग्नि-यज्ञ करके तथा स्थानीय प्रथा एवं परम्परा का अनुसरण करते हुए अन्य ऐसे ही समारोहों सहित बड़े-बड़े उत्सव मनाए। इस तरह नवान्न से समृद्ध एवं कृष्ण तथा बलराम की उपस्थिति के कारण विशेषतया सुन्दर दिखने वाली पृथ्वी भगवान् के अंश रूप में सुशोभित हो उठी।

तात्पर्य : *अग्रयणै* शब्द विशेष प्रामाणिक वैदिक यज्ञ का द्योतक है और *इन्द्रियै* शब्द लोकोत्सवों का सूचक है, जिनके सांसारिक ध्येय होते हैं।

श्रील प्रभुपाद की टीका इस प्रकार है : ''शरद ऋतु में खेत पके अन्न से पूर्ण हो जाते हैं। उस समय लोग फसल को देखकर प्रमुदित हो जाते हैं और अनेक उत्सव मनाते हैं यथा नवान्न जिसमें भगवान् को नये अन्न की भेंट दी जाती है। नवान्न सर्वप्रथम विभिन्न मन्दिरों के अर्चाविग्रहों को भेंट चढ़ाया जाता है और सभी लोगों को बुलाकर इन नवान्नों से बनाई गई खीर खिलाई जाती है। और भी पूजा की विधियाँ और धार्मिक उत्सव हैं, विशेषतया बंगाल में जहाँ सबसे बड़ा उत्सव दुर्गा-पूजा के नाम से मनाया जाता है।''

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान्प्रपेदिरे ।

वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान्काल आगते ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

वणिक्—**व्यापारीगण**; **मुनि**—**विरक्त साधुगण**; **नृप**—**राजा**; **स्नाताः**—**तथा ब्राह्मण विद्यार्थी**; **निर्गम्य**—**बाहर जाकर**; **अर्थान्**—**अपनी इच्छित वस्तुएँ**; **प्रपेदिरे**—**प्राप्त किया**; **वर्ष**—**वर्षा द्वारा**; **रुद्धाः**—**अवरुद्ध**; **यथा**—**जिस तरह**; **सिद्धाः**—**सिद्धपुरुष**; **स्व-पिण्डान्**—**इच्छित स्वरूपों को**; **काले**—**समय के**; **आगते**—**आने पर**।

व्यापारी, मुनिजन, राजा तथा ब्रह्मचारी विद्यार्थी, जो वर्षा के कारण जहाँ तहाँ अटके पड़े थे अब बाहर जाने और अपने अभीष्ट पदार्थ प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र थे जिस तरह इसी जीवन में सिद्धि प्राप्त व्यक्ति उपयुक्त समय आने पर भौतिक शरीर त्यागकर अपने अपने स्वरूप प्राप्त करते हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : ''वृन्दावन में भगवान् कृष्ण तथा बलराम की उपस्थिति के कारण शरद ऋतु अत्यन्त शोभामयी थी। व्यापारी, राजा तथा बड़े बड़े ऋषि-मुनि इच्छित फल प्राप्त करने के लिए बाहर जाने के लिए स्वतंत्र थे। इसी तरह अध्यात्मवादियों ने भी इस देहरूपी बन्धन से मुक्त हो जाने पर अभीष्ट प्राप्त किया। वर्षा ऋतु में व्यापारी वर्ग एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा नहीं कर सकता अत: उसे वांछित लाभ की प्राप्ति नहीं हो पाती। न ही राजन्य वर्ग एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करके जनता से कर वसूल कर सकता है। यहाँ तक कि साधुगण भी, जिन्हें दिव्य ज्ञान के प्रचार हेतु यात्रा करनी होती है, वर्षा ऋतु के कारण रुके रहते हैं। किन्तु शरद ऋतु में ये सभी अपने अपने आवास छोड़ देते हैं। अध्यात्मवादी चाहे वह ज्ञानी हो, या योगी अथवा भक्त, भौतिक शरीर होने से आध्यात्मिक लाभ का वास्तव में भोग नहीं कर पाता। किन्तु ज्योंही वह शरीर त्याग देता है अर्थात् मरणोपरान्त ज्ञानी ब्रह्मतेज में लीन हो जाता है, योगी उच्च लोकों में चला जाता है और भक्त भगवान् के निजधाम गोलोक वृन्दावन या वैकुण्ठ चला जाता है और इस तरह नित्य आध्यात्मिक जीवन का भोग करता है।''

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''वृन्दावन में वर्षा तथा शरद ऋतुएँ'' नामक बीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter इक्कीस

गोपियों द्वारा कृष्ण के वेणुगीत की सराहना

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस प्रकार शरद ऋतु के आते ही कृष्ण ने वृन्दावन के मनोहर जंगल में प्रवेश किया और किस तरह उनकी बाँसुरी की ध्वनि सुनकर गोपियों ने प्रशंसा की।

ज्योंही भगवान् कृष्ण, भगवान् बलराम तथा उनके ग्वालसखा गौवें चराने के लिए जंगल में प्रविष्ट हुए, कृष्ण ने अपनी बाँसुरी बजानी प्रारम्भ कर दी। गोपियों ने जब यह मोहक वेणुगीत सुना तो वे समझ गईं कि कृष्ण जंगल में प्रवेश कर रहे हैं। तब उन्होंने कृष्ण की विविध लीलाओं का एक-दूसरे से बखान किया।

गोपियों ने कहा, ''गौवों को चरागाह ले जाते समय कृष्ण को वंशी बजाते देखना आँखों की सर्वोच्च सिद्धि है। इस वंशी ने ऐसे कौन-से पुण्यकर्म किए हैं जिससे यह श्रीकृष्ण के अधरों का खुलकर अमृत-पान कर सकती है—यह वरदान हम गोपिकाओं को मिल पाना कितना कठिन है? कृष्ण की वंशी सुनकर मोर नाचने लगते हैं और इन्हें नाचते देखकर अन्य सारे प्राणी स्तम्भित रह जाते हैं। अपने अपने विमानों में आकाश-मार्ग से यात्रा करनेवाली देवियाँ कामदेव से पीड़ित हो जातीं हैं और उनके वस्त्र शिथिल होने लगते हैं। इस वेणुगीत के अमृत को पीकर गौवों के कान खड़े हो जाते हैं, उनके बछड़े स्तम्भित खड़े रहते हैं और उनकी माताओं के थनों से पिया जा रहा दूध उनके मुख में ही रह जाता है। चिड़ियाँ ध्यानपूर्वक कृष्ण की बाँसुरी का गीत सुनती हुईं अपनी आँखें बन्द करके वृक्षों की टहनियों में शरण ले लेतीं हैं। प्रवहमान नदियाँ कृष्ण के प्रति माधुर्य आकर्षण से विचलित होकर अपना बहना बन्द करके अपनी लहरों रूपी हाथों से कृष्ण के चरणों का आलिंगन करने लगतीं हैं और बादल तो कृष्ण के सिर को धूप से बचाने के लिए छातों का काम करते हैं। शबर कन्याएँ भगवान् के चरणकमलों को अलंकृत करनेवाले लाल कुंकुम से रंजित घास को देखकर उसे सिन्दूर के बहाने अपने वक्षस्थलों तथा मुखों पर मलतीं हैं जिससे कामदेव द्वारा उत्पन्न उनके कष्ट दूर हो जाँय। गोवर्धन पर्वत भगवान् कृष्ण की पूजा हेतु दूब तथा विविध प्रकार के फल एवं कन्दमूल प्रदान करता है। सारे अचर प्राणी चरों के लक्षण प्रदर्शित करने लगे हैं और चर अचर बन गये हैं। ये सारी बातें अत्यन्त अद्‌भुत हैं।''

श्रीशुक उवाच

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ।

न्यविशद्वायुना वातं स गोगोपालकोऽच्युतः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस प्रकार से; शरत्—शरद ऋतु का; स्वच्छ—साफ; जलम्—जलयुक्त; पद्म-आकर—कमलपुष्पों से लदे सरोवर से; सु-गन्धिना—मीठी गंध से; न्यविशत्—प्रवेश किया; वायुना—वायु द्वारा; वातम्—चलायमान्; स—सहित; गो—गौवें; गोपालकः—तथा ग्वालबाल; अच्युतः—अच्युत भगवान् ने।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह वृन्दावन का जंगल स्वच्छ शारदीय जलाशयों से पूरित था और स्वच्छ जलाशयों में खिले कमल पुष्पों की सुगंधवाली वायु से शीतल था। अपनी गौवों तथा ग्वालसखाओं समेत अच्युत भगवान् ने उस जंगल में प्रवेश किया।

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्ग-
द्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम् ।
मधुपतिरवगाह्य चारयन्गाः
सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

कुसुमित—पुष्पित; वन-राजि—वृक्षों के समूहों में; शुष्मि—उन्मत्त; भृङ्ग—भौंरे; द्विज—पक्षी; कुल—तथा समूह; घुष्ट—गुंजार करते; सरः—जलाशय; सरित्—नदियाँ; महीध्रम्—तथा पर्वत; मधु-पतिः—मधु के स्वामी (कृष्ण); अवगाह्य—प्रवेश करके; चारयन्—चराते हुए; गाः—गौवें; सह-पशु-पाल-बलः—ग्वालबालों तथा बलराम के संग; चुकूज—बजाया; वेणुम्—अपनी वंशी को।

वृन्दावन के सरोवर, नदियाँ तथा पर्वत पुष्पित वृक्षों पर मँडराते उन्मत्त भौंरों तथा पक्षियों के समूहों से गुंजरित हो रहे थे। मधुपति (श्रीकृष्ण) ने ग्वालबालों तथा बलराम के संग उस जंगल में प्रवेश किया और गौवें चराते हुए वे अपनी वंशी बजाने लगे।

तात्पर्य : *चुकूज वेणुम्* शब्दों से यह ध्वनित होता है कि कृष्ण ने बड़ी ही कुशलतापूर्वक अपनी वंशी की ध्वनि तथा वृन्दावन के रंगबिरंगे पक्षियों के कलकूजन को मिला-जुला रखा था। इस तरह आकर्षक दैवी ध्वनि उत्पन्न हो रही थी।

तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ।
काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तत्—उस; व्रज-स्त्रियः—ग्वालों के गाँव की स्त्रियाँ; आश्रुत्य—सुनकर; वेणु-गीतम्—वंशी का गीत; स्मर-उदयम्—कामदेव को उत्पन्न करनेवाला; काश्चित्—उनमें से कोई; परोक्षम्—एकान्त में; कृष्णस्य—कृष्ण के; स्व-सखीभ्यः—अपनी सखियों से; अन्ववर्णयन्—वर्णन किया।

जब व्रजग्राम की तरुण स्त्रियों ने कृष्ण की वंशी का गीत सुना, जो काम उत्पन्न करनेवाला था, तो उनमें से कुछ स्त्रियाँ अपनी सखियों से एकान्त में कृष्ण के गुणों का बखान करने लगीं।

तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् ।
नाशकन्स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥ ४॥

शब्दार्थ

तत्—उस; वर्णयितुम्—वर्णन करने के लिए; आरब्धाः—प्रारम्भ करके; स्मरन्त्यः—स्मरण करती; कृष्ण-चेष्टितम्—कृष्ण की चेष्टाओं का; न अशकन्—असमर्थ थीं; स्मर-वेगेन—काम के वेग से; विक्षिप्त—विचलित; मनसः—मन वाली; नृप—हे राजा परीक्षित।

गोपियाँ कृष्ण के विषय में बातें करने लगीं किन्तु जब उन्होंने कृष्ण के कार्यकलापों का स्मरण किया तो हे राजन्, काम ने उनके मनों को विचलित कर दिया जिससे वे कुछ भी न कह पाईं।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधयापूरयन्गोपवृन्दैर्
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥ ५॥

शब्दार्थ

बर्ह—मोरपंख; आपीडम्—उनके सिर के अलंकरण स्वरूप; नट-वर—नर्तकों में श्रेष्ठ; वपुः—दिव्य शरीर; कर्णयोः—कानों में; कर्णिकारम्—कमल जैसा नीला फूल; बिभ्रत्—पहने हुए; वासः—वस्त्र; कनक—सोने जैसा; कपिशम्—पीलाभ; वैजयन्तीम्—वैजयन्ती नामक; च—तथा; मालाम्—माला, हार; रन्ध्रान्—छेद; वेणोः—वंशी के; अधर—होंठों पर; सुधया—अमृत से; आपूरयन्—भरते हुए; गोप-वृन्दैः—ग्वालबालों द्वारा; वृन्दा-अरण्यम्—वृन्दावन की; स्व-पद—अपने चरणकमल के चिह्नों से; रमणम्—मुग्ध करनेवाले, रमणीय; प्राविशत्—प्रवेश किया; गीत—गाया जाता हुआ; कीर्तिः—उनका यश।

अपने सिर पर मोरपंख का आभूषण, अपने कानों में नीले कर्णिकार फूल, स्वर्ण जैसा चमचमाता पीला वस्त्र तथा वैजयन्ती माला धारण किये भगवान् कृष्ण ने सर्वश्रेष्ठ नर्तक का दिव्य रूप प्रदर्शित करते हुए वृन्दावन के वन में प्रवेश करके अपने पदचिन्हों से इसे रमणीक बना दिया। उन्होंने अपने होंठों के अमृत से अपनी वंशी के छेदों को भर दिया और ग्वालबालों ने उनके यश का गान किया।

तात्पर्य : गोपियों ने इस श्लोक में वर्णित कृष्ण के समस्त दिव्य गुणों का स्मरण किया। कृष्ण की वस्त्र धारण करने की कला तथा उनके कानों में लगे सुन्दर नीले फूलों ने गोपियों की प्रेम-माधुरी इच्छाओं को उत्तेजित कर दिया और जब कृष्ण ने अपने होंठों का अमृत अपनी बाँसुरी में उड़ेल दिया तो वे गोपियाँ उनके प्रेम में खो गईं।

इति वेणुरवं राजन्सर्वभूतमनोहरम् ।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; वेणु-रवम्—वंशी की ध्वनि; राजन्—हे राजा परीक्षित; सर्व-भूत—सारे जीवों के; मनः-हरम्—मनों को हरनेवाला; श्रुत्वा—सुनकर; व्रज-स्त्रियः—व्रज ग्राम में खड़ी स्त्रियों ने; सर्वाः—सभी; वर्णयन्त्यः—बखान करने में व्यस्त; अभिरेभिरे—एक-दूसरे का आलिंगन किया।

हे राजन्, जब व्रज की युवतियों ने सभी प्राणियों के मन को मोह लेने वाली कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनी तो वे एक-दूसरे का आलिंगन कर-करके उसका बखान करने लगीं।

तात्पर्य : *इति* शब्द इसका सूचक है कि कृष्ण का स्मरण करके अवाक् हुई गोपियाँ अपनी चेतना वापस पाकर कृष्ण की वंशी की ध्वनि का अत्यंत हर्षपूर्वक बखान करने लगीं। जब कुछ गोपियाँ जोर-जोर से बोलने लगीं तो अन्यों को भी लगा कि उनके हृदयों में भी ऐसा ही आह्लादपूर्ण स्नेह का भाव है, अत: सभी गोपियाँ तरुण कृष्ण के माधुर्य प्रेम से अभिभूत होकर एक-दूसरे का आलिंगन करने लगीं।

श्रीगोप्य ऊचुः
अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनवेणुजुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-गोप्यः ऊचुः—गोपियों ने कहा; अक्षण्वताम्—आँखवालों को; फलम्—फल; इदम्—यह; न—नहीं; परम्—अन्य; विदामः—हम जानती हैं; सख्यः—हे सखियो; पशून्—गौवों को; अनुविवेशयतोः—एक जंगल से दूसरे जंगल में प्रवेश कराकर; वयस्यैः—हमउम्र सखाओं के साथ; वक्त्रम्—मुख; व्रज-ईश—महाराज नन्द के; सुतयोः—दोनों पुत्रों के; अनु-वेणु-जुष्टम्—वंशी से लैस; यैः—जिससे; वा—अथवा; निपीतम्—प्रेरित; अनुरक्त—प्रेममय; कट-अक्ष—तिरछी दृष्टि, चितवन; मोक्षम्—छोड़ते हुए।

गोपियों ने कहा : सखियो, जो आँखें नन्द महाराज के दोनों पुत्रों के सुन्दर मुखमण्डलों का दर्शन करती हैं, वे निश्चय ही भाग्यशाली हैं। ज्योंही वे दोनों अपने मित्रों से घिरकर तथा गौवों को अपने आगे आगे करके जंगल में प्रवेश करते हैं, तो वे अपने मुख में अपनी वंशियाँ धारण करके वृन्दावनवासियों पर प्यार-भरी चितवन से देखते हैं। जो आँखोंवाले हैं उनके लिए हमारी समझ में देखने की इससे बड़ी अन्य कोई वस्तु नहीं है।

तात्पर्य : उपर्युक्त श्रील प्रभुपाद कृत *चैतन्य-चरितामृत* (आदि लीला ४.१५५) से यह उद्धरण

लिया गया है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इसकी टीका इस प्रकार की है : ''गोपियाँ यह कहना चाहती थीं, ''हे सखियो! यदि तुम इस संसार में पारिवारिक जीवन के बन्धनों में ही जकड़ी रही तो तुम्हें देखने को और क्या मिल सकेगा? स्रष्टा ने हमें ये आँखें दी हैं, तो हम सबसे अद्भुत दर्शनीय वस्तु कृष्ण को देखें।''

गोपियों को इस बात का भान था कि उनकी माताएँ या अन्य ज्येष्ठजन उनकी प्रेमपूर्ण बातें सुनकर अनुमति नहीं देंगे। इसलिए उन्होंने कहा—*अक्षण्वतां फलम्* ''कृष्ण का दर्शन करना केवल हमारा ही नहीं अपितु सभी व्यक्तियों का लक्ष्य है।'' दूसरे शब्दों में, गोपियों ने इंगित किया कि जब कृष्ण हरएक के लिए प्रेम के परम लक्ष्य हैं, तो फिर आध्यात्मिक हर्ष में वे क्यों उनसे प्रेम नहीं कर सकतीं?

आचार्यों के अनुसार एक अन्य गोपी ने यह तथा ८ से १९ तक के अन्य श्लोक कहे।

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्ज-
मालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेशौ ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां
रङ्गे यथा नटवरौ क्वच गायमानौ ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

चूत—आम का वृक्ष; प्रवाल—कोंपलों से युक्त; बर्ह—मोरपंख; स्तबक—फूल के गुच्छे; उत्पल—कमल; अब्ज—तथा कुमुदिनियाँ; माला—मालाओं से; अनुपृक्त—स्पर्श किया हुआ; परिधान—उनके वस्त्र; विचित्र—तरह तरह के; वेशौ—वेश में; मध्ये—बीच में; विरेजतुः—वे दोनों सुशोभित थे; अलम्—शान से; पशु-पाल—ग्वालबालों की; गोष्ठ्याम्—गोष्ठी के भीतर; रङ्गे—रंगमंच पर; यथा—जिस तरह; नट-वरौ—दो श्रेष्ठ नर्तक; क्वच—कभी; गायमानौ—गाते हुए।

तरह तरह के आकर्षक परिधानों के ऊपर अपनी मालाएँ डाले और मोरपंख, कमल, कमलिनी, आम की कोंपलों तथा पुष्पकलियों के गुच्छों से अपने को अलंकृत किये हुए कृष्ण तथा बलराम ग्वालबालों की टोली में शोभायमान हो रहे हैं। वे नाटक-मंच पर प्रकट होनेवाले श्रेष्ठ नर्तकों की तरह दिख रहे हैं और कभी कभी वे गाते भी हैं।

तात्पर्य : गोपियाँ कृष्ण की लीलाओं का स्मरण कर करके हर्ष-गीत गाती जा रही थीं। गोपियाँ उस जंगल में जाना चाहती थीं जहाँ कृष्ण लीला कर रहे थे और छिपकर वे लताओं के पत्तों के बीच में से उचक उचककर कृष्ण तथा बलराम के नृत्य तथा सखाओं के साथ उनके गायन को देखना चाहती थीं। यही उनकी आकांक्षा थी किन्तु न जा पाने के कारण वे प्रेम के वशीभूत होकर यह गीत गाने

लगीं।

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु-
र्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथार्यः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—हे गोपियो; किम्—क्या; आचरत्—कर डाला; अयम्—यह; कुशलम्—शुभ कृत्य; स्म—निश्चय ही; वेणुः—बाँसुरी; दामोदर—कृष्ण की; अधर-सुधाम्—होंठ का अमृत; अपि—भी; गोपिकानाम्—गोपियों का; भुङ्क्ते —भोग करता है; स्वयम्—स्वतंत्र रूप से; यत्—जिसके लिए; अवशिष्ट—बचा हुआ; रसम्—केवल स्वाद; ह्रदिन्यः—नदियाँ; हृष्यत्—प्रसन्न होते हुए; त्वचः—जिनके शरीर; अश्रु—आँसू; मुमुचुः—गिरे; तरवः—वृक्ष; यथा—जिस तरह; आर्याः—बाप-दादे।

हे गोपियो, कृष्ण के अधरों का मुक्तरूप अमृतपान करने और हम गोपियों के हेतु जिनके लिए ही वास्तव में यह अमृत है केवल स्वादमात्र छोड़ने के लिए इस वंशी ने कौन-से शुभ-कृत्य किये होंगे। वंशी के बाप-दादे बाँस के वृक्षों ने हर्ष के अश्रु गिराये होंगे। जिस नदी के तट पर यह वृक्ष उत्पन्न हुआ होगा उस मातारूपी नदी ने हर्ष का अनुभव किया होगा; इसीलिए ये खिले हुए कमल के फूल उसके शरीर के रोमों की भाँति खड़े हुए हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *चैतन्य-चरितामृत* (अन्त्य १६.१४०) में इस श्लोक का जो अनुवाद दिया है, उसे ही यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

वास्तव में अपनी सन्तान को भगवान् श्रीकृष्ण की वंशी रूपी उच्च भक्त बना देखकर बाँस के वृक्ष रस बहाकर हर्ष के अश्रु निकालते हैं।

सनातन गोस्वामी ने एक और अर्थ भी दिया है। वृक्ष इसलिए चिल्ला रहे हैं क्योंकि वे कृष्ण के साथ न खेल पाने के कारण दुखी हैं। कोई यह आक्षेप कर सकता है कि वृन्दावन में वृक्षों को किसी ऐसी बात के लिए परिताप नहीं करना चाहिए जिसका मिल पाना असम्भव हो जिस तरह कोई भिक्षुक किसी राजा से मिलने से मना किये जाने पर शोक नहीं करता। किन्तु वृक्ष तो बुद्धिमान मनुष्यों जैसे ही हैं, जो अपना जीवन-लक्ष्य प्राप्त न कर सकने पर दुख उठाते हैं। अतः वृक्ष इसलिए चिख रहे हैं क्योंकि उन्हें कृष्ण के होंठों का अमृत नहीं मिल पा रहा।

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं

यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं
प्रेक्ष्याद्रिसान्ववरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

वृन्दावनम्—**वृन्दावन**; सखि—**हे सखी**; भुवः—**पृथ्वी पर**; वितनोति—**फैलाता है**; कीर्तिम्—**यश को**; यत्—**क्योंकि**; देवकी-सुत—**देवकी-पुत्र के**; पद-अम्बुज—**चरणकमलों से**; लब्ध—**प्राप्त**; लक्ष्मि—**कोष**; गोविन्द-वेणुम्—**गोविन्द की वंशी**; अनु—**सुनने पर**; मत्त—**उम्मत्त**; मयूर—**मोरों का**; नृत्यम्—**जिसमें नृत्य होता है**; प्रेक्ष्य—**देखकर**; अद्रि-सानु—**पर्वतों की चोटियों पर**; अवरत—**स्तम्भित**; अन्य—**दूसरे**; समस्त—**सभी**; सत्त्वम्—**प्राणी**।

हे सखी, देवकी पुत्र कृष्ण के चरणकमलों का कोष पाकर वृन्दावन पृथ्वी की कीर्ति को फैला रहा है। जब मोर गोविन्द की वंशी सुनते हैं, तो वे मस्त होकर नाचने लगते हैं और जब अन्य प्राणी उन्हें पर्वत की चोटी से इस तरह नाचते देखते हैं, तो वे सभी स्तब्ध रह जाते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि चूँकि इस श्लोक में वर्णित कार्यकलाप अन्य किसी जगत में नहीं होते इसलिए यह पृथ्वी अद्वितीय है। वस्तुतः पृथ्वी की कीर्ति अद्‌भुत वृन्दावन द्वारा फैलाई जाती है क्योंकि वह कृष्ण की लीलास्थली है।

देवकी शब्द माता यशोदा का भी द्योतक है जैसाकि *बृहद्-विष्णु पुराण* में कहा गया है—

द्वे नाम्नी नन्दभार्याया यशोदा देवकीति च।

अतः सख्यमभूत् तस्या देवक्या शौरि-जायया॥

"नन्द की पत्नी के दो नाम थे—यशोदा तथा देवकी। इसलिए स्वाभाविक था कि नन्द की पत्नी शौरि (वसुदेव) की पत्नी देवकी से मित्रता करती।"

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *कृष्णलीला* की व्याख्या इस प्रकार की है : "वृन्दावन में मोर कृष्ण से प्रार्थना करते हैं 'हे गोविन्द, हमें नचाइये।' अतः कृष्ण अपनी वंशी बजाते हैं और वे उनके चारों ओर वृत्त बनाकर उनकी तान की लय के साथ नाचते हैं और उनके नृत्य के बीच खड़े होने पर वे भी गाते हैं और नाचते हैं। तब वे मोर जो उनके संगीत से पूरी तरह प्रसन्न हो जाते हैं, कृतज्ञतापूर्वक उन्हें प्रसन्न करने के लिए अपने दिव्य पंख दे देते हैं। कृष्ण प्रसन्नतापूर्वक ये भेंटें स्वीकार करके उन्हें अपने सिर की पगड़ी पर धारण कर लेते हैं। मृग तथा कबूतर भी कृष्ण द्वारा प्रस्तुत आध्यात्मिक मनोरंजन का आस्वादन करते हैं और अच्छी तरह से देख पाने के लिए वे पर्वतों की चोटियों पर एकत्र हो जाते हैं। जब वे इस आह्लादकारी कार्यक्रम का अवलोकन करते हैं, तो आनन्दविभोर हो उठते हैं।"

श्रील सनातन गोस्वामी की टीका है कि वृन्दावन में कृष्ण नंगे पाँव चलते हैं अत: पृथ्वी पर उनके चरणकमलों के सीधे चिह्न बन जाते हैं अत: वह दिव्य स्थल उस वैकुण्ठ से भी अधिक यशस्वी है जहाँ विष्णु खड़ाऊँ पहनते हैं।

धन्या: स्म मूढगतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेशम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसारा:
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकै: ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

धन्या:—धन्य; स्म—निश्चय ही; मूढ-गतय:—अज्ञानी पशु योनि में जन्म लेकर; अपि—यद्यपि; हरिण्य:—हिरणी; एता:—ये; या:—जो; नन्द-नन्दनम्—महाराज नन्द के पुत्र को; उपात्त-विचित्र-वेशम्—अत्यन्त आकर्षक वस्त्र पहने; आकर्ण्य—सुनकर; वेणु-रणितम्—उनकी वंशी की ध्वनि; सह-कृष्ण-सारा:—कृष्ण हिरणों (अपने पतियों) के साथ; पूजाम् दधु:—पूजा की; विरचिताम्—सम्पन्न किया; प्रणय-अवलोकै:—अपनी प्रेमपूर्ण चितवनों से।

ये मूर्ख हिरनियाँ धन्य हैं क्योंकि ये नन्द महाराज के पुत्र के निकट पहुँच गई हैं, जो खूब सजेधजे हुए हैं और अपनी बाँसुरी बजा रहे हैं। सचमुच ही हिरनी तथा हिरन दोनों ही प्रेम तथा स्नेह-भरी चितवनों से भगवान् की पूजा करते हैं।

तात्पर्य : उपर्युक्त उद्धरण श्रील प्रभुपाद कृत *चैतन्य-चरितामृत* (मध्य १७.३६) से लिया गया है।

आचार्यों के अनुसार गोपियाँ इस प्रकार सोच रही थीं: "हिरनियाँ अपने पतियों के साथ कृष्ण के पास तक पहुँच सकती हैं क्योंकि हिरन के लिए कृष्ण ही स्नेह के परम लक्ष्य हैं। कृष्ण के प्रति स्नेह होने से वे कृष्ण द्वारा अपनी पत्नियों के आकृष्ट होने से प्रोत्साहित होते हैं और अपने गृहस्थ जीवन को धन्य मानते हैं। निस्सन्देह उन्हें यह देखकर प्रसन्नता होती है कि उनकी पत्नियाँ किस तरह कृष्ण की खोज में लगी हैं और वे उनके साथ होकर अपनी पत्नियों से याचना करते हैं कि वे भगवान् के पास चलें। दूसरी ओर हमारे पति हैं, जो कृष्ण से ईर्ष्या करते हैं और उनके प्रति भक्ति का अभाव होने से वे उनकी सुगन्धि से भी भागते हैं। अत: हमारे जीवन का क्या लाभ है?

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविविक्तगीतम् ।
देव्यो विमानगतय: स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्य: ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

कृष्णम्—कृष्ण को; निरीक्ष्य—देखकर; वनिता—स्त्रियों के लिए; उत्सव—उत्सव; रूप—जिसका सौन्दर्य; शीलम्—तथा चरित्र; श्रुत्वा—सुनकर; च—तथा; तत्—उनसे; क्वणित—ध्वनित; वेणु—वंशी का; विविक्त—स्पष्ट; गीतम्—गीत; देव्य:—देवताओं की पत्नियाँ; विमान-गतय:—अपने विमानों में यात्रा करती; स्मर—कामदेव द्वारा; नुन्न—विचलित; सारा:—जिनके हृदय; भ्रश्यत्—बिछलते हुए; प्रसून-कबरा:—केश में बँधे फूल; मुमुहु:—मोहित हो गईं; विनीव्य:—उनकी पेटियाँ (नीवी बन्धन) ढीले पड़ गये।.

कृष्ण का सौन्दर्य तथा शील समस्त स्त्रियों के लिए उत्सव स्वरूप है। देवताओं की पत्नियाँ अपने पतियों के साथ विमानों में उड़ते हुए जब उन्हें देखती हैं और उनके गूँजते हुए वेणुगीत की ध्वनि सुनती हैं, तो उनके हृदय कामदेव द्वारा दहला दिये जाते हैं और वे इतनी मोहित हो जाती हैं कि उनके केशों से फूल गिर जाते हैं और उनकी करधनियाँ (पेटियाँ) ढीली पड़ जाती हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद *भगवान् श्रीकृष्ण* में टीका करते हैं, "[यह श्लोक बतलाता है कि] कृष्ण की वंशी की दिव्य ध्वनि ब्रह्माण्ड के कोने-कोने तक फैल गई। साथ ही, यह महत्त्वपूर्ण बात है कि गोपियाँ आकाश में उड़नेवाले विविध विमानों से परिचित थीं।"

वस्तुत: देवियाँ अपने पति देवताओं की गोद में बैठी हुई भी कृष्ण की वंशी की ध्वनि से उत्तेजित हो उठती थीं। इस तरह गोपियाँ सोचतीं कि उन्हें कृष्ण के प्रति माधुर्य आकर्षण के लिए दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए क्योंकि कृष्ण तो उन्हीं के गाँव का ग्वाला था अतएव उनका प्रेय तो हो ही सकता था। यदि देवियाँ तक कृष्ण के पीछे उन्मत्त हो सकती हैं, तो कृष्ण के ही गाँव की बेचारी पार्थिव गोपिकाएँ भला उनकी प्रेमभरी चितवन तथा उनकी वंशी की ध्वनि से अपने हृदय विजित होने से कैसे रोक सकती थीं?

गोपियाँ यह भी विचार करतीं कि यद्यपि देवतागण अपनी स्त्रियों को कृष्ण के प्रति आकृष्ट होते देखते किन्तु वे ईर्ष्या नहीं करते थे। देवतागण वास्तव में अत्यन्त सुसंस्कृत एवं बुद्धिमान हैं अतएव जब वे विमान से उड़ते तो अपने साथ नियमित रूप से अपनी पत्नियों को ले जाते जिससे वे कृष्ण का दर्शन पा सकें। गोपियाँ सोचतीं, "दूसरी ओर हमारे पति हैं, जो हमसे ईर्ष्या रखते हैं। इसलिए तुच्छ हिरनियाँ तक हमसे अच्छी हैं और देवियाँ तो अत्यन्त भाग्यशालिनी हैं किन्तु हम बेचारी इन दोनों के बीच में होते हुए सर्वाधिक अभागिनी हैं।"

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत-

पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्थु-
गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

गावः—गौवें; च—तथा; कृष्ण-मुख—कृष्ण के मुँह से; निर्गत—निकले; वेणु—वंशी के; गीत—गीत के; पीयूषम्—अमृत को; उत्तभित—ऊँचे उठाये हुए; कर्ण—कानों के; पुटैः—दोनों से; पिबन्त्यः—पीते हुए; शावाः—बछड़े; स्नुत—निकलता हुआ; स्तन—स्तनों से; पयः—दूध; कवलाः—कौर; स्म—निस्सन्देह; तस्थुः—शान्त खड़ी; गोविन्दम्—भगवान् कृष्ण को; आत्मनि—अपने मनों में; दृशा—अपनी दृष्टि से; अश्रु-कलाः—आँसुओं की झड़ी; स्पृशन्त्यः—छूते हुए।

गौवें अपने नलिकारूपी दोनों कानों को उठाये हुए कृष्ण के मुख से निकले वेणुगीत के अमृत का पान कर रही हैं। बछड़े अपनी माताओं के गीले स्तनों से निकले दूध को मुख में भरे-भरे स्थिर खड़े रहते हैं जब वे अपने अश्रुपूरित नेत्रों से गोविन्द को अपने भीतर ले आते हैं और अपने हृदयों में उनका आलिंगन करते हैं।

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुमभुजान्रुचिरप्रवालान्
शृण्वन्ति मीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

प्रायः—लगभग; बत—निश्चय ही; अम्ब—हे माता; विहगाः—पक्षीगण; मुनयः—मुनिगण; वने—जंगल में; अस्मिन्—इस; कृष्ण-ईक्षितम्—कृष्ण का दर्शन करने के लिए; तत्-उदितम्—उनके द्वारा उत्पन्न; कल-वेणु-गीतम्—वंशीवादन से उत्पन्न मधुर ध्वनि; आरुह्य—उठकर; ये—जो; द्रुम-भुजान्—वृक्षों की शाखाओं को; रुचिर-प्रवालान्—सुन्दर लताओं से युक्त; शृण्वन्ति—सुनते हैं; मीलित-दृशः—अपनी आँखें बन्द करके; विगत-अन्य-वाचः—अन्य सारी ध्वनियाँ रोककर।

अरी माई! कृष्ण का दर्शन करने हेतु इस जंगल में सारे पक्षी उड़कर वृक्षों की सुन्दर शाखाओं पर बैठ गये हैं। वे एकान्त में अपनी आँखें मूँदकर उनकी वंशी की मधुर ध्वनि को ही सुन रहे हैं और वे किसी अन्य ध्वनि की ओर आकृष्ट नहीं होते। सचमुच ये पक्षी महामुनियों की कोटि के हैं।

तात्पर्य : पक्षी मुनियों के ही समान हैं क्योंकि वे जंगल में रहते हैं, अपनी आँखें बन्द किये रहते हैं, मौन रहते हैं और अचल रहते हैं। महत्त्व की बात जो यहाँ कही गई है, वह यह है कि बड़े बड़े मुनि तक कृष्ण की वंशी की ध्वनि से उन्मत्त हो जाते हैं क्योंकि यह ध्वनि पूर्णतया आध्यात्मिक है।

रुचिर-प्रवालान् शब्द सूचित करता है कि कृष्ण के वेणुगीत के टकराने से वृक्षों की टहनियाँ तक भावविभोर हो जाती हैं। इन्द्र, ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु आदि देवता होने के कारण ब्रह्माण्ड-भर में

विचरण करते रहते हैं और उन्हें संगीत का विशद ज्ञान होता है फिर भी इन महापुरुषों ने वैसा संगीत नहीं सुना, न रचा जैसाकि कृष्ण की बाँसुरी से निकलता है। निस्सन्देह, सारे पक्षी इस आनन्दमयी ध्वनि से इतने विभोर हो जाते हैं कि वे आनन्द के मारे अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं और वृक्षों की टहनियों से चिपके रहते हैं जिससे गिर न पड़ें।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने व्याख्या की है कि कभी कभी गोपियाँ एक-दूसरे को *अम्ब* ''माई'' कहकर सम्बोधित करती थीं।

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत-
मावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे-
र्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

नद्यः—नदियाँ; तदा—तब; तत्—उसे; उपधार्य—अनुभव करके; मुकुन्द—कृष्ण के; गीतम्—वेणुगीत को; आवर्त—भँवरों से; लक्षित—प्रकट; मनः-भव—अपनी दाम्पत्य इच्छा से; भग्न—टूटी; वेगाः—धाराएँ; आलिङ्गन—उनके आलिंगन से; स्थगितम्—जड़ हुई; ऊर्मि-भुजैः—लहर रूपी भुजाओं से; मुरारेः—मुरारी के; गृह्णन्ति—पकड़ लेती हैं; पाद-युगलम्—दोनों चरणकमल; कमल-उपहाराः—कमल फूलों की भेंटें लेकर।

जब नदियाँ कृष्ण का वेणुगीत सुनती हैं, तो उनके मन उन्हें चाहने लगते हैं जिससे नदियों की धाराओं का प्रवाह खंडित हो जाता है और जल क्षुब्ध हो उठता है और भँवर बनकर घूमने लगता है। तत्पश्चात् नदियाँ अपनी लहरों रूपी भुजाओं से मुरारी के चरणकमलों का आलिंगन करती हैं और उन्हें पकड़कर उनपर कमलपुष्पों की भेंटें चढ़ाती हैं।

तात्पर्य : यमुना तथा मानस-गंगा जैसी पवित्र नदियाँ वेणुगीत से मोहित हो जाती हैं और तरुण कृष्ण के प्रति माधुर्य आकर्षण से विचलित हो उठती हैं। गोपियों के कहने का प्रयोजन यह है कि जब विभिन्न प्रकार के जीव कृष्ण के प्रति माधुर्य प्रेम से अभिभूत हो जाते हैं फिर माधुर्य-सम्बन्ध द्वारा कृष्ण की सेवा करने के निमित्त गोपियों की तीव्र इच्छा के लिए उनकी आलोचना क्यों की जाती है?

दृष्ट्वातपे व्रजपशून्सह रामगोपैः
सञ्चारयन्तमनु वेणुमुदीरयन्तम् ।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः
सख्युर्व्यधात्स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; आतपे—सूर्य की भरी गर्मी में; व्रज-पशून्—व्रज के पालतू पशु; सह—साथ-साथ; राम-गोपैः—बलराम तथा ग्वालों के; सञ्चारयन्तम्—चराते हुए; अनु—बारम्बार; वेणुम्—वंशी; उदीरयन्तम्—तेजी से बजाते हुए; प्रेम—प्रेमवश; प्रवृद्धः—बढ़ा हुआ; उदितः—उठकर; कुसुम-आवलीभिः—फूलों के समूहों से (ओस के कणों से युक्त); सख्युः—अपने मित्रों के लिए; व्यधात्—बनाया; स्व-वपुषा—अपने ही शरीर से; अम्बुदः—बादल ने; आतपत्रम्—छाता।

भगवान् कृष्ण बलराम तथा ग्वालबालों के संग में व्रज के समस्त पशुओं को चराते हुए ग्रीष्म की कड़ी धूप में भी निरन्तर अपनी बाँसुरी बजाते रहते हैं। यह देखकर आकाश के बादल ने प्रेमवश अपने को फैला लिया है। ऊँचे उठकर तथा फूल जैसी असंख्य जल की बूँदों से उसने अपने मित्र के लिए अपने ही शरीर को छाता बना लिया है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* में कहा है, ''कभी कभी शरद की झुलसाती धूप असह्य हो जाती थी अतः कृष्ण तथा बलराम एवं उनके मित्र जब अपनी अपनी वंशी बजाने में व्यस्त रहते तो दयावश उनके ऊपर आकाश में बादल प्रकट हो आते। ये बादल कृष्ण के साथ मैत्री स्थापित करने के लिए उनके सिरों के ऊपर सुखद छाते का काम करते।

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जराग-
श्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन
लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

पूर्णाः—पूर्णतया संतुष्ट; पुलिन्द्यः—शबर जाति की स्त्रियाँ; उरुगाय—भगवान् कृष्ण के; पद-अब्ज—चरणकमलों से; राग—लाल रंग का; श्री-कुङ्कुमेन—दिव्य कुंकुम चूर्ण से; दयिता—अपनी प्रेयसी के; स्तन—वक्षस्थल; मण्डितेन—अलंकृत हुए; तत्—उसके; दर्शन—देखने से; स्मर—कामदेव का; रुजः—कष्ट अनुभव करते हुए; तृण—घास के ऊपर; रूषितेन—अनुरक्त; लिम्पन्त्यः—पोतते हुए; आनन—मुख; कुचेषु—तथा स्तनों पर; जहुः—उन्होंने त्याग दिया; तत्—उस; आधिम्—मानसिक पीड़ा को।

वृन्दावन क्षेत्र की आदिवासी ललनाएँ लाल लाल कुंकुम चूर्ण से अंकित घास को देखकर कामोत्तेजित हो उठती हैं। कृष्ण के चरणकमलों के रंग से प्रदत्त यह चूर्ण मूलतः उनकी प्रेमिकाओं के स्तनों को अलंकृत करता था और जब उसे ही आदिवासी स्त्रियाँ अपने मुखों तथा स्तनों पर मल लेतीं हैं, तो उनकी सब चिंताए जाती रहती हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है : ''मनचली आदिवासी कन्याएँ भी वृन्दावन की उस धूल को जो कृष्ण के चरणकमलों के स्पर्श से लाल रंग की हो गई थी अपने अपने मुखों तथा स्तनों में पोतकर पूर्ण संतुष्ट हो गईं। इन आदिवासी कन्याओं के स्तन

पूर्णविकसित थे और वे अत्यधिक कामुक भी थीं किन्तु जब उनके प्रेमी उनके स्तनों का स्पर्श करते तो वे अधिक संतुष्ट नहीं होती थीं। जब वे जंगल के बीच आईं तो उन्होंने देखा कि जब कृष्ण विचरण कर रहे थे तो वृन्दावन की कुछ पत्तियाँ तथा लताएँ भगवान् के चरणकमलों से गिरे हुए कुंकुम चूर्ण से लाल हो गई थीं। उनके चरणों को गोपियाँ अपने स्तनों पर रखती थीं जिससे वे भी कुंकुम चूर्ण से पुत गये थे किन्तु जब कृष्ण वृन्दावन जंगल में बलराम तथा अपने ग्वालमित्रों के साथ टहल रहे थे तो यह लाल चूर्ण वृन्दावन जंगल की भूमि पर गिर पड़ा। अत: कामुक आदिवासी कन्याओं ने कृष्ण की वंशी सुनने की प्रतीक्षा करते समय भूमि पर लाल कुंकुम देखा तो तुरन्त ही उन्होंने उसे उठाकर अपने अपने मुखों तथा स्तनों पर लेप लिया। इस तरह वे पूर्णतया सन्तुष्ट हो गईं जबकि इसके पूर्व जब उनके प्रेमी उनके स्तनों का स्पर्श करते थे तो वे संतुष्ट नहीं होती थीं। यदि कोई व्यक्ति कृष्णभावनामृत के सम्पर्क में आता है, तो समस्त भौतिक वासनाएँ तुरन्त तुष्ट हो जाती हैं।''

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद्रामकृष्णचरणस्परशप्रमोदः ।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्
पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

हन्त—ओह; अयम्—यह; अद्रिः—पर्वत; अबलाः—हे सखियो; हरि-दास-वर्यः—भगवान् के सेवकों में से सर्वश्रेष्ठ; यत्—चूँकि; राम-कृष्ण-चरण—कृष्ण तथा बलराम के चरणकमलों के; स्परश—स्पर्श से; प्रमोदः—हर्षित; मानम्—आदर; तनोति—प्रदान करता है; सह—साथ; गो-गणयोः—गौवें, बछड़े तथा ग्वालबाल के; तयोः—उन दोनों (श्रीकृष्ण तथा बलराम) को; यत्—क्योंकि; पानीय—पेय जल के साथ; सूयवस—अत्यन्त मुलायम घास; कन्दर—गुफाएँ; कन्द-मूलैः—तथा खाद्य कन्दों से।

यह गोवर्धन पर्वत समस्त भक्तों में सर्वश्रेष्ठ है। सखियो, यह पर्वत कृष्ण तथा बलराम के साथ ही साथ उनकी गौवों, बछड़ों तथा ग्वालबालों की सभी प्रकार की आवश्यकताओं—पीने का पानी, अति मुलायम घास, गुफाएँ, फल, फूल तथा तरकारियों—की पूर्ति करता है। इस तरह यह पर्वत भगवान् का आदर करता है। कृष्ण तथा बलराम के चरणकमलों का स्पर्श पाकर गोवर्धन पर्वत अत्यन्त हर्षित प्रतीत होता है।

तात्पर्य : उपर्युक्त उद्धरण श्रील प्रभुपाद कृत *चैतन्य-चरितामृत* (मध्य १८.३४) से लिया गया है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने गोवर्धन पर्वत के ऐश्वर्य की विवेचना इस प्रकार की है : *पानीय*

गोवर्धन पर्वत के झरनों से प्राप्त सुगंधित शीतल जल का द्योतक है, जिसे कृष्ण तथा बलराम पिया करते थे और जिससे अपने पाँव और मुख धोया करते थे। गोवर्धन पर्वत शहद, आम का रस तथा पीलू रस जैसे अन्य पेय भी प्रदान करता है। *सूयवस दूर्वा* अर्थात् दूब (घास) को बतलाता है, जिससे *अर्घ्य* की धार्मिक भेंट दी जाती है। गोवर्धन पर्वत में घास भी होती है, जो सुगंधित, मुलायम तथा गौवों की वृद्धि एवं उनमें दूध बढ़ाने के लिए लाभप्रद है। इस तरह यह घास आध्यात्मिक पशुओं को खिलाने के काम आती है। *कन्दर* गुफाओं का सूचक है जहाँ कृष्ण, बलराम तथा उनके संगी खेलते, बैठते और लेटते थे। ये गुफायें तब आनन्द देती हैं जब या तो बहुत गर्मी हो, या सर्दी हो या फिर वर्षा हो रही हो। गोवर्धन पर्वत में खाने के मुलायम कन्द, शरीर सजाने के रत्न, बैठने के लिए समतल स्थान तथा चिकने पत्थर, चमकीले जल और अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के रूप में दर्पण तथा दीपक प्रदान करता है।

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार-
वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरुणां
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

गाः—गौवें; गोपकैः—ग्वालबालों के साथ; अनु-वनम्—प्रत्येक जंगल तक; नयतोः—ले जानेवाले; उदार—अत्यन्त उदार; वेणु-स्वनैः—वंशी की ध्वनि से; कल-पदैः—मधुर स्वर से; तनुभृत्सु—जीवों से; सख्यः—हे सखियो; अस्पन्दनम्—स्पन्दन का अभाव; गति-मताम्—गति करनेवाले जीवों का; पुलकः—हर्ष; तरुणम्—वृक्षों का; निर्योग-पाश—गौवों के पिछले पाँवों को बाँधने के लिए प्रयुक्त रस्सी, नोई; कृत-लक्षणयोः—लक्षणों वालों का; विचित्रम्—आश्चर्यजनक।

हे सखियो, जब कृष्ण तथा बलराम अपने ग्वालमित्रों के साथ जंगल से होकर अपनी गौवें लेकर गुजरते हैं, तो वे अपने साथ दूध दोहन के समय गौवों की पिछली टाँगें बाँधने के लिए नोई लिये रहते हैं। जब भगवान् कृष्ण अपनी वंशी बजाते हैं, तो मधुर संगीत से चर प्राणी स्तब्ध रह जाते हैं और अचर वृक्ष आनन्दातिरेक से हिलने लगते हैं। निश्चय ही ये बातें अत्यन्त आश्चर्यजनक हैं।

तात्पर्य : कृष्ण तथा बलराम कभी गौवों की नोइयाँ अपने सिरों में लपेट लेते और कभी कंधों पर लटका लेते। इस तरह वे ग्वालबालों के समस्त उपकरणों से सुशोभित होते थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की व्याख्या है कि कृष्ण तथा बलराम पीताम्बर की नोइयाँ बनाते जिनके दोनों सिरों पर

मोतियों के गुच्छे रहते थे। वे इन रस्सियों को अपने दुपट्टे के चारों ओर लपेट लेते और इस तरह ये रस्सियाँ विचित्र अलंकरण बन जातीं।

एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ।
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

एवम्-विधाः—ऐसा; भगवतः—भगवान् का; याः—जो; वृन्दावन-चारिणः—वृन्दावन के जंगल में घूमनेवाला; वर्णयन्त्यः—वर्णन करती हुई; मिथः—परस्पर; गोप्यः—गोपियों ने; क्रीडाः—लीलाएँ; तत्-मयताम्—उनका भावमय ध्यान; ययुः—प्राप्त किया।

इस तरह वृन्दावन के जंगल में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा विचरण से सम्बन्धित क्रीड़ामयी लीलाओं को एक-दूसरे से कहती हुई गोपियाँ उनके विचारों में पूर्णतया निमग्न हो गईं।

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में श्रील प्रभुपाद की टीका है, ''यह कृष्णभावनामृत का पूर्ण उदाहरण है, जिससे किसी न किसी तरह कृष्ण के विचारों में निमग्न रहा जा सकता है। इसका ज्वलन्त उदाहरण गोपियों के आचरण में उपस्थित होता है इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने घोषित किया कि भगवान् की पूजा करने की सर्वश्रेष्ठ विधि गोपियों की विधि है। गोपियाँ किसी उच्च ब्राह्मण, या क्षत्रिय परिवार में उत्पन्न नहीं हुई थीं। वे वैश्य कुल में उत्पन्न थीं जो कोई बड़ा व्यापारिक वर्ग नहीं था अपितु ग्वालों का परिवार था। वे ठीक से शिक्षित नहीं थीं यद्यपि उन्होंने वैदिक ज्ञान में सिद्ध ब्राह्मणों से सभी प्रकार का ज्ञान सुन रखा था। गोपियों का एकमात्र उद्देश्य कृष्ण के विचारों में सदैव निमग्न रहना था।''

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''गोपियों द्वारा कृष्ण के वेणुगीत की सराहना'' नामक इक्कीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बाईस

कृष्ण द्वारा अविवाहिता गोपियों का चीरहरण

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह ग्वालों की कुमारी पुत्रियों ने श्रीकृष्ण को पति रूप में पाने के लिए कात्यायनी की पूजा की और किस तरह कृष्ण ने इन कुमारियों का वस्त्रहरण किया तथा उन्हें वर दिए।

मार्गशीर्ष मास-भर ग्वालों की कुमारी पुत्रियाँ एक-दूसरे का हाथ पकड़कर कृष्ण का गुणगान करती हुई प्रतिदिन प्रात: यमुना-स्नान करने जाती थीं। कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए वे अगुरु, पुष्प तथा अन्य वस्तुओं से देवी कात्यायनी की पूजा किया करती थीं।

एक दिन ये गोपियाँ सदैव की भाँति तट पर अपने वस्त्र रखकर कृष्ण के कार्यकलाप का गुणगान करती हुई जल-क्रीड़ा करने लगीं। सहसा कृष्ण वहाँ आये और सारे वस्त्र उठाकर पास के कदम्ब वृक्ष पर चढ़ गये। गोपियों को तंग करने की इच्छा से कृष्ण ने कहा, ''मुझे पता है कि तुम लोग अपनी तपस्या से कितनी थक चुकी हो अत: निकलकर तट पर आओ और अपने अपने वस्त्र लो।''

तब गोपियों ने ऐसी मुद्रा बनाई मानो क्रुद्ध हों और कहा कि ''यमुना का ठंडा जल हमें कष्ट दे रहा है। यदि तुम हमारे वस्त्र हमें नहीं लौटाते तो हम इस घटना की सूचना महाराज कंस को देंगी। किन्तु यदि हमारे वस्त्र लौटा देते हो तो हम तुम्हारी दासी की तरह तुम्हारे आदेश का पालन करेंगी।''

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि ''मुझे राजा कंस का तनिक भी डर नहीं है। यदि तुम लोग वास्तव में मेरी आज्ञा मानना चाहती हो और मेरी दासी बनना चाहती हो तो एक-एक करके तट पर आओ और अपने अपने वस्त्र ले लो।'' शीत से कँपकँपाती कन्याएँ अपने गुप्तांगों को दोनों हाथों से ढके हुए जल के बाहर आईं। कृष्ण का उनसे अत्यधिक स्नेह था इसलिए वे फिर बोले, ''तुम लोगों ने व्रत रखते हुए नग्न होकर जल में स्नान करके देवताओं के प्रति अपराध किया है, अत: इसके निराकरण के लिए तुम दोनों हाथ जोड़कर मुझे नमस्कार करो। तभी तुम्हें तपस्या का पूरा फल प्राप्त होगा।''

गोपियाँ श्रीकृष्ण के आदेश को मान गईं और सम्मान में हाथ जोड़कर उनको नमस्कार किया। प्रसन्न होकर उन्होंने उनके वस्त्र लौटा दिये। किन्तु वे कन्याएँ उन पर इतनी अनुरक्त हो चुकी थीं कि वे वहाँ से हट नहीं पा रही थीं। उनके मन की बात समझकर कृष्ण ने कहा कि मैं जानता हूँ कि तुम लोगों ने मुझे पति रूप में पाने के लिए कात्यायनी की पूजा की है। चूँकि गोपियाँ अपना मन उन्हें अर्पित कर चुकी थीं अतएव उनकी इच्छाएँ अब दुबारा भौतिक भोग से रंजित नहीं हो सकतीं जिस तरह भुने जौ से अंकुर नहीं फूट सकते। कृष्ण ने कहा कि अगली शरद ऋतु में तुम्हारी इच्छाएँ पूरी हो सकेंगी।

तत्पश्चात् गोपियाँ पूरी तरह संतुष्ट होकर व्रज लौट गईं और कृष्ण तथा उनके ग्वालमित्र गौवें चराने

दूर चले गये।

कुछ समय बाद जब ग्वालबाल गर्मी की तपन से त्रस्त हो गये तो उन्होंने एक वृक्ष के नीचे शरण ली जो छाते के समान खड़ा था। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि वृक्ष का जीवन सर्वोत्तम है क्योंकि वृक्ष पीड़ा सहते हुए भी धूप, वर्षा, बर्फ इत्यादि से दूसरों की रक्षा करता है। वह अपनी पत्तियों, फूलों, फलों, छाया, जड़ों, छाल, काठ, सुगन्धि, रस, राख, लुगदी, अंकुरों इत्यादि से हरएक की इच्छापूर्ति करता है। ऐसा जीवन आदर्श होता है। कृष्ण ने कहा कि वास्तव में जीवन की पूर्णता इसी में है कि अपने प्राण, सम्पत्ति, बुद्धि तथा वाणी से सबों के कल्याण हेतु कर्म किया जाय।

जब कृष्ण इस तरह वृक्ष की महिमा का वर्णन कर चुके तो उनकी पूरी टोली यमुना के तट पर गई जहाँ ग्वालबालों ने स्वयं मधुर जल पिया और अपनी गौवों को भी पिलाया।

श्रीशुक उवाच
हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकमारिकाः ।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; हेमन्ते—हेमन्त (जाड़े की) ऋतु में; प्रथमे—प्रथम; मासि—महीने में; नन्द-व्रज—नन्द महाराज के ग्वालों का गाँव; कुमारिकाः—अविवाहित लड़कियों ने; चेरुः—सम्पन्न किया; हविष्यम्—बिना मसाले की खिचड़ी; भुञ्जानाः—खाकर; कात्यायनी—देवी कात्यायनी का; अर्चन-व्रतम्—पूजा का व्रत।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हेमन्त ऋतु के पहले मास में गोकुल की अविवाहिता लड़कियों ने कात्यायनी देवी का पूजा-व्रत रखा। पूरे मास उन्होंने बिना मसाले की खिचड़ी खाई।

तात्पर्य : *हेमन्ते* शब्द मार्गशीर्ष मास का सूचक है, जो पाश्चात्य कैलेंडर के अनुसार लगभग मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर तक का समय है। श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* (भाग १, अध्याय २२) में टीका की है कि सर्वप्रथम गोपियों ने *हविष्यान्न* खाया। यह हविष्यान्न एक प्रकार का भोजन है, जो मूँग की दाल तथा चावल को एक साथ पकाकर तैयार किया जाता है, जिसमें हल्दी या कोई मसाला नहीं डाला जाता। वैदिक आदेशानुसार इस तरह का भोजन किसी अनुष्ठान को करने के पूर्व शरीर-शुद्धि हेतु किया जाता है।

आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे

कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ।
गन्धैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः
उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

आप्लुत्य—स्नान करके; अम्भसि—जल में; कालिन्द्याः—यमुना के; जल-अन्ते—नदी के तट पर; च—तथा; उदिते—उदय होने वाले; अरुणे—तड़के; कृत्व—करके; प्रति-कृतिम्—अर्चाविग्रह; देवीम्—देवी; आनर्चुः—पूजा की; नृप—हे राजा परीक्षित; सैकतीम्—मिट्टी की; गन्धैः—चन्दन तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यों से; माल्यैः—मालाओं से; सुरभिभिः—सुगन्धित; बलिभिः—भेंटों से; धूप-दीपकैः—धूप तथा दीपकों से; उच्च-अवचैः—ऐश्वर्यवान तथा सीधीसादी भी; च—तथा; उपहारैः—भेंटों से; प्रवाल—कोंपल; फल—फल; तण्डुलैः—तथा सुपारी से।

हे राजन्, सूर्योदय होते ही यमुना के जल में स्नान करके वे गोपियाँ नदी के तट पर देवी दुर्गा का मिट्टी का अर्चाविग्रह बनातीं। तत्पश्चात् वे चन्दन लेप जैसी सुगन्धित सामग्री और महँगी और साधारण वस्तुओं यथा दीपक, फल, सुपारी, कोंपलों तथा सुगन्धित मालाओं और अगुरु के द्वारा उनकी पूजा करतीं।

तात्पर्य : *बलिभिः* शब्द वस्त्र, आभूषण, भोजन इत्यादि भेंटों का सूचक है।

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ।
इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कमारिकाः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

कात्यायनी—हे देवी कात्यायनी; महा-माये—हे महामाया; महा-योगिनि—हे महायोगिनी; अधीश्वरि—हे शक्तिमान नियंत्रक; नन्द-गोप-सुतम्—महाराज नंद के पुत्र को; देवि—हे देवी; पतिम्—पति; मे—मेरा; कुरु—बना दें; ते—आपको; नमः—नमस्कार; इति—इन शब्दों से; मन्त्रम्—मंत्र; जपन्त्यः—जपती हुई; ताः—उन; पूजाम्—पूजा; चक्रुः—सम्पन्न किया; कुमारिकाः—अविवाहिता लड़कियों ने।

प्रत्येक अविवाहिता लड़की ने निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करते हुए उनकी पूजा की: ''हे देवी कात्यायनी, हे महामाया, हे महायोगिनी, हे अधीश्वरी, आप महाराज नन्द के पुत्र को मेरा पति बना दें। मैं आपको नमस्कार करती हूँ।''

तात्पर्य : विभिन्न आचार्यों के अनुसार इस श्लोक में उल्लिखित देवी दुर्गा मोहमाया नहीं अपितु योगमाया कहलाने वाली अंतरंगा शक्ति हैं। *नारद पञ्चरात्र* में श्रुति तथा विद्या के वार्तालाप में भगवान् की अन्तरंगा शक्ति और बहिरंगा शक्ति एवं मोहमाया तथा योगमाया का अन्तर बताया गया है—

जानात्येकापरा कान्तं सैवा दुर्गा तदात्मिका।

या परा परमा शक्तिर्महाविष्णुस्वरूपिणी॥

यस्या विज्ञानमात्रेण पराणां परमात्मनः।

मुहूर्ताद् देवदेवस्य प्राप्तिर्भवति नान्यथा॥

एकेयं प्रेमसर्वस्वस्वभावा गोकुलेश्वरी।

अनया सुलभो ज्ञेय आदिदेवोऽखिलेश्वरः॥

अस्या आवारिकशक्तिर्महामायाखिलेश्वरी।

यया मुग्धं जगत्सर्वं सर्वे देहाभिमानिनः॥

"भगवान् की अपराशक्ति दुर्गा कहलाती है, जो भगवान् की प्रेमाभक्ति में समर्पित हैं। भगवान् की शक्ति होने के कारण यह अपराशक्ति उनसे अभिन्न है। एक अन्य पराशक्ति है, जिसका आध्यात्मिक स्वरूप साक्षात् भगवान् जैसा ही है। इस पराशक्ति को वैज्ञानिक ढंग से समझ लेने मात्र से सभी आत्माओं के परमात्मा, समस्त ईश्वरों के ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। उन्हें प्राप्त करने की कोई अन्य विधि नहीं है। यह पराशक्ति गोकुलेश्वरी अर्थात् गोकुल की देवी कहलाती है। वे स्वभाव से भगवत्प्रेम में सदैव मग्न रहती हैं और उन्हीं के माध्यम से सभी के स्वामी, आदि ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। इस अन्तरंगा शक्ति की एक आच्छादक शक्ति होती है, जो महामाया कहलाती है। और वही भौतिक जगत पर शासन चलाती है। वास्तव में वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मोहती है, जिसके कारण ब्रह्माण्ड के भीतर का हर प्राणी अपनी पहचान भौतिक शरीर के रूप में करता है।"

उपर्युक्त कथन से यह समझा जा सकता है कि भगवान् की अंतरंगा तथा बहिरंगा अर्थात् परा तथा अपरा शक्तियाँ क्रमशः योगमाया तथा महामाया के रूप में हैं। कभी कभी दुर्गा नाम अन्तरंगा पराशक्ति के द्योतन हेतु प्रयुक्त किया जाता है जैसाकि *पञ्चरात्र* में वर्णित है :"कृष्ण की पूजा के लिए प्रयुक्त किये जानेवाले सारे मंत्रों में अधिष्ठात्री देवी दुर्गा कहलाती है।" इस तरह परब्रह्म कृष्ण की महिमा और पूजा में प्रयुक्त दिव्य ध्वनियों में उस विशिष्ट मंत्र की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा कहलाती है। अतः दुर्गा नाम उस व्यक्तित्व का सूचक है, जो भगवान् की अन्तरंगा शक्ति के रूप में कार्य करता है और *शुद्धसत्त्व* के पद पर होता है। यह अन्तरंगा शक्ति कृष्ण की बहन, एकांशा या सुभद्रा मानी जाती है। वृन्दावन की गोपियाँ इसी दुर्गा की पूजा करती थीं। कई आचार्यों ने इंगित किया है कि सामान्य लोग कभी कभी मोहग्रस्त होकर सोचते हैं कि महामाया तथा दुर्गा नाम भगवान् की बहिरंगा शक्ति के लिए ही प्रयुक्त

होते हैं।

यदि हम यह मान लें कि गोपियाँ बहिरंगा माया की पूजा करती थीं तो इसमें उनका कोई दोष नहीं है क्योंकि कृष्ण की लीलाओं में वे समाज के सामान्य जन की भूमिका निभा रही थीं। इस सम्बन्ध में श्रील प्रभुपाद की टीका है : "वैष्णव लोग सामान्यतया किसी देवता की पूजा नहीं करते। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने शुद्ध भक्ति में अग्रसर होने के इच्छुक व्यक्ति को समस्त देवताओं की पूजा करने से कठोरता से वर्जित किया है। फिर भी गोपियाँ, जिनका कृष्ण-प्रेम अद्वितीय है, दुर्गा की पूजा करती देखी जाती हैं। देवताओं के पूजक भी कभी कभी उल्लेख करते हैं कि गोपियाँ भी देवी दुर्गा की पूजा करती थीं किन्तु हमें गोपियों के उद्देश्य को समझना चाहिए। सामान्यतया लोग किसी भौतिक वर के लिए देवी दुर्गा की पूजा करते हैं। यहाँ तो गोपियाँ कृष्ण को प्रसन्न करने या उनकी सेवा करने के लिए कोई भी साधन अपना सकती थीं। यह गोपियों की सर्वोत्कृष्ट विशिष्टता थी। उन्होंने कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए दुर्गा देवी की पूरे एक मास तक पूजा की। प्रतिदिन वे नन्द महाराज के पुत्र, कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए प्रार्थना करती थीं।"

निष्कर्ष यह निकला कि कृष्ण के निष्ठावान भक्त दिव्य गोपियों में किसी भौतिक गुण के विद्यमान होने की कभी कल्पना नहीं करेंगे क्योंकि गोपियाँ कृष्ण की सर्वोच्च भक्त हैं। उनके समस्त कार्यों का एकमात्र लक्ष्य कृष्ण से प्रेम करना और उन्हें प्रसन्न करना था और यदि हम मूर्खतावश उनके कार्यकलापों को सांसारिक मानते हैं, तो फिर हम कृष्णभावनामृत को कदापि नहीं समझ सकेंगे।

एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ।
भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मासम्—पूरे मास भर; व्रतम्—व्रत; चेरुः—रखा; कुमार्यः—लड़कियों ने; कृष्ण-चेतसः—कृष्ण में लीन मनोंवाली; भद्र-कालीम्—देवी कात्यायनी को; समानर्चुः—ठीक से पूजा; भूयात्—भगवान् करे ऐसा हो; नन्द-सुतः—राजा नन्द का पुत्र; पतिः—मेरा पति।

इस प्रकार उन लड़कियों ने पूरे मास अपना व्रत रखा और अपने मन को कृष्ण में पूर्णतया लीन करते हुए इस विचार पर ध्यान लगाये रखा कि "राजा नन्द का पुत्र मेरा पति बने" इस प्रकार से देवी भद्रकाली की पूजा की।

ऊषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः ।
कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः कालिन्द्यां स्नातुमन्वहम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

ऊषसि—तड़के; उत्थाय—उठकर; गोत्रैः—नामों से; स्वैः—अपने अपने; अन्योन्य—एक-दूसरे का; आबद्ध—पकड़कर; बाहवः—हाथ; कृष्णम्—कृष्ण की महिमा हेतु; उच्चैः—उच्च स्वर से; जगुः—गाने लगतीं; यान्त्यः—जाते हुए; कालिन्द्याम्—यमुना नदी को; स्नातुम्—स्नान करने के लिए; अनु-अहम्—प्रतिदिन।.

प्रतिदिन वे बड़े तड़के उठतीं। एक-दूसरे का नाम ले लेकर वे सब हाथ पकड़कर स्नान के लिए कालिन्दी जाते हुए कृष्ण की महिमा का जोर जोर से गायन करतीं।

नद्याः कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् ।
वासांसि कृष्णं गायन्त्यो विजह्रुः सलिले मुदा ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

नद्याः—नदी के; कदाचित्—एक बार; आगत्य—आकर; तीरे—तट पर; निक्षिप्य—उतारकर; पूर्व-वत्—पहिले जैसा; वासांसि—अपने वस्त्र; कृष्णम्—कृष्ण के विषय में; गायन्त्यः—गाती हुई; विजह्रुः—खेलने लगतीं; सलिले—जल में; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक।.

एक दिन वे नदी के तट पर आईं और पहले की भाँति अपने वस्त्र उतारकर जल में क्रीड़ा करने लगीं और कृष्ण के यश का गान करने लगीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार यह घटना उस दिन की है जब गोपियों ने अपना व्रत पूरा किया और जिस दिन पूर्णमासी थी। अपने व्रत के भलीभाँति पूर्ण होने के उपलक्ष्य में उन्होंने वृषभानु की पुत्री तथा अपनी विशिष्टतः प्रिय राधारानी को अन्य प्रमुख गोपियों समेत आमंत्रित किया और उन सबों को लेकर नदी में स्नान करने आई। उनकी जलक्रीड़ा *अवभृथ स्नान* जैसी थी अर्थात् वह औपचारिक स्नान जो किसी वैदिक यज्ञ के पूरा होने के तुरंत पश्चात् किया जाता है।

श्रील प्रभुपाद ने निम्न प्रकार से टीका की है, "भारतीय लड़कियों तथा स्त्रियों में यह पुरानी प्रथा है कि जब वे नदी में स्नान करती हैं, तो अपने सारे वस्त्र तट पर रख देती हैं और पूरी तरह नग्न होकर जल में डुबकी लगाती हैं। नदी के जिस भाग में वे स्नान करती थीं वहाँ पुरुषों का प्रवेश वर्जित था और यह प्रथा अब भी चालू है। भगवान् ने उन अविवाहिता कन्याओं के मन की बात जानते हुए उन्हें वांछित फल दिया। उन्होंने प्रार्थना की थी कि उन्हें कृष्ण पति रूप में प्राप्त हों और कृष्ण उनकी यह इच्छा पूरी कर देना चाहते थे।"

भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।
वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; तत्—वह; अभिप्रेत्य—देखकर; कृष्णः—श्रीकृष्ण; योग-ईश्वर-ईश्वरः—योगेश्वरों के भी ईश्वर; वयस्यैः—तरुण संगियों द्वारा; आवृतः—घिरे; तत्र—वहाँ; गतः—गये; तत्—उन कन्याओं के; कर्म—अनुष्ठान; सिद्धये—फल के लिए विश्वास दिलाने।

योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवान् कृष्ण इस बात से अवगत थे कि गोपियाँ क्या कर रही हैं अतएव वे अपने समवयस्क संगियों के साथ गोपियों को उनकी साधना का फल देने गये।

तात्पर्य : योगेश्वरों के भी ईश्वर होने के कारण भगवान् कृष्ण आसानी से गोपियों की इच्छाएँ समझ सकते थे और उनकी पूर्ति भी कर सकते थे। सम्मानित कुटुम्बों की तरुणियों की तरह एक तरुण बालक के समक्ष गोपियों का नग्न अवस्था में प्रकट होना अपने प्राण त्यागने की अपेक्षा अधिक लज्जाशील था। फिर भी कृष्ण ने उन्हें जल से बाहर आने और नमस्कार करने के लिए बाध्य कर दिया। यद्यपि गोपियों के शारीरिक अंग पूर्णतया विकसित थे और कृष्ण उनसे एकान्त स्थान में मिले थे तथा उन्हें पूरी तरह से अपने वश में कर लिया था किन्तु उनके मन में भौतिक इच्छा का लेश भी नहीं था क्योंकि भगवान् पूर्णतया दिव्य हैं। भगवान् कृष्ण दिव्य आनन्द के सागर हैं और वे आध्यात्मिक स्तर पर सामान्य काम-भावना से पूर्णतया मुक्त होकर अपने आनन्द को बाँटना चाह रहे थे।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि यहाँ कृष्ण के जिन संगियों का उल्लेख हुआ है वे केवल दो-तीन वर्ष के नन्हे बच्चे थे। वे एकदम नंगे थे और उन्हें स्त्री तथा पुरुष में अन्तर का पता नहीं था। कृष्ण जब गौवें चराने जाते तो वे भी उनके पीछे-पीछे हो लेते क्योंकि वे कृष्ण के बिना नहीं रह सकते थे।

तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः ।
हसद्भिः प्रहसन्बालैः परिहासमुवाच ह ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तासाम्—उन कन्याओं के; वासांसि—वस्त्रों को; उपादाय—लेकर; नीपम्—कदम्ब वृक्ष में; आरुह्य—चढ़कर; सत्वरः—फुर्ती से; हसद्भिः—हँसते हुए; प्रहसन्—स्वयं जोर से हँसते; बालैः—बालकों के साथ; परिहासम्—मजाक में; उवाच ह—कहा।

लड़कियों के वस्त्र उठाकर वे तेजी से कदम्ब वृक्ष की चोटी पर चढ़ गये। तत्पश्चात् जब वे जोर से हँसे तो उनके साथी भी हँस पड़े और उन्होंने उन लड़कियों से ठिठोली करते हुए कहा।

अत्रागत्याबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम् ।
सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद्यूयं व्रतकर्शिताः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अत्र—यहाँ; आगत्य—आकर; अबलाः—हे लड़कियो; कामम्—यदि चाहती हो; स्वम् स्वम्—अपने अपने; वासः—वस्त्र; प्रगृह्यताम्—ले जाओ; सत्यम्—सच; ब्रुवाणि—मैं सच कह रहा हूँ; न—नहीं; उ—प्रत्युत; नर्म—मजाक; यत्—क्योंकि; यूयम्—तुम; व्रत—तपस्या के व्रत से; कर्शिताः—थकी हुई।

[भगवान् कृष्ण ने कहा]: हे लड़कियो, तुम चाहो तो एक एक करके यहाँ आओ और अपने वस्त्र वापस ले जाओ। मैं तुम लोगों से सच कह रहा हूँ। मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि तुम लोग तपस्यापूर्ण व्रत करने से थक गई हो।

न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः ।
एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवेति सुमध्यमाः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

न—कभी नहीं; मया—मेरे द्वारा; उदित—कहा गया; पूर्वम्—इसके पहले; वै—निश्चयपूर्वक; अनृतम्—झूठ; तत्—वह; इमे—ये बालक; विदुः—जानते हैं; एक-एकशः—एक-एक करके; प्रतीच्छध्वम्—(तुम अपने वस्त्र) उठा लो; सह—या सभी मिलकर; एव—निस्सन्देह; इति—इस प्रकार; सु-मध्यमाः—हे क्षीण कटिवाली बालाओ।

मैंने पहले कभी झूठ नहीं बोला और ये बालक इसे जानते हैं। अतएव हे क्षीण कटिवाली बालाओ, या तो एक एक करके या फिर सभी मिलकर इधर आओ और अपने वस्त्र उठा ले जाओ।

तस्य तत्क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः ।
व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योन्यं जातहासा न निर्ययुः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; तत्—वह; क्ष्वेलितम्—मजाकिया व्यवहार; दृष्ट्वा—देखकर; गोप्यः—गोपियाँ; प्रेम-परिप्लुताः—भगवत्प्रेम में पूरी तरह निमग्न; व्रीडिताः—सकुचाई; प्रेक्ष्य—देखकर; च—तथा; अन्योन्यम्—एक-दूसरे को; जात-हासाः—हँसी आने के कारण; न निर्ययुः—नहीं निकलीं।

यह देखकर कि कृष्ण उनसे किस तरह ठिठोली कर रहे हैं, गोपियाँ उनके प्रेम में पूरी तरह निमग्न हो गईं और उलझन में होते हुए भी एक दूसरे की ओर देख-देखकर हँसने तथा परस्पर परिहास करने लगीं। लेकिन तो भी वे जल से बाहर नहीं आईं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है :

गोपियाँ अत्यन्त सम्माननीय परिवार की थीं अतः उन्होंने कृष्ण से तर्क किया होगा "आप हमारे वस्त्रों को नदी के तट पर छोड़कर क्यों नहीं चले जाते?" तब कृष्ण ने उत्तर दिया होगा, "लेकिन तुम

तो अनेक हो अतः तुममें से कुछ लड़कियाँ अन्य लड़कियों के वस्त्र ले सकती हैं।'' गोपियों ने उत्तर दिया होगा, ''हम ईमानदार हैं और कभी कोई चीज नहीं चुरातीं। हम पराये की सम्पत्ति को छूती तक नहीं।'' तब कृष्ण ने कहा होगा, ''यदि ऐसा है, तो बाहर आकर अपने कपड़े ले लो। इसमें कौन सी कठिनाई है ?'' ''जब गोपियों ने कृष्ण के संकल्प को देखा तो वे प्रेम पूरित आनंद से भर गईं। यद्यपि वे सकुचाई थीं किन्तु कृष्ण का ऐसा आकर्षण देखकर अत्यन्त हर्षित थीं। कृष्ण उनसे इस तरह परिहास कर रहे थे मानो वे उनकी पत्नियाँ या प्रेमिकाएँ हों और गोपियाँ तो बस यही चाहती थीं। किन्तु वे सकुचाई थीं कि वे उन्हें नग्न देख जो रहे थे। किन्तु तो भी वे उनके परिहास युक्त शब्दों पर अपनी हँसी नहीं रोक पा रही थीं और वे भी परस्पर मजाक करने लगीं। एक गोपी ने दूसरे से निवेदन किया, ''आगे जाओ, तुम सबसे पहले जाओ और हमें देखने दो कि कृष्ण तुम्हारे साथ क्या कोई चाल चलते हैं। तब फिर हम भी जायेंगी।''

एवं ब्रुवति गोविन्दे नर्मणाक्षिप्तचेतसः ।
आकण्ठमग्नाः शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ॥ १३॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; **ब्रुवति**—बोलते हुए; **गोविन्दे**—गोविन्द; **नर्मणा**—उनके मजाकिये शब्दों से, दिल्लगी से; **आक्षिप्त**—क्षुब्ध; **चेतसः**—मनवाले; **आ-कण्ठ**—गले तक; **मग्नाः**—लीन; **शीत**—ठंडे; **उदे**—जल में; **वेपमानाः**—काँपती; **तम्**—उनसे; **अब्रुवन्**—बोलीं।

जब श्रीगोविन्द इस तरह बोले तो गोपियों के मन उनकी मजाकिया वाणी (परिहास) से पूरी तरह मुग्ध हो गये। वे ठंडे जल में गले तक धँसी रहकर काँपने लगीं। अतः वे उनसे इस तरह बोलीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कृष्ण तथा गोपियों के बीच परिहास का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

कृष्ण : अरी पक्षी जैसी कन्याओ! यदि तुम यहाँ नहीं आओगी तो इन शाखाओं में टँगे वस्त्रों का मैं झूला बनाऊँगा और उसमें लेट जाऊँगा क्योंकि मैं रात-भर जगा हूँ और अब मुझे नींद आ रही है।

गोपियाँ : अरे हमारे प्यारे ग्वाले! तुम्हारी गौवें घास की लालच में गुफा में चली गई हैं। तुम तुरन्त जाकर उन्हें उचित राह पर लाकर चराओ।

कृष्ण : अरी गोपियो! अब तो आओ। तुम्हें जल्दी ही यहाँ से व्रज जाकर अपने घर का काम-

काज करना चाहिए। क्यों अपने माता-पिता तथा अन्य गुरुजनों के लिए सरदर्द बन रही हो?

गोपियाँ : हे प्रिय कृष्ण! हम पूरे मास तक यहाँ से नहीं जायेंगी क्योंकि हम कात्यायनी का यह व्रत अपने माता-पिता तथा गुरुजनों के कहने पर ही कर रही हैं।

कृष्ण : अरी मेरी प्यारी तपस्विनियो! तुम्हें देखकर मेरे मन में भी गृहस्थ जीवन से वैराग्य उत्पन्न हो चुका है। मैं यहाँ एक मास रुककर बादलों में रहने का व्रत पूरा करना चाहता हूँ। यदि तुम लोग मुझपर दया दिखा सको तो मैं नीचे आकर तुम लोगों के साथ उपवास पूरा कर सकता हूँ।

गोपियाँ कृष्ण के मजाकिया शब्दों से पूर्णतया मोहित थीं किन्तु लज्जावश गले तक पानी के भीतर रहती रहीं, वे ठंड से कँपकँपाती इस प्रकार बोलीं।

मानयं भोः कृथास्त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियम् ।
जानीमोऽङ्ग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ॥ १४॥

शब्दार्थ

मा—मत; अनयम्—अनीति, अन्याय; भोः—हे कृष्ण; कृथाः—करो; त्वाम्—तुमको; तु—दूसरी ओर; नन्द-गोप—महाराज नन्द के; सुतम्—पुत्र को; प्रियम्—प्रिय; जानीमः—जानती हैं; अङ्ग—हे प्रिय; व्रज-श्लाघ्यम्—व्रज-भर में विख्यात; देहि—कृपा करके दे दीजिये; वासांसि—हमारे वस्त्र; वेपिताः—कँपकँपा रही हम सबों को।

[गोपियों ने कहा]: हे कृष्ण, अन्यायी मत बनो, हम जानती हैं कि तुम नन्द के माननीय पुत्र हो और व्रज का हर व्यक्ति तुम्हारा सम्मान करता है। हमें भी तुम अत्यन्त प्रिय हो। कृपा करके हमारे वस्त्र लौटा दो। हम ठंडे जल में काँप रही हैं।

श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ।
देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवाम हे ॥ १५॥

शब्दार्थ

श्यामसुन्दर—हे श्यामसुन्दर; ते—तुम्हारी; दास्यः—दासियाँ; करवाम—हम करेंगी; तव—तुम्हारे द्वारा; उदितम्—जो भी कहा जायेगा; देहि—दे दो; वासांसि—हमारे वस्त्र; धर्म-ज्ञ—हे धर्म के ज्ञाता; न—नहीं तो; उ—निस्सन्देह; चेत्—यदि; राज्ञे—राजा से; ब्रुवामः—हम कहेंगी; हे—हे कृष्ण।

हे श्यामसुन्दर, हम तुम्हारी दासियाँ हैं और तुम जो भी कहोगे करेंगी। किन्तु हमारे वस्त्र हमें लौटा दो। तुम धार्मिक नियमों के ज्ञाता हो और तुम यदि हमें हमारे वस्त्र नहीं दोगे, तो हम राजा से कह देंगी। मान जाओ।

श्रीभगवानुवाच
भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ ।
अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छत शुचिस्मिताः ।
नो चेन्नाहं प्रदास्ये किं क्रुद्धो राजा करिष्यति ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; भवत्यः—तुम सब; यदि—यदि; मे—मेरी; दास्यः—दासियाँ; मया—मेरे द्वारा; उक्तम्—कहा गया; वा—अथवा; करिष्यथ—तुम करोगी; अत्र—यहाँ; आगत्य—आकर; स्व-वासांसि—अपने अपने वस्त्र; प्रतीच्छत—चुन लो; शुचि—ताजी; स्मिताः—हँसी; न उ—नहीं तो; चेत्—यदि; न—नहीं; अहम्—मैं; प्रदास्ये—दे दूँगा; किम्—क्या; क्रुद्धः—नाराज; राजा—राजा; करिष्यति—कर लेगा।

भगवान् ने कहा : यदि तुम सचमुच मेरी दासियाँ हो और मैं जो कहता हूँ उसे वास्तव में करोगी तो फिर अपनी अबोध भाव से मुस्कान भरकर यहाँ आओ और अपने अपने वस्त्र चुन लो। यदि तुम मेरे कहने के अनुसार नहीं करोगी तो मैं तुम्हारे वस्त्र वापस नहीं दूँगा। और यदि राजा नाराज भी हो जाये तो वह मेरा क्या बिगाड़ सकता है?

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद टीका करते हैं ''जब गोपियों ने देखा कि कृष्ण दृढ़ एवं अटल बने हुए हैं तब उनके पास उनकी आज्ञापालन करने के सिवाय कोई चारा न था।''

ततो जलाशयात्सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः ।
पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; जल-आशयात्—नदी में से बाहर; सर्वाः—सभी; दारिकाः—युवतियाँ; शीत-वेपिताः—जाड़े से काँपती; पाणिभ्याम्—अपने हाथों से; योनिम्—अपने गुप्त अंग को; आच्छाद्य—ढककर; प्रोत्तेरुः—बाहर आगईं; शीत-कर्शिताः—जाड़े से पीड़ित।

तत्पश्चात् कड़ाके की शीत से काँपती सारी युवतियाँ अपने अपने हाथों से अपने गुप्तांग ढके हुए जल के बाहर निकलीं।

तात्पर्य : गोपियों ने कृष्ण को आश्वस्त किया था कि वे उनकी नित्य दासियाँ हैं और उनका कहना मानने को तैयार हैं अतः वे अपनी ही बातों से हार खा चुकी थीं। उन्होंने सोचा कि यदि वे विलम्ब करती हैं, तो इस बीच अन्य कोई आ सकता है, जो उनके लिए असह्य होगा। गोपियाँ कृष्ण से इतना अधिक प्रेम करती थीं कि इस विषम स्थिति में भी उनके प्रति उनका अनुराग बढ़ता जा रहा था और वे उनके सान्निध्य में रहने के लिए और भी उतावली हो रही थीं। ऐसी विषम परिस्थिति में उन्होंने अपने आपको नदी में डुबो देने का भी विचार नहीं किया।

वे इस निष्कर्ष पर पहुँचीं कि अपनी दुविधा त्यागकर अपने प्रिय कृष्ण के पास जाने के अतिरिक्त उनके पास कोई चारा न था। इस तरह जब गोपियाँ परस्पर आश्वस्त हो लीं कि कोई अन्य विकल्प नहीं है, तो वे कृष्ण से मिलने के लिए जल से निकलकर बाहर आ गईं।

भगवानाहता वीक्ष्य शुद्ध भावप्रसादितः ।
स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान् द्वारा; आहताः—विह्वल; वीक्ष्य—देखकर; शुद्ध—शुद्ध; भाव—स्नेह से; प्रसादितः—संतुष्ट; स्कन्धे—अपने कंधे पर; निधाय—रखकर; वासांसि—उनके वस्त्र; प्रीतः—प्यार से; प्रोवाच—बोले; स-स्मितम्—हँसते हुए।

जब भगवान् ने देखा कि गोपियाँ किस तरह विह्वल हैं, तो वे उनके शुद्ध प्रेम-भाव से संतुष्ट हो गये। उन्होंने अपने कन्धे पर उनके वस्त्र उठा लिए और हँसते हुए उनसे बड़े ही स्नेहपूर्वक बोले।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है, ''गोपियों का सहज सर्मपण इतना शुद्ध था कि कृष्ण तुरन्त ही उनसे प्रसन्न हो उठे। जिन कुमारी गोपियों ने कात्यायनी से कृष्ण को पति रूप में पाने की प्रार्थना की थी इस प्रकार से वे प्रसन्न हो गईं। कोई स्त्री अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी के समक्ष नंगी नहीं हो सकती। कुमारी गोपियों ने कृष्ण को पति रूप में चाहा था और उन्होंने इस प्रकार उनकी इच्छा पूरी कर दी।''

गोपियों जैसी राजसी युवतियों के लिए किसी युवक के समक्ष नग्न खड़ी होना मृत्यु से भी बढ़कर था फिर भी उन्होंने कृष्ण के आनन्द के लिए सब कुछ त्यागने का निश्चय किया। कृष्ण अपने प्रति उनकी प्रेम-शक्ति को देखना चाहते थे और वे उनकी अनन्य भक्ति से पूरी तरह संतुष्ट हो गये।

यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता
व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् ।
बद्ध्वाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेऽंहसः
कृत्वा नमोऽधोवसनं प्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यूयम्—तुम लोगों ने; विवस्त्राः—नंगी; यत्—क्योंकि; अपः—जल में; धृत-व्रताः—वैदिक अनुष्ठान करते हुए; व्यगाहत—स्नान किया; एतत् तत्—यह; उ—निस्सन्देह; देव-हेलनम्—वरुण तथा अन्य देवताओं के प्रतिअपराध; बद्ध्वा अञ्जलिम्—हाथ जोड़कर; मूर्ध्नि—अपने अपने सिरों पर; अपनुत्तये—निराकरण के लिए; अंहसः—अपने अपने पाप कर्म के; कृत्वा नमः—नमस्कार करके; अधः-वसनम्—अपने अपने अधोवस्त्र; प्रगृह्यताम्—वापस लेलो।

[भगवान् कृष्ण ने कहा]: तुम सबों ने अपना व्रत रखते हुए नग्न होकर स्नान किया है, जो कि देवताओं के प्रति अपराध है। अत: अपने पाप के निराकरण के लिए तुम सबों को अपने अपने सिर के ऊपर हाथ जोड़कर नमस्कार करना चाहिए। तभी तुम अपने अधोवस्त्र वापस ले सकती हो।

तात्पर्य : कृष्ण गोपियों को पूर्ण समर्पण करते देखना चाहते थे इसलिए उन्होंने आदेश दिया कि वे अपने सिर के ऊपर हाथ जोड़कर नमस्कार करें। दूसरे शब्दों में, गोपियाँ अपने शरीरों को अब ढक नहीं सकती थीं। हमें मूर्खों की तरह यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् कृष्ण कोई सामान्य कामान्ध युवक थे, जो गोपियों के नग्न सौन्दर्य का आनन्द लूटना चाहते थे। कृष्ण परब्रह्म हैं और वे वृन्दावन की युवती गोपियों की प्रेम-इच्छा को पूरा करना चाहते थे। इस जगत में ऐसी दशा में हम निश्चित रूप से कामुक हो उठते। किन्तु ईश्वर से अपनी तुलना करना घोर अपराध है और इस अपराध के कारण हम कृष्ण के दिव्य पद को नहीं समझ सकेंगे क्योंकि हम उन्हें अपने ही समान बद्ध मान लेंगे। जो परब्रह्म के आनन्द का भोग करना चाहता है उसके लिए कृष्ण के दिव्य दर्शन से वंचित होना एक बड़ी दुर्घटना होगी।

इत्यच्युतेनाभिहितं व्रजाबला
मत्वा विवस्त्राप्लवनं व्रतच्युतिम् ।
तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां
साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग्यतः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

इति—इन शब्दों द्वारा; अच्युतेन—अच्युत भगवान् द्वारा; अभिहितम्—इंगित की गई; व्रज-अबला:—व्रज की युवतियाँ; मत्वा—मानकर; विवस्त्र—नग्न; आप्लवनम्—स्नान; व्रज-च्युतिम्—अपने व्रत से नीचे गिरकर; तत्-पूर्ति—उसकी पूर्ति; कामा:—इच्छुक; तत्—उस; अशेष-कर्मर्णाम्—तथा अन्य अनन्त पुण्य कर्मों को; साक्षात्-कृतम्—प्रत्यक्ष फल के प्रति; नेमु:—नमस्कार किया; अवद्य-मृक्—सभी पापों को दूर करनेवाला; यत:—क्योंकि।

इस तरह वृन्दावन की उन युवतियों ने कृष्ण द्वारा कहे गये वचनों पर विचार करके यह मान लिया कि नदी में नग्न स्नान करने से वे अपने व्रत से पतित हुई हैं। किन्तु तो भी वे अपना व्रत पूरा करना चाहती थीं और चूँकि भगवान् कृष्ण समस्त पुण्य कर्मों के प्रत्यक्ष चरमफल हैं अत: अपने पापों को धो डालने के उद्देश्य से उन्होंने कृष्ण को नमस्कार किया।

तात्पर्य : यहाँ पर कृष्णभावनामृत की दिव्य स्थिति का सुस्पष्ट वर्णन हुआ है। गोपियों ने निश्चय

किया कि अपनी तथाकथित पारिवारिक परम्परा और पारम्परिक नैतिकता को त्यागकर भगवान् कृष्ण की शरण ग्रहण करना श्रेयस्कर है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन अनैतिक कार्यों का समर्थक है। वस्तुत: इस्कान के भक्त संयम तथा सच्चरित्रता के सर्वोच्च मानदण्ड का पालन करते हैं किन्तु उसी के साथ हम कृष्ण की दिव्य स्थिति को मान्यता प्रदान करते हैं। भगवान् कृष्ण ईश्वर हैं अत: उनके मन में युवतियों के साथ भोग-विलास की कोई इच्छा नहीं रहती। जैसाकि इस अध्याय में आगे देखा जायेगा, कृष्ण गोपियों के साथ भोग करने के लिए तनिक भी इच्छुक नहीं थे प्रत्युत वे उनके प्रेम से आकृष्ट थे और उनको तुष्ट करना चाह रहे थे।

सबसे बड़ा अपराध तो भगवान् कृष्ण के कार्यकलापों की नकल करना है। भारत में *प्राकृत सहजियों* का एक वर्ग है, जो कृष्ण के इन कार्यकलापों की नकल करता है और कृष्ण-पूजा के नाम पर नग्न तरुणियों का भोग करना चाहता है। इस्कान आन्दोलन धर्म के इस उपहास का डटकर विरोध करता है क्योंकि मनुष्य के लिए भगवान् का हास्यास्पद अनुकरण सबसे बड़ा अपराध है। इस्कान आन्दोलन में सस्ते अवतारों का अभाव है और इस आन्दोलन का कोई भी भक्त अपने को कृष्ण के पद तक ऊपर नहीं उठा सकता।

पाँच सौ वर्ष पूर्व भगवान् कृष्ण श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए जिन्होंने विद्यार्थी जीवन में कठोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया और २४ वर्ष की आयु में संन्यास ले लिया जो आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत है। चैतन्य महाप्रभु कृष्ण की प्रेमाभक्ति के अपने व्रत को निबाहने के लिए स्त्री-संसर्ग से दृढ़ता के साथ दूर रहते थे। जब ५,००० वर्ष पूर्व कृष्ण स्वयं प्रकट हुए थे तो उन्होंने ये अद्‌भुत लीलाएँ प्रदर्शित की थीं जो हमारे चित्त को आकर्षित करती हैं। हमें चाहिए कि ईश्वर द्वारा सम्पन्न की गई ऐसी लीलाओं के विषय में सुनकर न तो ईर्ष्या करें, न चकित हों। ऐसा हमारे अज्ञान के कारण है क्योंकि यदि हम इन कार्यों को करने का प्रयास करें तो हमारे शरीर कामासक्त हो जायेंगे। किन्तु कृष्ण परब्रह्म हैं इसलिए वे किसी तरह की भौतिक इच्छा से तनिक भी विचलित नहीं होते। इस तरह यह घटना जिसमें गोपियाँ सारी नैतिकता के मानदण्ड को ताक पर रखकर अपने सिर के ऊपर हाथ जोड़कर नमस्कार करके कृष्ण के आदेश का पालन करती हैं शुद्ध भक्ति का उदाहरण है, धार्मिक नियमों की कोई त्रुटि नहीं है।

वस्तुत: गोपियों का समर्पण सर्व धर्म की सिद्धि है जैसाकि श्रील प्रभुपाद *भगवान् श्रीकृष्ण* में बताते हैं ''गोपियाँ सीधीसादी जीव थीं और कृष्ण जो कुछ भी कहते उसे वे सच मानतीं थीं। वरुणदेव के कोप से अपने को बचाने तथा अपने व्रतों की पूर्ति करने और अन्ततोगत्वा अपने आराध्य कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए ही उन्होंने उनके आदेश का तुरन्त पालन किया। इस प्रकार वे कृष्ण की सर्वोच्च प्रेमिकाएँ तथा परम आज्ञाकारिणी सेविकाएँ बन सकीं।

''गोपियों की कृष्णभावना अतुलनीय है। वास्तव में गोपियों को न तो वरुण की, न ही किसी अन्य देवता की परवाह थी, वे केवल कृष्ण को प्रसन्न करना चाहती थीं।''

तास्तथावनता दृष्ट्वा भगवान्देवकीसुतः ।
वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ताः—तब; तथा—इस तरह; अवनताः—सिर झुकाते; दृष्ट्वा—देखकर; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकीपुत्र, कृष्ण ने; वासांसि—वस्त्र; ताभ्यः—उनको; प्रायच्छत्—लौटा दिया; करुणः—दयालु; तेन—उस कार्य से; तोषितः—सन्तुष्ट।

उन्हें इस प्रकार नमस्कार करते देखकर देवकीपुत्र भगवान् ने उनपर करुणा करके तथा उनके कार्य से संतुष्ट होकर उनके वस्त्र लौटा दिये।

दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः
प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ।
वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं
ता नाभ्यसूयन्प्रियसङ्गनिर्वृताः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

दृढम्—बुरी तरह से; प्रलब्धाः—ठगी हुई; त्रपया—अपनी लज्जा से; च—तथा; हापिताः—वंचित; प्रस्तोभिताः—मजाक उड़ाई गई; क्रीडन-वत्—गुड़ियों की तरह; च—तथा; कारिताः—करने के लिए बाध्य की गई; वस्त्राणि—उनके वस्त्र; च—तथा; एव—निस्सन्देह; अपहृतानि—चुराये हुए; अथ अपि—तो भी; अमुम्—उनके प्रति; ताः—वे; न अभ्यसूयन्—शत्रुभाव नहीं लाईं; प्रिय—अपने प्रियतम का; सङ्ग—साथ करने से; निर्वृताः—हर्षित।

यद्यपि गोपियाँ बुरी तरह ठगी जा चुकी थीं, उनके शील-संकोच से उन्हें वंचित किया जा चुका था, उन्हें कठपुतलियों की तरह नचाया गया था और उनका उपहास किया गया था और यद्यपि उनके वस्त्र चुराये गये थे किन्तु उनके मन में श्रीकृष्ण के प्रति रंच-भर भी प्रतिकूल भाव नहीं आया। उल्टे वे अपने प्रियतम के सान्निध्य का यह अवसर पाकर सहज रूप से पुलकित थीं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : ''गोपियों के इस मनोभाव का वर्णन श्री चैतन्य महाप्रभु

द्वारा हुआ है जब वे प्रार्थना करते हैं, 'हे भगवान् कृष्ण! आप चाहे मेरा आलिंगन करें या अपने पैरों के नीचे रौंद डालें या मेरे समक्ष कभी भी उपस्थित न होकर मेरे हृदय को तोड़ दें। आप जो चाहें सो कर सकते हैं क्योंकि आप कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र हैं। किन्तु इतना सब करने पर भी आप सदैव मेरे स्वामी हैं, मेरा कोई दूजा आराध्य नहीं है।' कृष्ण के प्रति गोपियों का यही मनोभाव है।''

परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसङ्गमसज्जिताः ।
गृहीतचित्ता नो चेलुस्तस्मिन्लज्जायितेक्षणाः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

परिधाय—पहनकर; **स्व-वासांसि**—अपने अपने वस्त्र; **प्रेष्ठ**—अपने प्रिय के; **सङ्गम**—इस मिलन से; **सज्जिताः**—उनके प्रति पूरी तरह अनुरक्त हुईं; **गृहीत**—चुराये गये; **चित्ताः**—मनवाली; **न**—नहीं; **उ**—निस्सन्देह; **चेलुः**—हिलडुल सकीं; **तस्मिन्**—उनपर; **लज्जायित**—लज्जा से पूर्ण; **ईक्षणाः**—चितवनें।

गोपियाँ अपने प्रिय कृष्ण से मिलने के लिए आतुर थीं अतएव वे उनके द्वारा मोह ली गईं। इस तरह अपने अपने वस्त्र पहन लेने के बाद भी वे हिलीही नहीं। वे लजाती हुई उन्हीं पर टकटकी लगाये जहाँ की तहाँ खड़ी रहीं।

तात्पर्य : अपने प्रिय मित्र कृष्ण से मिलने से गोपियाँ उनके प्रति और अधिक अनुरक्त हो गईं। जिस तरह कृष्ण ने उनके वस्त्र चुरा लिए थे उसी तरह उन्होंने उनके मन और प्रेम भी हर लिये थे। गोपियों ने इस घटना को इस बात का प्रमाण मान लिया कि कृष्ण भी उनके प्रति अनुरक्त हैं। अन्यथा वे उनसे इस तरह का खिलवाड़ करने का कष्ट क्यों करते? उन्होंने सोचा कि अब कृष्ण हम पर अनुरक्त हैं अतएव उन्होंने लज्जायुक्त निगाहों से उन्हें देखा और भावमय प्रेम की उठान के कारण वे जहाँ पर खड़ी थीं वहाँ से टस से मस न हो सकीं। कृष्ण ने उनकी लज्जा हर ली थी और उन्हें नंगी ही जल से बाहर निकलने के लिए बाध्य कर दिया था किन्तु अब अपने वस्त्रों से सज्जित हो जाने के बाद उनके समक्ष वे पुनः लजा रही थी। वस्तुतः इस घटना से कृष्ण के समक्ष उनमें विनयशीलता बढ़ गई थी। वे नहीं चाहतीं थीं कि कृष्ण उन्हें घूर-घूरकर देखें इसलिए उन्होंने ही भगवान् को देखने के अवसर का सावधानी से उपयोग किया।

तासां विज्ञाय भगवान्स्वपादस्पर्शकाम्यया ।
धृतव्रतानां सङ्कल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥ २४॥

शब्दार्थ

तासाम्—उन; विज्ञाय—जानकर; भगवान्—भगवान् के; स्व-पाद—अपने पाँवों का; स्पर्श—स्पर्श पाने; काम्यया—इच्छा से; धृत-व्रतानाम्—व्रत धारण करने वाली; सङ्कल्पम्—संकल्प; आह—बोले; दामोदरः—भगवान् दामोदर; अबलाः—लड़कियों से।

भगवान् उन गोपियों के द्वारा किये जा रहे कठोर व्रत के संकल्प को समझ गये। वे यह भी जान गये कि ये बालाएँ उनके चरणकमलों का स्पर्श करना चाहती हैं अतः भगवान् दामोदर कृष्ण उनसे इस प्रकार बोले।

सङ्कल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् ।
मयानुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

सङ्कल्पः—संकल्प; विदितः—समझ गया; साध्व्यः—हे सती साध्वी लड़कियो; भवतीनाम्—तुम्हारे; मत्-अर्चनम्—मेरी पूजा; मया—मेरे द्वारा; अनुमोदितः—समर्थित; सः असौ—वह; सत्यः—सच; भवितुम्—होए; अर्हति—अवश्य।

“हे साध्वी लड़कियो, मैं समझ गया कि इस तपस्या के पीछे तुम्हारा असली संकल्प मेरी पूजा करना था। तुम्हारी इस अभिलाषा का मैं अनुमोदन करता हूँ और यह अवश्य ही खरा उतरेगा।

तात्पर्य : जिस प्रकार कृष्ण समस्त अशुद्ध इच्छाओं से मुक्त हैं उसी तरह गोपियाँ भी हैं। अतएव पति रूप में कृष्ण को प्राप्त करने का उनका प्रयास निजी इन्द्रियतृप्ति की कामना से प्रेरित न होकर कृष्ण की सेवा करने और उन्हें प्रसन्न रखने की अपार इच्छा से प्रेरित था। अपने प्रगाढ़ प्रेम के कारण गोपियाँ कृष्ण को ईश्वर के रूप में नहीं अपितु समस्त सृष्टि के सबसे निराले बालक के रूप में देखती थीं। वे सुन्दर युवतियाँ होने के कारण अपने प्रेमभाव से ही उन्हें प्रसन्न करना चाहती थीं। कृष्ण उनकी शुद्ध इच्छा को जान गये थे अतः वे परम तुष्ट थे। भगवान् सामान्य कामवासना से ही तुष्ट होने वाले नहीं हैं किन्तु वृन्दावन की गोपियों की गहन प्रेमाभक्ति से वे अभिभूत हो गये।

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिता क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेशते ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; मयि—मुझमें; आवेशित—लीन; धियाम्—चेतना वाली; कामः—इच्छा; कामाय—भौतिक विषय वासना की ओर; कल्पते—ले जाती है; भर्जिताः—जलाया गया; क्वथिताः—पकाया गया; धानाः—अन्न; प्रायः—अधिकांशतः; बीजाय—नवीन वृद्धि; न इष्यते—उत्पन्न नहीं कर सकते।

जो लोग अपना मन मुझ पर टिका देते हैं उनकी इच्छा उन्हें इन्द्रियतृप्ति की ओर नहीं ले

जाती जिस तरह कि धूप से झुलसे और फिर अग्नि में पकाये गये जौ के बीज नये अंकुर बन कर नहीं उग सकते।

तात्पर्य : यहाँ पर *मय्यावेशितधियाम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कोई भी व्यक्ति भक्ति में उच्च स्थान प्राप्त किये बिना अपना मन तथा बुद्धि कृष्ण पर स्थिर नहीं कर सकता क्योंकि कृष्ण शुद्ध आध्यात्मिक हैं। आत्म-साक्षात्कार निष्काम भाव की स्थिति नहीं है अपितु शुद्ध की गई इच्छा है, जिसमें मनुष्य को एकमात्र कृष्ण के आनन्द की कामना होती है। गोपियाँ कृष्ण के प्रति निश्चित रूप से माधुर्य रस से आकृष्ट थीं फिर भी अपने मन तथा अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को कृष्ण पर स्थिर करने के बावजूद उनके माधुर्य भाव में कभी कोई भौतिक वासना प्रकट नहीं हुई, प्रत्युत वह ब्रह्माण्ड में न दिखने वाला सर्वोच्च भगवत्प्रेम बन गया।

याताबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथा क्षपा: ।
यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सती: ॥ २७॥

शब्दार्थ

यात—अब जाओ; अबला:—हे बालिकाओ; व्रजम्—व्रज; सिद्धा:—इच्छा पूर्ति करके; मया—मेरे साथ; इमा:—ये; रंस्यथ—तुम बिता सकोगी; क्षपा:—रातें; यत्—जो; उद्दिश्य—मन में रखकर; व्रतम्—व्रत; इदम्—यह; चेरु:—तुमने किया है; आर्या—कात्यायनी देवी की; अर्चनम्—पूजा; सती:—शुद्ध होने से।

हे बालाओ, जाओ, अब व्रज लौट जाओ। तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई है क्योंकि तुम आने वाली रातें मेरे साथ बिता सकोगी। हे शुद्ध हृदय वाली गोपियो, देवी कात्यायनी की पूजा करने के पीछे तुम्हारे व्रत का यही तो उद्देश्य था!

श्रीशुक उवाच
इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामा: कुमारिका: ।
ध्यायन्त्यस्तत्पदाम्भोजम्कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्रजम् ॥ २८॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आदिष्टा:—आदेश पाकर; भगवता—भगवान् द्वारा; लब्ध—प्राप्त; कामा:—इच्छाएँ; कुमारिका:—कुमारियाँ; ध्यायन्त्य:—ध्यान करती हुई; तत्—उनके; पद-अम्भोजम्—चरणकमलों को; कृच्छ्रात्—मुश्किल से; निर्विविशु:—लौट आईं; व्रजम्—व्रज ग्राम।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् द्वारा आदेश दिये जाकर अपनी मनोवांछा पूरी करके वे बालाएँ उनके चरणकमलों का ध्यान करती हुईं बड़ी ही मुश्किल से व्रज ग्राम वापस आईं।

तात्पर्य : गोपियों की इच्छा पूरी हो गई थी क्योंकि कृष्ण ने उनका पति बनना स्वीकार कर लिया

था। एक युवती अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष के साथ रात कभी नहीं बिता सकती अत: जब कृष्ण आने वाली शरद ऋतु में उन युवतियों के साथ रात में रास नृत्य करने पर राजी हो गये तो इसका अर्थ यही था कि वे पति रूप में प्रेम का प्रतिदान करना मान चुके हैं।

अथ गोपैः परिवृतो भगवान्देवकीसुतः ।
वृन्दावनाद्गतो दूरं चारयन्गाः सहाग्रजः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

अथ—कुछ समय बाद; गोपैः—ग्वालबालों से; परिवृतः—घिरे हुए; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकीपुत्र; वृन्दावनात्—वृन्दावन से; गतः—गये; दूरम्—दूर; चारयन्—चराते हुए; गाः—गौवें; सह-अग्रजः—अपने भाई बलराम के साथ।.

कुछ काल बाद देवकीपुत्र कृष्ण अपने ग्वालबाल मित्रों से घिरकर तथा अपने बड़े भाई बलराम के संग गौवें चराते हुए वृन्दावन से काफी दूर निकल गये।

तात्पर्य : गोपियों के वस्त्रहरण का वर्णन कर चुकने के बाद शुकदेव गोस्वामी कुछ कर्मकाण्डी ब्राह्मणों की पत्नियों को भगवान् कृष्ण द्वारा वर दिये जाने की भूमिका आरम्भ कर रहे हैं।

निदघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः ।
आतपत्रायितान्वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

निदाघ—गीष्म ऋतु के; अर्क—सूर्य की; आतपे—तपन में; तिग्मे—प्रखर; छयभिः—छाया के साथ; स्वाभिः—अपनी; आत्मनः—अपने लिए; आतपत्रायितान्—छाता के रूप में; वीक्ष्य—देखकर; द्रुमान्—वृक्षों को; अह—कहा; व्रज-ओकसः—व्रज के बालकों से।.

जब सूर्य की तपन प्रखर हो गई तो कृष्ण ने देखा कि सारे वृक्ष मानो उन पर छाया करके छाते का काम कर रहे हैं। तब वे अपने ग्वालमित्रों से इस प्रकार बोले।

हे स्तोककृष्ण हे अंशो श्रीदामन्सुबलार्जुन ।
विशाल वृषभौजस्विन्देवप्रस्थ वरूथप ॥ ३१ ॥
पश्यतैतान्महाभागान्परार्थैकान्तजीवितान् ।
वातवर्षातपहिमान्सहन्तो वारयन्ति नः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

हे स्तोक-कृष्ण—हे स्तोक कृष्ण; हे अंशो—हे अंशु; श्रीदामन् सुबल अर्जुन—हे श्रीदामा, सुबल तथा अर्जुन; विशाल वृषभ ओजस्विन्—हे विशाल, वृषभ तथा ओजस्वी; देवप्रस्थ वरूथप—हे देवप्रस्थ तथा वरूथप; पश्यत—जरा देखो तो; एतान्—इन; महा-भागान्—परम भाग्यशाली; पर-अर्थ—अन्यों के लाभ हेतु; एकान्त—एकान्त भाव से; जीवितान्—जिनका जीवन;

वात—वायु; वर्ष—वर्षा; आतप—सूर्य की तपन; हिमान्—तथा बर्फ (पाला); सहन्तः—सहते हुए; वारयन्ति—दूर रखते हैं; नः—हमारे लिए।

भगवान् कृष्ण ने कहा ''हे स्तोककृष्ण तथा अंशु, हे श्रीदामा, सुबल तथा अर्जुन, हे वृषभ, ओजस्वी, देवप्रस्थ तथा वरूथप, जरा इन भाग्यशाली वृक्षों को तो देखो जिनके जीवन ही अन्यों के लाभ हेतु समर्पित हैं। वे हवा, वर्षा, धूप तथा पाले को सहते हुए भी इन तत्त्वों से हमारी रक्षा करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण पाषाणहृदय कर्मकाण्डी ब्राह्मणों की पत्नियों पर अपनी दया का दान करने की तैयारी कर रहे थे और इन श्लोकों में वे इंगित कर रहे हैं कि अन्यों के कल्याण के लिए समर्पित वृक्ष भी उन ब्राह्मणों से श्रेष्ठ हैं, जो परोपकारी नहीं हैं। निस्सन्देह, कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को इस बात का गम्भीरता से अध्ययन करना चाहिए।

अहो एषां वरं जन्म सर्व प्राण्युपजीवनम् ।
सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह, जरा देखो तो; एषाम्—इन वृक्षों का; वरम्—श्रेष्ठ; जन्म—जन्म; सर्व—समस्त; प्राणि—जीवों के लिए; उपजीविनम्—पालन करने वाले; सु-जनस्य इव—महापुरुषों की भाँति; येषाम्—जिनसे; वै—निश्चय ही; विमुखाः—निराश; यान्ति—चले जाते हैं; न—कभी नहीं; अर्थिनः—कुछ चाहने वाले।

जरा देखो, कि ये वृक्ष किस तरह प्रत्येक प्राणी का भरण कर रहे हैं। इनका जन्म सफल है। इनका आचरण महापुरुषों के तुल्य है क्योंकि वृक्ष से कुछ माँगने वाला कोई भी व्यक्ति कभी निराश नहीं लौटता।

तात्पर्य : उपर्युक्त उद्धरण श्रील प्रभुपाद कृत *चैतन्य चरितामृत* (आदि ९.४६) से लिया गया है।

पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः ।
गन्धनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान्वितन्वते ॥ ३४॥

शब्दार्थ

पत्र—पत्तियाँ; पुष्प—फूल; फल—फल; छाया—छाया; मूल—जड़; वल्कल—छाल; दारुभिः—तथा लकड़ी द्वारा; गन्ध—अपनी सुगन्ध से; निर्यास—रस से; भस्म—राख से; अस्थि—लुगदी से; तोक्मैः—तथा नये नये कल्लों से; कामान्—इच्छित वस्तुएँ; वितन्वते—प्रदान करते हैं।

ये वृक्ष अपनी पत्तियों, फूलों तथा फलों से, अपनी छाया, जड़ों, छाल तथा लकड़ी से तथा अपनी सुगंध, रस, राख, लुगदी और नये नये कल्लों से मनुष्यों की इच्छापूर्ति करते हैं।

एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु ।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेयआचरणं सदा ॥ ३५॥

शब्दार्थ

एतावत्—इस तक; जन्म—जन्म की; साफल्यम्—सफलता, सिद्धि; देहिनाम्—हर प्राणी की; इह—इस जगत में; देहिषु—देहधारियों के प्रति; प्राणैः—प्राण से; अर्थैः—धन से; धिया—बुद्धि से; वाचा—वाणी से; श्रेयः—शाश्वत सौभाग्य; आचरणम्—आचरण करते हुए; सदा—सदैव।

हर प्राणी का कर्तव्य है कि वह अपने प्राण, धन, बुद्धि तथा वाणी से दूसरों के लाभ हेतु कल्याणकारी कर्म करे।

तात्पर्य : उक्त उद्धरण श्रील प्रभुपाद कृत *चैतन्य चरितामृत* (आदि ९.४२) से लिया गया है।

इति प्रवालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः ।
तरूणां नम्रशाखानां मध्यतो यमुनां गतः ॥ ३६॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार कहते हुए; प्रवाल—नई शाखाओं का; स्तबक—गुच्छे से; फल—फल; पुष्प—फूल; दल—तथा पत्तियों की; उत्करैः—अधिकता से; तरूणाम्—वृक्षों की; नम्र—झुकी हुई; शाखानाम्—डालियों के; मध्यतः—बीच में से; यमुनाम्—यमुना नदी तक; गतः—आये।

इस तरह वृक्षों के बीच विचरण करते हुए, जिनकी शाखाएँ कोपलों, फलों, फूलों तथा पत्तियों की बहुलता से झुकी हुई थीं, भगवान् कृष्ण यमुना नदी के तट पर आ गये।

तत्र गाः पाययित्वापः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ।
ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; गाः—गौवों को; पाययित्वा—पानी पिलाकर; अपः—जल; सु-मृष्टाः—अत्यन्त स्वच्छ; शीतलाः—शीतल; शिवाः—स्वास्थ्यप्रद; ततः—तत्पश्चात्; नृप—हे राजा परीक्षित; स्वयम्—अपने से; गोपाः—ग्वालबाल; कामम्—स्वच्छन्दतापूर्वक; स्वादु—स्वादिष्ट; पपुः—पिया; जलम्—जल।

ग्वालों ने गौवों को यमुना नदी का स्वच्छ, शीतल तथा स्वास्थ्यप्रद जल पीने दिया। हे राजा परीक्षित, ग्वालों ने भी जी भरकर उस मधुर जल का पान किया।

तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून्नृप ।
कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रवन् ॥ ३८॥

शब्दार्थ

तस्याः—यमुना के किनारे; उपवने—छोटे जंगल में; कामम्—इच्छानुसार इधर उधर; चारयन्तः—चराते हुए; पशून्—पशुओं को; नृप—हे राजा; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा राम; उपागम्य—निकट जाकर; क्षुत्-आर्ताः—भूख से पीड़ित; इदम्—यह; अब्रुवन्—कहा।

तत्पश्चात् हे राजन्, सारे ग्वालबाल यमुना के तट पर एक छोटे से जंगल में पशुओं को उन्मुक्त ढंग से चराने लगे। किन्तु शीघ्र ही भूख से त्रस्त होकर वे कृष्ण तथा बलराम के निकट जाकर इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि ग्वालबाल चिन्तित थे कि कृष्ण भूखे होंगे अत: उन्होंने अपने भूखे होने का स्वांग रचा जिससे कृष्ण तथा बलराम खाने के लिए समुचित प्रबन्ध करें।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण द्वारा अविवाहिता गोपियों का चीरहरण'' नामक बाइसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वार रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तेईस

ब्राह्मण-पत्नियों को आशीर्वाद

इस अध्याय में इसका वर्णन हुआ है कि ग्वालबालों को भोजन के लिए भिक्षा माँगने के लिए उत्साहित करने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने यज्ञ करने वाले कुछ ब्राह्मणों की पत्नियों पर किस तरह दया दर्शाई और ब्राह्मणों से खेद व्यक्त कराया।

जब ग्वालबालों को अधिक भूख लग गयी तो उन्होंने श्रीकृष्ण से भोजन प्राप्त करने के लिए याचना की। इस पर श्रीकृष्ण ने उन सबों को पास ही यज्ञ कर रहे ब्राह्मणों के एक समूह के पास भोजन माँगने के लिए भेजा। किन्तु इन ब्राह्मणों ने श्रीकृष्ण को कोई सामान्य व्यक्ति समझते हुए बालकों की उपेक्षा कर दी। अत: बालक निराश होकर लौट आये किन्तु भगवान् ने उन्हें यह सलाह देकर फिर से भेजा कि अब वे ब्राह्मणपत्नियों से भोजन माँगें। इन स्त्रियों ने कृष्ण के दिव्य गुणों के विषय में सुन रखा था और उनके प्रति अत्यधिक अनुरक्त थीं। अत: जब उन्होंने यह सुना कि श्रीकृष्ण पास ही हैं, तो वे चार प्रकार के भोजन लेकर फुर्ती से उनके पास गईं। इस तरह उन्होंने अपने आपको श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया।

कृष्ण ने उन स्त्रियों को बतलाया कि कोई भी व्यक्ति मन्दिर में उनके अर्चाविग्रह का दर्शन करके,

उनका ध्यान करके तथा उनके यश का कीर्तन करके उनके प्रति दिव्य प्रेम उत्पन्न कर सकता है। किन्तु यही फल केवल उन्हें अपने समक्ष पाकर प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उन्होंने उन्हें सलाह दी कि गृहिणी होने के कारण उनका यह विशेष कर्तव्य है कि अपने पतियों को यज्ञ करने में सहायता दें। इसलिए उन्होंने उन्हें अपने अपने घर लौट जाने का आदेश दिया।

जब ये स्त्रियाँ लौटकर घर गईं तो उनके ब्राह्मण पतियों को तुरन्त पछतावा हुआ और वे कहने लगे, ''कृष्ण से शत्रुभाव रखने वाले व्यक्ति के तीन जन्म—वीर्यज, ब्राह्म तथा याज्ञिक—निन्दनीय बन जाते हैं। दूसरी ओर ये स्त्रियाँ हैं, जो ब्राह्मण जाति के संस्कारों के बिना या कोई तपस्या अथवा पवित्र अनुष्ठान किये बिना ही कृष्ण-भक्ति के द्वारा आसानी से मृत्यु के बन्धन से छूट गई हैं। चूँकि कृष्ण की सारी इच्छाएँ पूर्ण रहती हैं (आप्तकाम) अतएव भोजन की भीख माँगना तो हम ब्राह्मणों के प्रति केवल उनकी कृपा है। वैदिक यज्ञ के फल ही क्यों पृथ्वी की सारी वस्तुएँ उन्हीं के ऐश्वर्य हैं, तो भी अज्ञानवश हम इस तथ्य को नहीं समझ पाये।''

ऐसा कहकर सभी ब्राह्मणों ने इस आशा के साथ कि उनके अपराध क्षमा हो सकेंगे भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार किया। फिर भी कंस के भय के कारण वे स्वयं चलकर भगवान् का दर्शन करने नहीं गये।

श्रीगोप ऊचुः
राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण ।
एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-गोपाः ऊचुः—ग्वालबालों ने कहा; राम राम—हे राम, हे राम; महा-बाहो—हे बलशाली भुजाओं वाले; कृष्ण—हे कृष्ण; दुष्ट—दुष्ट का; निबर्हण—दलन करने वाले; एषा—यह; वै—निस्सन्देह; बाधते—कष्ट दे रही है; क्षुत्—भूख; नः—हमें; तत्-शान्तिम्—उसकी शान्ति के लिए; कर्तुम् अर्हथः—तुम्हें करना चाहिए।.

ग्वालबालों ने कहा : हे महाबाहु राम, हे दुष्टदलन कृष्ण, हम सब भूख से त्रस्त हैं। इसके लिए आपको कुछ करना चाहिए।

तात्पर्य : ग्वालबालों ने कृष्ण के दुष्टदलन होने का परिहासवश यह अर्थ लगा लिया कि वे उनके खाने का प्रबन्ध करके उनकी भूख शान्त करें। ग्वालों के इस कथन में भगवान् के साथ उनकी प्रेमपूर्ण मैत्री का भाव मिलता है।

श्रीशुक उवाच
इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान्देवकीसुतः ।
भक्ताया विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; विज्ञापितः—सूचित; गोपैः—ग्वालबालों के द्वारा; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकीपुत्र; भक्तायाः—अपने भक्तों को; विप्र-भार्यायाः—ब्राह्मण-पत्नियों को; प्रसीदन्—तुष्ट करने की इच्छा से; इदम्—यह; अब्रवीत्—कहा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : ग्वालबालों द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर देवकीपुत्र भगवान् ने अपने कुछ भक्तों को जो कि ब्राह्मण पत्नियाँ थीं प्रसन्न करने की इच्छा से इस प्रकार उत्तर दिया।

प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
सत्रमाङ्गिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥ ३॥

शब्दार्थ

प्रयात—जाओ; देव-यजनम्—यज्ञशाला तक; ब्राह्मणाः—ब्राह्मणजण; ब्रह्म-वादिनः—वैदिक आदेशों के अनुयायी; सत्रम्—यज्ञ; आङ्गिरसम् नाम—आंगिरस नामक; हि—निस्सन्देह; आसते—इस समय कर रहे हैं; स्वर्ग-काम्यया—स्वर्ग जाने के उद्देश्य से।

[भगवान् कृष्ण ने कहा]: तुम लोग यज्ञशाला में जाओ जहाँ वैदिक आदेशों में निपुण ब्राह्मणों का एक समूह स्वर्ग जाने की इच्छा से इस समय आंगिरस यज्ञ कर रहा है।

तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः ।
कीर्तयन्तो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; गत्वा—जाकर; ओदनम्—भोजन; गोपाः—हे ग्वालबालो; याचत—माँगो; अस्मत्—हमारे द्वारा; विसर्जिताः—भेजे गये; कीर्तयन्तः—घोषित करते हुए; भगवतः—भगवान् का; आर्यस्य—ज्येष्ठ; मम—मेरा; च—भी; अभिधाम्—नाम।

हे ग्वालबालो, तुम वहाँ जाकर कुछ भोजन माँग लाओ। उनसे मेरे बड़े भाई भगवान् बलराम का तथा मेरा भी नाम बतलाना और बताना कि उन्होंने ही हम लोगों को भेजा है।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने अपने मित्रों को प्रोत्साहित किया कि वे बिना किसी चिन्ता के दान के लिए अनुरोध करें। कहीं वे बालक यह अनुभव न करें कि उन्हें ऐसे सम्माननीय ब्राह्मणों के पास स्वयं जाने का अधिकार नहीं है इस दृष्टि से भगवान् ने उनसे कहा कि बलराम तथा कृष्ण के नामों का उल्लेख कर दें जो भगवान् के पवित्र नाम हैं।

इत्यादिष्टा भगवता गत्वा याचन्त ते तथा ।
कृताञ्जलिपुटा विप्रान्दण्डवत्पतिता भुवि ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

इति—इन शब्दों द्वारा; आदिष्टाः—आज्ञा दिये जाकर; भगवता—भगवान् द्वारा; गत्वा—जाकर; अयाचन्त—माँगा; ते—उन्होंने; तथा—उस तरह से; कृत-अञ्जलि-पुटाः—विनम्रतावश दोनों हाथ जोड़कर; विप्रान्—ब्राह्मणों को; दण्ड-वत्—डण्डे के समान; पतिताः—गिरकर; भुवि—भूमि पर।

भगवान् से यह आदेश पाकर ग्वालबालों ने वहाँ जाकर निवेदन किया। वे ब्राह्मणों के समक्ष विनयपूर्वक हाथ जोड़कर खड़े रहे और फिर भूमि पर लेटकर उन्हें नमस्कार किया।

हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः ।
प्राप्ताञ्जानीत भद्रं वो गोपान्नो रामचोदितान् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

हे भूमि-देवाः—हे पृथ्वी के देवताओ; शृणुत—सुनिये; कृष्णस्य आदेश—कृष्ण का आदेश; कारिणः—कार्यरूप में परिणत करने वाले; प्राप्तान्—आये हुए; जानीत—जानिये; भद्रम्—कल्याण हो; वः—तुम सबों का; गोपान्—ग्वालबालों को; नः—हम; राम-चोदितान्—राम द्वारा भेजे गये।

[ग्वालबालों ने कहा]: हे पृथ्वी के देवताओ, कृपया हमारी बात सुनें। हम ग्वालबाल कृष्ण का आदेश लेकर आये हैं और हमें बलराम ने यहाँ भेजा है। हम आपका कल्याण चाहते हैं। आप हमारा आगमन स्वीकार करें।

तात्पर्य : *भूमिदेवाः* शब्द ब्राह्मणों का द्योतक है क्योंकि इन्हें भगवान् की इच्छा का प्रतिनिधि माना जाता है। कृष्णभावनामृत का दर्शन इस पृथ्वी के मनुष्यों को देवता मानने वाले आदिकालीन बहुदेवतावाद सिद्धान्त का समर्थन नहीं करता। प्रत्युत यह ऐसा विज्ञान है, जो परम सत्य साक्षात् श्रीकृष्ण से आगे बढ़ने वाली सत्ता को निश्चित करता है। भगवान् की सृष्टि के विस्तार के साथ ही ईश्वर की सत्ता और शक्ति का विस्तार होता है और इस पृथ्वी पर उनकी इच्छा तथा सत्ता का प्रतिनिधित्व शुद्ध तथा प्रबुद्ध व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जिन्हें ब्राह्मण कहते हैं।

इस वृत्तान्त से स्पष्ट हो जाता है कि ग्वालबाल जिन कर्मकाण्डी ब्राह्मणों के पास गये थे वे ठीक से प्रबुद्ध नहीं थे और वे कृष्ण तथा बलराम के पद को या उनके अन्तरंग संगियों के पद को नहीं समझते थे। वस्तुतः यह लीला उन तथाकथित बनावटी ब्राह्मणों का पर्दाफाश करती है, जो भगवान् के आज्ञाकारी भक्त नहीं हैं।

गाश्चारयन्तावविदूर ओदनं
रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ ।
तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि
श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

गाः—अपनी गौवें; चारयन्तौ—चराते हुए; अविदूरे—दूर नहीं; ओदनम्—भोजन; राम-अच्युतौ—राम तथा अच्युत; वः—आपसे; लषतः—इच्छुक हैं; बुभुक्षितौ—भूखे होने के कारण; तयोः—उनके लिए; द्विजाः—हे ब्राह्मणो; ओदनम्—भोजन; अर्थिनोः—माँग रहे हैं; यदि—यदि; श्रद्धा—कोई श्रद्धा; च—तथा; वः—आपमें; यच्छत—कृपा करके दें; धर्म-वित्-तमाः—हे धर्म के जानने वालों में श्रेष्ठ।

भगवान् राम तथा भगवान् अच्युत यहाँ से निकट ही अपनी गौवें चरा रहे हैं। वे भूखे हैं और चाहते हैं कि आप उन्हें अपने पास से कुछ भोजन दें। अतः हे ब्राह्मणो, हे धर्म के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ, यदि आपकी श्रद्धा है, तो उनके लिए कुछ भोजन दे दें।

तात्पर्य : ग्वालबालों को ब्राह्मणों की उदारता के बारे में सन्देह था इसलिए उन्होंने *बुभुक्षितौ* शब्द का प्रयोग किया जिसका अर्थ है कि कृष्ण तथा बलराम दोनों ही भूखे हैं। इन बालकों को आशा थी कि ये ब्राह्मण इस वैदिक आदेश को जानते होंगे—*अन्नस्य क्षुधितं पात्रम्*—जो कोई भी भूखा हो वह भोजन का दान पाने का पात्र है। किन्तु यदि इन ब्राह्मणों ने कृष्ण तथा बलराम की सत्ता को नहीं माना तो उनकी *द्विज* उपाधि का अर्थ केवल "दो जनों से उत्पन्न" (द्वि—दो जनों से, ज—उत्पन्न) होगा न कि "दो बार जन्म लिया हुआ।" जब ब्राह्मणों ने ग्वालबालों के पहले अनुरोध को नहीं माना तो उन्होंने ब्राह्मणों को व्यंग्यपूर्ण शब्दों में *धर्मवित्तमाः* "धर्म के ज्ञाताओं" में श्रेष्ठ कहकर सम्बोधित किया।

दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः ।
अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन्हि दुष्यति ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

दीक्षायाः—यज्ञ के लिए दीक्षा से लेकर; पशु-संस्थायाः—पशु यज्ञ तक; सौत्रामण्याः—सौत्रामणि यज्ञ से बाहर; च—तथा; सत्-तमाः—हे विशुद्ध जनो; अन्यत्र—अन्य कहीं; दीक्षितस्य—यज्ञ में दीक्षित व्यक्ति का; अपि—भी; न—नहीं; अन्नम्—भोजन; अश्नन्—खाते हुए; हि—निस्सन्देह; दुष्यति—अपराध होता है।

हे शुद्धतम ब्राह्मणो, यज्ञकर्ता की दीक्षा तथा वास्तविक पशु यज्ञ के मध्य की अवधि को छोड़कर तथा सौत्रामणि के अतिरिक्त अन्य यज्ञों में दीक्षित व्यक्ति के लिए भी भोजन करना

दूषित नहीं है।

तात्पर्य : ग्वालबालों ने इसका पूर्वानुमान कर रखा था कि हो सकता है ये ब्राह्मण उन्हें भोजन न दें क्योंकि स्वयं भी उन्होंने भोजन नहीं किया होगा और जिस पुरोहित को यज्ञ करने के लिए दीक्षा दी जाती है उसे भोजन नहीं करना चाहिए। इसलिए बालकों ने उन ब्राह्मणों से कर्मकाण्डी यज्ञ की विविध औपचारिकताओं का उल्लेख किया। ये ग्वालबाल वैदिक संस्कृति की औपचारिकताओं से अनजान नहीं थे किन्तु उनकी असली मंशा भगवान् कृष्ण की सेवा करना ही थी।

इति ते भगवद्याच्ञां शृण्वन्तोऽपि न शुश्रुवुः ।
क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; ते—वे ब्राह्मण; भगवत्—भगवान् का; याच्ञाम्—निवेदन; शृण्वन्तः—सुनते हुए; अपि—यद्यपि; न शुश्रुवुः—नहीं सुना; क्षुद्र-आशाः—क्षुद्र आशा से पूरित; भूरि-कर्माणः—विस्तृत कर्मकाण्ड में फँसे; बालिशाः—बच्चों जैसे मूर्ख, बचकाना; वृद्ध-मानिनः—अपने को चतुर व्यक्ति मानते हुए।

ब्राह्मणों ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की ओर से किये गये इस निवेदन को सुना। फिर भी उन्होंने इसको अनसुना कर दिया। दरअसल वे क्षुद्र भावनाओं से पूरित थे और विस्तृत कर्मकाण्ड में लगे थे। यद्यपि वे वैदिक ज्ञान में अपने को बढ़ाचढ़ा मान रहे थे किन्तु वास्तव में वे अनुभवविहीन मूर्ख थे।

तात्पर्य : ये बचकाने ब्राह्मण क्षुद्राशाओं से—यथा भौतिक स्वर्ग प्राप्त करने की आशा से—पूर्ण थे। अतः वे कृष्ण के निजी मित्रों के आगमन से प्राप्त होने वाले आध्यात्मिक सुअवसर को नहीं पहचान पाये। आजकल विश्व-भर में लोग भौतिक प्रगति के पीछे दीवाने हैं अतएव वे कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचार कार्यों द्वारा प्रसारित किये जा रहे भगवान् कृष्ण के सन्देश को नहीं सुन सकते। जमाना बदला नहीं और आज भी पृथ्वी पर दम्भी भौतिकतावादी पुरोहित हैं।

देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ।
देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ १० ॥
तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवन्तमधोक्षजम् ।
मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

देशः—स्थान; कालः—समय; पृथक् द्रव्यम्—साज-सामान की विशिष्ट वस्तुएँ; मन्त्र—वैदिक स्तोत्र; तन्त्र—निर्धारित अनुष्ठान; ऋत्विजः—पुरोहित; अग्नयः—यज्ञ की अग्नियाँ; देवताः—अधिष्ठाता देवता; यजमानः—यज्ञ करने वाला; च—तथा; क्रतुः—हवि; धर्मः—सकाम फलों की अदृश्य शक्ति; च—तथा; यत्—जिसको; मयः—बनाने वाले; तम्—उसको; ब्रह्म परमम्—परब्रह्म; साक्षात्—प्रत्यक्ष; भगवन्तम्—भगवान् को; अधोक्षजम्—भौतिक इन्द्रियों से परे; मनुष्य-दृष्ट्या—उन्हें सामान्य व्यक्ति के रूप में देखते हुए; दुष्प्रज्ञाः—विकृत बुद्धि वाले; मर्त्य-आत्मानः—मिथ्या ही भौतिक शरीर के रूप में अपनी पहचान करते हुए; न मेनिरे—ठीक से आदर नहीं दिया।

यद्यपि यज्ञ करने की सारी सामग्री—स्थान, समय, विशेष सामग्री, मंत्र, अनुष्ठान, पुरोहित, अग्नि, देवता, यजमान, हवि तथा अभी तक के देखे गए लाभकारी परिणाम—ये सभी भगवान् के ऐश्वर्य के विविध पक्ष हैं किन्तु ब्राह्मणों ने अपनी विकृत बुद्धि के कारण भगवान् कृष्ण को सामान्य व्यक्ति के रूप में देखा। वे यह न समझ पाये कि वे परब्रह्म हैं, साक्षात् भगवान् हैं, जिन्हें भौतिक इन्द्रियाँ सामान्य रूप से अनुभव नहीं कर पातीं। अतः मर्त्य शरीर से अपनी झूठी पहचान करने से मोहित उन सबों ने भगवान् के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित नहीं किया।

तात्पर्य : कर्मकाण्डी ब्राह्मण यह नहीं समझ पाये कि भगवान् कृष्ण को यज्ञ का भोजन क्यों प्रदान किया जाय जिन्हें वे सामान्य मनुष्य मानते थे। जिस प्रकार गुलाबी रंग का चश्मा लगाने से सारा संसार गुलाबी दिखाई पड़ता है उसी तरह बद्धजीव अपनी संसारी दृष्टि से ईश्वर को भी संसारी रूप में देखता है और इस तरह भगवद्धाम वापस जाने का अवसर अपने हाथ से निकल जाने देता है।

न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परन्तप ।
गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्णरामयोः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ते—वे; यत्—जब; ओम्—''ऐसा ही हो''; इति—इस प्रकार; प्रोचुः—बोले; न—नहीं; न—नहीं; इति—ऐसा; च—या तो; परन्तप—हे शत्रुओं को दण्ड देने वाले परीक्षित महाराज; गोपाः—ग्वालबाल; निराशाः—उत्साहरहित; प्रत्येत्य—लौटकर; तथा—इस प्रकार; ऊचुः—बतलाया; कृष्ण-रामयोः—कृष्ण तथा राम से।

जब वे ब्राह्मण हाँ या ना में भी उत्तर नहीं दे पाये तो हे परन्तप (परीक्षित), सारे ग्वालबाल निराश होकर कृष्ण तथा राम के पास लौट आये और उनको यह बात बतलाई।

तदुपाकर्ण्य भगवान्प्रहस्य जगदीश्वरः ।
व्याजहार पुनर्गोपान्दर्शयन्लौकिकीं गतिम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसे; उपाकर्ण्य—सुनकर; भगवान्—भगवान् ने; प्रहस्य—हँसकर; जगत्-ईश्वरः—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नियन्ता; व्याजहार—सम्बोधित किया; पुनः—फिर; गोपान्—ग्वालबालों को; दर्शयन्—दिखलाते हुए; लौकिकीम्—सामान्य जगत का; गतिम्—मार्ग।

जो कुछ हुआ था उसे सुनकर ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान् हँसने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने पुनः ग्वालबालों को इस जगत में जिस तरह लोग कर्म करते हैं उस मार्ग को दिखलाते हुए सम्बोधित किया।

तात्पर्य : अपनी हँसी द्वारा भगवान् कृष्ण ने ग्वालबालों को इंगित किया कि उन्हें कर्मकाण्डी ब्राह्मणों से नाराज नहीं होना चाहिए अपितु यह समझना चाहिए कि माँगने वाले को प्राय: भीख नहीं दी जाती।

मां ज्ञापयत पत्नीभ्य: ससङ्कर्षणमागतम् ।
दास्यन्ति काममन्नं व: स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥ १४॥

शब्दार्थ

माम्—मुझको; ज्ञापयत—कृपया घोषित कर दें; पत्नीभ्य:—स्त्रियों को; स-सङ्कर्षणम्—बलराम सहित; आगतम्—आये हुए; दास्यन्ति—वे देंगी; कामम्—इच्छानुसार; अन्नम्—भोजन; व:—तुमको; स्निग्धा:—स्नेहमय; मयि—मुझमें; उषिता:—निवास करते हुए; धिया—अपनी बुद्धि से।.

[भगवान् कृष्ण ने कहा]: ब्राह्मणपत्नियों से कहो कि मैं संकर्षण समेत यहाँ आया हूँ। वे अवश्य ही तुम्हें जितना भोजन चाहोगे उतना देंगी क्योंकि वे मेरे प्रति अत्यन्त स्नेहमयी हैं और वे अपनी बुद्धि से मुझमें ही निवास करती हैं।

तात्पर्य : यद्यपि ब्राह्मणपत्नियाँ शरीर से अपने घर में रहती थीं किन्तु उनके मन भगवान् कृष्ण में निवास करते थे क्योंकि वे उनसे उत्कट स्नेह रखती थीं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि भगवान् कृष्ण ने ग्वालबालों को ब्राह्मणपत्नियों से यह बताने के लिए नहीं कहा कि उन्हें भूख लगी थी क्योंकि वे जानते थे कि इन भक्त स्त्रियों को इससे भारी क्लेश पहुँचता। वे तो कृष्ण के प्रति स्नेहवश ही ग्वालबालों को इच्छित भोजन दे देंगी। वे अपने पतियों के निषेध को नहीं मानेंगीं क्योंकि वे अपनी दिव्य बुद्धि से भगवान् के भीतर ही निवास करती थीं।

गत्वाथ पत्नीशालायां दृष्ट्वासीना: स्वलङ्कृता: ।
नत्वा द्विजसतीर्गोपा: प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥ १५॥

शब्दार्थ

गत्वा—जाकर; अथ—तब; पत्नी-शालायाम्—ब्राह्मणपत्नियों के घर में; दृष्ट्वा—उन्हें देखकर; असीना:—बैठी हुई; सु-अलङ्कृता:—आभूषणों से अच्छी तरह सजी हुई; नत्वा—नमस्कार करने के लिए झुकते हुए; द्विज-सती:—ब्राह्मणों की सती पत्नियों से; गोपा:—ग्वालबालों ने; प्रश्रिता:—विनयपूर्वक; इदम्—यह; अब्रुवन्—कहा।.

तब ग्वालबाल उस घर में गये जहाँ ब्राह्मण पत्नियाँ ठहरी हुई थीं। वहाँ उन बालकों ने उन सती स्त्रियों को सुन्दर आभूषणों से अलंकृत होकर बैठे देखा। बालकों ने ब्राह्मण-पत्नियों को नमस्कार करते हुए विनीत भाव से उन्हें सम्बोधित किया।

नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः ।
इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥ १६॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; वः—तुम; विप्र-पत्नीभ्यः—ब्राह्मणपत्नियों को; निबोधत—कृपया सुनें; वचांसि—शब्द; नः—हमारे; इतः—यहाँ से; अविदूरे—अधिक दूर नहीं; चरता—जा रहे हैं; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; इह—यहाँ; इषिताः—भेजे गये; वयम्—हम (सब)।

[ग्वालबालों ने कहा]: हे विद्वान ब्राह्मणों की पत्नियो, आपको हमारा नमस्कार। कृपया हमारी बात सुनें। हमें भगवान् कृष्ण ने यहाँ भेजा है, जो यहाँ से कुछ ही दूरी से होकर जा रहे हैं।

गाश्चारयन्स गोपालैः सरामो दूरमागतः ।
बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

गाः—गौवों को; चारयन्—चराते हुए; सः—वह; गोपालैः—ग्वालबालों के संग; स-रामः—बलराम के साथ; दूरम्—दूर से; आगतः—आये हैं; बुभुक्षितस्य—भूखे; तस्य—उनके; अन्नम्—भोजन; स-अनुगस्य—अपने साथियों समेत; प्रदीयताम्—दे दें।

वे ग्वालबालों तथा बलराम के साथ गौवें चराते हुए बहुत दूर निकल आये हैं। अब वे भूखे हैं अतएव आप उन्हें तथा उनके साथियों के लिए कुछ भोजन दे दें।

श्रुत्वाच्युतमुपायातं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ।
तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसम्भ्रमाः ॥ १८॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; अच्युतम्—कृष्ण को; उपायातम्—पास आया हुआ; नित्यम्—निरन्तर; तत्-दर्शन—उनका दर्शन करने के लिए; उत्सुकाः—उत्सुक; तत्-कथा—उनकी कथा से; आक्षिप्त—मुग्ध; मनसः—उनके मन; बभूवुः—हो गईं; जात-सम्भ्रमाः—उत्तेजित, उतावली।

ब्राह्मण पत्नियाँ कृष्ण का दर्शन करने के लिए सदैव उत्सुक रहती थीं क्योंकि उनके मन भगवान् की कथाओं से मुग्ध ही चले थे। अतः ज्योंही उन्होंने सुना कि कृष्ण आये हैं, वे अत्यन्त उतावली हो उठीं।

चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ।
अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

चतुः-विधम्—चार प्रकार के (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य तथा चोष्य); बहु-गुणम्—अनेक स्वाद तथा सुगंध से युक्त; अन्नम्—भोजन; आदाय—लेकर; भाजनैः—बड़े बड़े बर्तनों में; अभिसस्रुः—गईं; प्रियम्—अपने प्रियतम की ओर; सर्वाः—वे सभी; समुद्रम्—समुद्र तक; इव—जिस तरह; निम्न-गाः—नदियाँ।

बड़े बड़े पात्रों में उत्तम स्वाद तथा सुगन्ध से पूर्ण चारों प्रकार का भोजन लेकर सारी स्त्रियाँ अपने प्रियतम से मिलने उसी तरह आगे बढ़ चलीं जिस तरह नदियाँ समुद्र की ओर बहती हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की व्याख्या है कि ब्राह्मणपत्नियों को कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव का अनुभव हुआ मानो वे उनके उपपति हों। इसलिए जब वे उन्हें देखने के लिए दौड़ी तो उन्हें रोका नहीं जा सका।

निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः ।
भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुत धृताशयाः ॥ २० ॥
यमुनोपवनेऽशोक नवपल्लवमण्डिते ।
विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

निषिध्यमानाः—मना की गई; पतिभिः—अपने पतियों द्वारा; भ्रातृभिः—अपने भाइयों द्वारा; बन्धुभिः—अन्य सम्बन्धियों द्वारा; सुतैः—तथा अपने पुत्रों द्वारा; भगवति—भगवान् के प्रति; उत्तम-श्लोके—दिव्य स्तुतियों से वंदित; दीर्घ—दीर्घकाल तक; श्रुत—सुनने के कारण; धृत—प्राप्त किया गया; आशयाः—जिनकी आशाएँ; यमुना-उपवने—यमुना के तटीय बगीचे में; अशोक-नव-पल्लव—अशोक वृक्ष की कलियों से; मण्डिते—अलंकृत; विचरन्तम्—घूमते हुए; वृतम्—घिरे हुए; गोपैः—ग्वालबालों से; स-अग्रजम्—अपने बड़े भाई सहित; ददृशुः—देखा; स्त्रियः—उन स्त्रियों ने।

यद्यपि उनके पतियों, भाइयों, पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों ने उन्हें जाने से रोका किन्तु कृष्ण के दिव्य गुणों का दीर्घकाल से श्रवण करते रहने से कृष्ण को देखने की उनकी आशा विजयी हुई। उन्होंने यमुना नदी के किनारे अशोक वृक्षों की कोपलों से सुशोभित एक बगीचे में ग्वालबालों तथा अपने बड़े भाई बलराम के साथ विचरण करते हुए कृष्ण को देख लिया।

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह-
धातुप्रवालनटवेषमनव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं
कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

श्यामम्—श्याम वर्ण; हिरण्य—सुनहला; परिधिम्—वस्त्र; वन-माल्य—वनमाला से; बर्ह—मोरपंख; धातु—रंगीन खनिज; प्रवाल—तथा कलियों के गुच्छे; नट—मंच पर नर्तक के समान; वेषम्—वस्त्र धारण किये; अनुव्रत—मित्र के; अंसे—कंधे पर; विन्यस्त—रखे हुए; हस्तम्—अपना हाथ; इतरेण—अन्य हाथ से; धुनानम्—नचाते हुए; अब्जम्—कमल; कर्ण—अपने कान पर; उत्पल—कुमुदिनियाँ; अलक-कपोल—गालों पर बाल बिखराये; मुख-अब्ज—कमल जैसे मुख पर; हासम्—हँसी से युक्त।

उनका रंग श्यामल था और वस्त्र सुनहले थे। वे मोरपंख, रंगीन खनिज, फूल की कलियों का गुच्छा तथा जंगल के फूलों और पत्तियों की वनमाला धारण किये हुए नाटक के नर्तक की भाँति वेश बनाये थे। वे अपना एक हाथ अपने मित्र के कंधे पर रखे थे और दूसरे से कमल का फूल घुमा रहे थे। उनके कानों में कुमुदिनियाँ सुशोभित थीं, उनके बाल गालों पर लटक रहे थे और उनका कमल सदृश मुख हँसी से युक्त था।

प्राय:श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरै-
यीस्मिन्निमग्नमनसस्तमथाक्षिरन्ध्रै: ।
अन्त: प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं
प्राज्ञं यथाभिमतयो विजहुर्नरेन्द्र ॥ २३॥

शब्दार्थ

प्राय:—बारम्बार; श्रुत—सुना गया; प्रिय-तम—अपने सबसे प्यारे का; उदय—कीर्ति; कर्ण-पूरै:—कानों के आभूषण रूप; यस्मिन्—जिसमें; निमग्न—लीन; मनस:—मन; तम्—उन्हें; अथ—तब; अक्षि-रन्ध्रै:—अपनी आँख के छिद्रों से; अन्त:—भीतर; प्रवेश्य—घुसाकर; सु-चिरम्—दीर्घकाल तक; परिरभ्य—आलिंगन करके; तापम्—अपना कष्ट; प्राज्ञम्—अन्त:करण; यथा—जिस तरह; अभिमतय:—मिथ्या अहंकार के कार्य; विजहु:—त्याग दिया; नर-इन्द्र—हे पुरुषों पर शासन करने वाले राजा।

हे नरेन्द्र, उन ब्राह्मणपत्नियों ने दीर्घकाल से अपने प्रिय कृष्ण के विषय में सुन रखा था और उनका यश उनके कानों का स्थायी आभूषण बन चुका था। उनके मन सदैव उन्हीं में लीन रहते थे। अब उन्होंने अपने नेत्रों के छिद्रों से होकर उन्हें अपने हृदय में प्रविष्ट कर लिया और फिर दीर्घकाल तक अपने हृदय के भीतर उनका आलिंगन करती रहीं। इस तरह अन्तत: उनकी वियोग-पीड़ा उसी प्रकार जाती रही जिस प्रकार कि मुनिगण अपने अन्त:करण का आलिंगन करने से मिथ्या अहंकार की चिन्ता त्याग देते हैं।

तास्तथा त्यक्तसर्वाशा: प्राप्ता आत्मदिदृक्षया ।
विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥ २४॥

शब्दार्थ

ताः—वे स्त्रियाँ; तथा—ऐसी दशा में; त्यक्त-सर्व-आशाः—अपनी सारी भौतिक इच्छाएँ त्यागकर; प्राप्ताः—आई हुईं; आत्म-दिदृक्षया—साक्षात् उन्हें देखने की इच्छा से; विज्ञाय—समझने के लिए; अखिल-दृक्—समस्त प्राणियों की दृष्टि का; द्रष्टा—देखने वाले ने; प्राह—कहा; प्रहसित-आननः—मुखमंडल पर हँसी लाते हुए।

समस्त प्राणियों के विचारों के साक्षी भगवान् कृष्ण यह समझ गये कि किस तरह अपनी सारी सांसारिक आशाओं का परित्याग करके ये स्त्रियाँ केवल उन्हें ही देखने आई हैं। अतः अपने मुख पर हँसी लाते हुए उनसे उन्होंने इस प्रकार कहा।

स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् ।
यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

सु-आगतम्—स्वागत है; वः—आपका; महा-भागाः—हे भाग्यशालिनी महिलाओ; आस्यताम्—आइये बैठिये; करवाम—कर सकता हूँ; किम्—क्या; यत्—क्योंकि; नः—हमको; दिदृक्षया—देखने की इच्छा से; प्राप्ताः—आई हैं; उपपन्नम्—उपयुक्त; इदम्—यह; हि—निश्चय ही; वः—आपको।

[भगवान् कृष्ण ने कहा]: हे परम भाग्यशालिनी महिलाओ, स्वागत है। कृपया आराम से बैठें। मैं आपके लिये क्या कर सकता हूँ? आप मुझे देखने के लिए यहाँ आईं यह बहुत ही उपयुक्त है।

तात्पर्य : जिस तरह श्रीकृष्ण ने रात्रि में अपने साथ नाचने के लिए आई हुई गोपियों का स्वागत किया था उसी तरह उन्होंने ब्राह्मणपत्नियों का स्वागत किया जो अनेक व्यवधानों को पार करके भगवान् का दर्शन करने आई थीं जिससे भगवान् के प्रति उनका शुद्ध प्रेम सिद्ध होता था। *उपपन्नम्* शब्द सूचित करता है कि यद्यपि इन महिलाओं ने अपने पतियों के आदेशों को ठुकरा दिया था किन्तु उनका आचरण तनिक भी अनुपयुक्त न था क्योंकि उनके पतियों ने भगवान् कृष्ण के प्रति उनकी प्रेमाभक्ति को बाधित करने का स्पष्ट रूप से प्रयास किया था।

नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शिनः ।
अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

ननु—निश्चय ही; अद्धा—प्रत्यक्ष; मयि—मुझमें; कुर्वन्ति—करते हैं; कुशलाः—पटु जन; स्व-अर्थ—अपना लाभ; दर्शिनः—देखने वाले; अहैतुकी—बिना कारण के; अव्यवहिताम्—अविच्छिन्न; भक्तिम्—भक्ति; आत्म—आत्मा को; प्रिये—जिसका प्रिय हूँ; यथा—उचित रीति से।

निश्चय ही कुशल लोग, जो अपने असली लाभ को देख सकते हैं, वे मेरी अहैतुकी तथा अविच्छिन्न भक्ति करते हैं क्योंकि मैं आत्मा को सर्वाधिक प्रिय हूँ।

तात्पर्य : भगवान् ने ब्राह्मणपत्नियों को बतलाया कि वे ही नहीं अपितु अपना असली हितभ समझने वाले सारे लोग भगवान् की प्रेमाभक्ति का आश्रय लेते हैं। भगवान् कृष्ण *आत्मप्रिय* हैं अर्थात् हरएक के प्रेम के असली लक्ष्य हैं। यद्यपि हर व्यक्ति की अपनी रुचि तथा अपनी स्वतंत्रता होती है किन्तु अन्ततोगत्वा प्रत्येक जीव भगवान् का आध्यात्मिक स्फुलिंग है। इस तरह हरएक का आदि प्रेम-आकर्षण वैधानिक रूप से भगवान् श्रीकृष्ण के निमित्त है। भगवान् की प्रेमाभक्ति *अहैतुकी* तथा *अव्यवहिता* अर्थात् मनोधर्म, सकाम इच्छाओं अथवा समय एवं परिस्थिति की किसी प्रकार की बाधा से रहित होनी चाहिए।

प्राणबुद्धिमनःस्वात्म दारापत्यधनादयः ।
यत्सम्पर्कात्प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रियः ॥ २७॥

शब्दार्थ

प्राण—प्राण; बुद्धि—बुद्धि; मनः—मन; स्व—स्वजन; आत्म—शरीर; दार—पत्नी; अपत्य—सन्तान; धन—सम्पत्ति; आदयः—इत्यादि; यत्—जिस (आत्मा) से; सम्पर्कात्—सम्पर्क से; प्रियाः—प्रिय; आसन्—बने हुए हैं; ततः—उसकी अपेक्षा; कः—क्या; नु—निस्सन्देह; अपरः—दूसरा; प्रियः—प्रिय वस्तु।

आत्मा के सम्पर्क से ही जीव का प्राण, बुद्धि, मन, मित्रगण, शरीर, पत्नी, सन्तान, सम्पत्ति इत्यादि उसे प्रिय लगते हैं। अतएव अपने आप से बढ़कर कौन सी वस्तु अधिक प्रिय हो सकती है?

तात्पर्य : इस श्लोक का *यत्सम्पर्कात्* शब्द आत्मा तथा अन्ततः परमात्मा के सम्पर्क का द्योतक है। परमात्मा ही प्रत्येक जीव का मूल है। कृष्णभावनामृत उत्पन्न करने से मनुष्य स्वतः स्वरूपसिद्ध हो जाता है और इस तरह उसकी प्राणशक्ति, बुद्धि, मन, स्वजन, शरीर, परिवार तथा सम्पत्ति—ये सभी कृष्णभावनामृत के प्रभाव से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कृष्णभावनामृत आत्मा का परमात्मा से अर्थात् शुद्ध चेतना का परम चेतना कृष्ण से सर्वोत्कृष्ट संगम है।

तद्यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः ।
स्वसत्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥ २८॥

शब्दार्थ

तत्—अतः; यात—जाओ; देव-यजनम्—यज्ञस्थल को; पतयः—पतिगण; वः—तुम्हारे; द्वि-जातयः—ब्राह्मण; स्व-सत्रम्—अपने अपने यज्ञों को; पारयिष्यन्ति—समाप्त कर सकेंगे; युष्माभिः—तुम लोगों के साथ; गृह-मेधिनः—गृहस्थ जन।

अतएव तुम लोग यज्ञस्थल को लौट जाओ क्योंकि तुम्हारे पति, जो कि विद्वान ब्राह्मण हैं,

गृहस्थ हैं और उन्हें अपने अपने यज्ञ सम्पन्न करने के लिए तुम्हारे सहयोग की आवश्यकता है।

श्रीपत्न्य ऊचुः
मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं
सत्यं कुरुष्व निगमं तव पदमूलम् ।
प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं
केशैर्निवोढुमतिलङ्घ्य समस्तबन्धून् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-पत्न्यः ऊचुः—ब्राह्मणपत्नियों ने कहा; मा—नहीं; एवम्—इस तरह; विभो—हे सर्वशक्तिमान; अर्हति—चाहिए; भवान्—आप; गदितुम्—बोलना; नृ-शंसम्—निष्ठुरतापूर्वक; सत्यम्—सत्य; कुरुष्व—कर दीजिये; निगमम्—शास्त्रों में दिये गये वचन; तव—आपके; पाद-मूलम्—चरणकमलों के नीचे; प्राप्ताः—प्राप्त करके; वयम्—हम; तुलसि-दाम—तुलसीदल की माला; पदा—आपके पाँव से; अवसृष्टम्—ठुकराई जाकर; केशैः—हमारे बालों पर; निवोढुम्—ले जाने के लिए; अतिलङ्घ्य—ठुकराकर; समस्त—सभी; बन्धून्—सम्बन्धियों को।

ब्राह्मणपत्नियों ने उत्तर दिया: हे विभो, आप ऐसे कटु वचन न कहें। आपको चाहिए कि आप अपने उस वचन को पूरा करें कि आप अपने भक्तों को सदैव प्रतिदान करते हैं। चूँकि अब हम आपके चरणों को प्राप्त हैं, अतः हम इतना ही चाहती हैं कि हम वन में ही रहती जाएँ जिससे हम तुलसी-दल की उन मालाओं को अपने सिरों पर धारण कर सकें जिन्हें आप उपेक्षापूर्वक अपने चरणकमलों से ठुकरा देते हैं। हम अपने सारे भौतिक सम्बन्ध त्यागने को तैयार हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर ब्राह्मणपत्नियाँ कुछ वैसा ही कह रही हैं जैसाकि गोपियाँ रासनृत्य के प्रारम्भ (भागवत १०.२९.३१) में तब कहती हैं जब कृष्ण उन्हें घर जाने के लिए कहते हैं। इसी श्लोक की तरह गोपियों का भी कथन *मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसम्* शब्दों से प्रारम्भ होता है।

निगम वैदिक वाङ्मय का द्योतक है, जिसमें कहा गया है कि जो भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, वह इस भौतिक जगत में फिर नहीं आता। इस तरह ब्राह्मणपत्नियों ने भगवान् से याचना की कि चूँकि वे सब उनकी शरण में आई हैं अतएव उन्हें यह शोभा नहीं देता कि वे उन्हें उनके भौतिक पतियों के पास वापस जाने का आदेश दें।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार श्रीकृष्ण ने उन ब्राह्मणपत्नियों से इंगित किया होगा, ''तुम लोग उच्च ब्राह्मण कुल की सदस्याएँ हो तो फिर तुम एक ग्वालबाल के चरणों में किस तरह शरण पा सकती हो?''

इस पर उन महिलाओं ने उत्तर दिया होगा, ''चूँकि हम पहले से ही आपके चरणकमलों की

शरणागत हैं और आपकी सेविका बनना चाहती हैं अतएव हम अपने को तथाकथित ब्राह्मण कुल की सदस्याओं के रूप में मिथ्या पहचान नहीं समझ रहीं। आप हमारे वचनों से आसानी से इसकी पुष्टि कर सकते हैं।''

तब भगवान् कृष्ण ने उत्तर दिया होगा, ''मैं तो गोपाल हूँ और मेरी असली सेविकाएँ एवं प्रेमिकाएँ तो गोपियाँ हैं।''

इस पर ब्राह्मणपत्नियों ने उत्तर दिया होगा, ''हैं, तो रहने दें। यदि आप अपने सम्बन्धियों के समक्ष ब्राह्मण महिलाओं को दासी बनाते हुए घबड़ा रहे हों तो उन्हें बाहर आने दीजिये। हम आपको उलझन में नहीं डालना चाहतीं। हम आपके गाँव नहीं जायेंगी अपितु वृन्दावन में जंगल के अधिष्ठाता देवों की तरह रहती जाएँगी। हम तो आपसे किञ्चित सम्बन्ध स्थापित करके अपना जीवन सफल बनाना चाहती हैं।''

इस तरह श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की दिव्य दृष्टि से हम यह जान पाते हैं कि ब्राह्मणपत्नियाँ दूर रहने और कृष्ण के चरणकमलों पर गिरी हुई अथवा आलिंगन करते समय उनकी प्रेमिकाओं के पाँवों तले रौंदी गई तुलसी की पत्तियों को ग्रहण करने के लिए राजी हो गईं। उन्होंने इन तुलसीदलों को अपने सिरों पर धारण करना स्वीकार किया। इस तरह उन्होंने कृष्ण की अन्तरंग सखियाँ या सेविकाएँ बनने की इच्छा (जिसका पूरा होना वे कठिन समझती थीं) त्यागकर वृन्दावन के जंगल में रहते जाने की याचना की। यदि तब कृष्ण उनसे पूछते, ''तुम्हारे परिवार वाले क्या कहेंगे'' तो वे उत्तर देतीं, ''हमने तो अपने तथाकथित सम्बन्धियों की पहले ही परवाह नहीं की क्योंकि हम आपका साक्षात् दर्शन कर रही हैं।''

गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा
न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये ।
तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो
नान्या भवेद्गतिररिन्दम तद्विधेहि ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

गृह्णन्ति—वे स्वीकार करेंगे; नः—हमको; न—नहीं; पतयः—हमारे पति; पितरौ—माता-पिता; सुताः—पुत्र; वा—अथवा; न—नहीं; भ्रातृ—भाई; बन्धु—अन्य सम्बन्धी; सुहृदः—तथा मित्रगण; कुतः—तो कैसे; एव—निस्सन्देह; च—तथा; अन्ये—अन्य लोग; तस्मात्—अतएव; भवत्—आपके; प्रपदयोः—आपके चरणकमलों पर; पतित—गिरे हुए; आत्मनाम्—जिनके

शरीर; नः—हमारे लिए; न—नहीं; अन्या—अन्य कोई; भवेत्—हो सकता है; गतिः—गन्तव्य; अरिम्-दम—हे शत्रुओं के दमनकर्ता; तत्—वह; विधेहि—हमें प्रदान करें।

अब हमारे पति, माता-पिता, पुत्र, भाई, अन्य सम्बन्धी तथा मित्र हमें वापस नहीं लेंगे और अन्य कोई हमें किस तरह शरण देने को तैयार हो सकेगा? क्योंकि अब हमने अपने आपको आपके चरणकमलों पर पटक दिया है और हमारे कोई अन्य गन्तव्य नहीं है अतएव हे अरिन्दम, हमारी इच्छापूरी कीजिये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस प्रकार टीका की है : ''ब्राह्मणपत्नियों ने अपनी युवावस्था से ही वृन्दावन की स्त्रियों के मुख से भगवान् कृष्ण के रूप, गुण तथा माधुर्य का वर्णन सुन रखा था। मालिनों, तम्बोलिनियों तथा अन्यों से भी सुना था। अतः उन्हें कृष्ण के प्रति भावमय प्रेम (रति) का अनुभव होता था और वे गृहकार्यों से अन्यमनस्क रहती थीं। उनके पति उन्हें इस तरह निठल्ली देखकर सन्देह करते थे और उनसे बातचीत करने से कतराते रहते थे। अब ये ब्राह्मणपत्नियाँ अपने तथाकथित परिवारों तथा पड़ोसियों का नियमित रूप से बहिष्कार करने को सन्नद्ध थीं और अति क्षोभ के कारण वे कृष्ण के चरणकमलों पर अपने सिर रख रखकर चिख रही थीं और उन्हें नमस्कार कर रही थीं। इस तरह अवरुद्ध वाणी से उन्होंने उपर्युक्त श्लोक कहा। उन्होंने कृष्ण से प्रार्थना की कि वे उन्हें आशीर्वाद दें कि वे ही उनके एकमात्र गन्तव्य हों और अरिन्दम होने के कारण उनके शत्रुओं का—उन तमाम बाधाओं का—दमन कर दें जो कृष्ण को प्राप्त करने में बाधक थीं।

ब्राह्मणपत्नियाँ एकमात्र कृष्ण की सेवा करना चाहती थीं और भगवान् के भावमय प्रेम में यही शुद्ध कृष्णभावनामृत है।

श्रीभगवानुवाच
पतयो नाभ्यसूयेरन्पितृभ्रातृसुतादयः ।
लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; पतयः—तुम्हारे पति; न अभ्यसूयेरन्—शत्रुता का अनुभव नहीं करेंगे; पितृ-भ्रातृ-सुत-आदयः—तुम्हारे पिता, भाई, पुत्र इत्यादि; लोकाः—सामान्य लोग; च—भी; वः—तुम्हारी ओर; मया—मेरे द्वारा; उपेताः—उपदेश दिये गये; देवाः—देवतागण; अपि—भी; अनुमन्वते—सही ढंग से मानते हैं।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने उत्तर दिया: तुम यह विश्वास करो कि न तो तुम्हारे पतिगण तुम लोगों के प्रति शत्रुभाव रखेंगे न ही तुम्हारे पिता, भाई, पुत्र, अन्य सम्बन्धीजन या आम जनता। मैं

स्वयं उन्हें सारी स्थिति समझा दूँगा। यहाँ तक कि देवतागण भी अपना अनुमोदन व्यक्त करेंगे।

न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यङ्गसङ्गो नृणामिह ।
तन्मनो मयि युञ्जाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; प्रीतये—संतोष के लिए; अनुरागाय—अनुराग के लिए; हि—निश्चय ही; अङ्ग-सङ्गः—शारीरिक मिलन; नृणाम्—लोगों के लिए; इह—इस जगत में; तत्—इसलिए; मनः—तुम्हारे मन; मयि—मुझपर; युञ्जानाः—स्थिर करके; अचिरात्—शीघ्र ही; माम्—मुझको; अवाप्स्यथ—प्राप्त करोगी।.

तुम सबों का मेरे शारीरिक सान्निध्य में रहना निश्चय ही इस जगत के लोगों को अच्छा नहीं लगेगा, न ही इस प्रकार से तुम मेरे प्रति अपने प्रेम को ही बढ़ा सकोगी। तुम्हें चाहिए कि तुम अपने मन को मुझपर स्थिर करो और इस तरह शीघ्र ही तुम मुझे पा सकोगी।

तात्पर्य : भगवान् ने संकेत किया कि सामान्य लोग नहीं चाहेंगे कि ऊपरी तौर पर ग्वालबाल प्रतीत होने वाले श्रीकृष्ण तथा ब्राह्मण समुदाय की स्त्रियों के बीच ऐसा प्रेमाचार हो। साथ ही वियोग में ब्राह्मणपत्नियों की भक्ति तथा प्रेम में काफी वृद्धि हो जायेगी। दूसरे शब्दों में, यदि वे अपने मन को कृष्ण में स्थिर रहने दें तो बहुत अच्छा रहेगा क्योंकि यह विधि जिसको वे अभी तक अपनाए चली आ रही हैं, आजीवन चलती रहेगी। भगवान् तथा उनका प्रामाणिक प्रतिनिधि, आध्यात्मिक गुरु, भगवान् के भक्तों को पटुता से विविध प्रकार की सेवाओं में लगाते हैं जिससे वे शीघ्र ही उनके चरणकमलों में वापस लौट सकें।

श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।
न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

श्रवणात्—सुनने से; दर्शनात्—अर्चाविग्रह के स्वरूप का दर्शन करने से; ध्यानात्—ध्यान करने से; मयि—मेरे लिए; भावः—प्रेम; अनुकीर्तनात्—मेरे नाम तथा गुणों का कीर्तन करने से; न—नहीं; तथा—उसी तरह से; सन्निकर्षेण—निकट रहने से; प्रतियात—लौट जाओ; ततः—अतएव; गृहान्—अपने घरों को।.

मेरे विषय में सुनने, मेरे अर्चाविग्रह स्वरूप का दर्शन करने, मेरा ध्यान धरने तथा मेरे नामों एवं महिमाओं का कीर्तन करने से ही मेरे प्रति प्रेम बढ़ता है, भौतिक सान्निध्य से नहीं। अतएव तुम लोग अपने घरों को लौट जाओ।

श्रीशुक उवाच
इत्युक्ता द्विजपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः ।
ते चानसूयवस्ताभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इन वचनों से; उक्ताः—कहे गये; द्विज-पत्न्यः—ब्राह्मणपत्नियों से; ताः—वे; यज्ञ-वाटम्—यज्ञस्थल को; पुनः—फिर; गताः—चली गईं; ते—वे, उनके पतिगण; च—तथा; अनसूयवः—शत्रुभाव रहित; ताभिः—उन; स्त्रीभिः—स्त्रियों के साथ; सत्रम्—यज्ञ का सम्पन्न होना; अपारयन्—पूरा किया।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह आज्ञा पाकर ब्राह्मणपत्नियाँ यज्ञस्थल पर लौट गईं। ब्राह्मणों ने अपनी पत्नियों में कोई दोष नहीं निकाला और उन्होंने उनके साथ साथ यज्ञ पूरा किया।

तात्पर्य : ब्राह्मणपत्नियों ने भगवान् कृष्ण के आदेश का पालन किया और वे अपने पतियों के यज्ञस्थल को लौट गईं लेकिन गोपियाँ कृष्ण द्वारा आदेश दिये जाने पर भी उनके साथ पूनम की रात में नृत्य करने के लिए वन में रहती रहीं। गोपियाँ तथा ब्राह्मणपत्नियाँ—दोनों ने ही शुद्ध भगवत्प्रेम प्राप्त किया।

तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथाश्रुतम् ।
हृडोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥ ३५॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; एका—उनमें से एक ने; विधृता—बलपूर्वक रोकी गई; भर्त्रा—पति द्वारा; भगवन्तम्—भगवान् को; यथा-श्रुतम्—जैसा उसने अन्यों से सुन रखा था; हृदा—अपने हृदय में; उपगुह्य—आलिंगन करके; विजहौ—त्याग दिया; देहम्—अपना शरीर; कर्म-अनुबन्धनम्—जो भवबन्धन का कारण है।

उनमें से एक महिला को उसके पति ने जबरदस्ती रोक रखा था। जब उसने अन्यों के मुख से भगवान् कृष्ण का वर्णन सुना तो उसने अपने हृदय के भीतर उनका आलिंगन किया और अपना वह भौतिक शरीर त्याग दिया जो भवबन्धन का कारण है।

तात्पर्य : यहाँ पर वर्णित महिला कृष्ण के प्रति विशेष रूप से समर्पित थी। उसने अपना भौतिक शरीर त्यागते ही आध्यात्मिक शरीर प्राप्त किया और यज्ञस्थल छोड़कर भगवान् से जा मिली।

भगवानपि गोविन्दस्तेनैवान्नेन गोपकान् ।
चतुर्विधेनाशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥ ३६॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; अपि—भी; गोविन्दः—गोविन्द; तेन—उस; एव—उसी; अन्नेन—भोजन से; गोपकान्—ग्वालबालों को; चतुः-विधेन—चार प्रकार का; अशयित्वा—खिलाकर; स्वयम्—स्वयं, खुद; च—तथा; बुभुजे—खाया; प्रभुः—सर्वशक्तिमान ने।

भगवान् गोविन्द ने ग्वालबालों को वह चार प्रकार का भोजन कराया। तत्पश्चात् सर्वशक्तिमान भगवान् ने भी उन व्यंजनों को खाया।

एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् ।
रेमे गोगोपगोपीनां रमयन्रूपवाक्कृतैः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; लीला—लीलाओं के लिए; नर—मनुष्य रूप में; वपुः—दिव्य शरीरधारी; नृ-लोकम्—मानव समाज का; अनुशीलयन्—अनुकरण करते; रेमे—आनन्द लिया; गो—गौवें; गोप—ग्वालबाल; गोपीनाम्—गोपियों को; रमयन्—प्रसन्न करते हुए; रूप—अपने सौन्दर्य; वाक्—वाणी; कृतैः—तथा कर्मों से।

इस तरह अपनी लीलाएँ सम्पन्न करने के लिए मनुष्य रूप में प्रकट होकर भगवान् ने मानव समाज की रीतियों का अनुकरण किया। उन्होंने अपनी गौवों, ग्वालमित्रों तथा गोपियों को अपने सौन्दर्य, वाणी तथा कर्मों से प्रमुदित करते हुए आनन्द भोग किया।

अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन्कृतागसः ।
यद्विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्म नृविडम्बयोः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; अनुस्मृत्य—होश में आने पर; विप्राः—ब्राह्मणगण; ते—वे; अन्वतप्यन्—पछताने लगे; कृत-अगसः—अपराध किये जाने पर; यत्—क्योंकि; विश्व-ईश्वरयोः—ब्रह्माण्ड के दो स्वामियों, कृष्ण तथा बलराम की; याच्ञाम्—याचना का; अहन्म—हमने उल्लंघन किया; नृ-विडम्बयोः—मनुष्य के छद्मवेश में प्रकट होने वालों का।

तब ब्राह्मणों को चेत हुआ और वे बहुत अत्यधिक पछताने लगे। उन्होंने सोचा, "हमसे बहुत पाप हुआ है क्योंकि हमने सामान्य मनुष्य के वेश में प्रकट हुए ब्रह्माण्ड के दो स्वामियों की याचना अस्वीकार कर दी है।"

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण तथा भगवान् बलराम ने ब्राह्मणों को छलने का प्रयास नहीं किया—उन्होंने उनसे सीधे भोजन की याचना की। प्रत्युत ब्राह्मणों ने अपने आपको धोखा दिया जैसाकि *नृविडम्बयोः* शब्द से सूचित होता है, जिसका अर्थ है कि कृष्ण और बलराम ऐसे सामान्य मनुष्य के लिए मोहित हैं, जो उनको भी एक सामान्य व्यक्ति समझता है। तो भी, चूँकि ब्राह्मणपत्नियाँ भगवान् की परम भक्त थीं, इसलिए मूर्ख ब्राह्मणों को आध्यात्मिक लाभ हुआ और अन्त में उन्हें चेत हो गया।

**दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ।
आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥ ३९ ॥**

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; स्त्रीणाम्—अपनी पत्नियों की; भगवति—भगवान्; कृष्णे—कृष्ण में; भक्तिम्—शुद्ध भक्ति को; अलौकिकीम्—अलौकिक; आत्मानम्—अपने आपको; च—तथा; तया—उससे; हीनम्—विहीन; अनुतप्ताः—पछतावा करते हुए; व्यगर्हयन्—अपने आपको धिक्कारा।

अपनी पत्नियों की पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के प्रति दिव्य भक्ति और अपने को उस भक्ति से विहीन देखकर उन ब्राह्मणों को अतीव खेद हुआ और वे अपने आपको धिक्कारने लगे।

**धिग्जन्म नस्त्रिवृद्यत्तद्धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम् ।
धिक्कुलं धिक्क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥ ४० ॥**

शब्दार्थ

धिक्—धिक्कार है; जन्म—जन्म; नः—हमारा; त्रि-वृत्—तिबारा (पहला माता-पिता से, फिर ब्राह्मण दीक्षा द्वारा तथा तीसरा वैदिक यज्ञ करते समय दीक्षा द्वारा); यत् तत्—जो भी; धिक्—धिक्कार है; व्रतम्—हमारे (ब्रह्मचर्य) व्रत को; धिक्—धिक्कार है; बहु-ज्ञताम्—अपार विद्वत्ता को; धिक्—धिक्कार है; कुलम्—हमारे उच्च वंश को (कुलीनता); धिक्—धिक्कार है; क्रिया-दाक्ष्यम्—कर्मकाण्ड में हमारी दक्षता को; विमुखः—वैरी; ये—जो; तु—फिर भी; अधोक्षजे—भगवान् में।

[ब्राह्मणों ने कहा]: ''धिक्कार है हमारे तिबारा जन्म को, हमारे ब्रह्मचर्य तथा हमारी विपुल विद्वत्ता को, धिक्कार है हमारे उच्च कुल तथा यज्ञ-अनुष्ठान में हमारी निपुणता को! इन सबको धिक्कार है क्योंकि हम भगवान् से विमुख हैं।''

तात्पर्य : ऊपर दी गई परिभाषाओं के अनुसार *त्रिविद् जन्म* तीन बार जन्म का द्योतक है—(१) शारीरिक जन्म (२) ब्राह्मण दीक्षा (३) वैदिक यज्ञ करने के लिए दीक्षा। परब्रह्म भगवान् कृष्ण से अनजान रहने पर यह सब व्यर्थ है।

**नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ।
यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥ ४१ ॥**

शब्दार्थ

नूनम्—निस्सन्देह; भगवतः—भगवान् की; माया—मोहिनीशक्ति; योगिनाम्—बड़े बड़े योगियों को; अपि—भी; मोहिनी—मोहित कर लेती है; यत्—चूँकि; वयम्—हम; गुरवः—गुरु; नृणाम्—समाज के; स्व-अर्थे—अपने सच्चे हित के लिए; मुह्यामहे—मोहित हो गये हैं; द्विजाः—ब्राह्मणगण।

भगवान् की मायाशक्ति बड़े बड़े योगियों को मोह लेती है, तो हमारी क्या बिसात! ब्राह्मण होने के नाते हम सभी जाति के लोगों के आध्यात्मिक गुरु माने जाते हैं फिर भी हम अपने सच्चे स्वार्थ के बारे में मोहित हो गये हैं।

अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ।
दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान्गृहाभिधान् ॥ ४२॥

शब्दार्थ

अहो पश्यत—देखो तो सही; नारीणाम्—इन स्त्रियों की; अपि—भी; कृष्णे—भगवान् कृष्ण में; जगत्-गुरौ—सकल ब्रह्माण्ड के गुरु; दुरन्त—असीम; भावम्—भक्ति; यः—जिसने; अविध्यत्—तोड़ डाला है; मृत्यु—मृत्यु के; पाशान्—बन्धनों को; गृह-अभिधान्—गृहस्थ जीवन के नाम से विख्यात्।

जरा इन स्त्रियों के असीम प्रेम को तो देखो जो इन्होंने अखिल विश्व के आध्यात्मिक गुरु भगवान् के प्रति उत्पन्न कर रखा है। इस प्रेम ने गृहस्थ जीवन के प्रति उनकी आसक्ति—मृत्यु के बन्धन—को छिन्न कर दिया है।

तात्पर्य : एक तरह पति, पिता, ससुर इत्यादि उन महिलाओं के गुरु या शिक्षक थे किन्तु वे स्त्रियाँ कृष्ण-भक्ति में पूर्ण हो चुकी थीं जबकि पुरुष अज्ञान के गर्त में गिर चुके थे।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार घर लौटने पर इन महिलाओं में दिव्य भावों के लक्षण प्रकट होने लगे—यथा शरीर कम्प, अश्रुपात, रोमांच, विवर्णता, "मेरे जीवन के आनन्दरूप कृष्ण" कहकर प्रलाप, गला रुँधना इत्यादि।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यहाँ तक कह डालते हैं कि कोई भले ही यह विरोध करे कि अपने पति के अतिरिक्त स्त्री को अन्य किसी पुरुष से प्रेम करना उचित नहीं किन्तु यहाँ तो पतिगण ही यह इंगित कर रहे हैं कि वे जगद्गुरु कृष्ण के बनावटी गुरु हैं, जो सारे ब्रह्माण्ड के शिक्षक और आध्यात्मिक गुरु हैं। पतियों ने देखा कि उनकी पत्नियों में कृष्ण के प्रति दिव्य अनुराग के कारण घर, पति, सन्तान इत्यादि के लिए रंच-भर भी अनुरक्ति नहीं रह गई है। इसलिए उसी दिन से उन पतियों ने उन स्त्रियों को अपना आध्यात्मिक पूज्य गुरु मान लिया और उन्हें पत्नियों या सम्पत्ति के रूप में मानना बन्द कर दिया।

नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ।
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥ ४३॥
तथापि ह्युत्तमःश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।
भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥ ४४॥

शब्दार्थ

न—न तो; आसाम्—इनका; द्विजाति-संस्कारः—समाज के द्विज कहलाने वाले वर्ग के संस्कार; न—न; निवासः—निवास; गुरौ—गुरु के आश्रम में (अर्थात् ब्रह्मचारी रूप में प्रशिक्षण); अपि—भी; न—न तो; तपः—तपस्या; न—न; आत्म-मीमांसा—आत्मा की वास्तविकता के विषय में दार्शनिक जिज्ञासा; न—नहीं; शौचम्—स्वच्छता का अनुष्ठान; न—नहीं; क्रियाः—कर्मकाण्ड; शुभाः—शुभ; तथा अपि—फिर भी; हि—निस्सन्देह; उत्तमः-श्लोके—जिनका यशगान उच्च कोटि के वैदिक मंत्रों द्वारा किया जाता है; कृष्णे—कृष्ण के लिए; योग-ईश्वर-ईश्वरे—योग के समस्त स्वामियों का परम स्वामी; भक्तिः—शुद्ध भक्ति; दृढा—दृढ़; न—नहीं; च—दूसरी ओर; अस्माकम्—हम सब की; संस्कार-आदि-मताम्—ऐसे संस्कारों इत्यादि वाले; अपि—यद्यपि।

इन स्त्रियों ने न तो द्विजों के शुद्धीकरण संस्कार कराये हैं, न ही किसी आध्यात्मिक गुरु के आश्रम में ब्रह्मचारियों का जीवन बिताया है, न इन्होंने कोई तपस्या की है या आत्मा के विषय में मनन किया है या स्वच्छता की औपचारिकताओं का निर्वाह अथवा पावन अनुष्ठानों में अपने को लगाया है। तो भी इनकी दृढ़ भक्ति उन भगवान् कृष्ण के प्रति है जिनका यशोगान वैदिक मंत्रों द्वारा किया जाता है और जो योगेश्वरों के भी ईश्वर हैं। और दूसरी ओर हम हैं जिन्होंने भगवान् की कोई भक्ति नहीं की यद्यपि हमने इन सारी विधियों को सम्पन्न किया है।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार, पतियों को इसका ज्ञान न था कि उनकी पत्नियाँ कभी कभी वृन्दावनवासियों से, यथा फूल बेचने वाली मालिनियों के मुख से कृष्ण के सौन्दर्य तथा गुणों के विषय में सुनती रहती थी। ये ब्राह्मण अपनी पत्नियों की कृष्ण-भक्ति को देखकर चकित थे। उन्हें इसका पता ही नहीं था कि यह भक्ति भगवान् के शुद्ध भक्तों की संगति में भगवान् के विषय में श्रवण और कीर्तन करने का फल है।

ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया ।
अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

ननु—निस्सन्देह; स्व-अर्थ—अपने लाभ के विषय में; विमूढानाम्—मोहग्रस्त; प्रमत्तानाम्—प्रमत्तों का; गृह-ईहया—अपने घरेलू प्रयासों से; अहो—ओह; नः—हमको; स्मारयाम् आस—स्मरण दिलाया; गोप-वाक्यैः—ग्वालबालों के शब्दों से; सताम्—दिव्य जीवों का; गतिः—चरम लक्ष्य।

निस्सन्देह हम लोग गृहकार्यों में व्यस्त रहने के कारण अपने जीवन के असली लक्ष्य से पूरी तरह विपथ हो गये हैं। किन्तु अब जरा देखो तो कि भगवान् ने किस तरह इन सीधे-सादे ग्वालबालों के शब्दों से हमें समस्त सच्चे ब्रह्मवादियों के चरम गन्तव्य का स्मरण दिलाया है।

अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्याद्यशिषां पतेः ।

ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडम्बनम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

अन्यथा—अन्यथा; पूर्ण-कामस्य—प्रत्येक इच्छा पूरी होने वाले का; कैवल्य—मोक्ष का; आदि—इत्यादि; आशिषाम्—आशीर्वाद; पतेः—स्वामी के; ईशितव्यैः—नियंत्रित किये जाने वालों के साथ; किम्—क्या; अस्माभिः—हमारे साथ; ईशस्य—ईश्वर का; एतत्—यह; विडम्बनम्—बहाना।

अन्यथा पूर्ण काम, मोक्ष तथा दिव्य आशीर्वादों के स्वामी परम नियन्ता हमारे साथ यह विडम्बना क्यों करते? हम तो सदैव उन्हीं के नियंत्रण में रहने के लिए ही हैं।

तात्पर्य : यद्यपि कृष्ण परब्रह्म हैं किन्तु उन्होंने विनीत भाव से अपने ग्वालमित्रों को ब्राह्मणों से भोजन माँगने भेजा। ऐसा करके उन्होंने ब्राह्मणों के अहंभाव की पोल खोली तथा उनकी ही पत्नियों को आकर्षित करके उन्हें अपनी शरण में लेकर अपने ही दिव्य सौन्दर्य के यश की स्थापना की।

हित्वान्यान्भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयासकृत् ।
स्वात्मदोषापवर्गेण तद्याच्ञा जनमोहिनी ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

हित्वा—त्यागकर; अन्यान्—अन्यों को; भजते—पूजती है; यम्—जिस भगवान् को; श्रीः—लक्ष्मीजी; पाद-स्पर्श—जिनके चरणकमलों के स्पर्श हेतु; आशया—आशा के साथ; असकृत्—निरन्तर; स्व-आत्म—अपने से; दोष—त्रुटि; अपवर्गेण—एक ओर करके; तत्—उनकी; याच्ञा—याचना; जन—सामान्य लोग; मोहिनी—मोहित करके।

लक्ष्मीजी उनके चरणकमलों का स्पर्श पाने की आशा से सबकुछ एक ओर रखकर तथा अपना गर्व और चंचलता त्यागकर एकमात्र उन्हीं की पूजा करती हैं। ऐसे भगवान् यदि याचना करते हैं, तो यह अवश्य ही सबों को चकित करने वाली बात है।

तात्पर्य : लक्ष्मीजी के परम स्वामी को स्वयं भोजन की याचना नहीं करनी पड़ती जैसाकि यहाँ पर ब्राह्मणों ने संकेत किया है, जो अन्ततः वास्तविक दिव्य बुद्धि प्रकट कर रहे हैं।

देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ।
देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ ४८ ॥
स एव भगवान्साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ।
जातो यदुष्वित्याशृणम ह्यपि मूढा न विद्महे ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

देशः—स्थान; कालः—समय; पृथक् द्रव्यम्—साज-सामग्री की विशिष्ट वस्तुएँ; मन्त्र—वैदिक स्तोत्र; तन्त्र—निर्धारित अनुष्ठान; ऋत्विजः—पुरोहित; अग्नयः—तथा यज्ञ की अग्नियाँ; देवता—अधिष्ठाता देवता; यजमानः—यज्ञ करने वाला; च—तथा; क्रतुः—हवि; धर्मः—शुभ फल; च—तथा; यत्—जिसको; मयः—बनाने वाला; सः—वह; एव—निस्सन्देह; भगवान्—भगवान्; साक्षात्—प्रत्यक्ष; विष्णुः—विष्णु; योग-ईश्वर-ईश्वरः—योगेश्वरों के स्वामी ने; जातः—जन्म लिया है; यदुषु—यादव

वंश के; इति—इस प्रकार; आशृण्म—हमने सुना है; हि—निश्चय ही; अपि—फिर भी; मूढाः—मूर्ख; न विद्महे—हम नहीं जान पाये।

यज्ञ के सारे पक्ष—शुभ स्थान तथा समय, साज-सामग्री की विविध वस्तुएँ, वैदिक मंत्र, अनुष्ठान, पुरोहित तथा यज्ञ की अग्नियाँ, देवता, यज्ञ-अधिष्ठाता, यज्ञ-हवि तथा प्राप्त होने वाले शुभ फल—ये सभी उन्हीं के ऐश्वर्य की अभिव्यक्तियाँ हैं। यद्यपि हमने योगेश्वरों के ईश्वर, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु के विषय में यह सुन रखा था कि उन्होंने यदु वंश में जन्म ले लिया है किन्तु हम इतने मूर्ख थे कि श्रीकृष्ण को साक्षात् भगवान् नहीं समझ पाये।

तस्मै नमो भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उन; नमः—नमस्कार; भगवते—भगवान्; कृष्णाय—श्रीकृष्ण को; अकुण्ठ-मेधसे—जिनकी बुद्धि सीमित नहीं होती; यत्-माया—जिनकी मायाशक्ति से; मोहित—मोहग्रस्त; धियः—मन; भ्रमामः—भटक रहे हैं; कर्म-वर्त्मसु—सकाम कर्म के मार्ग पर।

हम उन भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करते हैं, जिनकी बुद्धि कभी भी मोहग्रस्त नहीं होती और हम हैं कि मायाशक्ति द्वारा मोहित होकर सकाम कर्म के मार्गों पर भटक रहे हैं।

स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम् ।
अविज्ञतानुभावानां क्षन्तुमर्हत्यतिक्रमम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निस्सन्देह; नः—हमारा; आद्यः—आदि भगवान्; पुरुषः—परम पुरुष; स्व-मया-मोहित-आत्मनाम्—उनकी माया से मोहग्रस्त मन वालों का; अविज्ञात—न जानने वाले; अनुभावानाम्—उनके प्रभाव का; क्षन्तुम्—क्षमा कर देना; अर्हति—चाहिए; अतिक्रमम्—अपराध को।

हम भगवान् कृष्ण की मायाशक्ति से मोहग्रस्त थे अतएव हम आदि भगवान् के रूप में उनके प्रभाव को नहीं समझ सके। अब हमें आशा है कि वे कृपापूर्वक हमारे अपराध को क्षमा कर देंगे।

इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः ।
दिदृक्षवो व्रजमथ कंसाद्भीता न चाचलन् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; स्व-अघम्—अपने अपराध को; अनुस्मृत्य—फिर से स्मरण करके; कृष्णे—कृष्ण के विरुद्ध; ते—वे; कृत-हेलनाः—तिरस्कार प्रदर्शित करने पर; दिदृक्षवः—देखने की इच्छा से; व्रजम्—नन्द महाराज के गाँव; अथ—तब; कंसात्—कंस से; भीताः—डरे हुए; न—नहीं; च—तथा; अचलन्—गये।.

इस प्रकार कृष्ण की उपेक्षा करने से उनके द्वारा जो अपराध हुआ था उसका स्मरण करते हुए उनका दर्शन करने के लिए वे अति उत्सुक हो उठे। किन्तु कंस से भयभीत होने के कारण उन्हें व्रज जाने का साहस नहीं हुआ।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण के विरुद्ध अपने अपराध का अनुभव करते हुए और अन्ततोगत्वा उनके सर्वशक्तिमान पद की प्रशंसा करते हुए ब्राह्मणों ने व्रज जाकर भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाही। किन्तु उन्हें भय था कि जब कंस के गुप्तचर उसे जाकर यह बतलायेंगे कि वे ब्राह्मण कृष्ण के पासे गये थे तो वह उन्हें अवश्य मार डालेगा। ब्राह्मणपत्नियाँ कृष्णभावनामृत में भावमग्न थीं अत: वे येन केन प्रकारेण कृष्ण के पास चली गई थीं जिस तरह गोपियाँ कृष्ण के साथ नृत्य करने के लिए अर्धरात्रि में जंगली पशुओं से भरे जंगल से होकर गई थीं। किन्तु ये ब्राह्मण कृष्णभावनामृत के उस उच्च पद को प्राप्त नहीं थे अतएव कंस के भय से पराजित होकर भगवान् का दर्शन करने नहीं जा सके।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''ब्राह्मण-पत्नियों को आशीर्वाद'' नामक तेईसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चौबीस

गोवर्धन-पूजा

इस अध्याय में कृष्ण द्वारा इन्द्र के निमित्त किये जाने वाले यज्ञ को रोक कर उसके बदले गोवर्धन-पूजा के यज्ञ का शुभारम्भ कराकर इन्द्र के गर्व को चूर करने का वर्णन हुआ है।

जब श्रीकृष्ण ने देखा कि सारे ग्वाले इन्द्र के लिए यज्ञ करने की तैयारी में लगे हैं, तो उनके राजा नन्द से उन्होंने इसके विषय में पूछा। नन्द ने बतलाया कि इन्द्र द्वारा प्रदत्त वर्षा से सारे प्राणी अपना जीवन-पालन करते हैं इसलिए यह यज्ञ उन्हें प्रसन्न रखने के लिए किया जाएगा। कृष्ण ने कहा, ''सारे जीव कर्मवश ही एक विशेष शरीर लेकर जन्म लेते हैं, वे इस शरीर में तरह-तरह के सुख तथा दुख

भोगते हैं और जब कर्म क्षीण हो जाते हैं, तो वे इस शरीर को त्याग देते हैं। इस प्रकार कर्म ही हमारा शत्रु, मित्र, गुरु तथा स्वामी है और इन्द्र किसी के सुख तथा दुख को नहीं बदल सकते क्योंकि हर व्यक्ति अपने कर्मफल से जकड़ा हुआ है। सतो, रजो तथा तमोगुण इस जगत की सृष्टि, पालन तथा संहार के लिए उत्तरदायी हैं। रजोगुण से उद्दीप्त होकर बादल वर्षा करते हैं और गोप-जन अपनी गौवों की रक्षा करके सम्पन्न होते हैं। गौवों का असली वासस्थान जंगल तथा पर्वत में है। अतएव आपको गौवों, ब्राह्मणों तथा गोवर्धन पर्वत की पूजा करनी चाहिए।''

यह कहकर कृष्ण ने गोपजनों को एकत्र किया और इन्द्र का यज्ञ करने के लिए एकत्रित सामग्री से गोवर्धन-पूजा की तैयारी की। तत्पश्चात् उन्होंने विराट अद्वितीय दिव्य स्वरूप धारण किया और गोवर्धन पर्वत कर चढ़ाये गये सारे भोजन तथा उपहारों को निगल लिया। ऐसा करते समय उन्होंने घोषणा की कि यद्यपि आज तक ग्वालजाति ने इन्द्र की पूजा की है, किन्तु वह साकार होकर कभी प्रकट नहीं हुआ जबकि गोवर्धन ने उनकी आँखों के समक्ष प्रकट होकर उनके द्वारा चढ़ाया गया सारा भोजन खा लिया है। अतएव उन्हें चाहिए कि वे सब अब गोवर्धन पर्वत को नमस्कार करें। तत्पश्चात् उन्होंने अपने द्वारा धारण किये गये नवीन स्वरूप को ग्वालों के साथ मिलकर नमस्कार किया।

श्रीशुक उवाच
भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ।
अपश्यन्निवसन्गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; भगवान्—भगवान्; अपि—भी; तत्र एव—उसी स्थान पर; बलदेवेन—बलराम द्वारा; संयुतः—के साथ; अपश्यत्—देखा; निवसन्—निवास करते हुए; गोपान्—ग्वालों को; इन्द्र—स्वर्ग के राजा इन्द्र के लिए; याग—यज्ञ के लिए; कृत—किया हुआ; उद्यमान्—महान् प्रयास।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : उस स्थान पर ही अपने भाई बलदेव के साथ रहते हुए कृष्ण ने ग्वालों को इन्द्र-यज्ञ की जोर-शोर से तैयारी करते देखा।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी तथा अन्य आचार्यों के अनुसार इस श्लोक में आगत *तत्र एव* शब्द यह सूचित करता है कि भगवान् कृष्ण ब्राह्मणों के उसी गाँव में रहने लगे जिनकी पत्नियों ने अपनी भक्ति से उन्हें तुष्ट किया था। इस तरह उन्होंने उन ब्राह्मणों को तथा उनकी सती पत्नियों पर कृपा की जो अपने पतियों के सिवाय और किसी से सम्बन्ध नहीं रख सकती थीं। उसी स्थान पर कृष्ण के पिता

नन्द महाराज तथा अन्य ग्वाले किसी न किसी तरह इन्द्र-यज्ञ की भव्य तैयारी कर रहे थे तभी कृष्ण ने इस प्रकार अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

तदभिज्ञोऽपि भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।
प्रश्रयावनतोऽपृच्छद्वृद्धान्नन्दपुरोगमान् ॥ २॥

शब्दार्थ

तत्-अभिज्ञः—इसके विषय में पूर्ण ज्ञान रखने वाले; अपि—यद्यपि; भगवान्—भगवान् ने; सर्व-आत्मा—हर एक के हृदय में स्थित परमात्मा; सर्व-दर्शनः—सर्वज्ञ भगवान्; प्रश्रय-अवनतः—विनयपूर्वक झुक कर; अपृच्छत्—पूछा; वृद्धान्—बूढ़े लोगों से; नन्द-पुरः-गमान्—नन्द महाराज इत्यादि।

सर्वज्ञ परमात्मा होने से भगवान् कृष्ण पहले से ही सारी स्थिति जानते थे फिर भी विनीत भाव से उन्होंने अपने पिता नन्द महाराज इत्यादि गुरुजनों से पूछा।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण गोवर्धन पर्वत उठाने की लीला करने और इन्द्र के मिथ्या गर्व को चूर करने के लिए उत्सुक थे इसलिए उन्होंने बड़ी ही चतुराई से आसन्न यज्ञ के विषय में अपने पिता से पूछा।

कथ्यतां मे पितः कोऽयं सम्भ्रमो व उपागतः ।
किं फलं कस्य वोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥ ३॥

शब्दार्थ

कथ्यताम्—आप बतलायें; मे—मुझे; पितः—मेरे पिता; कः—क्या; अयम्—यह; सम्भ्रमः—बड़ा भारी काम; वः—आप पर; उपागतः—आया हुआ; किम्—क्या; फलम्—परिणाम; कस्य—किसके; वा—तथा; उद्देशः—हेतु; केन—किस तरह; वा—तथा; साध्यते—सम्पन्न किया जाना है; मखः—यह यज्ञ।

[भगवान् कृष्ण ने कहा]: हे पिताश्री, आप कृपा करके मुझे बतलायें कि आप इतना सारा महत् प्रयास किसलिए कर रहे हैं? आप क्या करना चाह रहे हैं? यदि यह कर्मकाण्डी यज्ञ है, तो यह किसकी तुष्टि हेतु किया जा रहा है और यह किन साधनों से सम्पन्न किया जायेगा?

एतद्ब्रूहि महान्कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः ।
न हि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ।
अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; ब्रूहि—बतलाइये; महान्—महती; कामः—इच्छा; मह्यम्—मुझको; शुश्रूषवे—सुनने के लिए; पितः—हे पिताश्री; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; गोप्यम्—गोपनीय; हि—निश्चय ही; साधूनाम्—सन्त पुरुषों के; कृत्यम्—कार्यकलाप; सर्व-

आत्मनाम्—अपने तुल्य सबों को देखने वाला; इह—इस जगत में; अस्ति—है; अस्व-पर-दृष्टीनाम्—जो अपने तथा पराये में भेद नहीं करता; अमित्र-उदास्त-विद्विषाम्—जो मित्रों, उदासीन दलों तथा शत्रुओं में अन्तर नहीं करते।

हे पिताश्री, कृपा करके इसके विषय में मुझे बतलायें। मुझे जानने की बड़ी इच्छा है और मैं श्रद्धापूर्वक सुनने को तैयार हूँ। जो अन्यों को अपने तुल्य मानते हैं, जिनमें अपनी तथा पराये का भेदभाव नहीं है और जो यह नहीं विचार करते कि कौन मित्र है, कौन शत्रु है और कौन उदासीन है ऐसे सन्त पुरुषों को कुछ भी छिपाकर नहीं रखना चाहिए।

तात्पर्य : हो सकता है कि कृष्ण के पिता ने सोचा हो कि यह अभी छोटा-सा बालक है अतएव वह वैदिक यज्ञ की वैधता के विषय में ठीक से प्रश्न नहीं कर सकता। किन्तु कृष्ण के चतुराई भरे कथन ने नन्द को आश्वस्त कर दिया होगा कि श्रीकृष्ण एक गम्भीर प्रश्न कर रहा है, कोई ऊटपटाँग प्रश्न नहीं। अत: गम्भीर उत्तर दिया जाना चाहिए।

उदासीनोऽरिवद्वर्ज्य आत्मवत्सुहृदुच्यते ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

उदासीन:—विरस रहने वाला; अरि-वत्—शत्रु के समान; वर्ज्य:—बचना चाहिए; आत्म-वत्—अपने ही समान; सुहृत्—मित्र को; उच्यते—कहना चाहिए।

जो उदासीन (निरपेक्ष) होता है उससे शत्रु की तरह बचना चाहिए, किन्तु मित्र को अपने ही समान समझना चाहिए।

तात्पर्य : भले ही नन्द महाराज अपने मित्रों, शत्रुओं तथा निरपेक्ष पक्षों को अपने तुल्य न मानते रहे हों, किन्तु अपना पुत्र होने के कारण भगवान् कृष्ण अवश्य ही विश्वसनीय मित्र थे अतएव अंतरंग चर्चाओं में उन्हें उपेक्षित नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, भले ही गृहस्थ के रूप में नन्द महाराज ने यह सोचा हो कि वे सर्वोच्च सन्त पद पर स्थित होकर कर्म नहीं कर सकते, किन्तु भगवान् कृष्ण ने कुछ अन्य तथ्य प्रस्तुत किये जिसके फलस्वरूप उनके पिता को उन पर विश्वास करते हुए यज्ञ के पूरे उद्देश्य को प्रकट कर देना चाहिए।

श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार नन्द महाराज मौन खड़े थे और उन्हें अपने पितृ-विलगाव की स्थिति पर सन्देह हो रहा था क्योंकि गर्ग मुनि ने भविष्यवाणी की थी कि नन्द का पुत्र "अपने गुणों में नारायण के समान" होगा और यह युवा बालक पहले ही अनेक शक्तिशाली असुरों को पराजित करके उनका वध कर चुका था।

ज्ञात्वाज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति ।
विदुषः कर्मसिद्धिः स्याद्यथा नाविदुषो भवेत् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

ज्ञात्वा—जान लेने पर; अज्ञात्वा—अनजाने; च—भी; कर्माणि—कर्म; जनः—सामान्य लोग; अयम्—ये; अनुतिष्ठति—सम्पन्न करते हैं; विदुषः—विद्वान; कर्म-सिद्धिः—कर्म के वांछित लक्ष्य की पूर्ति; स्यात्—होती है; यथा—जिस तरह; न—नहीं; अविदुषः—मूर्ख के लिए; भवेत्—होता है।

जब इस जगत में लोग कर्म करते हैं, तो कभी तो वे समझते हैं कि वे क्या कर रहे हैं और कभी नहीं समझते। जो लोग यह जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं उन्हें अपने कार्य में सफलता प्राप्त होती है, जबकि अज्ञानी लोगों को सफलता नहीं मिलती।

तात्पर्य : भगवान् यहाँ पर अपने पिता को बता रहे हैं कि लोगों को चाहिए कि वे अपने मित्रों से परामर्श करके ही कोई विशेष उत्सव या कृत्य सम्पन्न करें। हमें परम्परा का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति यह भी नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है, तो भला उसे उस कार्य में सफलता कैसे मिल सकती है? इस श्लोक में भगवान् का यही महत्त्वपूर्ण तर्क है। चूँकि नन्द के तरुण पुत्र श्रीकृष्ण से अपने पिता के धार्मिक कृत्य में उत्साह दिखाने की आशा करना स्वाभाविक था, अतएव पिता का कर्तव्य था कि वे पुत्र से इस उत्सव की पूरी व्याख्या करते।

तत्र तावत्क्रियायोगो भवतां किं विचारितः ।
अथ वा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

तत्र तावत्—ऐसा होने से; क्रिया-योगः—यह सकाम उद्यम; भवताम्—आपका; किम्—क्या; विचारितः—शास्त्रसम्मत; अथ वा—या कि; लौकिकः—लोकरीति के अनुसार; तत्—वह; मे—मुझको; पृच्छतः—पूछ रहे; साधु—स्पष्ट; भण्यताम्—बतला दिया जाय।

ऐसा होने से, आप मुझे स्पष्ट रूप से अपने इस अनुष्ठान विषयक उद्योग को बतला दें। क्या यह उत्सव शास्त्रसम्मत है या केवल समाज की एक साधारण रीति?

श्रीनन्द उवाच

पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ।
तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

श्री-नन्दः उवाच—श्री नन्द महाराज ने कहा; पर्जन्यः—वर्षा के; भगवान्—महाप्रभु; इन्द्रः—इन्द्र; मेघाः—बादल; तस्य—उसके; आत्म-मूर्तयः—साकार प्रतिनिधि; ते—वे; अभिवर्षन्ति—सीधे वर्षा करते हैं; भूतानाम्—सारे जीवों की; प्रीणनम्—तुष्टि; जीवनम्—जीवनदायी शक्ति; पयः—दूध (के तुल्य)।

नन्द महाराज ने उत्तर दिया: महान् ईश्वर इन्द्र वर्षा के नियंत्रक हैं। ये बादल उन्हीं के साक्षात् प्रतिनिधि हैं और वे ही वर्षा करते हैं जिससे समस्त प्राणियों को सुख और जीवनदान मिलता है।

तात्पर्य : शुद्ध वर्षा-जल के बिना पृथ्वी न तो किसी को आहार, न ही पेय प्रदान कर सकती थी और न ही कहीं स्वच्छता रह सकती थी। अत: वर्षा की महत्ता का अनुमान लगा पाना कठिन है।

तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम् ।
द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; तात—हे पुत्र; वयम्—हम; अन्ये—अन्य लोग; च—भी; वाः-मुचाम्—बादलों के; पतिम्—स्वामी; ईश्वरम्—शक्तिशाली नियंत्रक को; द्रव्यैः—विविध वस्तुओं से; तत्-रेतसा—उसके वीर्य से; सिद्धैः—उत्पन्न; यजन्ते—पूजा करते हैं; क्रतुभिः—यज्ञ द्वारा; नराः—लोग।

हे पुत्र, केवल हम ही नहीं अपितु अन्य लोग भी वर्षा करने वाले इन बादलों के स्वामी की पूजा करते हैं। हम उन्हें अन्न तथा अन्य पूजा-सामग्री भेंट करते हैं, जो वर्षा रूपी उन्हीं के वीर्य से उत्पन्न होती है।

तात्पर्य : नन्द महाराज बड़े धैर्य से अपने नन्हेपुत्र श्रीकृष्ण को ''जीवन के यथार्थ'' समझाने का प्रयास कर रहे थे, किन्तु नन्द तथा वृन्दावन के समस्त वासियों को एक आश्चर्यजनक शिक्षा प्राप्त हुई जैसाकि इस अध्याय में बतलाया गया है।

तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे ।
पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तत्—उस यज्ञ के; शेषेण—जूठन से; उपजीवन्ति—अपना पेट पालते हैं; त्रि-वर्ग—जीवन के तीन लक्ष्य (धर्म, अर्थ तथा काम); फल-हेतवे—फल पाने के हेतु; पुंसाम्—मनुष्यों को; पुरुष-काराणाम्—मानवीय प्रयास में लगे; पर्जन्यः—इन्द्र; फल-भावनः—वांछित लक्ष्यों को प्रभावित करने वाले साधन।

इन्द्र के लिए सम्पन्न यज्ञों से बचे जूठन को ग्रहण करके लोग अपना जीवन-पालन करते हैं तथा धर्म, अर्थ और काम रूपी तीन लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार भगवान् इन्द्र उद्यमी पुरुषों की सकाम सफलता के लिए उत्तरदायी अभिकर्ता हैं।

तात्पर्य : कोई यह आक्षेप कर सकता है कि लोग कृषि, उद्योग इत्यादि के द्वारा अपना भरण-

पोषण करते हैं। किन्तु जैसाकि पहले उल्लेख हो चुका है कि सारे मानवीय तथा अमानवीय प्रयास भोजन तथा पय पर आश्रित होते हैं, जिन्हें पर्याप्त वर्षा के बिना उत्पन्न नहीं किया जा सकता। *त्रिवर्ग* शब्द के द्वारा नन्द ने यह भी बतलाया कि इन्द्र-यज्ञ के द्वारा प्राप्त होने वाली सम्पन्नता केवल इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं होती अपितु धर्म तथा आर्थिक विकास के लिए भी होती है। जब तक लोगों को भलीभाँति भोजन नहीं मिलता वे अपने कार्यों को ठीक से नहीं कर पाते और अपना कार्य किये बिना धार्मिक बन पाना अतीव कठिन है।

य एनं विसृजेद्धर्मं परम्पर्यागतं नरः ।
कामाद्द्वेषाद्भयाल्लोभात्स वै नाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; एनम्—इसको; विसृजेत्—बहिष्कार कर देता है; धर्मम्—धर्म को; परम्पर्य—परम्परा से; आगतम्—प्राप्त किया हुआ; नरः—व्यक्ति; कामात्—काम के वशीभूत होकर; द्वेषात्—शत्रुतावश; भयात्—भयवश; लोभात्—या लालच के वश में आकर; सः—वह; वै—निश्चय ही; न आप्नोति—नहीं प्राप्त करता है; शोभनम्—मंगल।

यह धर्म स्वस्थ परम्परा पर आश्रित है। जो कोई काम, शत्रुता, भय या लोभ वश इसका बहिष्कार करता है उसे निश्चय ही सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकेगा।

तात्पर्य : यदि कोई व्यक्ति काम, ईर्ष्या, भय या लोभ वश अपने धार्मिक कर्तव्यों की उपेक्षा करता है, तो उसका जीवन कभी भी प्रखर या पूर्ण नहीं हो सकता।

श्रीशुक उवाच
वचो निशम्य नन्दस्य तथान्येषां व्रजौकसाम् ।
इन्द्राय मन्युं जनयन्पितरं प्राह केशवः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; वचः—शब्द; निशम्य—सुनकर; नन्दस्य—महाराज नन्द के; तथा—और; अन्येषाम्—अन्य; व्रज-ओकसाम्—व्रज के निवासियों के; इन्द्राय—इन्द्र हेतु; मन्युम्—क्रोध; जनयन्—उत्पन्न करते हुए; पितरम्—अपने पिता से; प्राह—बोले; केशवः—भगवान् केशव।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब भगवान् केशव [कृष्ण] ने अपने पिता नन्द तथा व्रज के अन्य गुरुजनों के कथनों को सुना तो इन्द्र के प्रति क्रोध उत्पन्न करने के उद्देश्य से उन्होंने अपने पिता को इस प्रकार सम्बोधित किया।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि भगवान् कृष्ण की आन्तरिक इच्छा न केवल किसी देवता का अपमान करने की थी अपितु उस मिथ्या गर्व के पर्वत को ढहा देने की थी जो भगवान् के

उस क्षुद्र सेवक के मन में उत्पन्न हुआ था, जो इन्द्र के रूप में भगवान् का प्रतिनिधित्व कर रहा था। इस प्रकार भगवान् कृष्ण गोवर्धन पर्वत उठाकर गोवर्धन-पूजा नामक उल्लासपूर्ण वार्षिकोत्सव का शुभारम्भ करेंगे और वे अपने प्रिय भक्तों के साथ उस पर्वत के नीचे अनेक दिवसों तक बसे रहने की मनमोहक लीला का आनन्द मनाएँगे।

श्रीभगवानुवाच
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते ।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥ १३॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; कर्मणा—कर्म के बल से; जायते—उत्पन्न होता है; जन्तुः—जीव; कर्मणा—कर्म से; एव—ही; प्रलीयते—अपना विनाश करता है; सुखम्—सुख; दुःखम्—दुख; भयम्—भय; क्षेमम्—सुरक्षा; कर्मणा एव—कर्म से ही; अभिपद्यते—प्राप्त किये जाते हैं।

भगवान् कृष्ण ने कहा : कर्म से ही जीव जन्म लेता है और कर्म से ही उसका विनाश होता है। उसके सुख, दुख, भय तथा सुरक्षा की भावना का उदय कर्म के प्रभावों के रूप में होता है।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने कर्मवाद या कर्म-मीमांसा नामक दर्शन का कथन करके जो आधार रूप में पुनर्जन्म में विश्वास के साथ नास्तिकता है, देवताओं की महत्ता कम कर दी। इस दर्शन के अनुसार प्रकृति के सूक्ष्म नियम हमारे कर्म के अनुसार हमें पुरस्कृत या दण्डित करते हैं—जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे। भावी जीवन में मनुष्य अपने वर्तमान कर्म का फल पाता है और सच्चाई का सार यही है। साक्षात् भगवान् होने के कारण भगवान् कृष्ण इस मध्यम दर्शन के प्रस्तोता नहीं हो सकते। वे तो बालक रूप में अपने भक्तों के साथ छेड़खानी करने के लिए ऐसा उपदेश दे रहे थे।

श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि भगवान् कृष्ण सोच रहे थे कि ये मेरे सारे शाश्वत संगी जो मेरे पिता, सम्बन्धी तथा मित्रों के रूप में प्रकट हुए हैं इन्द्र की पूजा के प्रति इतने प्रतिबद्ध क्यों हैं ? इस तरह यद्यपि भगवान् का मुख्य उद्देश्य इन्द्र के मिथ्या गर्व को चूर करना था, किन्तु वे अपने भक्तों को यह भी याद दिलाना चाहते थे कि उन्हें अन्य तथाकथित देवताओं की ओर अपना ध्यान नहीं मोड़ना है क्योंकि वास्तव में उनके भक्त तो पहले से ही परम सत्य अर्थात् स्वयं सर्वशक्तिमान भगवान् के साथ रह रहे थे।

अस्ति चेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यन्यकर्मणाम् ।
कर्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥ १४॥

शब्दार्थ

अस्ति—है; चेत्—यदि मान लें; ईश्वरः—परम नियन्ता; कश्चित्—कोई; फल-रूपी—सकाम फल प्रदान करने वाला; अन्य-कर्मणाम्—अन्य व्यक्तियों के कर्मों का; कर्तारम्—कर्म का कर्ता; भजते—आश्रित होता है; सः—वह; अपि—भी; न—नहीं; हि—अन्ततः; अकर्तुः—कर्म न करने वाले का; प्रभुः—स्वामी; हि—निश्चय ही; सः—वह।

यदि कोई परम नियन्ता हो भी, जो अन्यों को उनके कर्मों का फल प्रदान करता हो तो उसे भी कर्म करने वाले पर आश्रित रहना होगा। वस्तुतः जब तक सकाम कर्म सम्पन्न न हो ले तब तक सकाम कर्मफलों के प्रदाता के अस्तित्व का प्रश्न ही नहीं उठता।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् कृष्ण तर्क करते हैं कि यदि कोई परम नियन्ता हो भी तो आदान-प्रदान के लिए उसे कर्म करने वाले पर आश्रित रहना होगा अतएव बद्धजीवों को पुण्य एवं पाप के नियमों के अनुसार सुख तथा दुख प्रदान करने के लिए बाध्य होने के कारण उसे कर्म के नियमों के अधीन होना पड़ेगा।

इस सतही तर्क में इस बात की उपेक्षा हो जाती है कि शुभ तथा अशुभ कर्मों के अच्छे तथा बुरे फलों की संस्तुति करने वाले प्रकृति के नियम सर्वमंगल परमेश्वर की ही सृष्टि हैं। इन नियमों के स्रष्टा तथा पालक होने के कारण, भगवान् उनके अधीन नहीं रहते। साथ ही, भगवान् बद्धजीवों के कर्म पर आश्रित नहीं होते क्योंकि वे अपने में तुष्ट और पूर्ण रहने वाले हैं। वे अपने सर्वदयालु स्वभाव के कारण हमारे कर्मों के अनुसार ही फल प्रदान करते हैं। जिसे हम भाग्य या कर्म कहते हैं वह पुरस्कार तथा दण्ड की सूक्ष्म प्रणाली है, जो बद्धजीवों को क्रमशः पूर्ण चेतना की अवस्था विकसित करने के निमित्त है और यही उनकी मूल स्वाभाविक प्रकृति है।

भगवान् ने मानव व्यवहार के लिए दण्ड तथा पुरस्कार को नियंत्रित करने वाले प्रकृति के नियमों को इस निपुणता से सूत्रबद्ध एवं प्रयुक्त किया है कि जीव शाश्वत आत्मा के रूप में अपनी स्वतंत्र इच्छा में किसी महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप के बिना पाप करने से निरुत्साहित होता है और अच्छाई की ओर प्रोत्साहित होता है।

भगवान् भौतिक प्रकृति से विपरीत आध्यात्मिक जगत में अपने अनिवार्य स्वभाव को प्रदर्शित करते हैं जहाँ वे अपने शुद्ध भक्तों के नित्य प्रेम से आदान-प्रदान करते हैं। ऐसे प्रेम-व्यापार भगवान् तथा उनके भक्तों की पारस्परिक स्वतंत्रता पर आधारित होते हैं, किसी स्वार्थ को लेकर नहीं। अपने

भक्तों की सहायता से भगवान् इस जगत के बद्धजीवों को बारम्बार अवसर प्रदान करते हैं कि वे भौतिक विश्व का शोषण करना त्याग कर आनन्द तथा ज्ञान से पूर्ण जीवन बिताने के लिए भगवद्धाम वापस जाँय। इन बातों पर विचार करते हुए भगवान् ने हँसी हँसी में जो नास्तिक तर्क प्रस्तुत किये हैं उन्हें गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए।

किमिन्द्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् ।
अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; इन्द्रेण—इन्द्र से; इह—यहाँ; भूतानाम्—जीवों के लिए; स्व-स्व—अपना अपना; कर्म—सकाम कर्म का; अनुवर्तिनाम्—फल भोगने वाले; अनीशेन—असमर्थ (इन्द्र); अन्यथा—अन्यथा; कर्तुम्—करने के लिए; स्वभाव—अपने बद्ध स्वभावों से; विहितम्—भाग्य में लिखा हुआ; नृणाम्—मनुष्यों के ।.

इस जगत में जीवों को अपने किसी विशेष पूर्व कर्म के परिणामों का अनुभव करने के लिए बाध्य किया जाता है। चूँकि भगवान् इन्द्र किसी तरह भी मनुष्यों के भाग्य को बदल नहीं सकते जो उनके स्वभाव से ही उत्पन्न होता है, तो फिर लोग उनकी पूजा क्यों करें?

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् कृष्ण का तर्क स्वच्छन्दता का निषेध नहीं करता। यदि मनुष्य कर्म को हमारे वर्तमान कार्यों का फल देने वाले नियमों की प्रणाली मान लेता है, तो हम अपने स्वभाव के अनुसार अपने भविष्य का निर्णय स्वयं करेंगे। इस जीवन के हमारे सुख तथा दुख पहले से हमारे पूर्व-जन्मों के कर्मों के अनुसार निश्चित कर दिये गये हैं जिसे देवता भी नहीं बदल सकते। वे हमारे पूर्व-कर्मों के अनुसार हमें सम्पन्नता या विपन्नता, रुग्णता या आरोग्य, सुख या दुख प्रदान करते हैं। फिर भी इस जीवन में शुभ या अशुभ कर्म करने की स्वच्छन्दता अब भी हम में है और हमारे चुनाव के अनुसार ही हमारे भावी सुख तथा दुख का निर्णय होगा।

उदाहरणार्थ, यदि मैं पूर्व-जन्म में पवित्र रहा होऊँगा तो देवता मुझे इस जन्म में प्रचुर सम्पत्ति प्रदान कर सकते हैं। किन्तु मैं अपने धन को अच्छे या बुरे कर्मों में व्यय करने के लिए स्वतंत्र हूँ और मेरे चुनाव से ही मेरे भावी जीवन का निश्चय होगा। इस तरह यद्यपि इस जीवन में मिलने वाले अपने कर्म-फलों को मनुष्य बदल नहीं सकता, किन्तु तो भी उसमें स्वतंत्र इच्छा होती है, जिससे वह अपने भविष्य को निश्चित कर सकता है। यहाँ पर भगवान् कृष्ण का तर्क बड़ा मजेदार है फिर भी इसमें इस निर्णायक विचार की उपेक्षा की गई है कि हम सभी ईश्वर के नित्यदास हैं और हमें अपने कर्म द्वारा

उन्हें प्रसन्न करना चाहिए।

स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते ।
स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

स्वभाव—अपने बद्ध स्वभाव के; तन्त्रः—नियंत्रण में; हि—निस्सन्देह; जनः—व्यक्ति; स्वभावम्—अपने स्वभाव का; अनुवर्तते—पालन करता है; स्वभाव-स्थम्—बद्ध लालसा पर आधारित; इदम्—यह संसार; सर्वम्—सम्पूर्ण; स—समेत; देव—देवतागण; असुर—असुरगण; मानुषम्—तथा मनुष्य जाति।

प्रत्येक व्यक्ति अपने ही बद्ध स्वभाव के अधीन है और उसे उस स्वभाव का ही पालन करना चाहिए। देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों से युक्त यह सम्पूर्ण जगत जीवों के बद्ध स्वभाव पर आश्रित है।

तात्पर्य : यहाँ पिछले श्लोक में दिये गये तर्क की भगवान् कृष्ण द्वारा व्याख्या की गई है। चूँकि हर बात *स्वभाव* पर निर्भर करती है, तो फिर ईश्वर या देवताओं की पूजा क्यों की जाय? यह तर्क भव्य हो सकता है यदि स्वभाव सर्वशक्तिमान होता। किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं है। इसके ऊपर कोई परम नियंता है हमें जिसकी पूजा करनी चाहिए जैसाकि आगे श्रीमद्भागवत के इस अध्याय में जोर देकर श्रीकृष्ण प्रकट करेंगे। इस समय तो उन्हें अपने सम्बन्धियों को तंग करने में मजा आ रहा है।

देहानुच्चावचाञ्जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ।
शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥ १७॥

शब्दार्थ

देहान्—भौतिक शरीरों को; उच्च-अवचान्—उच्च तथा निम्न श्रेणी के; जन्तुः—बद्धजीव; प्राप्य—पाकर; उत्सृजति—त्याग देता है; कर्मणा—अपने कार्यों के फलों के द्वारा; शत्रुः—उसका शत्रु; मित्रम्—मित्र; उदासीनः—तथा निरपेक्ष पक्ष; कर्म—भौतिक कार्य; एव—अकेला; गुरुः—उसका गुरु; ईश्वरः—उसका स्वामी।

चूँकि कर्म के ही फलस्वरूप बद्धजीव उच्च तथा निम्न श्रेणी के विविध शरीरों को स्वीकार करता है और फिर त्याग देता है अतएव यह कर्म उसका शत्रु, मित्र तथा निरपेक्ष साक्षी है, उसका गुरु तथा ईश्वर है।

तात्पर्य : देवतागण तक कर्म के नियमों द्वारा बँधे तथा मर्यादित हैं। यहाँ तक कि साक्षात् इन्द्र स्वयं कर्म के नियमों के अधीन हैं जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.५४) में स्पष्ट कहा गया है—*यस्त्विन्द्रगोपमथ वेन्द्रमहो स्वकर्म बन्धानुरूपफलभाजनम् आतनोति*– भगवान् गोविन्द सारे प्राणियों को

उनके कर्मों का उपयुक्त फल प्रदान करते हैं। यह स्वर्ग लोकों के राजा बलशाली इन्द्र तथा इन्द्रगोप नामक कीट पर समान रूप से लागू होता है। *भगवद्गीता* में भी (७.२०) कहा गया है— *कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना: प्रपद्यन्तेऽन्य देवता:*–जिन्होंने भौतिक इच्छाओं के वशीभूत होकर अपनी बुद्धि खो दी है वे ही भगवान् की पूजा न करके देवताओं की शरण में जाते हैं। वस्तुत: देवतागण किसी को भी स्वतंत्र रूप से वर नहीं दे सकते जैसाकि भगवान् कृष्ण ने 'गीता' में कहा है *मयैव विहितान् हि तान्*— सारे वर अन्तत: स्वयं भगवान् द्वारा प्रदत्त होते हैं।

यह कहना पूरी तरह से गलत नहीं है कि देव पूजा व्यर्थ है क्योंकि देवता भी कर्म के नियमों के अधीन हैं। वास्तव में, बात यही है। किन्तु परब्रह्म भगवान् कृष्ण कर्म के नियमों के अधीन नहीं हैं प्रत्युत वे स्वतंत्र रूप से वर दे सकते हैं या उसे रोक सकते हैं। इसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* के उपर्युक्त उद्धृत श्लोक से होती है, जिसकी तीसरी पंक्ति है—*कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्ति भाजाम्*—भगवान् प्रेमाभक्ति में लगे लोगों के समस्त संचित कर्म को जलाकर क्षार कर देते हैं। भगवान् कृष्ण न केवल कर्म के इन नियमों तथा उनके फल के ऊपर हैं अपितु वे प्रेमाभक्ति द्वारा प्रसन्न करने वाले के लिए इन नियमों को तुरन्त विलीन कर देते हैं। इस प्रकार सर्वशक्तिमान ईश्वर परम स्वतंत्र हैं और उनकी शरण में जाने पर हम कर्म के बन्धन से बच सकते हैं और उनकी किसी और की शोकप्रद राजसत्ता को सर्वोपरि मानने से इनकार कर सकते हैं।

तस्मात्सम्पूजयेत्कर्म स्वभावस्थ: स्वकर्मकृत् ।
अञ्जसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अत:; सम्पूजयेत्—पूरी तरह से पूजा करनी चाहिए; कर्म—अपना नियत कार्य; स्वभाव—अपने स्वभाव में; स्थ:—बने रहकर; स्व-कर्म—अपना नियत कर्तव्य; कृत्—करते हुए; अञ्जसा—बिना कठिनाई के; येन—जिससे; वर्तेत—जीवित रहता है; तत्—वह; एव—निश्चय ही; अस्य—उसका; हि—निस्सन्देह; दैवतम्—पूज्य अर्चाविग्रह।

अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह कर्म की ही ठीक से पूजा करे। मनुष्य को अपने स्वभाव के अनुरूप स्थिति में बने रहना चाहिए और अपने ही कर्तव्य का निर्वाह करना चाहिए। निस्सन्देह जिससे हम अच्छी तरह रह सकते हैं वही वास्तव में हमारा पूज्य अर्चाविग्रह है।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् कृष्ण इस आधुनिक बेहूदे दर्शन का सुझाव रखते हैं कि हमारा कर्म या काम-धंधा ही असली ईश्वर है और हमें केवल अपने कर्म की पूजा करनी चाहिए। ध्यानपूर्वक

छानबीन करने पर हम यह पायेंगे कि हमारा कर्म भौतिक प्रकृति के साथ भौतिक शरीर की अन्योन्य क्रिया है, जैसाकि स्वयं भगवान् कृष्ण ने कुछ गंभीरता के साथ *भगवद्गीता* (३.२८) में कहा है *गुणा गुणेषु वर्तन्त। कर्म मीमांसा* दर्शन के अनुसार इस जीवन में किये गये उत्तम कर्म से हमें उत्तमतर अगला जीवन प्राप्त होगा। यदि यह सच है, तो फिर शरीर से पृथक् किसी न किसी प्रकार का चेतन आत्मा होना चाहिए। और यदि ऐसा है, तो फिर दिव्य आत्मा क्यों कर प्रकृति के साथ क्षणिक शरीर की अन्योन्य क्रिया की पूजा करे? यदि *सम्पूजयेत् कर्म* शब्दों का यह अर्थ लिया जाय कि मनुष्य को कर्मों को नियंत्रित करने वाले कर्म के नियमों की पूजा करनी चाहिए तो यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि नियमों की पूजा करने से क्या होगा, ऐसे नियमों का उत्स क्या है और उनको कौन बनाये हुए है? यह कहना कि नियमों से इस संसार की सृष्टि हुई है या इसका पालन हो रहा है, निरर्थक है क्योंकि नियम की प्रकृति से यह नहीं इंगित होता कि उससे कोई जगत उत्पन्न हो सकता है, जिस पर यह स्वामित्व जमा सकता है। वस्तुतः पूजा तो स्वयं कृष्ण के निमित्त है। इस अध्याय में इसी निष्कर्ष को स्पष्ट किया गया है।

आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति ।
न तस्माद्विन्दते क्षेमं जारान्नार्यसती यथा ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

आजीव्य—जीवन निर्वाह करने वाला; एकतरम्—एक; भावम्—जीव; यः—जो; तु—लेकिन; अन्यम्—दूसरा; उपजीवति—स्वीकार करता है; न—नहीं; तस्मात्—उससे; विन्दते—प्राप्त करता है; क्षेमम्—असली लाभ; जारात्—परपति (उपपति) से; नारी—एक स्त्री; असती—दुष्टा; यथा—जिस तरह।

जो वस्तु वास्तव में हमारे जीवन का निर्वाह करती है यदि हम उसे छोड़कर अन्य वस्तु की शरण ग्रहण करते हैं, तो भला हमें असली लाभ कैसे प्राप्त हो सकता है? हम उस कृतघ्न स्त्री की भाँति होंगे जो जारपति के साथ प्रेमालाप करके कभी भी असली लाभ नहीं उठा पाती।

तात्पर्य : *क्षेमम्* शब्द का अर्थ है वास्तविक सम्पन्नता, मात्र धन का संचय नहीं। यहाँ पर भगवान् कृष्ण खुलकर तर्क करते हैं कि जिस तरह कोई स्त्री अवैध पति से वास्तविक प्रतिष्ठा या आलोक प्राप्त नहीं कर सकती उसी तरह वृन्दावन के निवासी अपनी सम्पन्नता के असली स्रोत की उपेक्षा करके उसके बदले इन्द्र की पूजा करके कभी भी सुखी नहीं हो सकते। श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार बालक कृष्ण ने अपने पिता तथा अन्य गरुजनों के समक्ष जो ढिठाई दिखलाई उसे उस दिव्य क्रोध का

प्रदर्शन मानना चाहिए जो अपने नित्य भक्तों द्वारा एक नगण्य देवता का पूजन करते देखकर उनमें प्रकट हुआ था।

वर्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः ।
वैश्यस्तु वार्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥ २० ॥

शब्दार्थ

वर्तेत—जीवित रहता है; ब्रह्मणा—वेदों से; विप्रः—ब्राह्मण; राजन्यः—शासक वर्ग का सदस्य; रक्षया—रक्षा द्वारा; भुवः—पृथ्वी की; वैश्यः—वैश्य; तु—दूसरी ओर; वार्तया—व्यापार द्वारा; जीवेत्—जीवित रहता है; शूद्रः—शूद्र; तु—तथा; द्विज-सेवया—द्विजों अर्थात् ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों की सेवा द्वारा।

ब्राह्मण वेदों का अध्ययन और अध्यापन करके, शासक वर्ग का सदस्य पृथ्वी की रक्षा करके, वैश्य व्यापार करके तथा शूद्र अपने से ऊँची श्रेणी के द्विजों की सेवा करके अपना जीवन-निर्वाह करता है।

तात्पर्य : कर्म की महिमा बतलाने के बाद भगवान् कृष्ण अब मनुष्य के स्वाभाविक कर्तव्यों की व्याख्या कर रहे हैं। वे किसी मनचले कार्य का नहीं अपितु वर्णाश्रम द्वारा निर्दिष्ट धार्मिक कार्यों का उल्लेख कर रहे हैं।

कृषिवाणिज्यगोरक्षा कुसीदं तूर्यमुच्यते ।
वार्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कृषि—खेती; वाणिज्य—व्यापार; गो-रक्षा—तथा गौवों की रक्षा; कुसीदम्—लेन-देन; तूर्यम्—चौथा; उच्यते—कहलाता है; वार्ता—वृत्तिपरक कार्य; चतुः-विधा—चार प्रकार का; तत्र—इनमें से; वयम्—हम; गो-वृत्तयः—गोरक्षा में लगे हुए; अनिशम्—अनवरत।

वैश्य के वृत्तिपरक कार्य चार प्रकार के माने गये हैं—कृषि, व्यापार, गोरक्षा तथा धन का लेन-देन। हम इनमें से केवल गोरक्षा में ही सदैव लगे रहे हैं।

सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ।
रजसोत्पद्यते विश्वमन्योन्यं विविधं जगत् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—सतोगुण; रजः—रजोगुण; तमः—तथा तमोगुण; इति—इस प्रकार; स्थिति—पालन; उत्पत्ति—सृजन; अन्त—तथा विनाश के; हेतवः—कारण; रजसा—रजोगुण से; उत्पद्यते—उत्पन्न होता है; विश्वम्—यह ब्रह्माण्ड; अन्योन्यम्—नर तथा मादा के संयोग से; विविधम्—अनेक प्रकार का बन जाता है; जगत्—संसार।

सृजन, पालन तथा संहार का कारण प्रकृति के तीन गुण—सतो, रजो तथा तमोगुण—हैं।

विशिष्टतः रजोगुण इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करता है और संभोग के द्वारा यह विविधता से पूर्ण बनता है।

तात्पर्य : गौवों पर आश्रित जीविका निश्चित रूप से भगवान् इन्द्र पर निर्भर करती है, जो वर्षा देते हैं ऐसे आक्षेप की सम्भावना की पूर्वकल्पना करके यहाँ पर भगवान् कृष्ण नास्तिकतावादी सांख्य नामक जगत के यांत्रिक सिद्धान्त का परिचय देते हैं। प्रकृति के यंत्रवत् कार्यों के लिए कारण को उत्तरदायी ठहराना अत्यन्त प्राचीन प्रवृत्ति है। भगवान् कृष्ण ने ५,००० वर्ष पूर्व मानव समाज में प्रचलित इस सिद्धान्त का उल्लेख किया था।

रजसा चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बूनि सर्वतः ।
प्रजास्तैरेव सिध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति ॥ २३॥

शब्दार्थ

रजसा—रजोगुण से; चोदिताः—प्रेरित; मेघाः—बादल; वर्षन्ति—वर्षा करते हैं; अम्बूनि—अपना जल; सर्वतः—सर्वत्र; प्रजाः—जनता; तैः—उस जल से; एव—ही; सिध्यन्ति—अपना अस्तित्व बनाये रहती है; महा-इन्द्रः—महान् इन्द्र; किम्—क्या; करिष्यति—कर सकता है।

रजोगुण द्वारा प्रेरित बादल सर्वत्र अपने जल की वर्षा करते हैं और इस वर्षा से ही सारे प्राणियों की जीविका चलती है। इस व्यवस्था से भला इन्द्र को क्या लेना-देना?

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण जगत के यांत्रिक सिद्धान्त की अपनी व्याख्या का समापन *महेन्द्रः किं करिष्यति* से करते हैं—"महान् इन्द्र की किसे आवश्यकता पड़ती है क्योंकि रजोगुण से प्रेरित बादल वर्षा करते हैं और यही वर्षा हरएक के लिए भोजन उत्पन्न करती है?" *सर्वतः* शब्द सूचित करता है कि समुद्र, शैल तथा ऊसर भूमि पर बादल खुले दिल से समान रूप से वर्षा करते हैं, जहाँ ऐसे मीठे जल की आवश्यकता नहीं दिखाई देती।

न नः पुरोजनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ।
वनौकसस्तात नित्यं वनशैलनिवासिनः ॥ २४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; नः—हमारे लिए; पुरः—नगर; जन-पदाः—विकसित आबाद क्षेत्र; न—नहीं; ग्रामाः—गाँव; न—नहीं; गृहाः—स्थायी घरों में रहने वाले; वयम्—हम; वन-ओकसः—बनों में रहने वाले; तात—हे पिता; नित्यम्—सदैव; वन—वनों में; शैल—तथा पर्वतों में; निवासिनः—रहने वाले।

हे पिताश्री, हमारे घर न तो नगरों में हैं, न कस्बों या गाँवों में हैं। वनवासी होने से हम सदैव

जंगल में तथा पर्वतों पर रहते हैं।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण यहाँ यह बतला रहे हैं कि वृन्दावनवासियों को गोवर्धन पर्वत तथा वृन्दावन के जंगलों से अपने सम्बन्ध को समझना चाहिए। उन्हें इन्द्र जैसे किसी लगुवे-भगुवे देवता की परवाह नहीं करनी चाहिए। अपना तर्क समाप्त करके वे अगले श्लोक में ठोस प्रस्ताव रखते हैं।

तस्माद्गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ।
य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतएव; गवाम्—गौवों का; ब्राह्मणानाम्—ब्राह्मणों का; अद्रेः—तथा पर्वत (गोवर्धन) का; च—भी; आरभ्यताम्—प्रारम्भ करना चाहिए; मखः—यज्ञ; ये—जो; इन्द्र-याग—इन्द्र यज्ञ के लिए; सम्भाराः—सामग्री; तैः—उनके द्वारा; अयम्—यह; साध्यताम्—सम्पन्न करना चाहिए; मखः—यज्ञ।

अतः गौवों, ब्राह्मणों तथा गोवर्धन पर्वत के आनन्द हेतु यज्ञ का शुभारम्भ हो। इन्द्र के पूजन के लिए जितनी सामग्री एकत्र की गई है उससे यह यज्ञ सम्पन्न किया जाय।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण *गो-ब्राह्मण-हित* के रूप में विख्यात हैं जिसका अर्थ है कि वे गौवों तथा ब्राह्मणों के शुभैषी मित्र हैं। भगवान् कृष्ण ने जानबूझ कर स्थानीय ब्राह्मणों को अपने प्रस्ताव में सम्मिलित किया क्योंकि वे दैवी वैदिक संस्कृति के प्रति अनुरक्त लोगों का सदैव सम्मान करते हैं।

पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः ।
संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

पच्यन्ताम्—लोग पकावें; विविधाः—नाना प्रकार के; पाकाः—पकवान्न से लेकर; सूप-अन्ताः—शोरबा तक; पायस-आदयः—खीर इत्यादि; संयाव-आपूप—तले हुए पापड़; शष्कुल्यः—पूड़ियाँ; सर्व—सब; दोहः—गौवों के दुहने से प्राप्तव्य; च—तथा; गृह्यताम्—ले लिया जाय।

खीर से लेकर तरकारी के शोरवे तक के विविध पकवान तैयार किये जायँ। अनेक प्रकार के बढ़िया पापड़ तल लिए जायँ या सेंक लिए जायें तथा दूध के जितने भी पदार्थ बन सकें उन्हें इस यज्ञ के लिए एकत्र कर लिया जाय।

तात्पर्य : *सूप* शब्द छीमियों के शोरवे तथा रसदार तरकारियों का सूचक है। इस तरह गोवर्धन पूजा के लिए भगवान् कृष्ण ने शोरबा जैसा गर्म पकवान, खीर जैसा ठंडा व्यंजन तथा सभी प्रकार की दूध की वस्तुएँ एकत्र करने के लिए कहा।

हूयन्तामग्नयः सम्यग्ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ।
अन्नं बहुगुणं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥ २७॥

शब्दार्थ

हूयन्ताम्—आह्वान किया जाय; अग्नयः—यज्ञ की अग्नियों का; सम्यक्—उचित रीति से; ब्राह्मणैः—ब्राह्मणों के द्वारा; ब्रह्म-वादिभिः—वेदविद्; अन्नम्—भोजन; बहु-गुणम्—अच्छी तरह से तैयार; तेभ्यः—उनको; देयम्—दिया जाय; वः—तुम्हारे द्वारा; धेनु-दक्षिणाः—गौवों की दक्षिणा।

वैदिक मंत्रों में पटु-ब्राह्मणों को चाहिए कि यज्ञ की अग्नियों का ठीक से आवाहन करें। तत्पश्चात् तुम लोग पुरोहितों को उत्तम भोजन कराओ और उन्हें गौवें तथा अन्य भेंटें दान में दो।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार, भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने पिता तथा वृन्दावन के अन्य वासियों को इस वैदिक यज्ञ की शास्त्रीय विधि का विस्तृत उपदेश दिया जिससे यज्ञ की गुणवत्ता के बारे में आश्वस्त हुआ जा सके और नन्द तथा अन्यों को ऐसे यज्ञ की भावभूमि में श्रद्धा से अनुप्राणित किया जा सके। इस प्रकार भगवान् ने बतलाया कि सनातनी ब्राह्मण, नियमित यज्ञ की अग्नियाँ और समुचित दान-वितरण का होना आवश्यक है। इन्हें भगवान् द्वारा बतलाए गए क्रम में सम्पन्न करना था।

अन्येभ्यश्चाश्वचाण्डालपतितेभ्यो यथार्हतः ।
यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

अन्येभ्यः—औरों के लिए; च—भी; आ-श्व-चाण्डाल—कुत्तों तथा चाण्डालों तक; पतितेभ्यः—ऐसे पतित लोगों के लिए; यथा—जिस तरह; अर्हतः—चाहिए; यवसम्—घास; च—तथा; गवाम्—गौवों को; दत्त्वा—देकर; गिरये—गोवर्धन नामक पर्वत को; दीयताम्—प्रदान की जानी चाहिए; बलिः—आदरपूर्ण भेंट।

कुत्तों तथा चाण्डालों जैसे पतितात्माओं समेत हर एक को उपयुक्त भोजन देने के बाद तुम सबों को चाहिए कि गौवों को घास दो और तब गोवर्धन पर्वत को अपनी सादर भेंटें चढ़ाओ।

स्वलङ्कृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः ।
प्रदक्षिणां च कुरुत गोविप्रानलपर्वतान् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

सु-अलङ्कृताः—सुन्दर आभूषण पहन कर; भुक्तवन्तः—भरपेट खाकर; सु-अनुलिप्ताः—शुभ चन्दनलेप करके; सु-वाससः—अच्छे वस्त्र पहन कर; प्रदक्षिणाम्—प्रदक्षिणा; च—तथा; कुरुत—तुमलोगों को करनी चाहिए; गो—गौवों; विप्र—ब्राह्मणों; अनल—यज्ञ की अग्नियों; पर्वतान्—तथा गोवर्धन पर्वत की भी।

भरपेट भोजन करने के बाद तुममें से हरएक को वस्त्र तथा आभूषण से खूब सजना चाहिए, अपने शरीर में चन्दनलेप करना चाहिए और तत्पश्चात् गौवों, ब्राह्मणों, यज्ञ की अग्नियों तथा

गोवर्धन पर्वत की प्रदक्षिणा करनी चाहिए।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण चाहते थे कि सारे मनुष्य तथा पशु तक उत्तम *भगवत्-प्रसाद* अर्थात् भगवान् को भेंट किए हुए शुद्ध भोजन खाँय। अपने परिजनों को प्रफुल्लित बनाने के लिए उन्होंने उन्हें सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से सजने और शरीर में बहुमूल्य चन्दनलेप करने का आग्रह किया। किन्तु मुख्य कृत्य तो पवित्र ब्राह्मणों, गौवों, यज्ञ अग्नियों तथा विशेषतया गोवर्धन पर्वत की प्रदक्षिणा करना था।

एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ।
अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यं च दयितो मखः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; मम—मेरा; मतम्—विचार; तात—हे पिताश्री; क्रियताम्—किया जाय; यदि—यदि; रोचते—अच्छा लगे; अयम्—यह; गो-ब्राह्मण-अद्रीणाम्—गौवों, ब्राह्मणों तथा गोवर्धन पर्वत को; मह्यम्—मेरे लिए; च—भी; दयितः—प्रिय; मखः—यज्ञ।.

हे पिताश्री, यह मेरा विचार है और यदि आपको अच्छा लगे तो आप इसे कीजिये। ऐसा यज्ञ गौवों, ब्राह्मणों तथा गोवर्धन पर्वत को एवं मुझको भी अत्यन्त प्रिय होगा।

तात्पर्य : ब्राह्मणों, गौवों तथा स्वयं भगवान् को जो भी अच्छा लगे वह शुभ है और अखिल विश्व के लिए लाभप्रद है। 'आधुनिक लोग' जोकि आध्यात्मिक रूप से अंधे हैं इसे नहीं समझते। इसके विपरीत वे जीवन के प्रति ''वैज्ञानिक'' दृष्टि-कोण रखने के कारण सम्पूर्ण पृथ्वी का विनाश करे जा रहे हैं।

श्रीशुक उवाच
कालात्मना भगवता शक्रदर्पजिघांसया ।
प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्याः साध्वगृह्णन्त तद्वचः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; काल-आत्मना—काल की शक्ति के रूप में प्रकट होकर; भगवता—भगवान् द्वारा; शक्र—इन्द्र का; दर्प—गर्व; जिघांसया—विनष्ट करने की इच्छा से; प्रोक्तम्—कहा गया; निशम्य—सुनकर; नन्द-आद्याः—नन्द तथा अन्य वृद्ध गोपजन; साधु—सर्वोत्तम कहकर; अगृह्णन्त—स्वीकार कर लिया; तत्-वचः—उनके शब्दों को।.

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : शक्तिमान काल स्वरूप भगवान् कृष्ण इन्द्र के मिथ्या गर्व को नष्ट करना चाहते थे। जब नन्द तथा वृन्दावन के अन्य वृद्धजनों ने श्रीकृष्ण का वचन सुना तो

उन्होंने इसे उचित मान लिया।

तथा च व्यदधुः सर्वं यथाह मधुसूदनः ।
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान् ॥ ३२ ॥
उपहृत्य बलीन्सम्यगादृता यवसं गवाम् ।
गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तथा—इस तरह; च—और; व्यदधुः—सम्पन्न किया; सर्वम्—हर बात; यथा—जिस तरह; आह—बतलाया; मधुसूदनः—भगवान् कृष्ण ने; वाचयित्वा—(ब्राह्मणों से) वाचन कराया; स्वस्ति-अयनम्—शुभ मंत्र; तत्-द्रव्येण—इन्द्र यज्ञ के निमित्त एकत्र की गई सामग्री से; गिरि—पर्वत; द्विजान्—तथा ब्राह्मणों को; उपहृत्य—भेंट करके; बलीन्—उपहार; सम्यक्—सभी एकसाथ; आदृताः—आदरपूर्वक; यवसम्—घास; गवाम्—गौवों को; गो-धनानि—साँड़ों, गौवों तथा बछड़ों को; पुरस्कृत्य—आगे करके; गिरिम्—पर्वत की; चक्रुः—की; प्रदक्षिणम्—प्रदक्षिणा।

तत्पश्चात् ग्वाल समुदाय ने मधुसूदन द्वारा प्रस्तावित सब कुछ पूरा किया। उन्होंने शुभ वैदिक मंत्रों का वाचन करने के लिए ब्राह्मणों की व्यवस्था की और इन्द्र-यज्ञ के निमित्त संग्रहीत सारी सामग्री को उपयोग में लाते हुए गोवर्धन पर्वत तथा ब्राह्मणों को सादर भेंटें दीं। उन्होंने गौवों को भी घास दिया। तत्पश्चात् गौवों, साँड़ों तथा बछड़ों को आगे करके गोवर्धन पर्वत की प्रदक्षिणा की।

तात्पर्य : वृन्दावनवासी एकमात्र भगवान् कृष्ण के भक्त थे, यही उनके जीवन का सार-समाहार था। भगवान् के नित्य संगी होने के कारण न तो उन्हें इन्द्र या किसी अनुष्ठान-यज्ञ से कोई सरोकार था, न ही वे कृष्ण द्वारा कहे गये यांत्रिक (सांख्य) दर्शन में रुचि रखते थे। वे तो कृष्ण से केवल प्रेम करते थे और प्रगाढ़ स्नेहवश ही उन्होंने जैसा कृष्ण द्वारा कहा गया वैसा ही किया।

उनकी यह सरल प्रेम-मानसिकता कोई संकीर्ण हृदयता या अज्ञान न थी क्योंकि वे परमपूर्ण सत्य के प्रति अनुरक्त थे जो अपने में सारा ब्रह्माण्ड समाये हुए हैं। इस तरह वृन्दावनवासियों ने निरन्तर सभी सत्यों के आधारभूत सर्वोच्च, अनिवार्य सत्य अर्थात् स्वयं श्रीकृष्ण का अनुभव किया जो समस्त कारणों के कारण तथा इस जगत का पालन करने वाले हैं। वृन्दावनवासी उन परब्रह्म की प्रेमाभक्ति से अभिभूत रहते थे अतएव वे समस्त प्राणियों में परम भाग्यशाली, परम बुद्धिमान तथा परम व्यावहारिक थे।

अनांस्यनडुद्युक्तानि ते चारुह्य स्वलङ्कृताः ।
गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायन्त्यः सद्विजाशिषः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

अनांसि—छकड़े; अनडुत्-युक्तानि—बैलों से नँधे; ते—वे; च—और; आरुह्य—चढ़कर; सु-अलङ्कृताः—उत्तम आभूषण पहने; गोप्यः—गोपियाँ; च—तथा; कृष्ण-वीर्याणि—भगवान् कृष्ण की महिमाओं को; गायन्त्यः—गाती हुई; स—के साथ; द्विज—ब्राह्मणों के; आशिषः—आशीर्वाद।

बैलों द्वारा खींचे जा रहे छकड़ों में चढ़कर सुन्दर आभूषणों से अलंकृत गोपियाँ भी साथ हो लीं और कृष्ण की महिमा का गान करने लगीं और उनके गीत ब्राह्मणों के आशीष के साथ समामेलित हो गये।

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः ।
शैलोऽस्मीति ब्रुवन्भूरि बलिमादद्बृहद्वपुः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

कृष्णः—भगवान् कृष्ण; तु—और तब; अन्यतमम्—दूसरा; रूपम्—स्वरूप; गोप-विश्रम्भणम्—गोपों में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए; गतः—धारण किया; शैलः—पर्वत; अस्मि—हूँ; इति—ये वचन; ब्रुवन्—कहते हुए; भूरि—प्रचुर; बलिम्—भेंट; आदत्—निगल गये; बृहत्-वपुः—अपने विराट रूप में ।

तत्पश्चात् कृष्ण ने गोपों में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए अभूतपूर्व विराट रूप धारण कर लिया और यह घोषणा करते हुए कि ''मैं गोवर्धन पर्वत हूँ'' प्रचुर भेंटें खा लीं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* के चौबीसवें अध्याय में लिखा है, ''जब सारी तैयारी पूरी हो गई तो कृष्ण ने महान् दिव्य रूप धारण कर लिया और यह आश्वस्त करने के लिए कि गोवर्धन पर्वत और कृष्ण एक ही हैं वृन्दावनवासियों से बोले कि मैं ही साक्षात् गोवर्धन पर्वत हूँ। तत्पश्चात् वे वहाँ पर भेंट किया हुआ सारा भोजन खाने लगे। आज भी कृष्ण तथा गोवर्धन के स्वरूप का आदर किया जाता है। बड़े बड़े भक्त गोवर्धन पर्वत से शिलाएँ लेकर उनकी उसी तरह पूजा करते हैं जिस तरह मन्दिरों में कृष्ण के अर्चाविग्रह की पूजा की जाती है। इसीलिए भक्तगण गोवर्धन पर्वत से छोटे-छोटे पत्थर या कंकड़ बीनकर घर लाते हैं और उन्हें पूजते हैं क्योंकि यह पूजा अर्चाविग्रह पूजा जैसी है।''

भगवान् कृष्ण ने अपनी ओर से वृन्दावनवासियों को महत्त्वपूर्ण मुसीबत मोल लेने के लिए प्रेरित किया था। उन्हें शक्तिशाली विश्व-सरकार के यज्ञ की उपेक्षा करके उसके बदले गोवर्धन पर्वत की पूजा करने के लिए आश्वस्त किया। गोपसमाज ने कृष्ण-प्रेमवश ही यह सब किया और अब उन्हें यह विश्वास दिलाने के लिए कि जो कुछ भी उन्होंने किया है, वह सही है भगवान् कृष्ण ने अभूतपूर्व दिव्य

स्वरूप धारण किया और यह दिखला दिया कि वे ही गोवर्धन पर्वत हैं।

तस्मै नमो व्रजजनै: सह चक्र आत्मनात्मने ।
अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उनको; नमः—नमस्कार; व्रज-जनैः—व्रज के लोगों के; सह—साथ; चक्रे—बनाया; आत्मना—अपने से; आत्मने—अपने में; अहो—ओह; पश्यत—जरा देखो; शैलः—पर्वत ने; असौ—यह; रूपी—रूप धारण किये; नः—हम पर; अनुग्रहम्—कृपा; व्यधात्—प्रदान की।

कृष्ण ने व्रजवासियों समेत गोवर्धन पर्वत के इस स्वरूप को नमन किया और इस तरह वास्तव में अपने को ही नमस्कार किया। तत्पश्चात् उन्होंने कहा, ''जरा देखो तो, यह पर्वत किस तरह पुरुष रूप में प्रकट हुआ है और इसने हम पर कृपा की है।''

तात्पर्य : इस श्लोक से स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण ने अपना विस्तार किया था। वे वृन्दावन के उत्सव मनाने वालों के बीच अपने सामान्य रूप में दिख रहे थे जबकि उसी के साथ गोवर्धन पर्वत के विराट रूप में भी प्रकट हो रहे थे। इस तरह बालक कृष्ण ने वृन्दावनवासियों को अपने गोवर्धन पर्वत रूपी नए अवतार के समक्ष नमन करने को कहा और सबों को बतलाया कि गोवर्धन के इस दैवी रूप ने उन पर महती कृपा की है। कृष्ण के विस्मयकारी दिव्य कार्यकलाप आमोद-प्रमोद युक्त वातावरण के अनुरूप थे।

एषोऽवजानतो मर्त्यान्कामरूपी वनौकसः ।
हन्ति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह; अवजानतः—लापरवाह; मर्त्यान्—मर्त्यों को; काम-रूपी—इच्छानुसार रूप धारण करने वाले (यथा पर्वतों में रहने वाले सर्प); वन-ओकसः—वनवासी; हन्ति—मार डालेंगे; हि—निश्चय ही; अस्मै—उसको; नमस्यामः—नमस्कार करें; शर्मणे—रक्षा करने के लिए; आत्मनः—हम सबकी; गवाम्—तथा गौवों की।

यह गोवर्धन पर्वत इच्छानुसार रूप धारण करके अपनी उपेक्षा करने वाले वन के किसी भी निवासी को मार डालेगा। अत: अपनी तथा गौवों की सुरक्षा के लिए हम उसको नमस्कार करें।

तात्पर्य : *काम-रूपी* शब्द बतलाता है कि गोवर्धन पर्वत विषैले साँपों, जंगली पशुओं, गिरती चट्टानों इत्यादि का रूप धारण कर सकता है और ये सारे रूप मनुष्य को मारने में सक्षम हैं।

श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार भगवान् ने इस अध्याय में सिद्धान्त की छः बातें कही हैं—

(१) केवल कर्म ही किसी के भाग्य का निश्चय कर सकता है (२) मनुष्य का बद्ध स्वभाव उसका परम नियन्ता है (३) प्रकृति के गुण सर्वोच्चनियन्ता हैं (४) भगवान् कर्म के आश्रित पक्ष के रूप में हैं, (५) वे कर्म-नियंत्रण के अधीन हैं; तथा (६) मनुष्य की वृत्ति ही वास्तविक आराध्यदेव है।

भगवान् ने इन तर्कों को सबों के समक्ष इसलिए नहीं प्रस्तुत किया कि वे उनमें विश्वास करते थे अपितु इसलिए कि वे इन्द्र के आसन्न यज्ञ को रोककर उन्हें गोवर्धन पर्वतस्वरूप स्वयं की ओर मोड़ना चाहते थे। इस तरह से भगवान् ने उस मिथ्याभिमानी देवता को उद्वेलित करना चाहा।

इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रचोदिताः ।
यथा विधाय ते गोपा सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार से; अद्रि—गोवर्धन पर्वत; गो—गौवें; द्विज—तथा ब्राह्मणों को; मखम्—विशाल यज्ञ; वासुदेव—कृष्ण द्वारा; प्रचोदिताः—प्रेरित; यथा—उचित ढंग से; विधाय—सम्पन्न करके; ते—वे; गोपाः—गोपजन; सह-कृष्णाः—कृष्ण के साथ; व्रजम्—व्रज को; ययुः—गये।

इस प्रकार भगवान् वासुदेव द्वारा समुचित ढंग से गोवर्धन-यज्ञ सम्पन्न करने के लिए प्रेरित किये गये गोपजन गौवें तथा ब्राह्मण कृष्ण के साथ अपने गाँव व्रज लौट आये।

तात्पर्य : यद्यपि गोवर्धन पूजा बड़े ही आनन्दपूर्ण ढंग से सफलतापूर्ण सम्पन्न हो गई, किन्तु मामला यहीं समाप्त नहीं हुआ। आखिरकार देवता इन्द्र अत्यधिक शक्तिशाली जो ठहरा, अतः जब उसे गोवर्धन-यज्ञ की जानकारी मिली तो वह क्रोध से आग बबूला हो उठा। इसके आगे जो कुछ हुआ उसका वर्णन अगले अध्याय में मिलेगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत "गोवर्धन-पूजा" नामक चौबीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter पच्चीस

कृष्ण द्वारा गोवर्धन-धारण

इस अध्याय में वर्णन हुआ है कि जब व्रजवासियों ने इन्द्र-यज्ञ निरस्त कर दिया तो इन्द्र किस तरह क्रोधित हुआ, उसने किस तरह वृन्दावन में प्रलयंकारी वर्षा करके उन्हें दण्डित करना चाहा और भगवान् श्रीकृष्ण ने किस तरह गोवर्धन पर्वत उठाकर गोकुल की रक्षा की तथा वर्षा से बचाने के लिए

वे पर्वत को छाते की तरह सात दिनों तक धारण किये रहे।

अपने निमित्त होने वाले यज्ञ का विध्वंस होने से क्रुद्ध होकर तथा झूठे ही अपने को सर्वोच्च नियन्ता मानते हुए इन्द्र ने कहा, ''लोग प्राय: आत्म-साक्षात्कार के साधन दिव्य ज्ञान का अनुशीलन त्याग देते हैं और सोचते हैं कि संसारी सकाम यज्ञों द्वारा भवसागर को पार कर सकते हैं। इसी तरह ये गोप दर्प से उन्मत्त हो गये हैं और एक मूर्ख सामान्य बालक कृष्ण की शरण ग्रहण करके इन्होंने मेरा अपमान किया है।''

व्रजवासियों के इस मिथ्याभिमान को चूर करने के लिए इन्द्र ने संवर्तक नामक बादलों को भेजा जिनका कार्य संसार के संहार में सहायता करना है। उसने व्रजवासियों को वर्षा तथा ओलों से तंग करने के लिए उन्हें भेजा। इससे ग्वाल समुदाय अति विचलित हो उठा और वे सब कृष्ण की शरण में पहुँचे। कृष्ण समझ गये कि यह इन्द्र की करतूत है अतएव उन्होंने इन्द्र के मिथ्या अहंकार को चूर-चूर करने का निश्चय किया। इसीलिए उन्होंने अपने एक हाथ से गोवर्धन पर्वत को उठा लिया। तत्पश्चात् उन्होंने सारे ग्वालों को पर्वत के नीचे सूखे स्थान में शरण लेने के लिए बुलाया। वे लगातार सात दिनों तक पर्वत को इसी तरह उठाये रहे जब तक इन्द्र को कृष्ण की योगशक्ति का पता नहीं चल गया। तब इन्द्र ने बादलों को हट जाने का आदेश दिया।

जब ग्रामीण ग्वाले पर्वत के नीचे से बाहर आ गये तो कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उसके स्थान पर फिर से रख दिया। सारे ग्वाले आनन्दमग्न थे और उनकी आँखों से अश्रु बह रहे थे तथा रोमांच हो रहा था। उन्होंने कृष्ण का आलिंगन किया और अपनी अपनी पद-स्थिति के अनुसार उन्हें आशीर्वाद दिया। स्वर्ग से देवताओं ने उन पर फूल बरसाये तथा उनकी प्रशंसा में गीत गाये।

श्रीशुक उवाच
इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ।
गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप ह ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इन्द्रः—इन्द्र; तदा—तब; आत्मनः—अपनी; पूजाम्—पूजा; विज्ञाय—जानकर; विहताम्—दूसरे को समर्पित की गई; नृप—हे राजन् (परीक्षित); गोपेभ्यः—ग्वालों पर; कृष्ण-नाथेभ्यः—कृष्ण को अपना स्वामी मानने वाले; नन्द-आदिभ्यः—नन्द महाराज इत्यादि पर; चुकोप ह—क्रुद्ध हुआ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित, जब इन्द्र को पता चला कि उसका यज्ञ सम्पन्न

नहीं हुआ तो वह नन्द महाराज तथा अन्य गोपजनों पर क्रुद्ध हो गया क्योंकि वे सब कृष्ण को अपना स्वामी मान रहे थे।

तात्पर्य : शुकदेव गोस्वामी इस अध्याय के प्रारम्भ में ही इन्द्र की मूर्खता तथा उसके क्रोध की बेहूदगी को प्रकट किये दे रहे हैं। इन्द्र इसलिए रुष्ट था क्योंकि वृन्दावनवासियों ने कृष्ण को अपना स्वामी मान लिया था। किन्तु तथ्य तो यह है कि श्रीकृष्ण न केवल वृन्दावनवासियों के स्वामी हैं अपितु इन्द्र समेत सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं। अत: इन्द्र की धृष्ट प्रतिक्रिया हास्यास्पद थी। यह कहावत ठीक ही है कि "घमंडी का सिर नीचा होता है।"

गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चान्तकारीणाम् ।
इन्द्रः प्रचोदयत्क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २॥

शब्दार्थ

गणम्—समूह; सांवर्तकम् नाम—सांवर्तक नामक; मेघानाम्—बादलों का; च—तथा; अन्त-कारिणाम्—ब्रह्माण्ड का अन्त करने वाले; इन्द्रः—इन्द्र ने; प्रचोदयत्—भेजा; क्रुद्धः—क्रुद्ध, नाराज; वाक्यम्—वचन; च—तथा; आह—कहा; ईश-मानी—झुठे ही अपने को सर्वोच्च नियन्ता सोचते हुए; उत—निस्सन्देह।

क्रुद्ध इन्द्र ने ब्रह्माण्ड का विनाश करने वाले बादलों के समूह को भेजा जो सांवर्तक कहलाते हैं। वह अपने को सर्वोच्च नियन्ता मानते हुए इस प्रकार बोला।

तात्पर्य : *ईश-मानी* शब्द यहाँ पर अत्यन्त सार्थक है। उद्धत इन्द्र अपने को ईश्वर मानता था अतएव उसने बद्धजीव जैसी विशिष्ट मनोवृत्ति का प्रदर्शन किया। बीसवीं सदी के अनेक विचारकों ने हमारी संस्कृति की व्यक्तिगत प्रतिष्ठा के अतिशय भाव पर ध्यान दिया है; यहाँ तक कि लेखकों ने "मेरी पीढ़ी" जैसा शब्द भी गढ़ा है। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति कम या ज्यादा *ईश-मान* (जिसमें वह अपने को ईश्वर मानता है) का दोषी है।

अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३॥

शब्दार्थ

अहो—जरा देखो तो; श्री—ऐश्वर्य के कारण; मद—नशे का; माहात्म्यम्—विस्तार; गोपानाम्—ग्वालों का; कानन—वन में; ओकसाम्—वास करने वाले; कृष्णम्—कृष्ण को; मर्त्यम्—सामान्य मनुष्य की; उपाश्रित्य—शरण ग्रहण करके; ये—जिन्होंने; चक्रुः—किया है; देव—देवताओं के प्रति; हेलनम्—अपराध।

[इन्द्र ने कहा]: जरा देखो तो सही कि जंगल में वास करने वाले ये ग्वाले अपने वैभव से

किस तरह इतने उन्मत्त हो गये हैं! उन्होंने एक सामान्य मनुष्य कृष्ण की शरण ग्रहण की है और इस तरह उन्होंने देवताओं का अपमान किया है।

तात्पर्य : वास्तव में इन्द्र यह कह रहा था कि ग्वालों ने उस कृष्ण की शरण में जाकर उसका अपमान किया है, जिसे वह *मर्त्य* समझ रहा था। निश्चय ही इन्द्र की यह बहुत बड़ी भूल थी।

यथाद्दढै: कर्ममयै: क्रतुभिर्नामनौनिभै: ।
विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षन्ति भवार्णवम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; अद्दढै:—अपर्याप्त; कर्म-मयै:—सकाम कर्म पर आधारित; क्रतुभि:—यज्ञों के द्वारा; नाम—नाममात्र को; नौ-निभै:—नावों की तरह कार्य करने वाले; विद्याम्—ज्ञान को; आन्वीक्षिकीम्—आध्यात्मिक; हित्वा—त्यागकर; तितीर्षन्ति—पार करने का प्रयास करते हैं; भव-अर्णवम्-थे ओचेअन् ओफ् मतेरिअल् एक्सिस्तेन्चे.

उनके द्वारा कृष्ण की शरण ग्रहण करना वैसा ही है जैसा कि लोगों द्वारा दिव्य आत्म-ज्ञान को त्यागकर सकाम कर्ममय यज्ञों की मिथ्या नावों में चढ़कर इस महान् भवसागर को पार करने का मूर्खतापूर्ण प्रयास होता है।

वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

वाचालम्—बातूनी; बालिशम्—बालक; स्तब्धम्—उद्धत; अज्ञम्—मूर्ख; पण्डित-मानिनम्—अपने आपको चतुर मानने वाले; कृष्णम्—कृष्ण को; मर्त्यम्—मनुष्य को; उपाश्रित्य—शरण लेकर; गोपा:—ग्वालों ने; मे—मेरे विरुद्ध; चक्रु:—कार्य किया है; अप्रियम्—अनुचित।.

इन ग्वालों ने इस सामान्य मनुष्य कृष्ण की शरण ग्रहण करके मेरे प्रति शत्रुतापूर्ण कार्य किया है क्योंकि कृष्ण अपने को अत्यन्त चतुर मानता है किन्तु है, वह निरा मूर्ख, अकडू तथा बातूनी बालक।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार इन्द्र के अपमान के माध्यम से देवी सरस्वती कृष्ण की प्रशंसा कर रही हैं। आचार्य की व्याख्या है : "*बालिशम्* का अर्थ है 'बालक की भाँति किसी बनावट से रहित।' *स्तब्धम्* का अर्थ है कि वे किसी के समक्ष नतमस्तक नहीं होते क्योंकि उन्हें किसी को नमस्कार नहीं करना है। *अज्ञम्* का अर्थ है कि उन्हें कुछ और जानने के लिए शेष नहीं क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं। *पण्डितमानिनम्* का अर्थ है कि वे ब्रह्मवादियों द्वारा अत्यधिक सम्मानित हैं तथा *कृष्णम्* का

अर्थ है कि वे परब्रह्म हैं जिनका दिव्य स्वरूप सनातन तथा आनन्दमय है। *मर्त्यम्* का अर्थ है कि यद्यपि वे ब्रह्म हैं किन्तु तो भी अपने भक्तों के स्नेहवश वे इस जगत में मानव रूप में प्रकट होते हैं।''

इन्द्र *वाचालम्* कहकर कृष्ण की निन्दा करना चाहता था क्योंकि उन्होंने कर्म मीमांसा तथा सांख्य दर्शन के विषय में अनेक निर्भीक तर्क प्रस्तुत किये थे यद्यपि वे उन तर्कों को स्वीकार नहीं करते थे। इसलिए इन्द्र ने उन्हें *बालिश* अर्थात् मूर्ख कहा। इन्द्र ने उन्हें *स्तब्ध* कहा क्योंकि उन्होंने अपने पिता के समक्ष भी निडर होकर भाषण किया था। इस तरह यद्यपि इन्द्र ने श्रीकृष्ण की आलोचना करने का प्रयास किया किन्तु भगवान् का चरित्र निर्दोष है और इस अध्याय से पता चलेगा कि किस तरह इन्द्र उनके पद को समझ सका।

एषां श्रियावलिप्तानां कृष्णेनाध्मापितात्मनाम् ।
धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशून्नयत सङ्क्षयम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

एषाम्—उनके; श्रिया—ऐश्वर्य से; अवलिप्तानाम्—उन्मत्त; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; आध्मापित—सुरक्षित; आत्मनाम्—हृदयों वाले; धुनुत—हटा दो; श्री—उनके धन पर आधारित; मद—घमंड; स्तम्भम्—मिथ्याअभिमान; पशून्—पशुओं को; नयत—ले जाओ; सङ्क्षयम्—विनाश के कगार पर।

[इन्द्र ने सांवर्तक मेघों से कहा]: इन लोगों की सम्पन्नता ने इन्हें मदोन्मत्त बना दिया है और इनका अक्खड़पन कृष्ण द्वारा समर्थित है। अब तुम जाओ और उनके गर्व को चूर कर दो और उनके पशुओं का विनाश कर डालो।

तात्पर्य : इस श्लोक से स्पष्ट है कि वृन्दावनवासी एकमात्र गौवों की रक्षा करने से समृद्ध बन चुके थे क्योंकि इन्द्र सम्पत्ति पर आश्रित उनके तथाकथित गर्व को उनके पशुओं को मारकर चूर करना चाहता था। ठीक से चराई गई गौवें प्रचुर मात्रा में दूध देती हैं जिससे पनीर, मक्खन, दही, घी आदि प्राप्त होते हैं। ये स्वयं तो स्वादिष्ट भोजन हैं ही, फलों, तरकारियों तथा अन्नों को भी सुस्वादु बनाते हैं। मक्खन लगने से रोटी तथा तरकारी स्वादिष्ट बन जाती है और जब फलों के साथ मलाई या दही मिला दिया जाता है, तो वे क्षुधावर्धक बन जाते हैं। सभ्य समाज में दूध की बनी वस्तुओं का होना वाँछित है और यदि उपयोग के बाद ये वस्तुएँ बचें तो इनके बदले में अन्य मूल्यवान वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं। इस तरह वृन्दावनवासी वैदिक दुग्ध व्यवसाय से भौतिक दृष्टि से धनी, स्वस्थ तथा सुखी थे और उनमें से अधिकांश लोग भगवान् कृष्ण के नित्य संगी थे।

**अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् ।
मरुद्गणैर्महावेगैर्नन्दगोष्ठजिघांसया ॥ ७॥**

शब्दार्थ

अहम्—मैं; च—भी; ऐरावतम्—ऐरावत नामक; नागम्—हाथी पर; आरुह्य—चढ़कर; अनुव्रजे—पीछे पीछे आऊँगा; व्रजम्—व्रज में; मरुत्-गणैः—वायुदेवों को साथ लेकर; महा-वेगैः—अत्यन्त वेग से चलने वाले; नन्द-गोष्ठ—नन्द महाराज के गोप समुदाय को; जिघांसया—विनष्ट करने के विचार से।

मैं अपने हाथी ऐरावत पर चढ़कर तथा अपने साथ वेगवान एवं शक्तिशाली वायुदेवों को लेकर नन्द महाराज के ग्वालों के ग्राम को विध्वंस करने के लिए तुम लोगों के पीछे रहूँगा।

तात्पर्य : इन्द्र के रोष से भयभीत सांवर्तक मेघों ने उसके आदेश का पालन किया जैसाकि अगले श्लोक में वर्णित है।

श्रीशुक उवाच
**इत्थं मघवताज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः ।
नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥ ८॥**

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस प्रकार से; मघवता—इन्द्र द्वारा; आज्ञप्ताः—आदेश दिये गये; मेघाः—बादल; निर्मुक्त-बन्धनाः—अपने बन्धनों से मुक्त (यद्यपि संसार के विनाशकाल तक उन्हें वश में रहना था); नन्द-गोकुलम्—नन्द महाराज के चरागाहों पर; आसारैः—मूसलाधार वर्षा द्वारा; पीडयाम् आसुः—सताने लगे; ओजसा—अपनी शक्ति-भर।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इन्द्र के आदेश से प्रलयंकारी मेघ समय से पूर्व अपने बन्धनों से मुक्त होकर नन्द महाराज के चरागाहों पर गये। वहाँ वे व्रजवासियों पर मूसलाधार वर्षा करके उन्हें सताने लगे।

तात्पर्य : सांवर्तक मेघ समूची पृथ्वी पर एकमात्र विशाल सागर से छा सकते थे। इन मेघों ने महान् शक्ति के साथ व्रज की समतल भूमि को आप्लावित करना प्रारम्भ कर दिया।

**विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः ।
तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९॥**

शब्दार्थ

विद्योतमानाः—प्रकाशित होकर; विद्युद्भिः—बिजली की चमक से; स्तनन्तः—गरजते हुए; स्तनयित्नुभिः—गर्जन से; तीव्रैः—भयानक; मरुत्-गणैः—वायुदेवों द्वारा; नुन्नाः—कर्षित; ववृषुः—बरसाये; जल-शर्कराः—ओले।

भयानक वायुदेवों द्वारा उत्प्रेरित बादल बिजलियों की चमक से प्रज्ज्वलित हो उठे और

ओलों की वर्षा करते हुए कड़कड़ाहट के साथ गरजने लगे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की व्याख्या है कि *मरुद्-गणै* शब्द सात महान् वायुओं का सूचक हैं—यथा भुवर्लोक का अधिष्ठाता आवह तथा लोकों को स्थिर रखने वाला प्रवह।

स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ।
जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

स्थूणा—खम्भों के समान; स्थूलाः—स्थूल, मोटी; वर्स-धाराः—वर्षा की धाराएँ; मुञ्चत्सु—छोड़ते हुए, गिराते हुए; अभ्रेषु—बादलों में; अभीक्ष्णशः—निरन्तर; जल-ओघैः—जल की बाढ़ से; प्लाव्यमाना—जलमग्न होकर; भूः—पृथ्वी; न अदृश्यत—दिखलाई नहीं पड़ती थी; नतौन्नतम्—नीची या ऊँची।

जब बादलों ने बड़े-बड़े खम्भों जैसी मोटी वर्षा की धाराएँ गिराईं तो पृथ्वी बाढ़ से जलमग्न हो गई और ऊँची या नीची भूमि का पता नहीं चल पा रहा था।

अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः ।
गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अति-आसार—मूसलाधार वर्षा से; अति-वातेन—तथा अत्यधिक हवा से; पशवः—गौवें तथा अन्य पशु; जात-वेपनाः—काँपते हुए; गोपाः—गोपगण; गोप्यः—गोपियाँ; च—भी; शीत—जाड़े से; आर्ताः—पीड़ित; गोविन्दम्—गोविन्द के पास; शरणम्—शरण के लिए; ययुः—गये।

अत्यधिक वर्षा तथा हवा के कारण काँपती हुई गौवें तथा अन्य पशु और शीत से पीड़ित ग्वाले तथा गोपियाँ—ये सभी शरण के लिए गोविन्द के पास पहुँचे।

शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः ।
वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

शिरः—अपने सिरों; सुतान्—अपने बालकों को; च—और; कायेन—अपने शरीरों से; प्रच्छाद्य—ढककर; आसार-पीडिताः—मूसलाधार वर्षा से पीड़ित; वेपमानाः—थरथराती; भगवतः—भगवान् के; पाद-मूलम्—चरणकमलों के नीचे; उपाययुः—पहुँची।

भीषण वर्षा से उत्पन्न पीड़ा से काँपती तथा अपने सिरों और अपने बछड़ों को अपने शरीरों से ढकने का प्रयास करती हुईं गौवें भगवान् के चरणकमलों में जा पहुँचीं।

कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ।

त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद्भक्तवत्सल ॥ १३॥

शब्दार्थ

कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; महा-भग—हे परम भाग्यशाली; त्वत्-नाथम्—अपने स्वामी; गो-कुलम्—गौवों के समुदाय को; प्रभो—हे स्वामी; त्रातुम् अर्हसि—रक्षा कीजिये; देवात्—इन्द्र देव से; नः—हमको; कुपितात्—कुपित; भक्त-वत्सल—हे भक्तों के वत्सल।

[गोपों तथा गोपियों ने भगवान् को सम्बोधित करते हुए कहा]: हे कृष्ण, हे भाग्यशाली कृष्ण, आप इन्द्र के क्रोध से इन गौवों को उबारें। हे प्रभु, आप अपने भक्तों पर इतने वत्सल हैं। कृपया आप हमें भी बचा लें।

तात्पर्य : कृष्णजन्म के समय गर्ग मुनि ने भविष्यवाणी की थी—*अनेन सर्वदुर्गाणि यूयम् अञ्जस् तरिष्यथ* (भागवत १०.८.१६)—इनकी कृपा से आप आसानी से सारे कष्टों को पार कर लेंगे। वृन्दावनवासियों को पूर्ण विश्वास था कि ऐसी भारी-विपत्ति में श्रीनारायण उनकी रक्षा करने के लिए कृष्ण को शक्ति प्रदान करेंगे। उन्होंने कृष्ण को सर्वस्व मान रखा था और कृष्ण उनके प्रेम को अंगीकार कर चुके थे।

शिलावर्षातिवातेन हन्यमानमचेतनम् ।
निरीक्ष्य भगवान्मेने कुपितेन्द्रकृतं हरिः ॥ १४॥

शब्दार्थ

शिला—उपलों (ओलों) की; वर्ष—वर्षा द्वारा; अति-वातेन—तथा तेज हवा द्वारा; हन्यमानम्—प्रताड़ित; अचेतनम्—अचेत; निरीक्ष्य—देखकर; भगवान्—भगवान्; मेने—विचार किया; कुपित—क्रुद्ध; इन्द्र—इन्द्र द्वारा; कृतम्—किया गया; हरिः—हरि ने।

ओलों तथा तेज वायु के प्रहार से अचेत हुए जैसे गोकुलवासियों को देखकर भगवान् हरि समझ गये कि यह कुपित इन्द्र की करतूत है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का कहना है कि इन्द्र ने वृन्दावनवासियों पर जो कहर ढाया वह भगवान् कृष्ण तथा व्रजवासियों के प्रेम-व्यापार को बढ़ाने के लिए कृष्ण की लीलाशक्ति द्वारा नियोजित था। भूखे व्यक्ति का दृष्टान्त देते हुए आचार्य कहते हैं कि भूख की पीड़ा से उस सुख में वृद्धि होती है, जो उसे उत्तम भोजन खाने पर मिलता है। इस तरह भूख से भोजन करने का आनन्द बढ़ जाता है। इसी प्रकार वृन्दावनवासियों को यद्यपि सामान्य भौतिक चिन्ता का अनुभव नहीं हो रहा था किन्तु इन्द्र के कार्यों से आन्तरिक पीड़ा पहुँच रही थी जिससे कृष्ण के ध्यान में तीव्रता बढ़ी। और जब भगवान् ने कर दिखाया तो परिणाम अद्‌भुत निकला।

अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ।
स्वयागे विहतेऽस्माभिरिन्द्रो नाशाय वर्षति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अप-ऋतु—ऋतु के बिना; अति-उल्बणम्—घनघोर; वर्षम्—वर्षा; अति-वातम्—तेज हवा सहित; शिला-मयम्—ओलों से पूर्ण; स्व-यगे—अपना यज्ञ; विहते—रोक दिये जाने से; अस्माभिः—हमारे द्वारा; इन्द्रः—इन्द्र; नाशाय—विनाश के लिए; वर्षति—वर्षा कर रहा है।

[श्रीकृष्ण ने अपने आप कहा]: चूँकि हमने उसका यज्ञ रोक दिया है, अतः इन्द्र अति प्रचण्ड हवा और ओलों के साथ घनघोर एवं बिना ऋतु की वर्षा कर रहा है।

तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये ।
लोकेशमानिनां मौढ्याद्धनिष्ये श्रीमदं तमः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तत्र—इस दशा में; प्रति-विधिम्—सामना करने के उपाय; सम्यक्—समुचित रीति से; आत्म-योगेन—अपनी योगशक्ति से; साधये—व्यवस्था करूँगा; लोक-ईश—संसार के स्वामी; मानिनाम्—झूठे ही अपने को मानने वाले; मौढ्यात्—मूर्खतावश; हनिष्ये—पराजित करूँगा; श्री-मदम्—ऐश्वर्य से उत्पन्न गर्व को; तमः—अज्ञान।

मैं अपनी योगशक्ति से इन्द्र द्वारा उत्पन्न इस उत्पात का पूरी तरह सामना करूँगा। इन्द्र जैसे देवता अपने ऐश्वर्य का घमंड करते हैं और मूर्खतावश वे झूठे ही अपने को ब्रह्माण्ड का स्वामी समझने लगते हैं। मैं अब ऐसे अज्ञान को नष्ट कर दूँगा।

न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः ।
मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निश्चय ही; सत्-भाव—सतोगुण से; युक्तानाम्—युक्त; सुराणाम्—देवताओं के; ईश—नियन्ता; विस्मयः—झूठी पहचान; मत्तः—मुझसे; असताम्—अशुद्ध; मान—मिथ्या अभिमान का; भङ्गः—समूल विनाश; प्रशमाय—उन्हें राहत दिलाने के लिए; उपकल्पते—इच्छा है।

चूँकि देवता सतोगुण से युक्त होते हैं अतः अपने को स्वामी मानने का मिथ्या अभिमान उनमें बिल्कुल नहीं आना चाहिए। जब मैं सतोगुण से विहीन उनके मिथ्या अभिमान को भंग करता हूँ तो मेरा उद्देश्य उन्हें राहत दिलाना होता है।

तात्पर्य : देवताओं को *सद्भावयुक्त* माना जाता है क्योंकि वे भगवान् द्वारा नियुक्त सेवक होते हैं। *भगवद्गीता* (४.२४) में कहा गया है–

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

''भगवान् को समुचित रीति से दी गई भेंट आध्यात्मिक बन जाती है।'' देवतागण ब्रह्माण्ड के प्रशासन में विविध विभागों का कार्यभार सँभालकर भगवान् की भक्ति में लगे रहते हैं। अतएव देवताओं या भगवान् के सेवकों के रूप में उनका अस्तित्व शुद्ध होता है (*सद्भाव*)। जब देवतागण भगवान् द्वारा प्रदत्त उच्च पद के अनुरूप नहीं रह पाते और अपने समुचित व्यवहार से विपथ होते हैं, तो वे देवताओं के रूप में कार्य न करके बद्धजीवों जैसा कार्य करते हैं।

मान अर्थात् मिथ्या प्रतिष्ठा निश्चय ही बद्धात्मा के लिए चिन्ता से युक्त भार होती है। मिथ्या अहंकारी व्यक्ति कभी शान्त या संतुष्ट नहीं रहता क्योंकि वह अपने विषय में मिथ्या तथा अतिशयोक्तिपूर्ण बोध रखता है। जब भगवान् का सेवक *असत्* अर्थात् अधर्मी बन जाता है, तो भगवान् उसके मिथ्या गर्व को चूर करके उसे अधर्म से बचाते हैं जिसके कारण वह अपराधी या पापी बनता है। भगवान् ने स्वयं कहा है— *यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनै*—मैं मनुष्य का तथाकथित ऐश्वर्य हर कर उसे आशीर्वाद देता हूँ।

जैसाकि रूप गोस्वामी ने बतलाया है भगवद्भक्ति की उन्नत अवस्था *युक्तवैराग्य* है, जिसमें इस संसार के ऐश्वर्य का सदुपयोग भगवान् के मिशन को पूरा करना होता है। स्पष्ट है कि इस संसार की सारी वस्तुएँ भगवान् की महिमा का प्रसार करने और सत्समाज की सृष्टि करने में बड़े आश्चर्यजनक ढंग से प्रयुक्त की जा सकती हैं। अत्यधिक उन्नत भक्त कभी भी भौतिक साज-सामान से ठगा नहीं जाता अपितु वह इसका सदुपयोग भगवान् के आनन्द हेतु अपना कर्तव्य मान कर ईमानदारी से करता है। यहाँ पर, इन्द्र यह भूल गया कि वह ईश्वर का विनीत सेवक है इसीलिए कृष्ण ने इस मोहग्रस्त देवता को पाठ पढ़ाना चाहा।

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; मत्-शरणम्—मेरी शरण में आया हुआ; गोष्ठम्—गोप समुदाय; मत्-नाथम्—मुझको अपना स्वामी मानकर; मत्-परिग्रहम्—मेरा ही परिवार; गोपाये—मैं रक्षा करूँगा; स्व-आत्म-योगेन—अपनी योगशक्ति द्वारा; सः अयम्—यह; मे—मेरे द्वारा; व्रतः—व्रत, प्रण; आहितः—लिया गया है।

अतएव मुझे अपनी दिव्यशक्ति से गोप समुदाय की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि मैं ही उनका

आश्रय हूँ, मैं ही उनका स्वामी हूँ और वे मेरे अपने परिवार के ही हैं। मैंने अपने भक्तों की रक्षा का व्रत जो ले रखा है।

तात्पर्य : *मच्छरणम्* शब्द न केवल यह सूचित करता है कि कृष्ण व्रजजन के एकमात्र आश्रय थे अपितु यह भी कि कृष्ण ने उनके बीच अपना घर बना रखा था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *अनेकार्थ वर्ग* कोश से *शरणं गृहरक्षित्रोः* उद्‌धृत किया है। इस तरह *शरणं* शब्द घर या रक्षक का द्योतक हो सकता है। वृन्दावनवासियों ने कृष्ण को अपना प्रिय बालक, मित्र, प्रेमी तथा प्राण मान रखा था और भगवान् उनकी भावनाओं को जानते थे। इस तरह कृष्ण इन भाग्यशाली लोगों के बीच रहते हुए उनके घरों तथा खेतों में विचरण करते थे। स्वाभाविक है कि वे ऐसे घनिष्ट भक्तों की सभी प्रकार के संकटों से रक्षा करते।

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ।
दधार लीलया विष्णुश्छत्राकमिव बालकः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; एकेन—एक; हस्तेन—हाथ से; कृत्वा—लेकर; गोवर्धन-अचलम्—गोवर्धन पर्वत को; दधार—धारण कर लिया; लीलया—आसानी से; विष्णुः—भगवान् विष्णु ने; छत्राकम्—कुकुरमुत्ता; इव—के समान; बालकः—बालक।

यह कहकर साक्षात् विष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण ने एक हाथ से गोवर्धन पर्वत को ऊपर उठा लिया जिस तरह कि कोई बालक कुकुरमुत्ते को उखाड़कर हाथ में ले लेता है।

तात्पर्य : *हरिवंश* में इसकी पुष्टि की गई है कि कृष्ण ने अपने बाएँ हाथ से गोवर्धन पर्वत को उठाया—*स धृतः सङ्गतो मेघैर्गिरिः सव्येन पाणिना*—उन्होंने बाएँ हाथ से पर्वत उठा लिया जो बादलों को छू रहा था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार जब कृष्ण गोवर्धन पर्वत उठाने जा रहे थे तो उनकी योग-मायाशक्ति की अंशरूपा संहारिकी ने आकाश से क्षण-भर के से बादलों को हटा दिया जिससे जब वे अपने घर के आगे से पर्वत तक तेजी से दौड़कर गये तो न तो उनका दुपट्टा भीजा न ही अन्य वस्त्र।

अथाह भगवान्गोपान्हेऽम्ब तात व्रजौकसः ।
यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; आह—बोले; भगवान्—भगवान्; गोपान्—गोपों से; हे—अरे; अम्ब—माता; तात—हे पिता; व्रज-ओकसः—अरे व्रजवासियो; यथा-उपजोषम्—जैसे तुम्हें रुचे; विशत—प्रवेश करो; गिरि—इस पर्वत के; गर्तम्—नीचे की खाली जगह में; स-गोधनाः—अपनी गौवों समेत।

तत्पश्चात् भगवान् ने गोप समुदाय को सम्बोधित किया: हे मैया, हे पिताश्री, हे व्रजवासियो, यदि चाहो तो अपनी गौवों समेत तुम अब इस पर्वत के नीचे आ जाओ।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस सम्बन्ध में यह अन्तर्दृष्टि प्रदान की है : सामान्यतया विशाल गो समुदाय जिसमें हजारों गौवें, बछड़े, साँड़ इत्यादि थे, गोवर्धन जैसे मध्यम आकार वाले पर्वत के नीचे नहीं आ सकता था। किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के हाथों का स्पर्श पाकर इस पर्वत ने हर्षातिरेक के कारण अचिन्त्य शक्ति प्राप्त कर ली और क्रुद्ध इन्द्र द्वारा किये गये हजारों वज्र के आघातों को कोमल सुगंधित फूलों की भेंट जैसा अनुभव किया। कभी कभी तो गोवर्धन को ऐसा लगता था कि वज्र का आघात हो भी रहा है या नहीं। आचार्य ने *हरिवंश* से स्वयं श्रीकृष्ण के वचनों को भी उद्धृत किया है—*त्रैलोक्यमप्युत्सहते रक्षितुं किं पुनर्व्रजम्*—यह गोवर्धन पर्वत तीनों लोकों को शरण दे सकता है, केवल व्रजभूमि की तो बात ही क्या!

जब इन्द्र का आक्रमण शुरू हुआ और कृष्ण ने पर्वत उठा लिया तो पर्वत के अगल-बगल खड़े मृग, जंगली सुअर तथा अन्य पशु एवं पक्षीगण पर्वत की चोटी पर चढ़ गये और उन्हें तनिक भी व्यथा का अनुभव नहीं हुआ।

न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातनात् ।
वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; त्रासः—भय; इह—इस बारे में; वः—तुम लोगों के द्वारा; कार्यः—अनुभव किया जाना चाहिए; मत्-हस्त—मेरे हाथ से; अद्रि—पर्वत के; निपातनात्—गिरने से; वात—वायु; वर्ष—तथा वर्षा के; भयेन—भय से; अलम्—पर्याप्त; तत्-त्राणम्—उससे रक्षा; विहितम्—प्रदान की गई है; हि—निश्चय ही; वः—तुम लोगों के लिए।

तुम्हें डरना नहीं चाहिए कि यह पर्वत मेरे हाथ से छूटकर गिर जायेगा। न ही तुम लोग हवा तथा वर्षा से भयभीत होओ क्योंकि इन कष्टों से तुम्हारे छुटकारे की व्यवस्था पहले ही की जा चुकी है।

तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसः ।

यथावकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥ २२॥

शब्दार्थ

तथा—इस प्रकार; निर्विविशुः—प्रवेश किया; गर्तम्—गढ़े में; कृष्ण—कृष्ण द्वारा; आश्वासित—आश्वासन दिये गये; मानसः—मन से; यथा-अवकाशम्—सुविधापूर्वक; स-धनाः—अपनी गौवों समेत; स-व्रजाः—तथा अपने छकड़ों समेत; स-उपजीविनः—अपने आश्रितों (यथा सेवकों तथा ब्राह्मणों) समेत।

इस प्रकार भगवान् कृष्ण द्वारा उनके मन आश्वस्त किये गये और वे सभी पर्वत के नीचे प्रविष्ट हुए जहाँ उन्हें अपने लिए तथा अपनी गौवों, छकड़ों, सेवकों तथा पुरोहितों के लिए और साथ ही साथ समुदाय के अन्य सदस्यों के लिए पर्याप्त स्थान मिल गया।

तात्पर्य : वृन्दावन के सारे घरेलू पशुओं को शरण दिलाने के लिए गोवर्धन पर्वत के नीचे ले जाया गया।

क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः ।
वीक्ष्यमाणो दधाराद्रिं सप्ताहं नाचलत्पदात् ॥ २३॥

शब्दार्थ

क्षुत्—भूख; तृट्—तथा प्यास; व्यथाम्—पीड़ा; सुख—सुख का; अपेक्षाम्—सारा विचार; हित्वा—ताक पर रखकर; तैः—उन; व्रज-वासिभिः—व्रजवासियों के द्वारा; वीक्ष्यमाणः—देखे जाकर; दधार—धारण किये रहे; अद्रिम्—पर्वत को; सप्त-अहम्—सात दिनों तक; न अचलत्—हिले-डुले नहीं; पदात्—उस स्थान से।

भूख तथा प्यास भूलकर और अपनी सारी व्यक्तिगत सुविधाओं को ताक पर रखकर भगवान् कृष्ण पर्वत को धारण किये हुए सात दिनों तक वहीं पर खड़े रहे और सारे व्रजवासी उन्हें निहारते रहे।

तात्पर्य : *विष्णु पुराण* के अनुसार—

व्रजैकवासिभिर्हर्ष विस्मिताक्षैर्निरीक्षितः

गोपगोपीजनैर्हृष्टै प्रीतिविस्फारितेक्षणै

संस्तूयमानचरितः कृष्णः शैलमधारयत् ॥

''कृष्ण ने पर्वत को उठा लिया तो व्रजवासी उनकी प्रशंसा करने लगे। अब उन सबों को उनके साथ रहने का सुअवसर जो प्राप्त हुआ था और वे उन्हें प्रफुल्लित तथा चकित नेत्रों से निहार रहे थे। इस प्रकार सारे गोप तथा गोपियाँ प्रफुल्लित थे और स्नेहवश उन्होंने अपने नेत्रों को विस्फारित कर लिया।''

श्रीकृष्ण के सौन्दर्य तथा माधुर्य का निरन्तर अमृत-पान करते हुए व्रजवासियों को न तो भूख लगी,

न प्यास, न थकान। और कृष्ण भी उनके मनोहर रूपों को देख-देखकर खाना, पीना तथा सोना भूल गये। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इंगित करते हैं कि सांवर्तक मेघों से सात दिनों तक लगातार वर्षा होने पर भी मथुरा जनपद में बाढ़ नहीं आई क्योंकि भगवान् अपनी माया से भूमि में गिरते ही जल को सुखा देते थे। इस प्रकार कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत का उठाया जाना मनोहारी विवरणों से भरा पड़ा है और हजारों वर्षों से सर्वाधिक प्रसिद्ध लीला बना रहा है।

कृष्णयोगानुभावं तं निशम्येन्द्रोऽतिविस्मितः ।
निस्तम्भो भ्रष्टसङ्कल्पः स्वान्मेघान्सन्न्यवारयत् ॥ २४॥

शब्दार्थ

कृष्ण—कृष्ण की; योग—योगशक्ति के; अनुभावम्—प्रभाव को; तम्—उस; निशम्य—देखकर; इन्द्रः—इन्द्र ने; अति-विस्मितः—अत्यन्त चकित; निस्तम्भः—मिथ्या गर्व के चूर होने से; भ्रष्ट—नष्ट; सङ्कल्पः—संकल्प वाला; स्वान्—अपने ही; मेघान्—मेघों को; सन्न्यवारयत्—रोक दिया।

जब इन्द्र ने कृष्ण की योगशक्ति के इस प्रदर्शन को देखा तो वह आश्चर्यचकित हो उठा। अपने मिथ्या गर्व के चूर होने से तथा अपने संकल्पों के नष्ट होने से उसने अपने बादलों को थम जाने का आदेश दिया।

खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम् ।
निशम्योपरतं गोपान्गोवर्धनधरोऽब्रवीत् ॥ २५॥

शब्दार्थ

खम्—आकाश को; वि-अभ्रम्—बादलों से रहित; उदित—उदय हुआ; आदित्यम्—सूर्य को; वात-वर्षम्—हवा तथा वर्षा को; च—तथा; दारुणम्—भयानक; निशम्य—देखकर; उपरतम्—बन्द किया हुआ; गोपान्—ग्वालों को; गोवर्धन-धरः—गोवर्धन पर्वत को उठाने वाला; अब्रवीत्—बोला।

यह देखकर कि अब भीषण हवा तथा वर्षा बन्द हो गई है, आकाश बादलों से रहित हो चुका है और सूर्य उदित हो आया है, गोवर्धनधारी कृष्ण ग्वाल समुदाय से इस प्रकार बोले।

निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः ।
उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः ॥ २६॥

शब्दार्थ

निर्यात—बाहर जाओ; त्यजत—छोड़ दो; त्रासम्—अपना भय; गोपाः—हे ग्वालो; स—सहित; स्त्री—अपनी स्त्रियों; धन—धन; अर्भकाः—तथा बालकों; उपारतम्—समाप्त हो गई; वात-वर्षम्—तेज हवा तथा वर्षा; वि-उद—जल से रहित; प्रायाः—लगभग; च—तथा; निम्नगाः—नदियाँ।

[भगवान् कृष्ण ने कहा]: हे गोपजनो, अब अपनी पत्नियों, बच्चों तथा सम्पदाओं समेत

बाहर निकल जाओ। अपना भय त्याग दो। तेज हवा तथा वर्षा रुक गई है और नदियों की बाढ़ का पानी उतर गया है।

ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम् ।
शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥ २७॥

शब्दार्थ

ततः—तब; ते—वे; निर्ययुः—बाहर गये; गोपाः—गोपजन; स्वम् स्वम्—अपनी अपनी; आदाय—लेकर; गो-धनम्—अपनी गौवें; शकट—छकड़ों पर; ऊढ—लादकर; उपकरणम्—अपनी सामग्री; स्त्री—स्त्रियाँ; बाल—बालक; स्थविराः—तथा वृद्धजन; शनैः—धीरे धीरे।

अपनी अपनी गौवें समेट कर तथा अपनी सारी साज-सामग्री अपने छकड़ों में लाद कर सारे गोपजन बाहर चले आये। स्त्रियाँ, बच्चे तथा वृद्ध पुरुष धीरे धीरे उनके पीछे पीछे चल पड़े।

भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत्प्रभुः ।
पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥ २८॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; अपि—भी; तम्—उस; शैलम्—पर्वत को; स्व-स्थाने—उसके स्थान पर; पूर्व-वत्—पहले की तरह; प्रभुः—सर्वशक्तिमान; पश्यताम्—देखते ही देखते; सर्व-भूतानाम्—समस्त प्राणियों के; स्थापयाम् आस—उन्होंने रख दिया; लीलया—सरलतापूर्वक।

सारे प्राणियों के देखते देखते भगवान् ने पर्वत को उसके मूल स्थान में रख दिया जिस तरह कि वह पहले खड़ा था।

तं प्रेमवेगान्निर्भृता व्रजौकसो
यथा समीयुः परिरम्भणादिभिः ।
गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन्मुदा
दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥ २९॥

शब्दार्थ

तम्—उनको; प्रेम—अपने शुद्ध प्रेम के; वेगात्—वेग से; निर्भृताः—पूर्ण हुए; व्रज-ओकसः—व्रजवासी; यथा—अपने अपने पद के अनुसार; समीयुः—आगे आये; परिरम्भण-आदिभिः—आलिंगन आदि द्वारा; गोप्यः—गोपियाँ; च—तथा; स-स्नेहम्—स्नेहपूर्वक; अपूजयन्—आदर किया; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक; दधि—दही; अक्षत—समूचे चावल के दाने; अद्भिः—तथा जल से; युयुजुः—भेंट किया; सत्—उत्तम; आशिषः—आशीर्वाद।

वृन्दावन के सारे निवासी प्रेम से अभिभूत थे। उन्होंने आगे बढ़कर अपने अपने रिश्ते के अनुसार श्रीकृष्ण को बधाई दी—किसी ने उनको गले लगाया, तो कोई उनके समक्ष नतमस्तक हुआ इत्यादि-इत्यादि। गोपियों ने सम्मान के प्रतीकस्वरूप उन्हें दही तथा अक्षत, जौ मिलाया

हुआ जल अर्पित किया। उन्होंने कृष्ण पर आशीर्वादों की झड़ी लगा दी।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर विवेचना करते हुए लिखते हैं कि प्रत्येक वृन्दावनवासी कृष्ण को अपने-अपने ढंग से मानता था—कोई अपने को छोटा, कोई अपने को उनके समान तो कोई अपने को उनसे ज्येष्ठ मानता था और वे तदनुसार उनसे बर्ताव करते थे। कृष्ण से ज्येष्ठ लोगों ने उन्हें आशीर्वाद दिया, प्रेमपूर्वक उनके सिर को सूँघा, चूमा, उनके बाजुओं और उँगलियों को दबाया और स्नेहपूर्वक पूछा कि वे थके तो नहीं या कि उन्हें पीड़ा तो नहीं हुई। कृष्ण के समवयस्क उनके साथ हँसी-ठिठोली करने लगे और उनसे छोटे लोग उनके चरणों पर गिर पड़े और उनके पाँवों की मालिश करने लगे।

इस श्लोक में *च* शब्द बतलाता है कि गोपियों के साथ ब्राह्मणपत्नियों ने भी दही तथा अक्षत जैसी शुभ वस्तुएँ भेंट कीं। भगवान् कृष्ण को जो आशीर्वाद मिले वे इस प्रकार थे, ''आप दुष्टों का दमन करें, भद्र लोगों की रक्षा करें, अपने माता-पिता को आनन्द प्रदान करें और धन तथा वैभव से समृद्ध हों।''

यशोदा रोहिणी नन्दो रामश्च बलिनां वरः ।
कृष्णमालिङ्ग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यशोदा—माता यशोदा; रोहिणी—रोहिणी; नन्दः—नन्द महाराज; रामः—बलराम ने; च—भी; बलिनाम्—बलवानों में; वरः—सर्वश्रेष्ठ; कृष्णम्—कृष्ण को; आलिङ्ग्य—चूमते हुए; युयुजुः—प्रदान किया; आशिषः—आशीर्वाद; स्नेह—स्नेह से; कातराः—अभिभूत।

माता यशोदा, रोहिणी, नन्द महाराज तथा बलिष्ठों में सर्वश्रेष्ठ बलराम ने कृष्ण को गले लगाया। स्नेहाभिभूत होकर उन सबों ने कृष्ण को अपने अपने आशीर्वाद दिये।

दिवि देवगणाः सिद्धाः साध्या गन्धर्वचारणाः ।
तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

दिवि—स्वर्ग में; देव-गणाः—देवता लोग; सिद्धाः—सिद्धगण; साध्याः—साध्य जन; गन्धर्व-चारणाः—गन्धर्व तथा चारण जन; तुष्टुवुः—भगवान् की स्तुति की; मुमुचुः—विमोचन किया; तुष्टाः—तुष्ट हुए; पुष्प-वर्षाणि—फूलों की वर्षा; पार्थिव—हे राजा (परीक्षित)।

हे राजन्, स्वर्ग में सिद्धों, साध्यों, गन्धर्वों तथा चारणों समेत सारे देवताओं ने भगवान् कृष्ण

का यशोगान किया और अतीव संतोषपूर्वक उन पर फूलों की वर्षा की।

तात्पर्य : स्वर्ग में देवतागण उतने ही हर्षित थे जितना कि वृन्दावन के वासी। इस तरह महान् सार्वभौमिक उत्सव सम्पन्न हुआ।

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रचोदिताः ।
जगुर्गन्धर्वपतयस्तुम्बुरुप्रमुखा नृप ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

शङ्ख—शंख; दुन्दुभयः—तथा दुन्दुभियाँ; नेदुः—बज उठीं; दिवि—स्वर्ग लोक में; देव-प्रचोदिताः—देवताओं द्वारा बजाई गईं; जगुः—गाया; गन्धर्व-पतयः—गन्धर्वों के मुखियों ने; तुम्बुरु-प्रमुखाः—तम्बुरु इत्यादि; नृप—हे राजन्।

हे परीक्षित, देवताओं ने स्वर्ग में जोर-जोर से शंख तथा दुन्दुभियाँ बजाईं और तुम्बुरु इत्यादि श्रेष्ठ गन्धर्व गीत गाने लगे।

ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो
राजन्स्वगोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः ।
तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका
गायन्त्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; अनुरक्तैः—प्रेमी; पशु-पैः—ग्वालबालों द्वारा; परिश्रितः—घिरे हुए; राजन्—हे राजन्; स्व-गोष्ठम्—जहाँ अपनी गौवें चरा रहे थे उसी स्थान में; स-बलः—बलराम सहित; अव्रजत्—गये; हरिः—कृष्ण; तथा-विधानि—इस तरह का (पर्वत का उठाना); अस्य—उनके; कृतानि—कार्यकलाप; गोपिकाः—गोपिकाएँ; गायन्त्यः—गाती हुई; ईयुः—गईं; मुदिताः—प्रसन्नतापूर्वक; हृदि-स्पृशः—हृदय को स्पर्श करने वाले का।

अपने प्रेमी ग्वालमित्रों तथा भगवान् बलराम से घिरे कृष्ण उस स्थान पर गये जहाँ वे अपनी गौवें चरा रहे थे। अपने हृदयों को स्पर्श करने वाले श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत के उठाये जाने तथा उनके द्वारा सम्पन्न किये गये यशस्वी कार्यों के विषय में सारी गोपियाँ प्रसन्नतापूर्वक गीत गाती अपने घरों को लौट गईं।

तात्पर्य : गोपियों ने अपने घरों को लौटने के पूर्व अपने प्रेमी श्रीकृष्ण से चुपके-चुपके आँखें चार कीं। सामान्यतया वे कृष्ण के विषय में खुलकर बातें नहीं कर सकती थीं क्योंकि वे धार्मिक गाँव की कुमारियाँ जो थीं। किन्तु अब उन्हें भगवान् द्वारा इस अद्भुत प्रदर्शन का अवसर प्राप्त हुआ तो उन्होंने मुक्त भाव से कृष्ण के मनोहारी का गायन किया। यह स्वाभाविक है कि एक नवयुवक किसी सुन्दर युवती के समक्ष अद्भुत कार्य करना चाहता है। गोपियाँ अतीव सुन्दर तथा शुद्ध हृदय वाली युवतियाँ

थीं और श्रीकृष्ण ने उनके समक्ष अत्यन्त अद्‌भुत कार्य सम्पन्न किए। फलस्वरूप वे उनके कोमल हृदयों में गहरे प्रवेश कर गये।

इस प्रकार श्रीमद्‌भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत "कृष्ण द्वारा गोवर्धन-धारण" नामक पच्चीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter छब्बीस

अद्‌भुत कृष्ण

इस अध्याय में नन्द महाराज गोपों से कृष्ण के ऐश्वर्य का वर्णन करते हैं जिसे उन्होंने गर्ग मुनि के मुख से सुना था।

भगवान् कृष्ण की शक्ति से अनजान होने के कारण गोपगण उनके विविध असामान्य कार्यों को देखकर चकित रह जाते थे। फलतः लोग नन्द महाराज के पास आते और उनसे कहते कि जिस तरह से उन्होंने सात वर्षीय कृष्ण को पर्वत उठाते तथा इससे पहले पूतना राक्षसी का वध करते देखा है उससे प्रत्येक वृन्दावनवासी के हृदय में उनके प्रति असीम आकर्षण उत्पन्न हो चुका है और उनको सन्देह होता है कि कृष्ण ने ग्वाल समुदाय के इस अनुपयुक्त वातावरण में कैसे जन्म लिया है। नन्द ने उन्हें कृष्ण के विषय में गर्ग मुनि द्वारा कही गई बात बतलाई।

गर्ग मुनि ने बतलाया था कि इससे पूर्व तीन युगों में नन्द का बालक श्वेत, लाल तथा पीत रूपों में प्रकट हो चुका है और अब द्वापर में उसने *कृष्ण रूप* (गहरा-नीला) धारण किया है। चूँकि वह वसुदेव के पुत्र के रूप में अवतरित हुआ है अतएव उसका एक नाम वासुदेव है और उसके नाना गुणों तथा कार्यों को बतलाने वाले उसके अन्य अनेक नाम हैं।

गर्ग मुनि ने भविष्यवाणी की थी कि कृष्ण गोकुल पर आने वाले सारे संकटों को रोकेंगे, असीम मंगल का प्रसार करेंगे और गोपों तथा गोपिकाओं के आनन्द को वर्धित करेंगे। विगत युग में उन्होंने निम्नजाति के डाकुओं द्वारा सताये गये सन्त ब्राह्मणों की रक्षा की थी। चूँकि जिस तरह उच्च लोकों के असुरगण उन देवताओं को कभी नहीं हरा सकते जिनकी ओर भगवान् विष्णु हों उसी तरह जो लोग

कृष्ण से प्रेम करते हैं उन्हें कोई भी शत्रु पराजित नहीं कर सकता। अपने भक्तों के प्रति अपने अनुराग तथा अपने ऐश्वर्य एवं शक्ति में कृष्ण साक्षात् नारायण के समान हैं।

गर्ग मुनि के कथन से अतीव हर्षित तथा आश्चर्य से स्तम्भित हुए ग्वालों ने यह निष्कर्ष निकाला कि हो न हो कृष्ण भगवान् नारायण के शक्त्वाष्टि प्रतिनिधि हैं। अत: उन्होंने कृष्ण तथा नन्द महाराज की पूजा की।

श्रीशुक उवाच
एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ।
अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्-विधानि—इस तरह के; कर्माणि—कार्यों को; गोपाः—ग्वाले; कृष्णस्य—कृष्ण के; वीक्ष्य—देखकर; ते—वे; अतत्-वीर्य-विदः—उनकी शक्ति को समझने में असमर्थ; प्रोचुः—बोले; समभ्येत्य—(नन्द महाराज के) पास जाकर; सु-विस्मिताः—अत्यन्त विस्मित होकर।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब गोपों ने गोवर्धन पर्वत उठाने जैसे कृष्ण के कार्यों को देखा तो वे विस्मित हो गये। उनकी दिव्य शक्ति को न समझ पाने के कारण वे नन्द महाराज के पास गये और इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है श्रीगोवर्धन पर्वत उठाने की लीला के समय ग्वालों ने भगवान् के कार्य की छानबीन किये बिना केवल आध्यात्मिक आनन्द लूटा। किन्तु बाद में जब वे अपने घर लौट आये तो उनके मन में चिन्ता उठने लगी। उन्होंने सोचा ''अब तो हमने बालक कृष्ण को गोवर्धन पर्वत उठाते अपनी आँखों से देख लिया और हमें यह स्मरण है ही कि उसने किस तरह पूतना तथा अन्य असुरों को मारा, जंगल की आग बुझाई इत्यादि-इत्यादि। उस समय हमने सोचा था कि ये अद्वितीय कार्य ब्राह्मणों के आशीर्वाद या नन्द महाराज के सौभाग्य या शायद इस बालक पर नारायण की कृपा से उसे मिली शक्ति से सम्पन्न हुए होंगे।

किन्तु हमारी ये सारी कल्पनाएँ झूठी हैं क्योंकि एक सात साल का सामान्य बालक इस तरह पूरे सात दिनों तक पर्वतराज को उठाये नहीं रह सकता था। कृष्ण मानव नहीं है। वह अवश्य ही स्वयं भगवान् होगा।''

किन्तु दूसरी ओर जब हम कृष्ण को दुलारते हैं, तो उसे अच्छा लगता है और जब हम उसके

चाचा तथा शुभचिन्तक भोलेभाले ग्वाले उसकी ओर ध्यान नहीं देते तो वह खिन्न हो जाता है। वह भूखा-प्यासा होने लगता है, दूध तथा दही चुराता है, कभी शैतानी करता है, झूठ बोलता है, बालकों जैसी बातें करता है और बछड़े चराता है। यदि वह सचमुच भगवान् है, तो फिर ऐसी बातें क्यों करता है? तो क्या इससे यह सूचित नहीं होता कि वह एक सामान्य बालक है?"

"हम उसकी पहचान के बारे में सच्चाई जान पाने में असमर्थ हैं। अत: चलो, चलकर परम चतुर व्रजराज नन्द महाराज से पूछा जाय। वे ही हमारे संशयों को दूर करेंगे।"

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार ग्वालों ने संकल्प किया और वे नन्द महाराज के विशाल सभासदन में गये और उनसे अगले श्लोक में वर्णित प्रश्न किए।

बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै ।
कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥ २॥

शब्दार्थ

बालकस्य—बालक के; यत्—क्योंकि; एतानि—इन; कर्माणि—कर्मों को; अति-अद्भुतानि—अत्यन्त अद्भुत; वै—निश्चय ही; कथम्—कैसे; अर्हति—चाहिए; असौ—वह; जन्म—जन्म; ग्राम्येषु—संसारी लोगों के बीच; आत्म—अपने लिए; जुगुप्सितम्—घृणित।

[ग्वालों ने कहा]: जब यह बालक ऐसे अद्भुत कार्य करता है, तो फिर किस तरह हम जैसे संसारी व्यक्तियों के बीच उसने जन्म लिया? ऐसा जन्म तो उसके लिए घृणित लगेगा।

तात्पर्य : सामान्य जीव अप्रिय परिस्थितियों से अपने को नहीं बचा सकता किन्तु परम नियन्ता हमेशा अपनी इच्छा के अनुसार पूर्ण व्यवस्था कर सकता है।

य: सप्तहायनो बाल: करेणैकेन लीलया ।
कथं बिभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥ ३॥

शब्दार्थ

य:—जो; सप्त-हायन:—सात वर्ष की आयु का; बाल:—बालक; करेण—हाथ से; एकेन—एक; लीलया—खेल खेल में; कथम्—कैसे; बिभ्रत्—उठाये रहा; गिरि-वरम्—पर्वतों में श्रेष्ठ, गोवर्धन को; पुष्करम्—कमल के फूल को; गज-राट्—बलशाली हाथी; इव—सदृश।

यह सात वर्ष का बालक किस तरह विशाल गोवर्धन पर्वत को खेल खेल में एक हाथ से उसी तरह उठाये रह सकता है, जिस तरह बलशाली हाथी कमल के फूल को उठा लेता है?

तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः ।
पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥ ४॥

शब्दार्थ

तोकेन—नन्हें बालक द्वारा; आ-मीलित—प्रायः बन्द; अक्षेण—आँखों से; पूतनायाः—पूतना डाइन का; महा-ओजसः—महान् पराक्रम वाली; पीतः—पिया हुआ; स्तनः—स्तन; सह—साथ; प्राणैः—प्राण वायु के; कालेन—काल की शक्ति से; इव—सदृश; वयः—आयु; तनोः—भौतिक शरीर का।

अभी इसने अपनी आँखें भी नहीं खोली थीं और निरा बच्चा ही था कि इसने बलशाली राक्षसी पूतना के स्तन का दूध पिया और उसी के साथ उसके प्राण चूस लिये जिस तरह काल की शक्ति मनुष्य के शरीर से यौवन को चूस लेती है।

तात्पर्य : इस श्लोक में *वयः* शब्द यौवन या सामान्यतः आयु का सूचक है। काल अपनी अप्रतिहत शक्ति से हमारे प्राण को चूस लेता है और वह काल वास्तव में स्वयं भगवान् कृष्ण हैं। बलशाली राक्षसी पूतना के मामले में भगवान् कृष्ण ने काल विधि को तेज कर दिया और क्षण भर में उसकी आयु सोख ली। यहाँ पर ग्वालों के कहने का अर्थ है, कि "ऐसा बालक जिसने अभी आँखें भी नहीं खोली थीं वह किस तरह इतनी शक्तिशालिनी राक्षसी को मार सका।"

हिन्वतोऽधः शयानस्य मास्यस्य चरणावुदक् ।
अनोऽपतद्विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

हिन्वतः—हिलाते हुए; अधः—नीचे; शयानस्य—लेटे हुए; मास्यस्य—कुछ मास वाले बालक को; चरणौ—दो पाँव; उदक्—ऊपर की ओर; अनः—छकड़ा; अपतत्—गिर पड़ा; विपर्यस्तम्—उलटा हुआ; रुदतः—रोते हुए; प्रपद—अपने पाँव के अग्रभाग से; आहतम्—प्रताड़ित।

एक बार जब कृष्ण तीन मास के छोटे शिशु थे, तो रो रहे थे और एक बड़े से छकड़े के नीचे लेटे हुए अपने पाँवों को ऊपर चला रहे थे। तभी यह छकड़ा गिरा और उलट गया क्योंकि उन्होंने अपने पाँव के अँगूठे से उस पर प्रहार किया था।

एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा ।
दैत्येन यस्तृणावर्तमहन्कण्ठग्रहातुरम् ॥ ६॥

शब्दार्थ

एक-हायनः—एकवर्षीय; आसीनः—बैठा हुआ; ह्रियमाणः—हरण किया गया; विहायसा—आकाश में; दैत्येन—असुर द्वारा; यः—जिसने; तृणावर्तम्—तृणावर्त को; अहन्—मारा; कण्ठ—गला; ग्रह—पकड़ा जाकर; आतुरम्—सताया गया।

एक वर्ष की आयु में, जब वे शान्तिपूर्वक बैठे थे तो तृणावर्त नामक असुर उन्हें आकाश में

उड़ा ले गया। किन्तु बालक कृष्ण ने उस असुर की गर्दन दबोच ली जिससे उसे महान् पीड़ा हुई और इस तरह उसे मार डाला।

तात्पर्य : कृष्ण को सामान्य बालक के रूप में स्नेह करने वाले ग्वाले ये सारे कार्य देखकर चकित थे। एक नवजात शिशु कहीं शक्तिशाली डाइन को मार सकता है? और यह किसी को विश्वास नहीं होगा कि एक वर्ष का बालक उस असुर को मार सकता है, जो उसका अपहरण करके आकाश में ले गया हो। किन्तु कृष्ण ने ये सारे अद्‌भुत कार्य किये। ये गोपगण कृष्ण के कार्यकलापों का स्मरण करके तथा उनकी चर्चा चलाकर उनके प्रति अपने प्रेम को वर्धित कर रहे थे।

क्वचिद्धैयङ्गवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उदूखले ।
गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां तावपातयत् ॥ ७॥

शब्दार्थ

क्वचित्—एक बार; हैयङ्गव—मक्खन; स्तैन्ये—चुराते हुए; मात्रा—अपनी माता द्वारा; बद्धः—बाँधे गये; उदूखले—ऊखल में; गच्छन्—जाते हुए; अर्जुनयोः—दो अर्जुन वृक्षों के; मध्ये—बीच में; बाहुभ्याम्—अपने हाथों से; तौ अपातयत्—दोनों को गिरा दिया, उखाड़ डाला।

एक बार उनकी माता ने उन्हें रस्सियों से एक ऊखल से बाँध दिया क्योंकि माता ने उन्हें मक्खन चुराते पकड़ लिया था। तब वे अपने हाथों के बल रेंगते हुए उस ऊखल को दो अर्जुन वृक्षों के बीच खींच ले गये और उन वृक्षों को उखाड़ डाला।

तात्पर्य : ये दोनों अर्जुन वृक्ष पुराने तथा मोटे थे और कृष्ण के आँगन के ऊपर उठे हुए थे। फिर भी इस नटखट बालक ने उन्हें आसानी से धराशायी कर दिया।

वने सञ्चारयन्वत्सान्सरामो बालकैर्वृतः ।
हन्तुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ॥ ८॥

शब्दार्थ

वने—जंगल में; सञ्चारयन्—चराते हुए; वत्सान्—बछड़ों को; सरामः—बलदेव के साथ; बालकैः—ग्वालबालों के द्वारा; वृतः—घिरा हुआ; हन्तु-कामम्—मार डालने की इच्छा से; बकम्—बकासुर; दोर्भ्याम्—अपनी बाँहों से; मुखतः—मुख से; अरिम्—शत्रु को; अपाटयत्—चीर डाला।

अन्य समय जब वे बलराम तथा ग्वालबालों के साथ वन में गौवें चरा रहे थे तो राक्षस बकासुर उनको मार डालने की मंशा से वहाँ आया। किन्तु कृष्ण ने इस शत्रु राक्षस का मुँह (चोंच) पकड़ लिया और उसको चीर डाला।

वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं जिघांसया ।
हत्वा न्यपातयत्तेन कपित्थानि च लीलया ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

वत्सेषु—बछड़ों के बीच; वत्स-रूपेण—अन्य बछड़े के रूप में प्रकट होकर; प्रविशन्तम्—घुसकर; जिघांसया—मार डालने की इच्छा से; हत्वा—मारकर; न्यपातयत्—गिरा दिया; तेन—उससे; कपित्थानि—कैथे के फल; च—तथा; लीलया—खेल खेल में।

कृष्ण को मार डालने की इच्छा से राक्षस वत्सासुर बछड़े का वेश बनाकर उनके बछड़ों के बीच घुस गया। किन्तु कृष्ण ने इस असुर को मार डाला और इसके शरीर से कैथे के वृक्षों से फल नीचे गिराने का खिलवाड़ किया।

हत्वा रासभदैतेयं तद्बन्धूंश्च बलान्वितः ।
चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्वफलान्वितम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

हत्वा—मारकर; रासभ—गधा के रूप में प्रकट हुए; दैतेयम्—दिति के वंशज को; तत्-बन्धून्—उस असुर के संगियों को; च—भी; बल-अन्वितः—बलराम के साथ; चक्रे—बनाया; ताल-वनम्—तालवन को; क्षेमम्—कल्याणप्रद, मंगलमय; परिपक्व—पके; फल—फलों से; अन्वितम्—पूर्ण।

भगवान् बलराम समेत कृष्ण ने राक्षस धेनुकासुर तथा उसके सभी साथियों का वध किया और इस तरह तालवन जंगल को, जो पके हुए ताड़ फलों से भरापुरा था, सुरक्षित बनाया।

तात्पर्य : बहुत समय पूर्व देवी दिति के गर्भ से हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामक शक्तिशाली असुर उत्पन्न हुए थे। इसीलिए असुरों को *दैतेय* या *दैत्य* कहा जाता है, जिसका अर्थ है दिति की संतानें। धेनुकासुर अर्थात् गर्दभासुर ने अपने मित्रों के साथ उसने तालवन में आतंक मचा रखा था किन्तु कृष्ण तथा बलराम ने उन सबों को मार डाला जिस तरह कि आधुनिक सरकारें निर्दोष जनता को तंग करने वाले आतंकवादियों का वध कर देती हैं।

प्रलम्बं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना ।
अमोचयद्व्रजपशून्गोपांश्चारण्यवह्नितः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

प्रलम्बम्—प्रलम्बासुर को; घाययित्वा—मरवा डालने की व्यवस्था करके; उग्रम्—भीषण; बलेन—बलराम द्वारा; बल-शालिना—बलशाली; अमोचयत्—उबारा; व्रज-पशून्—व्रज के पशुओं को; गोपान्—ग्वालबालों को; च—तथा; आरण्य—जंगल की; वह्नितः—अग्नि से।

भीषण दैत्य प्रलम्बासुर को बलशाली भगवान् बलराम द्वारा मरवाकर कृष्ण ने व्रज के

ग्वालबालों तथा उनके पशुओं को दावानल (जंगल की आग) से बचाया।

आशीविषतमाहीन्द्रं दमित्वा विमदं ह्रदात् ।
प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

आशी—उसके विषदन्तों का; विष-तम—सबसे शक्तिशाली विषैला; अहि—साँप के; इन्द्रम्—प्रधान को; दमित्वा—दमन करके; विमदम्—मद को चूर करके; ह्रदात्—सरोवर से; प्रसह्य—बलपूर्वक; उद्वास्य—भगाकर; यमुनाम्—यमुना नदी को; चक्रे—बनाया; असौ—इसी ने; निर्विष—विषरहित; उदकाम्—जल को।

कृष्ण ने अति विषैले नाग कालिय को दण्ड दिया और उसे विनीत बनाकर यमुना के सरोवर से बलपूर्वक निकाल बाहर किया। इस तरह भगवान् ने उस नदी के जल को साँप के प्रचण्ड विष से मुक्त बनाया।

दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन्सर्वेषां नो व्रजौकसाम् ।
नन्द ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

दुस्त्यजः—त्याग पाना असम्भव; च—तथा; अनुरागः—प्रेम; अस्मिन्—उनके लिए; सर्वेषाम्—सब; नः—हम; व्रज-ओकसाम्—व्रजवासियों का; नन्द—प्रिय नन्द महाराज; ते—तुम्हारे; तनये—पुत्र के लिए; अस्मासु—हम सबों के प्रति; तस्य—उसका; अपि—भी; औत्पत्तिकः—स्वाभाविक; कथम्—किस तरह से।

हे नन्द महाराज, हम तथा व्रज के सारे वासी क्योंकर आपके पुत्र के प्रति अपना निरन्तर स्नेह त्याग नहीं पा रहे हैं? और वे हम लोगों के प्रति स्वतः इतना आकृष्ट क्योंकर हैं?

तात्पर्य : *कृष्ण* शब्द का अर्थ है ''सर्वाकर्षक''। वृन्दावनवासी भगवान् कृष्ण के प्रति अपना अनुराग छोड़ नहीं पाये। उनके प्रति निवासियों की प्रवृत्ति विशेष रूप से आस्तिक न थी क्योंकि उन्हें विश्वास न था कि वे ईश्वर हैं अथवा नहीं। किन्तु वे उन सबों के प्रेम को आकृष्ट करते रहे क्योंकि ईश्वर होने के नाते वे सर्व सर्वाकर्षक हैं—हमारे प्रेम के परम केन्द्र।

ग्वालों ने यह भी पूछा, ''बालक कृष्ण क्योंकर हम सबों से अनुराग रखता है?'' वस्तुतः भगवान् सारे जीवों से प्रेम करते हैं क्योंकि वे उनकी नित्य सन्तानें हैं। *भगवद्गीता* के अन्त में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के प्रति अपने स्नेह की घोषणा नाटकीय ढंग से करते हुए अर्जुन से आग्रह किया कि वह भी उनकी शरण में आकर प्रेम का प्रतिदान करे। श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं, ''हे प्रभु! आप मुझपर इतने दयालु हैं किन्तु मैं इतना अभागा हूँ कि मेरे अन्तर में आपके प्रति प्रेम जगा

ही नहीं।'' (शिक्षाष्टक २) इसी स्तुति में चैतन्य महाप्रभु *अनुराग* शब्द का प्रयोग करते हैं। हमारा दुर्भाग्य यह है कि भगवान् हमारे लिए जैसे अनुराग का अनुभव करते हैं उसका हम प्रतिदान नहीं कर पाते। यद्यपि हम सूक्ष्म तथा नगण्य हैं और भगवान् अनन्त आकर्षक हैं किन्तु किन्हीं कारणों से हम उन्हें अपना प्रेम नहीं दे पाते। हमें इस मूर्खता का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना चाहिए क्योंकि ईश्वर की शरण में जाना या न जाना हमारी स्वच्छन्दता की अनिवार्य अभिव्यक्ति है।

कृष्णभावनामृत आन्दोलन बद्धजीवों को अपनी मूल आनन्दमय चेतना को, जो कि भगवत्प्रेम या कृष्णभावनामृत है, जाग्रत करने का सक्षम, क्रमबद्ध कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। कृष्णभावनामृत की जटिलताएँ इतनी अद्‌भुत हैं कि कृष्ण के नित्यसंगी वृन्दावनवासी तक उनसे चकित हो जाते हैं जैसाकि इन श्लोकों में दर्शाया गया है।

क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् ।
ततो नो जायते शङ्का व्रजनाथ तवात्मजे ॥ १४॥

शब्दार्थ

क्व—कहाँ तो; सप्त-हायनः—सप्तवर्षीय; बालः—यह बालक; क्व—कहाँ; महा-अद्रि—विशाल पर्वत का; विधारणम्—उठाया जाना; ततः—इस प्रकार; नः—हमारे लिए; जायते—उत्पन्न करता है; शङ्का—सन्देह; व्रज-नाथ—हे व्रज के स्वामी; तव—तुम्हारे; आत्मजे—पुत्र के विषय में।

कहाँ तो यह सात वर्ष का बालक और कहाँ उसके द्वारा विशाल गोवर्धन पर्वत का उठाया जाना, अतएव, हे व्रजराज, हमारे मन में आपके पुत्र के विषय में शंका उत्पन्न हो रही है।

श्रीनन्द उवाच
श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शङ्का च वोऽर्भके ।
एनम्कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥ १५॥

शब्दार्थ

श्री-नन्दः उवाच—श्रीनन्द महाराज ने कहा; श्रूयताम्—सुनो; मे—मेरे; वचः—शब्द; गोपाः—हे ग्वालो; व्येतु—दूर करो; शङ्का—सन्देह; च—तथा; वः—अपनी; अर्भके—बालक के विषय में; एनम्—इस; कुमारम्—बालक को; उद्दिश्य—दिखलाते हुए; गर्गः—गर्ग मुनि ने; मे—मुझसे; यत्—जो; उवाच—कहा; ह—था।

नन्द महाराज ने उत्तर दिया: हे ग्वालो, जरा मेरी बातें सुनो और मेरे पुत्र के विषय में जो अपनी शंकाएँ हों उन्हें दूर कर दो। कुछ समय पहले गर्ग मुनि ने इस बालक के विषय में मुझसे इस प्रकार कहा था।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की टीका है गर्गाचार्य से पूर्वकाल में सुने गये शब्दों से नन्द महाराज

में कृष्ण के विषय में सचाई का उदय हुआ और कृष्ण के सारे कार्यकलापों का निरन्तर स्मरण करने से नन्द के वे सारे विचार छूमन्तर हो गये कि ऐसे कार्य असम्भव हैं। अब वे ग्वालों को उन्हीं शब्दों से शिक्षा दे रहे हैं।

वर्णास्त्रयः किलास्यासन्गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

वर्णाः त्रयः—तीन रंग; किल—निस्सन्देह; अस्य—तुम्हारे पुत्र कृष्ण के; आसन्—थे; गृह्णतः—ग्रहण किये गये; अनु-युगम् तनूः—विभिन्न युगों के अनुसार दिव्य शरीर; शुक्लः—कभी श्वेत; रक्तः—कभी लाल; तथा—और; पीतः—कभी पीला; इदानीम् कृष्णताम् गतः—सम्प्रति उसने श्याम वर्ण धारण किया है।.

[गर्ग मुनि ने कहा था]: आपका पुत्र कृष्ण हर युग में अवतार के रूप में प्रकट होता है। भूतकाल में उसने तीन रंग—श्वेत, लाल तथा पीला धारण किये थे और अब वह श्यामवर्ण में प्रकट हुआ है।

तात्पर्य : यह तथा इसके आगे के छः श्लोक (१७ से २२ तक) इसी स्कन्ध के आठवें अध्याय से लिये गये हैं जिनमें गर्ग मुनि नन्द महाराज को नन्द-पुत्र कृष्ण के विषय में समझाते हैं। जो अनुवाद यहाँ पर दिये गये हैं, वे श्रील ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा दिये गये अर्थ पर आधारित हैं। अध्याय आठ में जहाँ ये श्लोक मूल रूप में दिए गए हैं श्रील प्रभुपाद द्वारा लिखित विस्तृत तात्पर्य मिलेंगे।

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ।
वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ १७॥

शब्दार्थ

प्राक्—पहले; अयम्—यह बालक; वसुदेवस्य—वसुदेव का; क्वचित्—कभी; जातः—उत्पन्न हुआ था; तव—तुम्हारा; आत्मजः—बालक के रूप में जन्मा कृष्ण; वासुदेवः—अतः उसका नाम वासुदेव रखा जा सकता है; इति—इस प्रकार; श्रीमान्—अत्यन्त सुन्दर; अभिज्ञाः—विद्वज्जन; सम्प्रचक्षते—यह कहते हैं कृष्ण ही वासुदेव हैं।.

अनेक कारणों से आपका यह सुन्दर पुत्र कभी वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट हो चुका है। अतएव विद्वज्जन कभी कभी इस बालक को वासुदेव कहते हैं।

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।
गुण कर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १८॥

शब्दार्थ

बहूनि—विविध; सन्ति—हैं; नामानि—नाम; रूपाणि—स्वरूप; च—कभी; सुतस्य—पुत्र के; ते—तुम्हारे; गुण-कर्म-अनुरूपाणि—अपने गुणों तथा कर्मों के अनुसार; तानि—उन्हें; अहम्—मैं; वेद—जानता हूँ; न उ जनाः—सामान्य पुरुष नहीं।

तुम्हारे इस पुत्र के अपने दिव्य गुणों तथा कर्मों के अनुसार अनेक रूप तथा नाम हैं। मैं उन्हें जानता हूँ किन्तु सामान्य जन उन्हें नहीं समझते।

एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः ।
अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह बालक; वः—तुम सबों के लिए; श्रेयः आधास्यत्—कल्याण करने वाला होगा; गोप-गोकुल-नन्दनः—मानों गोकुल के पुत्र के रूप में ग्वालों के परिवार में उत्पन्न ग्वालबाल हो; अनेन—इसके द्वारा; सर्व-दुर्गाणि—सभी प्रकार के कष्टों को; यूयम्—तुम सभी; अञ्जः—सरलता से; तरिष्यथ—तर सकोगे।

गोकुल के ग्वालों के दिव्य आनन्द में वृद्धि करने के लिए यह बालक सदैव तुम सबका कल्याण करेगा। और उसकी कृपा से ही तुम लोग सारे कष्टों को पार कर सकोगे।

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ।
अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

पुरा—प्राचीन काल में; अनेन—कृष्ण द्वारा; व्रज-पते—हे व्रजराज; साधवः—ईमानदार लोग; दस्यु-पीडिताः—चोर-उचक्कों द्वारा पीड़ित किये जाकर; अराजके—अनियमित सरकार के होते हुए; रक्ष्यमाणाः—रक्षा किये जाते थे; जिग्युः—जीत लिया; दस्यून्—चोर-उचक्कों को; समेधिताः—फलते-फूलते।

हे नन्द महाराज, इतिहास में यह अंकित है कि जब अनियमित तथा अक्षम सरकार थी, जब इन्द्र को सिंहासन से उतार दिया गया था और जब ईमानदार लोग चोरों द्वारा सताये जा रहे थे तो यह बालक उचक्कों का दमन करने तथा लोगों की रक्षा करने और उन्हें फलने-फूलने योग्य बनाने के लिए प्रकट हुआ था।

य एतस्मिन्महाभागे प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ये—जो व्यक्ति; एतस्मिन्—इस बालक को; महा-भागे—परम भाग्यशाली; प्रीतिम्—स्नेह; कुर्वन्ति—करते हैं; मानवाः—ऐसे मनुष्य; न—नहीं; अरयः—शत्रुगण; अभिभवन्ति—पराजित करते हैं; एतान्—कृष्ण से अनुराग करने वाले; विष्णु-पक्षान्—जिनके पक्ष में सदैव विष्णु रहते हैं उन देवताओं को; इव—सदृश; असुराः—असुरगण।

असुरगण देवताओं को हानि नहीं पहुँचा सकते क्योंकि भगवान् विष्णु सदैव उनके पक्ष में

रहते हैं। इसी प्रकार सर्वमंगलमय कृष्ण से अनुरक्त कोई भी व्यक्ति या समूह शत्रुओं द्वारा पराजित नहीं किया जा सकता।

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में श्रील प्रभुपाद ने विशेष रूप से संकेत किया है कि जिस प्रकार भगवान् कृष्ण के संगी कंस द्वारा पराजित नहीं किये जा सके उसी तरह उनके आज के भक्तगण अपने आसुरी प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा पराजित नहीं किये जा सकेंगे। न ही भगवान् के भक्तगण आन्तरिक शत्रुओं से यथा वासनामय भौतिकतावादी इन्द्रियों द्वारा पराजित हो सकेंगे।

तस्मान्नन्द कुमारोऽयं नारायणसमो गुणैः ।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥ २२॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; नन्द—हे नन्द महाराज; कुमारः—बालक; अयम्—यह; नारायण-समः—नारायण के समान; गुणैः—अपने गुणों से; श्रिया—अपने ऐश्वर्य से; कीर्त्या—विशेषतया अपने नाम तथा यश से; अनुभावेन—तथा अपने प्रभाव से; तत्—उसके; कर्मसु—कर्मों के सम्बन्ध में; न—नहीं है; विस्मयः—आश्चर्य।

अतएव हे नन्द महाराज, आपका यह बालक नारायण सरीखा है। यह अपने दिव्य गुण, ऐश्वर्य, नाम, यश तथा प्रभाव में बिल्कुल नारायण जैसा ही है। अतः इसके कार्यों से आपको चकित नहीं होना चाहिए।

तात्पर्य : यहाँ पर नन्द ग्वालों से गर्ग मुनि द्वारा बताई गई अन्तिम बातें सूचित कर रहे हैं, जो कृष्ण के गुप्त जन्मोत्सव के समय उन्होंने कही थीं।

इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ।
मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ २३॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार कह कर; अद्धा—प्रत्यक्ष; माम्—मुझको; समादिश्य—आदेश देकर; गर्गे—गर्गाचार्य; च—तथा; स्व-गृहम्—अपने घर; गते—चले गये; मन्ये—मैं विचार करता हूँ; नारायणस्य—भगवान् नारायण का; अंशम्—शक्त्याविष्ट अंश; कृष्णम्—कृष्ण को; अक्लिष्ट-कारिणम्—हमें क्लेश से मुक्त रखने वाले।

[नन्द महाराज ने कहा]: जब गर्ग ऋषि ये शब्द कहकर अपने घर चले गये तो मैं विचार करने लगा कि जो कृष्ण हमें क्लेश से दूर रखता है, वह वास्तव में भगवान् नारायण का अंश है।

इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्गगीतं तं व्रजौकसः ।
मुदिता नन्दमानर्चुः कृष्णं च गतविस्मयाः ॥ २४॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; नन्द-वचः—नन्द महाराज के शब्द को; श्रुत्वा—सुनकर; गर्ग-गीतम्—गर्गऋषि के कथन को; व्रज-ओकसः—व्रजवासी; मुदिताः—प्रसन्न; नन्दम्—नन्द महाराज को; आनर्चुः—सम्मानित किया; कृष्णम्—कृष्ण को; च—तथा; गत—दूर हो गया; विस्मयाः—उनका विस्मय।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा]: नन्द महाराज द्वारा कहे गए गर्ग मुनि के कथन को सुनकर वृन्दावन के वासी परम प्रमुदित हुए। उनका विस्मय जाता रहा और उन्होंने आदरपूर्वक नन्द तथा भगवान् कृष्ण की पूजा की।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि इस श्लोक का *आनर्चुः* शब्द सूचित करता है कि वृन्दावनवासियों ने अपने घर से लाई हुईं सुगन्धि, मालाएँ तथा वस्त्रों की भेंटों से नन्द तथा कृष्ण को सम्मानित किया। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि वृन्दावनवासियों ने नन्द तथा कृष्ण को रत्नों तथा स्वर्णमुद्राओं की प्रेम-भेंट देकर सम्मानित किया। स्पष्ट है कि जब यह वार्ता हो रही थी तो कृष्ण जंगल में क्रीड़ा कर रहे थे अतएव जब वे घर लौटे तो वृन्दावनवासियों ने उन्हें सुन्दर पीत वस्त्रों, गले की मालालों, बाजूबंदों, कुण्डलों तथा मुकुटों से अलंकृत किया और ''वृन्दावनरत्न की जय हो'' के नारे लगाकर उन्हें प्रोत्साहित किया।

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्रास्मवर्षानिलैः
सीदत्पालपशुस्त्रियात्मशरणं दृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयन् ।
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा
बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित्प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

देवे—जब इन्द्रदेव ने; वर्षति—वर्षा कराई; यज्ञ—अपने यज्ञ के; विप्लव—उत्पात के कारण; रुषा—क्रोधवश; वज्र—वज्र से; अश्म-वर्ष—उपल; अनिलैः—तथा वायु से; सीदत्—कष्ट उठाते हुए; पाल—ग्वाले; पशु—पशु; स्त्रि—तथा स्त्रियाँ; आत्म—स्वयं; शरणम्—एकमात्र आश्रय; दृष्ट्वा—देखकर; अनुकम्पी—अत्यन्त दयालु; उत्स्मयन्—हँसते हुए; उत्पाट्य—उखाड़ कर; एक-करेण—एक हाथ से; शैलम्—पर्वत, गोवर्धन को; अबलः—छोटा बालक; लीला—खेल में; उच्छिलीन्ध्रम्—कुकुरमुत्ता को; यथा—जिस प्रकार; बिभ्रत्—पकड़ लिया; गोष्ठम्—गोपजाति को; अपात्—बचाया; महा-इन्द्र—इन्द्र का; मद—गर्व को; भित्—नाश करने वाला; प्रीयात्—प्रसन्न हो जाय; नः—हमपर; इन्द्रः—स्वामी; गवाम्—गौवों का।

अपना यज्ञ भंग किये जाने पर इन्द्र क्रोधित हुआ और उसने गोकुल पर वर्षा की तथा वज्रपात और तेज हवा के साथ साथ ओले गिराये जिनसे गौवों, पशुओं तथा स्त्रियों को अतीव कष्ट हुआ। जब दयालु प्रकृति वाले भगवान् कृष्ण ने उन सबों की यह दशा देखी जिनके उन्हें

छोड़कर कोई दूसरी शरण नहीं थी तो वे मन्द-मन्द हँसने लगे और एक हाथ से उन्होंने गोवर्धन पर्वत को उठा लिया जिस तरह कोई छोटा सा बालक खेलने के लिए कुकुरमुत्ते को उखाड़ लेता है। इस तरह से उन्होंने ग्वाल-समुदाय की रक्षा की। गौवों के स्वामी तथा इन्द्र के मिथ्या गर्व को खंडित करने वाले वे ही गोविन्द हम सबों पर प्रसन्न हों।

तात्पर्य : इन्द्र शब्द का अर्थ ''स्वामी'' या ''राजा'' है। इस तरह इस श्लोक में कृष्ण को *इन्द्र गवाम्* ''गौवों का स्वामी'' कहा गया है। वस्तुत: वे ही हर एक के असली इन्द्र, असली शासक हैं और सारे देवता उनकी परम इच्छा का प्रतिनिधित्व करने वाले उनके सेवक मात्र हैं।

इस अध्याय के उक्त तथा पिछले श्लोकों से आभास होता है कि कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत उठाये जाने का वृन्दावन के भोलेभाले ग्वालों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और वे बारम्बार इस कौशल का स्मरण करने लगे। निश्चय ही जो भी व्यक्ति बाल कृष्ण के कार्यकलापों पर गम्भीरतापूर्वक तथा सोद्देश्य विचार करता है, वह उनकी शरण में जाकर उनका नित्य भक्त बन जाता है। इस अध्याय के पढ़ने के बाद यही निष्कर्ष निकालना चाहिए।

इस प्रकार श्रीमद्‌भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''अद्‌भुत कृष्ण'' नामक छब्बीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सत्ताईस

इन्द्रदेव तथा माता सुरभि द्वारा स्तुति

इस अध्याय में यह वर्णन हुआ है कि किस तरह सुरभि गाय तथा इन्द्र ने कृष्ण की अद्‌भुत शक्ति देखकर उनका अभिषेक किया।

भीषण तूफान से वृन्दावन पर आक्रमण करने से लज्जित इन्द्र छिपकर भगवान् कृष्ण के पास आया, उन्हें नमस्कार किया और उनकी प्रशंसा की। इन्द्र ने कहा कि कृष्ण कभी भी अज्ञानजनित भौतिक मोह की भँवर में नहीं पड़ते फिर भी वे मनुष्य जैसा शरीर धारण करके धर्म की स्थापना करने तथा दुष्टों को दण्ड देने के लिए विविध लीलाएँ करते हैं। इस तरह वे उन लोगों का मिथ्या दर्प चूर करते हैं, जो अपने को परम नियन्ता मानते हैं। इन्द्र ने यहाँ तक कह डाला कि कृष्ण समस्त जीवों के

पिता, गुरु तथा स्वामी हैं और काल रूप में वे उन्हें दण्ड देने वाले हैं।

इन्द्र की स्तुतियों से प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने इन्द्र को बतलाया कि उन्होंने *इन्द्र यज्ञ* इसलिए बन्द कराया जिससे मिथ्या अभिमान से गर्वित वह भगवान् को याद रखे। भौतिक ऐश्वर्य के मद में चूर व्यक्तियों को अपने समक्ष भगवान् अपने हाथ में दण्ड धारण किये खड़े हुए नहीं दिखते। इसलिए जब भगवान् कृष्ण किसी व्यक्ति का वास्तविक भला चाहते हैं, तो वे उसके ऐश्वर्य-पद से उसे नीचे ला देते हैं।

भगवान् कृष्ण ने इन्द्र को आदेश दिया कि वह स्वर्ग में अपने उपयुक्त पद पर लौट जाय और बिना अहंभाव के वहाँ सेवा करे। तत्पश्चात् इन्द्र ने सुरभि गाय के साथ भगवान् कृष्ण का अभिषेक सम्पन्न किया जिसके लिए स्वर्ग की गंगा का जल तथा माता सुरभि का दूध प्रयुक्त किया गया। इस अवसर का लाभ उठा कर इन्द्र तथा गाय ने भगवान् का नाम गोविन्द रखा और देवताओं ने पुष्प बरसाये तथा विविध स्तुतियाँ सुनाईं।

श्रीशुक उवाच
गोवर्धने धृते शैले आसाराद्रक्षिते व्रजे ।
गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; गोवर्धने—गोवर्धन को; धृते—धारण करने के बाद; शैले—पर्वत; आसारात्—मूसलाधार वर्षा से; रक्षिते—रक्षित हो जाने पर; व्रजे—व्रज में; गो-लोकात्—गो-लोक से; आव्रजत्—आई; कृष्णम्—कृष्ण के पास; सुरभिः—माता सुरभि; शक्रः—इन्द्र; एव—भी; च—तथा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कृष्ण के गोवर्धन पर्वत उठाने तथा भयंकर वर्षा से व्रजवासियों की रक्षा करने के बाद गौवों की माता सुरभि गो-लोक से कृष्ण का दर्शन करने आईं। उनके साथ इन्द्र था।

तात्पर्य : *गोलोकात्* शब्द सूचित करता है ''गोलोक नामक भौतिक लोक'' जो अद्वितीय गौवों से भरापुरा है। सुरभि तो प्रसन्नतापूर्वक कृष्ण का दर्शन करने गई थी किन्तु इन्द्र डरते-डरते गया था। जैसाकि इस श्लोक से इंगित होता है अपने वृन्दावनसंगियों को इन्द्र के अपमानजनक आक्रमण से बचाने के लिए कृष्ण को असामान्य युक्तियों का सहारा लेना पड़ा था। इन्द्र निश्चित रूप से लज्जित था और अपने भविष्य के प्रति हताश भी था। उसने अनुचित कर्म किया था इसलिए वह डरते हुए ब्रह्मा

की शरण में गया था जिन्होंने उसे आदेश दिया था कि वह अपने साथ भौतिक गोलोक से सुरभि को ले करके कृष्ण का दर्शन करने जाय।

विविक्त उपसङ्गम्य व्रीडीतः कृतहेलनः ।
पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥ २ ॥

शब्दार्थ

विविक्ते—एकान्त स्थान में; उपसङ्गम्य—जाकर; व्रीडितः—लज्जित; कृत-हेलनः—अपराध किये जाने से; पस्पर्श—उसने स्पर्श किया; पादयोः—दोनों पैरों का; एनम्—उनको; किरीटेन—अपने मुकुट से; अर्क—सूर्य के समान; वर्चसा—तेज वाला।

भगवान् का अपमान करने के कारण इन्द्र अत्यन्त लज्जित था। एकान्त स्थान में उनके पास जाकर इन्द्र उनके चरणों पर गिर पड़ा और सूर्य के समान तेज वाले मुकुट को भगवान् के चरणकमलों पर रख दिया।

तात्पर्य : वह एकान्त स्थान जहाँ इन्द्र कृष्ण के पास पहुँचा था उसका उल्लेख श्रीवैशम्पायन मुनि ने *हरिवंश* (विष्णु पर्व १९.३) में किया है—*स ददर्शोपविष्टं वै गोवर्धन शिलातले*—उसने उन्हें (कृष्ण को) गोवर्धन पर्वत की तलहटी पर बैठे देखा।

आचार्यों की टीकाओं से हम समझ जाते हैं कि भगवान् कृष्ण इन्द्र को मिलने के लिए एकान्त स्थान प्रदान करना चाह रहे थे जिससे वह और आगे अपमानित न हो। इन्द्र आत्मसमर्पण करने और क्षमा-याचना करने आया था अतः भगवान् ने उसे एकान्त में ऐसा करने की अनुमति दे दी।

दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः ।
नष्टत्रिलोकेशमद इदमाह कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट—देखा हुआ; श्रुत—सुना हुआ; अनुभावः—शक्ति; अस्य—इस; कृष्णस्य—भगवान् कृष्ण की; अमित—अपार; तेजसः—जिसकी शक्ति; नष्ट—नष्ट; त्रि-लोक—तीनों जगतों का; ईश—स्वामी होने का; मदः—नशा; इदम्—ये शब्द; आह—कहे; कृत-अञ्जलिः—याचना में अपने हाथ जोड़े।

अब तक इन्द्र सर्वशक्तिमान कृष्ण की दिव्य शक्ति को सुन तथा देख चुका था और इस तरह तीनों जगतों के स्वामी होने का उसका मिथ्या गर्व चूर हो चुका था। याचना के लिए दोनों हाथ जोड़कर उसने भगवान् को इस प्रकार सम्बोधित किया।

इन्द्र उवाच

विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं
तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ।
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो
न विद्यते ते ग्रहणानुबन्धः ॥ ४॥

शब्दार्थ

इन्द्रः उवाच—इन्द्र ने कहा; विशुद्ध-सत्त्वम्—दिव्य सतोगुण दिखाने वाला; तव—तुम्हारा; धाम—स्वरूप; शान्तम्—अपरिवर्तनीय; तपः-मयम्—ज्ञान से पूर्ण; ध्वस्त—विनष्ट; रजः—रजोगुण; तमस्कम्—तथा तमोगुण को; माया-मयः—माया पर आधारित; अयम्—यह; गुण—भौतिक प्रकृति के गुणों की; सम्प्रवाहः—धारा; न विद्यते—उपस्थित नहीं है; ते—तुम्हारे भीतर; अग्रहण-इग्नोरन्चे; अनुबन्धः-व्हिछ् इस् दुए तो.

राजा इन्द्र ने कहा : आपका दिव्य रूप शुद्ध सतोगुण का प्राकट्य है, यह परिवर्तन से विचलित नहीं होता, ज्ञान से चमकता रहता है और रजो तथा तमोगुणों से रहित है। आपके भीतर माया तथा अज्ञान पर आश्रित भौतिक गुणों का प्रबल प्रवाह नहीं पाया जाता।

तात्पर्य : *भागवत* के महान् टीकाकार श्रील श्रीधर स्वामी ने इस गूढ़ श्लोक की विवेचना बड़ी ही विद्वत्ता के साथ की है।

संस्कृत शब्द *धाम* के कई अर्थ होते हैं—(अ) रहने का स्थान, घर, निवास इत्यादि (आ) कोई प्रिय वस्तु या व्यक्ति, हर्ष, या आनन्द (इ) स्वरूप (ई) शक्ति, बल, यश, वैभव, प्रकाश।

जहाँ तक (अ) के अन्तर्गत दिये गये अर्थों का सम्बन्ध है—*वेदान्त सूत्र* का कथन है कि परम सत्य समस्त जगत का उद्गम एवं आश्रय है और *भागवत* के पहले श्लोक में कृष्ण को परम सत्य कहा गया है। यद्यपि भगवान् कृष्ण अपने *धाम* या आवास में, जिसे कृष्ण-लोक कहते हैं, निवास करते हैं किन्तु वे स्वयं समस्त जगत के धाम हैं जैसाकि अर्जुन ने *भगवद्गीता* में पुष्टि की है जहाँ वे कृष्ण को *परंधाम* कहकर सम्बोधित करते हैं।

कृष्ण नाम ही सर्व-आकर्षक व्यक्ति का द्योतक है, अतः भगवान् कृष्ण जो समस्त सौन्दर्य तथा आनन्द के स्रोत हैं अवश्य ही ''प्रिय वस्तु, व्यक्ति, हर्ष, आनन्द'' हैं। औरः ये सारे शब्द अन्ततः कृष्ण के ही सूचक हैं।

धाम स्वरूप का भी द्योतक है और जब इन्द्र ने यह स्तुति की तो वह अपने समक्ष कृष्ण के स्वरूप को प्रत्यक्ष देख रहा था।

जैसाकि वैदिक वाङ्मय में स्पष्ट तौर पर बतलाया गया है भगवान् कृष्ण की शक्ति, बल, यश, वैभव आदि उनके दिव्य शरीर में निहित होते हैं अतएव वे भगवान् के अनन्त यश की पुष्टि करते हैं।

श्रील श्रीधर स्वामी ने *धाम* के इन सारे अर्थों को बड़ी सुन्दरता से संक्षिप्त तौर पर संस्कृत शब्द *स्वरूप* का पर्याय माना है। *स्वरूप* का अर्थ है ''अपना रूप'' या ''अपनी निजी दशा, या प्रकृति।'' चूँकि शुद्ध आत्मा होने के कारण भगवान् कृष्ण अपने शरीर से अभिन्न हैं अतएव भगवान् तथा उनके दृश्य रूप में कोई भी अन्तर नहीं है। इसके विपरीत हम बद्धजीव इस भौतिक जगत में अपने शरीर से बिल्कुल भिन्न होते हैं चाहे नर का शरीर हो या नारी का, चाहे वह काला हो या गोरा। हम सभी अपने नाशवान घृणित शरीरों से पृथक् नित्य आत्माएँ हैं।

जब *स्वरूप* शब्द हम पर लागू किया जाता है, तो यह विशेष रूप से हमारे आध्यात्मिक स्वरूप का द्योतन करता है क्योंकि हमारा ''अपना रूप'' वस्तुत: हमारी ''अपनी दशा या प्रकृति'' होता है। अत: वह मुक्त अवस्था जिसमें मनुष्य का बाह्यरूप उसकी गहनतम आध्यात्मिक प्रकृति होता है *स्वरूप* कहलाता है। किन्तु मूलत: यह शब्द भगवान् श्रीकृष्ण का द्योतक है। यह इस श्लोक के *तव धाम* से स्पष्ट है, जिसकी व्याख्या श्रीधर स्वामी ने की है।

श्रीधर स्वामी ने यहाँ पर *शान्तम्* शब्द का अर्थ ''सदैव एक ही रूप में'' बतलाया है। *शान्तम्* का अर्थ ''अविचलित, काम से मुक्त या शुद्ध'' भी हो सकता है। वैदिक दर्शन के अनुसार इस जगत के सारे परिवर्तन रजो तथा तमोगुण से उत्पन्न होते हैं। रजोगुण सृजनात्मक है और तमोगुण विध्वंसक है, जबकि *सत्त्व* या सतोगुण शान्त तथा टिकाऊ है। यह श्लोक कई प्रकार से इस पर बल देता है कि भगवान् कृष्ण प्राकृतिक गुणों से मुक्त हैं। *विशुद्ध-सत्त्वं, शान्तम्, ध्वस्त-रजस्तमस्कम्* तथा *गुणसम्प्रवाहो न विद्यते ते*—ये सारे शब्द इसी को इंगित करने वाले हैं। कृष्ण के विपरीत हम सभी लोग प्रकृति के गुणों में उलझे होने के कारण देहान्तरण करते रहते हैं, भौतिक स्वरूपों के विविध रूपान्तर (विकार) प्रकृति के गुणों द्वारा प्रेरित होते हैं और ये गुण स्वयं काल के प्रभाव से गति प्राप्त करते हैं। अतएव जो व्यक्ति प्रकृति के गुणों से मुक्त है, वह अपरिवर्तित रहता है और आनन्दमय दिव्य जगत में सदैव तुष्ट रहता है। इस तरह *शान्तम्* शब्द बतलाता है कि भगवान् किसी भी परिवर्तन से अविचल रहते हैं क्योंकि वे प्रकृति के भौतिक गुणों से मुक्त हैं।

इस श्लोक के अनुसार तीनों भौतिक गुणों अर्थात् रजोगुण, तमोगुण एवं सांसारिक शुद्धता का प्रबल प्रवाह *अग्रहण* पर आधारित होता है, जिसका अनुवाद श्रील श्रीधर स्वामी ने ''अज्ञान'' किया

है। चूँकि संस्कृत धातु, *ग्रह्* का अर्थ ''लेना, स्वीकार करना या जानना'' है।

अत: *ग्रहण* का अर्थ हुआ ''किसी विचार या तथ्य को पकड़ना।'' अत: *अग्रहण* का अर्थ हुआ अपनी आध्यात्मिक स्थिति को न समझ पाना और न समझ पाने के कारण ही वह संसार के प्रबल प्रवाह में गिर जाता है।

अग्रहण शब्द का एक अन्य अर्थ भी निकलता है जब इसे अग्र-हण में तोड़ा जाता है। *अग्र* का अर्थ है ''प्रथम, सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ'' और *हन* का अर्थ है ''मारना।'' हमारे जीवन का सर्वश्रेष्ठ अंग शुद्ध आत्मा है, जो नित्य है, जबकि शरीर तथा मन क्षणिक हैं। अतएव जो व्यक्ति कृष्ण-भक्ति की तुलना में संसार का वरण करता है, वह अपने सर्वश्रेष्ठ अंग आत्मा का हनन करता है क्योंकि आत्मा अपने शुद्ध रूप में असीम कृष्ण-भक्ति का भोग करता है।

श्रील श्रीधर स्वामी ने *तपोमयम्* का अर्थ ''ज्ञान से पूर्ण'' दिया है। *तपस्* शब्द का सामान्य अर्थ तपस्या है और यह *तप्* धातु से निकला है, जिसका कुल मिलाकर अर्थ होता है सूर्य के विविध कार्य। *तप्* का अर्थ है ''जलना, चमकना, गर्म करना, इत्यादि।'' भगवान् शाश्वत रूप से पूर्ण हैं अतएव यहाँ पर *तपोमय* यह नहीं बतलाता कि भगवान् का दिव्य शरीर तपस्या के लिए है क्योंकि तप तो बद्धजीवों द्वारा अपने आपको शुद्ध बनाने या कोई विशेष शक्ति प्राप्त करने के लिए किया जाता है। सर्वशक्तिमान, पूर्ण जीव न तो अपने को शुद्ध बनाता है न ही शक्ति प्राप्त करता है—वह तो नित्य शुद्ध एवं सर्वशक्तिमान होता है। इसलिए श्रीधर स्वामी ने बड़ी ही बुद्धिमानी से *तपस्* का अर्थ ''सूर्य का प्रकाशित करने का कर्म'' लगाया है और इस तरह यह सूचित करता है कि भगवान् का आत्मतेजोमय शरीर सर्वज्ञ है। प्रकाश ज्ञान का सामान्य प्रतीक है। भगवान् का आध्यात्मिक तेज मोमबत्ती या बिजली के बल्ब के समान शारीरिक प्रकाश ही नहीं देता। इससे भी बड़ी बात है कि भगवान् का शरीर हमारी चेतना को पूर्ण ज्ञान से प्रकाशित करता है क्योंकि भगवान् का तेज स्वयं पूर्ण ज्ञान है।

हम श्रील श्रीधर स्वामी के चरणों को सादर नमस्कार करते हैं और इस श्लोक की उनकी प्रकाशमयी टीका के लिए उन्हें धन्यवाद देते हैं।

कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता

लोभादयो येऽबुधलिन्गभावाः ।
तथापि दण्डं भगवान्बिभर्ति
धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

कुतः—कैस; नु—निश्चय ही; तत्—उस (भौतिक शरीर के अस्तित्व) के; हेतवः—कारण; ईश—हे प्रभु; तत्-कृताः—भौतिक देह से सम्बन्ध होने से उत्पन्न; लोभ-आदयः—लोभ इत्यादि; ये—जो; अबुध—अज्ञानी व्यक्ति के; लिन्ग-भावाः—लक्षण; तथा अपि—तो भी; दण्डम्—दण्ड; भगवान्—भगवान्; बिभर्ति—घुमाता है; धर्मस्य—धर्म का; गुप्त्यै—सुरक्षा के लिए; खल—दुष्ट व्यक्तियों के; निग्रहाय—दण्ड के लिए।

तो भला आपमें अज्ञानी व्यक्ति के लक्षण—यथा लोभ, काम, क्रोध तथा ईर्ष्या—किस तरह रह सकते हैं क्योंकि इनकी उत्पत्ति संसार में मनुष्य की पूर्व-लिप्तता के कारण होती है और ये मनुष्य को संसार में अधिकाधिक जकड़ते जाते हैं? फिर भी हे परमेश्वर, आप धर्म की रक्षा करने तथा दुष्टों का दमन करने के लिए उन्हें दण्ड देते हैं।

तात्पर्य : इन्द्र के इस जटिल दार्शनिक कथन की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—इस श्लोक की प्रथम पंक्ति में इन्द्र उस मुख्य विचार का सन्दर्भ देता है, जो पिछले श्लोक के अन्त में आया है—यह कि भगवान् के भीतर तमोगुण पर आश्रित जगत का सुप्रवाह नहीं रह सकता। *तद्-हेतवः* तथा *तत्-कृताः* शब्द बतलाते हैं कि किसी कारण से प्रकृति के गुण प्रकट होते हैं और ये ही गुण अपने उत्पन्न करने वाले के कारण बन जाते हैं। इस श्लोक की द्वितीय पंक्ति में हम पाते हैं कि लोभ, काम, ईर्ष्या तथा क्रोध जैसे भौतिक भाव प्रकृति के गुणों को प्रकट करते हैं और वे स्वयं प्रकृति के गुणों द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं।

इस विरोधाभास की व्याख्या इस प्रकार से की जा सकती है : जब बद्धजीव भौतिक गुणों की संगति करने का निर्णय कर लेता है, तो वह इन गुणों से संदूषित हो जाता है। जैसाकि *गीता* (१३.२२) में कहा गया है—*कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।* उदाहरणार्थ, विमोहक नारी की उपस्थिति में मनुष्य अपनी निम्न मानसिक प्रवृत्तियों का शिकार होकर उसके साथ संभोग करने का प्रयास कर सकता है। इस तरह जब वह प्रकृति के निम्न गुणों की संगति में रहने को चुनता है, तो उसमें इन गुणों की प्रबल प्रधानता हो जाती है। वह कामवासना से अभिभूत हो जाता है और अपनी तीव्र इच्छा की तुष्टि के लिए बारम्बार प्रयास करता है। चूँकि उसके मन में कामवासना व्याप्त हो जाती है इसलिए वह जो भी करता है, सोचता और बोलता है उसमें यौन के प्रति प्रबल आसक्ति झलकती रहेगी। दूसरे

शब्दों में, प्रकृति के वासनापूर्ण गुणों की संगति चुनकर वह उन्हें अपने में प्रबलतापूर्वक प्रकट होने का अवसर प्रदान करता है और अन्ततः ये वासनात्मक गुण उसे दूसरा ऐसा भौतिक शरीर धारण करने के लिए बाध्य करते हैं, जो इन गुणों से नियंत्रित कार्यों के लिए उपयुक्त हो।

काम, लोभ, क्रोध तथा ईर्ष्या जैसे निम्न गुण *अबुध-लिंग भावाः* अर्थात् अज्ञान के लक्षण हैं। जैसाकि श्रील श्रीधर स्वामी ने अपने भाष्य में इंगित किया है, प्रकृति के गुणों की अभिव्यक्ति और विशेष भौतिक देह की अभिव्यक्ति दोनों पर्यायवाची हैं। पूरे वैदिक साहित्य में स्पष्ट बतलाया गया है कि बद्धजीव को एक विशेष देह प्राप्त होता है; वह उसे त्यागकर अन्य शरीर ग्रहण करता है क्योंकि वह प्रकृति के गुणों में फँसा रहता है (*कारणं गुणसंगोऽस्य*)। इस तरह यह कहना कि कोई व्यक्ति प्रकृति के गुणों में सम्मिलित हो रहा है यह कहना होगा कि वह जिन गुणों में फँसा है उन विशेष गुणों के अनुरूप वह विशिष्ट प्रकार के शरीर ग्रहण करता है।

एक अबोध अजनबी व्यक्ति कृष्ण द्वारा गोवर्धन-धारण लीला की व्याख्या इस प्रकार कर सकता है : वृन्दावन के निवासी वैदिक नियमों के अनुसार स्वर्ग के देवता इन्द्र को कुछ भेंटें चढ़ाने के लिए बाध्य थे। बालक कृष्ण ने इन्द्र के पद की अवहेलना करके इन भेंटों का हरण करके उन्हें अपने आनन्द के लिए ले लिया। जब इन्द्र ने कृष्ण तथा उनके संगियों को दण्डित करना चाहा तो भगवान् ने इन्द्र के प्रयास को विफल कर दिया, उसे अपमानित किया और उसके गर्व तथा उसके साधनों को समाप्त कर दिया।

लेकिन इस श्लोक में ऐसी हल्की व्याख्या का प्रतिवाद किया गया है। यहाँ देवराज इन्द्र श्रीकृष्ण को *भगवान्* कहकर सम्बोधित करता है, जिससे यह सूचित होता है कि श्रीकृष्ण कोई सामान्य बालक नहीं प्रत्युत ईश्वर हैं। अतएव कृष्ण द्वारा इन्द्र को दण्डित करना धर्म की रक्षा करने तथा दुष्टों का दमन करने के उनके उद्देश्य का अंगमात्र था। यह न तो भौतिक क्रोध का प्रदर्शन था, न ही इन्द्र की भेंटों के लिए लोभ था। श्रीकृष्ण शुद्ध आध्यात्मिक जीव हैं और उनकी सरल शुद्ध कामना यही रहती है कि सारे जीवों को वे पूर्ण आनन्दमय कृष्णभावनामृत जीवन में लगा दें। हमें कृष्णभावनाभावित बनाने की उनकी इच्छा अहंवादी नहीं है क्योंकि अन्ततः कृष्ण सबकुछ हैं और कृष्णभावनामृत ही सर्वोत्कृष्ट चेतना है। इन्द्र वास्तव में कृष्ण का विनीत सेवक है, जिस भाव को अब वह स्मरण करने लगा है।

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो
दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः ।
हिताय चेच्छातनुभिः समीहसे
मानं विधुन्वन्जगदीशमानिनाम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

पिता—पिता; गुरुः—गुरु; त्वम्—तुम; जगताम्—सारे विश्व के; अधीशः—परम नियन्ता; दुरत्ययः—दुर्लंघ्य; कालः—काल; उपात्त—घुमाता है; दण्डः—दण्ड; हिताय—लाभ हेतु; च—तथा; इच्छा—स्वेच्छा से धारण किया गया; तनुभिः—आपके दिव्य स्वरूपों द्वारा; समीहसे—आप प्रयास करते हैं; मानम्—मिथ्या गर्व; विधुन्वन्—समूल नष्ट करके; जगत्-ईश—ब्रह्माण्ड के स्वामी; मानिनाम्—बनने वालों के।

आप इस सम्पूर्ण जगत के पिता, आध्यात्मिक गुरु और परम नियन्ता भी हैं। आप दुर्लंघ्य काल हैं, जो पापियों को उन्हीं के हित के लिए दण्ड देता है। निस्सन्देह स्वेच्छा से लिये जाने वाले विविध अवतारों में आप उन लोगों का मिथ्या दर्प दूर करते हैं, जो अपने को इस जगत का स्वामी मान बैठते हैं।

तात्पर्य : *हिताय* शब्द यहाँ सार्थक है। भगवान् कृष्ण सारे जगत के लाभ हेतु धर्म की रक्षा करते हैं और दुष्टों का दलन करते हैं। मूर्ख तथा श्रद्धाविहीन छद्मपुरोहित ईश्वर की यह कहकर आलोचना करते हैं कि वे प्रकृति के कार्यों द्वारा जीवों को दण्ड देते हैं। किन्तु चाहे वे अप्रत्यक्ष रूप से प्रकृति के माध्यम से दण्ड दें अथवा अपने अवतारों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से दण्ड दें जैसाकि इस श्लोक में उल्लेख हुआ है, उन्हें इसका पूर्ण अधिकार है क्योंकि वे सम्पूर्ण जगत के पिता, गुरु तथा अधीश हैं। दूसरी विधि में दुर्लंघ्य काल के रूप में वे बद्धजीवों द्वारा ईशविहीन ईश्वर का साम्राज्य स्थापित करने के मिथ्या प्रयासों पर नियंत्रण रखते हैं। कहा गया है कि बिना प्रताड़ना के बालक बिगड़ जाता है। यह सत्य है। यह तो भगवान् का अनुग्रह है कि वे हमारे दुराचरण को सुधारने का प्रयत्न करते हैं यद्यपि श्रद्धाविहीन लोग इस पितृ-तुल्य निगरानी की आलोचना करते हैं।

ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिन-
स्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् ।
हित्वार्यमार्गं प्रभजन्त्यपस्मया
ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

ये—जो लोग; मत्-विध—मेरी तरह; अज्ञाः—मूर्ख व्यक्ति; जगत्-ईश—जगत के स्वामियों की तरह; मानिनः—अपनी झूठी पहचान करने वाले; त्वाम्—तुमको; वीक्ष्य—देखकर; काले—(भय के) समय में; अभयम्—निर्भय; आशु—तुरन्त; तत्—उनका; मदम्—मिथ्या गर्व; हित्वा—त्यागकर; आर्य—आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करने वाले भक्तों का; मार्गम्—पथ; प्रभजन्ति—ग्रहण करते हैं; अप-स्मयाः—गर्व से मुक्त; ईहा—कर्म; खलानाम्—दुष्टों का; अपि—निस्सन्देह; ते—तुम्हारे द्वारा; अनुशासनम्—आदेश।

मुझ जैसे मूर्खजन जो अपने को जगत का स्वामी मान बैठते हैं तुरन्त ही अपने मिथ्या गर्व को त्याग देते हैं और जब वे आपको काल के समक्ष भी निडर देखते हैं, तो वे तुरन्त आध्यात्मिक प्रगति करने वाले भक्तों का मार्ग ग्रहण कर लेते हैं। इस तरह आप दुष्टों को शिक्षा देने के लिए ही दण्ड देते हैं।

तात्पर्य : इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ भगवान् मूर्खों के मिथ्या गर्व को चूर करते हैं। आधुनिक विश्व-नेता बड़े ही गर्व के साथ एक-दूसरे से युद्ध करते हैं और सामान्य लोगों के जीवन को अभूतपूर्व संकट में डाल देते हैं। इसी तरह अपने सुविदित पद से गर्वित इन्द्रने भोलेभाले वृन्दावनवासियों को विनाशकारी शस्त्रों से धमकाने का साहस किया जिसके कारण परमेश्वर को उसकी इस उद्धतता को तुरन्त दमित करना पड़ा।

आजकल पाश्चात्य देशों में प्रजातंत्र सरकारें चुनी जाती हैं जिससे जन समुदाय की पहचान उनके नेताओं के भाग्य से की जाती है। जब ये गर्वित नेता हिंसा पर उतारू होते हैं, तो उन्हें चुनने वाली जनता को उनके युद्धकारी निर्णयों का फल भुगतना पड़ता है। अतएव संसार के प्रजातांत्रिक राष्ट्रों की जनता को चाहिए कि वे कृष्णभावनाभावित नेताओं को चुनें जो ईश्वर के नियमों से मेल खाने वाले प्रशासन की स्थापना करेंगे। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनके भौतिकतावादी नेता परमेश्वर की इच्छा को विस्मृत करने के कारण निस्सन्देह विप्लवकारी घटनाओं द्वारा प्रताड़ित होंगे और जिन लोगों ने ऐसे नेताओं को चुना था वे अपने नेताओं के कार्यों के लिए उत्तरदायी होने के कारण कष्ट में भागीदार होंगे।

विडम्बना है कि आधुनिक प्रजातंत्रों में न केवल नेतागण अपने को अधीश्वर मानते हैं अपितु जनता इन नेताओं को ईश्वर का प्रतिनिधि न मानकर केवल अपना प्रतिनिधि मानने के साथ साथ अपने आपको भी राष्ट्र का नियन्ता मानती है। इस तरह इस श्लोक में वर्णित दण्ड आधुनिक जगत के सामान्य लोगों पर लागू होता है।

आधुनिक मनुष्य को अपने गर्वित पद से नीचे गिरकर यह प्राकृतिक सीख ही नहीं लेनी चाहिए अपितु उसे सर्व-आकर्षक भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा को विनीत भाव से पूरा करना चाहिए और

बुद्धिमानी, शान्ति तथा व्यापक प्रबुद्धता के नवीन युग का सूत्रपात करना चाहिए।

स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य
कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ।
क्षन्तुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो
मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; त्वम्—आप; मम—मेरे; ऐश्वर्य—शासन के; मद—नशे में; प्लुतस्य—निमग्न रहने वाले; कृत—किया हुआ; आगसः—अपराध; ते—आपका; अविदुषः—न जानने के कारण; प्रभावम्—दिव्य प्रभाव को; क्षन्तुम्—क्षमा करने के लिए; प्रभो—हे प्रभु; अथ—अतएव; अर्हसि—आपको चाहिए; मूढ—मूर्ख; चेतसः—जिसकी बुद्धि; मा—कभी नहीं; एवम्—इस प्रकार; पुनः—फिर; भूत्—होए; मतिः—चेतना; ईश—हे प्रभु; मे—मेरी; असती—अशुद्ध।

अपनी शासनशक्ति के मद में चूर एवं आपके दिव्य प्रभाव से अनजान मैंने आपका अपमान किया है। हे प्रभु, आप मुझे क्षमा करें। मेरी बुद्धि मोहग्रस्त हो चुकी थी किन्तु अब मेरी चेतना को कभी इतनी अशुद्ध न होने दें।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाकर व्रजवासियों की रक्षा कर दी थी किन्तु इन्द्र को अभी तक दण्डित नहीं किया था अतएव इन्द्र भयभीत था कि श्रीकृष्ण किसी भी समय विवस्वान् पुत्र यमराज को बुला सकते हैं, जो ईश्वर के नियमों का उल्लंघन करने वाले उद्धत व्यक्तियों को दण्ड देता है।

इन्द्र अत्यधिक भयभीत था इसलिए उसने यह दलील देते हुए क्षमा-याचना की कि एकमात्र कृष्ण-कृपा से ही वह शुद्ध हो सकता है क्योंकि वह इतना जिद्दी है कि केवल दण्ड से वह नहीं सुधर सकता है।

वस्तुतः इन्द्र द्वारा दीनता के प्रदर्शन के बावजूद उसका हृदय पूरी तरह शुद्ध नहीं था। आगे चलकर इसी स्कन्ध में हम देखेंगे कि जब एक बार भगवान् कृष्ण ने इन्द्र के राज्य से एक पारिजात पुष्प लिया तो बेचारे इन्द्र ने भगवान् के विरुद्ध उग्र प्रतिक्रिया दिखलाई। अतएव हमें कृष्ण के राज्य में अपने शाश्वत धाम वापस जाने की आकांक्षा करनी चाहिए। हमें भौतिक देवताओं के अपूर्ण जीवन में उलझना नहीं चाहिए।

तवावतारोऽयमधोक्षजेह

भुवो भराणामुरुभारजन्मनाम् ।
चमूपतीनामभवाय देव
भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तव—आपका; अवतार:—अवतरण; अयम्—यह; अधोक्षज—हे दिव्य प्रभु; इह—इस; भुवः—पृथ्वी के; भराणाम्—भार स्वरूप; उरु-भार—अनेक उत्पातों के प्रति; जन्मनाम्—जन्म देने वालों; चमू-पतीनाम्—सैन्य नायकों के; अभवाय—विनाश के लिए; देव—हे भगवान्; भवाय—मंगल के लिए; युष्मत्—आपके; चरण—चरणकमल; अनुवर्तिनाम्—सेवकों का।

हे दिव्य प्रभु, आप इस जगत में उन सेनापतियों को विनष्ट करने के लिए अवतरित होते हैं, जो पृथ्वी का भार बढ़ाते हैं और अनेक भीषण उत्पात मचाते हैं। हे प्रभु, उसी के साथ साथ आप उन लोगों के कल्याण के लिए कर्म करते हैं, जो श्रद्धापूर्वक आपके चरणकमलों की सेवा करते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में आकर्षक कवित्व-प्रकल्पना का प्रयोग हुआ है। इस जगत में भगवान् कृष्ण का अवतरण *अभव* के लिए जिसका शाब्दिक अर्थ है आसुरी सेनापतियों को ''मिटाने'' या उनका विनाश करने के लिए और साथ ही भगवान् के चरणकमलों की श्रद्धापूर्वक सेवा करने वालों के *भव* अर्थात् ''अस्तित्व, सम्पन्नता'' के लिए होता है।

भव शब्द से इंगित वास्तविक अस्तित्व तो *सच्चिदानन्द* स्वरूप है। एक अजनबी को ऐसा प्रतीत हो सकता है कि कृष्ण अपने अनुयायियों को पुरस्कृत करते हैं और अपने शत्रुओं को दण्ड देते हैं जैसाकि कोई सामान्य मनुष्य करता है। छठे स्कन्ध में यह विशेष संशय भगवान् के विषय में किया जाता है जहाँ विश्व युद्ध में कृष्ण श्रद्धालु देवताओं का पक्ष श्रद्धाविहीन असुरों के मुकाबले में लेते हैं। वहाँ वैष्णव आचार्य यह स्पष्ट विवेचना करते हैं कि कृष्ण पिता हैं और सारे जीवों के स्वामी हैं अतएव उनके सारे कार्यकलाप सारे जगत के लाभ हेतु हैं। वास्तव में भगवान् कृष्ण किसी का अस्तित्व मिटाना नहीं चाहते प्रत्युत जो ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन करते हैं उनके मूर्खतापूर्ण, विनाशकारी भौतिक तौर-तरीकों पर अंकुश लगाते हैं। ये नियम सम्पूर्ण सृष्टि में सम्पन्नता, समरसता तथा सुख का आश्वासन देते हैं और इनका उल्लंघन अन्यायपूर्ण उत्पात माना जाता है।

निश्चय ही इन्द्र को आशा थी कि भगवान् कृष्ण उसकी गणना अपने भक्तों में करेंगे, असुरों में नहीं यद्यपि इन्द्र के कार्यों से उसकी स्वामि-भक्ति में संशय झलकता है। इन्द्र इस सम्भव संशय से अवगत था इसीलिए जैसा हम अगले श्लोक में देखते हैं, उसने भगवान् के चरणों में आत्मसमर्पण करने का

भरसक प्रयत्न किया।

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—आपको; भगवते—भगवान् को; पुरुषाय—सबों के हृदयों में वास करने वाले प्रभु को; महा-आत्मने—महान् आत्मा; वासुदेवाय—सर्वत्र निवास करने वाले को; कृष्णाय—कृष्ण को; सात्वताम्—यदु कुल के; पतये—स्वामी को; नमः—नमस्कार।

सर्वव्यापी तथा सबों के हृदयों में निवास करने वाले हे परमात्मा, आपको मेरा नमस्कार। हे यदुकुलश्रेष्ठ कृष्ण, आपको मेरा नमस्कार।

स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ।
सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

स्व—अपने (भक्तों) की; छन्द—इच्छानुसार; उपात्त—धारण करने वाले; देहाय—दिव्य शरीर वाले को; विशुद्ध—नितान्त शुद्ध; ज्ञान—ज्ञान; मूर्तये—स्वरूप वाले; सर्वस्मै—जो सर्वस्व है उसे; सर्व-बीजाय—सबों का बीज स्वरूप; सर्व-भूत—समस्त प्राणियों के; आत्मने—अन्तरात्मा स्वरूप; नमः—नमस्कार।

अपने भक्तों की इच्छा के अनुसार दिव्य शरीर धारण करने वाले, शुद्ध चेतना रूप, सर्वस्व, समस्त वस्तुओं के बीज तथा समस्त प्राणियों के आत्मा रूप आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : इस श्लोक की प्रथम पंक्ति से यह पता नहीं लगाया जा सकता कि ईश्वर निर्विशेष है किन्तु निजी भौतिक शरीर धारण करता है। यहाँ पर स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् *स्वच्छन्द*—अपनी इच्छानुसार या अपने भक्तों की इच्छाओं के अनुसार विविध रूप धारण करते हैं। निर्विशेष ईश्वर अपने भक्तों की साकार इच्छाओं से न तो आदान-प्रदान कर सकता है न ही निर्विशेष ईश्वर की अपनी इच्छाएँ हो सकती हैं क्योंकि इच्छाएँ तो व्यक्तित्व के लक्षण हैं। अत: साकार होकर विभिन्न रूपों को प्रकट करना, निजी इच्छाओं को व्यक्त करना यह सूचित करता है कि वह नित्य पुरुष है और अपनी दिव्य प्रकृति को अभिव्यक्त करने के लिए विविध शरीर धारण करता है।

विशुद्धज्ञानमूर्तये शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। *मूर्ति* का अर्थ है अर्चाविग्रह का रूप और यहाँ यह स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् का रूप स्वयं विशुद्ध चेतना है। चेतना मूल आध्यात्मिक तत्त्व है, जो किसी भी भौतिक तत्त्व से अलग होता है, यहाँ तक कि सूक्ष्म या मनोवैज्ञानिक भौतिक तत्त्वों—मन,

बुद्धि तथा अहंकार—से भी भिन्न होता है, जो शुद्ध चेतना पर मात्र मनोवैज्ञानिक आवरण हैं। चूँकि भगवान् का स्वरूप शुद्ध चेतना से निर्मित होता है, अत: यह मांस-मज्जा से भरा भौतिक शरीर कभी नहीं हो सकता हम इस संसार में जिसे उठाए फिरते हैं।

इस श्लोक की अन्तिम दो पंक्तियों में *सर्व* शब्द पर कवित्व-बल दिया गया है। भगवान् सर्वस्व हैं, वे हर वस्तु के बीज हैं और हर प्राणी की आत्मा हैं। अतएव हम भी इन्द्र के साथ भगवान् को नमस्कार करते हैं।

मयेदं भगवन्गोष्ठनाशायासारवायुभिः ।
चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥ १२॥

शब्दार्थ

मया—मेरे द्वारा; इदम्—यह; भगवन्—हे प्रभु; गोष्ठ—आपके ग्वाल समुदाय के; नाशाय—विनाश हेतु; आसार—मूसलाधार वर्षा से; वायुभिः—तथा हवा से; चेष्टितम्—चेष्टा किया गया; विहते—विध्वंस हो जाने पर; यज्ञे—मेरा यज्ञ; मानिना—मिथ्या गर्वित होने के कारण मेरे द्वारा; तीव्र—प्रखर; मन्युना—क्रोध होने से।

हे प्रभु, जब मेरा यज्ञ भंग हो गया, तो मैं मिथ्या अहंकार के कारण बहुत क्रुद्ध हुआ। इस तरह मैंने घनघोर वर्षा तथा वायु के द्वारा आपके ग्वाल समुदाय को विनष्ट कर देना चाहा।

त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो वृथोद्यमः ।
ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥ १३॥

शब्दार्थ

त्वया—आपके द्वारा; ईश—हे प्रभु; अनुगृहीतः—दया दिखाया हुआ; अस्मि—हूँ; ध्वस्त—छिन्न-भिन्न; स्तम्भः—मेरा मिथ्या अभिमान; वृथा—व्यर्थ; उद्यमः—मेरा प्रयास; ईश्वरम्—परमेश्वर की; गुरुम्—गुरु की; आत्मानम्—आत्मा की; त्वाम्—आपकी; अहम्—मैं; शरणम्—शरण में; गतः—आया हुआ।

हे प्रभु, मेरे मिथ्या अहंकार को चकनाचूर करके तथा मेरे प्रयास (वृन्दावन को दण्डित करने का) को पराजित करके आपने मुझपर दया दिखाई है। अब मैं, परमेश्वर, गुरु तथा परमात्मा रूप आपकी शरण में आया हूँ।

श्रीशुक उवाच
एवं सङ्कीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् ।
मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; सङ्कीर्तितः—महिमा बखान किये जाने पर; कृष्णः—कृष्ण; मघोना—इन्द्र द्वारा; भगवान्—भगवान्; अमुम्—उससे; मेघ—बादलों की तरह; गम्भीरया—गम्भीर; वाचा—वाणी से; प्रहसन्—हँसते हुए; इदम्—यह; अब्रवीत्—बोले।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार इन्द्र द्वारा वन्दित होकर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हँसे और तब बादलों की गर्जना जैसी गम्भीर वाणी में उससे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : यद्यपि इस लीला में कृष्ण एक छोटे से बालक प्रतीत होते थे किन्तु *मेघ-गम्भीरया वाचा* शब्द बतलाते हैं कि वे भगवान् की गम्भीर वाणी में इन्द्र से बोले।

श्रीभगवानुवाच
मया तेऽकारि मघवन्मखभङ्गोऽनुगृह्णता ।
मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येन्द्रश्रिया भृशम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; मया—मेरे द्वारा; ते—तुम्हारे; अकारि—किया गया; मघवन्—हे इन्द्र; मख—यज्ञ का; भङ्गः—अवरोध; अनुगृह्णता—तुम पर दया दिखाते हुए; मत्-अनुस्मृतये—मेरा स्मरण करने के लिए; नित्यम्—निरन्तर; मत्तस्य—उन्मत्त का; इन्द्र-श्रिया—इन्द्र के ऐश्वर्य से; भृशम्—अत्यधिक।

भगवान् ने कहा : हे इन्द्र, मैंने तो दयावश ही तुम्हारे निमित्त होने वाले यज्ञ को रोक दिया था। तुम स्वर्ग के राजा के अपने ऐश्वर्य से अत्यधिक उन्मत्त हो चुके थे और मैं चाहता था कि तुम सदैव मेरा स्मरण कर सको।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी के अनुसार इन्द्र तथा भगवान् कृष्ण यहाँ पर अपने अपने मन की बात एक-दूसरे से कहते हैं। पहले इन्द्र ने अपने मन की बात प्रकट की और अब कृष्ण भी उसी तरह अपने मनोभाव प्रकट कर रहे हैं।

इस अध्याय के श्लोक ११ में इन्द्र ने बलपूर्वक यह कहा है कि कृष्ण ही सर्वस्व हैं अतएव इन्द्र के ही मानदण्ड के अनुसार कृष्ण को विस्मृत करना पागलपन है। जब भगवान् हमें अपने परम अस्तित्व का स्मरण दिलाते होते हैं, तो वे किसी संसारी राजनीतिज्ञ या स्वागतकर्ता की तरह प्रमादवश विज्ञापन नहीं करते। भगवान् अपने असीम अस्तित्व में आत्मतुष्ट रहते हैं और वे बड़े ही स्नेहपूर्वक हमें अपने नित्य संगियों के पूर्ण पद पर वापस लाने का प्रयास करते हैं।

ईश्वर की दृष्टि में स्वर्ग का राजा इन्द्र भी निरा बालक, नटखट बालक है और इसीलिए पालनकर्ता पिता की भाँति उन्होंने अपनी सन्तान को दण्ड दिया और उसे कृष्ण-भक्ति में ले आये।

मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्ड पाणिं न पश्यति ।
तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

माम्—मुझको; **ऐश्वर्य**—ऐश्वर्य; **श्री**—तथा वैभव के; **मद**—नशे से; **अन्धः**—अन्धा; **दण्ड**—दण्ड देने वाला डंडा लेकर; **पाणिम्**—अपने हाथ में; **न पश्यति**—नहीं देखता है; **तम्**—उसको; **भ्रंशयामि**—गिरा देता हूँ; **सम्पद्भ्यः**—उसकी भौतिक सम्पत्ति से; **यस्य**—जिसका; **च**—तथा; **इच्छामि**—चाहता हूँ; **अनुग्रहम्**—लाभ ।

अपनी शक्ति तथा ऐश्वर्य के नशे में उन्मत्त मनुष्य मुझे अपने हाथ में दण्ड का डंडा लिये हुए अपने निकट नहीं देख पाता। यदि मैं उसका वास्तविक कल्याण चाहता हूँ तो मैं उसे भौतिक सौभाग्य के पद से नीचे घसीट देता हूँ।

तात्पर्य : कोई तर्क कर सकता है ''ईश्वर को तो हरएक का वास्तविक कल्याण करना चाहिए तो फिर इस श्लोक में भगवान् कृष्ण ने यह क्यों कहा कि जिसे उनकी कृपा प्राप्त होने वाली होती है उसके उन्मत्तकारी ऐश्वर्य का वे हरण कर लेते हैं? उन्होंने यह क्यों नहीं कहा कि हरएक का ऐश्वर्य हर लेंगे और हरएक को वर देंगे? दूसरी ओर यह इंगित किया जाता है कि हरएक की मृत्यु ध्रुव है और इस तरह भगवान् कृष्ण हरएक के ऐश्वर्य तथा उसके मिथ्या अहंकार को छीन लेते हैं। किन्तु यदि मृत्यु के पूर्व मनुष्य के निकटतम जीवन की घटनाओं पर भगवान् के कथन को लागू करें तो हम *भगवद्गीता* (४.११) में व्यक्त कृष्ण के कथन का उल्लेख कर सकते हैं—*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*—लोग जिस प्रकार मेरी शरण में आते हैं उसी तरह मैं उन्हें पुरस्कार देता हूँ। कृष्ण हरएक के कल्याण की कामना करते हैं किन्तु जब वे यहाँ पर कहते हैं—*यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम्*—मैं जिसका कल्याण करना चाहता हूँ तो ऐसा लगता है कि भगवान् उनका उल्लेख कर रहे हैं, जो अपने कर्मों तथा विचारों से आध्यात्मिक लाभ पाने की इच्छा व्यक्त कर चुके हैं। भगवान् कृष्ण चाहते हैं कि कृष्णभावनामृत में हर व्यक्ति सुखी रहे किन्तु जब वे देखते हैं कि कोई विशिष्ट व्यक्ति भी आध्यात्मिक सुख चाहता है, तो भगवान् उस व्यक्ति के लिए विशेष रूप से कल्याण की कामना करते हैं। यह भगवान् के कथन *समोऽहं सर्वभूतेषु*—मैं सारे जीवों के प्रति समान भाव रखता हूँ—का स्वाभाविक पारस्परिक आदान-प्रदान है।

गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् ।
स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तम्भवर्जितैः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

गम्यताम्—जा सकते हो; शक्र—हे इन्द्र; भद्रम्—कल्याण; वः—तुम्हारा; क्रियताम्—तुम्हें पालन करना चाहिए; मे—मेरी; अनुशासनम्—आज्ञा का; स्थीयताम्—तुम रहे आओ; स्व—अपने; अधिकारेषु—उत्तरदायित्वों में; युक्तैः—लगे रहकर; वः—तुम; स्तम्भ—मिथ्या अहंकार; वर्जितैः—से रहित।

हे इन्द्र, अब तुम जा सकते हो। मेरी आज्ञा का पालन करो और स्वर्ग के राज-पद पर बने रहो। किन्तु मिथ्या अभिमान से रहित होकर गम्भीर बने रहना।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् कृष्ण इन्द्र को बहुवचन में (वः) सम्बोधित करते हैं क्योंकि यह गम्भीर आदेश समस्त देवताओं के लिए शिक्षा के रूप में था।

अथाह सुरभिः कृष्णमभिवन्द्य मनस्विनी ।
स्वसन्तानैरुपामन्त्र्य गोपरूपिणमीश्वरम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; आह—बोली; सुरभिः—गौवों की माता, सुरभि; कृष्णम्—कृष्ण को; अभिवन्द्य—वन्दना करते हुए; मनस्विनी—शान्त मन वाली; स्व-सन्तानैः—अपनी सन्तानों, गौवों समेत; उपामन्त्र्य—ध्यानाकर्षण की याचना करते हुए; गोप-रूपिणम्—ग्वालबाल रूपी; ईश्वरम्—भगवान् को।

तब अपनी सन्तान गौवों समेत माता सुरभि ने भगवान् कृष्ण को नमस्कार किया। उनसे ध्यान देने के लिए सादर प्रार्थना करते हुए उस भद्र नारी ने भगवान् को, जो उसके समक्ष ग्वालबाल के रूप में उपस्थित थे, सम्बोधित किया।

तात्पर्य : इस श्लोक में अपनी सन्तानों समेत जिस स्वर्गीय गाय सुरभि का भगवान् कृष्ण के पास जाने का वर्णन हुआ है वे दिव्य गौवें हैं, जो कृष्ण के साथ वृन्दावन में क्रीड़ा करती हैं। कृष्ण की गौवें दिव्य हैं और सुरभि ने उन्हें इसी रूप में स्नेहपूर्ण देखा। चूँकि भगवान् कृष्ण ग्वालबाल के रूप में प्रकट हुए थे अतएव परिस्थिति अनुकूल जानकर सुरभि ने उनकी निम्न प्रकार से स्तुति की।

सुरभिरुवाच

कृष्ण कृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वसम्भव ।
भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

सुरभिः उवाच—सुरभि ने कहा; कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; महा योगिन्—हे महान् योगी; विश्व-आत्मन्—हे विश्व की आत्मा; विश्व-सम्भव—हे विश्व के उद्गम; भवता—तुम्हारे द्वारा; लोक नाथेन—विश्व के स्वामी द्वारा; स-नाथाः—नाथ से युक्त; वयम्—हम सभी; अच्युत—हे अच्युत।

माता सुरभि ने कहा : हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे योगियों में श्रेष्ठ, हे विश्व की आत्मा तथा उद्गम,

आप विश्व के स्वामी हैं और हे अच्युत, आपकी ही कृपा से हम सबों को आप जैसा स्वामी मिला है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इंगित करते हैं कि माता सुरभि को ''कृष्ण कृष्ण'' दुहराने में परम प्रसन्नता हो रही है। कृष्ण ने अपनी योगशक्ति से गोवर्धन पर्वत उठाया और वृन्दावन की गौवों की रक्षा की जबकि सुरभि के तथाकथित स्वामी इन्द्र ने उन्हें मार डालने की कोशिश की थी। अब सुरभि की समझ में आया कि उसका असली स्वामी देवता नहीं हैं अपितु साक्षात् भगवान् कृष्ण सदा सर्वदा ही उनके असली स्वामी हैं।

त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते ।
भवाय भव गोविप्र देवानां ये च साधवः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; नः—हमारे; परमकम्—परम; दैवम्—आराध्य देव; त्वम्—तुम; नः—हमारे; इन्द्रः—इन्द्र; जगत्-पते—हे जगत के स्वामी; भवाय—कल्याण के लिए; भव—होओ, बनो; गो—गौवों; विप्र—ब्राह्मणों; देवानाम्—तथा देवताओं के; ये—जो; च—तथा; साधवः—सन्त पुरुषों।

आप हमारे आराध्य देव हैं। अतएव हे जगत्पति, गौवों, ब्राह्मणों, देवताओं एवं सारे सन्त पुरुषों के लाभ हेतु आप हमारे इन्द्र बनें।

तात्पर्य : भगवान् आत्मनिर्भर हैं, वे स्वयं सबकुछ कर सकते हैं। भगवान् ने अपनी असंख्य सन्तानों में से एक को इन्द्र-पद पर अर्थात् स्वर्ग के स्वामी के पद पर नियुक्त किया। किन्तु इन्द्र ने अपने पद का दुरुपयोग किया अतः अब सुरभि परम सत्य भगवान् कृष्ण से प्रार्थना कर रही है कि वे ही उसके स्वामी इन्द्र बनें। हमें बिना मिथ्या अभिमान के अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। इस प्रकार हम न तो दुविधा में पड़ेंगे, न ही अनुपयोगी बनेंगे जैसाकि राजा इन्द्र बना जिसने भगवान् कृष्ण तथा उनके वृन्दावन के भक्तों पर आक्रमण किया।

इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा चोदिता वयम् ।
अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन्भूमेर्भारापनुत्तये ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

इन्द्रम्—इन्द्र रूप में; नः—हमारे; त्वा—तुमको; अभिषेक्ष्यामः—हम सभी अभिषेक करेंगे; ब्रह्मणा—ब्रह्म द्वारा; चोदिताः—आदिष्ट; वयम्—हम; अवतीर्णः असि—तुम अवतीर्ण हुए हो; विश्व-आत्मन्—हे विश्वात्मा; भूमेः—पृथ्वी का; भार—भार; अपनुत्तये—कम करने के लिए।

ब्रह्माजी के आदेशानुसार हम इन्द्र के रूप में आपका राज्याभिषेक करेंगी। हे विश्वात्मा, आप पृथ्वी का भार उतारने के लिए इस संसार में अवतरित होते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में सुरभि यह स्पष्ट कर देती है कि उसने पुरन्दर (इन्द्र) जैसे अपूर्ण देवताओं का नायकत्व देख लिया है। अब वह परमेश्वर की प्रत्यक्ष सेवा करना चाहती है। चूँकि ब्रह्मा ने उसे आदेश दिया है अतएव अपने निजी प्रभु के रूप में भगवान् कृष्ण का राज्याभिषेक करने का उसका प्रयास उच्चतर अधिकारी द्वारा अनुमत है। यही नहीं, भगवान् कृष्ण स्वयं ही इस धरा में आत्मघाती, संसारी प्रशासन का बोझ उतारने के लिए अवतरित होते हैं इसलिए उनका सुरभि का प्रभु बनना पूर्णतया उचित है। चूँकि भगवान् लाखों ब्रह्माण्डों पर शासन करते हैं अतएव वे अवश्य ही माता सुरभि की देखरेख कर सकते हैं।

वस्तुत: सुरभि अपनी शुद्धि के लिए भगवान् का अभिषेक करना चाहती थी और वह बड़ी ही ईमानदारी के साथ अपना प्रस्ताव विश्वात्मा श्रीकृष्ण के समक्ष रखती है।

श्रीशुक उवाच
एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभि: पयसात्मन: ।
जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धृतै: ॥ २२ ॥
इन्द्र: सुरर्षिभि: साकं चोदितो देवमातृभि: ।
अभ्यसिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण से; उपामन्त्र्य—अनुरोध करके; सुरभि:—माता सुरभि ने; पयसा—दूध से; आत्मन:—अपने; जलै:—जल से; आकाश-गङ्गाया:—आकाश गंगा (मन्दाकिनी) के; ऐरावत—इन्द्र के वाहन, ऐरावत हाथी के; कर—सूँड़ से; उद्धृतै:—ले जाया जाकर; इन्द्र:—इन्द्र; सुर—देवताओं; ऋषिभि:—तथा ऋषियों द्वारा; साकम्—साथ में; चोदित:—प्रोत्साहित; देव—देवताओं की; मातृभि:—माताओं द्वारा (अदिति इत्यादि); अभ्यसिञ्चत—नहलाया; दाशार्हम्—दशार्ह के वंशज, भगवान् कृष्ण को; गोविन्द: इति—गोविन्द के रूप में; च—तथा; अभ्यधात्-हे नमेद् थे लोर्द्.

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् कृष्ण से इस तरह याचना करने के बाद माता सुरभि ने अपने दूध से उनका अभिषेक किया और इन्द्र ने अदिति तथा देवताओं की अन्य माताओं से आदेश पाकर अपने हाथी ऐरावत की सूँड़ से आकाश गंगा के जल से भगवान् का जलाभिषेक किया। इस तरह देवताओं तथा ऋषियों की संगति में इन्द्र ने दशार्ह वंशज भगवान् कृष्ण का राज्याभिषेक किया और उनका नाम गोविन्द रखा।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार इन्द्र वृन्दावन पर आक्रमण करने की भारी भूल से उद्विग्न था अतएव वह भगवान् की पूजा करने में अरुचि दिखा रहा था। इसीलिए अदिति इत्यादि देवमाताओं ने उसे आगे बढ़कर पूजा करने के लिए प्रोत्साहित किया। तत्पश्चात् इन्द्र ने अपने से कम उग्रस्वभाव वाले देवताओं के प्रोत्साहन से अनुमत होकर, भगवान् का अभिषेक किया। तब इन्द्र को पता चला कि कृष्ण नामक यह सुन्दर सा लड़का ही वास्तव में परमेश्वर है।

तत्रागतास्तुम्बुरुनारदादयो
गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ।
जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः
सुराङ्गनाः सन्ननृतुर्मुदान्विताः ॥ २४॥

शब्दार्थ

तत्र—उस स्थान पर; आगताः—आकर; तुम्बुरु—तुम्बुरु नामक गन्धर्व; नारद—नारदमुनि; आदयः—इत्यादि देवता; गन्धर्व-विद्याधर-सिद्ध-चारणाः—गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध तथा चारणगण ने; जगुः—गाया; यशः—कीर्ति; लोक—समस्त जगत; मल—कल्मष; अपहम्—विनष्ट करने वाले; हरेः—भगवान् हरि का; सुर—देवताओं की; अङ्गनाः—पत्नियाँ; सन्ननृतुः—एकसाथ नाचीं; मुदा अन्विताः—हर्ष से पूरित होकर।

वहाँ पर तुम्बरु, नारद तथा विद्याधरों, सिद्धों और चारणों समेत अन्य गन्धर्वगण समस्त जगत को शुद्ध करने वाले भगवान् हरि के यश का गुणगान करने आये। और देवताओं की पत्नियाँ हर्ष से भरकर भगवान् के सम्मान में एकसाथ नाचीं।

तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो
ह्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः ।
लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो
गावस्तदा गामनयन्पयोद्रुताम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

तम्—उनकी; तुष्टुवुः—प्रशंसा की; देव-निकाय—सारे देवताओं के; केतवः—सर्वाधिक प्रमुख ने; हि—निस्सन्देह; अवाकिरन्—आच्छादित कर दिया; च—तथा; अद्भुत—आश्चर्यजनक; पुष्प—फूलों की; वृष्टिभिः—वर्षा से; लोकाः—जगतों ने; पराम्—परम; निर्वृतिम्—सन्तोष; आप्नुवन्—अनुभव किया; त्रयः—तीनों; गावः—गौवें; तदा—तब; गाम्—पृथ्वी को; अनयन्—बना दिया; पयः—अपने दूध से; द्रुताम्—सिक्त।

सर्वप्रमुख देवताओं ने भगवान् की प्रशंसा की और उनपर चारों ओर से फूलों की अद्भुत वर्षा की। इससे तीनों लोकों को परम संतोष का अनुभव हुआ और गौवों ने अपने दूध से पृथ्वी की सतह भाग को सिक्त कर दिया।

तात्पर्य : *केतवः* का शाब्दिक अर्थ ''झंडे'' है। प्रमुख देवतागण देव-जाति के प्रतीक या झंडे हैं

और इन सबों ने भगवान् के यश-गान में अगुवाई की और उन्हें रंगबिरंगे सुगंधित फूलों की अद्‌भुत वर्षा से ढक दिया।

नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन्मधुस्त्रवाः ।
अकृष्टपच्यौषधयो गिरयोऽबिभ्रनुन्मणीन् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

नाना—विविध; रस—द्रव; ओघाः—बाढ़-सी लाते हुए; सरितः—नदियाँ; वृक्षाः—वृक्ष; आसन्—बन गये; मधु—मधुर रस से; स्त्रवाः—बहते हुए; अकृष्ट—बिना जोते-बोये ही; पच्य—पका हुआ; ओषधयः—पौधे; गिरयः—पर्वत; अबिभ्रन्—ले गये; उत्—धरती के ऊपर; मणीन्—मणियाँ।

नदियाँ विविध प्रकार के स्वादिष्ट द्रवों से युक्त होकर बहने लगीं, वृक्षों ने मधु निकाल लिया, खाद्य पौधे बिना जोते ही परिपक्व हो उठे और पर्वतों ने अपने गर्भ में छिपी मणियों को बाहर निकाल दिया।

कृष्णोऽभिषिक्त एतानि सर्वाणि कुरुनन्दन ।
निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

कृष्णे—भगवान् कृष्ण; अभिषिक्ते—अभिषेक किये गये; एतानि—ये; सर्वाणि—समस्त; कुरु-नन्दन—हे कुरुवंशी; निर्वैराणि—शत्रुता से रहित; अभवन्—हो गये; तात—हे परीक्षित; क्रूराणि—क्रूर; अपि—यद्यपि; निसर्गतः—प्रकृति द्वारा।

हे कुरुनन्दन परीक्षित, भगवान् कृष्ण को अभिषेक कराने के बाद सभी जीवित प्राणी, यहाँ तक कि जो स्वभाव के क्रूर थे, सर्वथा शत्रुतारहित बन गये।

तात्पर्य : जो लोग किसी प्रकार से सनकी हैं, वे केवल भगवान् की पूजा द्वारा उत्पन्न स्वर्गिक विश्व परिस्थिति के वर्णनों पर हँस सकते हैं। दुर्भाग्यवश आधुनिक मनुष्य ने अपनी सनक के कारण ही कृष्णभावनामृत के द्वारा पृथ्वी पर स्वर्ग बनाने को ठुकराकर पृथ्वी पर नरक की स्थिति उत्पन्न कर दी है। यहाँ पर वर्णित भगवान् के शुभ अभिषेक से उत्पन्न परिस्थिति एक मौलिक ऐतिहासिक घटना है। चूँकि इतिहास की पुनरावृत्ति होती है अतएव आशा है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन पुनः स्वरूपसिद्ध विश्व की प्रकाशमय वास्तविकता को ला देगा।

इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः ।
अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; गो—गौवों के; गो-कुल—तथा ग्वाल-जाति के; पतिम्—स्वामी को; गोविन्दम्—भगवान् कृष्ण को; अभिषिच्य—अभिषेक कराकर; सः—वह, इन्द्र; अनुज्ञातः—अनुमति दिये जाने पर; ययौ—चला गया; शक्रः—इन्द्र; वृतः—घिरा हुआ; देव-आदिभिः—देवताओं तथा अन्यों से; दिवम्—स्वर्ग को।.

गौवों तथा ग्वाल-जाति के स्वामी भगवान् गोविन्द को अभिषेक कराने के बाद इन्द्र ने भगवान् की अनुमति ली और देवताओं तथा अन्य उच्च प्राणियों से घिरकर वह अपने स्वर्ग-धाम को लौट गया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत "इन्द्र तथा माता सुरभि द्वारा स्तुति" नामक सत्ताइसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter अट्ठाईस

कृष्ण द्वारा वरुणलोक से नन्द महाराज की रक्षा

इस अध्याय में कृष्ण द्वारा वरुणलोक से नन्द महाराज के वापस लाये जाने और ग्वालों द्वारा वैकुण्ठ दर्शन करने का उल्लेख हुआ है।

गोपराज नन्द महाराज ने एकादशी के दिन व्रत रखा और विचार किया कि बारहवें दिन वे व्रत को विधिवत किस तरह से तोड़ें। संयोगवश केवल कुछ ही मिनट शेष थे अतएव उन्होंने रात्रि बीतने पर ही स्नान करने का निश्चय किया यद्यपि ज्योतिष के अनुसार यह अशुभ समय था। वे यमुना जल में घुसे। वरुण के सेवक समुद्र देवता ने नन्द महाराज को शास्त्रवर्जित समय में जल में प्रवेश करते देख लिया अतः वह उन्हें वरुणदेव के धाम ले गया। प्रातः होने पर ग्वाले व्यर्थ ही नन्द महाराज की खोज करते रहे किन्तु भगवान् कृष्ण ने तुरन्त ही स्थिति जान ली और वे वरुण के पास जा पहुँचे। वरुण ने कृष्ण की बड़ी आवभगत की। तत्पश्चात् उसने भगवान् से प्रार्थना की कि वे उसके सेवक को क्षमा कर दें जिसने गोपराज को मूर्खतावश बन्दी बना लिया था।

वरुणदेव के दरबार में श्रीकृष्ण के प्रभाव को देखकर नन्द चकित थे और घर वापस आकर उन्होंने अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से अपने अनुभव कह सुनाये। उन सबों ने सोचा कि कृष्ण अवश्य ही भगवान् हैं अतः उन्होंने उनके परम धाम को देखना चाहा। इस पर सर्वज्ञ भगवान् ने उन सबों को उसी

सरोवर में स्नान कराया जिसमें अक्रूर को परम सत्य का दर्शन हुआ था। वहीं पर भगवान् ने उन्हें ब्रह्मलोक दिखलाया जिसे बड़े बड़े मुनि अपनी योग-समाधि में अनुभव करते हैं।

श्रीबादरायणिरुवाच
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्यां द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्रीबादरायणि (शुकदेव गोस्वामी) ने कहा; एकादश्याम्—एकादशी के दिन; निराहारः—बिना खाये, उपवास करते हुए; समभ्यर्च्य—पूजा करने के बाद; जनार्दनम्—जनार्दन की, भगवान् की; स्नातुम्—स्नान करने के लिए (व्रत तोड़ने के पूर्व आवश्यक है); नन्दः—नन्द महाराज ने; तु—लेकिन; कालिन्द्याम्—यमुना नदी में; द्वादश्याम्—द्वादशी के दिन; जलम्—जल में; आविशत्—प्रवेश किया।

श्रीबादरायणि ने कहा : भगवान् जनार्दन की पूजा करके तथा एकादशी के दिन व्रत रखकर नन्द महाराज ने द्वादशी के दिन स्नान करने के लिए कालिन्दी के जल में प्रवेश किया।

तं गृहीत्वानयद्भृत्यो वरुणस्यासुरोऽन्तिकम् ।
अवज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; गृहीत्वा—पकड़कर; अनयत्—ले आया; भृत्यः—नौकर; वरुणस्य—समुद्र के स्वामी, वरुण का; असुरः—असुर के; अन्तिकम्—समक्ष; अवज्ञाय—अवहेलना करके; आसुरीम्—अशुभ; वेलाम्—समय; प्रविष्टम्—प्रवेश करके; उदकम्—जल में; निशि—रात्रि के समय।

चूँकि नन्द महाराज ने इस बात की अवहेलना करके कि यह अशुभ समय था, रात्रि के अंधकार में जल में प्रवेश किया था अतः वरुण का आसुरी सेवक उन्हें पकड़ कर अपने स्वामी के पास ले आया।

तात्पर्य : नन्द महाराज अपना व्रत द्वादशी को तोड़ने के इच्छुक थे और उसमें अब केवल कुछ ही क्षण शेष थे। अतः वे प्रभात होने के पूर्व अशुभ समय में स्नान करने के लिए जल में प्रविष्ट हुए।

वरुण के जिस सेवक ने नन्द महाराज को पकड़ा था उसे *असुर* कहा गया है, जिसके कारण स्पष्ट हैं। पहले तो वह सेवक इस बात से अनजान था कि नन्द महाराज परम सत्य के लीला के रूप में पिता हैं। दूसरे नन्द महाराज शास्त्रों के आदेशों का पालन करना चाह रहे थे अतएव वरुण के सेवक को इस बात के लिए उन्हें नहीं पकड़ना चाहिए था कि वे अशुभ वेला में यमुना-स्नान कर रहे थे। इसी अध्याय में आगे चलकर वरुण कहते हैं—*अजानता मामकेन मूढेन*—मेरे अज्ञानी नौकर ने यह किया

क्योंकि वह मूर्ख था। यह मूर्ख नौकर कृष्ण या नन्द महाराज या भगवद्भक्ति के विषय में कुछ नहीं जानता था।

सारांश यह कि भगवान् कृष्ण वरुण को अपना दर्शन देना चाहते थे और साथ ही अन्य उपदेशात्मक कार्य सम्पन्न करना चाहते थे। इस अद्भुत लीला का उद्घाटन आगे होगा।

चुक्रुशुस्तमपश्यन्तः कृष्ण रामेति गोपकाः ।
भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ।
तदन्तिकं गतो राजन्स्वानामभयदो विभुः ॥ ३॥

शब्दार्थ

चुक्रुशुः—जोर से पुकारा; तम्—उसको, नन्द को; अपश्यन्तः—न देखकर; कृष्ण—हे कृष्ण; राम—हे राम; इति—इस प्रकार; गोपकाः—ग्वालों ने; भगवान्—भगवान् कृष्ण ने; तत्—वह; उपश्रुत्य—सुनकर; पितरम्—अपने पिता को; वरुण—वरुण द्वारा; आहृतम्—ले जाया गया; तत्—वरुण के; अन्तिकम्—समक्ष; गतः—गया; राजन्—हे राजा परीक्षित; स्वानाम्—अपने भक्तों के; अभय—निडरपन; दः—देने वाले; विभुः—सर्वशक्तिमान स्वामी।

हे राजन्, नन्द महाराज को न देखकर ग्वाले जोर से चिल्ला उठे, "हे कृष्ण, हे राम," भगवान् कृष्ण ने उनकी चीखें सुनीं और समझ लिया कि मेरे पिता वरुण द्वारा बन्दी बना लिये गये हैं। अतः अपने भक्तों को निडर बनाने वाले सर्वशक्तिमान भगवान् वरुणदेव के दरबार जा पहुँचे।

तात्पर्य : विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि जब नन्द महाराज नदी में स्नान करने गये तो उनके साथ अनेक ग्वाले थे। जब नन्द महाराज बाहर नहीं निकले तो ग्वाले चिल्लाने लगे और भगवान् कृष्ण तुरन्त वहाँ आ गये। सारी स्थिति समझकर श्रीकृष्ण जल में घुसे और अपने पिता को छुड़ाने तथा एक देवता के त्रास से अन्य ग्वालों को मुक्त करने का निश्चय करके वरुणदेव के दरबार में गये।

प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया ।
महत्या पूजयित्वाह तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ४॥

शब्दार्थ

प्राप्तम्—आया हुआ; वीक्ष्य—देखकर; हृषीकेशम्—इन्द्रियों के नियन्ता भगवान् कृष्ण को; लोक—उस लोक (जल) का; पालः—मुख्य देवता (वरुण); सपर्यया—सादर भेंटों के साथ; महत्या—बड़े पैमाने पर; पूजयित्वा—पूजा करके; आह—बोला; तत्—कृष्ण के; दर्शन—दर्शन से; महा—अत्यन्त; उत्सवः—हर्ष।

यह देखकर कि भगवान् हृषीकेश पधारे हैं, वरुणदेव ने धूमधाम से उनकी पूजा की। वह भगवान् को देखकर अत्यन्त प्रमुदित था और वह इस प्रकार बोला।

श्रीवरुण उवाच
अद्य मे निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो ।
त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

श्री-वरुणः उवाच—श्रीवरुण ने कहा; अद्य—आज; मे—मेरे द्वारा; निभृतः—सफलतापूर्वक पूरा किया गया; देहः—मेरा भौतिक शरीर; अद्य—आज; एव—निस्सन्देह; अर्थः—जीवन का लक्ष्य; अधिगतः—अनुभव किया जाता है; प्रभो—हे प्रभु; त्वत्—आपके; पाद—चरणकमल; भाजः—सेवा करने वाले, पात्र; भगवन्—हे परम पुरुष; अवापुः—प्राप्त हो गया; पारम्—चरमावस्था; अध्वनः—पथ की (सांसारिक)।

श्रीवरुण ने कहा : आज मेरे शरीर ने अपना कार्य पूरा कर लिया। हे प्रभु, निस्सन्देह अब मुझे अपना जीवन-लक्ष्य प्राप्त हो चुका। हे भगवन्, जो लोग आपके चरणकमलों को स्वीकार करते हैं, वे भौतिक संसार के मार्ग को पार कर सकते हैं।

तात्पर्य : भगवान् के भव्य शरीर को देखकर वरुण प्रसन्नता के मारे चीख उठता है कि भौतिक शरीर धारण करने का सारा कष्ट आज सुफल हो गया। निस्सन्देह वरुण को अपने जीवन का असली लक्ष्य, *अर्थ,* प्राप्त हो चुका था। चूँकि भगवान् कृष्ण का रूप दिव्य है अतएव जो उनके चरणकमलों को स्वीकार करते हैं, वे संसार की सीमा के परे चले जाते हैं अतएव जिन्हें आध्यात्मिक ज्ञान नहीं है वे ही भगवान् के चरणकमलों को भौतिक मानेंगे।

नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ।
न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—आपको; भगवते—भगवान् को; ब्रह्मणे—परम सत्य को; परम-आत्मने—परमात्मा को; न—नहीं; यत्र—जिसमें; श्रूयते—सुना जाता है; माया—माया, भौतिक शक्ति; लोक—इस जगत की; सृष्टि—सृष्टि; विकल्पना—व्यवस्था करती है।

हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, परम सत्य परमात्मा, मैं आपको नमस्कार करता हूँ; आपके भीतर इस सृष्टि को अपने अनुरूप बनाने वाली माया-शक्ति का लेशमात्र भी नहीं है।

तात्पर्य : यहाँ पर *श्रूयते* शब्द सार्थक है। श्रुति या वैदिक साहित्य या तो साक्षात् भगवान् या उनके प्रबुद्ध प्रतिनिधियों के प्रामाणिक कथनों से युक्त है। इसलिए न तो भगवान् न ही मान्य आध्यात्मिक अधिकारीजन यह कभी कहेंगे कि भगवान् या परम सत्य में माया का दोष है। श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि यहाँ पर *ब्रह्मणे* शब्द बतलाता है कि भगवान् स्वयं में पूर्ण हैं और *परमात्मने* यह

सूचित करता है कि वे समस्त जीवों के नियन्ता हैं। इसलिए अपने में पूर्ण तथा सर्वशक्तिमान परम पुरुष के भीतर हमें भौतिक मायाशक्ति का कोई दखल नहीं दिखता।

अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना ।
आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ ७॥

शब्दार्थ

अजानता—अज्ञानी; **मामकेन**—मेरे सेवक द्वारा; **मूढेन**—मूर्ख; **अकार्य-वेदिना**—अपने कर्तव्य को न जानने से; **आनीतः**—लाये गये; **अयम्**—यह व्यक्ति; **तव**—तुम्हारे; **पिता**—पिता; **तत्**—वह; **भवान्**—आप; **क्षन्तुम् अर्हति**—क्षमा कर दें।

यहाँ पर बैठे हुए आपके पिता मेरे एक मूर्ख अज्ञानी नौकर द्वारा मेरे पास लाये गये हैं, जो अपने कर्तव्य को नहीं समझता था। कृपा करके हमें क्षमा कर दें।

तात्पर्य : *अयम्* अर्थात् ''यह जो यहाँ है'' स्पष्टतः सूचित करता है कि जब वरुण बोल रहा था, तो कृष्ण के पिता नन्द महाराज वहाँ उपस्थित थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती लिखते हैं कि वरुण ने वास्तव में श्रीनन्द को रत्नजटित सिंहासन पर आसीन कर रखा था और स्वयं उनकी सादर पूजा की थी।

एक तरह से नन्द महाराज का सूर्योदय के पूर्व जल में प्रवेश करना उचित था। श्रील जीव गोस्वामी ने इस अध्याय के प्रथम श्लोक की टीका में इसकी व्याख्या इस प्रकार की है : विशेषतया छोटी होने के कारण, एकादशी केवल १८ घंटे की थी अतः सूर्योदय के पूर्व ही द्वादशी के छः घंटे बीत चुके थे जिनमें उपवास तोड़ना था। चूँकि सूर्योदय होने पर व्रत-भंग का सही समय बीत चुका होता इसलिए नन्द महाराज ने अन्यथा अशुभ समय में जल में प्रवेश करने का निश्चय किया।

वरुण का सेवक वैदिक अनुष्ठानों के पालन करने वालों के निमित्त इन विस्तृत बातों से अवश्य ही ज्ञात रहा होगा। इसके अतिरिक्त नन्द महाराज भगवान् के पिता जैसा आचरण कर रहे थे अतएव वे परम पवित्र व्यक्ति थे जिन्हें वरुण के मूर्ख सेवक जैसे संसारी नगण्य अधिकारी छू भी नहीं सकते थे।

ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ।
गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥ ८॥

शब्दार्थ

मम—मुझपर; अपि—भी; अनुग्रहम्—दया; कृष्ण—हे कृष्ण; कर्तुम् अर्हसि—कीजिये; अशेष—हर वस्तु के; दृक्—देखने वाले आप; गोविन्द—हे गोविन्द; नीयताम्—ले जाया जा सकता है; एषः—यह; पिता—पिता; ते—आपका; पितृ-वत्सल—हे अपने माता-पिता के अत्यन्त स्नेहिल।

हे कृष्ण, हे सर्वद्रष्टा, आप मुझे भी अपनी कृपा प्रदान करें। हे गोविन्द, आप अपने पिता के प्रति अत्यधिक स्नेहवान् हैं। आप उन्हें घर ले जाँय।

श्रीशुक उवाच
एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः ।
आदायागात्स्वपितरं बन्धूनां चावहन्मुदम् ॥ ९॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; प्रसादितः—संतुष्ट; कृष्णः—कृष्ण; भगवान्—भगवान्; ईश्वर—समस्त नियन्ताओं के; ईश्वरः—परम नियन्ता; आदाय—लेकर; अगात्—चले गये; स्व-पितरम्—अपने पिता को; बन्धूनाम्—अपने सम्बन्धियों के लिए; च—तथा; आवहन्—लाते हुए; मुदम्—हर्ष।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह वरुणदेव से प्रसन्न होकर ईश्वरों के ईश्वर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण अपने पिता को लेकर घर लौट आये जहाँ उनके सम्बन्धी उन्हें देखकर अत्यधिक हर्षित थे।

तात्पर्य : इस लीला में भगवान् कृष्ण समस्त ईश्वरों के ईश्वर रूप में अपने पद का उदात्त प्रदर्शन करते हैं। समुद्रों का देवता वरुण अत्यन्त शक्तिशाली है फिर भी वह भगवान् कृष्ण के पिता तक की पूजा करके प्रसन्न था, तो फिर कृष्ण के विषय में कहना ही क्या?

नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ।
कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥ १०॥

शब्दार्थ

नन्दः—नन्द महाराज; तु—तथा; अतीन्द्रियम्—इसके पूर्व न देखा गया; दृष्ट्वा—देखकर; लोक-पाल—(समुद्र) लोक के अधिष्ठाता देवता, वरुण का; महा-उदयम्—महान् ऐश्वर्य; कृष्णे—कृष्ण के प्रति; च—तथा; सन्नतिम्—नमस्कार करना; तेषाम्—उनके (वरुण तथा उसके अनुयायियों) द्वारा; ज्ञातिभ्यः—अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से; विस्मितः—चकित; अब्रवीत्—कहा।

नन्द महाराज समुद्र लोक के शासक वरुण के महान् ऐश्वर्य को पहली बार देखकर तथा यह देखकर कि वरुण तथा उसके सेवकों ने किस तरह कृष्ण का आदर किया था, आश्चर्यचकित थे। नन्द ने इसका वर्णन अपने साथी ग्वालों से किया।

ते चौत्सुक्यधियो राजन्मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ।

अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; च—तथा; औत्सुक्य—उत्सुकता से पूर्ण; धियः—उनके मन; राजन्—हे राजा परीक्षित; मत्वा—सोचकर; गोपाः—ग्वाले; तम्—उस; ईश्वरम्—ईश्वर को; अपि—शायद; नः—हमको; स्व-गतिम्—अपने धाम; सूक्ष्माम्—दिव्य; उपाधास्यत्—प्रदान करने वाले हैं; अधीश्वरः—परम नियन्ता।

[वरुण के साथ कृष्ण की लीला को सुनकर] ग्वालों ने विचार किया कि कृष्ण अवश्य ही भगवान् हैं। हे राजन्, उनके मन उत्सुकता से भर गये। उन्होंने सोचा, ''क्या भगवान् हम सबों को भी अपना दिव्य धाम प्रदान करेंगे?''

तात्पर्य : सारे ग्वाले यह सुनकर अत्यन्त उत्तेजित थे कि कृष्ण अपने पिता को बचाने किस तरह वरुणलोक गये। सहसा उनमें यह विचार उठा कि हमारा पाला तो भगवान् से पड़ा है, अतः उन्होंने बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक इस जीवन के अन्त होने पर अपने शुभ गन्तव्य के विषय में आपस में सोचा।

इति स्वानां स भगवान्विज्ञायाखिलदृक्स्वयम् ।
सङ्कल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिन्तयत् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

इति—ऐसा; स्वानाम्—अपने भक्तों का; सः—वह; भगवान्—भगवान्; विज्ञाय—समझकर; अखिल-दृक्—हर वस्तु को देखने वाला; स्वयम्—स्वयं; सङ्कल्प—कल्पित इच्छा की; सिद्धये—अनुभूति के लिए; तेषाम्—उनकी; कृपया—कृपापूर्वक; एतत्—यह; अचिन्तयत्—सोचा।

सर्वदर्शी होने के कारण भगवान् कृष्ण स्वतः समझ गये कि ग्वाले क्या अभिलाषा कर रहे हैं। उनकी इच्छाओं को पूरा करके उनपर कृपा प्रदर्शित करने के लिए भगवान् ने इस प्रकार सोचा।

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ।
उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

जनः—लोक; वै—निश्चय ही; लोके—जगत में; एतस्मिन्—इस; अविद्या—ज्ञानविहीन; काम—इच्छाओं के कारण; कर्मभिः—कार्यों से; उच्च—श्रेष्ठ; अवचासु—तथा निम्न; गतिषु—लक्ष्यों के बीच; न वेद—नहीं पहचानता; स्वाम्—निजी; गतिम्—लक्ष्य; भ्रमन्—घूमते हुए।

[भगवान् कृष्ण ने सोचा] निश्चय ही इस जगत में लोग ऊँचे तथा नीचे गन्तव्यों के बीच भटक रहे हैं, जिन्हें वे अपनी इच्छाओं के अनुसार तथा पूरी जानकारी के बिना किये गये कर्मों के माध्यम से प्राप्त करते हैं। इस तरह लोग अपने असली गन्तव्य को नहीं जान पाते।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने विस्तार से बतलाया है कि किस तरह यह श्लोक भगवान् के धाम श्री वृन्दावन के नित्यमुक्त वासियों पर लागू होता है। *श्रीमद्भागवत* का एक मूल दार्शनिक सिद्धान्त दो प्रकार की माया—योगमाया तथा महामाया अर्थात् जीवन की आध्यात्मिक और भौतिक अवस्थाओं—के बीच का अन्तर है। यद्यपि कृष्ण सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ परम पुरुष हैं किन्तु वैकुण्ठ-लोक के उनके पार्षद उनसे इतना अधिक प्रेम करते हैं कि वे उन्हें अपना प्रिय पुत्र, मित्र, प्रेमी इत्यादि मानते हैं। अतएव उनका अतीव हर्षयुक्त प्रेम कोरे सम्मान की सीमाओं को लाँघ सकता है और वे यह भूल जाते हैं कि कृष्ण समस्त ब्रह्माण्डों के परमेश्वर हैं। इस तरह उनका शुद्ध घनिष्ट प्रेम असीम विस्तार कर लेता है। कृष्ण को असहाय बालक, सुन्दर सखा या साथी मानने के कार्यों को कृष्ण के ईश्वर-पद के प्रति अविद्या की अभिव्यक्ति माना जा सकता है किन्तु वृन्दावनवासी कृष्ण के राजसी रूप की उपेक्षा करके अपना ध्यान उनके असीम सौन्दर्य पर केन्द्रित करते हैं क्योंकि वही उनका प्राणाधार है।

वस्तुत: भगवान् कृष्ण को परम नियन्ता तथा ईश्वर कहना एक प्रकार का राजनैतिक विश्लेषण है क्योंकि यह शक्ति और नियंत्रण जो तभी महत्त्वपूर्ण हो सकता है जब जीव अपने से उच्च जीव के प्रति प्रेम में पूर्णतया समर्पित नहीं होता। दूसरे शब्दों में, नियंत्रण तो स्पष्ट दिखाई देने लगता है या अनुभव होने लगता है जब उस नियंत्रण का विरोध होता है उदाहरणार्थ, एक पवित्र एवं कानून का पालन करने वाला नागरिक एक पुलिसवाले को मित्र तथा हितैषी समझता है, जबकि अपराधी उसे दण्ड के भयावह प्रतीक के रूप में देखता है। जो लोग सरकारी नीतियों के हामी हैं, वे यह नहीं अनुभव करते कि सरकार उनपर नियंत्रण रख रही है अपितु यह कि वह उनकी सहायक है।

इस तरह भगवान् कृष्ण उन लोगों के द्वारा जो उनके सौन्दर्य तथा लीलाओं से पूर्णतया मुग्ध नहीं हैं, एक ''नियन्ता'' तथा ''परमेश्वर'' के रूप में देखे जाते हैं। जो लोग भगवान् कृष्ण से पूरी तरह प्रेम करते हैं, वे उनके उदात्त आकर्षक अंगों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। वे उनसे अपने इस प्रकार के सम्बन्ध के कारण उनकी नियामक शक्ति पर उतना ध्यान नहीं देते।

व्रजवासियों ने ईशभावनामृत की निम्न अवस्थाओं को लाँघ दिया है किन्तु उन तक पहुँच नहीं पाए हैं इसका प्रमाण यह है कि भगवान् की सारी लीलाओं के दौरान वे प्राय: ''स्मरण'' करते हैं कि कृष्ण ईश्वर हैं। सामान्यतया उन्हें इस स्मरण पर आश्चर्य होता है क्योंकि वे कृष्ण को अपना मित्र, प्रेमी

इत्यादि के रूप में देखने में लीन रहते आए हैं।

काम शब्द प्राचीन काल से ही भौतिक इच्छा या किसी ऐसी प्रबल आध्यात्मिक इच्छा को द्योतित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है कि वह प्रबल भौतिक इच्छा का पर्यायवाचक बन जाती है। फिर भी मौलिक अन्तर तो बना ही रहता है—भौतिक इच्छा स्वार्थमय तथा आत्म-तृप्तिप्रद होती है, जबकि आध्यात्मिक इच्छा स्वार्थ से रहित तथा पूर्णतया अन्य के, भगवान् के, आनन्द के लिए होती है। इस तरह वृन्दावनवासी अपने नैतिक कृत्य एकमात्र अपने प्रिय कृष्ण की प्रसन्नता के लिए करते थे।

यह स्मरण रखना चाहिए कि इस धरा पर कृष्ण के अवतरण का सारा उद्देश्य जीवों को भगवद्धाम जाने के लिए आकृष्ट करना है। इसके लिए दो बातें आवश्यक होती हैं—उनकी लीलाएँ आध्यात्मिक पूर्णता के सौन्दर्य को प्रदर्शित करती हैं और वे किसी न किसी तरह प्रासंगिक जान पड़ने के कारण इस जगत के बद्धजीवों के लिए रोचक होती हैं। *भागवत* में प्राय: कहा गया है कि भगवान् कृष्ण एक तरुण नट की तरह खेल करते हैं और निस्सन्देह अपने नित्य भक्तों को नाटक में लगाये रखते हैं। इस तरह कृष्ण मन ही मन सोचते हैं कि इस जगत के लोग सचमुच ही अपने चरम गन्तव्य को नहीं जानते। इसी तरह वे अपने नित्य मुक्त पार्षदों के बारे में भी सोचते हैं, जो इस जगत में ग्वालों की तरह क्रीड़ा करते हैं।

कृष्ण के मुक्त पार्षदों के संदर्भ में लगाए गए इस श्लोक के श्लिष्ट अर्थ के अतिरिक्त, कृष्ण सामान्य लोगों के विषय में पूर्णतया सीधी और तीखी आलोचना करते हैं। जब उन बद्धजीवों पर इसे लागू किया जाता है, जो इस ब्रह्माण्ड-भर में वास्तव में विचरण करते रहते हैं, तो उनका यह कथन कि लोग अज्ञान तथा कामवासनावश कार्य करते हैं किसी अधिक गम्भीर आध्यात्मिक अर्थ से कम नहीं होता। मनुष्य सामान्यतया अनजान होते हैं और वे अपने चरम गन्तव्य पर गम्भीरता से विचार नहीं करते। श्रीकृष्ण कुछ ही सरल शब्दों में कई जटिल बातें कहने में समर्थ हैं। हम कितने भाग्यशाली हैं कि ईश्वर ऊर्जा के शुष्क क्षेत्र नहीं हैं—इन्द्रियातीत, तेज पुंज या शून्य—प्रत्युत वे साकार गुणों से पूर्ण हैं और हम जो कुछ कर सकते हैं, वे उससे अधिक अच्छे ढंग से कर सकते हैं—यह उनके बोलने की प्रभावशाली शैली से प्रमाणित है।

इति सञ्चिन्त्य भगवान्महाकारुणिको हरिः ।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

इति—**इन शब्दों में**; सञ्चिन्त्य—**अपने आप सोच कर**; भगवान्—**भगवान्**; महा-कारुणिकः—**अत्यन्त कृपालु**; हरिः—**भगवान् हरि ने**; दर्शयाम् आस—**दिखलाया**; लोकम्—**लोक, वैकुण्ठ**; स्वम्—**अपना**; गोपानाम्—**ग्वालों को**; तमसः—**भौतिक अंधकार से**; परम्—**परे**।

इस प्रकार परिस्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए परम दयालु भगवान् हरि ने ग्वालों को अपना धाम दिखलाया जो भौतिक अंधकार से परे है।

तात्पर्य : इस श्लोक से स्पष्ट है कि परम सत्य अपने निजी नित्य धाम में निवास करते हैं। हम लोग शान्ति तथा सौन्दर्य से घिरकर अधिकाधिक सुखपूर्वक रहने का प्रयास करते हैं। तो भला किस तरह तर्क के नाम पर हम अपने स्रष्टा परमात्मा एवं उनके सुखद सुन्दर धाम से ईर्ष्या कर सकते हैं, जो सामान्य लोगों में भगवद्धाम के नाम से विख्यात है?

सत्यं ज्ञानमनन्तं यद्ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥ १५॥

शब्दार्थ

सत्यम्—**अनश्वर**; ज्ञानम्—**ज्ञान**; अनन्तम्—**अनन्त**; यत्—**जो**; ब्रह्म—**ब्रह्म का**; ज्योतिः—**तेज**; सनातनम्—**नित्य**; यत्—**जो**; हि—**निस्सन्देह**; पश्यन्ति—**देखते हैं**; मुनयः—**मुनिगण**; गुण—**भौतिक प्रकृति के गुण**; अपाये—**शमित होने पर**; समाहिताः—**समाधि में लीन**।

भगवान् कृष्ण ने अनश्वर आध्यात्मिक तेज प्रकट किया जो असीम, चेतन तथा नित्य है। मुनिजन उस आध्यात्मिक जीव को समाधि में देखते हैं जब उनकी चेतना भौतिक प्रकृति के गुणों से मुक्त रहती है।

तात्पर्य : श्लोक १४ के अनुसार भगवान् कृष्ण ने वृन्दावनवासियों को अपना निजी धाम, कृष्ण-लोक नामक दिव्य लोक दिखलाया। यह तथा अन्य असंख्य वैकुण्ठ-लोक ब्रह्मज्योति के असीम समुद्र में तैरते रहते हैं। यह ब्रह्मज्योति यथार्थतः आध्यात्मिक आकाश है, जिसको, स्वाभाविक ही है, कृष्ण ने भी वृन्दावनवासियों को दिखलाया। उदाहरणार्थ, यदि हम किसी बच्चे को चाँद दिखलाना चाहें तो कहते हैं, "वह देखो आकाश में। वह देखो चन्द्रमा आकाश में वहाँ है।" इसी तरह कृष्ण ने वृन्दावनवासियों को विस्तृत आध्यात्मिक आकाश दिखलाया किन्तु जैसाकि श्लोक १४ तथा अगले श्लोक १६ में बल दिया गया है, भगवान् के पार्षदों का वास्तविक गन्तव्य उनका निजी आध्यात्मिक

लोक था।

ते तु ब्रह्महृदम्नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात्पुरा ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; तु—तथा; ब्रह्म-हृदम्—ब्रह्महृद नामक सरोवर में; नीताः—लाये गये; मग्नाः—डुबाये गये; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; च—तथा; उद्धृताः—ऊपर निकाले गये; ददृशुः—देखा; ब्रह्मणः—परब्रह्म का; लोकम्—दिव्य लोक; यत्र—जहाँ; अक्रूरः—अक्रूर ने; अध्यगात्—देखा था; पुरा—इसके पूर्व।.

भगवान् कृष्ण सारे ग्वालों को ब्रह्महृद ले आये, उनसे जल के भीतर डुबकी लगवाई और फिर ऊपर निकाल लिया। जिस महत्त्वपूर्ण स्थान से अक्रूर ने वैकुण्ठ को देखा था, वहीं इन ग्वालों ने भी परम सत्य के लोक को देखा।

तात्पर्य : श्लोक १५ में उल्लिखित ब्रह्मज्योति नामक दिव्य ज्योति के असीम प्रसार की उपमा ब्रह्महृद नामक सरोवर से दी गई है। भगवान् कृष्ण ने ग्वालों को इस सरोवर में डुबकी लगवाई अर्थात् उन्हें निर्विशेष ब्रह्म से अवगत कराया। लेकिन उसके बाद उन्हें उच्चतर ज्ञान तक पहुँचाया जैसाकि *उद्धृताः* शब्द से सूचित होता है। यही भगवान् का निजी लोक है। जैसाकि यहाँ स्पष्ट उल्लेख है—*ददृशुः ब्रह्मणो लोकम्*—उन्होंने अक्रूर की ही भाँति परब्रह्म के दिव्य धाम का दर्शन किया।

चेतना के विकास का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है। सामान्य चेतना के अन्तर्गत हम नाना प्रकार की भौतिक वस्तुओं को देखते और उनकी ओर आकृष्ट होते हैं। आध्यात्मिक चेतना की प्रथम अवस्था तक ऊपर उठकर हम भौतिक विविधता को पार करके *अभिन्नित एक* पर ध्यान को एकाग्र करते हैं, जो पीछे रहता है और अनेक को अस्तित्व में लाता है। अन्त में कृष्णभावनामृत तक उठकर हम देखते हैं कि परम आध्यात्मिक एक में अपनी शाश्वत अनेकता रहती है। चूँकि यह जगत नित्य जगत का प्रतिबिम्ब मात्र है अतएव हमें इस एक में आध्यात्मिक विविधता की आशा करनी चाहिए और यह निस्सन्देह हमें पावन ग्रन्थ *श्रीमद्भागवत* में देखने को मिलती है।

निपुण पाठक यह ध्यान दें कि अक्रूर सम्बन्धी लीला ग्वालों की इस घटना के बाद *भागवत* में आई है। शुकदेव गोस्वामी इसका कारण यह बतलाते हैं कि अक्रूर ने *पुरा* अर्थात् ''इसके पूर्व'' ही वैकुण्ठ का दर्शन किया था जिसका अर्थ यह हुआ कि शुकदेव गोस्वामी तथा महाराज परीक्षित के मध्य हुई वार्ता के कई वर्ष पूर्व ये घटनाएँ घट चुकी थीं।

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिवृताः ।
कृष्णं च तत्र च्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७॥

शब्दार्थ

नन्द-आदयः—नन्द महाराज तथा अन्य ग्वाले; तु—तथा; तम्—उसको; दृष्ट्वा—देखकर; परम—परम; आनन्द—आनन्द द्वारा; निवृताः—प्रसन्नता से अभिभूत; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; च—तथा; तत्र—वहाँ; छन्दोभिः—वैदिक स्तोत्रों से; स्तूयमानम्—स्तुति किये जाते हुए; सु—अत्यधिक; विस्मिताः—चकित।

जब नन्द महाराज तथा अन्य ग्वालों ने वह दिव्य धाम देखा तो उन्हें परम सुख की अनुभूति हुई। वे स्वयं कृष्ण को साक्षात् वेदों से घिरे एवं उनके द्वारा स्तुति किये जाते देखकर विशेष रूप से चकित थे।

तात्पर्य : यद्यपि वृन्दावनवासी अपने को सामान्य जन मानते थे किन्तु कृष्ण चाहते थे कि वे अपने अद्वितीय सौभाग्य को जानें। इस तरह भगवान् ने उन्हें यमुना नदी के एक सरोवर के भीतर अपना निजी धाम दिखलाया। ग्वाले यह देखकर चकित थे कि भगवान् के धाम का आध्यात्मिक वातावरण वैसा ही था जैसाकि उनके पृथ्वी लोक के वृन्दावन का था और जिस तरह कृष्ण उनके वृन्दावन में उपस्थित थे उसी तरह उनकी अद्वितीय दृष्टि में वैकुण्ठ में भी वे उपस्थित दिखे।

जैसाकि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इंगित करते हैं कि ये पद्य बतलाते हैं कि कृष्ण ने ग्वालों को न केवल वैकुण्ठ-लोक का क्षणिक दर्शन कराया अपितु उन्होंने शाश्वत लोकों में सबसे बड़ा अपना कृष्ण-लोक तथा वृन्दावनवासियों को जो कृष्ण को सर्वाधिक प्रेम करते थे, उनका असली स्थान भी दिखलाया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण द्वारा वरुणलोक से नन्द महाराज की रक्षा'' नामक अट्ठाइसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter उन्तीस

रासनृत्य के लिए कृष्ण तथा गोपियों का मिलन

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण रासनृत्य का आनन्द लेने की इच्छा से किस तरह गोपियों से तर्क-वितर्क करते हैं। तत्पश्चात् रासनृत्य के शुभारम्भ एवं गोपियों के बीच से

भगवान् के अन्तर्धान होने की लीला का विवरण दिया गया है।

भगवान् कृष्ण ने गोपियों के वस्त्रहरण के समय उन्हें जो वचन दिया था उसका स्मरण करके अपनी योग-मायाशक्ति से अपने भीतर शरद रात्रि में लीलाएँ करने की इच्छा उत्पन्न की। अत: वे अपनी बाँसुरी बजाने लगे। जब गोपियों ने बाँसुरी की ध्वनि सुनी तो उनके भीतर तीव्र कामभावना उमड़ने लगी और वे तुरन्त अपने घर के कामकाज छोड़ कर तेजी से कृष्ण के पास गईं। यद्यपि सारी गोपियों के शरीर नितान्त आध्यात्मिक थे किन्तु जब कुछ गोपियों के पतियों तथा अन्य घर वालों ने उन्हें जाने से रोका तो भगवान् कृष्ण ने अल्पकाल के लिए उन्हें भौतिक शरीर प्रदान किए जिन्हें वे अपने पतियों के पास छोड़ आईं। इस तरह अपने सम्बन्धियों को छलकर वे कृष्ण से मिलने चली गईं।

जब गोपियाँ भगवान् कृष्ण के समक्ष आईं तो उन्होंने पूछा, ''तुम क्यों आई हो? आधी रात में ऐसे स्थान तक आना तुम लोगों के लिए ठीक नहीं है क्योंकि यह जंगल हिंस्र पशुओं से भरा है। तुम लोगों के पति तथा बच्चे तुम्हें घर वापस ले जाने और फिर से घरेलू काम-काज में लगाने के लिए तुम्हें ढूँढ़ते हुए आते ही होंगे। फिर स्त्री का मुख्य धर्म अपने पति तथा बच्चों की सेवा करना है। किसी भद्र महिला के लिए जारपति के साथ प्रेम-क्रीड़ा करना सर्वथा निन्दनीय है और इससे उसे स्वर्ग जाने में बाधा पहुँचती है। यही नहीं, शारीरिक निकटता स्थापित करने से ही मेरे प्रति शुद्ध प्रेम उत्पन्न नहीं होता अपितु मेरी कथाओं को सुनने, मन्दिर में मेरे अर्चाविग्रह का दर्शन करने, मेरा ध्यान करने तथा मेरे यश का गान करने से शुद्ध प्रेम उत्पन्न किया जा सकता है। अतएव अच्छा यही होगा कि तुम लोग घर लौट जाओ।''

यह सुनकर गोपियों का मुँह लटक गया और कुछ रो लेने के बाद कुछ क्रोध में आकर बोलीं, ''यह आपके लिए अशोभनीय है कि जो युवतियाँ अपने जीवन का सर्वस्व न्यौछावर करके एकमात्र आपकी सेवा करने के उद्देश्य से आपके पास आई हैं उन्हें आप इस तरह ठुकरा दें। हम अपने पतियों तथा बच्चों की सेवा करके केवल पीड़ा प्राप्त करती हैं किन्तु समस्त जीवों के सर्वप्रिय आपकी सेवा करके हम अपने असली धर्म को पूरा करेंगी। भला ऐसी कौन स्त्री है, जो आपकी बाँसुरी का संगीत सुनकर और तीनों जगत को मोहने वाले आपके रूप को देखकर अपने नियत कार्यों को भूल न जाये? जिस तरह भगवान् विष्णु देवताओं की रक्षा करते हैं उसी तरह आप वृन्दावनवासियों के दुखों का

विनाश करते हैं। अतएव आपके विछोह के कारण हमने जो पीड़ा सही है उससे हमें तुरन्त मुक्त कीजिये।''

गोपियों को प्रसन्न करने की इच्छा से भगवान् कृष्ण ने जो सदा स्वयं में तुष्ट रहते हैं उनके साथ विविध क्रीड़ाएँ करने की उनकी याचना मान ली। किन्तु इस स्वीकृति से गोपियों में थोड़ा गर्व आ गया अतएव कृष्ण ने रासनृत्य स्थली से सहसा अन्तर्धान होकर उन्हें विनीत बना दिया।

श्रीबादरायणिरुवाच
भगवानपि ता रात्रीः शारदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्रील बादरायण व्यासदेव के पुत्र श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; भगवान्—कृष्ण; अपि—यद्यपि; ताः—वे; रात्रीः—रातें; शारद—शरदकालीन; उत्फुल्ल—खिले; मल्लिकाः—चमेली के फूल; वीक्ष्य—देखकर; रन्तुम्—प्रेम का आनन्द लेने के लिए; मनः चक्रे—मन में निश्चय किया; योगमायाम्—असम्भव को सम्भव बनाने वाली उनकी आध्यात्मिक शक्ति का; उपाश्रितः—सहारा लेकर।

श्रीबादरायणि ने कहा : श्रीकृष्ण समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण भगवान् हैं फिर भी खिलते हुए चमेली के फूलों से महकती उन शरदकालीन रातों को देखकर उन्होंने अपने मन को प्रेम-व्यापार की ओर मोड़ा। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपनी अन्तरंगा शक्ति का उपयोग किया।

तात्पर्य : ज्योंही हम भगवान् कृष्ण के सुन्दर युवतियों के साथ प्रेम-नृत्य अथवा रासनृत्य की सुप्रसिद्ध कथा प्रारम्भ करते हैं, तो सामान्य लोगों के मन में शरद की पूर्णिमा की अर्धरात्रि में अनेक युवतियों के साथ ईश्वर के इस प्रेममय नृत्य के औचित्य के विषय में विविध प्रश्न उठेंगे। श्रील प्रभुपाद ने अपनी पुस्तक *भगवान् श्रीकृष्ण* में भगवान् के रासनृत्य का वर्णन करते हुए इसकी आध्यात्मिक पवित्रता की व्याख्या की है। कृष्णभावनामृत में उन्नत आचार्यों को इस विषय में कोई सन्देह नहीं है कि भगवान् कृष्ण पूर्ण और आत्मतुष्ट हैं और उन समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त हैं, जिन्हें एक प्रकार से अपूर्णता का सूचक माना जाता है।

भौतिकतावादी व्यक्ति तथा निर्विशेष दार्शनिकजन श्रीकृष्ण के दिव्य स्वभाव की प्रामाणिक व्याख्या को बुरी तरह से अस्वीकार करते हैं। किसी ऐसे परम पुरुष की उत्तम वास्तविकता को, जो नितान्त प्रेममय कार्यकलाप सम्पन्न कर सकता है, अस्वीकार करना तर्कयुक्त नहीं प्रतीत होता जबकि हमारा तथाकथित प्रेमालाप कोरा या विकृत प्रतिबिम्ब है। भौतिक कार्यकलाप ईश्वर द्वारा सम्पन्न पूर्ण

आध्यात्मिक कार्यों का प्रतिबिम्ब हो ही नहीं सकता—इस पर अड़े रहना उन लोगों की अकल्पनीय भावदशा को प्रतिबिम्बित करता है, जो श्रीकृष्ण की वास्तविकता का विरोध करते हैं। अभक्तों की यह मनोवैज्ञानिक मनोवृत्ति दुर्भाग्यवश ईर्ष्या के रूप में उबल पड़ती है, जिसके परिणामस्वरूप वे परम पुरुष के अस्तित्व को जोर शोर से नकारते हैं, क्योंकि अधिकांश निर्विशेषवादी आलोचक अपने ही प्रेमालापों का अनुगमन करते हैं, जिन्हें वे वास्तविक और आध्यात्मिक भी मानते हैं।

वास्तविक परम प्रेमी तो भगवान् कृष्ण हैं। *वेदान्त सूत्र* का शुभारम्भ इस घोषणा के साथ होता है कि परब्रह्म ही समस्त वस्तुओं के उद्गम हैं। यहाँ तक कि पाश्चात्य दर्शन का जन्म इस प्रत्यक्ष जगत के 'अनेक' के आधार आदि 'एक' की भद्दी खोज के प्रयास में हुआ। माधुर्य प्रेम जो कि मनुष्य का महत्त्वपूर्ण पहलू है उसे परम सत्य से कुछ भी लेना-देना नहीं है।

वास्तव में मनुष्यों द्वारा अनुभूत माधुर्य प्रेम उस आध्यात्मिक सत्य का प्रतिबिम्ब मात्र है, जिसमें यही प्रेम अपनी परम अवस्था में रहता है। इस प्रकार यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि जब कृष्ण ने शरदकालीन मादक वातावरण का आनन्द लेने का निश्चय किया, तो उन्होंने अपनी आध्यात्मिक शक्ति का आश्रय लिया (*योगमायामुपाश्रितः*)। *श्रीमद्भागवत* के इस अध्याय में कृष्ण के माधुर्य प्रेम की आध्यात्मिक प्रकृति मुख्य विषयवस्तु है।

कोई स्त्री अपनी मधुर वाणी, अपने सौन्दर्य तथा शालीनता, अपनी मोहक सुगन्धि तथा सुकुमारपन के साथ ही अपनी चातुरी तथा संगीत-नृत्य में दक्षता के कारण आकर्षक लगती है। इन सबों में वृन्दावन की तरुणी गोपिकाएँ, जो कि कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति हैं, सर्वाधिक आकर्षक हैं। इस अध्याय में यही बतलाया गया है कि किस तरह कृष्ण ने उनके स्त्री सुलभ उत्तम गुणों का आनन्द लिया यद्यपि इन घटनाओं के समय श्रीकृष्ण केवल आठ वर्ष के बालक थे, जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने उल्लेख किया है।

सामान्य लोग यही चाहते हैं कि ईश्वर उनके प्रेमालापों के साक्षी बनें। जब कोई लड़का किसी लड़की को या कोई लड़की किसी लड़के को चाहती है, तो वे अपने आनन्द-भोग के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। ऐसे लोगों को यह जानकर धक्का लगता है और बड़े निराश हो उठते हैं कि भगवान् अपनी दिव्य इन्द्रियों द्वारा अपने ही प्रेमालापों का आनन्द भोग सकते हैं। सच तो यह है कि श्रीकृष्ण

आदि कामदेव हैं और उनकी उत्तेजक माधुर्य लीलाओं का वर्णन इस अध्याय में किया जायेगा।

जब भगवान् कृष्ण पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, तो उनका आध्यात्मिक शरीर जन्म लेता हुआ तथा उनके द्वारा विविध लीलाओं के प्रदर्शन के साथ विकास करता हुआ प्रतीत होता है। भगवान् अपने बाल्यकाल को एक युवक तथा युवतियों के मध्य परम प्रेमालाप को प्रदर्शित किये बिना कैसे बीत जाने देते। इसीलिए विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने श्रील रूप गोस्वामी का वक्तव्य उद्धृत किया है—*कैशारं सफलीकरोति कलयन् कुञ्जे विहारं हरिः*—भगवान् हरि वृन्दावन के कुञ्जों में विहार (प्रेमलीला) करके अपनी कैशोरावस्था को सफल बनाते हैं।

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं
प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्
प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; उडु-राजः—तारों का राजा, चन्द्रमा; ककुभः—क्षितिज का; करैः—अपने "हाथों" (किरणों) से; मुखम्—मुखमण्डल; प्राच्याः—पश्चिमी; विलिम्पन्—रंजित करते हुए; अरुणेन—लाल रंग से; शम्-तमैः—अत्यन्त आराम पहुँचाने वाली (किरणों) से; सः—वह; चर्षणीनाम्—देखने वालों के; उदगात्—उदय हुआ; शुचः—दुख; मृजन्—मिटाते हुए; प्रियः—प्रिय पति; प्रियायाः—अपनी प्रियतमा पत्नी का; इव—सदृश; दीर्घ—काफी देर बाद; दर्शनः—फिर से देखे जाने पर।

तब चन्द्रमा अपनी लाल रंग की सुखदायी किरणों से पश्चिमी क्षितिज को रंजित करते हुए उदय हुआ और इस तरह उसने उदय होते देखने वालों की पीड़ा दूर कर दी। यह चन्द्रमा उस प्रिय पति के समान था, जो दीर्घकालीन अनुपस्थिति के बाद घर लौटता है और अपनी प्रियतमा पत्नी के मुखमण्डल को लाल कुंकुम से सँवारता है।

तात्पर्य : किशोर कृष्ण ने अपनी अन्तरंगा शक्ति का प्रयोग किया और उसने तुरन्त माधुर्य प्रेम के उपयुक्त उत्तेजक वातावरण की सृष्टि कर दी।

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं
रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् ।
वनं च तत्कोमलगोभी रञ्जितं
जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; कमुत्-वन्तम्—रात्रि में खिलने वाले कुमुद फूलों को खोलता हुआ; अखण्ड—अटूट; मण्डलम्—मुख का गोला; रमा—लक्ष्मी के; आनन—मुखमण्डल (सदृश); आभम्—जिसका प्रकाश; नव—नया; कुङ्कुम—सिंदूर से; अरुणम्—लाल हुआ; वनम्—वन को; च—तथा; तत्—उस चन्द्रमा का; कोमल—सुकुमार; गोभि:—किरणों से; रञ्जितम्—रँगा हुआ; जगौ—वंशी बजाई; कलम्—सुरीली; वाम-दृशाम्—मोहक नेत्रों वाली तरुणियों के लिए; मन:-हरम्—मुग्ध करने वाली।

भगवान् कृष्ण ने नवलेपित सिंदूर के लाल तेज से चमकते पूर्ण चन्द्रमा के अविच्छिन्न मण्डल को देखा। ऐसा लग रहा था मानो लक्ष्मीजी का मुखमण्डल हो। उन्होंने चन्द्रमा की उपस्थिति से खिलने वाले कुमुदों को तथा उसकी किरणों से मन्द मन्द प्रकाशित जंगल को भी देखा। इस तरह भगवान् ने अपनी वंशी पर सुन्दर नेत्रों वाली गोपियों के मन को आकृष्ट करने वाली मधुर तान छेड़ दी।

तात्पर्य : इस श्लोक का *जगौ* शब्द यह बताता है कि कृष्ण ने अपनी बाँसुरी पर गीत बजाये जैसाकि श्लोक ४० में आये हुए शब्दों—का स्त्रयङ्ग ते कलपदायतवेणुगीत—से पुष्टि होती है। *रमा* शब्द से न केवल विष्णु की प्रियतमा का अपितु आदि लक्ष्मी देवी श्रीमती राधारानी का भी बोध होता है। कृष्ण का जन्म चन्द्रवंश में हुआ था और रासनृत्य में प्रवेश करते समय यहाँ पर चन्द्रमा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

निशम्य गीतां तदनङ्गवर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ ४॥

शब्दार्थ

निशम्य—सुनकर; गीतम्—संगीत; तत्—वह; अनङ्ग—कामदेव को; वर्धनम्—प्रबल करने वाला; व्रज-स्त्रियः—व्रज की युवतियाँ; कृष्ण—कृष्ण द्वारा; गृहीत—जकड़ी; मानसाः—मन वाली; आजग्मुः—गईं; अन्योन्यम्—एक-दूसरे से; अलक्षित—अनदेखी; उद्यमाः—आगे बढ़ती; सः—वह; यत्र—जहाँ; कान्तः—उनका बाल-सखा; जव—जल्दी के कारण; लोल—हिलते हुए; कुण्डलाः—कान के कुण्डल।

जब वृन्दावन की युवतियों ने कृष्ण की बाँसुरी का संगीत सुना जो प्रेम-भावनाओं को उत्तेजित करता है, तो उनके मन भगवान् द्वारा वशीभूत कर लिये गये। वे वहीं चली गईं जहाँ उनका प्रियतम बाट जोह रहा था। वे एक-दूसरे की अनदेखी करके इतनी तेजी से आगे बढ़ रही थीं कि उनके कान की बालियाँ आगे-पीछे हिल-डुल रही थीं।

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि प्रत्येक गोपी छिपकर गई जिससे उसकी प्रतिद्वंद्वी जान न पायें कि

कृष्ण प्रेमालाप के प्रति उन्मुख हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस स्थिति का वर्णन इस तरह पद्यबद्ध किया है :

कृष्ण ने अपनी वंशी बजाकर वृन्दावन में भीषण चौरकर्म के लिए उत्तेजित कर दिया। उनकी वंशी का गीत गोपियों के कानों से होकर सीधे हृदयों में जाकर बिंध गया। उस अद्‌भुत संगीत ने उनका सबकुछ—उनकी गम्भीरता, लज्जा, भय, विवेक तथा मन तक को भी—चुरा लिया और एक ही क्षण में इस संगीत ने ये सबकुछ कृष्ण के पास पहुँचा दिया। प्रत्येक गोपी कृष्ण से अपनी निजी निधि लौटाने की याचना करने गई। हर सुन्दर युवती यही सोच रही थी, ''मुझे उस महान् चोर को पकड़ना है'' और इस तरह वे एक-दूसरे के अनजाने में आगे बढ़ती गईं।''

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः ।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

दुहन्त्यः—दुहने के बीच में ही; अभिययुः—चली गईं; काश्चित्—उनमें से कुछ; दोहम्—दुहना; हित्वा—त्यागकर; समुत्सुकाः—अत्यधिक उत्सुक; पयः—दूध; अधिश्रित्य—चूल्हे पर रखकर; संयावम्—आटे की बनी रोटियों (हलवा); अनुद्वास्य—चूल्हे से उतारे बिना; अपराः—अन्य; ययुः—चली गईं।

कुछ गोपियाँ दूध दुह रही थीं जब उन्होंने कृष्ण की बाँसुरी सुनी। उन्होंने दुहना बन्द कर दिया और वे कृष्ण से मिलने चली गईं। कुछ ने चूल्हे पर दूध को उबलते छोड़ दिया और कई ने चूल्हें में रोटियों को सिकते हुए छोड़ दिया।

तात्पर्य : यहाँ किशोर कृष्ण के प्रति प्रेमपूर्वक अनुरक्त इन गोपियों की उत्सुकता को दिखलाया गया है।

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून्पयः ।
शुश्रूषन्त्यः पतीन्काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥ ६ ॥
लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने ।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकं ययुः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

परिवेषयन्त्यः—वस्त्र पहने; तत्—उसे; हित्वा—एक ओर रखकर; पाययन्त्यः—पिलाती हुई; शिशून्—अपने शिशुओं को; पयः—दूध; शुश्रूषन्त्यः—सेवा करती हुई; पतीन्—अपने पतियों की; काश्चित्—उनमें से कुछ; अश्नन्त्यः—खाती हुई; अपास्य—छोड़कर; भोजनम्—अपने अपने भोजन; लिम्पन्त्यः—अंगराग लगाये; प्रमृजन्त्यः—तेल लगाती; अन्याः—अन्य;

अञ्जन्त्यः—कज्जल लगाती; काश्च—कुछ; लोचने—अपनी आँखों में; व्यत्यस्त—अस्त-व्यस्त; वस्त्र—कपड़े; आभरणाः—तथा गहने; काश्चित्—उनमें से कुछ; कृष्ण-अन्तिकम्—कृष्ण के निकट तक; ययुः—गईं।

उनमें से कुछ वस्त्र पहन रही थीं, कुछ अपने बच्चों को दूध पिला रही थीं या अपने पतियों की सेवा में लगी थीं किन्तु सबों ने अपने-अपने कार्य छोड़ दिये और वे कृष्ण से मिलने चली गईं। कुछ गोपियाँ शाम का भोजन कर रही थीं, कुछ नहा-धोकर शरीर में अंगराग या अपनी आँखों में कज्जल लगा रही थीं। किन्तु सबों ने तुरन्त अपने अपने कार्य बन्द कर दिये और यद्यपि उनके वस्त्र तथा गहने अस्त-व्यस्त थे वे कृष्ण के पास दौड़ी गईं।

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

ताः—वे; वार्यमाणाः—रोके जाने पर; पतिभिः—अपने पतियों द्वारा; पितृभिः—अपने पिताओं द्वारा; भ्रातृ—भाई; बन्धुभिः—तथा अन्य सम्बन्धियों द्वारा; गोविन्द—कृष्ण द्वारा; अपहृत—चुराई गई; आत्मानः—स्वयं से; न न्यवर्तन्त—वापस नहीं आईं; मोहिताः—मोहित।

उनके पतियों, पिताओं, भाइयों तथा अन्य सम्बन्धियों ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया किन्तु कृष्ण उनके हृदयों को पहले ही चुरा चुके थे। उनकी बाँसुरी की ध्वनि से मोहित होकर उन्होंने लौटने से इनकार कर दिया।

तात्पर्य : कुछ तरुणी गोपिकाएँ विवाहिता थीं जिनके पतियों ने उन्हें रोकने का प्रयास किया। अविवाहिताओं को अपने अपने पिता, भाई तथा अन्य सम्बन्धियों से निपटना पड़ा। सम्बन्धियों में से कोई भी सामान्य रूप से इन तरुणियों के मृत शरीरों को भी रात्रि में जंगल न जाने देता किन्तु कृष्ण ने पहले से ही अपनी अन्तरंगा शक्ति लगा रखी थी जिससे समस्त प्रेम-व्यापार का अध्याय बिना किसी अवरोध के उद्घाटित हो गया।

अन्तर्गृहगताः काश्चिद्गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

अन्तः-गृह—अपने घरों के भीतर; गताः—उपस्थित; काश्चित्—कुछ; गोप्यः—गोपियाँ; अलब्ध—न प्राप्त करके; विनिर्गमाः—रास्ता; कृष्णम्—श्रीकृष्ण पर; तत्-भावना—उनके प्रति भावात्मक प्रेम से; युक्ताः—युक्त; दध्युः—ध्यान किया; मीलित—बन्द किये; लोचनाः—अपनी आँखें।

किन्तु कुछ गोपियाँ अपने घरों से बाहर न निकल पाईं अतः वे अपनी आँखें बन्द किये शुद्ध

प्रेम में कृष्ण का ध्यान करते हुए घर पर ही ठहरी रहीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने पूरे दसवें स्कंध की भगवान् कृष्ण की लीलाओं का काव्यात्मक भाष्य विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है। इन विस्तृत विवरणों को सम्मिलित कर पाना हमेशा सम्भव नहीं किन्तु इस श्लोक पर उनका पूरा भाष्य प्रस्तुत कर रहे हैं। विद्वान वैष्णव समुदाय से हमारी यही संस्तुति है कि भगवान् का कोई योग्य भक्त दसवें स्कंध पर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के भाष्य को पृथक् पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करे तो भक्तों तथा अभक्तों द्वारा वह समान रूप से प्रशंसित होगी। आचार्य का इस श्लोक पर भाष्य निम्नवत् है :

इस प्रसंग में हम श्रील रूप गोस्वामी कृत *उज्ज्वल नीलमणि* में वर्णित विधि के अनुसार अपना विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे। गोपियों के दो वर्ग हैं—*नित्यसिद्ध* अर्थात् शाश्वत पूर्ण तथा *साधनसिद्ध* अर्थात् भक्तियोग के अभ्यास द्वारा पूर्ण बनी हुईं। *साधनसिद्ध* की भी दो श्रेणियाँ हैं—विशिष्ट तथा अविशिष्ट। विशिष्ट श्रेणी के भी दो विभाग हैं—*श्रुतिचारी* अर्थात् साक्षात् वेदों से आने वाली तथा *ऋषिचारी* अर्थात् ऋषियों के उस वर्ग से आने वाली जिन्होंने भगवान् रामचन्द्र को दण्डकारण्य में देखा था।

पद्म पुराण में भी गोपियों का यही चतुर्विध वर्गीकरण पाया जाता है—

गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यका:।

देवकन्याश्च राजेन्द्र न मानुष्या: कथञ्चन॥

''ऐसा माना जाता है कि कुछ गोपियाँ साक्षात् वैदिक साहित्य हैं, कुछ पुन: जन्मी ऋषि हैं, कुछ ग्वालों की पुत्रियाँ हैं या फिर देवताओं की कन्याएँ हैं। किन्तु हे राजन् उनमें से कोई एक किसी भी प्रकार से सामान्य ग्वालिनें नहीं हैं।'' यहाँ पर बताया गया है कि यद्यपि गोपियाँ मानवी गोपकन्याएँ प्रतीत होती थीं किन्तु वास्तव में वे थीं नहीं। इस तरह इस विवाद का कि वे मर्त्य थीं निराकरण हो जाता है।

यहाँ पर जिन ग्वाल-पुत्रियों को *गोपकन्याएँ* कहा गया है वे अवश्यमेव नित्यसिद्ध हैं क्योंकि उन्होंने कभी कोई *साधना* नहीं की। उनके द्वारा कात्यायनी देवी की पूजा का साधन यही बतलाता है कि वे मनुष्यों की तरह कार्य कर रही थीं और *भागवत* में इस पूजा का विवरण यह दिखाने के लिए आया है कि किस प्रकार उन्होंने गोपकन्याओं की भूमिका पूर्ण रूप से ले रखी थी।

गोपकन्या गोपियों का *नित्यसिद्ध* होना ब्रह्म-संहिता के इस कथन (५.३७) से स्थापित हो जाता है—*आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिः।* इससे यह सिद्ध होता है कि वे भगवान् की आध्यात्मिक ह्लादिनी शक्ति हैं। इसी प्रकार से *गौतमीय* तंत्र में कहा गया है—*ह्लादिनी* या *महाशक्तिः।* उनकी पूर्णता की पुष्टि इससे भी होती है कि ये गोपियाँ अपने प्रेमी कृष्ण के साथ साथ नित्य हैं जिसका उल्लेख अठारह अक्षर वाले मंत्र, दस अक्षर वाले मंत्र तथा अन्य मंत्रों में हुआ है। इन मंत्रों की पूजा तथा इन्हें प्रस्तुत करने वाली श्रुतियाँ अनन्तकाल से विद्यमान हैं।

''*सम्भवस्त्वमरस्त्रियः* से प्रारम्भ होने वाले श्लोक में जिन देवकन्याओं का उल्लेख हुआ है उन्हें *उज्ज्वल नीलमणि* में नित्यसिद्ध गोपियों का अंश कहा गया है। श्रुतिचारी अर्थात् साक्षात् वेदों से आने वाली गोपियों को *साधनसिद्ध* समझने का कारण *बृहद्वामन पुराण* से उद्धरित उनके निम्नलिखित शब्द हैं—

कन्दर्पकोटिलावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसि नः।

कामिनीभावमासाद्य स्मरक्षुब्धान्यसंशयः॥

यथा त्वल्लोकवासिन्यः कामतत्त्वेन गोपिकाः।

भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षाजनिनस्तथा॥

'चूँकि हमने तुम्हारे मुख को देखा है, जिसमें लाखों कामदेवों का सौन्दर्य पाया जाता है, अतः हमारे मन तुम्हारे लिए उसी तरह कामुक हो उठे हैं जिस तरह उन तरुणियों के; और हम अन्य सारे प्रलोभनों को भूल चुकी हैं। हमने उन गोपियों की तरह आपके लिए कार्य करने की इच्छा उत्पन्न कर ली है, जो आपके दिव्य लोक में रहती हैं और इस विचार से आपकी पूजा करती हैं और कामदेव जैसा स्वभाव प्रकट करती हैं कि आप उनके जारपति हैं।'

ऋषिचारी गोपियाँ भी *साधनसिद्ध* हैं जैसा कि *उज्ज्वल नीलमणि* में कहा गया है—*गोपालोपासकाः पूर्वम् अप्राप्ताभीष्टसिद्धयः।* पूर्वजन्म में वे दण्डकारण्य में निवास करने वाले महर्षियों के रूप में थीं। इसका साक्ष्य हमें *पद्म पुराण के* उत्तर खण्ड में मिलता है :

दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम्।

ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूताश्च गोकुले।

हरिं सम्प्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात्॥

इस श्लोक में कहा गया है कि भगवान् रामचन्द्र को देखकर दण्डकारण्य के ऋषियों की इच्छा भगवान् हरि (कृष्ण) का भोग करने के लिए हुई। दूसरे शब्दों में, भगवान् राम के सौन्दर्य से उन्हें भगवान् हरि या गोपाल की स्मृति हो आई जो उनकी पूजा के व्यक्तिगत आराध्य थे और वे उनके साथ आनन्द भोगना चाहते थे। किन्तु चिन्ता के कारण वे अपनी इच्छा पूरी नहीं कर पाये अत: कल्पवृक्ष तुल्य भगवान् राम ने उन पर बिना माँगे ही कृपा कर दी। इस तरह उनकी इच्छा पूरी हो गई जैसा कि *ते सर्वे* शब्दों से प्रकट है। वे अपने काममय आकर्षण के द्वारा भवसागर और जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्त हो गये और साथ साथ माधुर्य रस में उन्हें हरि की संगति भी मिल गई।

भागवत के इस श्लोक से हम यह जान पाते हैं कि जिन गोपियों के बच्चे थे उन्हें ही बलपूर्वक घर में रोका गया था। यह तथ्य *भागवत* के आगे के श्लोकों से क्रमश: स्पष्ट हो जाता है—*मातर: पितर: पुत्रा:* (१०.२१.२०) *यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग* (१०.२९.३२) तथा *पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान्* (१०.३१.१६)। श्रील कवि कर्णपूर गोस्वामी ने दसवें स्कन्ध की टीका में इस तथ्य का उल्लेख किया है। हम इस श्लोक से सम्बन्धित उनके सारे भावों को न दुहराकर उनके तात्पर्य का सारांश देंगे।

भगवान् श्रीरामचन्द्र के स्वरूप को देखकर वे ऋषि जो भगवान् गोपाल के पूजक थे तुरन्त रागानुगभक्ति के परिपक्व पद को प्राप्त हो गये। इस तरह वे स्वत: दृढ़ विश्वास, आकर्षण तथा आसक्ति की अवस्थाओं को प्राप्त हुए। किन्तु तो भी वे अपने को समस्त भौतिक कल्मष से पूरी तरह मुक्त नहीं कर पाये थे इसलिए योगमाया-देवी ने उनके लिए व्यवस्था की कि वे गोपियों के गर्भ से जन्म लेकर गोपकन्याएँ बनें। इन नवीन गोपियों में से कुछ ने नित्यसिद्ध गोपियों की संगति से कृष्ण के लिए युवावस्था में कदम रखते ही पूर्वराग प्रकट किया (ऐसा आकर्षण प्रिय से मिलने के पूर्व भी उत्पन्न हो जाता है)। जब इन नवीन गोपियों ने कृष्ण के दर्शन किये और शरीर से उनका सान्निध्य प्राप्त किया, तो उनके बचेखुचे कल्मष भी जलकर क्षार हो गये और उन्हें *प्रेम, स्नेह* आदि की उच्च अवस्थाएँ प्राप्त हो गईं।''

''यद्यपि वे अपने गोपपतियों के संग थीं किन्तु योगमाया की शक्ति से गोपियाँ उनके साथ यौन-सम्पर्क से निष्कलंक रहती रहीं। एक तरह से वे शुद्ध आध्यात्मिक शरीरों में स्थित थीं जिनका कृष्ण ने

भोग किया। रात्रि में उन्होंने कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनी, उनके पतियों ने उन्हें रोकना चाहा किन्तु योगमाया के कृपामय सहयोग से साधनसिद्ध गोपियाँ अन्य नित्यसिद्ध गोपियों के साथ अपने प्रियतम के पास जा सकीं।

''किन्तु अन्य गोपियाँ जिन्हें नित्यसिद्ध गोपियों तथा अन्य सिद्ध गोपियों की संगति का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका, *प्रेम अवस्था* प्राप्त नहीं कर पाईं जिससे उनका कल्मष पूरी तरह जलकर क्षार नहीं हो पाया। उन्होंने अपने गोपपतियों के साथ संभोग करने के बाद बच्चों को जन्म दिया। किन्तु कुछ ही काल बाद इन गोपियों में भी पूर्वराग उत्पन्न हुआ क्योंकि वे कृष्ण के साथ शारीरिक संयोग की प्रगाढ़ लालसा से पूर्ण थीं जो उन्होंने सिद्ध गोपियों की संगति से प्राप्त की थी। सिद्ध गोपियों की कृपापात्र बनकर उन्होंने कृष्ण द्वारा भोग्य दिव्य शरीर धारण किये और जब योगमाया उन्हें अपने पतियों द्वारा रोक रखने के प्रयासों पर विजय दिलाने में असफल रही तो उन्होंने अपने को निकृष्टतम विपदा में पड़ा हुआ पाया। अपने पतियों, भाइयों, जनकों तथा परिवार के अन्य सदस्यों को अपना शत्रु मानकर वे मरणासन्न हो गईं। जिस तरह अन्य स्त्रियाँ मृत्यु के समय अपनी माताओं या अन्य सम्बन्धियों का स्मरण करती हैं उसी तरह इन गोपियों ने एकमात्र सखा कृष्ण को प्राणाधार के रूप में स्मरण किया जैसाकि *अन्तर्* शब्द से प्रारम्भ होने वाले *भागवत* के इस श्लोक में कहा गया है।

''यह भाव निहित है कि वे स्त्रियाँ घर के बाहर निकल नहीं पाईं क्योंकि उन्हें उनके पतियों ने रोक लिया था और वे अपने हाथों में लाठी लिए उन्हीं के पास खड़े होकर उन्हें डाँट-फटकार रहे थे। यद्यपि ये गोपियाँ निरन्तर कृष्ण-प्रेम में लीन रहती थीं किन्तु इस विशेष अवसर पर उन्होंने कृष्ण का ध्यान किया और अपने अन्तर में रोदन किया, ''हे हमारे जीवन के एकमात्र सखा! हे वृन्दावन जंगल की कलाओं के सिन्धु! आप हमें किसी अगले जीवन में अपनी सखियाँ बनायें क्योंकि इस बार हम आपके कमल सदृश मुख को अपनी आँखों से नहीं देख पा रहीं हैं। जो भी हो, हम आपको अपने मन से निहारेंगी।'' सारी गोपियाँ इस तरह अपने आप में पश्चाताप करती हुईं अपनी आँखें बन्द किये खड़ी रहीं और तल्लीनता से कृष्ण का ध्यान करने लगीं।''

दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ।

ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥ १० ॥
तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि सङ्गताः ।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

दुःसह—असह्य; प्रेष्ठ—अपने प्रिय से; विरह—वियोग से; तीव्र—तीक्ष्ण; ताप—जलन से; धुत—दूर हो गये; अशुभाः—उनके हृदयों की सारी अशुभ बातें; ध्यान—ध्यान से; प्राप्त—प्राप्त किया हुआ; अच्युत—अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण के; आश्लेष—चुम्बन से उत्पन्न; निर्वृत्या—हर्ष से; क्षीण—अत्यन्त दुर्बल; मङ्गलाः—उनके शुभ कर्मफल; तम्—उस; एव—भले ही; परम-आत्मानम्—परमात्मा को; जार—उपपति; बुद्ध्या—सोचते हुए; अपि—तो भी; सङ्गताः—प्रत्यक्ष संगति पाकर; जहुः—त्याग दिया; गुण-मयम्—प्रकृति के गुणों से निर्मित; देहम्—उनके शरीर को; सद्यः—तुरन्त; प्रक्षीण—पूरी तरह शिथिल कर दिया; बन्धनाः—कर्म के बन्धनों को।

जो गोपियाँ कृष्ण का दर्शन करने नहीं जा सकीं, उनके लिए अपने प्रियतम से असह्य विछोह तीव्र वेदना उत्पन्न करने लगा, जिसने उनके सारे अशुभ कर्मों को भस्म कर डाला। उनका ध्यान करने से गोपियों को उनके आलिंगन की अनुभूति हुई और तब उन्हें जो आनन्द अनुभव हुआ उसने उनकी भौतिक धर्मनिष्ठा को समाप्त कर दिया। यद्यपि भगवान् कृष्ण परमात्मा हैं किन्तु इन युवतियों ने उन्हें अपना प्रेमी ही समझा और उसी घनिष्ठ रस में उनका संसर्ग प्राप्त किया। इस तरह उनके कर्म-बन्धन नष्ट हो गये और उन्होंने अपने स्थूल भौतिक शरीरों को त्याग दिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : "यहाँ पर शुकदेव गोस्वामी विचित्र ढंग से बोलते हैं: वे गोपियों द्वारा प्राप्त किये गये आन्तरिक उद्देश्य को एक बाह्य विचार के रूप में प्रस्तुत करते हैं और इस तरह असली स्वभाव को बाहरी लोगों से गोपनीय बनाये रखते हैं किन्तु उसी के साथ ही वे गुह्य भक्तों को, जो कि आध्यात्मिक भक्ति के वैज्ञानिक परिणामों में दक्ष हैं असली उद्देश्य प्रकट कर देते हैं। इस तरह बाहरी लोगों से शुकदेव कहते हैं कि कृष्ण ने गोपियों को मोक्ष प्रदान किया किन्तु गुह्य श्रोताओं से शुकदेव बतलाते हैं कि जब गोपियों को अपने प्रिय से विछोह का अनुभव हुआ तो उनमें अपार दुख तथा अपार सुख दोनों ही उत्पन्न हुए और इस तरह धीरे-धीरे उन्हें वांछित उद्देश्य प्राप्त हो गया।

इस तरह इस श्लोक को निम्नवत् समझा जा सकता है : अपने प्रिय के असह्य वियोग के कारण गोपियों को भीषण पीड़ा हुई जिससे सारी अशुभ वस्तुएँ लड़खड़ाने लगीं। दूसरे शब्दों में, जब सामान्य लोग गोपियों द्वारा अपने प्रिय के वियोग में अपार पीड़ा होने के विषय में सुनते हैं, तो वे हजारों अशुभ

वस्तुओं को त्याग देते हैं—जैसे करोड़ों ब्रह्माण्डों के भीतर दहकती अग्नि जैसी भयावह वस्तुएँ या शिवजी द्वारा पिया हुआ गरल। विशेष रूप से जो गोपियों के विरह प्रेम के बारे में सुनते हैं, वे अपने भीषण मिथ्या अहंकार को त्याग देते हैं और अपने को पराजित मानते हुए दहल जाते हैं। जब गोपियों ने भगवान् अच्युत का ध्यान किया, तो वे प्रकट होकर उनके समक्ष आये और गोपियाँ उनके शरीर का आलिंगन करके अत्यन्त आनन्दित हुईं क्योंकि उनका शरीर गोपियों के प्रति दिव्य प्रेम से पूर्ण था। गोपियों ने भी इस प्रेम के अनुरूप अपने अपने शारीरिक लक्षण और पहचान के भाव प्रकट करते हुए परम प्रसन्नता का अनुभव किया। इस प्रसन्नता के आगे उनका समस्त भौतिक या आध्यात्मिक सौभाग्य तुच्छ प्रतीत हो रहा था।

बात यह है कि जब अन्य लोग यह देखते हैं कि जब कृष्ण गोपियों के समक्ष प्रकट हुए वे उनका आलिंगन करके कितनी सुखी हुईं तो ये लोग यह अनुभव करते हैं कि तथाकथित हजारों शुभ वस्तुएँ इसकी तुलना में नगण्य हैं—यहाँ तक कि करोड़ों ब्रह्माण्डों में प्राप्य इन्द्रिय सुख तथा ब्रह्मानन्द भी नगण्य लगता है। परमेश्वर से विछोह एवं उनसे मिलन के फलस्वरूप क्रमश: उत्पन्न गोपियों के कष्ट और हर्ष के विषय में सुनकर कोई भी व्यक्ति अपने समस्त विगत कर्मफलों से, चाहे वे पापपूर्ण हों या पवित्र हों, छूट सकता है। हाँ, वैष्णवजन ऐसा नहीं सोचते कि किसी के पापमय तथा पुण्य कर्मफल केवल उनका भोग करने से ही नष्ट हो सकते हैं क्योंकि न तो परमेश्वर से विछोह, न ही उनकी प्रत्यक्ष संगति ही *कर्म* की श्रेणी में आते हैं। कर्मफलों का इस तरह का निवारण तो *भजन* अवस्था में उन लोगों के साथ होता है, जो *अनर्थ निवृत्ति* पद को प्राप्त हो चुके हैं।

"इस तरह गोपियों ने परमात्मा या प्रेम के परम लक्ष्य कृष्ण को अपना जारपति मान लिया। यद्यपि ऐसा भाव सामान्य रीति से निन्दनीय है किन्तु गोपियाँ कृष्ण के प्रति रुक्मिणी तथा अन्य रानियों की अपेक्षा अधिक अनुरक्त थीं, जो उन्हें पूर्ण सम्मानपूर्वक अपना पति मानती थीं। भगवान् को अपना जारपति मानना असली पति मानने की तुलना में श्रेष्ठ है—यह इस बात से सिद्ध हो जाता है कि निर्बन्ध शुद्ध प्रेम गृहस्थ-प्रेम से बढ़कर है। श्री उद्धव के वचनों से इस भाव का समर्थन होता है—*या दुस्त्यजं स्वजनम् आर्यपथं च हित्वा*—व्रज की इन महिलाओं ने अपने परिवार तथा अपने उन्नत धर्म का भी परित्याग कर दिया जिनका परित्याग कर पाना दुष्कर होता है। (*भागवत* १०.४७.६१)।

''इस धरा पर अपनी लीलाओं में कृष्ण प्राय: नगण्य वस्तुओं को अत्युच्च बना देते हैं। जैसाकि भीष्म ने कहा है कि अर्जुन के सारथी के रूप में कृष्ण की लीला उन लीलाओं से भी अधिक महान् है जिनमें वे राजाओं के भी राजा की तरह कार्य करते थे—*विजयरथ कुटुम्ब आत्ततोत्रे। धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेस्क्षणीये*—मैं अर्जुन के सारथी का ध्यान करता हूँ जो अपने दाएँ हाथ में चाबुक और बाएँ हाथ में लगाम लिए है और जो अर्जुन के रथ की सभी प्रकार से रक्षा करने के लिए सतर्क थे। (*भागवत* १.९.३९) इसी तरह हम देखते हैं कि सामान्य निकृष्ट माधुर्य रास सामान्य उच्चतर शान्त रस से श्रेष्ठ बन जाता है। इसी तरह जारपति से प्रेम-भाव वैध दम्पति के प्रेम-विनिमय से श्रेष्ठ बन जाता है। गुंजा की तुच्छ मालाएँ गेरू के लेप और मोरपंख सर्वोत्तम रत्नजटित आभूषणों से भी श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं।

''किन्तु यह आपत्ति की जा सकती है कि भगवान् के लिए इस प्रकार उन स्त्रियों से केलि करना उचित नहीं है जिनके शरीर का भोग अन्य पुरुषों द्वारा पहले से हो चुका हो। इस आक्षेप का उत्तर *जहु:* आदि शब्दों में मिल जाता है। यहाँ पर *देहम्* शब्द एकवचन में प्रयुक्त हुआ है, जबकि गोपियाँ अनेक हैं अत: यह एकत्व का सूचक है। कुछ अधिकारियों का कहना है कि योगमाया की शक्ति से गोपियों के शरीर इस तरह अन्तर्धान हो गये कि उन्हें कोई देख नहीं पाया किन्तु अन्य विद्वानों का कथन है कि इस प्रसंग में *देहम्* शब्द निकृष्ट शरीर का द्योतक है, जो प्रकृति के गुणों से बना हुआ है। *गुणमयम्* विशेषण की प्रधानता के कारण ऐसा समझा जाता है कि कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि सुनने के पूर्व गोपियों के दोहरे शरीर थे—भौतिक तथा आध्यात्मिक—किन्तु बाँसुरी सुनते ही उन्होंने अपने पतियों द्वारा भुक्त भौतिक शरीरों का परित्याग कर दिया। हम इसकी विवेचना निम्न प्रकार कर सकते हैं—

''जब भक्तगण किसी प्रामाणिक गुरु के आदेशानुसार भक्ति करना प्रारम्भ करते हैं, तो वे भगवान् का श्रवण करने, उनकी महिमा का गायन करने, उनका स्मरण करने, उन्हें नमस्कार करने, उनकी शरण में उपस्थित रहने आदि के द्वारा अपने कानों तथा अन्य इन्द्रियों को शुद्ध भक्ति में लगाते हैं। इस तरह भक्तगण भगवान् के दिव्य गुणों को अपनी इन्द्रियों का लक्ष्य बना लेते हैं, जैसाकि स्वयं भगवान् ने कहा है (*भागवत* ११.२५.२६)—*निर्गुणो मदपाश्रय:।* इस तरह भक्तों के शरीर प्रकृति के गुणों को लाँघ जाते हैं। फिर भी कभी कभी भक्त संसारी ध्वनियों को अपने इन्द्रिय विषय मान सकते हैं और यही भौतिक है। इस तरह भक्त के शरीर के दो पक्ष होते हैं—दिव्य तथा भौतिक।

''भक्ति के अपने स्तर के अनुसार ही किसी के शरीर के दिव्य पक्ष प्रधान बनते हैं और भौतिक पक्ष घटते हैं। इस रूपान्तर का वर्णन *भागवत* (११.२.४२) में निम्नलिखित श्लोक में मिलता है—

भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिर-

न्यत्र चैष त्रिक एककालः।

प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु-

स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्॥

''जिसने भगवान् की शरण ले रखी है उसके लिए भक्ति, भगवान् का साक्षात् अनुभव तथा अन्य बातों से विरक्ति—ये तीनों एकसाथ घटित होते हैं। यह वैसे ही है जैसे कि भोजन करते हुए मनुष्य के हर कौर के साथ आनन्द, पोषण तथा क्षुधा से निवृत्ति एकसाथ और अधिकाधिक अनुभव होते हैं।'' जब मनुष्य को ईश्वर का सर्वथा शुद्ध प्रेम प्राप्त हो जाता है, तो शरीर के भौतिक अंश अदृश्य हो जाते हैं और शरीर पूरी तरह आध्यात्मिक बन जाता है। तो भी नास्तिकों के मिथ्या मतों को विचलित न होने देने तथा भक्ति की गुह्यता की रक्षा करने के लिए भगवान् अपनी माया से स्थूल शरीर की मृत्यु करा देते हैं। इसका उदाहरण मौषल लीला के समय यादवों का विलोप है।

किन्तु कभी कभी कृष्ण भक्तियोग की श्रेष्ठता घोषित करने के लिए भक्त को सशरीर भगवद्धाम जाने देते हैं जैसाकि ध्रुव महाराज के साथ हुआ। इसके साक्ष्य में *भागवत* से ही (११.२५.३२) उद्धरण दिया जा सकता है—

येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः।

भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते॥

''जो जीव मन से प्रकट होने वाले प्रकृति के गुणों पर विजय पा लेता है, वह भक्तियोग के द्वारा अपने आपको मुझे (कृष्ण) समर्पित कर सकता है और इस तरह मेरे शुद्ध प्रेम को प्राप्त कर सकता है।'' भगवान् यहाँ यह बताते हैं कि प्रकृति के गुणों से निर्मित होने वालों की पराजय तथा विनाश को भक्तियोग द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है।

अतएव भागवत के इस श्लोक से हमें यही समझना चाहिए कि जो गोपियाँ कृष्ण का दर्शन करने नहीं जा पाईं उन्होंने अपने अशुभ भौतिक देहों को या तो छोड़ दिया या जला दिया और उनके शुभ

आध्यात्मिक शरीर ध्यान में कृष्ण का आलिंगन करने से अनुभव किये गये आनन्द के कारण विनष्ट होने की बजाय और भी प्रधान बनते गये। इस तरह उनका बन्धन पूरी तरह नष्ट हो गया। योगमाया की सहायता से वे अज्ञान से तथा अपने पतियों एवं सम्बन्धियों द्वारा रोके जाने से मुक्त हो गईं।

गोपियों के शरीर-त्याग को उनकी मृत्यु का परिणाम बताने की भूल हमें नहीं करनी चाहिए। स्वयं भगवान् ने कहा है (*भागवत* १०.४७.३७),

या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन् व्रज आस्थिता: ।

अलब्धरासा: कल्याण्यो मापुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥

''वे कुछ कल्याणी गोपियाँ उस रात्रि में इस वृन्दावन में मेरे साथ रासनृत्य में सम्मिलित नहीं हो पाईं फिर भी मेरी दिव्य लीलाओं का स्मरण करने से उन्हें मेरा सान्निध्य प्राप्त हो गया।'' इस श्लोक में *कल्याण्य:* शब्द के प्रयोग द्वारा भगवान् कहना चाहते हैं कि यद्यपि गोपियाँ अपने पतियों के मना करने तथा मेरे वियोग की पीड़ा के कारण अपना शरीर त्याग देना चाहती थीं किन्तु इस परम शुभ रासोत्सव के शुभारम्भ में उनका मरना मुझे अच्छा न लगता अतएव अशुभ बन जाता। इसीलिए वे मरी नहीं।''

कृष्ण को देखने जाने से रोकी गई गोपियाँ शरीर से नहीं मरीं—इसका अन्य साक्ष्य श्रीशुकदेव के ही कथन से इसी स्कंध (१०.४७.३८) में प्राप्त होता है—*ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्सन्देशागतस्मृती:*—तब गोपियों ने संतुष्ट होकर उद्धव की बातों का उत्तर दिया क्योंकि उसके सन्देश ने कृष्ण की स्मृति ताजी कर दी थी। यहाँ पर हमें पता चलता है कि उद्धव से बातें कर रही गोपियाँ वे थीं जो अपने पतियों के द्वारा रोके जाने के कारण रासनृत्य में सम्मिलित नहीं हो पाई थीं। अत: निष्कर्ष यह निकला कि इन गोपियों ने बिना मरे अपने भौतिक शरीर त्याग दिये। विरह-ताप से झुलसकर उनके शरीर अपनी भौतिकता त्यागकर उसी तरह शुद्ध आध्यात्मिक बन गये जिस तरह ध्रुव महाराज जैसे महान् भक्तों के शरीर बन गये थे। गोपियों के 'शरीर-त्याग' का यही अर्थ है।

निम्नलिखित दृष्टान्त से विभिन्न गोपियों की अवस्थाओं का दृश्य प्रकट हो जाता है : आम के वृक्ष में सात-आठ पके फलों को देखकर हम यह पता लगा सकते हैं कि वृक्ष के सारे फल पके हुए हैं। तब हम उन्हें तोड़कर घर ला सकते हैं जहाँ कुछ समय के पश्चात् सूर्य की किरणों तथा अन्य साधनों से वे अधिक आकर्षक, सुगन्धित तथा स्वादिष्ट बन जाते हैं—जिन्हें हम राजा को उन्हें खाकर आनंद लेने

के लिए भेंट कर सकते हैं। जब राजा के भोजन का समय आता है, तो कोई समझदार नौकर उनमें से खाने योग्य फलों को चुनकर ले जाता है। देखने से ही नौकर यह जान लेता है कि कौनसा फल बीच तक पका है लेकिन ऊपर कच्चा है, अत: अभी भी राजा के खाने योग्य नहीं है। इन शेष फलों को पकाने की विशेष विधि से दो-तीन दिनों में पकाया जा सकता है और तब वे भी राजा के खाने योग्य बन सकते हैं।''

''इसी तरह *मुनिचारी गोपियाँ* जिन्होंने गोकुल में जन्म लिया था किन्तु उनमें से जिन्होंने अपने शरीरों की भौतिकता को पूरी तरह से त्याग दिया था और जिन्होंने जीवन के प्रारम्भ में ही पूर्णतया आध्यात्मिक शरीर प्राप्त कर लिये वे किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अस्पृश्य बनी रहीं। अत: जब वे कृष्ण से मिलने गईं तो योगमाया ने उन्हें नित्यसिद्ध तथा अन्य उच्च गोपियों के साथ जाने की अनुमति दे दी। अन्य मुनिचारी गोपियाँ तब भी अपने बाह्य भौतिक शरीर से सम्बन्ध बनाये रहीं किन्तु श्रीकृष्ण के विरहताप से क्षुब्ध होने पर इन्होंने भी अपने भौतिक शरीर त्याग दिये और पूर्णतया आध्यात्मिक शरीर धारण कर लिये जो अन्य पुरुषों के सम्पर्क के सभी प्रकार के मल से शुद्ध थे। रासनृत्य की रात में योगमाया ने इनमें से कुछ गोपियों को उन गोपियों के पीछे भेजा जो पहले ही जा चुकी थीं। जिन गोपियों में थोड़ा भी कलुष बचा देखा उन्हें योगमाया ने तब तक रोके रखा जब तक वे भी विरह के ताप से शुद्ध नहीं हो गईं और तब इन्हें किसी अन्य रात्रि में भेजा।''

''कृष्ण के साथ रासनृत्य तथा अन्य लीलाओं का आनन्द लूटने के बाद मुनिचारी गोपियाँ रात्रि बीतने पर अपने अपने घरों को लौट आईं। इसी तरह नित्यसिद्ध तथा अन्य उच्च गोपियों ने किया। किन्तु अब योगमाया ने इन मुनिचारी गोपियों को उनके पतियों के साथ भौतिक संयोग से रोका। दूसरे शब्दों में, ये गोपियाँ पति, सन्तान इत्यादि के प्रति किसी प्रकार की स्वार्थपूर्ण आसक्ति से रहित हो गईं। चूँकि ये गोपियाँ कृष्ण-प्रेम के सागर में पूर्णतया निमग्न थीं अतएव उनके स्तनों का दूध सूख गया जिससे वे अपने बच्चों को दूध नहीं पिला सकती थीं और अपने परिवार वालों को वे ऐसी प्रतीत होती थीं जैसे उनपर कोई भूत सवार हो। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि जो गोपियाँ पहले भौतिकता से ग्रस्त थीं उनका रासनृत्य में भाग लेना, अनुचित नहीं प्रतीत होता है।

''फिर भी कुछ विद्वानों की पुष्ट धारणा है कि जो गोपियाँ अपने घरों में रोक ली गई थीं उनके

बच्चे नहीं थे। उनके अनुसार जहाँ भी *अपत्य* शब्द का आगे के श्लोकों में प्रयोग हुआ है, वह सपत्नियों के बच्चों का, गोद लिये बच्चों या भतीजे-भतीजियों का सूचक है।''

श्रीपरीक्षिदुवाच
कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने ।
गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-परीक्षित् उवाच—श्री परीक्षित ने कहा; कृष्णम्—कृष्ण को; विदुः—वे जानती थीं; परम्—एकमात्र; कान्तम्—अपने प्रेमी के रूप में; न—नहीं; तु—लेकिन; ब्रह्मतया—परम सत्य के रूप में; मुने—हे मुनि, शुकदेव; गुण—तीनों गुणों की; प्रवाह—प्रबल धारा का; उपरमः—रुक जाना; तासाम्—उनके लिए; गुण-धियाम्—इन गुणों के वशीभूत बुद्धि है जिनकी; कथम्—कैसे।

श्रीपरीक्षित महाराज ने कहा : ''हे मुनिवर, गोपियाँ कृष्ण को केवल अपना प्रेमी मानती थीं, परम पूर्ण सत्य के रूप में नहीं मानती थीं। तो फिर ये युवतियाँ जिनके मन प्रकृति के गुणों की लहरों में बह रहे थे, किस तरह से अपने आपको भौतिक आसक्ति से छुड़ा पाईं?''

तात्पर्य : राजा परीक्षित मुनियों तथा अन्यगण्यमान्य महापुरुषों की सभा में विराजमान थे और शुकदेव गोस्वामी के वचनों को सुन रहे थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार जब शुकदेव गोस्वामी कृष्ण के प्रति गोपियों के माधुर्य प्रेम के विषय में बोल रहे थे, तो राजा वहाँ पर उपस्थित कतिपय भौतिकतावादी व्यक्तियों के मनोभावों को ताड़ गए और उन्होंने उनके मन को आन्दोलित करने वाले संशय का अनुमान लगाया। अतएव राजा शुकदेव के वचनों का तात्पर्य समझ रहे थे किन्तु उन्होंने अपने को इस तरह प्रस्तुत किया मानो उनकी अपनी शंकाएँ हों जिनसे वे अन्यों की शंका को दूर कर सकें। इसीलिए उन्होंने यह प्रश्न पूछा।

श्रीशुक उवाच
उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ।
द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; उक्तम्—कहा गया; पुरस्तात्—इसके पूर्व; एतत्—यह; ते—तुमसे; चैद्यः—चेदि नरेश शिशुपाल; सिद्धिम्—सिद्धि, पूर्णता; यथा—जिस तरह; गतः—प्राप्त हुआ; द्विषन्—द्वेष रखने के कारण; अपि—भी; हृषीकेशम्—भगवान् हृषीकेश को; किम् उत—तो फिर क्या कहा जा सकता है; अधोक्षज—भगवान् के, जो सामान्य इन्द्रियों की परिधि से बाहर रहते हैं; प्रियाः—प्रिय भक्तों का।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : यह विषय आपको पहले बताया जा चुका था। चूँकि कृष्ण से

घृणा करने वाला शिशुपाल तक सिद्धि प्राप्त कर सका तो फिर भगवान् के प्रिय भक्तों के विषय में कहना ही क्या है?

तात्पर्य : यद्यपि बद्धजीवों का आध्यात्मिक स्वभाव माया से आच्छादित हो सकता है किन्तु भगवान् कृष्ण का दिव्य स्वभाव सर्वशक्तिमान है, जो किसी अन्य शक्ति द्वारा कभी भी आच्छादित नहीं होता। वस्तुत: अन्य सारी शक्तियाँ उन्हीं की शक्ति हैं और वे उनकी इच्छानुसार कार्य करती हैं। *ब्रह्म-संहिता* (५.४४) में कहा गया है—*सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका/ छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा/ इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा*—भौतिक जगतों का सृजन, पालन और संहार करने वाली शक्तिशाली दुर्गा भगवान् की शक्ति हैं और वे उनकी इच्छानुसार उनके पीछे छाया की तरह चलती हैं। चूँकि भगवान् का आध्यात्मिक प्रभाव इस बात पर निर्भर नहीं करता कि कोई उन्हें समझता है या नहीं इसलिए कृष्ण के प्रति गोपियों का रागानुग प्रेम उनकी आध्यात्मिक सिद्धि की गारंटी प्रदान कर सका।

महान् आचार्य मध्वाचार्य ने *स्कन्द पुराण* से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है :

कृष्णकामास्तदा गोप्यस्त्यक्त्वा देहं दिवं गता:।
सम्यक् कृष्णं परब्रह्म ज्ञात्वा कालात् परं ययु:॥

''उस समय जिन गोपियों ने कृष्ण की इच्छा की उन्होंने अपने शरीर त्याग दिये और वे वैकुण्ठ चली गईं। चूँकि वे कृष्ण को परम पूर्ण सत्य के रूप में भली-भाँति जानती थीं अतएव वे काल के प्रभाव को भी लाँघ गईं।''

पूर्वं च ज्ञानसंयुक्तास्तत्रापि प्रायशस्तथा।
अतस्तासां परं ब्रह्म गतिरासीन्न कामत:॥

''अपने पूर्व जन्मों में अधिकांश गोपियों को दिव्य ज्ञान प्राप्त था। वे किसी कामवासना से नहीं अपितु इसी ज्ञान के कारण परब्रह्म को प्राप्त कर सकीं।''

न तु ज्ञानमृते मोक्षो नान्य: पन्थेति हि श्रुति:।
कामयुक्ता तदा भक्तिर्ज्ञानं चातो विमुक्तिगा:॥

''वेद घोषित करते हैं कि आध्यात्मिक ज्ञान के बिना मुक्ति का कोई उचित मार्ग नहीं है। चूँकि बाह्य रूप से कामासक्त इन गोपियों में भक्ति तथा ज्ञान था अत: उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई।''

अतो मोक्षेऽपि तासां च कामो भक्त्यानुवर्तते।

मुक्ति शब्दोदितो चैद्यप्रभृतौ द्वेषभागिनः॥

''इस तरह उनकी मुक्ति में भी उनकी शुद्ध भक्ति के साथ-साथ कामवासना लगी रही। कुल मिलाकर, जिसे हम मुक्ति कहते हैं वह शिशुपाल जैसे ईर्ष्यालु व्यक्ति को भी प्राप्त हुई।''

भक्तिमार्गी पृथङ्मुक्तिमगाद् विष्णुप्रसादतः।

कामास्त्वशुभकृच्चापि भक्त्या विष्णोः प्रसादकृत्॥

''जो भक्तिमार्ग का पालन करता है उसे भगवान् विष्णु की कृपा से उपफल के रूप में मुक्ति प्राप्त होती है और ऐसे व्यक्ति की कामवासना जो सामान्यतया दुर्भाग्य को आमंत्रित करने वाली होती है, वह शुद्ध भक्ति में अभिव्यक्त होने पर विष्णु-कृपा को प्राप्त होती है।''

द्वेषिजीवयुतं चापि भक्तं विष्णुर्विमोचयेत्।

अहोऽतिकरुणा विष्णोः शिशुपालस्य मोक्षणात्॥

''भगवान् विष्णु ईर्ष्यालु जीवन वाले भक्त की भी रक्षा करते हैं। जरा भगवान् की असीम कृपा को देखिये न, किस तरह उन्होंने शिशुपाल को मुक्ति प्रदान की।''

शिशुपाल भगवान् कृष्ण का चचेरा भाई था। जब भगवान् सुमुखी युवा रुक्मिणी का हरण करके ले गये तो शिशुपाल का गर्व चूर हो गया क्योंकि वह स्वयं उससे विवाह करने कर पूरी तरह तुला था। शिशुपाल भगवान् कृष्ण पर ईर्ष्या से जल रहा था अतः उसने राजसूय यज्ञ के समय मूर्खता से उनका अपमान किया। उस समय कृष्ण ने शिशुपाल का अविचल भाव से शिर काट लिया और उसे मुक्ति प्रदान की। सभी दर्शकों ने शिशुपाल के तेजपूर्ण आत्मा को उसके मृत शरीर से बाहर निकलकर भगवान् में लीन होते देखा। सातवें स्कन्ध में बताया गया है कि शिशुपाल वैकुण्ठ के द्वारपाल का अवतार था जिसे पृथ्वी पर असुर रूप में जन्म लेने का शाप मिला था। चूँकि शिशुपाल जैसे व्यक्ति को भी भगवान् द्वारा सारी स्थिति को ध्यान में रखते हुए मुक्ति मिल गई तो फिर उन गोपियों के विषय में क्या कहा जाये, जो कृष्ण को सर्वाधिक प्रेम करती थीं!

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।

अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १४॥

शब्दार्थ

नृणाम्—मनुष्यता के लिए; निःश्रेयस—सर्वोच्च लाभ; अर्थाय—के हेतु; व्यक्तिः—साकार रूप; भगवतः—भगवान्; नृप—हे राजन्; अव्ययस्य—अव्यय का; अप्रमेयस्य—मापविहीन; निर्गुणस्य—गुणों के स्पर्श से दूर; गुण-आत्मनः—गुणों के नियन्ता।

हे राजन्, भगवान् अव्यय तथा अप्रमेय हैं और भौतिक गुणों से अछूते हैं क्योंकि वे इन गुणों के नियन्ता हैं। इस जगत में साकार रूप में उनका आविर्भाव मानवता को सर्वोच्च लाभ दिलाने के निमित्त होता है।

तात्पर्य : चूँकि भगवान् कृष्ण मानवमात्र का कल्याण करने के लिए अवतरित होते हैं, तो भला वे उन अबोध तरुणियों की उपेक्षा क्यों करने लगे जो अन्य किसी की अपेक्षा उनसे अधिक प्रेम करती थीं? यद्यपि भगवान् अपने आपको अपने शुद्ध भक्तों को समर्पित कर देते हैं, तो भी वे अव्यय हैं, निःशेष हैं क्योंकि वे *अप्रमेय* अर्थात् नापे-जोखे नहीं जा सकते। वे *निर्गुण* अर्थात् भौतिक गुणों से रहित भी हैं अतः जो उनके घनिष्ट सान्निध्य में रहते हैं, वे भी उसी आध्यात्मिक पद पर है। वे *गुणात्मा* हैं अर्थात् वे प्रकृति के गुणों के नियन्ता हैं इसीलिए वे इन गुणों से मुक्त रहते हैं। दूसरे शब्दों में, क्योंकि प्रकृति के गुण उनकी शक्ति हैं अतएव वे उनपर अपना प्रभाव नहीं डाल पाते।

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ १५॥

शब्दार्थ

कामम्—कामवासना; क्रोधम्—क्रोध; भयम्—भय; स्नेहम्—स्नेह; ऐक्यम्—एकता; सौहृदम्—मित्रता; एव च—भी; नित्यम्—सदैव; हरौ—भगवान् हरि के प्रति; विदधतः—प्रकट करते हुए; यान्ति—प्राप्त करते हैं; तत्-मयताम्—तल्लीनता; हि—निस्सन्देह; ते—ऐसे व्यक्ति।

जो व्यक्ति अपने काम, क्रोध, भय, रक्षात्मक स्नेह, निर्विशेष एकत्व का भाव या मित्रता को सदैव भगवान् हरि में लगाते हैं, वे निश्चित रूप से उनके भावों में तल्लीन हो जाते हैं।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण शुद्ध आध्यात्मिक पुरुष हैं और जो लोग जिस-तिस भाँति उनसे अनुरक्त हो जाते हैं और उनमें लीन रहते हैं, वे आध्यात्मिक पद तक उठ जाते हैं। भगवान् के सान्निध्य की यही परम प्रकृति है।

इस श्लोक में शुकदेव गोस्वामी गोपियों के विषय में पूछे गये प्रश्न का उत्तर राजा परीक्षित को देते हैं। शुकदेव गोस्वामी भगवान् की अत्यन्त घनिष्ट लीला, रासनृत्य का वर्णन शुरू कर चुके हैं और राजा

परीक्षित उन श्रोताओं के संशयों को दूर करने में सहायक बन रहे हैं, जो इस विस्मयपूर्ण कथा को सुन रहे हैं या भविष्य में सुनेंगे। श्रील मध्वाचार्य ने *स्कन्द पुराण* से उस कथन को उद्धृत किया है, जो गोपियों को भौतिक माया से परे मुक्तात्माएँ घोषित करने वाला है—

भक्ता हि नित्यकामित्वं न तु मुक्तिं विना भवेत्।

अतः कामितया वापि मुक्तिर्भक्तिमतां हरौ॥

''जो व्यक्ति पहले से ही मुक्त नहीं है, उसमें शुद्ध भक्ति में व्यक्त होने वाला कृष्ण के प्रति नित्य माधुर्य आकर्षण उत्पन्न नहीं हो सकता। अतः जो लोग माधुर्य आकर्षण में भी भगवान् हरि की भक्ति करते हैं, वे पहले ही मुक्ति पा लेते हैं।''

इसके बाद श्रील मध्वाचार्य *पद्म पुराण* से उद्धरण देते हैं जिससे यह स्पष्ट हो सके कि मनुष्य केवल कृष्ण के प्रति कामवासना रखने से ही मुक्ति नहीं पा सकता अपितु उसमें *शुद्ध भक्तिपूर्ण* माधुर्य आकर्षण होना चाहिए।

स्नेहभक्ताः सदा देवाः कामित्वेनाप्सरस्त्रियः।

काश्चित् काश्चिन्न कामेन भक्त्या केवलयैव तु॥

''देवतागण सदैव भगवान् से स्नेहभक्ति करते हैं और अप्सराएँ कहलाने वाली स्वर्ग की युवतियाँ सदैव उनके प्रति कामवासनाएँ रखती हैं यद्यपि उनमें से कुछ में भौतिक कामवासना से रहित शुद्ध भक्ति भी पाई जाती है। केवल ऐसी ही कामवासना-रहित अप्सराओं को मुक्ति मिलती है क्योंकि प्रामाणिक भक्ति के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।''

अतः जब तक भक्ति भौतिक कामवासना से मुक्त नहीं हो लेती वह *योग्यम्* या उपयुक्त नहीं मानी जाती। हमें चाहिए कि माधुर्य भाव में कृष्ण के साथ गोपियों के निजी सान्निध्य को सस्ता व्यापार न समझें। भगवान् के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध की गम्भीरता प्रदर्शित करने के लिए श्रील मध्वाचार्य ने *वराह पुराण* के निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये हैं—

पतित्वेन श्रियोपास्यो ब्रह्मणा मे पितेति च।

पितामहतयान्येषां त्रिदशानां जनार्दनः॥

''लक्ष्मीजी भगवान् जनार्दन को अपने पति रूप में पूजती हैं, ब्रह्माजी उन्हें अपने पिता के रूप में

पूजते हैं और अन्य देवता उन्हें अपने पितामह के रूप में पूजते हैं।''

प्रपितामहो मे भगवानिति सर्वजनस्य तु।

गुरु: श्रीब्रह्मणो विष्णु: सुराणां च गुरोर्गुरु: ॥

''अत: सामान्य लोगों को चाहिए कि भगवान् को वे अपना प्रपितामह मानें। भगवान् विष्णु ब्रह्मा के आध्यात्मिक गुरु हैं अत: वे देवताओं के गुरु के भी गुरु हैं।''

गुरुर्ब्रह्मास्य जगतो दैवं विष्णु: सनातन: ।

इत्येवोपासनं कार्यं नान्यथा तु कथञ्चन ॥

''ब्रह्मा इस ब्रह्माण्ड के आध्यात्मिक गुरु हैं और विष्णु इसके शाश्वत पूज्य अर्चाविग्रह हैं। मनुष्य को चाहिये कि इसी भाव से भगवान् की पूजा करे, अन्य किसी भाव से नहीं।''

उपर्युक्त आदेश *सर्वजन* अर्थात् सबों पर लागू होते हैं। अत: मनुष्य को चाहिए कि इन आदेशों का तब तक पालन करता रहे जब तक परमेश्वर के सान्निध्य का उच्च पद प्राप्त न हो ले। इस विषय में पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि वृन्दावन की गोपिकाएँ अति उच्च मुक्तात्माएँ थीं अतएव कृष्ण के साथ उनकी लीलाएँ शुद्ध आध्यात्मिक व्यापार हैं। इस बात को मन में रखकर ही हम इस अध्याय को ठीक से समझ सकते हैं।

न चैवं विस्मय: कार्यो भवता भगवत्यजे ।
योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

न च—न तो; एवम्—इस प्रकार का; विस्मय:—आश्चर्य; कार्य:—किया जाना चाहिए; भवता—आपके द्वारा; भगवति—भगवान्; अजे—अजन्मा; योग-ईश्वर—योग के स्वामियों के; ईश्वरे—परम स्वामी; कृष्णे—कृष्ण के विषय में; यत:—जिनसे; एतत्—यह (संसार); विमुच्यते—मुक्ति प्राप्त करता है।

आपको योगेश्वरों के अजन्मा, ईश्वर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के विषय में इस तरह चकित नहीं होना चाहिए। अन्तत: भगवान् ही इस जगत का उद्धार करने वाले हैं।

तात्पर्य : परीक्षित महाराज को इतना चकित नहीं होना चाहिए था कि भगवान् कृष्ण के तथाकथित प्रेमालाप समस्त ब्रह्माण्ड को मुक्त कराने के निमित्त हैं। आखिर, यही तो भगवान् का उद्देश्य है कि आनन्द तथा ज्ञानमय जीवन के लिए समस्त बद्धात्माओं को अपने धाम वापस बुलायें। गोपियों के प्रति कृष्ण के माधुर्य व्यापार उक्त योजना के साथ बहुत ही अच्छी तरह से मेल खाते हैं क्योंकि

भौतिक चेतना में वास्तविक रूप में आसक्त हम सभी उनके विषय में सुनकर शुद्ध तथा मुक्त हो सकते हैं।

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध (१.५.३३) में नारदमुनि कहते हैं—

आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत।

तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम्॥

"हे पवित्र आत्मा! जिस वस्तु से कोई रोग उत्पन्न होता है, क्या उसीको औषधि के रूप में लगाने से वह रोग ठीक नहीं हो जाता?" अत: कृष्ण के प्रेम-व्यापार शुद्ध आध्यात्मिक कर्म होने के कारण उन लोगों के भौतिक कामवासना के रोग को दूर कर देंगे जो उनका श्रवण करते हैं।

ता दृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान्व्रजयोषित: ।
अवदद्वदतां श्रेष्ठो वाच: पेशैर्विमोहयन् ॥ १७॥

शब्दार्थ

ता:—उनको; दृष्ट्वा—देखकर; अन्तिकम्—निकट; आयाता:—आया हुआ; भगवान्—भगवान् ने; व्रज-योषित:—व्रज की बालाएँ; अवदत्—कहा; वदताम्—वक्ताओं में; श्रेष्ठ:—श्रेष्ठ; वाच:—वाणी के; पेशै:—अलंकरणों से युक्त; विमोहयन्—मोहित करने वाली।

यह देखकर कि व्रज-बालाएँ आ चुकी हैं, वक्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् कृष्ण ने उनके मन को मोहित करने वाले आकर्षक शब्दों से उनका स्वागत किया।

तात्पर्य : कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम की आध्यात्मिक प्रकृति की स्थापना करने के बाद शुकदेव गोस्वामी अपनी कथा को आगे बढ़ाते हैं।

श्रीभगवानुवाच
स्वागतं वो महाभागा: प्रियं किं करवाणि व: ।
व्रजस्यानामयं कच्चिद्ब्रूतागमनकारणम् ॥ १८॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; सु-आगतम्—स्वागत है; व:—तुम लोगों का; महा-भागा:—अरे भाग्यशालिनियो; प्रियम्—अच्छा लगने वाला; किम्—क्या; करवाणि—कर सकता हूँ; व:—तुम लोगों के लिए; व्रजस्य—व्रज की; अनामयम्—कुशल-मंगल; कच्चित्—क्या; ब्रूत—कहिये; आगमन—अपने आने का; कारणम्—कारण।

भगवान् कृष्ण ने कहा : हे अति भाग्यवंती नारीगण, तुम्हारा स्वागत है। मैं तुम लोगों की प्रसन्नता के लिए क्या कर सकता हूँ? व्रज में सब कुशल-मंगल तो है? तुम लोग अपने यहाँ आने का कारण मुझे बतलाओ।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण भलीभाँति जानते थे कि गोपियाँ क्यों आईं हैं। वस्तुत: उन्होंने ही इन्हें अपनी बाँसुरी की रोमांचक ध्वनि से बुलाया था। अत: कृष्ण गोपियों से यह पूछकर उन्हें छेड़ रहे थे कि ''तुम लोग इतनी तेजी से यहाँ क्यों आई हो ? क्या नगर में कुछ गड़बड़ है ? तुम लोग आखिर क्यों आई हो ? तुम क्या चाहती हो ?''

गोपियाँ कृष्ण की युवती प्रेमिकाएँ थीं अतएव ये प्रश्न उन्हें निश्चित रूप से भ्रमित करने वाले थे क्योंकि कृष्ण के साथ माधुर्य प्रेम का आनन्द लूटने के सरल उद्देश्य से उन्होंने ऐसा किया था।

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ।
प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥ १९॥

शब्दार्थ

रजनी—रात; **एषा**—यह; **घोर-रूपा**—देखने में भयानक; **घोर-सत्त्व**—भयानक प्राणियों से; **निषेविता**—बसी हुई; **प्रतियात**—लौट जाओ; **व्रजम्**—व्रज ग्राम को; **न**—नहीं; **इह**—यहाँ; **स्थेयम्**—रुकना चाहिए; **स्त्रीभिः**—स्त्रियों के लिए; **सु-मध्यमाः**—क्षीण कटि वाली।.

यह रात अत्यन्त भयावनी है और भयावने प्राणी इधर उधर फिर कर रहे हैं। हे पतली कमर वाली स्त्रियो, व्रज लौट जाओ। स्त्रियों के लिए यह उपयुक्त स्थान नहीं है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की बहुत ही मनोहारी टीका लिखी है—

[गोपियों ने सोचा] हाय हाय! हमारे पारिवारिक उत्तरदायित्वों, हमारी शालीनता तथा हमारी लज्जा को छिन्न-भिन्न करने के बाद तथा नित्यप्रति हमारा भोग करते रहने पर और अब हमें अपनी बाँसुरी से यहाँ तक खींच करके वह हमसे पूछ रहा है कि हम क्यों आई हैं ?''

जब गोपियाँ एक-दूसरे को तिरछी नजर से देख रही थीं तो भगवान् ने कहा, ''यदि तुम यह कहना चाहो कि भगवान् की पूजा करने के लिए रात में खिलने वाले पुष्प लेने आयी हो और अपनी तिरछी नजरों से तुम उन फूलों को ही देख रही हो तो मैं तुम्हारे बहानों को नहीं मान सकता क्योंकि देश, काल या व्यक्ति उसके उपयुक्त नहीं हैं।

''*रजनी* से प्रारम्भ होने वाले श्लोक में भगवान् के कहने का आशय यही है। हो सकता है कि उन्होंने कहा हो, ''यद्यपि पर्याप्त चाँदनी है किन्तु रात का यह समय अत्यन्त भयावना है क्योंकि अनेक साँप, बिच्छू तथा भयानक प्राणी, जो इतने छोटे हैं कि तुम देख नहीं सकती, इन लताओं, जड़ों तथा टहनियों के नीचे छिपे हुए हैं। अत: फूल चुनने के लिए यह समय उपयुक्त नहीं है। केवल समय ही

नहीं, यह स्थान भी फूल चुनने के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि रात में यहाँ बाघ जैसे भयानक पशु घूमते रहते हैं। अत: तुम लोगों को व्रज वापस लौट जाना चाहिए।''

''किन्तु,'' गोपियाँ आपत्ति कर सकती हैं कि, ''जरा हमें कुछ क्षणों के लिए विश्राम तो करने दो, तब हम चली जायेंगी।''

''तब भगवान् उत्तर दे सकते हैं, ''स्त्रियों को ऐसे स्थान में नहीं रुकना चाहिए।'' दूसरे शब्दों में, ''काल तथा स्थान को देखते हुए तुम जैसी स्त्रियों को यहाँ एक क्षण भी रुकना ठीक नहीं है।''

''यही नहीं, *सु-मध्यमा:* (हे क्षीण-कटि वाली स्त्रियो) शब्द से भगवान् का मन्तव्य था, ''तुम सुन्दर युवतियाँ हो और मैं सुन्दर युवक हूँ। चूँकि तुम सभी अत्यन्त सती-साध्वी हो और मैं ब्रह्मचारी हूँ, जैसाकि श्रुति के शब्दों *कृष्णो ब्रह्मचारी* से पुष्टि होती है (*गोपाल तापनी उपनिषद*) अतएव हम लोगों का एक ही स्थान पर होना अनुचित नहीं है। फिर भी मन पर विश्वास नहीं किया जा सकता— चाहे तुम्हारे हों या मेरा मन हो।''

''भगवान् ने जिस आन्तरिक उत्सुकता का संकेत किया है, वह स्पष्ट हो जाती है यदि हम उनके शब्दों को ध्यानपूर्वक पढ़ें ''यदि तुम लज्जा के कारण अपने आने का कारण नहीं बतला सकती तो मत बतलाओ। लेकिन मैं पहले से जानता हूँ अत: मैं जैसा कहूँ, उसे सुनो।'' इस तरह भगवान् *रजनी* से प्रारम्भ होने वाले शब्द कहते हैं।''

संस्कृत शब्दों का अन्य प्रकार से अन्वय करने पर इस श्लोक का दूसरा अर्थ निकलता है, जिस पर कृष्ण का अगला कथन आधारित है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार अन्वय इस प्रकार होगा: *रजनी एषा अघोररूपा अघोरसत्त्वनिषेविता/ प्रतियात व्रजम् न इह स्थेयं स्त्रीभि:सुमध्यमा:।* श्रील विश्वनाथ की टीका के माध्यम से कृष्ण इसका अर्थ इस प्रकार बतलाते हैं—

''सर्वव्याप्त चाँदनी ने इस रात को तनिक भी भयानक नहीं रहने दिया इसलिए यह जंगल हानिरहित प्राणियों, यथा हिरनों (*अघोरसत्त्वै*) से बसा हुआ है या फिर बाघ जैसे पशुओं से जो वृन्दावन के अहिंसक वातावरण के कारण हानिरहित हो चुके हैं। अत: तुम्हें इस रात से भयभीत नहीं होना चाहिए।'' या फिर कृष्ण का आशय यह हो सकता था, ''तुम लोगों को अपने पतियों तथा परिवार वालों से भयभीत नहीं होना चाहिए क्योंकि रात में भयानक पशुओं के होने से वे इस स्थान

तक नहीं आ सकेंगे। अतः तुम लोग व्रज वापस न जाओ (*न प्रतियाय*) अपितु मेरे संग यहाँ रुको (*इह स्थेयम्*)।''

''गोपियाँ कृष्ण से पूछ सकती हैं, ''तो फिर तुम कैसे रुके हुए हो?''

''भगवान् उत्तर देते हैं, ''स्त्रियों के साथ।''

''तो क्या तुम किसी भी स्त्री को अपने साथ रखकर संतुष्ट हो?''

''भगवान् इसका उत्तर *सुमध्यमा* शब्द से देते हैं जिसका अर्थ है, ''केवल ऐसी स्त्रियाँ जो तरुणी तथा सुन्दर हैं, जिनकी कटि पतली हैं—अर्थात् जैसी तुम हो, मेरे साथ रुक सकती हैं, अन्य नहीं।'' इस तरह हम देखते हैं कि कृष्ण के वचन भावपूर्ण होने के साथ ही उपेक्षापूर्ण भावों से युक्त हैं।''

कृष्ण के वचन निश्चित रूप से विचारोत्तेजक हैं क्योंकि संस्कृत व्याकरण के अनुसार उन्हें दो विपरीत प्रकारों में से किसी एक से समझा जा सकता है। ऊपर अनूदित अर्थ द्वारा कृष्ण गोपियों को यह कहकर तंग करते हैं कि रात भयानक तथा अशुभ है, अतः उन्हें वापस चले जाना चाहिए। किन्तु उसी के साथ वे सर्वथा विपरीत कथन भी करते हैं कि भगवान् के पास गोपियों को आने से तनिक भी डरना नहीं चाहिए, रात अत्यन्त शुभ है और तरुणियों को किसी भी दशा में लौटना नहीं चाहिए। इस तरह भगवान् कृष्ण अपने वचनों से गोपियों को तंग करने के साथ साथ मोहते भी हैं।

मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ।
विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृढ्वं बन्धुसाध्वसम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

मातरः—माता; पितरः—पिता; पुत्राः—पुत्र; भ्रातरः—भाई; पतयः—पति; च—तथा; वः—तुम्हारे; विन्चिन्वन्ति—खोज रहे हैं; हि—निश्चय ही; अपश्यन्तः—न देखकर; मा कृढ्वम्—मत उत्पन्न करो; बन्धु—अपने परिवार वालों के लिए; साध्वसम्—चिन्ता।

तुम्हारी माताएँ, पिता, पुत्र, भाई तथा पति तुम्हें घर पर न पाकर निश्चित रूप से तुम्हें ढूँढ़ रहे होंगे। अपने परिवार वालों के लिए चिन्ता मत उत्पन्न करो।

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम् ।
यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥
तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन्सतीः ।
क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान्पाययत दुह्यत ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

दृष्टम्—देख लिया; वनम्—जंगल; कुसुमितम्—पुष्पित; राका-ईश—पूर्णमासी के अधिष्ठाता देव, चन्द्रमा के; कर—हाथ से; रञ्जितम्—रँगा गया; यमुना—यमुना नदी से निकलते हुए; अनिल—वायु से; लीला—खेल-खेल में; एजत्—हिलते-डुलते; तरु—वृक्षों की; पल्लव—पत्तियों से; शोभितम्—शोभायमान; तत्—अतः; यात—वापस चली जाओ; मा चिरम्—देर लगाये बिना; गोष्ठम्—गाँव को; शुश्रूषध्वम्—जाकर सेवा करो; पतीन्—अपने पतियों की; सतीः—हे सतियो; क्रन्दन्ति—रो रहे हैं; वत्साः—बछड़े; बालाः—बच्चे; च—तथा; तान्—उनको; पाययत—अपना दूध पिलाओ; दुह्यत—गाय का दूध पिलाओ।

अब तुम लोगों ने फूलों से भरे तथा पूर्ण चन्द्रमा की चाँदनी से सुशोभित इस वृन्दावन जंगल को देख लिया। तुम लोगों ने यमुना से आने वाली मन्द मन्द वायु से हिलते पत्तों वाले वृक्षों का सौन्दर्य देख लिया। अतः अब अपने गाँव वापस चली जाओ। देर मत करो। हे सती स्त्रियो, जाकर अपने पतियों की सेवा करो और क्रन्दन करते बच्चों तथा बछड़ों को दूध दो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने श्लोक २२ की व्याख्या इस प्रकार की है—

भगवान् कृष्ण कहते हैं, ''अब देर तक मत प्रतीक्षा करो अपितु तुरन्त चली जाओ।'' *सतीः* शब्द का अर्थ है कि गोपियाँ पतिव्रता हैं। इसीलिए कृष्ण इंगित करते हैं कि गोपियों को जाकर अपने पतियों की सेवा करनी चाहिए जिससे वे अपने धार्मिक कृत्य पूरे कर सकें। गोपियों को भी पूज्य मानना चाहिए क्योंकि वे सती हैं। कृष्ण यह सब उन गोपियों से कह रहे हैं, जो विवाहिता हैं। अब वे अविवाहिताओं से कहते हैं, ''बछड़े रँभा रहे हैं अतः जाकर देखो कि उन्हें दूध मिल जाय।'' मुनिचारी गोपियों से कहते हैं, ''तुम लोगों के बच्चे रो रहे हैं अतः जाकर उन्हें दूध पिलाओ।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इन दोनों श्लोकों का गूढ़ार्थ भी इस प्रकार दिया है, ''श्लोक २१ में कृष्ण ने कहा होगा, ''यह वृन्दावन सर्वोत्कृष्ट स्थान है और आज पूर्णिमा की रात है। यही नहीं, हमारे चारों ओर यमुना नदी है और शीतल मन्द तथा सुगन्ध हवा बह रही है। ये सब दिव्य ऐश्वर्य हैं जिनसे प्रेमालाप मुखरित होता है और चूँकि सर्वोपरि आनन्द ऐश्वर्य प्रेम रूप मैं यहाँ पहले से हूँ तो आओ देखें कि तुम लोग रसास्वादन में कितनी पटु हो।''

२२ वें श्लोक में उनका मन्तव्य है, ''अतः दीर्घकाल तक, इस पूरी रात-भर तुम यहाँ से मत जाओ अपितु यहीं रहो और मेरे साथ भोग-विलास करो। अपने पतियों एवं अपनी सीधी-सादी सासुओं आदि की सेवा के लिए मत जाओ। तुम लोगों के लिए ऐसा सौन्दर्य और यौवन गँवाना उपयुक्त नहीं होगा क्योंकि ये तो स्रष्टा के उपहार हैं। न ही तुम लोगों को अब गाय दुहना है, न ही बछड़ों तथा बच्चों को दूध पिलाना है। मेरे लिए आनंददायक आकर्षण से ओतप्रोत तुम सबों को इन

कार्यों से क्या प्रयोजन?''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यह भी बतलाते हैं कि गोपियाँ यह तय नहीं कर सकीं कि कृष्ण कर क्या रहे हैं—क्या वे ठठोली कर रहे हैं, या उन्हें रुकने का आमंत्रण दे रहे हैं या फिर उन्हें घर लौट जाने का आदेश दे रहे हैं। अत: ज्योंही श्रीकृष्ण जंगल की शोभा का वर्णन करने लगे तो गोपियों को चिन्ता हुई और वे मोहग्रस्त होकर वृक्षों की ओर ऊपर देखने लगीं और जब वे यमुना का वर्णन करने लगे तो वे अपने आसपास नदी को देखने लगीं। उनकी नितान्त शुद्धता तथा सरलता के साथ ही माधुर्य रस में कृष्ण के प्रति परम भक्ति के कारण अति सुन्दर लीलाओं को जन्म मिला जो इस ब्रह्माण्ड में कभी नहीं हुई थीं।

अथ वा मदभिस्नेहाद्भवत्यो यन्त्रिताशया: ।
आगता ह्युपपन्नं व: प्रीयन्ते मयि जन्तव: ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

अथ वा—या कि; मत्-अभिस्नेहात्—मेरे लिए प्रेम के कारण; भवत्य:—तुम्हारे; यन्त्रित—अधीन हुआ; अशया:—हृदय; आगता:—आई हुई; हि—निस्सन्देह; उपपन्नम्—उपयुक्त; व:—तुम लोगों के लिए; प्रीयन्ते—स्नेह करते हैं; मयि—मुझसे; जन्तव:—समस्त जीव।

अथवा तुम लोग कदाचित् मेरे प्रति अगाध प्रेम के कारण यहाँ आई हो क्योंकि इस प्रेम ने तुम्हारे हृदयों को जीत लिया है। यह सचमुच ही सराहनीय है क्योंकि सारे जीव मुझसे सहज भाव से स्नेह करते हैं।

भर्तु: शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ।
तद्बन्धूनां च कल्याण: प्रजानां चानुपोषणम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

भर्तु:—पति की; शुश्रूषणम्—निष्ठापूर्ण सेवा; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के लिए; पर:—परम; धर्म:—कर्तव्य; हि—निस्सन्देह; अमायया—बिना द्वैत के; तत्-बन्धूनाम्—अपने पतियों के सम्बन्धियों के प्रति; च—तथा; कल्याण:—शुभ कृत्य; प्रजानाम्—सन्तानों की; च—तथा; अनुपोषणम्—देखरेख, पालनपोषण।

स्त्री का परम धर्म है कि वह निष्ठापूर्वक अपने पति की सेवा करे, अपने पति के परिवार के प्रति अच्छा व्यवहार करे तथा अपने बच्चों की ठीक देखरेख करे।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी यहाँ पर विशेष रूप से इंगित करते हैं कि गोपियों के असली शाश्वत पति तो श्रीकृष्ण हैं, घर में रहने वाले तथाकथित पति नहीं जो झूठे ही गोपियों को अपनी सम्पत्ति

मानते थे। इस प्रकार *अमायया* शब्द ''बिना माया के'' यह प्रकट करता है कि गोपियों का परम धर्म तो अपने असली प्रेमी श्रीकृष्ण की सेवा करना है।

दु:शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥ २५॥

शब्दार्थ

दु:शीलः—भ्रष्ट चरित्र वाला; दुर्भगः—अभागा; वृद्धः—बूढ़ा; जडः—मन्द; रोगी—बीमार; अधनः—गरीब; अपि वा—तो भी; पतिः—पति; स्त्रीभिः—स्त्रियों द्वारा; न हातव्यः—परित्याग नहीं करना चाहिए; लोक—अगले जीवन में उत्तम स्थान; ईप्सुभिः—चाहने वाली; अपातकी—(यदि) पतित न हो।

जो स्त्रियाँ अगले जीवन में उत्तम लोक प्राप्त करना चाहती हैं उन्हें चाहिए कि उस पति का कभी परित्याग न करें जो अपने धार्मिक स्तर से नीचे न गिरा हो चाहे वह दुश्चरित्र, अभागा, वृद्ध, अज्ञानी, बीमार या निर्धन क्यों न हो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *स्मृति शास्त्र* से इससे मिलता-जुलता कथन उद्धृत किया है—*पतिं त्वपतितं भजेत्*—जो पतित नहीं है ऐसे स्वामी (पति) की सेवा करनी चाहिए। कभी कभी यह बेहूदा तर्क दिया जाता है कि यदि पति आध्यात्मिक सिद्धान्तों से नीचे गिर जाता है, तो भी उसकी पत्नी को उसका अनुगमन करना चाहिए क्योंकि वह उसका ''गुरु'' होता है। चूँकि कृष्णभावनामृत अन्य किसी धार्मिक सिद्धान्त की अधीनता स्वीकार नहीं कर सकता अत: जो गुरु अपने अनुयायी को भौतिकतावादी पापपूर्ण कार्यों में लगाता है, वह अपना गुरु-पद खो देता है। श्रील प्रभुपाद कहा करते थे कि यूरोप में प्रभुसत्ता का अन्त इसीलिए हो गया क्योंकि राजन्य वर्ग अपने पद का दुरुपयोग करते थे। इसी तरह पाश्चात्य जगत में पुरुषों ने स्त्रियों का शोषण और दुरुपयोग किया है और अब लोकप्रिय आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, जिसमें स्त्रियाँ अपने पतियों की सत्ता का बहिष्कार कर रही हैं। आदर्शत: पुरुषों का आध्यात्मिक जीवन कट्टर होना चाहिए और उन्हें अपनी देख-रेख में रहने वाली स्त्रियों को शुद्ध, निष्ठापूर्ण मार्गदर्शन कराना चाहिए।

सर्वोच्च आध्यात्मिक पद को प्राप्त गोपियाँ समस्त नकारात्मक तथा निषेधात्मक धार्मिक सोच-विचारों से परे थीं। दूसरे शब्दों में, वे परम सत्य की नित्य प्रेमिकाएँ थीं।

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ।

जुगुप्सितं च सर्वत्र ह्यौपपत्यं कुलस्त्रियः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अस्वर्ग्यम्—स्वर्ग को न ले जाने वाला; अयशस्यम्—अच्छी ख्याति के लिए अनुपयुक्त; च—तथा; फल्गु—नगण्य; कृच्छ्रम्—कठिन; भय-आवहम्—भय उत्पन्न करने वाला; जुगुप्सितम्—निन्दनीय; च—तथा; सर्वत्र—सभी तरह से; हि—निस्सन्देह; औपपत्यम्—परपति के साथ सम्बन्ध, व्यभिचार; कुल-स्त्रियः—अच्छे कुल की अर्थात् कुलीन स्त्री के लिए।

कुलीन स्त्री के लिए क्षुद्र व्यभिचार सदा ही निन्दनीय हैं, इनसे स्वर्ग जाने में बाधा पहुँचती है, उसकी ख्याति नष्ट होती है और ये उसके लिए कठिनाई तथा भय उत्पन्न करनेवाले होते हैं।

श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।
न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ २७॥

शब्दार्थ

श्रवणात्—(मेरे यश का) श्रवण करने से; दर्शनात्—(मन्दिर में मेरे अर्चाविग्रह का) दर्शन करने से; ध्यानात्—ध्यान करने से; मयि—मुझमें, मेरे लिए; भावः—प्रेम; अनुकीर्तनात्—बाद में कीर्तन करने से; न—नहीं; तथा—उसी प्रकार से; सन्निकर्षेण—शारीरिक सामीप्य से; प्रतियात—लौट जाओ; ततः—अतः; गृहान्—अपने अपने घरों को।

मेरे विषय में सुनने, मेरे अर्चाविग्रह रूप का दर्शन करने, मेरा ध्यान करने तथा मेरी महिमा का श्रद्धापूर्वक कीर्तन करने की भक्तिमयी विधियों से मेरे प्रति दिव्य प्रेम उत्पन्न होता है। केवल शारीरिक सान्निध्य से वैसा ही फल प्राप्त नहीं होता। अतः तुम लोग अपने घरों को लौट जाओ।

तात्पर्य : श्रीकृष्ण निश्चय ही प्रबल तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं।

श्रीशुक उवाच
इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविन्दभाषितम् ।
विषण्णा भग्नसङ्कल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; विप्रियम्—अरुचिकर, अप्रिय; आकर्ण्य—सुनकर; गोप्यः—गोपियों ने; गोविन्द-भाषितम्—गोविन्द के वचन; विषण्णाः—अत्यन्त खिन्न; भग्न—उदास; सङ्कल्पाः—प्रबल इच्छाएँ; चिन्ताम्—चिन्ता; आपुः—अनुभव किया; दुरत्ययाम्—दुर्लंघ्य।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : गोविन्द के इन अप्रिय वचनों को सुनकर गोपियाँ खिन्न हो उठीं। उनकी बड़ी बड़ी आशाएँ ध्वस्त हो गईं और उन्हें दुर्लंघ्य चिन्ता होने लगी।

तात्पर्य : गोपियों की समझ में नहीं आ रहा था कि वे करें तो क्या करें। वे कृष्ण के चरणों पर गिरकर उनकी कृपा की भीख माँगने के लिए फूट-फूटकर रोना चाहती थीं या फिर दूर रहकर अपने घरों को चली जाना चाहती थीं। किन्तु वे इन दोनों में से एक भी नहीं कर पाईं अत: उन्हें अत्यधिक चिन्ता होने लगी।

कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्-
बिम्बाधराणि चरणेन भुवः लिखन्त्यः ।
अस्त्रैरुपात्तमसिभिः कुचकुङ्कुमानि
तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

कृत्वा—करके; मुखानि—अपने मुखों को; अव—नीचे; शुचः—शोक से; श्वसनेन—आहें भरती; शुष्यत्—सूखते हुए; बिम्ब—लाल बिम्ब फल रूपी; अधराणि—होठों को; चरणेन—अपने पैरों के अँगूठों से; भुवः—पृथ्वी को; लिखन्त्यः—कुरेदते हुए; अस्त्रैः—आँसुओं से; उपात्त—बहाती हुई; मसिभिः—आँखों के कज्जल से; कुच—स्तनों पर; कुङ्कुमानि—सिन्दूर; तस्थुः—निश्चल खड़ी रहीं; मृजन्त्यः—धोते हुए; उरु—अत्यधिक; दुःख—दुख के; भराः—भार का अनुभव करती हुई; स्म—निस्सन्देह; तूष्णीम्—चुपचाप।

गोपियाँ अपना सिर झुकाये तथा शोकपूर्ण गहरे श्वास से लाल लाल होंठों को सुखाते हुए अपने पैर के अँगूठे से धरती कुरेदने लगीं। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे जिन्होंने अपने साथ उनके कज्जल को बहाते हुए उनके स्तनों पर लेपित सिन्दूर को धो डाला। इस तरह गोपियाँ अपने दुख के भार को चुपचाप सहन करती हुई खड़ी रहीं।

तात्पर्य : गोपियों को लगा कि "यदि कृष्ण हमारे शुद्ध प्रेम से वश में नहीं आये तो हमारा प्रेम शुद्ध नहीं है। और यदि हम कृष्ण से ठीक से प्रेम नहीं कर पातीं तो हमारे जीवन से क्या लाभ?" उनके लाल लाल होंठ इसलिए सूख रहे थे क्योंकि उनके दुख से निकलने वाली साँस गर्म थी। जब सूर्य की धूप पके हुए लाल बिम्ब फलों को सुखा देती है, तो उनमें गहरे धब्बे पड़ जाते हैं और वे नरम पड़ जाते हैं। गोपियों के सुन्दर होठों में भी उसी तरह नरम परिवर्तन आ गया। वे कृष्ण के समक्ष चुपचाप खड़ी रहीं; वे बोलने में असमर्थ थीं।

प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं
कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ।
नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किञ्चित्-
संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

प्रेष्ठम्—अपने प्रेमी; प्रिय-इतरम्—प्रिया, प्रेमी का उल्टा; इव—मानो; प्रतिभाषमाणम्—उन्हें सम्बोधित करते हुए; कृष्णम्—कृष्ण को; तत्-अर्थ—उसके लिए; विनिवर्तित—विलग रहकर; सर्व—सभी; कामाः—भौतिक इच्छाएँ; नेत्रे—अपनी आँखों को; विमृज्य—पोंछकर; रुदित—अपना रोना; उपहते—बन्द करके; स्म—तब; किञ्चित्—कुछ; संरम्भ—क्षोभ सहित; गद्गद—अवरुद्ध; गिरः—वाणी; अब्रुवत—बोलीं; अनुरक्ताः—दृढ़ता से लिप्त।

यद्यपि कृष्ण उनके प्रेमी थे और उन्हीं के लिए उन सबों ने अपनी सारी इच्छाएँ त्याग दी थीं

किन्तु वे ही उनसे प्रतिकूल होकर बोल रहे थे। तो भी वे उनके प्रति उसी तरह अनुरक्त बनी रहीं। अपना रोना बन्द करके उन्होंने अपनी आँखें पोंछीं और क्षोभ से युक्त अवरुद्ध वाणी से वे कहने लगीं।

तात्पर्य : अब गोपियाँ कृष्ण को उत्तर देने लगी। उनके प्रति अगाध प्रेम से उत्पन्न क्रोध के कारण उनकी वाणी अवरुद्ध थी और वे उन्हें त्यागने के लिए राजी नहीं थीं। वे नहीं चाहती थीं कि कृष्ण उनका परित्याग करें।

श्रीगोप्य ऊचुः
मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-गोप्यः ऊचुः—सुन्दरी गोपियों ने कहा; मा—नहीं; एवम्—इस तरह; विभो—हे सर्वशक्तिमान; अर्हति—चाहिए; भवान्—आपको; गदितुम्—बोलना; नृ-शंसम्—क्रूरतापूर्वक; सन्त्यज्य—पूर्णतया परित्याग करके; सर्व—समस्त; विषयान्—विविध प्रकार की इन्द्रिय तृप्ति; तव—आपके; पाद-मूलम्—चरणों को; भक्ताः—पूजने वाली; भजस्व—कृपया बदले में प्रेम करें; दुरवग्रह—अरे हठीले; मा त्यज—मत त्यागें; अस्मान्—हमको; देवाः—भगवान्; यथा—जिस तरह; आदि-पुरुषः—आदि भगवान्, नारायण; भजते—प्रेम करते हैं; मुमुक्षून्—मुक्ति चाहने वालों को।

सुन्दर गोपिकाओं ने कहा : हे सर्वशक्तिमान, आपको इस निर्दयता से नहीं बोलना चाहिए। आप हमें ठुकरायें नहीं। हमने आपके चरणकमलों की भक्ति करने के लिए सारे भौतिक भोगों का परित्याग कर दिया है। अरे हठीले, आप हमसे उसी तरह प्रेम करें जिस तरह श्रीनारायण अपने उन भक्तों से प्रेम करते हैं, जो मुक्ति के लिए प्रयास करते हैं।

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; पति—पतियों की; अपत्य—सन्तानों; सुहृदाम्—तथा शुभचिन्तक सम्बन्धियों और मित्रों की; अनुवृत्तिः—अनुगमन; अङ्ग—हे कृष्ण; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; स्व-धर्मः—उचित धार्मिक कर्तव्य; इति—इस प्रकार; धर्म-विदा—धर्म को जानने वाले; त्वया—तुम्हारे द्वारा; उक्तम्—कहा गया; अस्तु—होए; एवम्—वैसा ही; एतत्—यह; उपदेश—इस उपदेश के; पदे—असली लक्ष्य; त्वयि—तुममें; ईशे—हे ईश्वर; प्रेष्ठः—अत्यन्त प्रिय; भवान्—आप; तनु-भृताम्—समस्त देहधारी जीवों के लिए; किल—निश्चय ही; बन्धुः—निकट सम्बन्धी; आत्मा—साक्षात् आत्मा।

हे प्रिय कृष्ण, एक धर्मज्ञ की तरह आपने हमें उपदेश दिया है कि स्त्रियों का उचित धर्म है कि वे अपने पतियों, बच्चों तथा अन्य सम्बन्धियों की निष्ठापूर्वक सेवा करें। हम मानती हैं कि यह सिद्धान्त वैध है किन्तु वास्तव में यह सेवा तो आपकी की जानी चाहिए। हे प्रभु, आप ही तो समस्त देहधारियों के सर्वप्रिय मित्र हैं। असल में आप उनके घनिष्टतम सम्बन्धी तथा उनकी आत्मा हैं।

तात्पर्य : श्रीकृष्ण समस्त जीवों की आत्मा, उनके सर्वप्रिय मित्र तथा शुभचिन्तक हैं। *भागवत* (११.५.४१) में कहा गया है—

देवर्षिभूताप्तनृणां पित्नणां

न किङ्करो नायमृणी च राजन्।

सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं

गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥

"हे राजन्! जिसने सारे भौतिक कर्तव्यों को त्याग दिया हो तथा सबों को शरण देने वाले मुकुन्द के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली हो, वह देवताओं, महान् ऋषियों, साधारण जीवों, सम्बन्धियों, मित्रों, मानवमात्र या अपने मृत पूर्वजों का ऋणी नहीं रह जाता। चूँकि ये सारे जीव भगवान् के अंश होते हैं अतः जो व्यक्ति भगवान् की शरण में आ जाता है उसे ऐसे व्यक्तियों की अलग से सेवा नहीं करनी पड़ती।" समस्त जगत के स्वामी भगवान् से ही सत्ता नीचे-नीचे को आती है। पति, माता, सरकारी नेता तथा साधु-सन्त जैसे अधिकारीगण भगवान् से ही अपनी शक्ति तथा सत्ता प्राप्त करते हैं अतः जो लोग उनका अनुगमन करते हैं उनके लिए उन्हें परम सत्य का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति प्राणपण से आदि परम सत्य की प्रेमाभक्ति करता है, तो उसे उपर्युक्त गौण अधिकारियों के माध्यम से परम सत्य की अप्रत्यक्ष रीति से सेवा करने की आवश्यकता नहीं रहती।

किन्तु ईश्वर की शरण में आया जीव भी आध्यात्मिक गुरु की सेवा करता रहता है क्योंकि गुरु भगवान् का अप्रत्यक्ष नहीं अपितु प्रत्यक्ष प्रतिनिधि होता है। प्रामाणिक आचार्य या गुरु वह पारदर्शी माध्यम है, जो शिष्य को कृष्ण के चरणकमलों तक ले जाता है। जब कोई व्यक्ति परम सत्य के प्रत्यक्ष सान्निध्य में रहता है, तो सारे अप्रत्यक्ष अधिकारी निरर्थक हो जाते हैं। गोपियाँ यह मुख्य बात कृष्ण को

जताना चाहती थीं और उनमें से कुछ साहसी युवतियाँ श्रीकृष्ण को उनके ही कथनों द्वारा पराजित करना चाहती थीं जैसाकि इस श्लोक में है।

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्
नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या
आशां धृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

कुर्वन्ति—दिखलाते हैं; हि—निस्सन्देह; त्वयि—तुम्हारे लिए; रतिम्—आकर्षण; कुशलाः—पटु व्यक्ति; स्वे—अपने हेतु; आत्मन्—आत्मा; नित्य—शाश्वत; प्रिये—प्रिय; पति—अपने पतियों समेत; सुत—पुत्र; आदिभिः—तथा अन्य सम्बन्धियों समेत; आर्ति-दैः—कष्ट पहुँचाने वाले; किम्—क्या; तत्—अतएव; नः—हम पर; प्रसीद—कृपालु हों; परम-ईश्वर—हे परम नियन्ता; मा स्म छिन्द्याः—कृपा करके छिन्न-भिन्न नहीं करें; आशाम्—हमारी आशाओं को; धृताम्—धारण की गई; त्वयि—तुम्हारे लिए; चिरात्—दीर्घकाल से; अरविन्द-नेत्र—हे कमलनयन।

सुविज्ञ अध्यात्मवादीजन सदैव आपसे स्नेह करते हैं क्योंकि वे आपको अपनी असली आत्मा तथा शाश्वत प्रेमी मानते हैं। हमें अपने इन पतियों, बच्चों तथा सम्बन्धियों से क्या लाभ मिलता है, जो हमें केवल कष्ट देने वाले हैं? अतएव हे परम नियन्ता, हम पर कृपा करें। हे कमलनेत्र, आप अपना सान्निध्य चाहने की हमारी चिर-पोषित अभिलाषा आशा को छिन्न मत करें।

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥ ३४॥

शब्दार्थ

चित्तम्—हमारे मन; सुखेन—आसानी से; भवता—आपके द्वारा; अपहृतम्—चुराये गये; गृहेषु—घर के कामकाज में; यत्—जो; निर्विशति—लीन रहते थे; उत—और भी; करौ—हमारे हाथ; अपि—भी; गृह्य-कृत्ये—घर के काम में; पादौ—हमारे पैर; पदम्—एक पग; न चलतः—नहीं बढ़ रहे; तव—तुम्हारे; पाद-मूलात्—चरणों से दूर; यामः—हम जायेंगी; कथम्—कैसे; व्रजम्—व्रज को वापस; अथ उ—तथा फिर; करवाम—हम करेंगी; किम्—क्या; वा—आगे।

आज तक हमारे मन गृहकार्यों में लीन थे किन्तु आपने सरलतापूर्वक हमारे मन तथा हमारे हाथों को हमारे गृहकार्य से चुरा लिया है। अब हमारे पाँव आपके चरणकमलों से एक पग भी दूर नहीं हटेंगे। हम व्रज वापस कैसे जा सकती हैं? हम वहाँ जाकर क्या करेंगी?

तात्पर्य : श्रीकृष्ण ने अपनी बाँसुरी बजाई तो उसके छिद्रों से निकले हुए मादक संगीत ने युवती

गोपियों के मनों को चुरा लिया था। अब वे कृष्ण के पास अपनी चोरी की गई सम्पत्ति को वापस लेने आई थीं। किन्तु उन्हें अपने मन तभी मिल सकते थे जब श्रीकृष्ण उन्हें अपनाकर उनके साथ युगल क्रीड़ा करते।

श्रीकृष्ण ने शायद उत्तर दिया हो, ''किन्तु हे गोपियो! अभी तो तुम लोग घर जाओ। मुझे एक-दो दिन तक स्थिति पर विचार करने दो; तब मैं तुम्हें तुम्हारे मन लौटा दूँगा।'' इस सम्भाव्य तर्क के उत्तर में गोपियाँ कहती हैं, ''हमारे पाँव एक पग भी चलने से इनकार कर रहे हैं। अत: हमें हमारे मन वापस कर दीजिये और हमें स्वीकार कीजिये, तभी हम जायेंगी।''

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण
हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।
नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन याम पदयो: पदवीं सखे ते ॥ ३५॥

शब्दार्थ

सिञ्च—कृपा करके उलेड़िये; अङ्ग—हे प्रिय कृष्ण; न:—हमारे; त्वत्—तुम्हारे; अधर—होंठों के; अमृत—अमृत की; पूरकेण—बाढ़ से; हास—हँसी युक्त; अवलोक—तुम्हारी चितवन से; कल—सुरीला; गीत—तथा (तुम्हारी वंशी के) गीत से; ज—उत्पन्न; हृत्-शय—हमारे हृदयों में स्थित; अग्निम्—अग्नि; न उ चेत्—यदि नहीं; वयम्—हम सभी; विरह—वियोग से; ज—उत्पन्न; अग्नि—अग्नि में; उपयुक्त—रखते हुए; देहा:—अपने शरीर; ध्यानेन—ध्यान के द्वारा; याम—जायेंगी; पदयो:—चरणों के; पदवीम्—स्थान तक; सखे—हे मित्र; ते—तुम्हारे।

हे कृष्ण, हमारे हृदयों के भीतर की अग्नि, जिसे आपने अपनी हँसी से युक्त चितवन के द्वारा तथा अपनी वंशी के मधुर संगीत से प्रज्ज्वलित किया है उस पर कृपा करके अपने होठों का अमृत डालिए। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो हे सखा, हम आपके वियोग की अग्नि में अपने शरीरों को भस्म कर देंगी और इस प्रकार योगियों की तरह ध्यान द्वारा आपके चरणकमलों के धाम को प्राप्त करेंगी।

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया
दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।
अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमञ्ज:
स्थातुंस्त्वयाभिरमिता बत पारयाम: ॥ ३६॥

शब्दार्थ

यर्हि—जब; अम्बुज—कमल सदृश; अक्ष—आँखों वाले; तव—तुम्हारे; पाद—पैरों के; तलम्—नीचे; रमाया:—श्रीमती लक्ष्मीदेवी के लिए; दत्त—प्रदान करते हुए; क्षणम्—उत्सव; क्वचित्—कभी कभी; अरण्य—जंगल में रहने वाले; जन—

लोगों के; प्रियस्य—प्रिय का; अस्प्राक्ष्म—हम छू लेंगी; तत्-प्रभृति—उसी क्षण से आगे; न—कभी नहीं; अन्य—किसी दूसरे व्यक्ति के; समक्षम्—सामने; अञ्जः—प्रत्यक्षतः; स्थातुम्—खड़े रहने के लिए; त्वया—तुम्हारे द्वारा; अभिरमिताः—हर्ष से पूरित; बत—निश्चय ही; पारयामः—समर्थ होंगी।

हे कमलनेत्र, जब भी लक्ष्मीजी आपके चरणकमलों के तलुवों का स्पर्श करती हैं, तो वे इसे उल्लास का अवसर मानती हैं। आप वन-वासियों को अत्यन्त प्रिय हैं अतएव हम भी आपके उन चरणकमलों का स्पर्श करेंगी। उसके बाद हम किसी भी व्यक्ति के समक्ष खड़ी तक नहीं होंगी क्योंकि तब हम आपके द्वारा पूरी तरह तुष्ट हो चुकी होंगी।

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या
लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ।
यस्याः स्ववीक्षण उतान्यसुरप्रयासस्
तद्वद्वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

श्रीः—भगवान् नारायण की पत्नी, लक्ष्मीजी; यत्—जिस तरह; पद-अम्बुज—चरणकमलों की; रजः—धूल; चकमे—वांछित; तुलस्या—तुलसीदेवी के साथ; लब्ध्वा—प्राप्त करने के बाद; अपि—भी; वक्षसि—उनके वक्षस्थल पर; पदम्—अपना स्थान; किल—निस्सन्देह; भृत्य—नौकरों के द्वारा; जुष्टम्—सेवित; यस्याः—जिसके (लक्ष्मी के); स्व—अपने; वीक्षणे—चितवन के लिए; उत—दूसरी ओर; अन्य—दूसरे; सुर—देवताओं का; प्रयासः—प्रयत्न; तद्वत्—उसी तरह से; वयम्—हम; च—भी; तव—तुम्हारे; पाद—चरण की; रजः—धूल; प्रपन्नाः—शरण के लिए आई हुई हैं।

जिन लक्ष्मीजी की कृपा-कटाक्ष के लिए देवतागण महान् प्रयास करते रहते हैं उन्हें भगवान् नारायण के वक्षस्थल पर सदैव विराजमान रहने का अनुपम स्थान प्राप्त है। फिर भी वे उनके चरणकमलों की धूल पाने के लिए इच्छुक रहती हैं, यद्यपि उन्हें इस धूल में तुलसीदेवी तथा भगवान् के अन्य बहुत से सेवकों को भी हिस्सा देना पड़ता है। इसी तरह हम भी शरण लेने के लिए आपके चरणकमलों की धूलि लेने आई हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर गोपियाँ इंगित करती हैं कि भगवान् के चरणों की धूल इतनी जीवनदायिनी तथा प्रेमपूर्ण है कि लक्ष्मीजी भगवान् के वक्षस्थल पर प्राप्त अपने अनुपम स्थान को त्यागकर उनके चरणों में स्थान प्राप्त करने के लिए अन्य अनेक भक्तों के साथ सम्मिलित होना चाहती हैं। इस तरह गोपियाँ कृष्ण से अनुरोध करती हैं कि वे दोहरा मानदण्ड अपनाने के लिए अपने को दोषी न मानें। चूँकि भगवान् ने लक्ष्मी को अपने वक्षस्थल में स्थान देते हुए भी उन्हें अपने चरणकमलों की धूल लेने दी अतः कृष्ण को चाहिए कि वे अपनी सर्वाधिक प्रिय गोपियों को वही अवसर प्रदान करें। गोपियों ने याचना की, "आखिर, आपके चरणकमलों की धूल लेना पूर्णतया वैध है और आपको चाहिए कि

आप हमारे इस प्रयास को प्रोत्साहित करें और हमें दूर भेजने का प्रयास न करें।''

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽन्घ्रिमूलं
प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।
त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकाम-
तप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतः; नः—हम पर; प्रसीद—अपना अनुग्रह प्रदर्शित करें; वृजिन—सारे कष्टों को; अर्दन—विनष्ट करने वाले; ते—तुम्हारे; अङ्घ्रि-मूलम्—पाँवों को; प्राप्ताः—आई हुई हैं; विसृज्य—त्यागकर; वसतीः—अपने घरों को; त्वत्-उपासना—आपकी पूजा की; आशाः—आशा से; त्वत्—आपके; सुन्दर—सुन्दर; स्मित—हास; निरीक्षण—चितवन के कारण; तीव्र—अत्यधिक, उत्कट; काम—कामेच्छा से; तप्त—जली हुई; आत्मनाम्—जिनके हृदय; पुरुष—सारे मनुष्यों के; भूषण—आभूषण; देहि—प्रदान करें; दास्यम्—दासता।

अतः हे सभी संतापों का हरण करने वाले, हम पर कृपा करें। आपके चरणकमलों तक पहुँचने के लिए हमने अपने परिवारों तथा घरों को छोड़ा है और हमें आपकी सेवा करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहिए। हमारे हृदय आपकी सुन्दर हासमयी चितवन से उत्पन्न तीव्र इच्छाओं के कारण जल रहे हैं। हे पुरुष-रत्न, हमें अपनी दासियाँ बना लें।

तात्पर्य : जब श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए थे तो गर्ग मुनि ने भविष्यवाणी की थी कि उनमें भगवान् नारायण के सारे ऐश्वर्य प्रकट होंगे। अब गोपियाँ भगवान् से याचना करती हैं कि वे उनपर कृपालु बनकर तथा उन्हें सेवा करने का अवसर देकर उस भविष्यवाणी को पूरा करें जिस तरह कि भगवान् नारायण सदैव अपने प्रिय भक्तों को प्रत्यक्ष सेवा का अवसर प्रदान करते हैं। गोपियाँ बलपूर्वक कहती हैं कि उन्होंने अपने परिवारों तथा घरों को कृष्ण से कोई उच्चतर आनन्द प्राप्त करने के लिए नहीं छोड़ा है। वे तो अपनी शुद्ध भक्ति को प्रकट करके उनसे केवल सेवा करने की भिक्षा माँग रही हैं। गोपियाँ सोचती हैं, ''यदि आपके सुख की कामना करते हुए आपके मुख को निहारकर हम किसी तरह सुखी बन सकें तो इसमें क्या हानि है?''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *पुरुषभूषण* शब्दों की टीका, ''हे पुरुषों में रत्न'' के रूप में की है। आपका कहना है कि गोपियों के कहने का आशय था कि, ''हे समस्त पुरुषों के रत्न! आप अपने अंगों की नील मणियों से हमारे सुनहले शरीरों को अलंकृत करें।''

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्दलश्री-
गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ।
दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य
वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

वीक्ष्य—देखकर; अलक—आपके बालों से; आवृत—ढके; मुखम्—मुख को; तव—तुम्हारे; कुण्डल—कुण्डलों की; श्री—सुन्दरता से; गण्ड-स्थल—गाल; अधर—होठों के; सुधम्—तथा अमृत; हसित—मन्द हँसी समेत; अवलोकम्—चितवन; दत्त—प्रदान करते हुए; अभयम्—अभय; च—तथा; भुज-दण्ड—आपकी शक्तिशाली बाँहें; युगम्—दो; विलोक्य—देखकर; वक्षः—आपका वक्षस्थल; श्री—लक्ष्मी का; एक—एकमात्र; रमणम्—आनन्द स्रोत; च—तथा; भवाम—हम बनना चाहती हैं; दास्यः—आपकी दासियाँ।

बालों के घुंघराले गुच्छों से घिरे हुए आपके मुख, कुण्डलों से विभूषित आपकी गालों, अमृत से पूर्ण आपके होठों तथा आपकी स्मितपूर्ण चितवन को देखकर तथा हमारे भय को भगाने वाली आपकी दो बलिष्ठ भुजाओं को एवं लक्ष्मीजी के आनन्द के एकमात्र स्रोत आपके वक्षस्थल को देखकर हम भी आपकी दासियाँ बनना चाहती हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कृष्ण के साथ गोपियों के व्यवहार की कल्पना निम्नानुसार की है—

कृष्ण कहते हैं, ''तुम मेरी दासियाँ बनना चाहती हो अतः मुझे तुम लोगों को खरीदने के लिए कुछ मूल्य चुकाना है याकि तुम मुफ्त ही अपने को सौंपना चाहती हो?''

गोपियाँ उत्तर देती हैं, ''आप हमारी युवावस्था के प्रारम्भ से ही हमें लाखों गुना मूल्य चुकाकर खरीदते रहे हैं। वह मूल्य है आपकी मणि तुल्य हास्यभरी चितवन जो महान् निधि है, जिसको न तो हमने अन्यत्र देखा है, न सुना है।''

''जब आप अपने सिर पर सुनहला साफा बाँध लेते हैं, तो आपकी दासी आपके साफे को थोड़ा थोड़ा खींचकर सही करती है। जब आप उसे बरजने का प्रयास करते हुए, उस पर उंगली भी उठाते हैं, तो वह आपके साफे के नीचे अपना हाथ रखकर आपके मुख को निहारने का अवसर प्राप्त करती है। इस तरह हम दासियाँ आपकी प्रचुर माधुरी का अपने नेत्रों से आस्वाद करेंगी।''

''कृष्ण कहते हैं कि, ''तुम्हारे पतियों को हमारा यह व्यवहार सहन नहीं हो सकेगा। वे कंस से जाकर जोरदार शिकायत करेंगे और इस तरह तुम्हारे तथा मेरे दोनों ही के लिए भयावह स्थिति उत्पन्न कर देंगे।''

''गोपियाँ कहती हैं, ''किन्तु हे कृष्ण! आपकी दो बलिष्ठ भुजाएँ हमें उसी तरह निर्भय बनाती हैं जिस तरह उन्होंने महेन्द्र के गर्व से हमारी रक्षा करने के लिए आपके द्वारा गोवर्धन पर्वत धारण करते समय बनाया था। वे भुजाएँ अवश्य ही हिंस्रपशु कंस का बध कर देंगी।''

''किन्तु धर्मात्मा होने के कारण मैं अन्यों की पत्नियों को अपनी दासियाँ नहीं बना सकता।''

''हे धर्मात्माओं के मुकुटमणि! भले ही आप गोपों की पत्नियों को अपनी दासियाँ बनाने से इनकार करें किन्तु आपने बलपूर्वक नारायण की पत्नी लक्ष्मी को वैकुण्ठ से ग्रहण कर लिया है और आप उसे अपने वक्षस्थल में बिठाये रहते हैं। उसने लज्जा के मारे आपके वक्षस्थल में एक सोने की रेखा का स्वरूप धारण कर रखा है और वहीं वह आनन्द प्राप्त करती है।''

''यही नहीं, आप चौदहों लोकों में तथा उनके ऊपर के लोकों में, इस ब्रह्माण्ड के परे वैकुण्ठ-लोक में भी किसी भी सुन्दर स्त्री का परित्याग नहीं करते, चाहे वह जो हो या जिसकी हो। हमें यह भलीभाँति ज्ञात है।''

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतवेणुगीत-
सम्मोहितार्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

का—कौनसी; स्त्री—स्त्री; अङ्ग—हे कृष्ण; ते—तुम्हारा; कल—मधुर; पद—पदों वाले; आयत—निकले हुए; वेणु—तुम्हारी वंशी के; गीत—गीत से; सम्मोहिता—पूर्णतया मोहित; आर्य—सभ्य व्यक्तियों के; चरितात्—उचित आचरण से; न चलेत्—हटता नहीं; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों में; त्रै-लोक्य—तीनों लोकों का; सौभगम्—कल्याण का कारण; इदम्—यह; च—तथा; निरीक्ष्य—देखकर; रूपम्—सौन्दर्य; यत्—जिसके कारण; गो—गौवें; द्विज—पक्षी; द्रुम—वृक्ष; मृगाः—तथा हिरन; पुलकानि—रोमांच; अबिभ्रन्—हो आया।

हे कृष्ण, तीनों लोकों में ऐसी कौन स्त्री होगी जो आपकी वंशी से निकली मधुर तान से मोहित होकर अपने धार्मिक आचरण से विचलित न हो जाय? आपका सौन्दर्य तीनों लोकों को मंगलमय बनाता है। दरअसल गौवें, पक्षी, वृक्ष तथा हिरण तक भी आपके सुन्दर रूप को देखकर रोमांचित हो उठते हैं।

व्यक्तं भवान्व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो
देवो यथादिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ।

तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्तबन्धो
तप्तस्तनेषु च शिरःसु च किङ्करीणाम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

व्यक्तम्—स्पष्ट है कि; भवान्—आप; व्रज—व्रजवासी के; भय—भय; आर्ति—तथा कष्ट के; हरः—हरने वाले; अभिजातः—उत्पन्न हुआ; देवः—भगवान्; यथा—जिस प्रकार; आदि-पुरुषः—आदि भगवान्; सुर-लोक—देव-लोक का; गोप्ता—रक्षक; तत्—अतः; नः—हम सबों का; निधेहि—कृपा करके रखें; कर—अपना हाथ; पङ्कजम्—कमल सदृश; आर्त—सताया हुआ; बन्धो—हे मित्र; तप्त—जलते हुए; स्तनेषु—स्तनों पर; च—तथा; शिरःसु—सिरों पर; च—भी; किङ्करीणाम्—अपनी दासियों के।

स्पष्ट है कि आपने व्रजवासियों के भय तथा कष्ट को हरने के लिए इस जगत में उसी तरह जन्म लिया है, जिस तरह आदि भगवान् देव-लोक की रक्षा करते हैं। अतः हे दुखियारों के मित्र, अपना करकमल अपनी दासियों के सिरों पर तथा तप्त स्तनों पर रखिये।

श्रीशुक उवाच
इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः ।
प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इन शब्दों में; विक्लवितम्—विकल वाणी; तासाम्—उनकी; श्रुत्वा—सुनकर; योग-ईश्वर-ईश्वरः—योगशक्ति के ईश्वरों के ईश्वर; प्रहस्य—हँसकर; स-दयम्—दयापूर्वक; गोपीः—गोपियों को; आत्म आरामः—आत्म-तुष्ट; अपि—यद्यपि; अरीरमत्—उन्होंने सन्तुष्ट कर दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : गोपियों के व्याकुल शब्दों को सुनकर हँसते हुए, समस्त योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवान् कृष्ण ने उन सबों के साथ कृपा करके आनन्द मनाया यद्यपि वे आत्मतुष्ट हैं।

ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः
प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ।
उदारहासद्विजकुन्ददीधति-
र्व्यरोचतैणाङ्क इवोडुभिर्वृतः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

ताभिः—उनके साथ; समेताभिः—एकसाथ मिलकर; उदार—उदार, वदान्य; चेष्टितः—चेष्टाओं वाला; प्रिय—प्यारा; ईक्षण—अपनी चितवन से; उत्फुल्ल—खिले हुए; मुखीभिः—मुखों वाली; अच्युतः—अच्युत भगवान्; उदार—विस्तृत, खुली; हास—हँसी; द्विज—दाँतों की; कुन्द—चमेली के फूल जैसी; दीधतिः—तेज युक्त; व्यरोचत—शानदार लगा; एण-अङ्कः—काले हिरण जैसे धब्बे वाला, चन्द्रमा; इव—सदृश; उडुभिः—ताराओं के द्वारा; वृतः—घिरा हुआ।

एकत्र गोपियों के बीच में अच्युत भगवान् कृष्ण वैसे ही लग रहे थे जैसे कि तारों से घिरा हुआ चन्द्रमा लगता है। इतने उदार कार्यकलापों वाले कृष्ण ने अपनी स्नेहमयी चितवनों से उनके

मुखों को प्रफुल्लित कर दिया और उनकी खिली हुई हँसी से चमेली की कली जैसे दाँतों का तेज प्रकट हो रहा था।

तात्पर्य : *अच्युत* शब्द सूचित करता है कि उस रात्रिकालीन सम्मेलन में कृष्ण हर गोपी को आनन्द प्रदान करने से चूके नहीं।

उपगीयमान उद्गायन्वनिताशतयूथपः ।
मालां बिभ्रद्वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन्वनम् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

उपगीयमानः—गान किया हुआ; उद्गायन्—अपने से जोर जोर गाते हुए; वनिता—स्त्रियों के; शत—सैकड़ों; यूथपः—सेनानायक; मालाम्—हार या माला; बिभ्रत्—पहने; वैजयन्तीम्—वैजयन्ती नाम के (पाँच भिन्न रंगों के फूलों से बनी); व्यचरन्—विचरण करते हुए; मण्डयन्—शोभा बढ़ाते हुए; वनम्—जंगल की।.

जब गोपियाँ उनका महिमा-गान करने लगीं तो सैकड़ों स्त्रियों के नायक ने प्रत्युत्तर में जोर जोर से गाना शुरू कर दिया। वे अपनी वैजयन्ती माला धारण किये हुए उनके बीच घूम घूम कर वृन्दावन के जंगल की शोभा बढ़ा रहे थे।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार कृष्ण ने अनेक अद्भुत तानें छोड़ी तथा राग गाये और गोपियाँ उनके पीछे पीछे गाने लगीं। इस अवसर पर कृष्ण के गायन का वर्णन *श्रीविष्णु पुराण* में प्राप्त होता है—

कृष्णः शरच्चन्द्रमसं कौमुदीं कुमुदाकरम्।

जगौ गोपीजनस्त्वेकं कृष्णनाम पुनः पुनः॥

''कृष्ण ने शरदकालीन चन्द्रमा, चाँदनी तथा कमलों से पूरित नदी की महिमा का गायन किया जबकि गोपियों ने केवल उनके नामों का बारम्बार कीर्तन किया।''

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ।
जुष्टं तत्तरलानन्दि कुमुदामोदवायुना ॥ ४५॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरु-
नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा-
मुत्तम्भयन्रतिपतिं रमयां चकार ॥ ४६॥

शब्दार्थ

नद्याः—नदी के; पुलिनम्—तट पर; आविश्य—प्रवेश करके; गोपीभिः—गोपियों के साथ; हिम—शीतल; वालुकम्—बालू के द्वारा; जुष्टम्—सेवा की; तत्—उसका; तरल—लहरों से; आनन्दि—आनन्दित बनाया; कुमुद—कमलों की; आमोद—सुगन्ध लिये हुए; वायुना—वायु के द्वारा; बाहु—अपनी भुजाओं का; प्रसार—फैलाना; परिरम्भ—आलिंगन समेत; कर—उनके हाथों के; अलक—बाल; ऊरु—जाँघें; नीवी—नाभि; स्तन—तथा स्तन; आलभन—स्पर्श से; नर्म—खेल में; नख—अँगुलियों के नाखूनों की; अग्र-पातैः—चिऊँटी से; क्ष्वेल्या—विनोद, खेलवाड़ से भरी बातचीत; अवलोक—चितवन; हसितैः—तथा हँसी से; व्रज-सुन्दरीणाम्—व्रज की सुन्दरियों की; उत्तम्भयन्—उत्तेजित करते हुए; रति-पतिम्—कामदेव को; रमयाम् चकार—आनन्द मनाया।

श्रीकृष्ण गोपियों समेत यमुना के किनारे गये जहाँ बालू ठंडी पड़ रही थी और नदी की तरंगों के स्पर्श से वायु में कमलों की महक थी। वहाँ कृष्ण ने गोपियों को अपनी बाँहों में समेट लिया और उनका आलिंगन किया। उन्होंने लावण्यमयी व्रज-बालाओं के हाथ, बाल, जाँघें, नाभि एवं स्तन छू छू कर तथा खेल खेल में अपने नाखूनों से चिकोटते हुए उनके साथ विनोद करते, उन्हें तिरछी नजर से देखते और उनके साथ हँसते हुए उनमें कामदेव जागृत कर दिया। इस तरह भगवान् ने अपनी लीलाओं का आनन्द लूटा।

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ।
आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्यो ह्यधिकं भुवि ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; भगवतः—भगवान्; कृष्णात्—कृष्ण से; लब्ध—प्राप्त हुई; मानाः—विशेष आदर; महा-आत्मनः—परमात्मा से; आत्मानम्—अपने आपको; मेनिरे—माना; स्त्रीणाम्—स्त्रियों में; मानिन्यः—मानिनी, गर्वित; हि—निस्सन्देह; अधिकम्—सर्वश्रेष्ठ; भुवि—पृथ्वी पर।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण से ऐसा विशेष आदर पाकर गोपियाँ अपने पर गर्वित हो उठीं और उनमें से हरएक ने अपने को पृथ्वी की सर्वश्रेष्ठ स्त्री समझा।

तात्पर्य : गोपियाँ इसलिए गर्वित थीं क्योंकि उन्हें सर्वश्रेष्ठ पुरुष प्रेमी के रूप में प्राप्त हो चुका था। एक तरह से उन्हें कृष्ण पर गर्व था। साथ ही गोपियों का यह गर्व एक बहाना था, जो कृष्ण की लीला-शक्ति द्वारा उत्पन्न किया गया था जिससे वे विरह के द्वारा उनके प्रति अपना प्रेम प्रगाढ़ कर सकें। इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने भरत मुनि के *नाटय शास्त्र* से उद्धरण दिया है—*न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते*—विरह का अनुभव किये बिना प्रत्यक्ष सम्पर्क का पूरी तरह भोग नहीं हो पाता।

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।

प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

तासाम्—उनकी; तत्—वह; सौभग—उनके सौभाग्य के कारण; मदम्—उन्मत्त अवस्था; वीक्ष्य—देखकर; मानम्—मिथ्या गर्व; च—तथा; केशवः—भगवान् कृष्ण; प्रशमाय—कम करने के लिए; प्रसादाय—कृपा करने के लिए; तत्र एव—वहीं पर; अन्तरधीयत—अन्तर्धान हो गये।.

गोपियों को अपने सौभाग्य पर अत्यधिक गर्वित देखकर भगवान् केशव ने उनके इस गर्व से उबारना चाहा और उनपर और अधिक अनुग्रह करना चाहा। अतः वे तुरन्त अन्तर्धान हो गये।

तात्पर्य : *प्रसादाय* शब्द यहाँ सार्थक है। कृष्ण गोपियों की उपेक्षा नहीं करने वाले थे अपितु अन्य विलक्षण व्यवस्था करके उनके प्रेम-व्यापार की शक्ति को तीव्र करना चाहते थे। गोपियों को कृष्ण पर नाज था। जैसाकि हम देखेंगे कि उन्होंने यह व्यवस्था की कि वे राजा वृषभानु की सुन्दर पुत्री के प्रति विशेष कृपा दिखाना चाहते थे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''रासनृत्य के लिए कृष्ण तथा गोपियों का मिलन'' नामक उन्तीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तीस

गोपियों द्वारा कृष्ण की खोज

इस अध्याय में बताया गया है कि किस तरह कृष्ण से बिछुड़ जाने से रात भर कष्ट भोगती गोपियाँ उनकी खोज में एक जंगल से दूसरे जंगल में पागल स्त्रियों की तरह घूमती रहीं।

जब श्रीकृष्ण रासनृत्य के स्थल से सहसा अन्तर्धान हो गये तो उनके भाव में पूरी तरह मग्न गोपियाँ उन्हें कई जंगलों में ढूँढ़ने लगीं। वे समस्त जड़ तथा जंगम प्राणियों से कृष्ण का अता-पता पूछने लगीं। अन्त में वे इतनी हतबुद्धि हो गईं कि वे उनकी लीलाओं की नकल उतारने लगीं।

बाद में घूमती हुई गोपियों को जंगल के एक कोने में श्रीकृष्ण के पदचिह्न दिखाई पड़े जिनके साथ श्रीमती राधारानी के पदचिह्न भी मिले हुए थे। इन पदचिह्नों को देखकर वे अत्यन्त व्याकुल हो उठीं और कहने लगीं कि अवश्य ही श्रीमती राधारानी ने कृष्ण की असामान्य पूजा की होगी क्योंकि उन्हें ही एकान्त में कृष्ण के संग रहने का अवसर दिया गया था। गोपियाँ मार्ग का अनुसरण करती हुईं एक ऐसे स्थल पर पहुँची जहाँ उन्हें श्रीमती राधारानी के पदचिह्न दिखने बन्द हो गये अतः वे इस निष्कर्ष पर

पहुँचीं कि कृष्ण ने अवश्य ही उन्हें अपने कन्धों पर उठा लिया होगा। अन्य स्थल पर उन्हें कृष्ण के पाँवों के अँगूठे के ही चिह्न दिखे जिससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि कृष्ण ने अपनी प्रियतमा को सजाने के लिए यहाँ पर फूल तोड़े होंगे। एक अन्य स्थल पर ऐसे चिह्न मिले जिससे गोपियाँ इस निष्कर्ष पर पहुँचीं कि यहाँ पर श्रीकृष्ण ने श्रीमती राधारानी के केश सँवारे होंगे। इन सारे विचारों से गोपियों के मन व्यथित हो गये।

चूँकि श्रीमती राधारानी का श्रीकृष्ण विशेष ध्यान रखते थे, इसलिए वे अपने को परम भाग्यशालिनी मानने लगीं। उन्होंने कृष्ण से कहा कि अब वे और नहीं चल सकतीं इसलिए उन्हें अपने कन्धों पर ले चलना होगा। किन्तु तभी कृष्ण उनकी दृष्टि से ओझल हो गये। अत्यन्त दुखित होकर श्रीमती राधारानी सर्वत्र उन्हें ढूँढ़ने लगीं और अन्त में उन्हें अपनी गोपी सखियाँ मिल गईं। उन्होंने उन सबसे आपबीती बतलाई। तब सारी गोपियाँ कृष्ण की खोज के लिए जंगल में निकल पड़ीं और जहाँ तक चाँदनी थी, गईं। किन्तु अन्ततोगत्वा वे विफल हो गईं अत: वे यमुना तट पर लौट आईं और घोर निराशा में कृष्ण की महिमाओं का गान करने लगीं।

श्रीशुक उवाच
अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः ।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अन्तर्हिते—अन्तर्धान हो जानेपर; भगवति—भगवान् के; सहसा एव—एकाएक; व्रज-अङ्गनाः—व्रज की युवतियाँ; अतप्यन्—खिन्न हो उठीं; तम्—उसको; अचक्षाणाः—न देखकर; करिण्यः—हथिनियाँ; इव—सदृश; यूथपम्—अपने नर नायक को।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब भगवान् कृष्ण इस तरह एकाएक विलुप्त हो गये तो गोपियाँ उन्हें न देख सकने के कारण अत्यन्त व्यथित हो उठीं जिस तरह हथिनियों का समूह अपने नर के बिछुड़ जाने पर खिन्न हो उठता है।

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितै-
र्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापते-
स्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

गत्या—उनके हिलने डुलने से; अनुराग—स्नेहमय; स्मित—मन्द हँसी; विभ्रम—क्रीड़ापूर्ण; ईक्षितैः—तथा चितवनों से; मनः-रम—मोहक; आलाप—उनकी बातचीत से; विहार—क्रीड़ा; विभ्रमैः—तथा अन्य आकर्षण से; आक्षिप्त—अभिभूत; चित्ताः—हृदयों वाली; प्रमदाः—बालिकाएँ; रमा-पतेः—रमा के पति का या सौंदर्य तथा ऐश्वर्य के स्वामी का; ताः ताः—उनमें से हरएक; विचेष्टाः—अद्भुत कार्यकलाप; जगृहुः—अनुकरण करने लगी; तत्-आत्मिकाः—उनमें लीन होकर।

भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करते ही गोपियों के हृदय उनकी चाल-ढाल तथा प्रेममयी मुसकान, उनकी कौतुकपूर्ण चितवन तथा मोहने वाली बातों तथा अपने साथ की जानेवाली अन्य लीलाओं से अभिभूत हो उठे। इस तरह रमा के स्वामी कृष्ण के विचारों में लीन वे गोपियाँ उनकी विविध दिव्य लीलाओं (चेष्टाओं) का अनुकरण करने लगीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कृष्ण तथा गोपियों के मध्य हुई मनोहर वार्तालाप का वर्णन किया है—

कृष्ण ने एक गोपी से कहा, ''हे कुमुदिनी! क्या तुम इस प्यासे भौंरे को अपना मधु दोगी या नहीं?''

गोपी ने उत्तर दिया, ''हे भौंरे! कुमुदिनी का पति तो सूर्य हैं, भौंरा नहीं अतएव तुम मेरे मधु को अपना क्यों कह रहे हो?''

''किन्तु हे कुमुदिनी! तुम कुमुदिनियों का यह स्वभाव है कि तुम अपना मधु अपने पति सूर्य को न देकर अपने जारपति भौंरे को देती हो:'' कृष्ण के इन वचनों से गोपी हारकर हँसने लगी और तब उसने अपना अधरामृत पान करा दिया।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने निम्नलिखित वार्तालाप का भी वर्णन किया है :

''कृष्ण ने एक गोपी से कहा : अरे! मैं जान गया कि इस नीप वृक्ष के सम्मुख आते ही तुम्हें गर्वीले सर्प ने डस लिया था। उसका विष तुम्हारे वक्षस्थल तक पहुँच चुका है किन्तु तुम भद्र बाला हो इसलिए तुमने मुझसे विष उतारने के लिए नहीं कहा। फिर भी स्वभाव से दयालु होने के कारण मैं आ गया हूँ। अब मैं अपने हाथों से तुम्हारे शरीर की मालिश करते हुए मंत्र पढ़ुँगा जिससे कि सर्प-विष उतर जाय।''

''गोपी ने कहा, ''किन्तु हे सँपेरे! मुझे किसी सर्प ने नहीं डसा है। जाकर किसी और लड़की का शरीर मलो, जिसे सचमुच साँप ने डसा हो।''

''हे भद्र बाला! आओ। तुम्हारे काँपते स्वर से मैं बतला सकता हूँ कि विष चढ़ने के कारण तुम्हें

ताप सा चढ़ा हुआ है। यह जान लेने पर भी यदि मैं तुम्हारी रक्षा न करूँ तो मैं एक निर्दोष स्त्री के वध का भागी होऊँगा। अत: मुझे उपचार करने दो।

''यह कहकर कृष्ण ने गोपी के वक्षस्थल पर अपने नाखून लगा दिये।''

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु
प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ।
असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका
न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

गति—उसकी चाल में; स्मित—हँसी; प्रेक्षण—देखने; भाषणा—बातचीत करने; आदिषु—इत्यादि में; प्रियाः—प्रिय गोपियाँ; प्रियस्य—अपने प्रेमी के; प्रतिरूढ—पूर्णतया लीन; मूर्तयः—उनके शरीर; असौ—वह; अहम्—मैं; तु—वास्तव में; इति—इस प्रकार कहते हुए; अबलाः—स्त्रियों ने; तत्-आत्मिकाः—उनके स्वरूप में; न्यवेदिषुः—घोषित किया; कृष्ण-विहार—कृष्ण की लीलाओं से उत्पन्न; विभ्रमाः—मादकता, नशा।

चूँकि प्रेमप्रिय गोपियाँ अपने प्रिय कृष्ण के विचारों में लीन थीं अत: कृष्ण गोपियों के शरीर के चलने तथा हँसने के ढंग, उनके देखने के ढंग, उनकी वाणी तथा उनके अन्य विलक्षण गुणों का अनुकरण करने लगे। उनके चिन्तन में गहरी डूबी हुई तथा उनकी लीलाओं का स्मरण करके उन्मत्त हुई गोपियों ने परस्पर घोषित कर दिया कि ''मैं कृष्ण ही हूँ।''

तात्पर्य : गोपियाँ एकदम कृष्ण के ही समान हिलने डुलने लगीं—वे उसी तरह हँसने लगीं जिस तरह कृष्ण हँसा करते, उसी तरह निर्भय होकर निहारने और बोलने लगीं। गोपियाँ कृष्ण के विचार में पूर्णतया लीन थीं और उनके आकस्मिक वियोग पर प्रेम से उन्मत्त हो चली थीं। इस तरह कृष्ण के प्रति उनका पूर्ण समर्पण हो चुका था।

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता
विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् ।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहि-
र्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

गायन्त्यः—गाती हुई; उच्चैः—जोर जोर से; अमुम्—उनके विषय में; एव—निस्सन्देह; संहताः—टोली में मिलकर; विचिक्युः—खोज किया; उन्मत्तक-वत्—पगली स्त्रियों की तरह; वनात् वनम्—एक जंगल से दूसरे जंगल में; पप्रच्छुः—पूछा; आकाश-वत्—आकाश की तरह; अन्तरम्—भीतर से; बहिः—तथा बाहर से; भूतेषु—समस्त प्राणियों में; सन्तम्—उपस्थित; पुरुषम्—परम पुरुष को; वनस्पतीन्—वृक्षों से।

जोर जोर से कृष्ण के बारे में गाती हुई गोपियों ने पगलायी स्त्रियों के झुंड के समान उन्हें

वृन्दावन के पूरे जंगल में खोजा। यहाँ तक कि वृक्षों से भी उन कृष्ण के विषय में पूछताछ की जो समस्त उत्पन्न वस्तुओं के भीतर तथा बाहर आकाश की भाँति परमात्मा के रूप में उपस्थित हैं।

तात्पर्य : कृष्ण के प्रेम में पगलाई हुई गोपियों ने वृन्दावन के वृक्षों तक से उनके विषय में पूछडाला। वस्तुतः भगवान् कृष्ण से वास्तविक विछोह होता ही नहीं क्योंकि वे सर्वव्यापी परमात्मा हैं।

दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ।
नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

दृष्टः—देखा गया है; वः—तुम्हारे द्वारा; कच्चित्—क्या; अश्वत्थ—हे अश्वत्थ (पवित्र पीपल का वृक्ष); प्लक्ष—हे प्लक्ष (पाकड़); न्यग्रोध—हे न्यग्रोध (बरगद का पेड़); नः—हमारे; मनः—मन; नन्द—नन्द महाराज का; सूनुः—पुत्र; गतः—चला गया है; हृत्वा—चुराकर; प्रेम—प्रेममय; हास—अपनी मुसकान से; अवलोकनैः—तथा चितवन से।

[गोपियों ने कहा] : हे अश्वत्थ वृक्ष, हे प्लक्ष, हे न्यग्रोध, क्या तुमने कृष्ण को देखा है? वह नन्दनन्दन अपनी प्रेमभरी मुस्कान तथा चितवन से हमारे चित्तों को चुराकर चला गया है।

कच्चित्कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः ।
रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

कच्चित्—क्या; कुरबक-अशोक-नाग-पुन्नाग-चम्पकाः—हे कुरबक, अशोक, नाग, पुन्नाग तथा चम्बक वृक्षो; राम—बलराम का; अनुजः—छोटा भाई; मानिनीनाम्—मान करने वाली स्त्रियों का; इतः—यहाँ से गुजरते हुए; दर्प—घमंड; हर—चूर करने वाली; स्मितः—हँसी।

हे कुरबक वृक्ष, हे अशोक, हे नागकेसर, पुन्नाग तथा चम्पक, क्या इस रास्ते से होकर बलराम का छोटा भाई गया है, जिसकी हँसी समस्त अभिमान करनेवाली स्त्रियों के दर्प को हरने वाली है।

तात्पर्य : ज्योंही गोपियों ने देखा कि अमुक वृक्ष उनके प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहा है त्योंही अधीर होकर वे दूसरे वृक्ष से पूछने के लिए जलदी से आगे चल पड़ती।

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।
सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद्दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

कच्चित्—क्या; तुलसि—हे तुलसी वृक्ष; कल्याणि—हे दयामयी; गोविन्द—कृष्ण के; चरण—पाँव; प्रिये—जिन्हें प्रिय हैं; सह—साथ; त्वा—तुम्हारे; अलि—भौंरों के; कुलैः—झुंडों के साथ; बिभ्रत्—ले जाते हुए; दृष्टः—देखा हुआ; ते—तुम्हारे द्वारा; अति-प्रियः—अत्यन्त प्रिय; अच्युतः—भगवान् अच्युत।

हे अत्यन्त दयालु तुलसी, तुम्हें तो गोविन्द के चरण इतने प्रिय हैं। क्या तुमने अपने को [तुलसी] पहने और भौंरों के झुँड से घिरे हुए उन अच्युत को इधर से जाते हुए देखा है?

तात्पर्य : आचार्यों की व्याख्या है कि *चरण* शब्द उसी तरह आदरसूचक हैं जिस तरह *एवं वदन्त्याचार्यचरणाः* में है। श्रीगोविन्द द्वारा पहनी माला के चारों ओर गुंजार करते भौंरे उनको अर्पित की गई तुलसी-मंजरियों की सुगन्धि द्वारा आकृष्ट थे। गोपियों को लगा कि वृक्ष नर हैं इसलिए उन्होंने उत्तर नहीं दिया किन्तु तुलसी तो स्त्री है अतएव उनकी दीन दशा पर अवश्य ही दया करेगी।

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जातियूथिके ।
प्रीतिं वो जनयन्यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

मालति—हे मालती (श्वेत चमेली की किस्म); अदर्शि—देखा गया; वः—तुम्हारे द्वारा; कच्चित्—क्या; मल्लिके—हे मल्लिका (भिन्न प्रकार की चमेली); जाति—हे जाति (सफेद चमेली की किस्म); यूथिके—हे यूथिका (अन्य चमेली); प्रीतिम्—प्रीति; वः—तुम्हारे लिए; जनयन्—उत्पन्न करते हुए; यातः—यहाँ से होकर गये हैं; कर—अपने हाथ के; स्पर्शेन—स्पर्श से; माधवः—साक्षात् वसन्त, कृष्ण।

हे मालती, हे मल्लिका, हे जाति तथा यूथिका, क्या माधव तुम सबों को अपने हाथ का स्पर्श-सुख देते हुए इधर से गये हैं?

तात्पर्य : जब तुलसी तक ने गोपियों को कोई उत्तर नहीं दिया तो वे सुगन्धित चमेली के पुष्पों के पास पहुँचीं। चमेली लताओं को नम्रता से झुका देखकर गोपियों ने कल्पना की कि इन्होंने अवश्य ही कृष्ण को देखा होगा इसलिए वे अपनी प्रसन्नता में दीनता दिखला रही हैं।

चूतप्रियालपनसासनकोविदार-
जम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः
शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

चूत—हे आम की लतर; प्रियाल—हे प्रियाल वृक्ष (एक तरह का शालवृक्ष); पनस—हे कटहल के वृक्ष; आसन—हे आसन (पीला शालवृक्ष); कोविदार—हे कोविदार; जम्बु—हे जामुन; अर्क—हे अर्क (आक, मदार); बिल्व—हे बेल; बकुल—हे छुईमुई; आम्र—हे आम के वृक्ष; कदम्ब—हे कदम्ब; नीपाः—हे नीप (छोटा कदम्ब); ये—जो; अन्ये—अन्य; पर—दूसरों के; अर्थ—लिए; भवकाः—जिनका अस्तित्व; यमुना-उपकूलाः—यमुना नदी के तट के पास रहने वाले; शंसन्तु—कृपा करके बताइये; कृष्ण-पदवीम्—कृष्ण द्वारा अपनाया गया रास्ता; रहित—विहीन; आत्मनाम्—हमारे मनों से; नः—हमको।

हे चूत, हे प्रियाल, हे पनस, हे आसन तथा कोविदार, हे जम्बु, हे अर्क, हे बिल्ब, बकुल तथा आम्र, हे कदम्ब तथा नीप एवं यमुना के तट के समीप स्थित अन्य सारे पौधो और वृक्षो, अन्यों के उपकार के लिए अपना जीवन अर्पित करने वालो, हम गोपियों के मन चुरा लिये गये हैं अतः कृपा करके हमें बतलायें कि कृष्ण गये कहाँ हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार *चूत* एक आम की लतर है, जबकि *आम्र* आम का वृक्ष है। वे बतलाते हैं कि *नीप* यद्यपि अधिक प्रसिद्ध वृक्ष नहीं है किन्तु इसमें बड़े बड़े फूल लगते हैं। कृष्ण को खोजने के लिए गोपियों की हताशा इसीसे स्पष्ट हो जाती है कि वे नगण्य *अर्क के पौधे* (आक, मदार) के पास गईं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती वृन्दावन के वृक्षों के विषय में यह जानकारी देते हैं *नीप* धूसर कदम्ब है और इसके फूल बड़े होते हैं। *कदम्ब* के फूल छोटे होते हैं और उनमें अति मधुर गंध रहती है। *कोविदार* एक विशेष प्रकार का *काञ्चनार* है। यद्यपि *अर्क* अत्यन्त तुच्छ पौधा है किन्तु यह सदैव गोपीश्वर (वृन्दावन जंगल में शिव की मूर्ति) के निकट उगता है क्योंकि यह उन्हें प्रिय है।

किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रि-
स्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गनहैर्विभासि ।
अप्यङ्घ्रिसम्भव उरुक्रमविक्रमाद्वा
आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥ १० ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; ते—तुम्हारे द्वारा; कृतम्—की गयी; क्षिति—हे पृथ्वी; तपः—तपस्या; बत—निस्सन्देह; केशव—भगवान् कृष्ण के; अङ्घ्रि—पैर द्वारा; स्पर्श—स्पर्श किये जाने से; उत्सव—प्रसन्नता का अनुभव होने से; उत्पुलकित—हर्ष से रोमांचित; अङ्ग-रुहैः—अपने शरीर के रोमों से (जो तुम पर उगी घासें तथा वृक्ष हैं); विभासि—सुन्दर लगती हो; अपि—शायद; अङ्घ्रि—पाँव से (कृष्ण के पाँव से); सम्भवः—उत्पन्न; उरुक्रम—कृष्ण के वामन अवतार, वामनदेव के; विक्रमात्—चलने से; वा—अथवा; आह उ—या फिर अन्य; वराह—भगवान् कृष्ण के वराह अवतार के; वपुषः—शरीर द्वारा; परिरम्भणेन—आलिंगन के कारण।

हे माता पृथ्वी, आपने भगवान् केशव के चरणकमलों का स्पर्श पाने के लिए ऐसी कौन सी तपस्या की है, जिससे उत्पन्न परम आनन्द से आपके शरीर में रोमांच हो आया है? इस अवस्था में आप अतीव सुन्दर लग रही हैं। क्या भगवान् के इसी प्राकट्य के समय आपको ये भाव-लक्षण प्राप्त हुए हैं या फिर और पहले जब उन्होंने आप पर वामनदेव के रूप में अपने पाँव रखे थे या इससे भी पूर्व जब उन्होंने वराहदेव के रूप में आपका आलिंगन किया था?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने गोपियों के विचारों की निम्नवत् व्याख्या की है, ''शायद इन वृक्षों तथा लताओं ने (जिनका उल्लेख पिछले श्लोकों में हुआ है) हमारे प्रश्न नहीं सुने क्योंकि वे भगवान् विष्णु के ध्यान में मग्न थे। या शायद, चूँकि वे हमें यह नहीं बताना चाहते कि कृष्ण कहाँ गये हैं, वे पवित्र स्थान में रहते हुए भी कठोर हृदय हैं। जो हो, पवित्र स्थान के वासियों की इस तरह अनावश्यक आलोचना करने से क्या लाभ? हम कह नहीं सकतीं कि क्या वे सचमुच जानते हैं कि कृष्ण कहाँ गये हैं। अत: चलो ऐसे किसी को ढूँढ़ें जो निश्चित रूप से जानता हो कि वे कहाँ हैं।'' इस तरह गोपियों ने निष्कर्ष निकाला कि चूँकि कृष्ण को इसी पृथ्वी पर कहीं न कहीं होना है, अत: पृथ्वी उनके विषय में अवश्य जानती होगी।

तब गोपियों ने सोचा, ''चूँकि कृष्ण सदैव पृथ्वी पर विचरण करते हैं अतएव पृथ्वी उनसे कभी विलग नहीं होती अत: वह यह नहीं समझ सकती कि उनकी अनुपस्थिति में उनके माता-पिता, सखियाँ तथा सेवक कितना कष्ट भोगते हैं। तो चलो उससे पूछें कि उसने भगवान् केशव के चरणों के निरन्तर स्पर्श के सौभाग्य को पाते रहने के लिए कौन सी तपस्या की है।''

अप्येणपत्न्युपगत: प्रिययेह गात्रै-
स्तन्वन्दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो व: ।
कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जिताया:
कुन्दस्त्रज: कुलपतेरिह वाति गन्ध: ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; एण—हिरण की; पत्नि—हे पत्नी; उपगत:—भेंट हुई है; प्रियया—अपनी प्रिया के साथ; इह—यहाँ; गात्रै:—अपने अंगों के द्वारा; तन्वन्—उत्पन्न करते; दृशाम्—आँखों का; सखि—हे सखी; सु-निर्वृतिम्—परम आनन्द; अच्युत:—अच्युत कृष्ण; व:—तुम्हारा; कान्ता—अपनी सहेली का; अङ्ग-सङ्ग—अंग स्पर्श के कारण; कुच—स्तन पर; कुङ्कुम—सिन्दूर से; रञ्जिताया:—रँगा हुआ; कुन्द—चमेली फूल की; स्त्रज:—माला का; कुल—समूह (गोपियों के) के; पते:—स्वामी का; इह—यहाँ आसपास; वाति—बह रही है; गन्ध:—सुगन्ध।

हे सखी हिरनी, क्या तुम्हारी आँखों को परमानन्द प्रदान करने वाले भगवान् अच्युत अपनी प्रिया समेत इधर आये थे? दरअसल इस ओर कुन्द फूलों से बनी उनकी उस माला की महक आ रही है, जो उनके द्वारा आलिंगित उनकी प्रिया सखी के स्तनों पर लगे कुंकुम से लेपित थी।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की निम्नलिखित मोहक टीका की है :

गोपियों ने हिरनी से पूछा, ''हे सखी हिरनी! तुम्हारी विमल आँखों में जो आनन्द है उससे हम

बतला सकती हैं कि कृष्ण ने अपने अंगों, मुख आदि के सौन्दर्य से तुम्हारे आनन्द को बढ़ाया है। तुम कृष्ण-दर्शन के सुख की अनुभूति की इच्छुक हो अतएव तुम्हारी आँखें उन्हीं का पीछा कर रही हैं। वस्तुतः, वे तुमसे विलग नहीं हो सकते।

तब हिरनी को अपने सहज भाव से घूमते देखकर गोपियाँ चिल्ला उठीं, "ओ! बताओ न, कि तुमने कृष्ण को देखा है!" देखो न यह हिरनी चलते समय हमारी ओर मुड़कर देख रही है मानो कहना चाहती हैं कि "मैं तुम्हें उनका दर्शन करा दूँगी, बस तुम मेरे पीछे पीछे आओ।" इस निर्दय वृन्दावन में एकमात्र यही दयालु जीव है।"

"ज्योंही गोपियाँ हिरनी के पीछे-पीछे चलती हैं, वह ओझल हो जाती है और वे फिर से चिल्ला उठती हैं "अरे! हमें कृष्ण के पास ले जा रही वह हिरणी क्यों नहीं दिख रही है?

"एक गोपी सुझाव देती है कि कृष्ण यहीं कहीं पास में होंगे और वह हिरनी उन से डरने के कारण यहीं कहीं छिप गई होगी जिससे वह यह प्रकट करने की संभावित त्रुटि से बच सके कि वे यहीं हैं।" इस प्रकार अनुमान लगाते लगाते उन्हें उधर से सहसा बहने वाली किसी सुगन्ध का पता चल जाता है, तो वे खुशी से उछल कर बारम्बार कहती हैं, "हाँ हाँ। यही है! अपनी सखी के संसर्ग से कृष्ण के शरीर की चमेली की माला सखी के स्तनों पर लगे कुमकुम से चुपड़ गई और उन सबों की सुगंध हम तक आ रही है।" इस तरह गोपियों को दो प्रेमियों के शरीरों की, कृष्ण की चमेली माला की तथा उनकी प्रेमिका के स्तनों पर लगे अंगराग की सुगन्ध का पता चल गया।

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो
रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ।
अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं
किं वाभिनन्दति चरन्प्रणयावलोकैः ॥ १२॥

शब्दार्थ

बाहुम्—अपनी भुजा; प्रिया—अपनी प्रिया के; अंसे—कंधे पर; उपधाय—रखकर; गृहीत—पकड़े हुए; पद्मः—कमल; राम-अनुजः—बलराम के छोटे भाई, कृष्ण; तुलसिका—तुलसी मञ्जरियों के चारों ओर मँडराते; अलि-कुलैः—अनेक भौंरों से; मद—नशे से; अन्धैः—अन्धे; अन्वीयमानः—पीछा किये जाते; इह—यहाँ; वः—तुम्हारे; तरवः—हे वृक्षों; प्रणामम्—झुकना, नत होना; किम् वा—अथवा; अभिनन्दति—स्वीकार किया; चरन्—विचरण करते हुए; प्रणय—प्रेम से पूरित; अवलोकैः—अपनी चितवन से।

हे वृक्षो, हम देख रही हैं कि तुम झुक रहे हो। क्या जब राम के छोटे भाई इधर से गये

जिनके पीछे-पीछे गले में सुशोभित तुलसी मंजरी की माला के चारों ओर उन्मत्त भौंरे मँडरा रहे थे तो उन्होंने अपनी स्नेहपूर्ण चितवन से तुम्हारे प्रणाम को स्वीकार किया था? वे अपनी बाँह अवश्य ही अपनी प्रिया के कंधे पर रखे रहे होंगे और अपने खाली हाथ में कमल का फूल लिये रहे होंगे।

तात्पर्य : गोपियों ने देखा कि पर्याप्त फलों तथा फूलों से लदकर झुके हुए वृक्ष भगवान् कृष्ण को प्रणाम कर रहे थे। गोपियों ने सोचा कि अवश्य ही कृष्ण उधर से अभी अभी गुजरे होंगे क्योंकि वृक्ष अभी तक झुके हुए थे। चूँकि श्रीकृष्ण ने अपनी प्रियतमा के साथ जाने के लिए गोपियों को छोड़ दिया था इसलिए उन्हें ईर्ष्या हो रही थी। वे कल्पना करने लगीं कि श्रीकृष्ण अपने प्रेमालाप से थक गये होंगे अत: वे अपनी बाईं बाँह अपनी प्रिया के कोमल कंधे पर रखे हुए होंगे। गोपियों ने यह भी सोच डाला कि कृष्ण अपने दाहिने हाथ में एक नीला कमल लिए होंगे जिससे वे अपनी प्रिया के मुख की सुगन्धि को सूँघने के बाद उस पर उत्सुकता से मंडराने का प्रयास करने वाले भौंरों को भगा सकें। यह दृश्य इतना सुन्दर था कि गोपियों ने कल्पना की कि उन्मत्त भौंरों ने इस प्रेमी-युगुल का पीछा करने के लिए तुलसी के उद्यान को पीछे छोड़ दिया था।

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ।
नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

पृच्छत—जरा पूछो; इमाः—इन; लताः—लताओं से; बाहून्—बाँहें (टहनियाँ); अपि—यद्यपि; आश्लिष्टाः—आलिंगन करती हुई; वनस्पतेः—वृक्ष का; नूनम्—निश्चय ही; तत्—उसका, कृष्ण के; कर-ज—हाथ के नाखूनों से; स्पृष्टाः—स्पर्श किया हुआ; बिभ्रति—धारण करती है; उत्पुलकानि—चमड़ी पर प्रसन्नता के फफोले; अहो—जरा देखो।

चलो इन लताओं से कृष्ण के विषय में पूछा जाय। यद्यपि वे अपने पति रूप इस वृक्ष की बाँहों का आलिंगन कर रही हैं किन्तु अवश्य ही कृष्ण ने अपने नाखूनों से इनका स्पर्श किया होगा क्योंकि प्रसन्नता के मारे इनकी त्वचा पर फफोले प्रकट हो रहे हैं।

तात्पर्य : गोपियों का तर्क था कि लताएँ मात्र अपने पति वृक्ष के शारीरिक सम्पर्क से ही प्रसन्नता का लक्षण नहीं प्रकट कर सकतीं थीं। इस तरह उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि लताएँ अपने पति के बलिष्ट अंगों का आलिंगन कर रही थीं किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा जब वे जंगल से होकर जा रहे थे अवश्य ही उनका स्पर्श हुआ होगा।

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥ १४॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उन्मत्त—पगलाई; वचः—शब्द बोलती हुई; गोप्यः—गोपियाँ; कृष्ण-अन्वेषण—कृष्ण की खोज करते हुए; कातराः—किंकर्तव्यविमूढ़; लीलाः—दिव्य लीलाएँ; भगवतः—भगवान् की; ताः ताः—उनमें से प्रत्येक को; हि—निस्सन्देह; अनुचक्रुः—अनुकरण किया; तत्-आत्मिकाः—उनके विचारों में लीन होकर।

ये शब्द कहने के बाद कृष्ण को खोजते खोजते किंकर्तव्यविमूढ़ हुई गोपियाँ उनके विचारों में पूर्णतया लीन होकर उनकी विविध लीलाओं का अनुकरण करने लगीं।

कस्याचित्पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत्स्तनम् ।
तोकयित्वा रुदत्यन्या पदाहन्शकटायतीम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

कस्याचित्—गोपियों में से एक ने; पूतनायन्त्याः—जो पूतना बनी थी; कृष्णायन्ती—दूसरी जो कृष्ण बनी थी; अपिबत्—पिया; स्तनम्—स्तन को; तोकयित्वा—शिशु बनकर; रुदती—चिल्लाती; अन्या—दूसरी ने; पदा—अपने पाँव से; अहन्—मारा; शकटा-यतीम्—जो गाड़ी बनी थी।

एक गोपी ने पूतना की नकल उतारी जबकि दूसरी बालक कृष्ण बन गई और वह पहले वाली का स्तनपान करने लगी। अन्य गोपी ने शिशु कृष्ण के रोदन का अनुकरण करते हुए उस गोपी पर पाद-प्रहार किया जो शकटासुर की भूमिका निभा रही थी।

दैत्यायित्वा जहारान्यामेको कृष्णार्भभावनाम् ।
रिङ्गयामास काप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनिःस्वनैः ॥ १६॥

शब्दार्थ

दैत्यायित्वा—असुर (तृणावर्त) बनकर; जहार—उठा ले गई; अन्याम्—दूसरी गोपी को; एका—एक गोपी; कृष्ण-अर्भ—बालक कृष्ण का; भावनाम्—भाव धारण करने वाली; रिङ्गयाम् आस—रेंगने लगी; का अपि—उनमें से एक; अङ्घ्री—उसके दो पाँव; कर्षन्ती—घसीटती हुई; घोष—पायजेब का; निःस्वनैः—शब्द करती।

एक गोपी तृणावर्त बन गई और वह दूसरी गोपी को जो बालक कृष्ण बनी थी दूर ले गई जबकि एक अन्य गोपी रेंगने लगी जिससे उसके पाँव घसीटते समय पायजेब बजने लगी।

तात्पर्य : गोपियों ने कृष्ण की बालक रूप से लेकर सारी लीलाओं का अनुकरण करना शुरू कर दिया।

कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन ।

वत्सायतीं हन्ति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

कृष्ण-रामायिते—कृष्ण तथा बलराम बनकर; द्वे—दो गोपियाँ; तु—तथा; गोपायन्त्यः—ग्वालबालों की तरह बनकर; च—तथा; काश्चन—किसी ने; वत्सायतीम्—वत्सासुर बनकर; हन्ति—मारा; च—तथा; अन्या—दूसरी; तत्र—वहाँ; एका—एक; तु—और भी; बकायतीम्—बकासुर का अभिनय करने वाली।

दो गोपियाँ उन तमाम गोपियों के बीच राम तथा कृष्ण बन गईं जो ग्वालबालों का अभिनय कर रही थीं। एक गोपी ने कृष्ण द्वारा राक्षस वत्सासुर के वध का अनुकरण किया जिसमें दूसरी गोपी वत्सासुर बनी थी। गोपियों के एक जोड़े ने बकासुर-वध का अभिनय किया।

आहूय दूरगा यद्वत्कृष्णस्तमनुवर्ततीम् ।
वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसन्ति साध्विति ॥ १८॥

शब्दार्थ

आहूय—बुलाकर; दूर—दूरी पर स्थित; गाः—गौवों को; यद्वत्—जिस तरह; कृष्णः—कृष्ण; तम्—उसको; अनुवर्ततीम्—अनुकरण करने वाली गोपी को; वेणुम्—वंशी; क्वणन्तीम्—शब्द करती; क्रीडन्तीम्—खेल खेलती; अन्याः—दूसरी गोपियों ने; शंसन्ति—प्रशंसा की; साधु इति—"बहुत अच्छा!"

जब एक गोपी ने पूरी तरह अनुकरण कर दिखाया कि कृष्ण किस तरह दूर विचरण करती गौवों को बुलाते थे, वे किस तरह वंशी बजाते थे और वे किस तरह विविध खेलों में लगे रहते थे तो अन्यों ने बहुत खूब, बहुत खूब, (वाह वाह) चिल्लाकर बधाई दी।

कस्याञ्चित्स्वभुजं न्यस्य
चलन्त्याहापरा ननु ।
कृष्णोऽहं पश्यत गतिं
ललितामिति तन्मनाः ॥ १९॥

शब्दार्थ

कस्याञ्चित्—उनमें से एक की; स्व-भुजम्—अपनी बाँह; न्यस्य—(कंधे पर) रखकर; चलन्ती—चलती हुई; आह—बोली; अपरा—दूसरी; ननु—निस्सन्देह; कृष्णः—कृष्ण; अहम्—मैं हूँ; पश्यत—जरा देखो; गतिम्—मेरी चाल; ललिताम्—मनोहर; इति—इन शब्दों के साथ; तत्—उनमें; मनाः—पूर्णतया लीन मन से।

एक अन्य गोपी अपने मन को कृष्ण में स्थिर किये अपनी बाँह को दूसरी सखी के कन्धे पर टिकाये चलने लगी और बोली "मैं कृष्ण हूँ। जरा देखो तो मैं कितनी शान से चल रही हूँ।"

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मय ।
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥ २०॥

शब्दार्थ

मा भैष्ट—मत डरो; वात—हवा, अंधड़; वर्षाभ्याम्—तथा वर्षा से; तत्—उससे; त्राणम्—तुम्हारा उद्धार; विहितम्—नियोजित किया जा चुका है; मया—मेरे द्वारा; इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; एकेन—एक; हस्तेन—हाथ से; यतन्ती—प्रयत्न करती; उन्निदधे—उठा लिया; अम्बरम्—अपना वस्त्र।

एक गोपी ने कहा : ''आँधी-वर्षा से मत डरो।'' मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी।'' यह कहकर उसने अपना दुपट्टा अपने सिर के ऊपर उठा लिया।

तात्पर्य : यहाँ पर एक गोपी कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत उठाने का अनुकरण कर रही है।

आरुह्यैका पदाक्रम्य शिरस्याहापरां नृप ।
दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानाम्ननु दण्डकृत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

आरुह्य—ऊपर उठा कर; एका—एक गोपी; पदा—अपने पाँव से; आक्रम्य—ऊपर चढ़कर; शिरसि—सिर पर; आह—बोली; अपराम्—दूसरी से; नृप—हे राजा (परीक्षित); दुष्ट—दुष्ट; अहे—अरे साँप; गच्छ—चले जाओ; जातः—जन्मा; अहम्—मैं; खलानाम्—ईर्ष्यालुओं का; ननु—निस्सन्देह; दण्ड—दण्ड; कृत्—लगाने वाला।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] हे राजन्, एक गोपी दूसरी के कन्धे पर चढ़ गई और अपना पाँव एक अन्य गोपी के सिर पर रखती हुई बोली ''रे दुष्ट सर्प, यहाँ से चले जाओ, तुम जान लो कि मैंने इस जगत में दुष्टों को दण्ड देने के लिए ही जन्म लिया है।''

तात्पर्य : यहाँ पर गोपियाँ कृष्ण द्वारा कालिय को दण्ड देने का अनुकरण करती हैं।

तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् ।
चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; एका—उनमें से एक; उवाच—बोली; हे गोपाः—अरे ग्वालबालो; दाव-अग्निम्—जंगल की आग को; पश्यत—देखो; उल्बणम्—भयानक; चक्षूंषि—अपनी आँखें; आशु—तुरन्त, जल्दी से; अपिदध्वम्—बन्द करो; वः—तुम्हारा; विधास्ये—बन्दोबस्त करूँगी; क्षेमम्—सुरक्षा का; अञ्जसा—आसानी से।

तब एक दूसरी गोपी बोल पड़ी, मेरे प्रिय ग्वालबालो, जंगल में लगी इस आग को तो देखो, तुरन्त अपनी आँखें मूँद लो। मैं आसानी से तुम्हारी रक्षा करूँगी।

बद्धान्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले ।
बध्नामि भाण्डभेत्तारं हैयङ्गवमुषं त्विति ।
भीता सुदृक्पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

बद्धा—बाँधी गई; अन्यया—दूसरी गोपी द्वारा; स्रजा—फूल की माला से; काचित्—एक गोपी; तन्वी—छरहरी; तत्र—वहाँ; उलूखले—ओखली से; बध्नामि—बाँध रही हूँ; भाण्ड—घड़ों के; भेत्तारम्—तोड़ने वाले को; हैयम्-गव—पिछले दिन के दूध

से बचे मक्खन का; मुषम्—चोर; तु—निस्सन्देह; इति—इस प्रकार कहते हुए; भीता—भयभीत; सु-दृक्—सुन्दर आँखों वाली; पिधाय—ढककर; आस्यम्—अपना मुँह; भेजे—बना लिया; भीति—डर का; विडम्बनम्—बहाना।

एक गोपी ने अपनी एक छरहरी सी सखी को फूलों की माला से बाँध दिया और कहा, ''अब मैं इस बालक को बाँध दूँगी जिसने मक्खन की हँडिया तोड़ दी है और मक्खन चुरा लिया है।'' तब दूसरी गोपी अपना मुँह तथा सुन्दर आँखें अपने हाथ से ढक कर भयभीत होने की नकल करने लगी।

एवं कृष्णं पृच्छमाना गण्दावनलतास्तरून् ।
व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥ २४॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; कृष्णम्—कृष्ण के विषय में; पृच्छमानाः—पूछती हुईं; वृन्दावन—वृन्दावन जंगल की; लताः—लताओं से; तरून्—तथा वृक्षों से; व्यचक्षत—उन्होंने देखा; वन—जंगल के; उद्देशे—एक स्थान पर; पदानि—पाँवों के चिह्न; परम-आत्मनः—परमात्मा के।

जब गोपियाँ इस तरह कृष्ण की लीलाओं की नकल कर उतार रही थीं और वृन्दावन की लताओं तथा वृक्षों से पूछ रही थीं कि भगवान् कृष्ण कहाँ हो सकते हैं, तो उन्हें जंगल के एक कोने में उनके पदचिन्ह दिख गये।

पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः ।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥ २५॥

शब्दार्थ

पदानि—पदचिह्न; व्यक्तम्—स्पष्टतः; एतानि—ये; नन्द-सूनोः—नन्द महाराज के पुत्र के; महा-आत्मनः—महात्मा; लक्ष्यन्ते—निश्चित रूप से हैं; हि—निस्सन्देह; ध्वज—पताका; अम्भोज—कमल; वज्र—वज्र; अङ्कुश—हाथी हाँकने का अंकुश; यव-आदिभिः—जौ की बाली इत्यादि।

[गोपियों ने कहा]: इन पदचिन्हों में ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुश, जौ की बाली इत्यादि के चिन्ह स्पष्ट बतलाते हैं कि ये नन्द महाराज के पुत्र उसी महान आत्मा (कृष्ण) के हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की टीका करते हुए कृष्ण के चरणकमलों के प्रतीकात्मक चिह्नों की शास्त्रोक्त जानकारी दी है।

स्कन्द पुराण के निम्नलिखित श्लोकों में यह बताया गया है कि कृष्ण के चरणों में किस स्थान पर कौन सा चिह्न है और क्यों है—

दक्षिणस्य पदांगुष्ठमूले चक्रं बिभर्त्यजः ।

तत्र भक्तजनस्यारिषड्वर्गच्छेदनाय सः।

''अजन्मा भगवान् के दाएँ पाँव के अँगूठे के नीचे चक्र का चिह्न है, जो उनके भक्तों के छः (मानसिक) शत्रुओं का छेदन करने वाला है।''

मध्यमांगुलिमूले च धत्ते कमलमच्युतः।

ध्यातृचित्तद्विरेफाणां लोभनायाति शोभनाम्।

''अच्युत भगवान् के उसी पाँव के बीच की अँगुली के नीचे एक कमल फूल है, जो उनके चरणों का ध्यान करने वाले भ्रमररूपी भक्तों के मन में उनके प्रति लालसा को बढ़ाने वाला है।''

कनिष्ठमूलतो वज्रं भक्तपापाद्रिभेदनम्।

पार्ष्णिमध्येऽङ्कुशं भक्तचित्तेभवशकारिणम्।

''उनके पाँव की छिंगुरी के नीचे वज्र है, जो उनके भक्तों के विगत पापों के पर्वतों को ध्वस्त करता है और उनकी एड़ी के बीचोबीच अंकुश का चिह्न है, जो उनके भक्तों के मन रूपी हाथियों को वश में करता है।''

भोगसम्पन्मयं धत्ते यवमंगुष्ठपर्वणि

''दाहिने अँगूठे के पोर में जौ की बाली का चिह्न है, जो समस्त प्रकार के भोग्य ऐश्वर्यों का सूचक है।''

स्कन्द पुराण में यह भी मिलता है—

वज्रं वै दक्षिणे पार्श्वे अंकुशो वै तदग्रतः

''वज्र उनके दाएँ पाँव की दाईं ओर और अंकुश उसके नीचे पाया जाता है।''

वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों का कहना है कि चूँकि यहाँ पर जिन पाँवों की चर्चा हो रही है वे भगवान् कृष्ण के हैं, अतः हमें जान लेना होगा कि वज्र उनकी छोटी अँगुली के नीचे है और अंकुश वज्र के नीचे है। एड़ी पर अंकुश होना नारायण तथा अन्य विष्णुतत्वों में पाया जाता है।''

इस तरह *स्कन्द पुराण* में कृष्ण के दाहिने पाँव में छः चिह्न बतलाये गये हैं। ये हैं चक्र, ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुश तथा जौ की बाली। *वैष्णव तोषणी* में तो और अधिक चिह्नों का उल्लेख है उनके पाँव के बीचोंबीच से निकलने वाली खड़ी रेखा जो उनके पाँव के अँगूठे तथा दूसरी अँगुली के

बीचोबीच तक जाती है, चक्र के नीचे छत्र, उनके पाँव के मध्य भाग के नीचे चारों दिशाओं में चार *स्वस्तिक* चिह्न, उन चार विन्दुओं पर जहाँ प्रत्येक *स्वस्तिक* अगले स्वस्तिक से मिलता है चार जम्बूफल; *स्वस्तिकों* के बीच में एक अष्टभुज। इस तरह कृष्ण के दाहिने पाँव में ग्यारह चिह्न हो जाते हैं।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कृष्ण के बाएँ पाँव के चिह्नों का वर्णन इस प्रकार किया है : अँगूठे के नीचे शंख है, जिसका मुँह अँगूठे की ओर है। बीच की अँगुली के नीचे दो समकेन्द्रिक वृत्त हैं, जो अन्त: तथा बाह्य आकाश के द्योतक हैं। इस चिह्न के नीचे कामदेव का बिना डोरी का धनुष है और इस धनुष के नीचे एक त्रिभुज है और इस त्रिभुज को चार जलपात्र घेरे हैं। इस त्रिभुज के नीचे अर्धचन्द्र है, जिसके बिन्दुओं को दो त्रिभुज स्पर्श करते हैं और इस अर्धचन्द्र के नीचे एक मछली है।

इस तरह विशिष्ट चिह्न कुल मिलाकर १९ हो जाते हैं, जो भगवान् कृष्ण के चरणकमलों के तलुवे में पाये जाते हैं।

तैस्तै: पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतो ऽबला: ।
वध्वा: पदै: सुपृक्तानि विलोक्यार्ता: समब्रुवन् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तै: तै:—उन उन; पदै:—चरणचिह्नों के द्वारा; तत्—उसके; पदवीम्—मार्ग को; अन्विच्छन्त्य:—ढूँढ़ती हुई; अग्रत:—आगे की ओर; अबला:—बालाएँ; वध्वा:—उनकी विशेष प्रिया को; पदै:—चरणचिह्नों के साथ; सुपृक्तानि—पूरी तरह से मिले हुए; विलोक्य—देखकर; आर्ता:—दुखी; समब्रुवन्—बोलीं।

गोपियाँ श्रीकृष्ण के अनेक पदचिन्हों से प्रदर्शित उनके मार्ग का अनुमान करने लगीं, किन्तु जब उन्होंने देखा कि ये चिन्ह उनकी प्रियतमा के चरणचिन्हों से मिल-जुल गये हैं, तो वे व्याकुल हो उठीं और इस प्रकार कहने लगीं।

कस्या: पदानि चैतानि याताया नन्दसूनुना ।
अंसन्यस्तप्रकोष्ठाया: करेणो: करिणा यथा ॥ २७॥

शब्दार्थ

कस्या:—किसी एक गोपी के; पदानि—चरणचिह्न; च—भी; एतानि—ये; याताया:—जो जा रही थी; नन्द-सूनुना—नन्द महाराज के पुत्र के साथ साथ; अंस—जिसके कंधे पर; न्यस्त—रखा हुआ; प्रकोष्ठाया:—उनका हाथ; करेणो:—हथिनी के; करिणा—हाथी द्वारा; यथा—जिस तरह।

[गोपियों ने कहा]: यहाँ पर हमें किसी गोपी के चरणचिन्ह दिख रहे हैं, जो अवश्य ही

नन्द महाराज के पुत्र के साथ साथ चल रही होगी। उन्होंने उसके कंधे पर अपना हाथ उसी तरह रखा होगा जिस तरह एक हाथी अपनी सूँड़ अपनी सहगामिनी हथिनी के कंधे पर रख देता है।

अनयाराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥ २८॥

शब्दार्थ

अनया—उसके द्वारा; आराधितः—भलीभाँति पूजित; नूनम्—निश्चय ही; भगवान्—भगवान्; हरिः—कृष्ण; ईश्वरः—परम नियन्ता; यत्—इतना कि; नः—हमको; विहाय—त्यागकर; गोविन्दः—भगवान् गोविन्द; प्रीतः—प्रसन्न; याम्—जिसको; अनयत्—ले गये; रहः—एकान्त स्थान में।.

इस विशिष्ट गोपी ने निश्चित ही सर्वशक्तिमान भगवान् गोविन्द की पूरी तरह पूजा की होगी क्योंकि वे उससे इतने प्रसन्न हो गये कि उन्होंने हम सबों को छोड़ दिया और उसे एकान्त स्थान में ले आये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की व्याख्या है कि *आराधितः* शब्द श्रीमती राधारानी के लिए आया है। उनकी टीका है ''शुकदेव गोस्वामी ने उसका नाम गुप्त रखने का भरसक प्रयास किया है किन्तु उनके मुखरूपी चन्द्रमा से वह स्वतः प्रकाशित हो उठता है। उन्होंने राधा का नाम ले लिया, यह श्रीमती राधारानी की कृपा है, अतः *आराधितः* शब्द राधा के सौभाग्य को सूचित करने वाला दुन्दुभिघोष है।''

यद्यपि गोपियाँ श्रीमती राधारानी के प्रति ईर्ष्यालु लगती हैं किन्तु वे यह देखकर पुलकित थीं कि राधा ने श्रीकृष्ण को बन्दी बना लिया था।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने श्रील रूप गोस्वामी कृत *श्री उज्ज्वल नीलमणि* में श्रीमती राधारानी के पदचिह्नों का जो विस्तृत वर्णन है, उसे उद्धृत किया है—

''उनके दाएँ पाँव के अँगूठे के नीचे जौ का चिह्न है, उसके नीचे चक्र, चक्र के नीचे छत्र तथा छत्र के नीचे बाजूबन्द (कंगन) है। उनके पाँव के बीच से एक खड़ी रेखा अँगूठे तथा दूसरी अँगुली के बीच तक जाती है। बीच की अँगुली के नीचे कमल है और उसके नीचे ध्वजा है और ध्वजा के नीचे लता है, जिसमें एक फूल लगा है। उनके पाँव की छिगुनी के नीचे अंकुश है और उनकी एड़ी में अर्धचन्द्र है। इस तरह उनके बाएँ पाँव में ११ चिह्न हैं।''

उनके दाहिने पाँव के अँगूठे के नीचे शंख है और उसके नीचे भाला है, उनके दायें पाँव की

छिगुनी के नीचे यज्ञवेदी है, जिसके नीचे कुंडल है और कुंडल के नीचे फिर भाला है। दूसरी, तीसरी, चौथी अँगुलियों तथा छिगुनी के नीचे पर्वत का चिह्न है, जिसके नीचे रथ है और एड़ी में मछली का चिह्न है।

''इस तरह श्रीमती राधारानी के चरणकमलों के तलवों में १९ विशिष्ट चिह्न हैं।''

धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः ।
यान्ब्रह्मेशौ रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

धन्याः—पवित्र हो गईं; अहो—ओह; अमी—ये; आल्यः—हे गोपियो; गोविन्द—गोविन्द के; अङ्घ्रि-अब्ज—चरणकमलों के; रेणवः—धूल कण; यान्—जो; ब्रह्मा—ब्रह्मा; ईशौ—तथा शिवजी; रमा देवी—भगवान् विष्णु की पत्नी, रमा देवी; दधुः—धारण करते हैं; मूर्ध्नि—अपने शिरों पर; अघ—उनके पापों का; नुत्तये—दूर करने के लिए।

हे बालाओ, गोविन्द के चरणों की धूल इतनी पवित्र है कि ब्रह्मा, शिव तथा रमादेवी भी अपने पापों को दूर करने के लिए उस धूल को अपने सिरों पर धारण करते हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने शास्त्र से उद्धरण देकर बतलाया है कि प्रत्येक दिन संध्या समय जब कृष्ण अपने ग्वालमित्रों के साथ चरागाहों से लौटते थे तो ब्रह्मा तथा शिव जैसे बड़े बड़े देवता स्वर्ग से उतरकर उनके चरणों की धूल ग्रहण करते थे।

रमादेवी (विष्णु-पत्नी), शिव तथा ब्रह्मा जैसे महापुरुष तनिक भी पापी नहीं हैं। किन्तु शुद्ध कृष्ण भावनाभावित होकर वे अपने को पतित तथा अपवित्र मानते हैं। इस तरह अपने को शुद्ध करने की इच्छा से वे बड़े ही आनन्द से भगवान् के चरणकमलों की धूल अपने सिर पर धारण करते हैं।

तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत्
यैकापहृत्य गोपीनाम्रहो भुन्क्तेऽच्युताधरम् ।
न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणाङ्कुरैः
खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तस्याः—उसके; अमूनि—ये; नः—हमारे लिए; क्षोभम्—खेद; कुर्वन्ति—उत्पन्न करते हैं; उच्चैः—अत्यधिक; पदानि—चरणचिह्न; यत्—क्योंकि; या—जो; एका—अकेले; अपहृत्य—एक तरफ ले जाकर; गोपीनाम्—समस्त गोपियों का; रहः—एकान्त में; भुङ्क्ते—भोग करती है; अच्युत—कृष्ण के; अधरम्—होंठों का; न लक्ष्यन्ते—नहीं दिखते; पदानि—पाँव; अत्र—यहाँ; तस्याः—उसके; नूनम्—निश्चय ही; तृण—घास; अङ्कुरैः—तथा उगते हुए कल्लों द्वारा; खिद्यत्—पीड़ा होने से; सुजात—कोमल; अङ्घ्रि—पाँव; तलाम्—तलुवे; उन्निन्ये—ऊपर उठा लिया; प्रेयसीम्—अपनी प्रिया को; प्रियः—उसके प्रियतम कृष्ण ने।

उस विशिष्ट गोपी के ये चरणचिन्ह हमें अत्यधिक विचलित कर रहे हैं। समस्त गोपियों में से केवल वही एकान्त स्थान में ले जाई गई जहाँ वह कृष्ण के अधरों का पान कर रही है। देखो न, हमें यहाँ पर उसके पदचिन्ह नहीं दिख रहे। स्पष्ट है कि घास तथा कुश उसके पाँवों के कोमल तलुवों को कष्ट पहुँचा रहे होंगे अतः प्रेमी ने अपनी प्रेयसी को उठा लिया होगा।

इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ।
गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः ।
अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

इमानि—ये; अधिक—अधिक; मग्नानि—मिले-जुले; पदानि—पदचिह्नों को; वहतः—ले जाने वाले के; वधूम्—अपनी प्रेयसी को; गोप्यः—हे गोपियो; पश्यत—जरा देखो; कृष्णस्य—कृष्ण के; भार—बोझ से; आक्रान्तस्य—पीड़ित; कामिनः—कामी; अत्र—इस स्थान में; अवरोपिता—नीचे रखी गई; कान्ता—प्रेमिका; पुष्प—फूलों (के चुनने) के; हेतोः—लिए; महा-आत्मना—अत्यन्त चतुर द्वारा।

मेरी प्यारी गोपियो, जरा देखो न, किस तरह इस स्थान पर कामी कृष्ण के पदचिन्ह पृथ्वी में गहरे धँसे हुए हैं। अपनी प्रियतमा के भार को वहन करना अवश्य ही उनके लिए कठिन हो रहा होगा। और यहाँ पर तो उस चतुर छोरे ने कुछ फूल चुनने के लिए उसे नीचे रख दिया होगा।

तात्पर्य : *वधूम्* शब्द सूचित करता है कि यद्यपि श्रीकृष्ण ने आधिकारिक रूप से राधारानी के साथ विवाह नहीं किया था किन्तु उन्होंने वृन्दावन के जंगल में उन्हें अपनी दुलहन बना लिया था।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार गोपियों द्वारा प्रयुक्त *कामिनः* शब्द से निम्नलिखित विचार सूचित होते हैं "हम वास्तविक रूप में श्रीकृष्ण से प्रेम करती हैं फिर भी उन्होंने हमें ठुकरा दिया है। अतः राधारानी के साथ उनके गुप्त व्यापार से सिद्ध होता है कि व्रज का यह तरुण राजकुमार काम के वशीभूत होकर उसे यहाँ से उठा ले गया है। यदि उन्हें प्रेम में रुचि होती तो वे उस ग्वालपुत्री राधारानी के स्थान पर हमें अपना बना लिये होते।"

ये विचार गोपियों के भाव को बतलाते हैं, जो श्रीमती राधारानी की प्रतिद्वंद्विने थीं। वस्तुतः, गोपियाँ, जो राधा की प्रत्यक्ष संगिनी हैं उसके सौभाग्य को देखकर हर्षित थीं।

अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ।
प्रपदाक्रमण एते पश्यतासकले पदे ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

अत्र—यहाँ; प्रसून—फूलों का; अवचयः—चुना जाना; प्रिया-अर्थे—अपनी प्रिया के लिए; प्रेयसा—प्रेमी कृष्ण द्वारा; कृतः—किया गया; प्रपद—पैर का अगला हिस्सा (पंजा); आक्रमणे—धँसने से; एते—ये; पश्यत—जरा देखो; असकले—अपूर्ण; पदे—पदचिह्नों की जोड़ी।

जरा देखो न, किस तरह प्रिय कृष्ण ने यहाँ पर अपनी प्रिया के लिए फूल चुने हैं। यहाँ उनके पाँव के अगले हिस्से (पंजे) का ही निशान पड़ा हुआ है क्योंकि फूलों तक पहुँचने के लिए वे अपने पंजों के बल खड़े हुये थे।

केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ।
तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

केश—अपने बालों के; प्रसाधनम्—गूँथने या सँवारने के लिए; तु—यही नहीं; अत्र—यहाँ; कामिन्याः—कामुक लड़की का; कामिना—कामी लड़के द्वारा; कृतम्—किया गया; तानि—उन (फूलों) से; चूडयता—जूड़ा बनाने वाले के द्वारा; कान्ताम्—अपनी प्रिया को; उपविष्टम्—बैठाया; इह—यहाँ; ध्रुवम्—निश्चित रूप से।

कृष्ण यहाँ पर निश्चित रूप से अपनी प्रेयसी के साथ उसके केश सँवारने के लिए बैठे थे। उस कामी लड़के ने उस कामुक लड़की के लिए उन फूलों से जूड़ा बनाया होगा, जिसे उसने एकत्र किया था।

तात्पर्य : आचार्यगण बतलाते हैं कि श्रीकृष्ण ने अपने द्वारा चुने गये फूलों से राधारानी के केशों को सजाना चाहा। अत: वे दोनों एक ही दिशा में मुख करके बैठ गये जिससे राधारानी कृष्ण के घुटनों के बीच थीं और कृष्ण उन फूलों से जूड़ा बनाने लगे मानो वे उस वनदेवी को मुकुट पहना रहे हों। इस तरह विलासी तरुण तथा तरुणी साथ साथ वृन्दावन में खेलते और हास-परिहास करते रहे।

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः ।
कामिनां दर्शयन्दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

रेमे—आनन्द लूटा; तया—उसके साथ; च—तथा; आत्म-रतः—अपने में ही आनन्द लेने वाले; आत्म-आरामः—आत्मतुष्ट; अपि—यद्यपि; अखण्डितः—कभी अपूर्ण न रहने वाले; कामिनाम्—सामान्य विलासी पुरुषों का; दर्शयन्—दिखलाते हुए; दैन्यम्—दीनावस्था; स्त्रीणाम्—सामान्य स्त्रियों की; च एव—भी; दुरात्मताम्—निष्ठुरता।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] भगवान् कृष्ण ने उस गोपी के साथ भोग-विलास किया यद्यपि वे अपने आप में तुष्ट रहने तथा पूर्ण होने के कारण केवल भीतर ही भीतर आनन्दमग्न होते हैं। इस तरह विराधोभास के द्वारा उन्होंने सामान्य कामी पुरुषों एवं निष्ठुर स्त्रियों की दुष्टता

का प्रदर्शन किया।

तात्पर्य : यह श्लोक भगवान् कृष्ण की लीलाओं के प्रति कभी कभी की जाने वाली भौतिकतावादी लोगों की बनावटी आलोचना का खण्डन करता है। दार्शनिक अरस्तू का दावा था कि सामान्य कार्य ईश्वर को शोभा नहीं देते अत: कुछ लोग इसी विचार को ध्यान में रखकर घोषित करते हैं कि क्योंकि भगवान् कृष्ण के कार्यकलाप सामान्य मनुष्यों से मेल खाते हैं अत: वे परब्रह्म नहीं हो सकते।

किन्तु इस श्लोक में शुकदेव गोस्वामी जोरदार ढंग से संकेत करते हैं कि भगवान् कृष्ण आत्माराम के मुक्त पद पर स्थित होकर कर्म करते हैं। यह तथ्य *आत्मरत, आत्माराम* तथा *अखण्डित* जैसे शब्दों से सूचित है। सामान्य लोग यह सोच ही नहीं सकते कि एक सुन्दर तरुण तथा एक सुन्दरी युवती जंगल में चाँदनी रात में माधुर्य भाव से विलासरत होकर शुद्ध कर्म में लग सकते हैं, जो कामेच्छा तथा मिथ्या अभिमान से रहित हो। फिर भी कृष्ण सामान्य पुरुषों के लिए अचिन्त्य रहते हुए भी उन लोगों द्वारा जो उनसे प्रेम करते हैं सहज ही उनके कार्यकलापों में परम शुद्ध स्वभाव को अनुभव कर सकते हैं।

यह तर्क किया जा सकता है कि सौन्दर्य तो देखने वाले की आँखों में बसता है, अत: कृष्ण के भक्त भगवान् के कार्यकलापों को केवल शुद्ध होने के अनुमान लगाते हैं। यह तर्क अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों की अवहेलना करता है। कृष्णभावनामृत के मार्ग की माँग है कि भक्त चार विधानों का दृढ़ता से पालन करे। ये हैं अवैध यौन, द्यूतक्रीड़ा, नशा तथा मांस, मछली या अंडे के आहार का सर्वथा निषेध। जब मनुष्य भौतिक कामेच्छा से मुक्त होकर मुक्त पद को प्राप्त होता है, तो उसे भगवान् कृष्ण के परम सौन्दर्य की अनुभूति होती है। यह विधि सैद्धान्तिक नहीं है। इसका अभ्यास हजारों ऋषि-मुनि करते आये हैं जिन्होंने कृष्णभावनामृत मार्ग विषयक अपने प्रकाशमय व्यक्तिगत उदाहरण एवं उज्ज्वल शिक्षाएँ हमारे लिए रख छोड़ी हैं।

निश्चय ही सौन्दर्य देखने वाले की आँखों में होता है। फिर भी असली सौन्दर्य आत्मा की आँखों से देखा जाता है, भौतिक शरीर की कामुक आँखों से नहीं। इसीलिए वैदिक वाङ्मय बारम्बार बल देता है कि केवल भौतिक इच्छा से मुक्त लोगों द्वारा भगवत्प्रेम से आँजी हुई, शुद्ध *आत्मा* की आँखों से ही

भगवान् का दर्शन किया जा सकता है। अन्तिम बात जो ध्यान देने की है, वह यह है कि भगवान् कृष्ण की लीलाओं की अनुभूति होने पर मनुष्य कामेच्छा से मुक्त हो जाता है, जो मानसिक स्थिति भौतिक काम-व्यापार के चिन्तन से प्राप्त नहीं की जा सकती।

अन्तिम टिप्पणी है : कृष्ण की माधुर्य लीलाएँ परम पूर्ण सत्य के रूप में उनकी अर्हताओं को पूर्णतः सिद्ध कर देती हैं। *वेदान्त* का कथन है कि परम सत्य प्रत्येक वस्तु का उद्‍गम है, अतः परम पुरुष में इस भौतिक जगत की किसी भी सुन्दर वस्तु का अभाव नहीं होता। चूँकि परम पुरुष में विलास-व्यापार केवल शुद्ध आध्यात्मिक रूप में ही पाये जाते हैं इसलिए वे इस जगत में विकृत भौतिक रूप में प्रकट हो सकते हैं। इस तरह इस जगत के आभासी सौन्दर्य को पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता, प्रत्युत सौन्दर्य को उसके शुद्ध एवं आध्यात्मिक रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए।

चूँकि अनादि काल से पुरुष तथा स्त्रियाँ प्रणय-कला के कवित्वमय आनन्द से प्रोत्साहित होती रही हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश इस जगत में प्रेमालाप का अन्त हृदय-परिवर्तन या मृत्यु के कारण निराशा, में होता है। यद्यपि प्रेम-व्यापार प्रारम्भ में सुन्दर तथा आनन्दप्रद लगते हैं किन्तु अन्ततः प्रकृति के प्रहार से वे विनष्ट हो जाते हैं। फिर भी प्रणय की संकल्पना को पूरी तरह बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। हमें चाहिए कि माधुर्य आकर्षण को उसके चरम, पूर्ण, शुद्ध रूप में स्वीकार करें जैसाकि ईश्वर में यह पाया जाता है—भौतिक काम या स्वार्थ से सर्वथा रहित। *श्रीमद्‍भागवत* के इन पृष्ठों में हम शुद्ध माधुर्य आकर्षण—परम सत्य का परम सौन्दर्य और आनंद—का ही पठन करते हैं।

इत्येवं दर्शयन्त्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः ।
यां गोपीमनयत्कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने ॥ ३५ ॥
सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् ।
हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; एवम्—इस विधि से; दर्शयन्त्यः—दिखलाती हुई; ताः—वे; चेरुः—घूमती रहीं; गोप्यः—गोपियाँ; विचेतसः—पूर्णतया भ्रमित; याम्—जिस; गोपीम्—गोपी को; अनयत्—ले गये; कृष्णः—भगवान् कृष्ण; विहाय—छोड़कर; अन्याः—दूसरी; स्त्रियः—स्त्रियों को; वने—जंगल में; सा—उसने; च—भी; मेने—सोचा; तदा—तब; आत्मानम्—अपने आपको; वरिष्ठम्—श्रेष्ठ; सर्व—सभी; योषिताम्—स्त्रियों में; हित्वा—त्यागकर; गोपीः—गोपियों को; काम-यानाः—कामेच्छा से वशीभूत; माम्—मुझको; असौ—वह; भजते—मानता है; प्रियः—प्रिया, प्रेमिका।

जब गोपियाँ पूर्णतया भ्रमित मनों से घूम रही थीं तो उन्होंने कृष्ण लीलाओं के विविध चिन्हों

की ओर संकेत किया। वह विशिष्ट गोपी जिसे कृष्ण अन्य युवतियों को त्यागकर एकान्त जंगल में ले गये थे, अपने को सर्वश्रेष्ठ स्त्री समझने लगी। उसने सोचा, "मेरे प्रियतम ने उन अन्य समस्त गोपियों का तिरस्कार कर दिया है यद्यपि वे साक्षात् कामदेव के वशीभूत हैं। उन्होंने केवल मेरे ही साथ प्रेम करने का चुनाव किया है।"

तात्पर्य : इसके पूर्व सारी गोपियाँ कृष्ण की संगति के लिए गर्वित थीं किन्तु सहसा उनका संग छूट गया। केवल राधारानी उनके साथ रहीं। अब वे भी उस संग से गर्वित हो उठी हैं अतएव उन्हें भी वैसा ही परिणाम भोगना होगा। भगवान् के लिए गोपियों की अद्वितीय भक्ति प्रदर्शित करने के लिए ही भगवान् ने ऐसी योजना की है। यह वह भक्ति है, जिसकी गूढ़ता पूर्णतया विरह के क्षणों में ही प्रदर्शित होती है।

ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ।
न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

ततः—तब; गत्वा—जाकर; वन—जंगल के; उद्देशम्—एक कोने में; दृप्ता—गर्वित होकर; केशवम्—कृष्ण से; अब्रवीत्—बोली; न पारये—समर्थ नहीं हूँ; अहम्—मैं; चलितुम्—चल पाने के लिए; नय—ले चलो; माम्—मुझको; यत्र—जहाँ; ते—तुम्हारा; मनः—मन।

जब दोनों प्रेमी वृन्दावन जंगल के एक भाग से जा रहे थे तो विशिष्ट गोपी को अपने ऊपर गर्व हो आया। उसने भगवान् केशव से कहा, "अब मुझसे और नहीं चला जाता। आप जहाँ भी जाना चाहें मुझे उठाकर ले चलें।"

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति ।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; उक्तः—कहा गया; प्रियाम्—अपनी प्रिया को; आह—कहा; स्कन्धे—मेरे कन्धे पर; आरुह्यताम्—चढ़ लो; इति—ये शब्द; ततः—तब; च—तथा; अन्तर्दधे—वे अन्तर्धान हो गये; कृष्णः—श्रीकृष्ण; सा—वह; वधूः—उनकी प्रिया; अन्वतप्यत—व्याकुल हो गई।

ऐसा कहे जाने पर भगवान् कृष्ण ने उत्तर दिया "मेरे कन्धे पर चढ़ जाओ।" किन्तु यह कहते ही वे विलुप्त हो गये। उनकी प्रिया को तब अत्यधिक क्लेश हुआ।

तात्पर्य : श्रीमती राधारानी उस सुन्दरी का मान (गर्व) दिखला रही थी जिसने अपने प्रेमी को

अपने वश में कर लिया हो। अत: वे कृष्ण से बोलीं "आप जहाँ चलना चाहें मुझे उठाकर ले चलें। अब मैं और नहीं चल सकती।" अब श्रीकृष्ण उनकी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं जिससे उनका भावात्मक प्रेम अधिकाधिक गहन हो जाता है।

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

हा—हे; नाथ—स्वामी; रमण—प्रेमी; प्रेष्ठ—प्रियतम; क्व असि क्व असि—तुम कहाँ हो, तुम कहाँ हो; महा-भुज—हे बलिष्ठ भुजाओं वाले; दास्या:—दासी के प्रति; ते—तुम्हारी; कृपणाया:—दीन; मे—मुझको; सखे—हे मित्र; दर्शय—दिखलाइये; सन्निधिम्—उपस्थिति।

वह चिल्ला उठी: हे स्वामी, हे प्रेमी, हे प्रियतम, तुम कहाँ हो? तुम कहाँ हो? हे बलिष्ठ भुजाओं वाले, हे मित्र, अपनी दासी बेचारी को अपना दर्शन दो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने निम्नलिखित मार्मिक वार्तालाप का वर्णन किया है—

राधा कहती हैं, "मेरे प्रभु! मैं आपकी वियोगाग्नि में जल रही हूँ और मेरे प्राण मेरा शरीर छोड़ने ही वाले हैं। मैं अत्यधिक प्रयास करके भी अपने प्राण नहीं रख पा रही। किन्तु आप मेरे जीवन के स्वामी हैं अत: मेरे ऊपर मात्र दृष्टि डालकर तुरन्त मुझे बचा सकते हैं। कृपया ऐसा तुरन्त कीजिए। मैं आपसे अपना जीवन बचाने की याचना अपने लिए नहीं अपितु आपके लिए करती हूँ। अन्य सारी गोपियों को त्यागकर आप मुझे जंगल में इस दूर एकान्त स्थान में मेरे साथ विशेष आनन्द उठाने के लिए लाये हैं। यदि मैं मरती हूँ तो आपको अन्यत्र माधुर्य सुख नहीं मिल सकता। आप मेरा स्मरण कर करके दुखी होकर पछताते रहेंगे।"

कृष्ण उत्तर देते हैं, "मुझे दुखी होने दो। इससे तुम्हें क्या प्रयोजन?" "लेकिन आप मुझे सर्वाधिक प्रिय हैं। मुझे आपका दुख आपसे लाखों गुना अधिक लगेगा। यदि मैं पहले मर भी चुकी होती तो भी मैं आपके चरणकमल के नाखून के एक बिंदु पर हुई पीड़ा को सहन नहीं कर सकती। ऐसी पीड़ा रोकने के लिए मैं अपने जीवन को लाख लाख बार ठुकराने के लिए तैयार हूँ। अत: मुझे दर्शन देकर उस दुख को दूर कीजिये।"

"किन्तु यदि तुम्हारे प्राण छूटने ही वाले हैं, तो उसे रोकने के लिए मैं कर ही क्या सकता हूँ?"

"केवल अपनी बाँहों का स्पर्श दे दो। वह ऐसी औषधि है, जिसकी शक्ति से मृत भी जीवित हो

उठता है। मेरा शरीर पुनः स्वस्थ हो जायेगा और मेरा प्राण मेरे शरीर में अपने आप वापस आ जायेगा और मेरे शरीर में ही टिका रहेगा।''

''किन्तु तुम तो मेरी सहायता के बिना ही जंगल का रास्ता जानती हो तो फिर तुमने मुझ इस राजकुमार तथा अत्यन्त तरुण एवं भद्र बालक को आदेश क्यों दिया। उसका तो आदर किया जाना चाहिए था। तुमने यह आदेश क्यों दिया कि तुम जहाँ चाहे ले चलो? तुमने मुझे इस तरह क्रुद्ध क्यों किया?''

राधा चिल्ला उठती हैं ''कृपा करके अपनी दीन दासी को अपना मुखड़ा दिखाइये। मुझपर कृपा कीजिये! कृपालु होइये। जब मैंने आपको आदेश दिया था, तो मैं नींद से विवश हो चली थी। मैं आपके साथ केलि करने से थक गई थी। अतः आपकी दासी बेचारी ने जो कहा उसे क्षमा कर दें। कृपया क्रुद्ध न हों। चूँकि आपने मेरे साथ ऐसे घनिष्ठ मित्र जैसा व्यवहार किया, यद्यपि मैं जिसकी पात्र न थी, इसीलिए मैं आपसे ऐसा कह गई।''

''ठीक, प्रिये! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ अतः मेरे पास आओ।''

''किन्तु मैं तो पश्चाताप से अंधी हो चुकी हूँ। मैं नहीं देख पा रही कि आप कहाँ हैं। बतलाइये न, आप कहाँ हैं।''

श्रीशुक उवाच
अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्योऽविदूरितः ।
ददृशुः प्रियविश्लेषान्मोहितां दुःखितां सखीम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अन्विच्छन्त्यः—ढूँढ़ती हुई; भगवतः—भगवान् का; मार्गम्—रास्ता; गोप्यः—गोपियों ने; अविदूरितः—दूर नहीं, पास ही; ददृशुः—देखा; प्रिय—अपने प्रेमी से; विश्लेषात्—बिछुड़ने के कारण; मोहिताम्—मोहग्रस्त; दुःखिताम्—दुखी; सखीम्—अपनी सखी को।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कृष्ण के रास्ते को खोजती हुई गोपियों ने अपनी दुखी सखी को पास में ही ढूँढ़ निकाला। वह अपने प्रेमी के विछोह से मोहग्रस्त थी।

तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ।
अवमानं च दौरात्म्याद्विस्मयं परमं ययुः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

तया—उसके द्वारा; कथितम्—जो कुछ कहा गया; आकर्ण्य—सुनकर; मान—आदर की; प्राप्तिम्—प्राप्ति; च—तथा; माधवात्—कृष्ण से; अवमानम्—अनादर; च—भी; दौरात्म्यात्—अपने दुर्व्यवहार से; विस्मयम्—विस्मय; परमम्—अत्यधिक; ययुः—अनुभव किया।

उसने उन्हें बताया कि माधव ने उसको कितना आदर (मान) प्रदान किया था किन्तु अब उसे अपने दुर्व्यवहार के कारण अनादर झेलना पड़ा। गोपियाँ यह सुनकर अत्यन्त विस्मित थीं।

तात्पर्य : राधारानी द्वारा कृष्ण से उठाकर ले चलने के लिए कहना स्वाभाविक था क्योंकि यह याचना उनके प्रेम-सम्बन्ध के अनुकूल ही थी। किन्तु अब वे अत्यन्त दीनतावश अपने व्यवहार को कुटिल बताती हैं। इन बातों को सुनकर अन्य गोपियाँ विस्मित थीं।

ततोऽविशन्वनं चन्द्र ज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते ।
तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अविशन्—प्रविष्ट हुईं; वनम्—जंगल में; चन्द्र—चन्द्रमा की; ज्योत्स्ना—चाँदनी; यावत्—जहाँ तक; विभाव्यते—दृष्टिगोचर थी; तमः—अँधेरा; प्रविष्टम्—प्रवेश किया हुआ; आलक्ष्य—देखकर; ततः—तत्पश्चात्; निववृतुः—विरत हो गईं; स्त्रियः—स्त्रियाँ।

तत्पश्चात् गोपियाँ कृष्ण की खोज में जंगल के भीतर उतनी दूर तक गईं जहाँ तक चन्द्रमा की चाँदनी थी। किन्तु जब उन्होंने अपने को अंधकार से घिरता देखा तो उन्होंने लौट आने का निश्चय किया।

तात्पर्य : गोपियाँ जंगल के ऐसे घने भाग में जा पहुँची थी जहाँ पूर्ण चन्द्रमा का प्रकाश भी प्रवेश नहीं कर सकता था। *विष्णु पुराण* में इस दृश्य का भी वर्णन है :

प्रविष्टो गहनं कृष्णः पदमत्र न लक्ष्यते।

निवर्तध्वं शशांकस्य नैतद् दीधितिगोचरः ॥

''एक गोपी ने कहा : ''कृष्ण जंगल के ऐसे घने भाग में प्रविष्ट हो चुके हैं कि हम उनके पदचिह्नों को भी नहीं देख सकतीं। अतः हमें इस क्षेत्र से, जहाँ चाँदनी भी नहीं पहुँच सकती, लौट चलना चाहिए।''

तन्मनस्कास्तदलापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मगाराणि सस्मरुः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तत्-मनस्काः—उनके विचारों से भरे हुए मन; तत्-आलापाः—उनके विषय में बातें करती; तत्-विचेष्टाः—उनके कार्यकलापों की नकल करतीं; तत्-आत्मिकाः—उनकी उपस्थिति से पूरित; तत्-गुणान्—उनके गुणों के विषय में; एव—केवल; गायन्त्यः—गाती हुईं; न—नहीं; आत्म—अपने; आगाराणि—घरों को; सस्मरुः—याद किया।

उन सब के मन उनके (कृष्ण के) विचारों में लीन होने से वे उन्हीं के विषय में बातें करने लगीं, उन्हीं की लीलाओं का अनुकरण करने लगीं और अपने को उनकी उपस्थिति से पूरित अनुभव करने लगीं। वे अपने घरों के विषय में पूरी तरह भूल गईं और कृष्ण के दिव्य गुणों का जोर जोर से गुणगान करने लगीं।

तात्पर्य : वस्तुत: शुद्ध भगवद्भक्तों के लिए कृष्ण से विछोह नहीं होता है। यद्यपि ऊपर से लगता है कि कृष्ण ने गोपियों का परित्याग कर दिया था किन्तु वास्तव में वे *श्रवणं कीर्तनं विष्णोः* अर्थात् भगवान् के यश के श्रवण तथा कीर्तन की आध्यात्मिक विधि द्वारा उनसे मजबूती से बँधी थीं।

पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः ।
समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ॥ ४४॥

शब्दार्थ

पुनः—फिर से; पुलिनम्—किनारे पर; आगत्य—आकर; कालिन्द्याः—यमुना नदी के; कृष्ण-भावनाः—कृष्ण का ध्यान करती; समवेताः—एकत्र हो गईं; जगुः—गाने लगीं; कृष्णम्—कृष्ण के विषय में; तत्-आगमन—उनके आगमन की; काङ्क्षिताः—आकांक्षा करती हुई।

गोपियाँ फिर से कालिन्दी के किनारे आ गईं। कृष्ण का ध्यान करते तथा उत्सुकतापूर्वक यह आशा लगाये कि वे आयेंगे ही, वे उनके विषय में गीत गाने के लिए एकसाथ बैठ गईं।

तात्पर्य : जैसाकि *कठ उपनिषद* (१.२.२३) में कहा गया है *यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः* परमात्मा की अनुभूति उसी को हो सकती है, जिसका वे चुनाव करते हैं। इस तरह गोपियाँ उत्कटतापूर्वक प्रार्थना करती हैं कि कृष्ण उनके पास वापस आ जाँय।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''गोपियों द्वारा कृष्ण की खोज'' नामक तीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter इकतीस

गोपियों के विरह गीत

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह कृष्ण के वियोग की भावना से अभिभूत गोपियाँ यमुना के किनारे बैठ गईं और उनका दर्शन पाने के लिए प्रार्थना करने लगीं और उनके यश का गायन करने लगीं।

चूँकि गोपियों ने अपने मन और प्राण तक कृष्ण को अर्पित कर दिये थे अतएव विरह की दिव्य पीड़ा से वे अपने आप में नहीं थीं। किन्तु दीनता के प्रमाणस्वरूप लगने वाला उनका रोदन वास्तव में उनकी दिव्य आनन्दावस्था को प्रदर्शित करने वाला है। जैसाकि कहा गया है—*यत देख वैष्णवेर व्यवहार दु:ख/ निश्चय जानिह सेइ परमानन्द सुख*—जब भी कोई किसी वैष्णव को दुखी होते देखता है, तो उसे निश्चित रूप से समझना चाहिए कि वह वास्तव में परम आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव कर रहा है। इस तरह प्रत्येक गोपी अपने अपने आनंद के भाव के अनुसार श्रीकृष्ण को सम्बोधित करने लगी और सबों ने उनकी कृपा के लिए प्रार्थना की।

ज्योंही गोपियों के मन में कृष्ण की लीलाएँ उठीं त्योंही वे उनके गीत गाने लगीं जो कृष्ण की विरहाग्नि से दुखितों की वेदना को दूर करने वाले और परम मंगल प्रदान करने वाले होते हैं। उन्होंने गाया, "हे स्वामी, हे प्रिय, हे छलिया! जब हम तुम्हारी हँसी, तुम्हारी प्रेममयी चितवन तथा तुम्हारे बालसखाओं के साथ तुम्हारी लीलाओं को याद करती हैं, तो हम अतीव क्षुब्ध हो उठती हैं। गोधूल से सने काले घुँघराले केशों से सुसज्जित तुम्हारे कमलमुख का स्मरण करके हम एकान्त भाव से तुममें अटूट रूप से अनुरक्त हो जाती हैं। और जब हम स्मरण करती हैं कि तुम किस तरह अपने कोमल पैरों से एक जंगल से दूसरे जंगल तक गौवों का पीछा करते थे तो हमें महान् पीड़ा होती है।"

कृष्ण के वियोग में गोपियों को एक-एक क्षण पूरे युग जैसा प्रतीत होता था। इसके पूर्व भी जब उन्होंने उन्हें देखा था, तो उनकी झपकती पलकें असह्य लग रही थीं क्योंकि उनसे उनका दृश्य कुछ देर के लिए अवरुद्ध हो जाता था।

गोपियों ने कृष्ण के लिए जो भावनाएँ व्यक्त कीं वे भले ही काम के लक्षणों से युक्त प्रतीत हों किन्तु वास्तव में वे भगवान् की आध्यात्मिक इन्द्रियों को तुष्ट करने की उनकी शुद्ध इच्छा की अभिव्यक्ति हैं। गोपियों के इन भावों में काम छू तक नहीं गया है।

गोप्य ऊचुः
जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः ऊचुः—गोपियों ने कहा; जयति—जय हो; ते—तुम्हारी; अधिकम्—अधिक; जन्मना—जन्म से; व्रजः—व्रजभूमि; श्रयते—वास करती है; इन्दिरा—लक्ष्मीदेवी; शश्वत्—निरन्तर; अत्र—यहाँ; हि—निस्सन्देह; दयित—हे प्रिय; दृश्यताम्—(आप) देखे जा सकें; दिक्षु—सभी दिशाओं में; तावकाः—आपके (भक्त); त्वयि—आपके लिए; धृत—धारण किये हुए; असवः—अपने प्राण; त्वाम्—तुमको; विचिन्वते—खोज रही हैं।

गोपियों ने कहा : हे प्रियतम, व्रजभूमि में तुम्हारा जन्म होने से ही यह भूमि अत्यधिक महिमावान हो उठी है और इसीलिए इन्दिरा (लक्ष्मी) यहाँ सदैव निवास करती हैं। केवल तुम्हारे लिए ही तुम्हारी भक्त दासियाँ हम अपना जीवन पाल रही हैं। हम तुम्हें सर्वत्र ढूँढ़ती रही हैं अतः कृपा करके हमें अपना दर्शन दीजिये।

तात्पर्य : जो लोग संस्कृत श्लोकों की उच्चारण-कला से परिचित हैं, वे इस बात की सराहना करेंगे कि इस अध्याय का संस्कृत काव्य बेजोड़ है। विशेषतया श्लोकों के छन्द असामान्य रूप से सुन्दर हैं और अधिकांशतः प्रत्येक पंक्ति का प्रथम तथा सप्तम अक्षर एक ही व्यञ्जन से प्रारम्भ होता है। उसी तरह चारों पंक्तियों के द्वितीय शब्द भी हैं।

शरदुदाशये साधुजातसत्-
सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

शरत्—शरद ऋतु का; उद-आशये—जलाशय में; साधु—उत्तम रीति से; जात—उगा; सत्—सुन्दर; सरसि-ज—कमल के फूलों के; उदर—मध्य में; श्री—सौन्दर्य; मुषा—अद्वितीय; दृशा—आपकी चितवन से; सुरत-नाथ—हे प्रेम के स्वामी; ते—तुम्हारी; अशुल्क—मुफ्त, बिना मूल्य की; दासिकाः—दासियाँ; वर-द—हे वरों के दाता; निघ्नतः—बध करने वाले; न—नहीं; इह—इस जगत में; किम्—क्यों; वधः—हत्या।

हे प्रेम के स्वामी, आपकी चितवन शरदकालीन जलाशय के भीतर सुन्दरतम सुनिर्मित कमल के कोश की सुन्दरता को मात देने वाली है। हे वर-दाता, आप उन दासियों का वध कर रहे हैं जिन्होंने बिना मोल ही अपने को आपको पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया है। क्या यह वध नहीं है?

तात्पर्य : शरद ऋतु में कमल कोश की विशेष सुन्दरता होती है किन्तु यह अद्वितीय सौन्दर्य कृष्ण की चितवन के सौन्दर्य के आगे मात है।

विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसाद्
वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद्विश्वतो भया-
दृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३॥

शब्दार्थ

विष—विषैला; जल—जल (यमुना जल जो कालिय द्वारा दूषित था) से; अप्ययात्—विनाश से; व्याल—भयानक; राक्षसात्—(अघ) राक्षस से; वर्ष—वर्षा (इन्द्र द्वारा की गई) से; मारुतात्—तथा अंधड से (तृणावर्त द्वारा उत्पन्न); वैद्युत-अनलात्—वज्र (इन्द्र के) से; वृष—बैल (अरिष्टासुर) से; मय-आत्मजात्—मय के पुत्र (व्योमासुर) से; विश्वतः—सभी; भयात्—भय से; ऋषभ—हे पुरुषों में श्रेष्ठ; ते—तुम्हारे द्वारा; वयम्—हम; रक्षिताः—रक्षा की जाती रही हैं; मुहुः—बारम्बार।

हे पुरुषश्रेष्ठ, आपने हम सबों को विविध प्रकार के संकटों से—यथा विषैले जल से, मानवभक्षी भयंकर अघासुर से, मूसलाधार वर्षा से, तृणावर्त से, इन्द्र के अग्नि तुल्य वज्र से, वृषासुर से तथा मय दानव के पुत्र से बारम्बार बचाया है।

तात्पर्य : यहाँ पर गोपियाँ कहना चाहती हैं, "हे कृष्ण! आपने हमें अनेक घोर संकटों से उबारा है, तो क्या अब जबकि हम आपके वियोग-दुख से मरी जा रही हैं आप पुनः हमें नहीं बचायेंगे?" श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि गोपियाँ अरिष्टासुर तथा व्योमासुर का नाम इसलिए लेती हैं क्योंकि यह भलीभाँति ज्ञात है कि भले ही कृष्ण ने अभी इन असुरों का वध नहीं किया किन्तु वे आगे चलकर उन्हें मारेंगे क्योंकि भगवान् के जन्म के समय गर्ग तथा भागुरि मुनियों ने यह भविष्यवाणी की थी।

न खलु गोपीकानन्दनो भवा-
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान्सात्वतां कुले ॥ ४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; खलु—निस्सन्देह; गोपिका—गोपी, यशोदा के; नन्दनः—पुत्र; भवान्—आप; अखिल—समस्त; देहिनाम्—देहधारी जीवों के; अन्तः-आत्म—अन्तःकरण का; दृक्—द्रष्टा; विखनसा—ब्रह्मा द्वारा; अर्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; विश्व—विश्व की; गुप्तये—रक्षा के लिए; सखे—हे मित्र; उदेयिवान्—आपका उदय हुआ; सात्वताम्—सात्वतों के; कुले—कुल में।

हे सखा, आप वास्तव में गोपी यशोदा के पुत्र नहीं अपितु समस्त देहधारियों के हृदयों में

अन्तस्थ साक्षी हैं। चूँकि ब्रह्माजी ने आपसे अवतरित होने एवं ब्रह्माण्ड की रक्षा करने के लिए प्रार्थना की थी इसलिए अब आप सात्वत कुल में प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य : गोपियों के कहने का आशय यही है कि, "आप तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रक्षा करने के लिए अवतरित हैं, तो फिर आप अपने ही भक्तों की उपेक्षा कैसे कर सकते हैं?"

विरचिताभयं वृष्णिधूर्य ते
चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

विरचित—उत्पन्न किया; अभयम्—अभय; वृष्णि—वृष्णि कुल का; धूर्य—हे श्रेष्ठ; ते—तुम्हारे; चरणम्—चरण; ईयुषाम्—निकट पहुँचने वालों के; संसृतेः—भौतिक जगत के; भयात्—भय से; कर—तुम्हारा हाथ; सरः-रुहम्—कमल के समान; कान्त—हे प्रेमी; काम—इच्छाएँ; दम्—पूरा करने वाला; शिरसि—सिरों पर; धेहि—रखो; नः—हमारे; श्री—लक्ष्मीदेवी के; कर—हाथ; ग्रहम्—पकड़ते हुए।

हे वृष्णिश्रेष्ठ, लक्ष्मीजी के हाथ को थामने वाला आपका कमल सदृश हाथ उन लोगों को अभय दान देता है, जो भवसागर के भय से आपके चरणों के निकट पहुँचते हैं। हे प्रियतम, उसी कामना को पूर्ण करने वाले करकमल को हमारे सिरों के ऊपर रखें।

व्रजजनार्तिहन्वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो
जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

व्रज-जन—व्रज के लोगों के; आर्ति—कष्ट के; हन्—नष्ट करने वाले; वीर—हे वीर; योषिताम्—स्त्रियों के; निज—अपने; जन—लोगों का; स्मय—गर्व; ध्वंसन—विनष्ट करते हुए; स्मित—मंद हँसी; भज—स्वीकार करें; सखे—हे मित्र; भवत्—आपकी; किङ्करीः—दासियाँ; स्म—निस्सन्देह; नः—हमको; जल-रुह—कमल; आननम्—मुख वाले; चारु—सुन्दर; दर्शय—कृपा करके दिखाइये।

हे व्रज के लोगों के कष्टों को विनष्ट करने वाले, समस्त स्त्रियों के वीर, आपकी हँसी आपके भक्तों के मिथ्या अभिमान को चूर चूर करती है। हे मित्र, आप हमें अपनी दासियों के रूप में स्वीकार करें और हमें अपने सुन्दर कमल-मुख का दर्शन दें।

प्रणतदेहिनां पापकर्षणं

तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं
कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

प्रणत—आपके शरणागत; देहिनाम्—देहधारी जीवों के; पाप—पाप; कर्षणम्—हटाने वाले; तृण—घास; चर—चरने वाली (गाय); अनुगम्—पीछे पीछे चलते हुए; श्री—लक्ष्मीजी के; निकेतनम्—धाम; फणि—सर्प (कालिय) के; फणा—फनों पर; अर्पितम्—रखा; ते—तुम्हारे; पद-अम्बुजम्—चरणकमल; कृणु—कृपया रखें; कुचेषु—स्तनों पर; नः—हमारे; कृन्धि—काट डालिए; हृत्-शयम्—हमारे हृदय की कामवासना।

आपके चरणकमल आपके शरणागत समस्त देहधारियों के विगत पापों को नष्ट करने वाले हैं। वे ही चरण गौवों के पीछे पीछे चरागाहों में चलते हैं और लक्ष्मीजी के दिव्य धाम हैं। चूँकि आपने एक बार उन चरणों को महासर्प कालिय के फनों पर रखा था अतः अब आप उन्हें हमारे स्तनों पर रखें और हमारे हृदय की कामवासना को छिन्नभिन्न कर दें।

तात्पर्य : याचना करती हुई गोपियाँ संकेत करती हैं कि भगवान् कृष्ण के चरणकमल सभी शरणागत बद्धजीवों के पापों को विनष्ट कर देते हैं। भगवान् इतने दयालु हैं कि वे गौवों को चराने चरागाह भी जाते हैं और इस तरह उनके चरणकमल घास में भी उनका पीछा करते हैं। उन्होंने अपने चरणकमल लक्ष्मीजी को प्रदान किये हैं और उन्हें कालिय नाग के फनों पर भी रखा है। अतएव इन सबों पर विचार करते हुए भगवान् को अपने चरणकमल गोपियों के स्तनों पर रखकर उनकी इच्छाओं को पूरा करना चाहिए। गोपियाँ यहाँ यही तर्क उपस्थित करती हैं।

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यती-
रधरसीधुनाप्याययस्व नः ॥ ८॥

शब्दार्थ

मधुरया—मधुर; गिरा—अपनी वाणी से; वल्गु—मोहक; वाक्यया—अपने शब्दों से; बुध—बुद्धिमान को; मनो-ज्ञया—आकर्षक; पुष्कर—कमल; ईक्षण—आँखों वाले; विधि-करीः—दासियाँ; इमाः—ये; वीर—हे वीर; मुह्यतीः—मोहित हो रही; अधर—तुम्हारे होंठों के; सीधुना—अमृत से; आप्याययस्व—जीवन-दान दीजिये; नः—हमको।

हे कमलनेत्र, आपकी मधुर वाणी तथा मोहक शब्द, जो कि बुद्धिमान के मन को आकृष्ट करने वाले हैं, हम सबों को अधिकाधिक मोह रहे हैं। हमारे प्रिय वीर, आप अपने होंठों के अमृत से अपनी दासियों को पुनरुज्जीवित कर दीजिये।

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारे; कथा-अमृतम्—शब्दों का अमृत; तप्त-जीवनम्—भौतिक जगत में दुखियारों का जीवन; कविभिः—बड़े बड़े चिन्तकों द्वारा; ईडितम्—वर्णित; कल्मष-अपहम्—पापों को भगाने वाला; श्रवण-मङ्गलम्—सुनने पर आध्यात्मिक लाभ देने वाला; शृईमत्—आध्यात्मिक शक्ति से पूर्ण; आततम्—संसार-भर में विस्तीर्ण; भुवि—भौतिक जगत में; गृणन्ति—कीर्तन तथा प्रसार करते हैं; ये—जो लोग; भूरि-दाः—अत्यन्त उपकारी; जनाः—व्यक्ति।

आपके शब्दों का अमृत तथा आपकी लीलाओं का वर्णन इस भौतिक जगत में कष्ट भोगने वालों के जीवन और प्राण हैं। विद्वान मुनियों द्वारा प्रसारित ये कथाएँ मनुष्य के पापों को समूल नष्ट करती हैं और सुनने वालों को सौभाग्य प्रदान करती हैं। ये कथाएँ जगत-भर में विस्तीर्ण हैं और आध्यात्मिक शक्ति से ओतप्रोत हैं। निश्चय ही जो लोग भगवान् के सन्देश का प्रसार करते हैं, वे सबसे बड़े दाता हैं।

तात्पर्य : राजा प्रतापरुद्र ने यह श्लोक भगवान् जगन्नाथ की रथ-यात्रा उत्सव के समय श्री चैतन्य महाप्रभु को सुनाया था। जब महाप्रभु एक उद्यान में विश्राम कर रहे थे तो राजा प्रतापरुद्र विनम्र भाव से वहाँ गये और उनके चरण चापने लगे। तब राजा ने *श्रीमद्भागवत* के दशम स्कंध का इकतीसवें अध्याय—गोपी-गीत—सुनाया। *चैतन्य-चरितामृत* में बतलाया गया है कि जब महाप्रभु ने *तव कथामृतम्* से शुरू होने वाले इस श्लोक को सुना तो वे भावावेश में तत्क्षण उठ खड़े हुए और उन्होंने राजा प्रतापरुद्र का आलिंगन कर लिया। *चैतन्यचरितामृत* (मध्य १४.४-१८) में इस घटना का विस्तार से वर्णन हुआ है और श्रील प्रभुपाद ने अपने संस्करण में इसकी विस्तृत टीका की है।

प्रहसितं प्रियप्रेमवीक्षणं
विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ।
रहसि संविदो या हृदि स्पृशः
कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥ १० ॥

शब्दार्थ

प्रहसितम्—हँसना; प्रिय—स्नेहपूर्ण; प्रेम—प्रेमपूर्ण; वीक्षणम्—चितवन; विहरणम्—घनिष्ठ लीलाएँ; च—तथा; ते—तुम्हारी; ध्यान—ध्यान द्वारा; मङ्गलम्—शुभ; रहसि—एकान्त स्थान में; संविदः—वार्तालाप; याः—जो; हृदि—हृदय में; स्पृशः—स्पर्श; कुहक—हे छलिया; नः—हमारे; मनः—मनों को; क्षोभयन्ति—क्षुब्ध करती हैं; हि—निस्सन्देह।

आपकी हँसी, आपकी मधुर प्रेम-भरी चितवन, आपके साथ हमारे द्वारा भोगी गई घनिष्ठ

लीलाएँ तथा गुप्त वार्ताएँ—इन सबका ध्यान करना मंगलकारी है और ये हमारे हृदयों को स्पर्श करती हैं। किन्तु उस के साथ ही, हे छलिया, वे हमारे मन को अतीव क्षुब्ध भी करती हैं।

चलसि यद्व्रजाच्चारयन्पशून्
नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

चलसि—जाते हो; यत्—जब; व्रजात्—गोपों के गाँव से; चारयन्—चराने के लिए; पशून्—पशुओं को; नलिन—कमल से भी बढ़कर; सुन्दरम्—सुन्दर; नाथ—हे स्वामी; ते—तुम्हारे; पदम्—चरण; शिल—अन्न के नुकीले सिरों से; तृण—घास; अङ्कुरैः—तथा अंकुरित पौधों से; सीदति—पीड़ा अनुभव करते हैं; इति—ऐसा सोचकर; नः—हमारे; कलिलताम्—बेचैनी; मनः—मन; कान्त—हे प्रियतम; गच्छति—अनुभव करते हैं।

हे स्वामी, हे प्रियतम, जब आप गाँव छोड़कर गौवें चराने के लिए जाते हैं, तो हमारे मन इस विचार से विचलित हो उठते हैं कि कमल से भी अधिक सुन्दर आपके पाँवों में अनाज के नोकदार छिलके तथा घास-फूस एवं पौधे चुभ जायेंगे।

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलै-
र्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ।
घनरजस्वलं दर्शयन्मुहु-
र्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

दिन—दिन के; परिक्षये—अन्त होने पर; नील—नीले; कुन्तलैः—केश गुच्छों से; वन-रुह—कमल; आननम्—मुख; बिभ्रत्—प्रदर्शित करता; आवृतम्—ढका हुआ; घन—मोटा; रजः-वलम्—धूल से सना; दर्शयन्—दिखलाते हुए; मुहुः—बारम्बार; मनसि—मनों में; नः—हमारे; स्मरम्—कामदेव को; वीर—हे वीर; यच्छसि—रख रहे हो।

दिन ढलने पर आप हमें बारम्बार गहरे नीले केश की लटों से ढके तथा धूल से पूरी तरह धूसरित अपना कमल-मुख दिखलाते हैं। इस तरह, हे वीर, आप हमारे मन में कामवासना जागृत कर देते हैं।

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं
धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।
चरणपङ्कजं शन्तमं च ते
रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

प्रणत—झुकने वालों की; काम—इच्छाएँ; दम्—पूरी करते हुए; पद्म-ज—ब्रह्मा द्वारा; अर्चितम्—पूजित; धरणि—पृथ्वी के; मण्डनम्—आभूषण; ध्येयम्—ध्यान के पात्र; आपदि—विपत्ति के समय; चरण-पङ्कजम्—चरणकमल; शम्-तमम्—सर्वोच्च तुष्टि प्रदान करने वाले; च—तथा; ते—तुम्हारा; रमण—हे प्रियतम; नः—हमारे; स्तनेषु—स्तनों पर; अर्पय—रखें; अधि-हन्—मानसिक क्लेश को विनाश करने वाले।

ब्रह्माजी द्वारा पूजित आपके चरणकमल उन सबों की इच्छाओं को पूरा करते हैं, जो उनमें नतमस्तक होते हैं। वे पृथ्वी के आभूषण हैं, वे सर्वोच्च सन्तोष के देने वाले हैं और संकट के समय चिन्तन के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। हे प्रियतम, हे चिन्ता के विनाशक, आप उन चरणों को हमारे स्तनों पर रखें।

सुरतवर्धनं शोकनाशनं
स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

सुरत—माधुर्य सुख; वर्धनम्—बढ़ाने वाले; शोक—शोक; नाशनम्—विनष्ट करने वाले; स्वरित—ध्वनि की गई; वेणुना—आपकी वंशी द्वारा; सुष्ठु—अत्यधिक; चुम्बितम्—चुम्बन किया हुआ; इतर—अन्य; राग—आसक्ति; विस्मारणम्—विस्मरण कराने वाले; नृणाम्—मनुष्यों के; वितर—कृपया वितरण कीजिये; वीर—हे वीर; नः—हम पर; ते—तुम्हारे; अधर—अधरों के; अमृतम्—अमृत को।

हे वीर, आप अपने होंठों के उस अमृत को हममें वितरित कीजिये जो युगल आनन्द को बढ़ाने वाला और शोक को मिटाने वाला है। उसी अमृत का आस्वाद आपकी ध्वनि करती हुई वंशी लेती है और लोगों को अन्य सारी आसक्तियाँ विसरा देती है।

तात्पर्य : इस श्लोक पर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की मनोरम टीका गोपियों तथा कृष्ण के मध्य वार्तालाप के रूप में है—

गोपियाँ कहती हैं, "हे कृष्ण! तुम तो बिल्कुल सर्वश्रेष्ठ वैद्य धन्वन्तरि लगते हो। अत: हमें कोई औषधि दो क्योंकि हम तुम्हारी भोगेच्छा के रोग से पीड़ित हैं। तुम हमें अपने होठों का औषधिरूप अमृत हमसे बिना किसी बड़े मूल्य लिए मुफ्त दो। तुम तो बड़े दानवीर हो इसलिए तुम्हें चाहिए कि दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति को भी इसे बिना किसी मूल्य के दो। यह समझ लो कि हम अपना जीवन खोने वाली हैं और तुम वह अमृत देकर हमें पुन: जीवन-दान दे सकते हो। आखिर तुमने इसे अपनी वंशी को तो दे ही रखा है, जो कि बाँस की खोखली छड़ी मात्र है।"

कृष्ण कहते हैं, "किन्तु इस जगत में लोगों का भोजन तो सम्पत्ति, अनुयायी, परिवार इत्यादि से

आसक्ति का है, जो बुरा है। अत: जिन्हें ऐसा बुरा भोजन मिलता हो उन्हें वह औषधि नहीं मिलनी चाहिए जिसे तुम लोगों ने माँगा है।''

''किन्तु इस औषधि से अन्य सारी आसक्तियाँ भूल जाती हैं। यह औषधि इतनी अद्भुत है कि यह बुरे भोजन की आदत को भी ठीक कर देती है। इसलिए हे वीर! वह अमृत हमें दे दो क्योंकि तुम बड़े दानी हो।''

अटति यद्भवानह्नि काननं
त्रुटि युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

अटति—घूमते हो; यत्—जब; भवान्—आप; अह्नि—दिन में; काननम्—जंगल में; त्रुटि—लगभग १/१७०० सेकंड; युगायते—एक युग के बराबर हो जाता है; त्वाम्—तुम; अपश्यताम्—न देखने वालों के लिए; कुटिल—घुँघराले; कुन्तलम्—बालों का गुच्छा; श्री—सुन्दर; मुखम्—मुँह; च—तथा; ते—तुम्हारा; जड:—मूर्ख; उदीक्षताम्—उत्सुकता से देखने वालों को; पक्ष्म—पलकों का; कृत्—बनाने वाला; दृशाम्—आँखों का।

जब आप दिन के समय जंगल चले जाते हैं, तो क्षण का एक अल्पांश भी हमें युग सरीखा लगता है क्योंकि हम आपको देख नहीं पातीं। और जब हम आपके सुन्दर मुख को जो घुँघराले बालों से सुशोभित होने के कारण इतना सुन्दर लगता है, देखती भी हैं, तो ये हमारी पलकें हमारे आनन्द में बाधक बनती हैं, जिन्हें मूर्ख स्रष्टा ने बनाया है।

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा-
नतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः
कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ १६॥

शब्दार्थ

पति—पति; सुत—बालक; अन्वय—पूर्वज; भ्रातृ—भाई; बान्धवान्—तथा अन्य सम्बन्धियों को; अतिविलङ्घ्य—पूर्णतया उपेक्षा करके; ते—तुम्हारी; अन्ति—उपस्थिति में; अच्युत—हे अच्युत; आगता:—आई हुई; गति—हमारी चालढाल का; विद:—प्रयोजन को जानने वाले; तव—तुम्हारा; उद्गीत—(वंशी के) तेज गीत से; मोहिता:—मोहित; कितव—हे छलिया; योषित:—स्त्रियों को; क:—कौन; त्यजेत्—त्याग करेगा; निशि—रात में।

हे अच्युत, आप भलीभाँति जानते हैं कि हम क्यों आई हैं। आप जैसे छलिये के अतिरिक्त भला और कौन होगा, जो अर्धरात्रि में उसकी बाँसुरी के तेज संगीत से मोहित होकर उसे देखने के लिए आई तरुणी स्त्रियों का परित्याग करेगा? आपके दर्शनों के लिए ही हमने अपने पतियों,

बच्चों, बड़े-बूढ़ों, भाइयों तथा अन्य रिश्तेदारों को पूरी तरह ठुकरा दिया है।

रहसि संविदं हृच्छयोदयं
प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते
मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७॥

शब्दार्थ

रहसि—एकान्त में; संविदम्—गुप्त वार्ताएँ; हृत्-शय—हृदय में कामेच्छा का; उदयम्—उठना; प्रहसित—हँसता हुआ; आननम्—मुख; प्रेम—प्रेमपूर्ण; वीक्षणम्—चितवन; बृहत्—चौड़ी; उरः—छाती; श्रियः—लक्ष्मी; वीक्ष्य—देखकर; धाम—धाम; ते—तुम्हारा; मुहुः—बारम्बार; अति—अत्यधिक; स्पृहा—लालसा; मुह्यते—मोह लेती है; मनः—मन को।

जब हम आपके साथ एकान्त में हुई घनिष्ठ वार्ताओं का चिन्तन करती हैं, तो अपने हृदयों में कामोदय अनुभव करती हैं और आपकी हँसमुख आकृति, आपकी प्रेममयी चितवन तथा आपके चौड़े सीने का, जो कि लक्ष्मी का वासस्थान है, स्मरण करती हैं तब हमारे मन बारम्बार मोहित हो जाते हैं। इस तरह हमें आपके लिए अत्यन्त गहन लालसा की अनुभूति होती है।

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते
वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।
त्यज मनाक्च नस्त्वत्स्पृहात्मनां
स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ १८॥

शब्दार्थ

व्रज-वन—व्रज के जंगलों में; ओकसाम्—निवासियों के लिए; व्यक्तिः—प्राकट्य; अङ्ग—हे प्रिय; ते—तुम्हारा; वृजिन—दुख का; हन्त्री—विनाश करने वाला; अलम्—बहुत हो गया, बस; विश्व-मङ्गलम्—मंगलमय; त्यज—छोड़ दीजिये; मनाक्—थोड़ा; च—तथा; नः—हमको; त्वत्—तुम्हारे लिए; स्पृहा—लालसा; आत्मनाम्—पूरित मनों वाले; स्व—अपने; जन—भक्तगण; हृत्—हृदयों में; रुजाम्—रोग का; यत्—जो; निषूदनम्—शमन करने वाला।

हे प्रियतम, आपका सर्व मंगलमय प्राकट्य व्रज के वनों में रहने वालों के कष्ट को दूर करता है। हमारे मन आपके सान्निध्य के लिए लालायित हैं। आप हमें थोड़ी-सी वह औषधि दे दें, जो आपके भक्तों के हृदयों के रोग का शमन करती है।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार भगवान् कृष्ण से गोपियाँ अपने स्तनों पर उनके चरणकमलों को रखने की बारम्बार विनती करती हैं। गोपियाँ भौतिक काम की शिकार नहीं हैं अपितु वे भगवान् के शुद्ध प्रेम में लीन रहने वाली हैं अतएव वे अपने सुन्दर स्तन उन्हें अर्पित करके उनके चरणकमलों की सेवा करना चाहती हैं। संसारी यौन इच्छा के शिकार भौतिकतावादी व्यक्ति कभी नहीं समझ पायेंगे कि

ये प्रेम–व्यापार किस तरह शुद्ध आध्यात्मिक स्तर पर घटित होते हैं। यही तो उनका दुर्भाग्य है।

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; ते—तुम्हारे; सु-जात—अतीव सुन्दर; चरण-अम्बु-रुहम्—चरणकमल को; स्तनेषु—स्तनों पर; भीताः—भयभीत होने से; शनैः—धीरे धीरे; प्रिय—हे प्रिय; दधीमहि—हम रखती हैं; कर्कशेषु—कर्कश; तेन—उनसे; अटवीम्—जंगल में; अटसि—आप घूमते हैं; तत्—वे; व्यथते—दुखते हैं; न—नहीं; किम् स्वित्—हम आश्चर्य करती हैं; कूर्प-आदिभिः—छोटे कंकड़ों आदि से; भ्रमति—घूम जाता है; धीः—मन; भवत्-आयुषाम्—उन लोगों के लिए जिनके प्राण भगवान् हैं; नः—हमारा।.

हे प्रियतम, आपके चरणकमल इतने कोमल हैं कि हम उन्हें धीरे से अपने स्तनों पर डरते हुए हल्के से ऐसे रखती हैं कि आपके पैरों को चोट पहुँचेगी। हमारा जीवन केवल आप पर टिका हुआ है। अतः हमारे मन इस चिन्ता से भरे हैं कि कहीं जंगल के मार्ग में घूमते समय आपके कोमल चरणों में कंकड़ों से चोट न लग जाए।

तात्पर्य : इस श्लोक का अनुवाद श्रील प्रभुपाद द्वारा अंग्रेजी भाषा में की गई *श्रीचैतन्यचरितामृत* की टीका (आदि ४.१७३) से लिया गया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''गोपियों के विरह गीत'' नामक इकतीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बत्तीस

पुनः मिलाप

इस अध्याय में वर्णन हुआ है कि श्रीकृष्ण ने किस तरह अपने को गोपियों के मध्य प्रकट किया जो उनसे विछोह के कारण अत्यधिक विक्षुब्ध हो चुकी थीं। जब वे गोपियों को ढाढ़स दे चुके तो उन्होंने गहन आनन्द की अनुभूति व्यक्त की।

जब गोपियाँ कामदेव को भी आकर्षित करने वाले कृष्ण को देखने की तीव्र उत्सुकता को अनेक प्रकार से व्यक्त कर चुकीं तो वे रेशमी पीत वस्त्र पहने और सुन्दर फूलों की माला पहने उनके समक्ष प्रकट हुए। कुछ गोपियाँ उन्हें देखकर आनन्द से इतनी गद्गद हो उठीं कि उन्होंने उनका हाथ पकड़

लिया, कुछ ने अपने कन्धों पर उनका हाथ रख लिया और अन्यों ने उनका जूठा पान खा लिया। इस तरह उन्होंने उनकी सेवा की।

एक गोपी ने कृष्ण के प्रति प्रेममय क्रोध में आकर अपना होंठ काट लिया और स्तब्ध खड़ी रह कर उनको देखती रही। चूँकि गोपियाँ कृष्ण से इतनी आसक्त थीं कि निरन्तर उन्हें ताकते रहकर भी उनकी प्यास शान्त नहीं हुई। एक ने कृष्ण को अपने हृदय के भीतर रख लिया; अपनी आँखें बन्द कीं और अपने भीतर बारम्बार उनका आलिंगन करते हुए दिव्य आनन्द में खो गई मानो कोई योगी हो। इस तरह भगवान् से विलग होने के कारण गोपियों ने जो पीड़ा अनुभव की थी वह दूर हो गई।

इसके बाद कृष्ण अपनी अन्तरंगा शक्ति रूपी गोपियों के संग यमुना के तट पर गये। तब गोपियों ने अपने दुपट्टों से कृष्ण के लिए आसन बना दिया और जब वे बैठ गये तो वे प्रेमयुक्त हाव-भाव द्वारा उनसे आनन्द लेने लगीं। गोपियों को अब भी क्षोभ था कि कृष्ण अन्तर्धान हो गये थे अतः कृष्ण ने उन्हें बताया कि ऐसा उन्होंने क्यों किया। उन्होंने यह भी बताया कि वे उनकी प्रेममयी भक्ति के वशीभूत होकर ही आये हैं और सदैव उनके ऋणी रहेंगे।

श्रीशुक उवाच
इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ।
रुरुदुः सुस्वरं राजन्कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार, जैसाकि ऊपर कहा गया; गोप्यः—गोपियाँ; प्रगायन्त्यः—गाती हुईं; प्रलपन्त्यः—बातें करतीं; च—तथा; चित्रधा—अनेक मनमोहक विधियों से; रुरुदुः—चिल्लाईं; सु-स्वरम्—तेजी से; राजन्—हे राजा; कृष्ण-दर्शन—कृष्ण का दर्शन करने की; लालसाः—लालसाएँ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, इस तरह गाकर तथा अपने हृदय की बातों को विविध मोहक विधियों से प्रकट करके गोपियाँ जोर जोर से रोने लगीं। वे कृष्ण का दर्शन करने के लिए अत्यन्त लालायित थीं।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २॥

शब्दार्थ

तासाम्—उनके समक्ष; आविरभूत्—प्रकट हुए; शौरिः—भगवान् कृष्ण; स्मयमान—हँसते हुए; मुख—मुँह; अम्बुजः—कमल सदृश; पीत—पीला; अम्बर—वस्त्र; धरः—पहने; स्रक्-वी—फूलों की माला पहने; साक्षात्—प्रत्यक्ष; मन्-मथ—मन को मोहित करने वाले, कामदेव का; मन्—मन का; मथः—मथने या मोहने वाला।

तब भगवान् कृष्ण अपने मुखमण्डल पर हँसी धारण किये गोपियों के समक्ष प्रकट हो गये। माला तथा पीत वस्त्र पहने वे ऐसे लग रहे थे, जो सामान्य जनों के मन को मोहित करने वाले कामदेव के मन को भी मोहित कर सकते थे।

तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः ।
उत्तस्थुर्युगपत्सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; विलोक्य—देखकर; आगतम्—वापस आया; प्रेष्ठम्—अपने प्रियतम को; प्रीति—स्नेह से; उत्फुल्ल—खिली हुई; दृशः—आँखें; अबलाः—युवतियाँ; उत्तस्थुः—खड़ी हो गईं; युगपत्—तुरन्त एकसाथ; सर्वाः—सभी; तन्वः—शरीर के; प्राणम्—प्राण वायु; इव—सदृश; आगतम्—आया हुआ।

जब गोपियों ने देखा कि उनका परमप्रिय कृष्ण उनके पास लौट आया है, तो वे सहसा उठ खड़ी हुईं और स्नेह के कारण उनकी आँखें पूरी तरह खिल उठीं। ऐसा लगा मानों उनके (मृत) शरीर में प्राण वापस आ गये हों।

काचित्कराम्बुजं शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा ।
काचिद्दधार तद्बाहुमंसे चन्दनभूषितम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

काचित्—उनमें से एक; कर-अम्बुजम्—कर-कमल को; शौरेः—भगवान् कृष्ण के; जगृहे—पकड़ लिया; अञ्जलिना—अपनी हथेली में; मुदा—हर्ष के मारे; काचित्—दूसरी ने; दधार—रख लिया; तत्-बाहुम्—उनकी भुजा को; अंसे—अपने कंधे पर; चन्दन—चन्दन लेप से; भूषितम्—सजाई गई।

एक गोपी ने हर्षित होकर कृष्ण के हाथ को अपनी हथेलियों के बीच में ले लिया और दूसरी ने चन्दनलेप से विभूषित उनकी भुजा अपने कंधे पर रख ली।

काचिदञ्जलिनागृह्णात्तन्वी ताम्बूलचर्वितम् ।
एका तदङ्घ्रिकमलं सन्तप्ता स्तनयोरधात् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

काचित्—एक; अञ्जलिना—हथेलियों से; अगृह्णात्—ले लिया; तन्वी—छरहरी ने; ताम्बूल—पान का; चर्वितम्—जूठन; एका—एक ने; तत्—उसका; अङ्घ्रि—पाँव; कमलम्—कमलवत्; सन्तप्ता—तपते हुए; स्तनयोः—अपने स्तनों पर; अधात्—रख लिया।

एक छरहरी गोपी ने आदरपूर्वक अपनी हथेलियों में उनके चबाये पान का जूठन ले लिया

और (काम) इच्छा से तप्त दूसरी गोपी ने उनके चरणकमल अपने स्तनों पर रख लिए।

एका भ्रुकुटिमाबध्य प्रेमसंरम्भविह्वला ।
घ्नन्तीवैक्षत्कटाक्षेपैः सन्दष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

एका—एक अन्य गोपी ने; भ्रु-कुटिम्—अपनी भौंहों को; आबध्य—सिकोड़ कर; प्रेम—अपने शुद्ध प्रेम; संरम्भ—क्रोध से; विह्वला—आपे में न रहकर; घ्नन्ती—चोट पहुँचाती; इव—मानो; ऐक्षत्—देखा; कट—अपने कटाक्ष से; आक्षेपैः—आक्षेपों से; सन्दष्ट—काटते हुए; दशन—अपने दाँत के; छदा—आवरण (अपने होठों को)।

एक गोपी प्रेममय क्रोध से विह्वल होकर अपने होंठ काटने लगी और क्रुद्ध भौहों से उन्हें ताकने लगी मानो वह अपनी कुटिल चितवनों से उन्हें घायल कर देगी।

अपरानिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम् ।
आपीतमपि नातृप्यत्सन्तस्तच्चरणं यथा ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

अपरा—एक अन्य गोपी; अनिमिषत्—अपलक; दृग्भ्याम्—आँखों से; जुषाणा—आस्वाद करती; तत्—उसका; मुख-अम्बुजम्—कमलमुख; आपीतम्—पूर्णतया आस्वादित; अपि—यद्यपि; न अतृप्यत्—तृप्त नहीं हुई; सन्तः—सन्त गण; तत्-चरणम्—उनके चरणों को; यथा—जिस तरह।

एक अन्य गोपी उनके कमल को अपलक नेत्रों से देखती रही किन्तु माधुरी का गहन आस्वाद कर लेने पर भी तुष्ट नहीं हुई जिस तरह सन्त पुरुष भगवान् के चरणों का ध्यान करते हुए तृप्त ही नहीं होते।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर व्याख्या करते हैं कि यहाँ पर भगवान् के चरणों का ध्यान करने वाले सन्त पुरुषों से जो उपमा दी गई है, वह केवल आंशिक रूप से लागू होती है क्योंकि कृष्ण के लौटने पर गोपियों को जो आनन्द हुआ वह वास्तव में अद्वितीय था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह भी प्रकट करते हैं कि यह विशेष गोपी सबों से परम भाग्यशालिनी श्रीमती राधारानी ही थी।

तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदि कृत्वा निमील्य च ।
पुलकाङ्ग्युपगुह्यास्ते योगीवानन्दसम्प्लुता ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; काचित्—उनमें से एक; नेत्र—अपनी आँखों के; रन्ध्रेण—छिद्र से; हृदि—अपने हृदय में; कृत्वा—रखकर; निमील्य—बन्द करके; च—तथा; पुलक-अङ्गी—अंग अंग में रोमांचित हुई; उपगुह्य—आलिंगन करके; आस्ते—रहती रही; योगी—योगी; इव—सदृश; आनन्द—आनन्द में; सम्प्लुता—निमग्न।

एक गोपी ने भगवान् को अपनी आँखों के छिद्र से ले जाकर उन्हें अपने हृदय में रख लिया।

तब उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं और रोमांचित होकर वह भीतर ही भीतर उनका लगातार आलिंगन करने लगी। इस तरह दिव्य आनन्द में निमग्न वह भगवान् का ध्यान करने वाले योगी जैसी लग रही थी।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि अभी तक इस अध्याय में जिन सात गोपियों का वर्णन हुआ है वे आठ मुख्य गोपियों में से पहली सात हैं जिनका पद ऐसा था कि कृष्ण के प्रकट होते ही वे उनके पास पहुँच सकीं। आचार्य ने *श्री वैष्णव तोषणी* से एक श्लोक उद्धृत किया है, जिसमें इन सातों गोपियों के नाम चन्द्रावली, श्यामला, शैव्या, पद्मा, श्रीराधा, ललिता और विशाखा दिये गये हैं। आठवीं भद्रा हो सकती है। *श्री वैष्णव तोषणी स्कन्द पुराण* के उस श्लोक को उद्धृत करती है, जिसमें कहा गया है कि ये आठ गोपियाँ तीन अरब गोपियों में से मुख्य थीं। श्रील रूप गोस्वामी कृत *उज्ज्वल नीलमणि* में गोपियों की वंशावली के विषय में विशद् जानकारी प्राप्त है।

पद्मपुराण पुष्टि करता है कि श्रीराधा गोपियों में अग्रणी हैं।

यथा राधाप्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।

सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥

''जिस प्रकार श्रीमती राधारानी कृष्ण को सर्वाधिक प्रिय हैं उसी तरह उनका स्नान कुंड भी प्रिय है। समस्त गोपियों में वे भगवान् की सर्वाधिक प्रिय हैं।''

बृहद्-गौतमीय-तन्त्र भी श्रीमती राधारानी का नाम कृष्ण की सर्वप्रमुख प्रेयसी के रूप में लेता है।

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।

सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा॥

''दिव्य देवी श्रीमती राधारानी भगवान् श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष अर्धांगिनी हैं। वे समस्त लक्ष्मियों में प्रधान हैं। वे सर्वआकर्षक भगवान् को आकृष्ट करने के लिए समस्त आकर्षण-युक्त हैं। वे भगवान् की आदि अन्तरंगा शक्ति हैं।'' (यह अनुवाद श्रील प्रभुपाद कृत *चैतन्य-चरितामृत* आदि ४.८३ के अंग्रेजी से लिया गया है।)

श्रीराधा विषयक अतिरिक्त जानकारी *ऋग् परिशिष्ट* (ऋगवेद का परिशिष्ट) में मिलती है—*राधया माधवो देवो माधवेनैव राधिका। विभ्राजन्ते जनेषु*—समस्त व्यक्तियों में श्रीराधा ही ऐसी हैं जिनके संग

में भगवान् माधव विशेष रूप से महिमामय हैं जिस तरह कि स्वयं राधा उनकी उपस्थिति में यशस्विनी हैं।

सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः ।
जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सर्वाः—सभी; ताः—उन गोपियों ने; केशव—भगवान् कृष्ण के; आलोक—दिखाई पड़ने से; परम—परम; उत्सव—उल्लास या उत्सव का; निर्वृताः—हर्ष का अनुभव करतीं;; जहुः—त्याग दिया; विरह-जम्—उनके विरह से उत्पन्न; तापम्—कष्ट को; प्राज्ञम्—आध्यात्मिक रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति को; प्राप्य—पाकर; यथा—जिस तरह; जनाः—सामान्य लोग।

सभी गोपियों ने जब अपने प्रिय केशव को फिर से देखा तो उन्हें परम उल्लास का अनुभव हुआ। उन्होंने विरह-दु:ख को त्याग दिया जिस तरह कि सामान्य लोग आध्यात्मिक रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति की संगति पाकर अपने दुख भूल जाते हैं।

ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः ।
व्यरोचताधिकं तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥ १० ॥

शब्दार्थ

ताभिः—इन गोपियों द्वारा; विधूत—पूर्णतया धुली; शोकाभिः—अपने शोक से; भगवान्—भगवान्; अच्युतः—अच्युत; वृतः—घिरी हुई; व्यरोचत—उज्वल दिखीं; अधिकम्—अत्यधिक; तात—हे प्रिय (राजा परीक्षित); पुरुषः—परमात्मा; शक्तिभिः—अपनी दिव्य शक्तियों से; यथा—जिस तरह।

समस्त शोक से मुक्त हुई गोपियों से घिरे हुए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अच्युत भव्यता के साथ चमक रहे थे। हे राजन्, कृष्ण ऐसे लग रहे थे जिस तरह अपनी आध्यात्मिक शक्तियों से घिरे हुए परमात्मा हों।

तात्पर्य : गोपियाँ भगवान् कृष्ण की अन्तरंगा शक्तियाँ हैं अत: जब वे शोक से मुक्त होकर फिर से प्रसन्न हो गईं तो भगवान् भी पहले की अपेक्षा और अधिक कान्तिमान लगने लगे और उनका दिव्य आनन्द बढ़ गया। कृष्ण गोपियों से दिव्य प्रेम करते हैं और गोपियाँ भी उन्हें उसी तरह से चाहती हैं। जो लोग इस भौतिक संसार में बँधे हुए हैं उन्हें आध्यात्मिक स्तर पर सम्पन्न होने वाला यह व्यापार समझ में नहीं आता।

ताः समादाय कालिन्द्या निर्विश्य पुलिनं विभुः ।
विकसत्कुन्दमन्दार सुरभ्यनिलषट्पदम् ॥ ११ ॥

शरच्चन्द्रांशुसन्दोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ।
कृष्णाया हस्ततरला चितकोमलवालुकम् ॥ १२॥

शब्दार्थ

ताः—उन गोपियों को; समादाय—लेकर; कालिन्द्याः—यमुना के; निर्विश्य—प्रवेश करके; पुलिनम्—तट पर; विभुः—सर्वशक्तिमान भगवान्; विकसत्—खिले हुए; कुन्द-मन्दार—कुन्द तथा मन्दार के फूलों की; सुरभि—सुगन्धित; अनिल—मन्द वायु से; सत्-पदम्—भौंरों से; शरत्—शरदकालीन; चन्द्र—चन्द्रमा की; अंशु—किरणों की; सन्दोह—प्रचुरता से; ध्वस्त—दूर हुआ; दोषा—रात्रि का; तमः—अँधेरा; शिवम्—शुभ; कृष्णायाः—यमुना नदी का; हस्त—हाथों की तरह; तरल—अपनी लहरों से; आचित—एकत्रित; कोमल—मुलायम; वालुकम्—बालू, रेत।

तत्पश्चात् सर्वशक्तिमान भगवान् गोपियों को अपने साथ कालिन्दी के तट पर ले गये जिसने अपने तट पर अपनी लहरों रूपी हाथों से कोमल बालू के ढेर बिखेर दिये थे। उस शुभ स्थान में कुन्द तथा मन्दार फूलों के खिलने से बिखरी सुगन्धि को लेकर मन्द मन्द वायु अनेक भौंरों को आकृष्ट कर रही थी और शरदकालीन चन्द्रमा की प्रभूत किरणें रात्रि के अंधकार को दूर कर रही थीं।

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो
मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।
स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितै-
रचीक्लिपन्नासनमात्मबन्धवे ॥ १३॥

शब्दार्थ

तत्—उस कृष्ण को; दर्शन—देखने से; आह्लाद—आनन्द से; विधूत—बहकर, ले जाई गई; हृत्—अपने हृदयों में; रुजः—पीड़ा; मनः-रथ—अपनी इच्छाओं की; अन्तम्—पूर्ति; श्रुतयः—श्रुतियाँ, शास्त्र; यथा—जिस तरह; ययुः—प्राप्त किया; स्वैः—अपनी; उत्तरीयैः—ओढ़नी से; कुच—स्तनों के; कुङ्कुम—सिन्दूर से; अङ्कितैः—लेप की हुई; अचीक्लिपन्—बना दिया; आसनम्—आसन; आत्म—अपनी आत्मा के; बन्धवे—मित्र के लिए।

अपने समक्ष साक्षात् वेद रूप कृष्ण के दर्शन के आनन्द से गोपियों की हृदय-वेदना शमित हो गई और उन्हें लगा कि उनकी सारी इच्छाएँ पूरी हो गईं। उन्होंने अपने प्रिय मित्र कृष्ण के लिए अपनी ओढ़नियों से, जो कि उनके स्तनों में लगे कुंकुम से सनी थीं, आसन बना दिया।

तात्पर्य : इसी स्कन्ध (अध्याय ८७, श्लोक २३) में श्रुतियों ने या कि साक्षात् वेदों ने निम्नवत् प्रार्थना की है—

स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो।

वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः ॥

"इन स्त्रियों ने अपने मन को विशाल सर्परूपी भगवान् कृष्ण की बलिष्ठ भुजाओं के ध्यान में लीन

कर दिया। हम उन्हीं गोपियों सा बनकर उनके चरणकमलों की सेवा करना चाहते हैं।" श्रुतियों ने ब्रह्मा के पिछले दिन कृष्ण को प्रकट होते देख लिया था और उनके मन में उनकी संगति करने की उत्कट इच्छा हो रही थी। तत्पश्चात् वे इस कल्प में गोपियाँ बनीं। चूँकि मानव समाज में वेद शाश्वत हैं अतः इस कल्प में श्रुतियाँ भी कृष्ण के लिए इच्छुक होती हैं और अगले कल्प में वे भी गोपियाँ बनेंगी। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ऐसी जानकारी देते हैं।

तत्रोपविष्टो भगवान्स ईश्वरो
योगेश्वरान्तर्हृदि कल्पितासनः ।
चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चित-
स्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥ १४॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; उपविष्टः—आसीन; भगवान्—भगवान्; सः—वह; ईश्वरः—परम नियन्ता; योग-ईश्वर—यौगिक ध्यान के स्वामियों के; अन्तः—भीतर; हृदि—हृदयों में; कल्पित—बना लिया; आसनः—अपना स्थान; चकास—चमत्कृत लगने लगे; गोपी-परिषत्—गोपियों की सभा में; गतः—उपस्थित; अर्चितः—पूजित; त्रै-लोक्य—तीनों लोकों के; लक्ष्मी—सौन्दर्य तथा अन्य ऐश्वर्यों के; एक—एकमात्र; पदम्—आगार; वपुः—साकार स्वरूप; दधत्—प्रदर्शित करते हुए।

जिन भगवान् कृष्ण के लिए बड़े बड़े योगेश्वर अपने हृदयों में आसन की व्यवस्था करते हैं वही कृष्ण गोपियों की सभा में आसन पर बैठ गये। उनका दिव्य शरीर, जो तीनों लोकों में सौन्दर्य तथा ऐश्वर्य का एकमात्र धाम है, गोपियों द्वारा कृष्ण की पूजा करने पर जगमगा उठा।

तात्पर्य : योगेश्वरों में शिव, अनन्त शेष तथा अन्य महापुरुष सम्मिलित हैं। ये सभी भगवान् को अपने हृदयकमलों पर विराजमान करते हैं। वही भगवान्, गोपियों के उत्कट निस्वार्थ प्रेम के वशीभूत होकर यमुना के तट पर उनकी सुगन्धित ओढ़नियों पर बैठने के बाद उनका प्रेमी बनने तथा उनके साथ वृन्दावन में नृत्य करने के लिए राजी हो गये।

सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं
सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा ।
संस्पर्शनेनाङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः
संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥ १५॥

शब्दार्थ

सभाजयित्वा—सम्मानित करके; तम्—उसको; अनङ्ग—कामेच्छाओं के; दीपनम्—उद्दीप्त करने वाला; स-हास—हँसते हुए; लीला—क्रीड़ापूर्ण; ईक्षण—चितवन से; विभ्रम—खिलवाड़ करते; भ्रुवा—अपनी भौंहें से; संस्पर्शनेन—स्पर्श से; अङ्क—

अपनी गोदों में; कृत—रख कर; अङ्घ्रि—उनके पाँवों; हस्तयोः—तथा हाथों को; संस्तुत्य—प्रशंसा करके; ईषत्—कुछ कुछ; कुपिताः—क्रुद्ध; बभाषिरे—बोलीं।

श्रीकृष्ण ने गोपियों के भीतर कामवासना जागृत कर दी थी और वे अपनी क्रीड़ापूर्ण हँसी से उनको निहारतीं, अपनी भौंहों से प्रेममय इशारे करतीं तथा अपनी अपनी गोदों में उनके हाथ तथा पाँव रखकर उन्हें मलती हुईं उनका सम्मान करने लगीं। किन्तु उनकी पूजा करते हुए भी वे कुछ कुछ रुष्ट थीं अतएव वे उनसे इस प्रकार बोलीं।

श्रीगोप्य ऊचुः
भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम् ।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

श्री-गोप्यः ऊचुः—गोपियों ने कहा; भजतः—अपना सम्मान करने वालों से; अनु—परस्पर; भजन्ति—आदर करते हैं; एके—कुछ; एके—कुछ; एतत्—इसके; विपर्ययम्—विपरीत; न उभयान्—दोनों से नहीं; च—तथा; भजन्ति—परस्पर प्रशंसा करते हैं; एके—कुछ; एतत्—यह; नः—हमसे; ब्रूहि—बोलिये; साधु—ढंग से; भोः—अरे।

गोपियों ने कहा : कुछ लोग केवल उन्हीं से स्नेह जताते हैं, जो उनके प्रति स्नेहिल होते हैं जबकि अन्य लोग उनके प्रति भी स्नेह दिखाते हैं, जो शत्रुवत् या उदासीन होते हैं। फिर भी कुछ लोग किसी से भी स्नेह नहीं जताते। हे कृष्ण, हमसे इस विषय की समुचित व्याख्या करें।

तात्पर्य : विनम्र दिखने वाले इस प्रश्न द्वारा गोपियाँ भगवान् कृष्ण द्वारा उनके प्रेम का समुचित प्रतिदान न करने की बात प्रकट कर देना चाहती थीं। जब कृष्ण ने उन्हें जंगल में छोड़ दिया था, तो वे अत्यधिक विचलित थीं। वे यह जानना चाह रही हैं कि इन प्रेम-व्यापारों में उन्होंने गोपियों को क्यों कष्ट उठाने दिया।

श्रीभगवानुवाच
मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते ।
न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; मिथः—परस्पर; भजन्ति—प्रेम करते हैं; ये—जो; सख्यः—मित्रगण; स्व-अर्थ—अपने लिए; एक-अन्त—नितान्त; उद्यमाः—जिनका प्रयत्न; हि—निस्सन्देह; ते—वे; न—नहीं; तत्र—वहाँ पर; सौहृदम्—सच्ची मित्रता; धर्मः—असली धार्मिकता; स्व-अर्थ—अपने लाभ; अर्थम्—के लिए; तत्—वह; हि—निस्सन्देह; न—नहीं; अन्यथा—अन्यथा।

भगवान् ने कहा : तथाकथित मित्र जो अपने लाभ के लिए एक दूसरे से स्नेह जताते हैं, वे वास्तव में स्वार्थी हैं। न तो उनकी मित्रता सच्ची होती है न ही वे धर्म के असली सिद्धान्तों का

पालन करते हैं। यदि वे एक दूसरे से लाभ की आशा न करें तो वे प्रेम नहीं कर सकते।

तात्पर्य : भगवान् गोपियों को आगाह करते हैं कि शुद्ध प्रेमपूर्ण मित्रता में कोई स्वार्थ-भावना नहीं होती। प्रत्युत मित्र के प्रति केवल प्रेम होता है।

भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरौ यथा ।
धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

भजन्ति—निष्ठापूर्वक सेवा करते हैं; अभजतः—न सेवा करने वालों के साथ; ये—जो; वै—निस्सन्देह; करुणाः—दयालु; पितरौ—माता पिता; यथा—जिस तरह; धर्मः—धार्मिक कर्तव्य; निरपवादः—त्रुटिरहित; अत्र—इसमें; सौहृदम्—मित्रता; च—तथा; सु-मध्यमाः—हे पतली कमर वालियो।

हे पतली कमर वाली गोपियों, कुछ लोग सचमुच दयालु होते हैं या माता-पिता की भाँति स्वाभाविक रूप से स्नेहिल होते हैं। ऐसे लोग उन लोगों की भी निष्ठापूर्वक सेवा करते हैं, जो बदले में उनसे प्रेम करने से चूक जाते हैं। वे ही धर्म के असली त्रुटिविहीन मार्ग का अनुसरण करते हैं और वे ही असली शुभचिन्तक हैं।

भजतोऽपि न वै केचिद्भजन्त्यभजतः कुतः ।
आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

भजतः—अनुकूल कार्य करने वालों के साथ; अपि—भी; न—नहीं; वै—निश्चय ही; केचित्—कुछ; भजन्ति—प्रेम करते हैं; अभजतः—अनुकूल कार्य न करने वालों के साथ; कुतः—क्या कहा जाय; आत्म-आरामाः—आत्म-तुष्ट; हि—निस्सन्देह; आप्त-कामाः—जिनकी भौतिक इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी हैं; अकृत-ज्ञाः—कृतघ्न; गुरु-द्रुहः—गुरुजनों के शत्रु।

फिर कुछ व्यक्ति ऐसे हैं, जो आध्यात्मिक रूप से आत्म तुष्ट हैं, भौतिक दृष्टि से परिपूर्ण हैं या स्वभाव से कृतघ्न हैं या सहज रूप से श्रेष्ठजनों से ईर्ष्या करने वाले हैं। ऐसे लोग उनसे भी प्रेम नहीं करते जो उनसे प्रेम करते हैं, तो फिर जो शत्रुवत् हैं उनका क्या कहना?

तात्पर्य : कुछ लोग आत्माराम होने के कारण अन्यों के स्नेह का प्रतिदान नहीं करते क्योंकि वे संसारी बर्ताव के बन्धन से बचना चाहते हैं। कुछ लोग ईर्ष्या या अक्खड़पन के कारण प्रेम नहीं करते। और कुछ लोग तो मात्र इसलिए प्रेम नहीं करते हैं क्योंकि वे भौतिक दृष्टि से संतुष्ट होते हैं अतएव उनके नवीन भौतिक अवसरों में अरुचिकर लगते हैं। भगवान् कृष्ण धैर्यपूर्वक ये बातें गोपियों को बता रहे हैं।

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्
भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ।
यथाधनो लब्धधने विनष्टे
तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥ २० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैं; तु—दूसरी ओर; सख्यः—हे मित्रो; भजतः—पूजा करते हुए; अपि—भी; जन्तून्—जीवों से; भजामि—आदान-प्रदान करता हूँ; अमीषाम्—उनकी; अनुवृत्ति—लालसा (शुद्ध प्रेम के लिए); वृत्तये—प्रेरित करने के लिए; यथा—जिस तरह; अधनः—निर्धन व्यक्ति; लब्ध—प्राप्त करके; धने—सम्पत्ति; विनष्टे—तथा नष्ट होने पर; तत्—उसका; चिन्तया—उत्सुक विचार से; अन्यत्—अन्य कोई वस्तु; निभृतः—पूरित; न वेद—नहीं जानता।

किन्तु हे गोपियो, मैं उन जीवों के प्रति भी तत्क्षण स्नेह प्रदर्शित नहीं कर पाता जो मेरी पूजा करते हैं। इसका कारण यह है कि मैं उनकी प्रेमाभक्ति को प्रगाढ़ करना चाहता हूँ। इससे वे ऐसे निर्धन व्यक्ति के सदृश बन जाते हैं जिसने पहले कुछ सम्पत्ति प्राप्त की थी किन्तु बाद में उसे खो दिया है। इस तरह उसके बारे में वह इतना चिन्तित हो जाता है कि और कुछ सोच ही नहीं पाता।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में भगवान् कृष्ण कहते हैं—*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्* लोग जिस तरह मेरे पास पहुँचते हैं मैं तदनुरूप उनसे प्रेम करता हूँ। फिर भी यदि कोई व्यक्ति भक्तिपूर्वक भगवान् के पास जाता है, तो हो सकता है कि भक्त के प्रेम को तीव्र बनाने के लिए भगवान् तुरन्त उसको प्रेम का पूरी तरह आदान-प्रदान न करें। वस्तुतः भगवान् सचमुच प्रतिदान करते हैं। एक निष्ठावान भक्त सदैव भगवान् से प्रार्थना करता है ''कृपया मेरी सहायता करें जिससे मैं शुद्धभाव से आपसे प्रेम कर सकूँ।'' इसलिए कृष्ण द्वारा उपेक्षा वास्तव में भक्त की प्रार्थना की पूर्ति होती है। कृष्ण अपने को हमसे विलग करते प्रतीत होते हुए, अपने प्रति हमारे प्रेम को तीव्र बनाते हैं। इसका फल यह होता है कि हम जो चाहते हैं और जिसके लिए प्रार्थना करते हैं उसे अर्थात् परम सत्य कृष्ण के अगाध प्रेम को प्राप्त करते हैं। इस तरह कृष्ण द्वारा की गई प्रतीत होने वाली उपेक्षा वास्तव में उनका विचारपूर्ण प्रतिदान है और हमारी गहनतम तथा शुद्धतम इच्छा की पूर्ति है।

आचार्यों के अनुसार, जब कृष्ण गोपियों से यह श्लोक कहने लगे तो वे एक दूसरे को तिरछी निगाहों से देखने लगीं और अपने मुखों पर आने वाली हँसी को छिपाने का प्रयास करने लगीं। अभी कृष्ण बोल ही रहे थे कि गोपियों को अनुभव होने लगा कि वे उन्हें प्रेमाभक्ति की सर्वोच्च सिद्धि प्रदान कर रहे हैं।

एवं मदर्थोज्झितलोकवेद-
स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।
मयापरोक्षं भजता तिरोहितं
मासूयितुं मार्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मत्—मेरे; अर्थ—हेतु; उज्झित—त्यागकर; लोक—सांसारिक मत; वेद—वेदों का मत; स्वानाम्—तथा सम्बन्धियों को; हि—निस्सन्देह; वः—तुम्हारा; मयि—मेरे लिए; अनुवृत्तये—प्रेमाधिक्य के लिए; अबलाः—हे बालाओ; मया—मेरे द्वारा; अपरोक्षम्—तुम्हारी दृष्टि से ओझल; भजता—वास्तव में प्रेम करने वाला; तिरोहितम्—अन्तर्धान; मा—मेरे साथ; असूयितुम्—शत्रुता होने से; म अर्हथ—नहीं चाहिए; तत्—अतः; प्रियम्—अपने प्रियतम के साथ; प्रियाः—हे प्रियाओ।

हे बालाओ, यह जानते हुए कि तुम सबों ने मेरे ही लिए लोकमत, वेदमत तथा अपने सम्बन्धियों के अधिकार को त्याग दिया है मैंने जो किया वह अपने प्रति तुम लोगों की आसक्ति को बढ़ाने के लिए ही किया है। तुम लोगों की दृष्टि से सहसा अपने को ओझल बनाकर भी मैं तुम लोगों से प्रेम करना रोक नहीं पाया। अतः प्रिय गोपियो, तुम अपने प्रेमी अर्थात् मेरे प्रति दुर्भावनाओं को स्थान न दो।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् इंगित करते हैं कि यद्यपि गोपियाँ उनके प्रति अपने प्रेम में पहले से पूर्ण थीं फिर भी उनकी पूर्णता को अकल्पनीय रूप से बढ़ाने और संसार के समक्ष दृष्टान्त प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने वैसा किया।

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन्दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; पारये—बना पाने में समर्थ; अहम्—मैं; निरवद्य-संयुजाम्—छल से पूर्णतया मुक्त होने वालों के प्रति; स्व-साधु-कृत्यम्—उचित हर्जाना; विबुध-आयुषा—देवताओं के बराबर आयु में; अपि—यद्यपि; वः—तुमको; याः—जो; मा—मुझको; अभजन्—पूजा कर चुके हैं; दुर्जर—जीत पाना कठिन; गेह-शृङ्खलाः—गृहस्थ जीवन की बेड़ी; संवृश्च्य—काट कर; तत्—वह; वः—तुमको; प्रतियातु—लौटाया जाय; साधुना—शुभ कर्म द्वारा।

मैं आपलोगों की निस्पृह सेवा के ऋण को ब्रह्मा के जीवनकाल की अवधि में भी चुका नहीं पाऊँगा। मेरे साथ तुमलोगों का सम्बन्ध कलंक से परे है। तुमने उन समस्त गृह-बन्धनों को तोड़ते हुए मेरी पूजा की है जिन्हें तोड़ पाना कठिन होता है। अतएव तुम्हारे अपने यशस्वी कार्य ही इसकी क्षतिपूर्ति कर सकते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक के भावार्थ तथा शब्दार्थ *श्रीचैतन्य चरितामृत* (आदि ४.१८०) में श्रील प्रभुपाद की अंग्रेजी टीका से लिये गये हैं।

निष्कर्ष यह है कि गोपियाँ भगवान् की क्षणिक अनुपस्थिति में अपने आचरण द्वारा धन्य हो गईं। उनके तथा भगवान् के मध्य पारस्परिक प्रेम में आशातीत वृद्धि हो गई। यह सिद्धि कृष्ण तथा उनके प्रिय भक्तों की है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत 'पुन: मिलाप' नामक बत्तीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तैंतीस

रास नृत्य

इस अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण के उस रासनृत्य का वर्णन है, जिसे उन्होंने यमुना नदी के तटपर जंगल में अपनी प्रिय सखियों के साथ रचाया।

भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य रसों के ज्ञान में सर्वाधिक प्रवीण हैं। गोपियाँ, जो कि उनसे स्नेह की रज्जु से बँधी थीं और उनकी सेवा में पूर्णतया समर्पित थीं, उन्हीं के साथ भगवान् ने अनेक रूपों में अपना विस्तार किया। रासनृत्य का आनन्द लेने के उत्साह में गोपियाँ मदोन्मत्त हो उठीं और गीत, नृत्य तथा प्रेमपूर्ण इशारों के द्वारा कृष्ण की इन्द्रियों को तुष्ट करने लगीं। उनकी मधुर वाणी से सारी दिशाएँ भर गईं।

भगवान् कृष्ण द्वारा अनेक रूप धारण करने पर भी प्रत्येक गोपी यही सोच रही थी कि कृष्ण अकेले उसकी ही बगल में खड़े हैं। गोपियाँ निरन्तर गाती और नाचती हुई धीरे धीरे थकने लगीं और हरएक ने अपने पास खड़े कृष्ण के कंधे पर अपनी बाँह रख दी। कुछ गोपियों ने कृष्ण की बाँह को सूँघा और चूमा जिसमें से कमल की सुगन्ध आ रही थी और वह चन्दन से लेपित थी। अन्यों ने कृष्ण का हाथ अपने शरीर के ऊपर रखा और किन्हीं किन्हीं ने तो प्रेमपूर्वक उनका आलिंगन करते हुए उन्हें आनन्द प्रदान किया।

परम पूर्ण सत्य होने के कारण भगवान् कृष्ण ही वास्तविक भोक्ता तथा भोग्य साधन हैं। यद्यपि वे

अद्वितीय हैं किन्तु अपनी साकार लीलाओं को बढ़ाने के लिए वे स्वयं का अनेक रूपों में विस्तार करते हैं। इसीलिए बड़े बड़े पंडितों का कहना है कि कृष्ण की रासलीला बच्चों द्वारा अपनी ही परछाईं के साथ खिलवाड़ जैसा है। श्रीकृष्ण आत्मतुष्ट हैं और अचिन्त्य दिव्य ऐश्वर्यों से पूरी तरह से युक्त हैं। जब वे *रासलीला* जैसी लीला का प्रदर्शन करते हैं, तो ब्रह्मा से लेकर एक दूब के तिनके तक सारे जीव विस्मय के सागर में मग्न हो जाते हैं।

जब महाराज परीक्षित ने गोपियों के साथ कृष्ण की माधुर्य लीलाओं की कथा सुनी, जो ऊपर तौर से कामी भ्रष्ट पुरुषों के कार्यों जैसी लगने वाली थी, तो उन्होंने महान् भक्त श्रील शुकदेव गोस्वामी से अपना सन्देह व्यक्त किया। शुकदेव ने उनका सन्देह यह कह कर दूर किया कि "चूंकि श्रीकृष्ण परम भोक्ता हैं, इस तरह की लीलाएँ कभी भी किसी दोष से कलुषित नहीं हो सकतीं। और यदि भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति ऐसी लीलाओं का आनन्द लेना चाहेगा तो उसे वैसा ही भोग भोगना पड़ेगा जैसाकि भगवान् रुद्र के अतिरिक्त विष के सागर को पीने का प्रयास करने वाले अन्य किसी व्यक्ति को भोगना पड़ता है। यहाँ तक कि यदि कोई कृष्ण की रासलीला का अनुकरण करने का भी विचार मन में लाता है, तो उसे निश्चय ही दुर्भाग्य का सामना करना होगा।"

परम पूर्ण सत्य, श्रीकृष्ण प्रत्येक जीव के हृदय में अन्तर्यामी साक्षी के रूप में निवास करते हैं। जब कृपा करके वे अपने भक्तों को अपनी घनिष्ठ लीलाएँ प्रदर्शित करते हैं, तो ये लीलाएँ कभी भी संसारी अपूर्णता से मलिन नहीं होतीं। जो भी व्यक्ति कृष्ण के लिए गोपियों द्वारा अनुभूत प्रेमाकर्षण के विषय में सुनता है उसकी भौतिक इन्द्रियतृप्ति की इच्छाएँ समूल नष्ट हो जाती हैं और उसमें भगवान्, आध्यात्मिक गुरु तथा भगवद्भक्तों की सेवा करने की सहज रुचि का विकास होता है।

श्रीशुक उवाच

इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ।
जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस प्रकार; भगवतः—भगवान् के; गोप्यः—गोपियाँ; श्रुत्वा—सुनकर; वाचः—शब्द; सु-पेशलाः—अत्यन्त मनोहारी; जहुः—त्याग दिया; विरह-जम्—विछोह भावों से उत्पन्न; तापम्—क्लेश; तत्—उसके; अङ्ग—अंगों के (स्पर्श) से; उपचित—पूर्ण हो गयी; आशिषः—इच्छाएँ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब गोपियों ने भगवान् को अत्यन्त मनोहारी इन शब्दों में कहते

सुना तो वे उनके विछोह से उत्पन्न अपना दुख भूल गईं। उनके दिव्य अंगों का स्पर्श पाकर उन्हें लगा कि उनकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो गईं।

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः ।
स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; आरभत—प्रारम्भ किया; गोविन्दः—भगवान् कृष्ण ने; रास-क्रीडाम्—रास नृत्य की लीला; अनुव्रतैः—श्रद्धायुक्त (गोपियों); स्त्री—स्त्रियों के; रत्नैः—रत्नों के साथ; अन्वितः—जुड़ी हुई; प्रीतैः—सन्तुष्ट; अन्योन्य—एक दूसरे से; आबद्ध—बाँध कर; बाहुभिः—अपनी बाँहों से।

तत्पश्चात् भगवान् गोविन्द ने वहीं यमुना के तट पर उन स्त्री-रत्न श्रद्धालु गोपियों के संग में रासनृत्य लीला प्रारंभ की जिन्होंने प्रसन्नता के मारे अपनी बाँहों को एक दूसरे के साथ श्रृंखलाबद्ध कर दिया।

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः ।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ॥
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ।
यं मन्येरन्नभस्तावद्विमानशतसङ्कुलम् ।
दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ३॥

शब्दार्थ

रास—रासनृत्य का; उत्सवः—उत्सव; सम्प्रवृत्तः—प्रारम्भ हुआ; गोपी-मण्डल—गोपियों के घेरे से; मण्डितः—सज्जित; योग—योगशक्ति के; ईश्वरेण—परम नियन्ता; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; तासाम्—उनके; मध्ये—बीच में; द्वयोः द्वयोः—प्रत्येक जोड़े के बीच; प्रविष्टेन—उपस्थित; गृहीटानाम्—पकड़े हुए; कण्ठे—गर्दन से; स्व-निकटम्—अपने पास; स्त्रियः—स्त्रियाँ; यम्—जिसको; मन्येरन्—माना; नभः—आकाश में; तावत्—उसी समय; विमान—वायुयानों की; शत—सैकड़ों; सङ्कुलम्—भीड़ लग गई; दिव—स्वर्गलोकों के; ओकसाम्—निवासियों के; स—सहित; दाराणाम्—अपनी अपनी पत्नियों के; औत्सुक्य—उत्सुकतापूर्वक; अपहृत—ले जाये गये; आत्मनाम्—उनके मन।

तब उल्लासपूर्ण रासनृत्य प्रारम्भ हुआ जिसमें गोपियाँ एक गोलाकार घेरे में सध गईं। भगवान् कृष्ण ने अपना विस्तार किया और गोपियों के प्रत्येक जोड़े के बीच-बीच प्रविष्ट हो गये। ज्योंही योगेश्वर ने अपनी भुजाओं को उनके गलों के चारों ओर रखा तो प्रत्येक युवती ने सोचा कि वे केवल उसके ही पास खड़े हैं। इस रासनृत्य को देखने के लिए देवता तथा उनकी पत्नियाँ उत्सुकता से गद्गद हुये जा रहे थे। शीघ्र ही आकाश में उनके सैकड़ों विमानों की भीड़ लग गई।

तात्पर्य : श्रील बिल्वमंगल ठाकुर ने रासनृत्य पर निम्नलिखित श्लोक लिखा है—

अङ्गनामङ्गनामन्तरा माधवो

माधवं माधवं चान्तरेणांगना: ।

इत्थमाकल्पिते मण्डले मध्यग:

सञ्जगौ वेणुना देवकीनन्दन: ॥

''भगवान् माधव गोपियों की हर जोड़ी के बीच स्थित थे और उनके स्वरूपों के प्रत्येक जोड़े के बीच एक गोपी स्थित थी। देवकीपुत्र श्रीकृष्ण भी अपनी वंशी बजाते तथा गीत गाते गोलाकार के बीच में प्रकट हुए।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इंगित करते हैं कि प्रेम में उन्मत्त होने के कारण गोपियाँ समझ नहीं पाईं कि श्रीकृष्ण ने अपना विस्तार कर लिया है और वे स्वयं उनमें से हरएक के साथ नृत्य कर रहे हैं। हर गोपी को कृष्ण का एक रूप दिखा। किन्तु देवतागण अपनी पत्नियों समेत अपने विमानों से रासनृत्य देखते हुए उनके विविध रूपों को देख सकते थे इसलिए वे अत्यधिक चकित थे।

ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ।
जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

ततः—तब; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; नेदुः—बजने लगीं; निपेतुः—नीचे गिरी; पुष्प—फूल की; वृष्टयः—वर्षा; जगुः—गाया; गन्धर्व-पतयः—मुख्य गन्धर्वों ने; स-स्त्रीकाः—अपनी पत्नियों समेत; तत्—उस भगवान् कृष्ण की; यशः—महिमा; अमलम्—निष्कलंक, निर्मल।

तब आकाश में दुन्दुभियाँ बज उठीं और फूलों की वर्षा होने लगी। मुख्य गन्धर्वों ने अपनी पत्नियों के साथ भगवान् कृष्ण के निर्मल यश का गायन किया।

तात्पर्य : जैसाकि यहाँ कहा गया है, रासनृत्य के समय भगवान् कृष्ण का यश शुद्ध आध्यात्मिक आनन्द है। स्वर्ग के देवताओं ने जो ब्रह्माण्ड में स्वामित्व बनाए रखने के लिए उत्तरदायी हैं, रासनृत्य को प्रसन्नतापूर्वक परम धार्मिक नृत्य माना जो भौतिक संसार में प्रेम-क्रीड़ा के विकृत परावर्तित रूप से सर्वथा भिन्न था।

वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम् ।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥ ५॥

शब्दार्थ

वलयानाम्—कंगनों के; नूपुराणाम्—पायलों के; किङ्किणीनाम्—करधनियों के घुंघरुओं से; च—तथा; योषिताम्—स्त्रियों के; स-प्रियाणाम्—अपने प्रियतम के साथ; अभूत्—हुई; शब्दः—ध्वनि; तुमुलः—जोर की; रास-मण्डले—रासनृत्य के घेरे में।

जब गोपियाँ रासनृत्य के मण्डल में अपने प्रियतम कृष्ण के साथ नृत्य करने लगीं तो उनके कंगनों, पायलों तथा करधनी के घुंघरुओं से तुमुल ध्वनि उठती थी।

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकीसुतः ।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; अतिशुशुभे—अत्यन्त शोभायमान लगे; ताभिः—उनके साथ; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकीपुत्र, कृष्ण; मध्ये—बीच में; मणीनाम्—आभूषणों के; हैमानाम्—सोने के; महा—महान; मरकतः—मरकत; यथा—जिस तरह।

नृत्य करती गोपियों के बीच भगवान् कृष्ण अत्यन्त शोभायमान प्रतीत हो रहे थे जिस तरह सोने के आभूषणों के बीच मरकत मणि शोभा पाता है।

तात्पर्य : श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि देवकी नाम, वसुदेव की पत्नी के अलावा, माता यशोदा का भी नाम है, जैसाकि *आदि पुराण* में कहा गया है—*द्वे नाम्नी नन्दभार्याया यशोदा देवकीति च*—नन्द की पत्नी के दो नाम हैं—यशोदा तथा देवकी।

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
स्विद्यन्मुख्यः कवररसनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

पाद—पाँवों के; न्यासैः—पड़ने से; भुज—हाथों के; विधुतिभिः—इशारों से; स-स्मितैः—हँसते हुए; भ्रू—भौंहों की; विलासैः—क्रीड़ापूर्ण गतियों से; भज्यन्—झुकते लचकते हुए; मध्यैः—बीच से; चल—चलायमान; कुच—स्तनों को ढकने वाले; पटैः—वस्त्रों से; कुण्डलैः—कान की बालियों से; गण्ड—गालों पर; लोलैः—हिलते डुलते; स्विद्यन्—पसीना आता हुआ; मुख्यः—मुखोंवाली; कवर—जूड़ा; रसना—तथा करधनी; आग्रन्थयः—मजबूती से बँधी; कृष्ण-वध्वः—भगवान् कृष्ण की बधुएँ; गायन्त्यः—गाती हुईं; तम्—उसके विषय में; तडितः—बिजली; इव—सदृश; ताः—वे; मेघ-चक्रे—बादलों की श्रेणी में; विरेजुः—चमकने लगीं।

जब गोपियों ने कृष्ण की प्रशंसा में गीत गाया, तो उनके पाँवों ने नृत्य किया, उनके हाथों ने इशारे किये और उनकी भौंहें हँसी से युक्त होकर मटकने लगीं। जिनकी वेणियाँ तथा कमर की पेटियाँ मजबूत बँधी हुई थीं, जिनकी कमरें लचकती हुई थी, जिनके मुखों पर पसीने की बूँदे झलकती थीं, जिनके स्तनों को ढके हुए वस्त्र इधर उधर हिलते थे तथा जिनके कानों की

बालियाँ गालों पर हिल-डुल रही थीं, कृष्ण की ऐसी तरुणी प्रियाएँ बादल के समूह में बिजली की कौंध की तरह चमक रही थीं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी व्याख्या करते हैं कि बादलों में बिजली चमकने के दृष्टान्त के अनुसार गोपियों के सुन्दर मुखड़ों पर पसीने की बूँदे कुहरे की बूँदों के अनुरूप थीं और उनका गायन गर्जना के समान था। *आग्रन्थय:* शब्द को *अग्रन्थय:* के रूप में भी पढ़ा जा सकता है, जिसका अर्थ होगा—''ढीली हो गयी''। इससे यह सूचित होगा कि यद्यपि गोपियों ने बालों तथा पेटियों को मजबूती से कसकर नाचना शुरू किया था किन्तु ये धीरे धीरे ढीली पड़कर खुलने लगी।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर संकेत करते हैं कि गोपियाँ मुद्राएँ (किसी कला-प्रदर्शन के केन्द्रीय विचार से सम्बन्धित अर्थों को बताने या भावों को अभिव्यक्त करने वाले हाथों द्वारा समुचित इशारे) प्रदर्शित करने में पटु थीं। अत: कभी कृष्ण तथा गोपियाँ अपनी बाँहें फँसाकर कलात्मक ढंग से उन्हें इकट्ठे हिलाते तो कभी बाँहें विलग करके गाये जाने वाले गीत के अर्थ को प्रकट करने के लिए मुद्राएँ बनाते।

पादन्यासै शब्द सूचित करता है कि गोपियों ने अपने नृत्य करते पाँवों के पगों को कलात्मक तथा शालीनता के साथ आकर्षक ढंग से रखा। *सस्मितैर्भ्रूविलासै* शब्द बतलाते हैं कि उनकी भौहों की विलासपूर्ण गतियाँ एवं प्रेमपूर्वक हँसी देखने में अत्यन्त मनोहारी लग रही थीं।

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रिया: ।
कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

उच्चै:—जोर जोर से; जगु:—गाया; नृत्यमाना:—नाच करते हुए; रक्त—रंगीन; कण्ठ्य:—उनके गले; रति—प्रणय (माधुर्य आनन्द); प्रिया:—समर्पित; कृष्ण-अभिमर्श—कृष्ण के स्पर्श से; मुदिता:—हर्षित; यत्—जिनके; गीतेन—गाने से; इदम्—यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड; आवृतम्—व्याप्त है।

विविध रंगों से रँगे कंठों वाली, माधुर्यप्रेम का आनन्द लूटने की इच्छुक गोपियों ने जोर जोर से गाना गाया और नृत्य किया। वे कृष्ण का स्पर्श पाकर अति-आनन्दित थीं और उन्होंने जो गीत गाये उनसे सारा ब्रह्माण्ड भर गया।

तात्पर्य : संगीत की प्रामाणिक पुस्तक *संगीत सार* के अनुसार *तावन्त एव रागा: सूर्यावत्यो जीवजातय: । तेषु षोडशसाहस्त्री पुरा गोपीकृता वरा* ''जितनी जीव योनियाँ हैं उतने ही संगीत के राग

हैं। इनमें से १६,००० राग प्रमुख हैं, जिन्हें गोपियाँ प्रकट कर रही थीं।'' इस तरह गोपियों ने १६,००० विभिन्न राग उत्पन्न किये और वे ही बाद में सारे विश्व में फैल गये। *यद्गीतेनेदमावृतम्* शब्दों से यह भी सूचित होता है कि आज भी सारे विश्व में भक्तगण गोपियों का अनुकरण करते हुए कृष्ण की महिमा का गायन करते हैं।

काचित्समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ।
उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति ।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥ ९॥

शब्दार्थ

काचित्—कोई कोई; समम्—साथ; मुकुन्देन—कृष्ण के; स्वर-जातीः—शुद्ध संगीतमय स्वर; अमिश्रिताः—कृष्ण द्वारा निकाली गई ध्वनि से न मिला हुआ; उन्निन्ये—अलापा, छेड़ा; पूजिता—सम्मानित; तेन—उसके द्वारा; प्रीयता—प्रसन्न; साधु साधु इति—''बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'' कहते हुए; तत् एव—वही (राग); ध्रुवम्—ध्रुपद सहित; उन्निन्ये—अलापा (अन्य गोपी ने); तस्यै—उसको; मानम्—विशेष आदर; च—तथा; बहु—अधिक; अदात्—प्रदान किया।

एक गोपी ने भगवान् मुकुन्द के गाने के साथ साथ शुद्ध मधुर राग गाया जो कृष्ण के स्वर से भी उच्च सुर ऊँचे स्वर में था। इससे कृष्ण प्रसन्न हुए और ''बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'' कहकर उसकी प्रशंसा की। तत्पश्चात् एक दूसरी गोपी ने वही राग अलापा किन्तु वह ध्रुपद के विशेष छंद में था। कृष्ण ने उसकी भी प्रशंसा की।

काचिद्रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ।
जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥ १०॥

शब्दार्थ

काचित्—कोई गोपी; रास—रासनृत्य से; परिश्रान्ता—थकी हुई; पार्श्व—बगल में; स्थस्य—खड़े हुए; गदा-भृतः—गदाधारी भगवान् कृष्ण के; जग्राह—पकड़ लिया; बाहुना—अपनी बाँह से; स्कन्धम्—कन्धे को; श्लथत्—ढीला करते हुए; वलय—अपने कंगन; मल्लिका—तथा (बालों में गुँथे) फूल।

जब एक गोपी रासनृत्य से थक गई तो वह अपनी बगल में खड़े गदाधर कृष्ण की ओर मुड़ी और उसने अपनी बाँह से उनके कन्धे को पकड़ लिया। नाचने से उसके कँगन तथा बालों में लगे फूल ढीले पड़ गये थे।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में बताया गया है कि कृष्ण ने गोपियों के गायन तथा नृत्य की सराहना की और इस श्लोक में हम देखते हैं कि किस तरह गोपियों ने उनके साथ घनिष्ठता एवं विश्वास से पूर्ण आचरण किया। यहाँ पर एक थकी हुई गोपी कृष्ण के कन्धे पर अपनी बाँह टेक कर विश्राम लेने

लगी।

श्रील जीव गोस्वामी की व्याख्या है कि इस श्लोक में प्रयुक्त *गदा* शब्द नृत्य-शिक्षक के उपयुक्त गदा की ओर संकेत करता है। कृष्ण अपने साथ यह गदा रासनृत्य के आनन्द को बढ़ाने के लिए ले आये थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि यहाँ पर जिस गोपी का उल्लेख है, वह श्रीमती राधारानी है, जबकि पिछले श्लोक में वर्णित दो गोपियाँ क्रमश: विशाखा तथा ललिता हैं।

तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् ।
चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; एका—एक (गोपी); अंस—अपने कन्धे पर; गतम्—रखी हुई; बाहुम्—बाँह को; कृष्णस्य—कृष्ण की; उत्पल—नीले कमल सदृश; सौरभम्—जिसकी सुगन्ध; चन्दन—चन्दन लेप से; आलिप्तम्—लेप की हुई; आघ्राय—महकती हुई; हृष्ट—खड़े हुए; रोमा—शरीर के रोएँ; चुचुम्ब ह—उसने चूम लिया।

कृष्ण ने अपनी बाँह एक गोपी के कन्धे पर रख दी जिसमें से प्राकृतिक नीले कमल की सुगन्ध के साथ उसमें लेपित चन्दन की मिली हुई सुगन्ध आ रही थी। ज्योंही गोपी ने उस सुगन्ध का आस्वादन किया त्योंही हर्ष से उसे रोमांच हो उठा और उसने उनकी बाँह को चूम लिया।

कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्त कुण्डलत्विषमण्डितम् ।
गण्डं गण्डे सन्दधत्या: प्रादात्ताम्बूलचर्वितम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

कस्याश्चित्—किसी एक गोपी; नाट्य—नाचने से; विक्षिप्त—हिलता हुआ; कुण्डल—कान की बालियाँ; त्विष—चमक से; मण्डितम्—सुशोभित; गण्डम्—अपने कपोल; गण्डे—कृष्ण के गाल के निकट; सन्दधत्या:—रखती हुई; प्रादात्—सावधानी पूर्वक दे दिया; ताम्बूल—पान; चर्वितम्—चबाया हुआ।

एक गोपी ने कृष्ण के गाल पर अपना गाल रख दिया जो उसके कुंडलों से सुशोभित था और उसके नाचते समय चमचमा रहा था। तब कृष्ण ने बड़ी ही सावधानी से उसे अपना चबाया पान दे दिया।

नृत्यती गायती काचित्कूजन्नूपुरमेखला ।
पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं श्रान्ताधात्स्तनयो: शिवम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

नृत्यती—नाचती; गायती—गाती; काचित्—कोई गोपी; कूजन्—झनकार करते; नूपुर—घुंघरू की; मेखला—तथा अपनी करधनी; पार्श्व-स्थ—उसके पास में ही खड़े; अच्युत—भगवान् कृष्ण का; हस्त-अब्जम्—करकमल; श्रान्ता—थककर; अधात्—रख लिया; स्तनयोः—अपने स्तनों पर; शिवम्—सुखद।

एक अन्य नाचती तथा गाती हुई गोपी, जिसके पाँवों के नूपुर और कमर की करधनी के घुंघरू बज रहे थे, थक गई अतः उसने अपने पास ही खड़े भगवान् अच्युत के सुखद करकमल को अपने स्तनों के ऊपर रख लिया।

गोप्यो लब्ध्वाच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम् ।
गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तम्विजह्रिरे ॥ १४॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियाँ; लब्ध्वा—पाकर; अच्युतम्—अच्युत भगवान् को; कान्तम्—अपने प्रेमी के रूप में; श्रियः—लक्ष्मी के; एकान्त—एकमात्र; वल्लभम्—प्रेमी को; गृहीत—पकड़े हुए; कण्ठ्यः—उनके गलों को; तत्—उसका; दोर्भ्याम्—भुजाओं से; गायन्त्यः—गाती हुई; तम्—उसको; विजह्रिरे—आनन्द लूटा।

लक्ष्मी जी के विशिष्टप्रिय भगवान् अच्युत को अपने घनिष्ठ प्रेमी के रूप में पाकर गोपियों ने अथाह आनन्द लूटा। वे उनको अपनी भुजाओं में लपेटे थे और ये उनके यश का गान कर रही थीं।

कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्म-
वक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ।
गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेश-
स्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

कर्ण—उनके कानों में; उत्पल—कमल के फूल से; अलक—उनकी लटों से; वितङ्क—अलंकृत; कपोल—उनके गाल; घर्म—पसीने से; वक्त्र—उनके मुखों के; श्रियः—सौन्दर्य; वलय—कंगन; नूपुर—तथा घुंघरू के; घोष—शब्द का; वाद्यैः—बाजे से; गोप्यः—गोपियों ने; समम्—साथ; भगवता—भगवान् के; ननृतुः—नाचा; स्व—अपने लिए; केश—बाल से; स्रस्त—बिखरी; स्रजः—मालाएँ; भ्रमर—भौंरे; गायक—गानेवाले; रास—रासनृत्य की; गोष्ठ्याम्—गोष्ठी में।

कानों के पीछे लगे कमल के फूल, गालों को अलंकृत कर रही बालों की लटें तथा पसीने की बूँदें गोपियों के मुखों की शोभा बढ़ा रही थीं। उनके बाजुबंदों तथा घुंघरुओं की रुनझुन से जोर की संगीतात्मक ध्वनि उत्पन्न हो रही थी और उनके जूड़े बिखरे हुए थे। इस तरह गोपियाँ भगवान् के साथ रासनृत्य के स्थल पर नाचने लगीं और उनका साथ देते हुए भौंरों के झुंड गुनगुनाने लगे।

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्श-
स्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।
रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; परिष्वङ्ग—आलिंगन करते हुए; कर—अपने हाथ से; अभिमर्श—स्पर्श करते हुए; स्निग्ध—स्नेहिल; ईक्षण—चितवनों से; उद्दाम—तिरछी, चौड़ी; विलास—चंचल; हासैः—हँसी से युक्त; रेमे—आनन्द लूटा; रमा—लक्ष्मी जी के; ईशः—स्वामी ने; व्रज-सुन्दरीभिः—ग्वालजाति की तरुणियों के साथ; यथा—जिस तरह; अर्भकः—एक बालक; स्व—अपनी; प्रतिबिम्ब—परछाई से; विभ्रमः—खेलवाड़।

इस प्रकार आदि भगवान् नारायण, लक्ष्मीपति भगवान् कृष्ण ने व्रज की युवतियों का आलिंगन करके, उन्हें दुलार करके तथा अपनी तिरछी चंचल हँसी से उन्हें प्रेमपूर्वक निहार करके उनके साथ में आनन्द लूटा। यह वैसा ही था जैसे कि कोई बालक अपनी परछाईं के साथ खेल रहा हो।

तात्पर्य : श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है "केवल भगवान् कृष्ण ही परम पूर्ण सत्य हैं और उनकी शक्तियाँ असीम हैं। ये असीम शक्तियाँ साकार होकर भगवान् कृष्ण को उनकी लीलाओं में प्रवृत्त करती हैं। जिस प्रकार उनकी एक परम दिव्य शक्ति की ऐश्वर्यपूर्ण अभिव्यक्ति से भगवान् की असंख्य शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं उसी तरह रासनृत्य में कृष्ण अपने को उतने ही गुने रूपों में प्रकट करते हैं जितनी शक्तियाँ गोपियों के रूप में हैं। हर वस्तु कृष्ण है किन्तु कृष्ण की इच्छा से उनकी आध्यात्मिक शक्ति योगमाया गोपियों को प्रकट करती है। जब उनकी अन्तरंगा शक्ति योगमाया उनके दिव्य भावों के प्रवर्धन हेतु ऐसी लीलाएँ प्रकट करती है, तो यह वैसा ही होता है जैसे कि कोई बालक अपनी ही परछाईं से खेल रहा हो। किन्तु चूँकि ये लीलाएँ उनकी ही आध्यात्मिक शक्ति द्वारा रची जाती हैं अत: वे नित्य तथा स्वत: प्रकट होने वाली हैं।"

तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः
केशान्दुकूलं कुचपट्टिकां वा ।
नाञ्जः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो
विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥ १७॥

शब्दार्थ

तत्—उनके साथ; अङ्ग-सङ्ग—शारीरिक स्पर्श से; प्रमुदा—हर्ष से; आकुल—व्याकुल; इन्द्रियाः—जिनकी इन्द्रियाँ; केशान्—उनके बाल; दुकूलम्—वस्त्र; कुच-पट्टिकाम्—स्तनों को ढकने वाले वस्त्र, चोलियाँ; वा—अथवा; न—नहीं; अञ्जः—आसानी

से; प्रतिव्योढुम्—सुसज्जित रखने के लिए; अलम्—समर्थ; व्रज-स्त्रियः—व्रज की स्त्रियाँ; विस्रस्त—बिखरी हुई; माला—फूलों की मालाएँ; आभरणाः—तथा गहने; कुरु-उद्वह—हे कुरुवंश के परम विख्यात सदस्य।

उनका शारीरिक संसर्ग पा लेने से गोपियों की इन्द्रियाँ हर्ष से अभिभूत हो गईं जिसके कारण वे अपने बाल, अपने वस्त्र तथा स्तनों के आवरणों को अस्तव्यस्त होने से रोक न सकीं। हे कुरुवंश के वीर, उनकी मालाएँ तथा उनके गहने बिखर गये।

कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः ।
कामार्दिताः शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण-विक्रीडितम्—कृष्ण की क्रीड़ा; वीक्ष्य—देखकर; मुमुहुः—मोहित हो गईं; खे-चर—आकाश में यात्रा करतीं; स्त्रियः—स्त्रियाँ (देवियाँ); काम—काम वासना से; अर्दिताः—चलायमान; शशाङ्कः—चन्द्रमा; च—भी; स-गणः—अपने अनुचर तारों सहित; विस्मितः—चकित; अभवत्—हुआ।

देवताओं की पत्नियाँ अपने विमानों से कृष्ण की क्रीड़ाएँ देखकर सम्मोहित हो गईं और कामवासना से विचलित हो उठीं। वस्तुतः चन्द्रमा तक भी अपने पार्षद तारों समेत चकित हो उठा।

कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ।
रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

कृत्वा—करके, बनाकर; तावन्तम्—उतने गुना बढ़ाकर; आत्मानम्—अपने को; यावतीः—जितनी; गोप-योषितः—गोप स्त्रियाँ; रेमे—विलास किया; सः—उस; भगवान्—भगवान् ने; ताभिः—उनके साथ; आत्म-आरामः—आत्म-तुष्ट; अपि—यद्यपि; लीलया—लीला के रूप में।

वहाँ पर जितनी गोपिकाएँ थीं उतने ही रूपों में विस्तार करके, भगवान् ने खेल खेल में उनकी संगति का आनन्द लूटा यद्यपि वे आत्माराम हैं।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती संकेत करते हैं, यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि भगवान् कृष्ण समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त हैं और आध्यात्मिक आत्म-तुष्टि के पद परमपूर्ण हैं।

तासां रतिविहारेण श्रान्तानां वदनानि सः ।
प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शन्तमेनाङ्ग पाणिना ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तासाम्—उन गोपियों के; रति—माधुर्य प्रेम के; विहारेण—भोग विलास के द्वारा; श्रान्तानाम्—थकी हुईं; वदनानि—मुख; सः—उसने; प्रामृजत्—पोंछा; करुणः—दयालु; प्रेम्णा—प्रेमपूर्वक; शन्तमेन—अत्यन्त सुखद; अङ्ग—हे प्रिय (राजा परीक्षित); पाणिना—अपने हाथ से।

यह देखकर कि गोपियाँ माधुर्य विहार करने से थक गई थीं, हे राजन (परिक्षित), दयालु श्रीकृष्ण ने बड़े ही प्रेम से उनके मुखों को अपने सुखद हाथों से पोंछा।

गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्-
गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ।
मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि
पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियाँ; स्फुरत्—चमकते हुए; पुरट—सुनहले; कुण्डल—अपने कान की बालियों का; कुन्तल—तथा अपने (घुँघराले) केशों के; त्विट्—तेज का; गण्ड—कपोलों के; श्रिया—सौन्दर्य से; सुधित—अमृतमय बनाया गया; हास—हँसी; निरीक्षणेन—अपनी चितवन से; मानम्—आदर; दधत्यः—देते हुए; ऋषभस्य—अपने नायक के; जगुः—गाया; कृतानि—कार्यकलापों को; पुण्यानि—शुभ; तत्—उसके; कर-रुह—हाथ के नाखूनों के; स्पर्श—स्पर्श से; प्रमोदाः—अत्यधिक प्रमुदित।

अपने गालों के सौंदर्य, घुँघराले बालों के तेज एवं सुनहरे कुंडलों की चमक से मधुरित हँसीयुक्त चितवनों से गोपियों ने अपने नायक को सम्मान दियाकिया। उनके नखों के स्पर्श से पुलकित होकर वे उनकी शुभ दिव्य लीलाओं का गान करने लगीं।

ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गसङ्ग-
घृष्टस्रजः स कुचकुङ्कुमरञ्जितायाः ।
गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद्वाः
श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

ताभिः—उनके द्वारा; युतः—युक्त; श्रमम्—थकावट; अपोहितुम्—दूर करने के लिए; अङ्ग-सङ्ग—उनकी माधुर्य संगति से; घृष्ट—कुचली गयी; स्रजः—माला; सः—वह; कुच—उनके स्तनों के; कुङ्कुम—सिंदूर से; रञ्जितायाः—पुता हुआ; गन्धर्व-प—जो गंधर्वों की तरह लग रहा था; अलिभिः—भौंरा से; अनुद्रुतः—तेजी से पीछा किया जाता हुआ; आविशत्—प्रवेश किया; वाः—जल; श्रान्तः—थका; गजीभिः—हथिनियों के साथ; इभ-राट्—शाही हाथी; इव—सदृश; भिन्न—छिन्न-भिन्न करके; सेतुः—धान के खेत की मेड़ें।

भगवान् श्रीकृष्ण की माला गोपियों के साथ माधुर्य विहार करते समय कुचल गई थी और उनके स्तनों के कुंकुम से सिंदूरी रंग की हो गई थी। गोपियों की थकान मिटाने के लिए कृष्ण यमुना के जल में घुस गये, जिनका पीछा तेजी से भौंरें कर रहे थे, जो श्रेष्ठतम गन्धर्वों की तरह गा रहे थे। कृष्ण ऐसे लग रहे थे मानो कोई राजसी हाथी अपनी संगिनियों के साथ जल में

सुस्ताने के लिए प्रविष्ट हो रहा हो। निस्सन्देह भगवान् ने सारी लोक तथा वेद की मर्यादा का उसी तरह अतिक्रमण कर दिया जिस तरह एक शक्तिशाली हाथी धान के खेतों की रौंद ड़ालता है।

सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः
प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ।
वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो
रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥ २३॥

शब्दार्थ

सः—वह; अम्भसि—जल में; अलम्—अत्यधिक; युवतिभिः—युवतियों के साथ; परिषिच्यमानः—जल उलीच करके; प्रेम्णा—प्रेमपूर्वक; ईक्षितः—देखे जाकर; प्रहसतीभिः—हँसने वालियों के द्वारा; इतः ततः—इधर उधर; अङ्ग—हे राजन्; वैमानिकैः—विमानों से यात्रा कर रही; कुसुम—फूल; वर्षिभिः—बरसाती हुई; ईड्यमानः—पूजित होकर; रेमे—विहार किया; स्वयम्—खुद; स्व-रतिः—आत्मतुष्ट होकर; अत्र—यहाँ; गज-इन्द्र—हाथियों का राजा; लीलः—लीला।

हे राजन्, जल में कृष्ण ने अपने ऊपर चारों ओर से हँसती एवं अपनी ओर प्रेमपूर्ण निहारती गोपियों के द्वारा जल उलीचा जाते देखा। जब देवतागण अपने विमानों से उनपर फूल वर्षा करके उनकी पूजा कर रहे थे तो आत्मतुष्ट भगवान् हाथियों के राजा की तरह क्रीड़ा करने का आनन्द लेने लगे।

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थल-
प्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ।
चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो
यथा मदच्युद्द्विरदः करेणुभिः ॥ २४॥

शब्दार्थ

ततः—तब; च—तथा; कृष्णा—यमुना नदी के; उपवने—छोटे जंगल में; जल—जल; स्थल—तथा भूमि के; प्रसून—फूलों की; गन्ध—सुगन्धि से; अनिल—वायु से; जुष्ट—साथ हो लिये; दिक्-तटे—दिशाओं के छोर; चचार—गुजरा; भृङ्ग—भौंरों; प्रमदा—तथा स्त्रियों के; गण—समूह से; आवृतः—घिरा; यथा—जिस प्रकार; मद-च्युत्—उत्तेजना से अपने मस्तक से रस चुवाता; द्विरदः—हाथी; करेणुभिः—हथिनियों के साथ।

तत्पश्चात् भगवान् ने यमुना के किनारे स्थित एक छोटे से उपवन में भ्रमण किया। यह उपवन स्थल तथा जल में उगने वाले फूलों की सुगन्ध लेकर बहने वाली मन्द वायु से भरपूर था। भौंरों तथा सुन्दर स्त्रियों के साथ भ्रमण कर रहे भगवान् कृष्ण ऐसे लग रहे थे मानों कोई मदमत्त हाथी अपनी हथिनियों के साथ जा रहा हो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार यह यहाँ स्वतः समझने योग्य है कि जल-विहार के बाद कृष्ण ने देह में मालिश कराई और तब अपने प्रिय वस्त्र पहन कर गोपियों के साथ उन्होंने अपनी

लीलाएँ फिर आरम्भ कर दीं।

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः
स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ।
सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः
सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; शशाङ्क—चन्द्रमा की; अंशु—किरणों से; विराजिताः—चमकाई गई; निशाः—रात्रियाँ; सः—वह; सत्य-कामः—जिसकी इच्छाएँ सदैव पूरी होती हैं; अनुरत—उनमें निरन्तर अनुरक्त; अबला-गणः—अनेक सखियों; सिषेवे—लाभ उठाया; आत्मनि—अपने में; अवरुद्ध—सुरक्षित; सौरतः—मैथुन या काम भाव; सर्वाः—सभी (रातें); शरत्—शरदऋतु की; काव्य—काव्यमय; कथा—कहानियों का; रस—दिव्य रसों का; आश्रयाः—आधार।

यद्यपि गोपियाँ सत्यकाम कृष्ण के प्रति दृढ़तापूर्वक अनुरक्त थीं किन्तु भीतर से भगवान् किसी संसारी काम-भावना से प्रभावित नहीं थे। फिर भी उन्होंने अपनी लीलाएँ सम्पन्न करने के लिए चाँदनी से खिली हुई उन समस्त शरतकालीन रातों का लाभ उठाया जो दिव्य विषयों के काव्यमय वर्णन के लिए प्रेरणा देती हैं।

तात्पर्य : *रस* का सही सही वर्णन करना कठिन है। यह वह आध्यात्मिक आनन्द है, जो भगवान् कृष्ण के साथ प्रेममय सम्बन्ध होने पर अनुभव किया जाता है। वह आनन्द भगवान् तथा उनके भक्तों के साथ आध्यात्मिक लीलाओं के मध्य अनुभव किया जाता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि व्यास, पराशर, जयदेव, लीलाशुक (बिल्वमंगल ठाकुर), गोवर्धनाचार्य तथा श्रील रूप गोस्वामी जैसे वैष्णव कवियों ने भगवान् के माधुर्य व्यापारों का वर्णन अपने अपने काव्यों में करने का प्रयास किया है। किन्तु ये वर्णन पूर्ण नहीं हैं क्योंकि भगवान् की लीलाएँ अनन्त हैं अतः ऐसी लीलाओं के महिमा-गान का प्रयास अब भी जारी है और सदैव चलता रहेगा। भगवान् कृष्ण ने सुन्दर रात्रियों वाली असाधारण शरद्ऋतु का उपयोग अपने प्रेम व्यापार को बढ़ाने के लिए किया और वे शरद्रात्रियाँ अनन्त काल से दिव्य कवियों को प्रेरणा प्रदान करती रही हैं।

श्रीपरीक्षिदुवाच
संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥ २६ ॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता ।

प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

श्री-परीक्षित् उवाच—श्री परीक्षित महाराज ने कहा; संस्थापनाय—स्थापना करने के लिए; धर्मस्य—धर्म की; प्रशमाय—दमन करने के लिए; इतरस्य—विरोधियों का; च—तथा; अवतीर्णः—(इस धरा पर) अवतरित हुए; हि—निस्सन्देह; भगवान्—भगवान्; अंशेन—अपने स्वांश (श्री बलराम) सहित; जगत्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के; ईश्वरः—स्वामी; सः—वह; कथम्—किस तरह; धर्म-सेतूनाम्—आचार संहिता के; वक्ता—आदि व्याख्याता; कर्ता—करने वाले; अभिरक्षिता—रक्षक; प्रतीपम्—विरुद्ध; आचरत्—आचरण किया; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण, शुकदेव गोस्वामी; पर—अन्यों की; दार—पत्नियों का; अभिमर्शनम्—स्पर्श।

परीक्षित महाराज ने कहा, "हे ब्राह्मण, ब्रह्माण्ड के स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने स्वांश सहित इस धरा में अधर्म का नाश करने तथा धर्म की पुनर्स्थापना करने हेतु अवतरित हुए हैं। दरअसल वे आदि वक्ता तथा नैतिक नियमों के पालनकर्ता एवं संरक्षक हैं। तो भला वे अन्य पुरुषों की स्त्रियों का स्पर्श करके उन नियमों का अतिक्रमण कैसे कर सकते थे?

तात्पर्य : जब शुकदेव गोस्वामी यह बतला रहे थे तो राजा परीक्षित ने गौर से देखा कि गंगा के तट पर हो रही इस गोष्ठी में से कुछ लोगों के मन में भगवान् की लीलाओं के विषय में सन्देह हो रहा था। ये संदेहयुक्त व्यक्ति कर्मी, ज्ञानी तथा अन्य लोग थे, जो कृष्णभक्त नहीं थे। अत: राजा परीक्षित ने उनके सन्देहों को दूर करने के लिए उनकी ओर से यह प्रश्न पूछा।

आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम् ।
किमभिप्राय एतन्नः शंशयं छिन्धि सुव्रत ॥ २८॥

शब्दार्थ

आप्त-कामः—आत्मतुष्ट, पूर्णकाम; यदु-पतिः—यदुकुल के स्वामी ने; कृतवान्—सम्पन्न किया है; वै—निश्चय ही; जुगुप्सितम्—निन्दनीय; किम्-अभिप्रायः—किस उद्देश्य से; एतत्—यह; नः—हमारा; शंशयम्—सन्देह; छिन्धि—काट दीजिये; सु-व्रत—हे व्रतधारी।

हे श्रद्धावान व्रतधारी, कृपा करके हमें यह बतलाकर हमारा संशय दूर कीजिये कि पूर्णकाम यदुपति के मन में वह कौन सा अभिप्राय था जिससे उन्होंने इतने निन्दनीय ढंग से आचरण किया?

तात्पर्य : जो लोग प्रबुद्ध हैं उन्हें पता है कि ऐसे संदेह उन लोगों के मन तथा हृदय में उठेंगे जो भगवान् की दिव्य लीलाओं से परिचित नहीं हैं। इसलिए अनन्त काल से बड़े बड़े मुनि तथा परीक्षित महाराज जैसे प्रबुद्ध राजा आगे आने वाली पीढ़ी के लिए प्रामाणिक उत्तर देने के लिए ऐसे प्रश्न उठाते रहे हैं।

श्रीशुक उवाच
धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; धर्म-व्यतिक्रमः—धार्मिक या नैतिक सिद्धान्तों का उल्लंघन; दृष्टः—देखा हुआ; ईश्वराणाम्—शक्तिशाली नियंत्रकों का; च—भी; साहसम्—साहस; तेजीयसाम्—आध्यात्मिक रूप से शक्तिमान; न—नहीं; दोषाय—किसी प्रकार की त्रुटि (होने देता); वह्नेः—अग्नि का; सर्व—सभी; भुजः—निगलते हुए; यथा-अस्.

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : शक्तिशाली नियन्ताओं के पद पर किसी ऊपरी साहसपूर्ण उल्लंघन से जो हम उनमें देख पायें, कोई आँच नहीं आती क्योंकि वे उस अग्नि के समान होते हैं, जो हर वस्तु को निगल जाती है और अदूषित बनी रहती है।

तात्पर्य : महान् शक्तिशाली व्यक्ति नैतिक सिद्धान्तों के ऊपरी उल्लंघन से विनष्ट नहीं होते। श्रीधर स्वामी ब्रह्मा, इन्द्र, सोम, विश्वामित्र इत्यादि का उदाहरण देते हैं। अग्नि में जो कुछ डाल दिया जाये उसे वह निगल जाती है किन्तु उसके स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं आता। इसी तरह कोई महान् व्यक्ति आचरण की अनियमितता से अपने पद से नीचे नहीं गिरता। किन्तु अगले श्लोक में शुकदेव गोस्वामी ने स्पष्ट किया है कि यदि हम ब्रह्माण्ड पर शासन करने वाले महान् व्यक्तियों की नकल करें तो उसका परिणाम भयावह होगा।

नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः ।
विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतत्—यह; समाचरेत्—करना चाहिए; जातु—कभी; मनसा—मन से; अपि—भी; हि—निश्चय ही; अनीश्वरः—जो नियन्ता नहीं है; विनश्यति—विनष्ट हो जाता है; आचरन्—आचरण करने पर; मौढ्यात्—मूर्खतावश; यथा—जिस तरह; अरुद्रः—जो रुद्र नहीं है; अब्धिजम्—समुद्र से उत्पन्न; विषम्—विष को।.

जो महान् संयमकारी नहीं है, उसे शासन करने वाले महान् पुरुषों के आचरण की मन से भी कभी नकल नहीं करनी चाहिए। यदि कोई सामान्य व्यक्ति मूर्खतावश ऐसे आचरण की नकल करता है, तो वह उसी तरह विनष्ट हो जायेगा जिस तरह कि विष के सागर को पीने का प्रयास करने वाला व्यक्ति। यदि वह रुद्र नहीं है, नष्ट हो जायेगा।

तात्पर्य : शिवजी या रुद्र ने एक बार समुद्र-विष का पान किया जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके गले में एक आकर्षक नीला चिह्न बन गया। किन्तु यदि हमें ऐसे विष की एक बूँद भी पीनी पड़े

तो हम तुरन्त मर जायेंगे। जिस तरह हमें शिवजी की इस लीला की नकल नहीं करनी चाहिए उसी तरह हमें गोपियों के साथ कृष्ण के कार्यकलापों की भी नकल नहीं उतारनी चाहिए। हमें यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि यद्यपि भगवान् कृष्ण निश्चित रूप से धर्म की स्थापना करने के लिए अवतरित होते हैं उसी तरह वे यह भी दिखाने के लिए अवतरित होते हैं कि वे ईश्वर हैं किन्तु हम नहीं। वह भी प्रदर्शित करना चाहिये। भगवान् अपनी अन्तरंगाशक्ति के साथ भोग करते हैं और इस तरह हमें आध्यात्मिक पद की ओर आकृष्ट करते हैं। हमें चाहिए कि हम कृष्ण की नकल करने का प्रयास न करें क्योंकि इससे हमें घोर कष्ट मिलेगा।

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ।
तेषां यत्स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

ईश्वरानाम्—भगवान् द्वारा शक्ति प्रदत्त दासों के; वचः—शब्द; सत्यम्—सत्य; तथा एव—भी; आचरितम्—वे जो कुछ करते हैं; क्वचित्—कभी कभी; तेषाम्—उनके; यत्—जो; स्व-वचः—अपने ही शब्दों से; युक्तम्—अनुरूप; बुद्धि-मान्—बुद्धिमान; तत्—वह; समाचरेत्—सम्पन्न करे।

भगवान् द्वारा शक्तिप्रदत्त दासों के वचन सदैव सत्य होते हैं और जब वे इन वचनों के अनुरूप कर्म करते हैं, तो वे आदर्श होते हैं। इसलिए जो बुद्धिमान है उस को चाहिए कि इनके आदेशों को पूरा करे।

तात्पर्य : संस्कृत कोशों में *ईश्वर* शब्द के कई अर्थ मिलते हैं—प्रभु, स्वामी, शासक अथवा समर्थ। श्रील प्रभुपाद ने प्रायः *ईश्वर* का "नियन्ता" अर्थ दिया है, जो स्वामी, शासक के साथ साथ समर्थ व्यक्ति के भावों को समाहित करने वाला है। स्वामी अक्षम हो सकता है किन्तु नियन्ता तो वह स्वामी है, जो वस्तुओं को घटित कराता है। *परमेश्वर* या परमनियन्ता ही समस्त कारणों के कारण भगवान् कृष्ण हैं।

यद्यपि सामान्य लोग विशेषतया पाश्चात्य देशों के लोग इस तथ्य से अवगत नहीं हैं किन्तु शक्तिशाली व्यक्ति हमारे ब्रह्माण्ड को नियंत्रित करते हैं। ब्रह्माण्ड की आधुनिक निर्विशेष विचार-धारा ब्रह्माण्ड को लगभग पूर्णतया निर्जीव के रूप में चित्रित करती है, जिसमें पृथ्वी व्यर्थ में तैरती रहती है। इस तरह हमारे पास रह जाता है हमारे प्रजनन नियमों को प्रदर्शित करने और सुरक्षित रखने का निरर्थक परम लक्ष्य जिसका अपने आपको दुबारा जन्म देने से घटनाओं की निरर्थक शृंखला में एक

और कड़ी जोड़ने का अपना ही परम लक्ष्य होता है।

अज्ञानी भौतिकवादी लोगों द्वारा बनाए गए इस निरर्थक संसार के सर्वथा विपरीत है वास्तविक ब्रह्माण्ड जीवन से ओतप्रोत है और वस्तुत: ईश्वर से ओतप्रोत है, जो समस्त वस्तुओं में व्याप्त हैं और जो सबों को धारण करता है। भगवान् तथा असंख्य जीवों से, जिनमें हम भी सम्मिलित हैं, उनके निजी सम्बन्ध ही वास्तविक हैं। कुछ जीव भौतिकतावाद के मोह में फँसे हैं या भौतिक शरीर से पहचान मानते हैं, तो कुछ मुक्त हैं और अपने नित्य आध्यात्मिक स्वरूप से परिचित हैं। तीसरी श्रेणी के लोग वे हैं, जो अज्ञान की भौतिकतावादी अवस्था से कृष्णभावनामृत की प्रबुद्ध अवस्था की ओर अग्रसर हो रहे होते हैं।

अन्ततोगत्वा वास्तविकता साकार तथा दैवी होती है, अत: इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जैसा हमें वैदिक साहित्य से पता चलता है हमारा ब्रह्माण्ड तथा अन्य सारे ब्रह्माण्ड महान् पुरुषों द्वारा उसी तरह नियंत्रित होते हैं जिस तरह हमारे शहर, राज्य तथा हमारे देश शक्तिप्रदत्त व्यक्तियों द्वारा संचालित होते हैं। जब हम प्रजातांत्रिक रूप से किसी राजनीतिक व्यक्ति को शासन करने का अधिकार सौंप देते हैं, तो हम उसे अपना वोट देते हैं क्योंकि उसमें ''नायकत्व'' या ''क्षमता'' पाई जाती है। हम सोचते हैं कि वह यह कार्य करवा लेगा। दूसरे शब्दों में, जब कोई व्यक्ति शासन करने की शक्ति अर्जित कर लेता है तभी हम उसे अपना वोट देते हैं। हमारे वोट से वह नेता नहीं बनता किन्तु इस तरह हम उसमें किसी अन्य स्रोत से शक्ति आते देखने पर उसे नेता मानते हैं। इस प्रकार जैसाकि *भगवद्‌गीता* के दसवें अध्याय के अन्त में भगवान् कृष्ण बतलाते हैं कि यदि किसी व्यक्ति में असामान्य शक्ति, क्षमता या सत्ता प्रकट हो तो वह अवश्य ही साक्षात् भगवान् द्वारा या भगवान् की शक्ति द्वारा शक्तिप्रदत्त हुआ होगा।

जो लोग सीधे भगवान् से शक्ति प्राप्त किये रहते हैं, वे उनके भक्त होते हैं। इस तरह सारे विश्व में उनकी शक्ति तथा प्रभाव से अच्छाई फैल जाती है। किन्तु जिन्हें कृष्ण की माया द्वारा शक्ति प्राप्त होती है वे कृष्ण से अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रखते हैं क्योंकि उनमें भगवान् की इच्छा सीधे प्रतिबिम्बित नहीं होती। हाँ, वे अप्रत्यक्ष रूप से उनकी इच्छा प्रतिबिम्बित करते हैं क्योंकि कृष्ण की व्यवस्थानुसार प्रकृति के नियम अज्ञानी जीवों पर प्रभाव डालकर उन्हें धीरे धीरे अनेकानेक जन्मों के बाद भगवान् की शरण

ग्रहण करने के लिए बहलाते हैं। इस तरह राजनीतिक लोग अपने अनुयायी भौतिकतावादी व्यक्तियों को झूठी आशाएँ दिलाते हैं, युद्ध कराते हैं और असंख्य जोशीली योजनाएँ बनाते हैं। ये राजनीतिक लोग बद्धजीवों को ईश्वर-विमुखता का तिक्त फल चखाकर अप्रत्यक्ष रूप से भगवान् के कार्यक्रम को पूरा करते हैं।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने *ईश्वराणाम्* शब्द का ''ज्ञान तथा तपस्या के बल पर शक्तिशाली बने हुए'' किया है। ज्यों ज्यों मनुष्य ईश्वर के स्वभाव तथा उनकी इच्छा को समझने लगता है और आध्यात्मिक जीवन में श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए निजी त्याग करता है त्यों त्यों भगवान् उसे शक्ति प्रदान करते हैं जिससे वह उनकी इच्छा का प्रतिनिधित्व कर सके जिसे उसने बुद्धिमानी से समझा है और स्वीकार किया है।

भगवान् इस धरती पर धार्मिक आचरण का जीता-जागता दृष्टान्त प्रस्तुत करने हेतु अवतरित होते हैं। जैसाकि भगवान् ने *भगवद्गीता* (३.२४) में कहा है ''यदि मैं आदर्श कर्तव्य का पालन न करूँ तो सारा संसार पथ-भ्रष्ट होकर विनष्ट हो जाय।'' इस तरह भगवान् ने अपने विविध अवतारों द्वारा यह दिखलाया कि इस जगत में किस तरह उचित कर्म करना चाहिए। इसका उत्तम उदाहरण भगवान् रामचन्द्र हैं जिन्होंने राजा दशरथ के पुत्र रूप में अद्‌भुत आचरण किया।

किन्तु जब साक्षात् भगवान् कृष्ण अवतरित होते हैं, तो वे चरम धर्म का भी प्रदर्शन करते हैं—यह कि भगवान् अन्य समस्त जीवों से परे हैं और उनके परमपद की नकल कोई नहीं कर सकता। समस्त धर्मों में अग्रगण्य इसी सिद्धान्त का—कि भगवान् अद्वितीय हैं, न तो कोई उनके समान है न उनसे बढ़कर है—स्पष्ट रूप से प्रदर्शन गोपियों के साथ अश्लीलसी दिखने वाली कृष्ण की लीलाओं में हुआ। जैसाकि शुकदेव गोस्वामी ने बतलाया है कोई भी व्यक्ति इन लीलाओं की नकल दुष्परिणामों को भुगते बिना नहीं कर सकता। जो यह सोचता है कि भगवान् कृष्ण सामान्य कामी पुरुष हैं या जो व्यक्ति उनके रासनृत्य को प्रशंसनीय मानकर उसकी नकल करना चाहता है, वह निश्चित रूप से विनष्ट हो जायेगा जैसाकि इस अध्याय के श्लोक ३० में बतलाया जा चुका है।

अन्त में भगवान् तथा उनके शक्तिप्रदत्त दासों में अन्तर करना होगा। भगवान् का शक्तिप्रदत्त दास, जैसाकि ब्रह्मा, अपने पूर्वकर्मों का बचा हुआ फल कर्म के नियमानुसार पाता है। किन्तु भगवान् कर्म के

नियमों के चंगुल से सर्वथा मुक्त हैं। वे अद्वितीय पद पर हैं।

कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते ।
विपर्ययेण वानर्थो निरहङ्कारिणां प्रभो ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

कुशल—पवित्र; आचरितेन—कार्य द्वारा; एषाम्—उनके लिए; इह—इस जगत में; स्व-अर्थः—निजी लाभ; न विद्यते—नहीं होता; विपर्ययेण—विपरीत द्वारा; वा—अथवा; अनर्थः—अवांछित फल; निरहङ्कारिणाम्—मिथ्या गर्व से मुक्त लोगों का; प्रभो—हे प्रभु।

हे प्रभु, जब मिथ्या अहंकार से रहित ये महान् व्यक्ति इस जगत में पवित्र भाव से कर्म करते हैं, तो उसमें उनका कोई स्वार्थ-भाव नहीं होता और जब वे ऊपरी तौर से पवित्रता के नियमों के विरुद्ध लगने वाले कर्म (अनर्थ) करते हैं, तो भी उन्हें पापों का फल नहीं भोगना पड़ता।

किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ।
ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

किम् उत—तो फिर क्या कहा जाय; अखिल—समस्त; सत्त्वानाम्—सृजित प्राणियों का; तिर्यक्—पशुओं; मर्त्य—मनुष्यों; दिव-ओकसाम्—तथा स्वर्ग के निवासियों का; ईशुतुः—नियन्ता के लिए; च—तथा; ईशितव्यानाम्—नियंत्रितों का; कुशल—शुभ; अकुशल—तथा अशुभ; अन्वयः—कारणरूप सम्बन्ध।

तो फिर समस्त सृजित प्राणियों पशुओं, मनुष्यों तथा देवताओं—के स्वामी भला उस शुभ तथा अशुभ से किसी प्रकार का सम्बन्ध कैसे रख सकते हैं जिससे उनके अधीनस्थ प्राणी प्रभावित होते हों?

तात्पर्य : जैसाकि श्लोक ३२ में कहा गया है, भगवान् द्वारा शक्तिप्रदत्त महान् पुरुष भी कर्म के नियमों से मुक्त होते हैं, तो फिर साक्षात् भगवान् के विषय में क्या कहा जा सकता है। आखिर कर्म-नियम उन्हीं के द्वारा बनाया हुआ है और उनकी सर्वशक्तिमान इच्छा का प्रतीक है। अत: वे जो भी कार्य अपनी शुद्ध इच्छा से करते हैं उनकी आलोचना सामान्य लोग नहीं कर सकते।

यत्पादपङ्कजपरागनिषेवतृप्ता
योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ।
स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमाना-
स्तस्येच्छयात्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसके; पाद-पङ्कज—चरणकमलों की; पराग—धूलि के; निषेव—सेवन करने से; तृप्ता:—तृप्त; योग-प्रभाव—योग शक्ति से; विधुत—धुला हुआ; अखिल—समस्त; कर्म—सकाम कर्म का; बन्धा:—बन्धन; स्वैरम्—मुक्तभाव से; चरन्ति—कर्म करते हैं; मुनय:—मुनिगण; अपि—भी; न—कभी नहीं; नह्यमाना:—बद्ध होकर; तस्य—उसकी; इच्छया—इच्छा से; आत्त—स्वीकार किया; वपुष:—दिव्य शरीर; कुत:—कहाँ; एव—निस्सन्देह; बन्ध:—बन्धन।

जो भगवद्भक्त भगवान् के चरणकमलों की धूलि का सेवन करते हुए पूर्णतया तुष्ट हैं उन्हें भौतिक कर्म कभी नहीं बाँध पाते। न ही भौतिक कर्म उन बुद्धिमान मुनियों को बाँध पाते हैं जिन्होंने योगशक्ति के द्वारा अपने को समस्त कर्मफलों के बन्धन से मुक्त कर लिया है। तो फिर स्वयं भगवान् के बन्धन का प्रश्न कहाँ उठता है, जो स्वेच्छा से दिव्य रूप धारण करने वाले हैं?

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्ष: क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ ३५॥

शब्दार्थ

गोपीनाम्—गोपियों के; तत्-पतीनाम्—उनके पतियों के; च—तथा; सर्वेषाम्—समस्त; एव—निस्सन्देह; देहिनाम्—देहधारी जीवों के; य:—जो; अन्त:—भीतर; चरति—रहता है; स:—वह; अध्यक्ष:—साक्षी; क्रीडनेन—क्रीड़ा के लिए; इह—इस संसार में; देह—अपना रूप; भाक्—धारण करते हुए।

जो गोपियों तथा उनके पतियों और वस्तुत: समस्त देह-धारी जीवों के भीतर साक्षी के रूप में रहता है, वही दिव्य लीलाओं का आनन्द लेने के लिए इस जगत में विविध रूप धारण करता है।

तात्पर्य : हम भगवान् की तरह दिव्य लीलाओं का आनन्द उठाने के लिए देह-धारण नहीं करते। हम नित्य आत्माओं ने इस भौतिक जगत का आनन्द उठाने के मूर्खतापूर्ण प्रयास के कारण विवश होकर भौतिक शरीर स्वीकार किया है। भगवान् के सभी रूप शाश्वत और दिव्य हैं और उनकी समता किसी भी तर्क से हमारे नाशवान हाड़-मांस के बने शरीरों से नहीं की जा सकती।

चूँकि श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं, जो गोपियों, उनके तथाकथित पतियों तथा अन्य समस्त जीवों के भीतर निवास करने वाले हैं, तो यदि वे अपने द्वारा सृजित प्राणियों में से कुछ का आलिंगन करें तो इसमें कौन सा पाप है? इसमें कौन सा दोष है यदि भगवान् गोपियों के साथ किसी गुप्तस्थान में चले जाते हैं जबकि वे प्रत्येक जीव के सर्वाधिक गुह्य भाग हृदय के भीतर निवास करते हैं।

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमास्थित: ।
भजते तादृशी: क्रीड या: श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ ३६॥

शब्दार्थ

अनुग्रहाय—दया दिखाने के लिए; भक्तानाम्—अपने भक्तों पर; मानुषम्—मनुष्य जैसा; देहम्—शरीर; आस्थितः—धारण करते हुए; भजते—स्वीकार करता है; तादृशीः—वैसी; क्रिडाः—लीलाएँ; याः—जिनके बारे में; श्रुत्वा—सुनकर; तत्-परः—उनके प्रति परायण; भवेत्—हो जाता है।

जब भगवान् अपने भक्तों पर कृपा प्रदर्शित करने के लिए मनुष्य जैसा शरीर धारण करते हैं, तो वे ऐसी क्रीड़ाएँ करते हैं जिनके विषय में सुनने वाले आकृष्ट होकर भगवत्परायण हो जाँय।

तात्पर्य : इस सन्दर्भ में श्रील जीव गोस्वामी की व्याख्या है कि जब भगवान् कृष्ण अपने आदि द्विभुज रूप में इस जगत में अवतरित होते हैं, तो वे कृपा करके यह रूप प्रदर्शित करते हैं जिससे मानव समाज में बद्ध उनके भक्त उन्हें देख तथा समझ सकें। इसीलिए यहाँ पर कहा गया है—*मानुषं देहमास्थितः*—वे मनुष्य जैसा शरीर धारण करते हैं। श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यह कहकर भगवान् की माधुर्य लीलाओं का यशोगान करते हैं कि इन प्रेमभरे कार्यों में बद्धजीवों के दूषित हृदय को आकर्षित करने की अकल्पनीय दिव्य क्षमता है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि कोई भी शुद्ध या सरल हृदय वाला व्यक्ति कृष्ण की प्रेमपूर्ण लीलाओं को सुनकर भगवान् के चरणकमलों के प्रति आकृष्ट होगा और क्रमशः उनका भक्त बन जायेगा।

नासूयन्खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्स्वान्स्वान्दारान्व्रजौकसः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

न असूयन्—ईर्ष्यालु नहीं थे; खलु—यहाँ तक कि; कृष्णाय—कृष्ण से; मोहिताः—मोहित; तस्य—उसकी; मायया—माया द्वारा; मन्यमानाः—सोचते हुए; स्व-पार्श्व—अपने निकट; स्थान्—खड़ी हुई; स्वान् स्वान्—अपनी अपनी; दारान्—पत्नियाँ; व्रज-ओकसः—व्रज के गोपजन।

कृष्ण की मायाशक्ति से मोहित सारे ग्वालों ने सोचा कि उनकी पत्नियाँ घरों में उनके निकट ही रहती रही थीं। इस तरह उनमें कृष्ण के प्रति कोई ईर्ष्या भाव नहीं उत्पन्न हुआ।

तात्पर्य : चूँकि गोपियाँ कृष्ण से एकान्तिक प्रेम करती थीं इसलिए योगमाया ने सदैव भगवान् के प्रति उनके सम्बन्ध की रक्षा की यद्यपि ये गोपियाँ विवाहिता थीं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *उज्ज्वल नीलमणि* से निम्नलिखित उद्धरण दिया है—

मायाकल्पिततादृक् ेशीलनेनानुसूयुभिः ।
न जातु व्रजदेवीनां पतिभिः सह सङ्गमः ॥

"गोपियों के ईर्ष्यालु पतियों ने अपनी पत्नियों से नहीं अपितु माया द्वारा निर्मित पत्नियों से विलास किया। इस तरह इन पुरुषों का व्रज की देवियों से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं हुआ।" गोपियाँ भगवान् की अन्तरंगा शक्ति हैं अतएव वे किसी अन्य जीव की नहीं हो सकतीं। कृष्ण ने *परकीय रस* की उत्पत्ति के लिए ही अन्य पुरुषों के साथ उनका विवाह रचाया। ये लीलाएँ नितान्त शुद्ध हैं क्योंकि वे भगवान् की लीलाएँ हैं और सन्त पुरुष इन परम दिव्य घटनाओं का रसास्वादन अनन्त काल से करते चले आ रहे हैं।

ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ।
अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान्भगवत्प्रियाः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-रात्रे—ब्रह्मा की रात; उपावृत्ते—पूर्ण होने पर; वासुदेव—भगवान् कृष्ण द्वारा; अनुमोदिताः—अनुमोदन किये जाने पर; अनिच्छन्त्यः—न चाहती हुई; ययुः—चली गईं; गोप्यः—गोपियाँ; स्व-गृहान्—अपने घरों को; भगवत्—भगवान् की; प्रियाः—प्रियतमाएँ।

जब ब्रह्मा की पूरी एक रात बीत गई तो कृष्ण ने गोपियों को अपने अपने घरों को लौट जाने की सलाह दी। यद्यपि वे ऐसा करना नहीं चाह रही थीं तो भी भगवान् की इन प्रेयसियों ने उनके आदेश का पालन किया।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (८.१७) में भगवान् कृष्ण बतलाते हैं"मानवीय गणना के अनुसार एक हजार युग मिलकर ब्रह्मा के एक दिन के बराबर होते हैं। और रात्रि भी इतनी ही बड़ी होती है।" अत: जब भगवान् कृष्ण ने अपना रासनृत्य किया, तो बारह घंटे की एक ही रात में एक हजार युग प्रवेश कर गये। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इस अकल्पनीय काल की तुलना इस तथ्य से करते हैं कि पृथ्वी पर वृन्दावन के चारों ओर लगभग चालीस मील में अनेक ब्रह्माण्ड समा सकते हैं। या कोई यह विचार कर सकता है कि माता यशोदा बालक कृष्ण की छोटी-सी कमर अनेक रस्सियों से भी नहीं बाँध पाईं और एक अन्य अवसर पर भगवान् ने अपने मुँह के भीतर अनेक ब्रह्माण्ड दिखलाये। संसारी भौतिकी से परे आध्यात्मिक सत्यता की व्याख्या श्रील रूप गोस्वामी कृत *लघु भागवतामृत* में संक्षिप्त में पाई जाती है :

एवं प्रभो प्रियाणां च धाम्नश्च समयस्य च।

अविचिन्त्यप्रभावत्वादत्र किञ्चिन्न दुर्घटम॥

"भगवान्, उनके प्रिय भक्तों, उनके दिव्य धाम या उनकी लीलाओं के समय के लिए कुछ भी

असम्भव नहीं है क्योंकि ये सारी बातें अचिन्त्य रूप से शक्तिशाली हैं।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इसके बाद व्याख्या करते हुए कहते हैं कि इससे सूचित होता है कि कृष्ण ने गोपियों को सलाह दी कि ''इन लीलाओं को सफल बनाने के लिए तुम्हें तथा मुझे इन्हें गुप्त रखना होगा।'' *वासुदेव* शब्द, जो कि कृष्ण का नाम है भगवान् कृष्ण के स्वांश का भी सूचक है, जो चेतना के मुख्य अधिष्ठाता का कार्य करता है। इस तरह जब वासुदेव शब्द इस संदर्भ में समझ लिया जाता है, तो *वासुदेवानुमोदिता:* शब्द सूचित करता है कि चेतना के मुख्य अधिष्ठाता वासुदेव ने गोपियों के हृदयों में उनके गुरुजनों की चिन्ता तथा भय का बोध करा दिया था जिससे वे युवतियाँ बहुत हिचकिचाहट के साथ घर वापस जा सकीं।

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

विक्रीडितम्—क्रीड़ा करना; व्रज-वधूभिः—वृन्दावन की युवतियों के साथ; इदम्—यह; च—तथा; विष्णोः—भगवान् विष्णु द्वारा; श्रद्धा-अन्वितः—श्रद्धापूर्वक; अनुशृणुयात्—सुनता है; अथ—अथवा; वर्णयेत्—वर्णन करता है; यः—जो; भक्तिम्—भक्ति; पराम्—दिव्य; भगवति—भगवान् में; प्रतिलभ्य—प्राप्त करके; कामम्—भौतिक कामवासना को; हृत्—हृदय में; रोगम्—रोग को; अशु—तुरन्त; अपहिनोति—भगा देताहै; अचिरेण—शीघ्र ही; धीरः—गम्भीर।

जो कोई वृन्दावन की युवा-गोपिकाओं के साथ भगवान् की क्रीड़ाओं को श्रद्धापूर्वक सुनता है या उनका वर्णन करता है, वह भगवान् की शुद्ध भक्ति प्राप्त करेगा। इस तरह वह शीघ्र ही धीर बन जाएगा और हृदय रोग रूपी कामवासना को जीत लेगा।

तात्पर्य : यहाँ पर कृष्ण की माधुर्य लीलाओं की असाधारण शक्ति स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। गुणात्मक दृष्टि से भगवान् की आध्यात्मिक प्रेममयी लीलाएँ भौतिक वासनापूर्ण व्यापारों से सर्वथा विपरीत होती हैं यहाँ तक कि भगवान् की लीलाओं के श्रवण मात्र से भक्त कामेच्छा पर विजय पा लेता है। अश्लील साहित्य पढ़ने या भौतिक प्रेमालाप सुनने से हमारी कामेच्छा विनष्ट नहीं होती अपितु बढ़ती है। किन्तु भगवान् के माधुर्य व्यापारों के विषय में सुनने या पढ़ने से इसका सर्वथा विपरीत प्रभाव पड़ता है क्योंकि वे विपरीत प्रकार के और नितान्त आध्यात्मिक होते हैं। अत: कृष्ण अपनी अहैतुकी कृपा से इस जगत में अपनी रासलीला प्रदर्शित करते हैं। यदि हम इस कथा में अनुरक्त हो

सकें तो हमें आध्यात्मिक प्रेम का आनन्द अनुभव होगा और हम विषयवासना का परित्याग कर देंगे जो उस प्रेम का विकृत प्रतिबिम्ब है। *भगवद्गीता* (२.५९) में कृष्ण ने बड़े ही सुन्दर ढंग से कहा है *परं दृष्ट्वा निवर्तते*—परब्रह्म का एक बार प्रत्यक्ष अनुभव हो जाने पर मनुष्य भौतिक आनन्द की ओर मुँह नहीं करेगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत 'रासनृत्य' नामक तैंतीसवे अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चौंतीस

नन्द महाराज की रक्षा तथा शंखचूड़ का वध

इस अध्याय में बतलाया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने किस तरह अपने पिता नन्द को सर्प के चंगुल से छुड़ाया और किस तरह सुदर्शन नामक एक विद्याधर का आंगिरस मुनियों के श्राप से उद्धार किया

एक दिन नन्द महाराज अन्य ग्वालों के साथ अपने अपने परिवारों को बैलगाड़ियों में चढ़ाकर शिवजी की पूजा करने अम्बिका वन गये। सरस्वती नदी में स्नान करने तथा विष्णु के एक रूप भगवान् सदाशिव की पूजा करने के बाद सबों ने उसी जंगल में रात्रि बिताने का निश्चय किया। जब वे सो रहे थे तो एक भूखा साँप आया और नन्द महाराज को निगलने लगा। नन्द महाराज ने भयभीत होकर आर्त स्वर में पुकारा, "हे कृष्ण! हे मेरे बेटे! मुझ शरणागत को बचाओ।" तुरन्त ही सारे ग्वाले जाग गये और लुकाठों से उस साँप को मारने लगे किन्तु वह साँप नन्द को छोड़ने का नाम ही नहीं ले रहा था। तब भगवान् कृष्ण आये और उन्होंने उस सर्प को अपने चरणकमलों से छुआ। वह सर्प तुरन्त ही अपने सर्प शरीर से मुक्त हो गया और अपने मौलिक देव रूप में प्रकट हुआ। उसने उन्हें अपने पूर्वजन्म की कथा कह सुनाई और यह बतलाया कि किस तरह मुनियों की टोली ने उसे श्राप दिया था। तत्पश्चात् उसने श्रीकृष्ण के चरणकमलों की वन्दना की और भगवान् के आदेश से अपने धाम लौट गया।

बाद में, दोलपूर्णिमा उत्सव के अवसर पर श्रीकृष्ण तथा बलराम ने व्रजयुवतियों के साथ वन-विहार किया। कृष्ण तथा बलराम की सखियों ने मिलकर उनके दिव्य गुणों का गान किया। जब दोनों

भाई गायन में लीन होकर झूमने लगे तो कुवेर का एक शंखचूड़ नामक नौकर साहस करके वहाँ आया और गोपियों का हरण करने लगा। तब तरुणियों ने चिल्लाना शुरू किया, ''हे कृष्ण, हमें बचाओ।'' अत: कृष्ण तथा राम शंखचूड़ का पीछा करने लगे। कृष्ण ने डपटते हुए गोपियों को कहा, ''डरो मत।'' इन दोनों के भय से शंखचूड़ गोपियों को छोड़कर अपनी जान लेकर भागा। कृष्ण ने उसका पीछा किया और तेजी से निकट पहुँचकर अपनी मुट्ठी के प्रहार से रत्न समेत उसके सिर को अलग कर दिया। तत्पश्चात् वे उस रत्न को ले आये और इसे भगवान् बलदेव को भेंट कर दिया।

श्रीशुक उवाच
एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ।
अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एकदा—एक बार; देव—देवता अर्थात् शिवजी (की पूजा करने के लिए); यत्रायाम्—यात्रा पर; गोपालाः—सारे ग्वाले; जात-कौतुकाः—उत्सुक; अनोभिः—गाड़ियों समेत; अनडुत्—बैलों से; युक्तैः—जुती; प्रययुः—गये; ते—वे; अम्बिका-वनम्—अम्बिका वन में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : एक दिन भगवान् शिव की पूजा हेतु यात्रा करने के उत्सुक ग्वाले बैलगाड़ियों द्वारा अम्बिका वन गये।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार *एकदा* शब्द शिवरात्रि का सूचक है। वे यह भी उल्लेख करते हैं कि अम्बिका वन गुजरात प्रान्त में सिद्धपुर शहर के निकट है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यह बतलाते हैं कि ग्वाले फाल्गुन मास की कृष्ण पक्ष चतुर्दशी के दिन यात्रा पर रवाना हुए। वे प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि अम्बिका वन मथुरा से उत्तर पश्चिम दिशा में सरस्वती नदी के किनारे स्थित है। अम्बिका वन इसलिए विख्यात है क्योंकि इसमें श्री शिव तथा उनकी पत्नी देवी उमा के अर्चाविग्रह हैं।

तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् ।
आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च णृपतेऽम्बिकाम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; स्नात्वा—स्नान करके; सरस्वत्याम्—सरस्वती नदी में; देवम्—देवता; पशु-पतिम्—शिवजी को; विभुम्—शक्तिशाली; आनर्चुः—उन्होंने पूजा की; अर्हणैः—साज-सामग्री समेत; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; देवीम्—देवी; च—तथा; नृ-पते—हे राजा; अम्बिकाम्—अम्बिका को।

हे राजन्, वहाँ पहुँचने के बाद उन्होंने सरस्वती नदी में स्नान किया और तब विविध पूजा-सामग्री से शक्तिशाली शिवजी तथा उनकी पत्नी देवी अम्बिका की भक्तिपूर्वक पूजा की।

गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमादृताः ।
ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

गावः—गौवें; हिरण्यम्—स्वर्ण; वासांसि—वस्त्र; मधु—मीठा; मधु—शहद से मिश्रित; अन्नम्—अन्न; आदृताः—आदरपूर्वक; ब्राह्मणेभ्यः—ब्राह्मणों को; ददुः—दिया; सर्वे—सभी; देवः—स्वामी; नः—हम पर; प्रीयताम्—प्रसन्न हों; इति—इस प्रकार प्रार्थना करते हुए।

ग्वालों ने ब्राह्मणों को गौवें, स्वर्ण, वस्त्र तथा शहदमिश्रित पक्वान्न की भेंटें दान में दीं। तत्पश्चात् उन्होंने प्रार्थना की, ''हे प्रभु, हम पर आप प्रसन्न हों।''

ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य यतव्रताः ।
रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

ऊषुः—रुके रहे; सरस्वती-तीरे—सरस्वती के तट पर; जलम्—जल को; प्राश्य—खाकर (पीकर); यत-व्रताः—कठिन व्रत करते हुए; रजनीम्—रात को; ताम्—उस; महा-भागाः—भाग्यशाली लोग; नन्द-सुनन्दक-आदयः—नन्द, सुनन्द इत्यादि।

नन्द, सुनन्द तथा अन्य अत्यन्त भाग्यशाली ग्वालों ने वह रात सरस्वती के तट पर संयम से अपने अपने व्रत रखते हुए बिताई। उन्होंने केवल जल ग्रहण किया और उपवास रखा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि सुनन्द नन्द महाराज के छोटे भाई थे।

कश्चिन्महानहिस्तस्मिन्विपिनेऽतिबुभुक्षितः ।
यदृच्छयागतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

कश्चित्—किसी; महान्—बड़ा; अहिः—सर्प ने; तस्मिन्—उस; विपिने—जंगल के क्षेत्र में; अति-बुभुक्षितः—अत्यन्त भूखा; यदृच्छया—अकस्मात्; आगतः—आया; नन्दम्—नन्द महाराज को; शयानम्—सोते हुए; उर-गः—पेट के बल सरकता; अग्रसीत्—निगल लिया।

रात में एक विशाल एवं अत्यन्त भूखा सर्प उस जंगल में प्रकट हुआ। वह सोये हुए नन्द महाराज के निकट अपने पेट के बल सरकता हुआ गया और उन्हें निगलने लगा।

स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम् ।
सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, नन्द महाराज; चुक्रोश—चिल्लाया; अहिना—साँप के द्वारा; ग्रस्तः—पकड़ा हुआ; कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; महान्—विशाल; अयम्—यह; सर्पः—सर्प; माम्—मुझको; ग्रसते—निगले जा रहा है; तात—मेरे बेटे; प्रपन्नम्—मुझ शरणागत का; परिमोचय—उद्धार करो।.

साँप के चंगुल में फँसे नन्द महाराज चिल्लाये, ''कृष्ण! बेटे कृष्ण!, यह विशाल सर्प मुझे निगले जा रहा है। मैं तो तुम्हारा शरणागत हूँ। मुझे बचाओ।''

तस्य चाक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ।
ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७॥

शब्दार्थ

तस्य—उसकी; च—तथा; आक्रन्दितम्—चिल्लाहट; श्रुत्वा—सुनकर; गोपालाः—ग्वाले; सहसा—एकाएक; उत्थिताः—उठकर; ग्रस्तम्—पकड़ा हुआ; च—तथा; दृष्ट्वा—देखकर; विभ्रान्ताः—विचलित; सर्पम्—साँप को; विव्यधुः—पीटा; उल्मुकैः—जलती मशालों, या लुकाठों से।.

जब ग्वालों ने नन्द की चीखें सुनीं तो वे तुरन्त उठ गये और उन्होंने देखा कि नन्द को तो सर्प निगले जा रहा है। अत्यन्त विचलित होकर उन्होंने जलती मशालों से उस सर्प को पीटा।

अलातैर्दह्यमानोऽपि नामुञ्चत्तमुरङ्गमः ।
तमस्पृशत्पदाभ्येत्य भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ८॥

शब्दार्थ

अलातैः—लुकाठों से; दह्यमानः—जलाये जाने पर; अपि—भी; न अमुञ्चत्—नहीं छोड़ा; तम्—उसको; उरङ्गमः—सर्प ने; तम्—उस साँप को; अस्पृशत्—छुआ; पदा—पाँव से; अभ्येत्य—आकर; भगवान्—भगवान् ने; सात्वताम्—भक्तों के; पतिः—स्वामी।.

लुकाठों से जलाये जाने पर भी उस साँप ने नन्द महाराज को नहीं छोड़ा। तब भक्तों के स्वामी भगवान् कृष्ण उस स्थान पर आये और उन्होंने उस साँप को अपने पाँव से छुआ।

स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ।
भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥ ९॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निस्सन्देह; भगवतः—भगवान् के; श्री-मत्—दैवी; पाद—पाँव के; स्पर्श—स्पर्श से; हत—विनष्ट हुए; अशुभः—सारे अशुभ; भेजे—धारण किया; सर्प-वपुः—साँप का शरीर; हित्वा—त्यागकर; रूपम्—रूप; विद्याधर—विद्याधरों द्वारा; अर्चितम्—पूजित।.

भगवान् के दिव्य चरण का स्पर्श पाते ही सर्प के सारे पाप विनष्ट हो गये और उसने अपना सर्प-शरीर त्याग दिया। वह पूज्य विद्याधर के रूप में प्रकट हुआ।

तात्पर्य : *रूपं विद्याधरार्चितम्* शब्द बतलाते हैं कि अभी तक जो सर्प था वह अब विद्याधर नामक

देवताओं में पूजित सुन्दर रूप में प्रकट हुआ। दूसरे शब्दों में, वह विद्याधरों के नायक के रूप में प्रकट हुआ।

तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समवस्थितम् ।
दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तम्—उससे; अपृच्छत्—पूछा; हृषीकेशः—भगवान् हृषीकेश ने; प्रणतम्—नमस्कार करते हुए; समवस्थितम्—उनके समक्ष खड़ा; दीप्यमानेन—देदीप्यमान; वपुषा—शरीर से; पुरुषम्—पुरुष को; हेम—सुनहरे; मालिनम्—मालाएँ पहने।

तब भगवान् हृषीकेश ने इस व्यक्ति से जो देदीप्यमान शरीर से युक्त उनके समक्ष सिर झुकाये, सुनहरी मालाओं से सज्जित खड़ा था, पूछा।

तात्पर्य : यह देवता बोलने वाला था और भगवान् सबों का ध्यान उसके शब्दों की ओर आकृष्ट करना चाहते थे। इसीलिए भगवान् ने स्वयं उस पूज्य विद्याधर से पूछा जो उनके समक्ष अपना सिर झुकाये खड़ा था।

को भवान्परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ।
कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; भवान्—आप; परया—महान; लक्ष्म्या—सौन्दर्य से युक्त; रोचते—चमक रहे हो; अद्भुत—अनोखा; दर्शनः—देखने में; कथम्—क्यों; युगुप्सिताम्—भयानक; एताम्—यह; गतिम्—लक्ष्य; वा—तथा; प्रापितः—धारण करना पड़ा; अवशः—अपने वश से बाहर।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] महाशय, आप तो अत्यधिक सौन्दर्य से चमत्कृत होने से इतने अद्भुत लग रहे हैं। आप कौन हैं? और आपको किसने सर्प का यह भयानक शरीर धारण करने के लिए बाध्य किया?

सर्प उवाच

अहं विद्याधरः कश्चित्सुदर्शन इति श्रुतः ।
श्रिया स्वरूपसम्पत्त्या विमानेनाचरन्दिशः ॥ १२ ॥
ऋषीन्विरूपाङ्गिरसः प्राहसं रूपदर्पितः ।
तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सर्प: उवाच—सर्प ने कहा; अहम्—मैं; विद्याधर:—विद्याधर; कश्चित्—कोई; सुदर्शन:—सुदर्शन; इति—इस प्रकार; श्रुत:—विख्यात; श्रिया—ऐश्वर्य से; स्वरूप—अपने स्वरूप का; सम्पत्त्या—धन से; विमानेन—अपने विमान में; आचरन्—घूमते हुए; दिश:—दिशाएँ; ऋषीन्—ऋषिगण; विरूप—कुरूप; आङ्गिरस:—अङिगरा मुनि की शिष्य परम्परा के; प्राहसम्—मैंने हँसी उड़ाई; रूप—सौन्दर्य के कारण; दर्पित:—अत्यधिक गर्वित; तै:—उनके कारण; इमाम्—यह; प्रापित:—धारण करना पड़ा; योनिम्—जन्म; प्रलब्धै:—जिनका मजाक उड़ा था; स्वेन—अपने ही; पाप्मना—पापों के कारण।

सर्प ने उत्तर दिया: मैं सुदर्शन नामक विख्यात विद्याधर हूँ। मैं अत्यन्त सम्पत्तिवान तथा सुन्दर था और अपने विमान में चढ़कर सभी दिशाओं में मुक्त विचरण करता था। एक बार मैंने अंगिरा मुनि की परम्परा के कुछ ऋषियों को देखा। अपने सौन्दर्य से गर्वित मैंने उनका मजाक उड़ाया और मेरे पाप के कारण उन्होंने मुझे निम्न योनि धारण करने के लिए बाध्य कर दिया।

शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तै: करुणात्मभि: ।
यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभ: ॥ १४॥

शब्दार्थ

शाप:—शाप; मे—मेरे; अनुग्रहाय—वर के लिए; एव—निश्चय ही; कृत:—किया गया; तै:—उनके द्वारा; करुण-आत्मभि:—स्वभाव से दयालु; यत्—चूँकि; अहम्—मैं; लोक—सारे लोकों के; गुरुणा—गुरु द्वारा; पदा—पाँव से; स्पृष्ट:—स्पर्श किया; हत—नष्ट; अशुभ:—सारे अशुभ।

वास्तव में मेरे लाभ के लिए ही उन दयालु ऋषियों ने मुझे शाप दिया क्योंकि अब मैं समस्त लोकों के परम दिव्य गुरु के पाँव द्वारा स्पर्श किया जा चुका हूँ और इस तरह सारे अशुभों से मुक्त हो चुका हूँ।

तं त्वाहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम् ।
आपृच्छे शापनिर्मुक्त: पादस्पर्शादमीवहन् ॥ १५॥

शब्दार्थ

तम्—वही पुरुष; त्वा—तुम; अहम्—मैं; भव—संसार का; भीतानाम्—डरे हुओं के लिए; प्रपन्नानाम्—शरणागतों के; भय—भय के; अपहम्—भगाने वाले; आपृच्छे—आपकी अनुमति चाहता हूँ; शाप—शाप से; निर्मुक्त:—मुक्त; पाद-स्पर्शात्—आपके पाँव के स्पर्श से; अमीव—सारे दुखों के; हन्—नष्ट करने वाले।

हे प्रभु, आप उन समस्त लोगों के सारे भय को नाश करने वाले हैं, जो इस भौतिक संसार से डर कर आपकी शरण ग्रहण करते हैं। अब मैं आपके चरणस्पर्श से ऋषियों के शाप से मुक्त हो गया हूँ। हे दुखभंजन, अब मुझे अपने लोक वापस जाने की अनुमति दें।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार *आपृच्छे* शब्द सूचित करता है कि सुदर्शन ने विनीत होकर भगवान् से अपने धाम वापस जाने की अनुमति देने की प्रार्थना की जहाँ वह निश्चित रूप से शुद्ध मन से शान्तिपूर्वक अपने कर्तव्य का पुन: निर्वाह कर सके।

प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन्महापुरुष सत्पते ।
अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

प्रपन्नः—शरणागत; अस्मि—हूँ; महा-योगिन्—हे योगियों में महान; महा-पुरुष—हे महापुरुष; सत्-पते—हे भक्तों के स्वामी; अनुजानीहि—आज्ञा दें; माम्—मुझको; देव—हे ईश्वर; सर्व—सभी; लोक—लोकों के; ईश्वर—नियन्ताओं के; ईश्वर—हे परम नियन्ता।

हे योगेश्वर, हे महापुरुष, हे भक्तों के स्वामी, मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। हे परमेश्वर, हे ब्रह्माण्ड के ईश्वरों के ईश्वर, आप जैसा चाहें वैसी मुझे आज्ञा दें।

ब्रह्मदण्डाद्विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युत दर्शनात् ।
यन्नाम गृह्णन्नखिलान्श्रोतृनात्मानमेव च ।
सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥ १७॥

शब्दार्थ

ब्रह्म—ब्राह्मणों के; दण्डात्—दण्ड से; विमुक्तः—मुक्त; अहम्—मैं; सद्यः—तुरन्त; ते—आप; अच्युत—हे अच्युत भगवान्; दर्शनात्—दर्शन से; यत्—जिसके; नाम—नाम; गृह्णन्—कीर्तन करने; अखिलान्—समस्त; श्रोतृन्—श्रोताओं; आत्मानम्—स्वयं; एव—निस्सन्देह; च—भी; सद्यः—तुरन्त; पुनाति—पवित्र कर देता है; किम् भूयः—तो फिर और अधिक क्या; तस्य—उसका; स्पृष्टः—स्पर्श किया गया; पदा—पाँव से; हि—निस्सन्देह; ते—आपके।

हे अच्युत, मैं आपके दर्शन मात्र से ब्राह्मणों के दण्ड से तुरन्त मुक्त हो गया। जो कोई आपके नाम का कीर्तन करता है, वह अपने साथ-साथ अपने श्रोताओं को भी पवित्र बना देता है। तो फिर आपके चरणकमल का स्पर्श न जाने कितना लाभप्रद होगा?

इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवन्द्य च ।
सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नन्दश्च मोचितः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; अनुज्ञाप्य—अनुमति लेकर; दाशार्हम्—कृष्ण से; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; अभिवन्द्य—नमस्कार करके; च—तथा; सुदर्शनः—सुदर्शन; दिवम्—स्वर्ग को; यातः—चला गया; कृच्छ्रात्—अपने संकट से; नन्दः—नन्द महाराज; च—भी; मोचितः—छूट गये।

इस प्रकार भगवान् कृष्ण की अनुमति पाकर सुदर्शन ने उनकी परिक्रमा की, उन्हें झुककर नमस्कार किया और तब वह स्वर्ग के अपने लोक लौट गया। इस तरह नन्द महाराज संकट से उबर आये।

निशाम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं

व्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः ।
समाप्य तस्मिन्नियमं पुनर्व्रजं
णृपाययुस्तत्कथयन्त आदृताः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

निशाम्य—देखकर; कृष्णस्य—कृष्ण का; तत्—वह; आत्म—अपना; वैभवम्—शक्ति का प्रदर्शन; व्रज-ओकसः—व्रजवासी; विस्मित—चकित; चेतसः—अपने मन में; ततः—तब; समाप्य—समाप्त करके; तस्मिन्—उस स्थान पर; नियमम्—अपने व्रत; पुनः—फिर; व्रजम्—ग्वालों के गाँव में; नृप—हे राजा; आययुः—लौट आये; तत्—वह प्रदर्शन; कथयन्तः—बयान करते; आदृताः—आदरपूर्वक।

कृष्ण की असीम शक्ति देखकर व्रजवासी चकित रह गये। हे राजन्, तब उन्होंने भगवान् शिव की पूजा सम्पन्न की और रास्ते में कृष्ण के शक्तिशाली कार्यों का आदरपूर्वक वर्णन करते हुए वे सभी व्रज लौट आये।

कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः ।
विजहतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

कदाचित्—एक समय; अथ—तब; गोविन्दः—भगवान् कृष्ण; रामः—बलराम; च—तथा; अद्भुत—अद्भुत; विक्रमः—कार्य; विजहतुः—दोनों ने क्रीड़ा की; वने—वन में; रात्र्याम्—रात्रि के समय; मध्य-गौ—बीच में; व्रज-योषिताम्—ग्वालों की स्त्रियों के।

एक बार अद्भुत कौशल दिखलाने वाले भगवान् गोविन्द तथा राम रात्रि के समय व्रज की युवतियों के साथ जंगल में क्रीड़ा कर रहे थे।

तात्पर्य : इस श्लोक में एक नवीन लीला का वर्णन आरम्भ हुआ है। आचार्यों के अनुसार यहाँ पर जिस अवसर का उल्लेख है, वह होलि का पूर्णिमा का दिन था जिसे गौरपूर्णिमा भी कहा जाता है।

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः ।
स्वलङ्कृतानुलिप्ताङ्गौ स्रग्विनौ विरजोऽम्बरौ ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

उपगीयमानौ—उनकी महिमा का गायन करते; ललितम्—मनोहर; स्त्री-जनैः—स्त्रियों के द्वारा; बद्ध—बँधा; सौहृदैः—उनके प्रति स्नेह से; सु-अलङ्कृत—अत्यधिक सजी हुई; अनुलिप्त—(चन्दन) लेप किये; अङ्गौ—अंगों वाली; स्रक्-विनौ—फूलों की माला पहने; विरजः—धूल से रहित, निर्मल; अम्बरौ—वस्त्र धारण किये।

कृष्ण तथा बलराम फूलों की माला तथा स्वच्छ वस्त्र धारण किये हुए थे और उनके अंग प्रत्यंग उत्तम विधि से सजाये तथा लेपित किये गये थे। उनके स्नेह में बँधी हुई स्त्रियों ने उनकी महिमा का मनोहर ढंग से गायन किया।

निशामुखं मानयन्तावुदितोडुपतारकम् ।
मल्लिकागन्धमत्तालिजुष्टं कुमुदवायुना ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

निशा-मुखम्—रात्रि का शुभारम्भ; मानयन्तौ—दोनों ने सम्मान करते हुए; उदित—उदित होकर; उडुप—चन्द्रमा; तारकम्—तथा तारे; मल्लिका—चमेली के फूलों की; गन्ध—सुगन्ध से; मत्त—उन्मत्त; अलि—भौंरों के द्वारा; जुष्टम्—पसंद किये गये; कुमुद—कमलों की; वायुना—मन्द वायु से।

उन दोनों ने रात्रि आगमन की प्रशंसा की जिसका संकेत चन्द्रमा तथा तारों के उदित होने, कमल की गंध से युक्त मन्द वायु तथा चमेली के फूलों की सुगन्ध से मत्त भौंरों से हो रहा था।

जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवणमङ्गलम् ।
तौ कल्पयन्तौ युगपत्स्वरमण्डलमूर्च्छितम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

जगतुः—गाया; सर्व-भूतानाम्—समस्त प्राणियों के; मनः—मन; श्रवण—तथा कानों के लिए; मङ्गलम्—सुख; तौ—दोनों जन; कल्पयन्तौ—उत्पन्न करते हुए; युगपत्—एकसाथ; स्वर—तान; मण्डल—समूह से; मूर्च्छितम्—वर्धित।

कृष्ण तथा बलराम ने एकसाथ आरोह अवरोह की सभी ध्वनियाँ से युक्त राग अलापा। उनके गायन से सारे जीवों के कानों तथा मन को सुख प्राप्त हुआ।

गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन्नृप ।
स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ॥ २४॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियाँ; तत्—उनके; गीतम्—गायन को; आकर्ण्य—सुनकर; मूर्च्छिताः—मूर्च्छित हो गईं; न अविदन्—ज्ञान न रहा; नृप—हे राजन्; स्रंसत्—खिसकते हुए; दुकूलम्—वस्त्र; आत्मानम्—अपने आप; स्रस्त—बिखर गये; केश—बाल; स्रजम्—मालाएँ; ततः—उससे (खिसककर)।

जब गोपियों ने वह गायन सुना तो वे सम्मोहित हो गईं। हे राजन्, वे अपने आपको भूल गईं और उन्होंने यह भी नहीं जाना कि उनके सुन्दर वस्त्र शिथिल हो रहे हैं तथा उनके बाल एवं मालाएँ बिखर रही हैं।

एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः सम्प्रमत्तवत् ।
शङ्खचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विक्रीडतोः—दोनों जन क्रीड़ा करते हुए; स्वैरम्—इच्छानुसार; गायतोः—गाते हुए; सम्प्रमत्त—मतवाले; वत्—सदृश; शङ्खचूडः—शंखचूड़; इति—इस प्रकार; ख्यातः—नामक; धन-द—देवताओं के खजाञ्ची, कुवेर का; अनुचरः—सेवक; अभ्यगात्—आया।

जब भगवान् कृष्ण तथा भगवान् बलराम स्वेच्छापूर्वक क्रीड़ा कर रहे थे और गाते हुए

मतवाले हो रहे थे तभी कुवेर का शंखचूड़ नामक एक दास वहाँ आया।

तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम् ।
क्रोशन्तं कालयामास दिश्युदीच्यामशङ्कितः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तयोः—दोनों के; निरीक्षतोः—देखते देखते; राजन्—हे राजन्; तत्-नाथम्—अपने प्रभुओं के; प्रमदा-जनम्—स्त्रियों के समूह को; क्रोशन्तम्—चिल्लाते हुए; कालयाम् आस—भगाने लगा; दिशि—दिशा में; उदीच्याम्—उत्तरी; अशङ्कितः—निर्भीक।

हे राजन्, दोनों के देखते देखते शंखचूड़ उन स्त्रियों को उत्तर दिशा की ओर भागकर ले जाने लगा। कृष्ण तथा बलराम को अपना स्वामी मान चुकीं स्त्रियाँ उनकी ओर देखते हुए चीखने- चिल्लाने लगीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार असुर शंखचूड़ सुन्दरी तरुणियों की ओर लट्ठ तानने लगा और इस तरह उन्हें डराकर वह उन्हें उत्तर की ओर भगाने लगा। उसने उनका स्पर्श नहीं किया, जैसाकि अगले श्लोक से प्रकट है।

क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम् ।
यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

क्रोशन्तम्—चिल्लाते हुए; कृष्ण राम इति—हे कृष्ण, हे राम; विलोक्य—देखकर; स्व-परिग्रहम्—अपने भक्तों को; यथा—जिस तरह; गाः—गौवें; दस्युना—चोरों के द्वारा; ग्रस्ताः—पकड़ी हुई; भ्रातरौ—दोनों भाई; अन्वधावताम्—पीछे दौड़ा।

अपने भक्तों को ''कृष्ण, राम,'' कहकर चिल्लाते हुए सुनकर तथा यह देखकर कि वे चोर द्वारा गौवों की तरह चुराई जा रही हैं कृष्ण तथा बलराम उस असुर के पीछे दौड़ने लगे।

मा भैष्टेत्यभयारावौ शालहस्तौ तरस्विनौ ।
आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

मा भैष्ट—मत डरो; इति—इस प्रकार पुकारते हुए; अभय—अभय दान करते हुए; आरावौ—जिसके शब्द; शाल—लट्ठे; हस्तौ—दोनों हाथों में; तरस्विनौ—तेजी से घुमाते हुए; आसेदतुः—वे पास पहुँचे; तम्—उस असुर को; तरसा—जल्दी से; त्वरितम्—तेजी से घूम रहे; गुह्यक—यक्षों में; अधमम्—निकृष्ट।

भगवान् ने उत्तर में पुकारा: ''डरना मत।'' तत्पश्चात् उन्होंने हाथ में शाल वृक्ष के लट्ठे उठा लिये और उस अधमतम गुह्यक का तेजी से पीछा करने लगे जो तेजी से भाग रहा था।

स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् ।
विषृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, शंखचूड़; वीक्ष्य—देखकर; तौ—दोनों को; अनुप्राप्तौ—निकट आया; काल-मृत्यू—समय तथा मृत्यु; इव—सदृश; उद्विजन्—उद्विग्न होकर; विसृज्य—एक ओर छोड़कर; स्त्री-जनम्—स्त्रियों को; मूढः—मतिभ्रष्ट; प्राद्रवत्—भाग गया; जीवित—अपना जीवन; इच्छया—बनाये रखने की इच्छा से।

जब शंखचूड़ ने उन दोनों को साक्षात् काल तथा मृत्यु की तरह अपनी ओर आते देखा तो वह उद्विग्न हो उठा। वह भ्रमित होकर स्त्रियों को छोड़कर अपनी जान बचाकर भाग गया।

तमन्वधावद्गोविन्दो यत्र यत्र स धावति ।
जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन्स्त्रियो बलः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तम्—उसके; अन्वधावत्—पीछे पीछे दौड़े; गोविन्दः—कृष्ण; यत्र यत्र—जहाँ जहाँ; सः—वह; धावति—दौड़ता था; जिहीर्षुः—निकालने की इच्छा से; तत्—उसके; शिरः—सिर पर; रत्नम्—रत्न, मणि को; तस्थौ—खड़े रहे; रक्षन्—रक्षा करते हुए; स्त्रियः—स्त्रियाँ; बलः—बलराम।

भगवान् गोविन्द उस असुर के सिर की मणि निकालने के लिए उत्सुक होकर जहाँ जहाँ वह दौड़ रहा था, उसका पीछा कर रहे थे। इसी बीच बलराम स्त्रियों की रक्षा करने के लिए उनके साथ रह गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि भगाये जाने के कारण स्त्रियाँ थक गई थीं अत: जब वे विश्राम करने लगीं तो भगवान् बलराम उनकी रक्षा करने लगे और उन्हें ढाढस बँधाने लगे। इस बीच भगवान् कृष्ण उस असुर का पीछा करते रहे।

अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः ।
जहार मुष्टिनैवाङ्ग सहचूडमणिं विभुः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

अविदूरे—पास ही; इव—मानो; अभ्येत्य—की ओर आकर; शिरः—सिर; तस्य—उसका; दुरात्मनः—दुष्ट; जहार—अलग कर लिया; मुष्टिना—अपनी मुट्ठी से; एव—केवल; अङ्ग—हे राजन्; सह—साथ; चूड-मणिम्—सिर के मणि को; विभुः—सर्वशक्तिमान भगवान् ने।

हे राजन्, शक्तिशाली भगवान् ने दूर से ही शंखचूड़ को पकड़ लिया मानो निकट से हो और तब अपनी मुट्ठी से उस दुष्ट के सिर को चूड़ामणि समेत धड़ से अलग कर दिया।

शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ।

अग्रजायाददात्प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥ ३२॥

शब्दार्थ

शङ्खचूडम्—शंखचूड़ को; निहत्य—मारकर; एवम्—इस तरह; मणिम्—मणि को; आदाय—लाकर; भास्वरम्—चमकीली; अग्र-जाय—अपने बड़े भाई (बलराम) को; अददात्—दे दिया; प्रीत्या—प्रसन्नतापूर्वक; पश्यन्तीनाम्—देखते हुए; च—तथा; योषिताम्—स्त्रियों के।

इस प्रकार शंखचूड़ असुर को मारकर तथा उसकी चमकीली मणि लेकर भगवान् कृष्ण ने इसे अपने बड़े भाई को बड़ी प्रसन्नतापूर्वक गोपियों के सामने भेंट किया।

तात्पर्य : विभिन्न गोपियों ने शायद सोचा था कि गोविन्द उनमें से किसी एक को वह बहुमूल्य मणि देंगे किन्तु उनके बीच होड़ रोकने के लिए श्रीकृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक अपने बड़े भाई बलराम को वह मणि दे दी।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''नन्द महाराज की रक्षा तथा शंखचूड़ का वध'' नामक चौंतीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter पैंतीस

कृष्ण के वनविहार के समय गोपियों द्वारा कृष्ण का गायन

इस अध्याय में गोपियों के गीत हैं, जिन्हें वे कृष्ण के प्रति अपना विरह-भाव व्यक्त करने के लिए तब गाती हैं जब दिन के समय कृष्ण जंगल चले जाते हैं।

ज्यों ज्यों श्रीकृष्ण से गोपियों का विरह-भाव तीव्र होता जाता है त्यों त्यों उनके नाम, रूप, गुण तथा लीलाएँ उनके हृदयों में एक ही साथ प्रकट होने लगती हैं। इस प्रकार वे मिलकर गाती हैं कि ''कृष्ण का सौन्दर्य सबों के मन को आकृष्ट करने वाला है। जब वे त्रिभंग होकर अपनी बाँसुरी बजाते हैं, तो आकाश में अपने पतियों के साथ विचरण करती हुई सिद्धों की पत्नियाँ उनके प्रति आकृष्ट हो जाती हैं और बाह्य वास्तविकता को भूल जाती हैं। चरागाह में बैल, गौवें तथा अन्य पशु हर्षविभोर हो उठते हैं और अपने दाँतों के बीच में बिना चबाई घास दबाये शान्त खड़े रहते हैं तथा बनाए गये चित्रों से प्रतीत होते हैं। यहाँ तक कि अचेत नदियाँ भी बहना बन्द कर देती हैं।

''जरा देखो तो! जब कृष्ण वनवासी वस्त्र पहन लेते हैं और अपनी बाँसुरी बजाकर गौवों के नाम पुकारते हैं, तो वृक्ष तथा लताएँ तक प्रेमविभोर हो उठती हैं जिससे उनके अंग-प्रत्यंग में व्रण उत्पन्न हो

जाते हैं और उनका रस अश्रुधारा की तरह फूट पड़ता है। कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि सरोवर के सारसों, हंसों तथा अन्य पक्षियों की आँखों को गहन ध्यान में बन्द करा देती है। आकाश में बादल उनकी वंशी की ध्वनि का अनुकरण करते हुए धीमे स्वर में गरजते हैं और इन्द्र, शिव तथा ब्रह्मा जैसे संगीतविशारद भी चकित हो उठते हैं। जिस तरह हम गोपियाँ कृष्ण को अपना सर्वस्व अर्पित करने को आतुर रहती हैं उसी तरह श्याम-हिरण की पत्नियाँ हमारा अनुकरण करती हुईं उनका पीछा करती हैं।

''जब कृष्ण व्रज लौटते होते हैं, तो वे निरन्तर बाँसुरी बजाते हैं और उनके तरुण संगी उनका यशोगान करते हैं और ब्रह्मा तथा अन्य प्रमुख देवता उनके चरणकमलों की पूजा करने आते हैं।''

इस तरह कृष्ण के तीव्र विरह का अनुभव करती हुईं गोपियाँ उनकी लीलाओं का गायन करती हैं।

श्रीशुक उवाच
गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ।
कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; गोप्यः—गोपियाँ; कृष्णे—कृष्ण के; वनम्—वन को; याते—जाने पर; तम्—उसके; अनुद्रुत—पीछा करते; चेतसः—जिनके मन; कृष्ण-लीलाः—कृष्ण की दिव्य लीलाएँ; प्रगायन्त्यः—जोर जोर से गाती हुई; निन्युः—बिताया; दुःखेन—दुख के साथ; वासरान्—दिन।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब भी कृष्ण वन को जाते थे तो गोपियों के मन उन्हीं के पीछे भाग जाते थे और इस तरह युवतियाँ उनकी लीलाओं का गान करते हुए खिन्नतापूर्वक अपने दिन बिताती थीं।

तात्पर्य : यद्यपि गोपियाँ रात्रि के समय रासनृत्य में कृष्ण के प्रत्यक्ष संग का आनन्द लेती थीं किन्तु दिन में कृष्ण अपना सामान्य कार्य करने में—जंगल में गौवें चराने में—लगे रहते थे। उस समय गोपियों के मन उनके साथ चले जाते किन्तु उन बेचारियों को गाँव में रहकर अपने गृहकार्य करने पड़ते थे। इस तरह वियोग की पीड़ा सहते हुए वे कृष्ण की दिव्य लीलाओं का गायन करती रहती थीं।

श्रीगोप्य ऊचुः
वामबाहुकृतवामकपोलो
वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं
गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ २ ॥

व्योमयानवनिताः सह सिद्धै-
विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः
कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ ३॥

शब्दार्थ

श्री-गोप्यः ऊचुः—गोपियों ने कहा; वाम—बायीं; बाहु—भुजा पर; कृत—रखकर; वाम—बाएँ; कपोलः—गाल को; वल्गित—हिलती हुई; भ्रुः—भौंहें; अधर—होंठों पर; अर्पित—रखी; वेणुम्—बाँसुरी को; कोमल—सुकुमार; अङ्गुलिभिः—अपनी अँगुलियों से; आश्रित-मार्गम्—बन्द किये गये छेद; गोप्यः—हे गोपियो; ईरयति—बजाते हैं; यत्र—जहाँ; मुकुन्दः—कृष्ण; व्योम—आकाश में; यान—विचरण करती; वनिताः—स्त्रियाँ; सह—साथ; सिद्धैः—सिद्ध देवताओं के; विस्मिताः—चकित; तत्—उसे; उपधार्य—सुनकर; स—सहित; लज्जाः—लाज; काम—कामवासना का; मार्गण—पीछा करते; समर्पित—अर्पित; चित्ताः—उनके मन; कश्मलम्—कष्ट; ययुः—अनुभव किया; अपस्मृत—भूलकर; नीव्यः—कमरबंध।

गोपियों ने कहा : जब मुकुन्द अपने होंठों पर रखी बाँसुरी के छेदों को अपनी सुकुमार अँगुलियों से बन्द करके उसे बजाते हैं, तो वे अपने बाएँ गाल को अपनी बाईं बाँह पर रखकर अपनी भौंहों को नचाने लगते हैं। उस समय आकाश में अपने पतियों अर्थात् सिद्धों समेत विचरण कर रही सिद्धपत्नियाँ चकित हो उठती हैं। जब ये स्त्रियाँ वंशी की ध्वनि सुनती हैं, तो उनके मन कामवासना से चलायमान हो उठते हैं और अपनी पीड़ा में उन्हें इसकी भी सुधि नहीं रह जाती कि उनके कमरबंध शिथिल हुए जा रहे हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि इस अध्याय में गोपियों के उन कथनों का संकलन है जिन्हें वे वृन्दावन में छोटी छोटी टोलियों में इधर-उधर खड़ी होकर समय समय पर व्यक्त करती थीं।

हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं
हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ।
नन्दसूनुरयमार्तजनानां
नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥ ४॥
वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो
वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ।
दन्तदष्टकवला धृतकर्णा
निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ ५॥

शब्दार्थ

हन्त—ओह; चित्रम्—आश्चर्य; अबलाः—हे बालाओ; शृणुत—सुनो; इदम्—यह; हार—गले के हार सदृश (चमकीला); हासः—हँसी; उरसि—वक्षस्थल पर; स्थिर—अचल; विद्युत्—बिजली; नन्द-सूनुः—नन्द महाराज का पुत्र; अयम्—यह; आर्त—दुखी; जनानाम्—मनुष्यों के लिए; नर्म—प्रसन्नता का; दः—देने वाला; यर्हि—जब; कूजित—ध्वनित; वेणुः—वंशी; वृन्दशः—झुंडों में; व्रज—चरागाह में रखे गये; वृषाः—बैल; मृग—हिरण; गावः—गाएँ; वेणु—बाँसुरी के; वाद्य—बजाने से; हृत—चुराये गये; चेतसः—मन; आरात्—दूरी पर; दन्त—अपने दाँतों से; दष्ट—काटा गया; कवलाः—कौर; धृत—खड़ा किये हुए; कर्णाः—अपने कान; निद्रिताः—सुप्त; लिखित—अंकित; चित्रम्—चित्र; इव—सदृश; आसन्—थे।

हे बालाओ, दुखियों को आनन्द देने वाला यह नन्द का बेटा अपने वक्षस्थल पर अविचल दामिनी वहन करता है और इसकी हँसी रत्नजटित हार जैसी है। अब जरा कुछ विचित्र बात सुनो। जब वह अपनी बाँसुरी बजाता है, तो बहुत दूरी पर खड़े व्रज के बैल, हिरण तथा गौवें के झुंड के झुंड इस ध्वनि से मोहित हो जाते हैं। वे सब जुगाली करना बंद कर देते हैं और अपने कानों को खड़ा कर लेते हैं (चौकन्ने हो जाते हैं)। वे स्तम्भित होकर ऐसे लगते हैं मानो सो गये हों या चित्रों में बनी आकृतियाँ हों।

तात्पर्य : *स्थिरविद्युत्* शब्द लक्ष्मीजी का द्योतक है क्योंकि वे भगवान् के वक्षस्थल पर निवास करती हैं। जब वृन्दावन के पशु बाँसुरी की ध्वनि सुनते हैं, तो आनन्द के मारे वे स्तम्भित हो जाते हैं और अपना चारा चबाना बन्द कर देते हैं और इसे वे निगल नहीं सकते। कृष्ण के विरह में गोपियाँ भगवान् के वंशीवादन के असाधारण प्रभाव पर आश्चर्य करती हैं।

श्रील श्रीधर स्वामी ने सामासिक पद *हार-हास* की व्याख्या जिसमें भगवान् कृष्ण की मुसकान की तुलना एक हार से की गई है, इस प्रकार की है, ''वह व्यक्ति जिसकी हँसी रत्नजटित हार के समान स्पष्ट चमकने वाली है'' या कि ''वह जिसकी हँसी उसके रत्नजटित हारों से प्रतिबिम्बित होती है'' क्योंकि जब कृष्ण वंशी बजाते हैं, तो वे अपना सिर नीचे झुकाकर मन्द-मन्द हँसते हैं। इस शब्द का यह भी अर्थ हो सकता है—''वह जिसकी हँसी अपने तेज को, रत्नजटित हार की तरह, उसके वक्षस्थल पर डाल रही है'' अथवा ''वह जिसका हार उसकी हँसी के समान चमकीला है।''

बर्हिणस्तबकधातुपलाशै-
बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।
कर्हिचित्सबल आलि स गोपै-
र्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥ ६ ॥
तर्हि भग्नगतयः सरितो वै
तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।
स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः
प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

बर्हिण—मोरों के; स्तबक—पंखों से; धातु—रंगीन खनिज (गेरू); पलाशैः—तथा पत्तियों से; बद्ध—व्यवस्थित; मल्ल—कुश्ती लड़ने वाले या पहलवान का; परिबर्ह—वेश; विडम्बः—अनुकरण करने वाला; कर्हिचित्—कभी कभी; स-बलः—

बलराम सहित; आलि—हे गोपी; सः—वह; गोपैः—ग्वालबालों के साथ; गाः—गौवों को; समाह्वयति—बुलाता है; यत्र—जब; मुकुन्दः—मुकुन्द; तर्हि—तब; भग्न—टूटी; गतयः—उनकी गति, हिलना-डुलना; सरितः—नदियाँ; वै—निस्सन्देह; तत्—उसके; पद-अम्बुज—चरणकमलों की; रजः—धूलि; अनिल—वायु से; नीतम्—लाई हुई; स्पृहयतीः—लालसा करती हुई; वयम्—हम सब; इव—जिस तरह; अबहु—कुछ कुछ; पुण्याः—पुण्यकर्म; प्रेम—भगवत्प्रेम के कारण; वेपित—काँपती; भुजाः—बाहें (लहरें); स्तिमित—रुक गया; आपः—जल।

हे प्रिय गोपी, कभी कभी कृष्ण अपने को पत्तियों, मोरपंखों तथा रंगीन खनिजों से सजाकर पहलवान का वेश बनाते हैं। तत्पश्चात् वे बलराम तथा ग्वालबालों के साथ बैठकर गौवों को बुलाने के लिए अपनी बाँसुरी बजाते हैं। उस समय नदियाँ बहना बन्द कर देती हैं, उनका जल उस आनन्द से स्तम्भित हो उठता है, जिसे वे उस वायु की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते हुए अनुभव करती हैं, जो उनके लिए भगवान् के चरणकमलों की धूल लाएगा। किन्तु हमारी ही तरह नदियाँ अधिक पवित्र नहीं हैं, अतः वे प्रेमवश काँपते हुए बाँहों से उनकी प्रतीक्षा करती रहती हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर गोपियाँ कह रही हैं कि कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि नदी जैसी जड़ वस्तुओं को भी चेतन बनाती है, जिससे वे आनन्द से स्तम्भित हो जाती हैं। जिस तरह गोपियाँ सदैव कृष्ण के शारीरिक सान्निध्य में नहीं रह सकती थीं उसी तरह नदियाँ भगवान् के चरणकमलों तक नहीं आ सकतीं थीं। यद्यपि वे भगवान् को चाहती थीं किन्तु आनन्द के मारे उनका हिलना-डुलना रुक जाता था और उनकी लहरों रूपी भुजाएँ भगवत्प्रेम में काँपने लगती थीं।

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य
आदिपूरुष इवाचलभूतिः ।
वनचरो गिरितटेषु चरन्ती-
र्वेणुनाह्वयति गाः स यदा हि ॥ ८ ॥
वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः
प्रेमहृष्टतनवो ववृषुः स्म ॥ ९ ॥
दर्शनीयतिलको वनमाला-
दिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ।
अलिकुलैरलघु गीतामभीष्ट-
माद्रियन्यर्हि सन्धितवेणुः ॥ १० ॥
सरसि सारसहंसविहङ्गा-

श्चारुगीताहृतचेतस एत्य ।
हरिमुपासत ते यतचित्ता
हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अनुचरैः—साथियों के द्वारा; समनुवर्णित—विस्तार से वर्णित होकर; वीर्यः—पराक्रम; आदि-पूरुषः—आदिपुरुष; इव—सदृश; अचल—स्थिर; भूतिः—ऐश्वर्य; वन—वन में; चरः—इधर-उधर घूमते; गिरि—पर्वतों के; तटेषु—पार्श्व में, तराई में; चरन्तीः—चरती हुई; वेणुना—अपनी बाँसुरी से; आह्वयति—बुलाता है; गाः—गौवों को; सः—वह; यदा—जब; हि—निस्सन्देह; वन-लताः—जंगल की लताओं; तरवः—तथा वृक्षों ने; आत्मनि—अपने में; विष्णुम्—भगवान् विष्णु को; व्यञ्जयन्त्यः—प्रकट करते हुए; इव—मानो; पुष्प—फूलों; फल—तथा फलों से; आढ्याः—सम्पन्न; प्रणत—झुके हुए; भार—भार से; विटपाः—डालें; मधु—मधुर रस की; धाराः—धाराएँ; प्रेम—प्रेम से; हृष्ट—रोमांचित; तनवः—शरीर (तने); ववृषुः स्म—वर्षा की; दर्शनीय—देखने में आकर्षक लोगों में; तिलकः—सर्वश्रेष्ठ; वन-माला—जंगल के फूलों से बनी माला पर; दिव्य—अलौकिक; गन्ध—सुगन्ध; तुलसी—तुलसी के फूलों की; मधु—शहद जैसी मिठास से; मत्तैः—प्रमत्त; अलि—भौंरों के; कुलैः—झुंडों से; अलघु—प्रबल; गीतम्—गायन; अभीष्टम्—इच्छित; आद्रियन्—कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हुए; यर्हि—जब; सन्धित—रखा; वेणुः—अपनी बाँसुरी; सरसि—झील में; सारस—सारस पक्षी; हंस—हंस; विहङ्गाः—तथा अन्य पक्षी; चारु—मनोहर; गीत—(वंशी के) गीत से; हृत—चुराये गये; चेतसः—मन; एत्य—आगे आकर; हरिम्—भगवान् कृष्ण को; उपासत—पूजा करते हैं; ते—वे; यत—वश में; चित्ताः—मन; हन्त—हाय; मीलित—बन्द; दृशः—उनकी आँखें; धृत—धारण किया हुआ; मौनाः—मौन।

कृष्ण अपने सखाओं के साथ जंगल में घूमते फिरते हैं। ये सखा उनके शानदार कार्यों का जोरशोर से यशगान करते हैं। इस तरह वे पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर की तरह अपने अक्षय ऐश्वर्य का प्रदर्शन करते प्रतीत होते हैं। जब गाएँ पर्वत की तलहटी में घूमती हैं और कृष्ण अपनी वंशी की तान से उन्हें बुलाते हैं, तो वृक्ष तथा जंगल की लताएँ, प्रत्युत्तर में, फूलों तथा फलों से इतनी लद जाती हैं कि वे अपने हृदयों के भीतर भगवान् विष्णु को प्रकट करती प्रतीत होती हैं। जब भार से उनकी शाखाएँ नीचे झुक जाती हैं, तो उनके तनों के तन्तु तथा लताएँ भगवत्प्रेम से रोम जैसी उठ खड़ी होती हैं और वृक्ष तथा लताएँ दोनों ही मधुर रस की वर्षा करने लगते हैं।

कृष्ण द्वारा पहनी गयी माला के तुलसी के फूलों की मधु जैसी दिव्य गंध से उन्मत्त भौंरों के समूह उनके लिए उच्च स्वर से गुंजार करने लगते हैं और पुरुषों में सर्वाधिक सुन्दर वह कृष्ण अपने अधरों पर अपनी वंशी रखकर और उसे बजाकर उनके गीत की धन्यवाद-सहित प्रशंसा करते हैं। तब मनोहारी वंशी-गीत सारसों, हंसों तथा झील में रहने वाले अन्य पक्षियों के चित्त को चुरा लेता है। निस्सन्देह ये सभी अपनी आँखें बन्द किये और मौन साधे उनके पास जाते हैं और गहन ध्यान में उन पर अपनी चेतना को स्थिर करते हुए उनकी पूजा करते हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इन श्लोकों पर कई चमत्कारी टीकाएँ की हैं। उन्होंने दृष्टान्त दिया है कि जिस तरह गृहस्थ वैष्णवजन निकट आ रही किसी संकीर्तन टोली को सुनते हैं, तो

वे आह्लादित होकर नमस्कार करते हैं, उसी तरह वृन्दावन के वृक्षों तथा लताओं ने जब कृष्ण की वंशी सुनी तो वे आह्लादित हो उठे और उन्होंने अपनी शाखाओं तथा लताओं को नीचे झुका दिया। श्लोक १० में आगत *दर्शनीयतिलक* शब्द न केवल यह सूचित करता है कि भगवान् (देखने में) ''सर्वश्रेष्ठ'' हैं अपितु उन्होंने वृन्दावन के जंगल की खनिज पदार्थयुक्त मिट्टी से मिली गेरू से आकर्षक लाल तिलक लगाकर अपने को अलंकृत किया।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यह भी इंगित करते हैं कि यद्यपि तुलसी कई प्रकार से परम आदरित है किन्तु सामान्यतया अत्यन्त सुगन्धित वृक्ष नहीं मानी जाती। फिर भी प्रातःकाल तुलसी से ऐसी दिव्य गन्ध निकलती है, जिसे दिव्य पुरुष ही समझ पाते हैं, सामान्य व्यक्ति नहीं। हाँ, वे भौंरें जो भगवान् द्वारा पहनी पुष्पमाला के चारों ओर मँडराते हैं अवश्य ही इस सुगन्ध की कदर करते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती *भागवत* (३.१५.१९) से उद्धरण देते हैं कि वैकुण्ठ के सर्वाधिक पौधे तक तुलसीदेवी की विशिष्टता की प्रशंसा करते हैं।

श्लोक १० में *संधितवेणुः* शब्द सूचित करता है कि कृष्ण ने अपने होंठों पर वंशी को मजबूती से रखा था। और इस वंशी से निकली तान निश्चय ही सर्वाधिक मोहक ध्वनि है जैसाकि इस अध्याय में गोपियों ने कहा है।

सहबलः स्रगवतंसविलासः
सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ।
हर्षयन्यर्हि वेणुरवेण
जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥ १२ ॥
महदतिक्रमणशङ्कितचेता
मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः ।
सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभि-
श्छायया च विदधत्प्रतपत्रम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सह-बलः—बलराम के साथ; स्रक्—फूल की माला; अवतंस—सिर पर आभूषण की तरह; विलासः—खेलखेल में पहनकर; सानुषु—तलहटी में; क्षिति-भृतः—पर्वत की; व्रज-देव्यः—हे वृन्दावन की देवियो (गोपियो); हर्षयन्—हर्ष उत्पन्न करते हुए; यर्हि—जब; वेणु—उनकी वंशी की; रवेण—प्रतिध्वनि से; जात-हर्षः—हर्षित होकर; उपरम्भति—आस्वादन कराते हैं; विश्वम्—सारे जगत को; महत्—महापुरुष के; अतिक्रमण—अवमानना; शङ्कित—डरा हुआ; चेताः—मन में; मन्द-मन्दम्—अत्यन्त धीरे धीरे; अनुगर्जति—बदले में गरजता है; मेघः—बादल; सुहृदम्—अपने मित्र के ऊपर; अभ्यवर्षत्—वर्षा करता है;

सुमनोभिः—फूलों से; छायया—अपनी छाया से; च—तथा; विदधत्—प्रदान करते हुए; प्रतपत्रम्—सूर्य से रक्षा के लिए छाता।

हे व्रज-देवियो, जब कृष्ण बलराम के साथ खेलखेल में अपने सिर पर फूलों की माला धारण करके पर्वत की ढालों पर विहार करते हैं, तो वे अपनी वंशी की गूँजती ध्वनि से सबों को आह्लादित कर देते हैं। इस तरह वे सम्पूर्ण विश्व को प्रमुदित करते हैं। उस समय महान् पुरुष के अप्रसन्न होने के भय से भयभीत होकर निकटवर्ती बादल उनके साथ होकर मंद मंद गर्जना करता है। यह बादल अपने प्रिय मित्र कृष्ण पर फूलों की वर्षा करता है और धूप से बचाने के लिए छाते की तरह छाया प्रदान करता है।

विविधगोपचरणेषु विदग्धो
वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ।
तव सुतः सति यदाधरबिम्बे
दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः ॥ १४॥
सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः
शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।
कवय आनतकन्धरचित्ताः
कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५॥

शब्दार्थ

विविध—अनेक; गोप—ग्वालों के; चरणेषु—कार्यों में; विदग्धः—पटु; वेणु—वंशी के; वाद्ये—बजाने में; उरुधा—कई गुना; निज—अपनी; शिक्षाः—जिसकी शिक्षाएँ; तव—तुम्हारा; सुतः—बेटा; सति—हे पवित्र स्त्री (यशोदा); यदा—जब; अधर—होंठों पर; बिम्बे—बिम्ब फलों जैसे लाल; दत्त—रखी हुई; वेणुः—वंशी; अनयत्—ले आया; स्वर—संगीत ध्वनि की; जातीः—जातियाँ; सवनशः—उच्च, मध्यम तथा निम्न आरोहों से; तत्—उसे; उपधार्य—सुनकर; सुर-ईशाः—मुख्य देवता; शक्र—इन्द्र; शर्व—शिवजी; परमेष्ठि—तथा ब्रह्मा; पुरः-गाः—आदि; कवयः—विद्वान; आनत—झुका लिया; कन्धर—गर्दनें; चित्ताः—तथा मन; कश्मलम् ययुः—मोहित हो गये; अनिश्चित—निश्चय कर पाने में असमर्थ; तत्त्वाः—सार।

हे सती यशोदा माता, गौवों के चराने की कला में निपुण आपके लाड़ले ने वंशी बजाने की कई शैलियाँ खोज निकाली हैं। जब वह अपने बिम्ब सदृश लाल होंठों पर अपनी वंशी रखता है और विविध तानों में स्वर निकालता है, तो इस ध्वनि को सुनकर ब्रह्मा, शिव, इन्द्र तथा अन्य प्रधान देवता मोहित हो जाते हैं। यद्यपि वे महान् विद्वान अधिकारी हैं तो भी वे उस संगीत का सार निश्चित नहीं कर पाते; इसलिए वे अपना सिर तथा मन से नतमस्तक हो जाते हैं।

तात्पर्य : *तव सुतः सति* पद इस बात का सूचक है कि यहाँ पर माता यशोदा भी भगवान् कृष्ण का गंभीरता से गुणगान करने वाली गोपियों में से थीं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार शक्र

(इन्द्र) इत्यादि देवताओं में उपेन्द्र, अग्नि तथा यमराज सम्मिलित थे और शर्व (शिव) इत्यादि देवताओं में कात्यायनी, स्कन्द तथा गणेश थे। इसी तरह परमेष्ठि (ब्रह्मा) के साथ चारों कुमार तथा नारद थे। इस तरह ब्रह्माण्ड के सबसे बुद्धिमान व्यक्ति भी भगवान् के मोहक संगीत का सुचारु रूप से विश्लेषण कर पाने में असमर्थ थे।

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्र-
नीरजाङ्कुशविचित्रललामैः ।
व्रजभुवः शमयन्खुरतोदं
वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ १६ ॥
व्रजति तेन वयं सविलास-
वीक्षणार्पितमनोभववेगाः ।
कुजगतिं गमिता न विदामः
कश्मलेन कवरं वसनं वा ॥ १७॥

शब्दार्थ

निज—अपने; पद-अब्ज—चरणकमलों के; दलैः—फूलों की पंखड़ियों जैसे; ध्वज—पताका; वज्र—वज्र; नीरज—कमल; अङ्कुश—तथा अंकुश का; विचित्र—भाँति भाँति के; ललामैः—चिह्नों से; व्रज—व्रज की; भुवः—भूमि को; शमयन्—शान्त करते हुए; खुर—गाय के खुरों से; तोदम्—पीड़ा; वर्ष्म—अपने शरीर से; धुर्य—जिस तरह हाथी की; गतिः—चाल; ईडित—प्रशंसित; वेणुः—जिसकी वंशी; व्रजति—चलता है; तेन—उससे; वयम्—हम; सविलास—क्रीड़ायुक्त; वीक्षण—चितवन से; अर्पित—अर्पित; मनः-भव—कामवासना का; वेगाः—मंथन; कुज—वृक्षों जैसी; गतिम्—चाल (गति का अभाव); गमिताः—प्राप्त किया हुआ; न विदामः—हम नहीं जान पातीं; कश्मलेण—अपने मोह के कारण; कवरम्—चोटी; वसनम्—अपने वस्त्र; वा—अथवा।

जब कृष्ण अपने कमल-दल जैसे पाँवों से व्रज में घूमते हैं, तो भूमि पर पताका, वज्र, कमल तथा अंकुश जैसे प्रतीकों के स्पष्ट चिन्ह बनते जाते हैं और वे पृथ्वी को गौवों के खुरों से अनुभव होने वाली पीड़ा से प्रशमित करते हैं। जब वे अपनी विख्यात बाँसुरी बजाते हैं, तो उनका शरीर हाथी की अदा में झूमता है। इस तरह हम गोपियाँ, जो कृष्ण की विनोदप्रिय चितवन के कारण कामदेव द्वारा चंचल हो उठती हैं, वृक्षों की तरह स्तब्ध खड़ी रह जाती हैं और हमें अपने बालों की लर तथा वस्त्रों के शिथिल पड़ने जाने की भी सुध नहीं रह जाती।

तात्पर्य : यहाँ पर गोपियाँ श्रीकृष्ण के प्रति अपने माधुर्य आकर्षण का वर्णन कर रही हैं किन्तु अब माता यशोदा उनके साथ नहीं हैं। श्रील जीव गोस्वामी तथा अन्य आचार्यों की टीकाओं से यह स्पष्ट है कि इस अध्याय के कथन विभिन्न अवसरों तथा स्थानों पर व्यक्त हुए हैं। यह स्वाभाविक है क्योंकि गोपियाँ अहर्निश श्रीकृष्ण के विचारों में सदैव मग्न रहती थीं।

मणिधरः क्वचिदागणयन्गा
मालया दयितगन्धतुलस्याः ।
प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे
प्रक्षिपन्भुजमगायत यत्र ॥ १८ ॥
क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः
कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ।
गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो
गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

मणि—मणियों की (लड़); धरः—धारण किये; क्वचित्—कहीं; आगणयन्—गिनते हुए; गाः—गौवों को; मालया—फूलों की माला से; दयित—अपनी प्रिया; गन्ध—सुगन्ध पाकर; तुलस्याः—तुलसी के फूल जिनपर; प्रणयिनः—प्रेमी; अनुचरस्य—संगी का; कदा—किसी समय; अंसे—कंधे पर; प्रक्षिपन्—फेंकते हुए; भुजम्—अपनी बाँह; अगायत—गाया; यत्र—जब; क्वणित—बजायी हुई; वेणु—बाँसुरी की; रव—ध्वनि से; वञ्चित—चुराये गये; चित्ताः—हृदय; कृष्णम्—कृष्ण के; अन्वसत—निकट बैठ गईं; कृष्णा—काले हिरण की; गृहिण्यः—पत्नियाँ; गुण-गण—समस्त गुणों के; अर्णम्—समुद्र; अनुगत्य—पास आकर; हरिण्यः—हिरनियाँ; गोपिकाः—गोपियाँ; इव—सदृश्य; विमुक्त—त्यागकर; गृह—घर तथा परिवार की; आशाः—अपनी आशाएँ।

अब कृष्ण कहीं पर अपनी मणियों की लड़ी में गौवों की गिनती करते हुए खड़े हैं। वे तुलसी के फूलों की माला पहने हैं जिसमें उनकी प्रिया की सुगन्ध बसती है और अपनी एक बाँह अपने प्रिय ग्वालमित्र के कन्धे पर रखे हुए हैं। ज्योंही कृष्ण अपनी बाँसुरी बजाकर गाते हैं, तो उस गीत से कृष्ण-हिरणों की पत्नियाँ आकृष्ट होती हैं और वे दिव्य गुणों के सागर कृष्ण तक पहुँचकर उनके पास बैठ जाती हैं। वे भी हम गोपियों की तरह पारिवारिक जीवन के सुख की सारी आशाएँ त्याग चुकी हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि तीसरे पहर श्रीकृष्ण नये वस्त्र पहनते है और तब अपनी गायों को घर वापस लाने के लिए निकलते है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती वृन्दावन की दिव्य गायों के विषय में निम्नलिखित जानकारी प्रदान करते हैं—“श्वेत, लाल, काली तथा पीली—इन चार रंगों में से प्रत्येक रंग के पच्चीस उपविभाग थे जिससे कुल मिलाकर १०० रंग थे। यही नहीं चन्दन-तिलक जैसे रंग के गुणों वाली या मृदंग जैसे सिर के आकारों वाली गौवों के आठ और समूह बनते हैं। गायों के रंग और आकार के इन १०८ समूहों की गिनती के लिए कृष्ण १०८ मणियों वाली लड़ (माला) का प्रयोग करते हैं...”।

अतः जब कृष्ण “हे धवली!” (एक श्वेत गाय का नाम) लेकर पुकारते हैं, तो सफेद गायों का

पूरा झुंड का झुंड आगे आ जाता है और जब वे हंसी, चन्दनी, गंगा, मुक्ता इत्यादि कहकर पुकारते हैं, तो सफेद गायों के चौबीस और झुंड आगे आते हैं। लाल रंग वाली गौवें अरुणी, कुंकुम, सरस्वती कहलाती हैं और काले रंग वाली गौवें श्यामला, धूमला, यमुना इत्यादि कहलाती हैं। पीले रंग वाली गौवें पीता, पिंगला, हरितालिका इत्यादि कही जाती हैं। जिन गौवों के मस्तक पर तिलक लगा रहता है वे चित्रिता, चित्रतिलका, दीर्घतिलका, तिर्यकतिलका कहलाती हैं। अन्य झुंड की गौएँ मृदंगमुखी, सिंहमुखी इत्यादि कहलाती हैं।

इस तरह नाम लेकर पुकारने पर गौवें आगे आती जाती हैं और जब सबों को जंगल से घर वापस लाने का समय होता है, तो कृष्ण, यह विचार कर कि कहीं कोई गाय रह न जाए, उनकी गिनती अपनी मणिमाला में करते हैं।

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो
गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ।
नन्दसूनुरनघे तव वत्सो
नर्मदः प्रणयिणां विजहार ॥ २० ॥
मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं
मानयन्मलयजस्पर्शेन ।
वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये
वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कुन्द—चमेली के फूलों की; दाम—माला से; कृत—बनायी गई; कौतुक—क्रीड़ापूर्ण; वेषः—वेशभूषा; गोप—गोपबालों द्वारा; गोधन—तथा गायों द्वारा; वृतः—घिरा हुआ; यमुनायाम्—यमुना के तट पर; नन्द-सूनुः—नन्द महाराज का बेटा; अनघे—हे निष्पाप महिला; तव—तुम्हारा; वत्सः—लाड़ला बेटा; नर्म-दः—मनोरंजन कराने वाला; प्रणयिणाम्—अपने प्रिय संगियों के; विजहार—खेल चुका है; मन्द—धीमी; वायुः—वायु; उपवाति—बहती है; अनुकूलम्—अनुकूल; मानयन्—आदर दिखलाते हुए; मलय-ज—चन्दन (की सुगंध) के; स्पर्शेन—स्पर्श से; वन्दिनः—प्रशंसा करने वाले; तम्—उसको; उपदेव—लघु देवता की; गणाः—विभिन्न कोटियों के सदस्य; ये—जो; वाद्य—वाद्य यंत्रों वाले संगीत; गीत—गायन; बलिभिः—तथा उपहारों सहित; परिवव्रुः—घेर लिया है।

हे निष्पाप यशोदा, तुम्हारे लाड़ले नन्दनन्दन ने चमेली की माला से अपना विचित्र वेश सजा लिया है और इस समय वह यमुना के तट पर गौवों तथा ग्वालबालों के साथ अपने प्रिय संगियों का मनोरंजन कराते हुए खेल रहे हैं। मन्द वायु अपनी सुखद चन्दन-सुगंध से उनका आदर कर रही है और विविध उपदेवता चारों ओर बन्दीजनों के समान खड़े होकर अपना संगीत, गायन तथा श्रद्धा के उपहार भेंट कर रहे हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि गोपियाँ पुनः व्रज की महारानी माता यशोदा के आँगन में आई हुई हैं। दिन-भर गौवें चराने तथा खेलने के बाद कृष्ण के वृन्दावन लौटने का वर्णन करके गोपियाँ यशोदा को प्रोत्साहित कर रही हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका है कि यहाँ पर जिन उपदेवों का उल्लेख है उनमें गन्धर्वगण सम्मिलित हैं, जो अपने दैवी गायन तथा नृत्य के लिए विख्यात हैं।

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो
वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः ।
कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते
गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥ २२॥
उत्सवं श्रमरुचापि दृशीना-
मुन्नयन्खुररजश्छुरितस्रक् ।
दित्सयैति सुहृदासिष एष
देवकीजठरभूरुडुराजः ॥ २३॥

शब्दार्थ

वत्सलः—स्नेहिल; व्रज-गवाम्—व्रज की गौवों के प्रति; यत्—क्योंकि; अग—पर्वत को; ध्रः—धारण करने वाले; वन्द्यमान—पूजित; चरणः—उनके पैर; पथि—रास्ते पर; वृद्धैः—वृद्ध या गुरुजनों द्वारा; कृत्स्न—सम्पूर्ण; गो-धनम्—गौवों का समूह; उपोह्य—एकत्र करके; दिन—दिन का; अन्ते—अन्त होने पर; गीता-वेणुः—अपनी वंशी बजाते हुए; अनुग—सँगियों से; ईडित—प्रशंसित; कीर्तिः—यश; उत्सवम्—उत्सव; श्रम—थकान से; रुचा—रंजित; अपि—भी; दृशीनाम्—आँखों के लिए; उन्नयन्—उठाते हुए; खुर—गौवों के खुरों से; रजः—धूल से; छुरित—सनी; स्रक्—माला; दित्सया—इच्छा से; एति—आ रहा है; सुहृत्—अपने मित्रों को; आशिषः—उनकी इच्छाएँ; एषः—यह; देवकी—माता यशोदा के; जठर—गर्भ से; भूः—उत्पन्न; उडु-राजः—चन्द्रमा।

व्रज की गौवों के प्रति अत्यधिक स्नेह के कारण कृष्ण गोवर्धनधारी बने। दिन ढलने पर अपनी सारी गौवों को समेट कर वे अपनी बाँसुरी पर गीत की धुन बजाते हैं और उनके मार्ग के किनारे खड़े उच्च देवतागण उनके चरणकमलों की पूजा करते हैं तथा उनके साथ चल रहे ग्वालबाल उनके यश का गान करते हैं। उनकी माला गौवों के खुरों से उठी धूल से धूसरित है और थकान के कारण बढ़ी हुई उनकी सुन्दरता हरएक के नेत्रों के लिए आह्लादयुक्त उत्सव प्रस्तुत करने वाली है। अपने मित्रों की इच्छाएँ पूरी करने के लिए उत्सुक, कृष्ण माता यशोदा की कोख से उदित चन्द्रमा हैं।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार यहाँ पर गोपियाँ वृन्दावन के घरों की अटारियों पर चढ़ गईं जिससे वे कृष्ण को घर वापस आते ही शीघ्रातिशीघ्र देख सकें। माता यशोदा अपने पुत्र की वापसी के लिए

अत्यन्त उत्सुक थीं अतः उन्होंने सबसे लम्बी सुन्दर युवा गोपी को बुलाकर ऊपर जाने के लिए कहा जिससे वह देख सके कि वे कब पहुँचते हैं। स्पष्ट है कि कृष्ण को घर आते रास्ते में कुछ विलम्ब हो गया था क्योंकि रास्ते में खड़े बड़े बड़े देवता उनके चरणकमलों की पूजा करने लगे थे।

मदविघूर्णितलोचन ईषन्-
मानदः स्वसुहृदां वनमाली ।
बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं
मण्डयन्कनककुण्डललक्ष्म्या ॥ २४॥
यदुपतिर्द्विरदराजविहारो
यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते ।
मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं
मोचयन्व्रजगवां दिनतापम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

मद—नशे से; विघूर्णित—घूमती हुई; लोचनः—आँखें; ईषत्—कुछ कुछ; मान-दः—मान प्रदर्शित करते; स्व-सुहृदाम्—अपने शुभचिन्तक मित्रों को; वन-माली—वन के पुष्पों की माला पहने; बदर—बेर फल की तरह; पाण्डु—श्वेताभ; वदनः—मुख; मृदु—कोमल; गण्डम्—गाल; मण्डयन्—अलंकृत किये हुए; कनक—सुनहरे; कुण्डल—कान के आभूषणों की; लक्ष्म्या—शोभा से; यदु-पतिः—यदुवंश के स्वामी; द्विरद-राज—शाही हाथी की तरह; विहारः—खेलकूद; यामिनी-पतिः—रात्रि का पति (चन्द्रमा); इव—सदृश; एषः—वह; दिन-अन्ते—दिन बीतने पर, संध्या-समय; मुदित—प्रसन्न; वक्त्रः—मुख; उपयाति—आ रहा है; दुरन्तम्—दुर्लंघ्य; मोचयन्—भगाते हुए; व्रज—व्रज की; गवाम्—गौवों के या जिनपर कृपा की जानी है उनके; दिन—दिन के; तापम्—पीड़ादायी धूप।

जब श्रीकृष्ण अपने शुभचिन्तक सखाओं को आदरपूर्वक शुभकामनाएँ देते हैं, तो उनकी आँखें थोड़ी-सी इस तरह घूमती हैं जैसे नशे में हों। वे फूलों की माला पहने हैं और उनके कोमल गालों की शोभा उनके सुनहरे कुण्डलों की चमक से तथा बदर बेर के रंग वाले उनके मुख की श्वेतता से बढ़ जाती है। रात्रि के स्वामी चन्द्रमा के सदृश अपने प्रसन्न मुख वाले यदुपति राजसी हाथी की अदा से चल रहे हैं। इस तरह वे व्रज की गौवों को दिन-भर की गर्मी से छुटकारा दिलाते हुए संध्या-समय घर लौटते हैं।

तात्पर्य : *गवाम्* शब्द संस्कृत के गो शब्द से व्युत्पन्न है, जिसके दो अर्थ हैं—''गाय'' तथा ''इन्द्रियाँ।'' इस तरह श्रीकृष्ण ने व्रज लौटकर वृन्दावन के वासियों को दिन-भर अपने से विलग रहने से उत्पन्न उनकी आँखों तथा अन्य इन्द्रियों की पीड़ा को हर लिया।

श्रीशुक उवाच

एवं व्रजस्त्रियो राजन्कृष्णलीलानुगायतीः ।
रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह; व्रज-स्त्रियः—व्रज की स्त्रियाँ; राजन्—हे राजन्; कृष्ण-लीला—कृष्ण की लीलाओं के विषय में; अनुगायतीः—निरन्तर कीर्तन करती; रेमिरे—आनन्द लूटतीं; अहःसु—दिन के समय; तत्-चित्ताः—उनमें लीन इनके हृदय; तत्-मनस्काः—उनके मन; महा—महान; उदयाः—उत्सव का-सा अनुभव करते।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, इस तरह वृन्दावन की स्त्रियाँ दिन के समय कृष्ण की लीलाओं का निरन्तर गान करते हुए आनन्द लूटतीं और उन सबों के मन तथा हृदय उन्हीं में लीन रहकर अपार उत्सवभाव से भरे रहते।

तात्पर्य : इस श्लोक से निश्चय ही पुष्टि हो जाती है कि भग्न-हृदया गोपियों की तथाकथित पीड़ा वास्तव में महान् आध्यात्मिक आनन्द है। भौतिक स्तर पर पीड़ा तो पीड़ा अर्थात् एक कालावधि है किन्तु आध्यात्मिक स्तर पर तथाकथित पीड़ा आध्यात्मिक आनन्द का एक भिन्न प्रकार मात्र है। पश्चिमी देशों में लोग विभिन्न स्वादों वाली आइसक्रीम मिलाकर स्वाद के अद्भुत मिश्रण उत्पन्न करने में मजा लेते हैं। इसी तरह आध्यात्मिक स्तर पर श्रीकृष्ण तथा उनके भक्तगण आध्यात्मिक आनन्द के स्वादों को कुशलतापूर्वक मिश्रित करते हैं। इस तरह प्रत्येक दिवस गोपियों के लिए एक महान् उत्सव बन जाता था।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत "कृष्ण के वनविहार के समय गोपियों द्वारा कृष्ण का गायन" नामक पैंतीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter छत्तीस

वृषभासुर अरिष्ट का वध

इस अध्याय में बतलाया गया है कि कृष्ण ने किस तरह अरिष्टासुर का वध किया और जब कंस को नारद से यह ज्ञात हुआ कि कृष्ण तथा बलराम वसुदेव के पुत्र हैं, तो उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई।

अरिष्टासुर कृष्ण तथा बलराम दोनों को मार डालना चाहता था अतः उसने पैने सींगो वाले विशाल बैल का रूप धारण किया। जब अरिष्टासुर ग्वालों के ग्राम के निकट आया तो सारे लोग भयभीत हो उठे किन्तु भगवान् ने उन्हें शान्त किया और जब बैल ने उन पर आक्रमण किया, तो उन्होंने उसके दोनों

सींग पकड़ लिए और उसे छह गज की दूरी पर फेंक दिया। यद्यपि वह शक्तिहीन हो चुका था किन्तु वह पुनः कृष्ण पर वार करना चाहता था। इस तरह, पसीने से भीगते हुए, उसने भगवान् पर एक बार फिर वार किया। इस बार कृष्ण ने उसके सींगों को दबोच लिया, उसे भूमि पर पटक दिया और गीले कपड़ों की लादी के समान उसे पछाड़ दिया। उस असुर ने रक्त वमन किया और अपने प्राण त्याग दिये। तत्पश्चात् देवताओं तथा ग्वालों से सम्मानित होकर कृष्ण तथा बलराम अपने गाँव लौट आये।

कुछ काल अनन्तर देवर्षि नारदमुनि राजा कंस से भेंट करने गये। उन्होंने राजा को बतलाया कि कृष्ण तथा बलराम वास्तव में नन्द के नहीं अपितु वसुदेव के पुत्र थे। वसुदेव ने तो कंस के भय से इन दोनों बालकों को नन्द की देखरेख में रख दिया था। यही नहीं, नारद ने कहा कि कंस की मृत्यु उन्हीं के हाथों होगी।

जब कंस ने यह सुना तो वह भय तथा क्रोध से काँपने लगा और अत्यधिक क्षुब्ध होकर सोचने लगा कि कृष्ण तथा बलराम को किस तरह नष्ट किया जाय। उसने चाणूर तथा मुष्टिक नामक असुरों को बुलाया और आदेश दिया कि मल्लयुद्ध में वे उन दोनों भाइयों का वध कर दें। तत्पश्चात् अपने कर्तव्यों को पूरा करने में दक्ष अक्रूर का हाथ पकड़ कर कंस ने उसे व्रज जाकर उन दोनों बालकों को मथुरा लाने के लिए राजी किया। अक्रूर ने कंस का आदेश शिरोधार्य किया और अपने घर चला गया।

श्री बादरायणिरुवाच
अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ।
महीम्महाककुत्कायः कम्पयन्खुरविक्षताम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री बादरायणिः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—आगे; तर्हि—तब; आगतः—आया; गोष्ठम्—ग्वालों के गाँव में; अरिष्टः—अरिष्ट नामक; वृषभ-असुरः—वृषभासुर; महीम्—पृथ्वी को; महा—विशाल; ककुत्—डिल्ला वाला; कायः—शरीर; कम्पयन्—कँपाते हुए; खुर—अपने खुरों से; विक्षताम्—क्षत-विक्षत।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : तत्पश्चात् अरिष्टासुर गोपों के गाँव में आया। वह बड़े डिल्ले वाले बैल के रूप में प्रकट होकर अपने खुरों से पृथ्वी को क्षत-विक्षत करके उसे कँपाने लगा।

तात्पर्य : *श्री विष्णु पुराण* के अनुसार अरिष्टासुर संध्या-समय कृष्ण के गाँव में प्रविष्ट हुआ जब वे गोपियों के साथ नाचने की तैयारी कर रहे थे।

प्रोदोषार्धे कदाचित्तु रासासक्ते जनार्दने।

त्रासयन् समदो गोष्ठमरिष्टः समुपागतः ॥

"एक बार धुँधलके के समय जब जनार्दन रासनृत्य करने के लिए उत्सुक थे तो अरिष्टासुर उन्मत्त होकर ग्वालों के ग्राम में घुसकर उन्हें डराने लगा।"

रम्भमाणः खरतरं पदा च विलिखन्महीम् ।
उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ।
किञ्चित्किञ्चिच्छकृन्मुञ्चन्मूत्रयन्स्तब्धलोचनः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

रम्भमाणः—रँभाते हुए; खर-तरम्—खूब तेजी से; पदा—अपने खुरों से; च—तथा; विलिखन्—खुरचते हुए; महीम्—पृथ्वी को; उद्यम्य—ऊपर उठाकर; पुच्छम्—अपनी पूँछ; वप्राणि—बाँधों को; विषाण—अपने सींगों की; अग्रेण—नोकों से; च—तथा; उद्धरन्—उठाकर चीरते हुए; किञ्चित् किञ्चित्—कुछ कुछ; शकृत्—मल; मुञ्चन्—त्याग करते हुए; मूत्रयन्—पेशाब करते हुए; स्तब्ध—चमकदार; लोचनः—आँखें।

अरिष्टासुर ने जोर से रँभाते हुए धरती को खुरों से कुरेदा। वह अपनी पूँछ उठाये और अपनी आँखें चमकाता अपने सींगों के नौकों से बाँधों को चीरने लगा और बीच बीच में थोड़ा थोड़ा मल-मूत्र भी छोड़ता जाता था।

यस्य निर्ह्रादितेनाङ्ग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ।
पतन्त्यकालतो गर्भाः स्रवन्ति स्म भयेन वै ॥ ३ ॥
निर्विशन्ति घना यस्य ककुद्यचलशङ्कया ।
तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसकी; निर्ह्रादितेन—गर्जन से; अङ्ग—हे राजा (परीक्षित); निष्ठुरेण—निष्ठुर, निर्मोही; गवाम्—गौवों के; नृणाम्—मनुष्यों के; पतन्ति—गिर जाते हैं; अकालतः—असमय; गर्भाः—गर्भ; स्रवन्ति स्म—गर्भपात हो जाता है; भयेन—भय से; वै—निस्सन्देह; निर्विशन्ति—प्रवेश करते हैं; घनाः—बादल; यस्य—जिसके; ककुदि—डिल्ले पर; अचल—पर्वत के रूप में; शङ्कया—भ्रम से; तम्—उसको; तीक्ष्ण—तेज; शृङ्गम्—सींग; उद्वीक्ष्य—देखकर; गोप्यः—गोपियाँ; गोपाः—तथा ग्वाले; च—तथा; तत्रसुः—भयभीत हो उठे।

हे राजन्, तीखे सींगो वाले अरिष्टासुर के डिल्ले को पर्वत समझकर बादल उसके आसपास मँडराने लगे, अतः जब ग्वालों तथा गोपियों ने उस असुर को देखा तो वे भयभीत हो उठे। दरअसल उसकी गर्जना की तीव्र गूँज इतनी भयावह थी कि गर्भिणी गौवों तथा स्त्रियों के गर्भपात हो गये।

तात्पर्य : वैदिक वाङ्मय में गर्भपात की कई श्रेणियाँ मान्य हैं—*आचतुर्थाद् भवेत् स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः/ अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यात्*—"चौथे मास तक समय से पूर्व शिशु-जन्म *स्राव* कहलाता है,

पाँचवें तथा छठे मास में *पात* तथा इसके बाद *प्रसूति* (जन्म) कहलाता है।''

पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन्सन्त्यज्य गोकुलम् ।
कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः ॥ ५॥

शब्दार्थ

पशवः—घरेलू पशु; दुद्रुवुः—भाग गये; भीताः—डर के मारे; राजन्—हे राजन्; सन्त्यज्य—छोड़कर; गो-कुलम्—चरागाह; कृष्ण कृष्ण इति—''कृष्ण कृष्ण'' इस तरह; ते—वे (वृन्दावनवासी); सर्वे—सभी; गोविन्दम्—गोविन्द की; शरणम्—शरण में; ययुः—गये।

हे राजन्, घरेलू पशु भय के मारे चरागाह से भाग गये और सारे निवासी ''कृष्ण कृष्ण'' चिल्लाते हुए शरण के लिए भगवान् गोविन्द के पास दौड़े।

भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् ।
मा भैष्टेति गिराश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ॥ ६॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान् ने; अपि—निस्सन्देह; तत्—उसे; वीक्ष्य—देखकर; गो-कुलम्—गोकुल को; भय—भय से; विद्रुतम्—भगाया हुआ; मा भैष्ट—डरना मत; इति—इस प्रकार; गिरा—शब्दों से; आश्वास्य—आश्वासन देकर; वृष-असुरम्—वृषासुर को; उपाह्वयत्—ललकारा।

जब भगवान् ने देखा कि सारा गोकुल भय के मारे भगा जा रहा है, तो उन्होंने यह कहकर उन्हें आश्वासन दिया, ''डरना मत।'' तत्पश्चात् उन्होंने वृषासुर को इस प्रकार ललकारा।

गोपालैः पशुभिर्मन्द त्रासितैः किमसत्तम ।
मयि शास्तरि दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

गोपालैः—ग्वालों के साथ; पशुभिः—तथा उनके पशुओं के साथ; मन्द—हे मूर्ख; त्रासितैः—डरे हुए; किम्—क्या प्रयोजन; असत्तम—रे सर्वाधिक दुष्ट; मयि—मेरे रहते; शास्तरि—दण्ड देने वाले के रूप में; दुष्टानाम्—दुष्टों का; त्वत्-विधानाम्—तुम जैसे; दुरात्मनाम्—दुरात्माओं का।

रे मूर्ख! रे दुष्ट! तुम क्या सोचकर ग्वालों को तथा उनके पशुओं को डरा रहे हो जबकि मैं तुम जैसे दुरात्माओं को दण्ड देने के लिए यहाँ हूँ।

इत्यास्फोत्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ।
सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ॥ ८॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार बोलते हुए; आस्फोत्य—अपनी भुजाएँ ठोंकते; अच्युतः—अच्युत भगवान्; अरिष्टम्—अरिष्टासुर को; तल—अपनी हथेली की ताल से; शब्देन—शब्द के साथ; कोपयन्—क्रोध करते हुए; सख्युः—मित्र के; अंसे—कन्धे पर; भुज—अपनी बाँह; आभोगम्—साँप के शरीर (जैसी); प्रसार्य—फैलाकर; अवस्थितः—खड़े थे; हरिः—हरि भगवान्।

ये शब्द कहकर अच्युत भगवान् हरि ने अपनी हथेलियों से अपनी बाँहें ठोंकीं जिससे जोर की ध्वनि से अरिष्ट और अधिक क्रुद्ध हो उठा। तब भगवान् अपनी बलशाली सर्प जैसी बाँह अपने एक सखा के कन्धे पर डालकर असुर की ओर मुँह करके खड़े हो गये।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण उस अज्ञानी असुर के प्रति उपेक्षा प्रकट करने लगे।

सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् ।
उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; अपि—निस्सन्देह; एवम्—इस प्रकार; कोपितः—क्रुद्ध; अरिष्टः—अरिष्ट; खुरेण—अपने खुरों से; अवनिम्—पृथ्वी को; उल्लिखन्—कुरेदते हुए; उद्यत्—उठी हुई; पुच्छ—अपनी पूँछ के भीतर; भ्रमन्—घूमते हुए; मेघः—बादल; क्रुद्धः—तमतमाया; कृष्णम्—कृष्ण की ओर; उपाद्रवत्—आक्रमण किया, झपटा।

इस तरह उकसाने पर अरिष्ट ने अपने एक खुर से धरती कुरेदी और तब वह क्रोध के साथ कृष्ण पर झपटा। ऊपर उठी हुई उसकी पूँछ के चारों ओर बादल मँडरा रहे थे।

अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् ।
कटाक्षिप्याद्रवत्तूर्णमिन्द्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अग्र—आगे; न्यस्त—झुकाते हुए; विषाण—अपने सींगों की; अग्रः—नोक; स्तब्ध—टकटकी लगाये; असृक्—लाल, रक्त जैसी; लोचनः—आँखें; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण को; कट-आक्षिप्य—कटाक्ष करते हुए; अद्रवत्—दौड़ा; तूर्णम्—पूरे वेग से; इन्द्र-मुक्तः—इन्द्र द्वारा छोड़ा गया; अशनिः—वज्र; यथा—सदृश।

अपने सींगों के अग्रभाग सामने की ओर सीधे किये हुए तथा अपनी रक्तिम आँखों की बगल से तिरछे घूर कर भय दिखाकर अरिष्ट पूरे वेग से कृष्ण की ओर झपटा मानो इन्द्र द्वारा चलाया गया वज्र हो।

गृहीत्वा शृङ्गयोस्तं वा अष्टादश पदानि सः ।
प्रत्यपोवाह भगवान्गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

गृहीत्वा—पकड़कर; शृङ्गयोः—दोनों सींगों से; तम्—उसको; वै—निस्सन्देह; अष्टादश—अठारह; पदानि—पग; सः—उस; प्रत्यपोवाह—पीछे फेंका; भगवान्—भगवान् ने; गजः—हाथी; प्रति-गजम्—अपने प्रतिद्वन्द्वी हाथी को; यथा—जिस तरह।

भगवान् कृष्ण ने अरिष्टासुर को सींगों से पकड़ लिया और उसे अठारह पग पीछे फेंक दिया

जिस तरह एक हाथी अपने प्रतिद्वन्दी हाथी से लड़ते समय करता है।

सोऽपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरम् ।
आपतत्स्विन्नसर्वाङ्गो निःश्वसन्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; अपविद्धः—पीछे फेंका गया; भगवता—भगवान् द्वारा; पुनः—फिर; उत्थाय—उठकर; सत्वरम्—तुरन्त; आपतत्—आक्रमण किया; स्विन्न—पसीने से तर; सर्व—सारे; अङ्गः—अंग; निःश्वसन्—हाँफते हुए; क्रोध—क्रोध से; मूर्च्छितः—बेहोश, मूर्च्छित।

इस प्रकार भगवान् द्वारा पीछे धकेले जाने पर, वृषासुर फिर से उठ खड़ा हुआ और हाँफता हुआ तथा सारे शरीर पर आए पसीने से तर अचेत-क्रोध में आकर उन पर झपटा।

तमापतन्तं स निगृह्य शृङ्गयोः
पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले ।
निष्पीडयामास यथार्द्रमम्बरं
कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; आपतन्तम्—आक्रमण करते; सः—उसने; निगृह्य—पकड़कर; शृङ्गयोः—दोनों सींगों से; पदा—अपने पाँव से; समाक्रम्य—कुचलते हुए; निपात्य—उसे गिराकर; भू-तले—भूमि पर; निष्पीडयाम् आस—उसे पीटा; यथा—जिस तरह; अर्द्रम्—गीले; अम्बरम्—कपड़े को; कृत्वा—करके; विषाणेन—उसकी सींग से; जघान—प्रहार किया; सः—वह; अपतत्—गिर पड़ा।

ज्योंही अरिष्ट ने आक्रमण किया, भगवान् कृष्ण ने उसके सींग पकड़ लिये और अपने पाँव से उसे धरती पर गिरा दिया। तब भगवान् ने उसे ऐसा लताड़ा मानो कोई गीला वस्त्र हो और अन्त में उन्होंने उसका एक सींग उखाड़कर उसीसे उसकी तब तक पिटाई की जब तक वह दण्ड के समान धराशायी नहीं हो गया।

असृग्वमन्मूत्रशकृत्समुत्सृजन्
क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः ।
जगाम कृच्छ्रं निरृतेरथ क्षयं
पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः ॥ १४॥

शब्दार्थ

असृक्—रक्त; वमन्—उगलता; मूत्र—पेशाब; शकृत्—तथा मल; समुत्सृजन्—बुरी तरह से निकालता हुआ; क्षिपन्—फेंकते हुए; च—तथा; पादान्—अपने पाँवों को; अनवस्थित—अस्थिर; ईक्षणः—आँखें; जगाम—चला गया; कृच्छ्रम्—पीड़ा के साथ; निरृतेः—मृत्यु के; अथ—तब; क्षयम्—धाम को; पुष्पैः—फूलों से; किरन्तः—बिखेरते हुए; हरिम्—भगवान् कृष्ण पर; ईडिरे—पूजा की; सुराः—देवताओं ने।

रक्त वमन करते तथा बुरी तरह से मल-मूत्र त्याग करते, अपने पाँव पटकते तथा अपनी आँखें इधर-उधर पलटते, अरिष्टासुर बड़ी ही पीड़ा के साथ मृत्यु के धाम चला गया। देवताओं ने कृष्ण पर फूल बरसाकर उनका सम्मान किया।

एवं कुकुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः द्विजातिभिः ।
विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; कुकुद्मिनम्—डिल्ले वाले (वृषासुर) को; हत्वा—मारकर; स्तूयमानः—प्रशंसित हुए; द्विजातिभिः—ब्राह्मणों द्वारा; विवेश—प्रविष्ट हुआ; गोष्ठम्—ग्वालों के गाँव में; स-बलः—बलराम सहित; गोपीनाम्—गोपियों के; नयन—आँखों के लिए; उत्सवः—उत्सव स्वरूप।

इस तरह अरिष्ट नामक वृषासुर का वध करने के बाद, गोपियों के नेत्रों के लिए उत्सव स्वरूप कृष्ण, बलराम सहित ग्वालों के ग्राम में प्रविष्ट हुए।

तात्पर्य : इस श्लोक में कृष्ण के भीतर आध्यात्मिक गुणों में जो सूक्ष्म विरोधाभास है उसका उदाहरण दिया गया है। इस चार पंक्तियों वाले श्लोक में एकही साथ हम जान पाते हैं कि भगवान् कृष्ण ने बलशाली दुष्ट असुर का वध किया और उनके कैशोर सौन्दर्य से उनकी सखियों को परम आनन्द मिला। भगवान् कृष्ण वज्र की तरह कठोर हैं और गुलाब के फूल की तरह कोमल जो उनके प्रति हमारे मनोभावों पर निर्भर करता है। अरिष्टासुर कृष्ण तथा उनके सारे साथियों को मारना चाहता था अतः भगवान् ने उसे गीले कपड़े की भाँति पछाड़ कर मार डाला। किन्तु गोपियाँ कृष्ण से प्रेम करती थीं अतः उन्होंने उनसे माधुर्य प्रेम का युवा बालक की तरह आदान-प्रदान किया।

अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
कंसायाथाह भगवान्नारदो देवदर्शनः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

अरिष्टे—अरिष्ट के; निहते—मारे जाने पर; दैत्ये—असुर; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; अद्भुत-कर्मणा—अद्भुत कर्मों वाले; कंसाय—कंस से; अथ—तब; आह—कहा; भगवान्—शक्तिशाली मुनि; नारदः—नारद ने; देव-दर्शनः—जिनकी दृष्टि दैवतुल्य है।

अद्भुत काम करने वाले श्रीकृष्ण द्वारा अरिष्टासुर का वध हो जाने पर नारदमुनि राजा कंस से बतलाने गये। दैवीदृष्टि वाले इस शक्तिशाली मुनि ने राजा से इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : *देवदर्शन* पद को कई प्रकारों से समझा जा सकता है, जो सभी इस कथन के संदर्भ तथा

तात्पर्य से मेल रखते हैं। *देव* का अर्थ है ''देवता'' और *दर्शन:* का अर्थ है ''देखना'' या ''महान् व्यक्तित्व का दर्शन।'' इस तरह *देवदर्शन* जो कि नारदमुनि का नाम है, यह सूचित करता है कि नारद को भगवान् का दर्शन करने की सिद्धि प्राप्त थी या कि नारद का दर्शन करना ईश्वरदर्शन के तुल्य है क्योंकि नारद भगवान् के शुद्ध प्रतिनिधि हैं तथा नारद का दर्शन देवताओं के दर्शन के समान है जिन्हें देव भी कहा जाता है। एक ही शब्द देवदर्शन के इतने अर्थ श्रीमद्भागवत की भाषा-समृद्धि को दर्शाने वाले हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने पुराणों से २० श्लोक उद्धृत किये हैं जिनमें कृष्ण द्वारा अरिष्टासुर वध किये जाने के बाद राधा तथा कृष्ण के मध्य हुई परिहास-वार्ता का वर्णन है। इस वार्ता में जिसे आचार्य ने बड़ी कृपापूर्वक उद्धृत किया है, राधाकुण्ड तथा श्यामकुण्ड की उत्पत्ति के विषय में वर्णन मिलता है। ये श्लोक निम्नवत् हैं—

मास्मान् स्पृशाद्य वृषभार्दन हन्त मुग्धा

घोरोऽसुरोऽयम् अयि कृष्ण तदप्ययं गौ:।

वृतो यथा द्विज इहास्त्ययि निष्कृति: किं

शुद्ध्येद्भवांस्त्रिभुवनस्थिततीर्थकृच्छ्रात् ॥

''भोली-भाली युवा गोपियों ने कहा : हे वृष (बैल) के हन्ता कृष्ण! अब तुम हमें मत छुओ। ओह, यद्यपि अरिष्ट विकराल असुर था, किन्तु था तो बैल ही। अत: तुम्हें उसी तरह प्रायश्चित्त करना होगा जिस तरह वृत्रासुर को मारने के बाद इन्द्र ने किया था। किन्तु तुम तीनों लोकों में हर तीर्थस्थल में जाने का कष्ट उठाए बिना अपने को किस तरह शुद्ध कर सकोगे?''

किं पर्यटामि भुवनान्यधुनैव सर्वा

आनीय तीर्थविततीः करवाणि तासु।

स्नानं विलोकयत तावदिदं मुकुन्द:

प्रोच्यैव तत्र कृतवान् बत पार्ष्णिघातम्॥

''[कृष्ण ने उत्तर दिया] ''मैं ब्रह्माण्ड-भर में क्यों घूमूँगा? मैं असंख्य तीर्थस्थलों को यहीं ले आऊँगा और उनमें स्नान कर लूँगा। देखो न!'' यह कहकर भगवान् मुकुन्द ने अपनी एडी से भूमि पर

प्रहार किया।

पातालतो जलमिदं किल भोगवत्या

आयातमत्र निखिला अपि तीर्थसङ्घाः।

आगच्छतेति भगवद्वचसा त एत्य

तत्रैव रेजुरथ कृष्ण उवाच गोपीः॥

''[तब उन्होंने कहा] ''यह रहा भोगवती नदी का जल जो पाताल खण्ड से आ रहा है। और अब, हे तीर्थस्थानो! आप सब यहीं आ जाइये।'' जब भगवान् ने ये शब्द कहे तो सारे तीर्थ वहाँ पहुँच गये और उनके समक्ष प्रकट हुए। तब कृष्ण ने गोपियों को इस प्रकार सम्बोधित किया।''

तीर्थानि पश्यत हरेर्वचसा तवैवं

नैव प्रतीम इति ता अथ तीर्थवर्याः।

प्रोचुः कृताञ्जलिपुटा लवणाब्धिरस्मि

क्षीराब्धिरस्मि शृणुतामरदीर्घिकास्मि॥

''समस्त तीर्थों को देखो न!''

किन्तु गोपियों ने उत्तर दिया, ''तुम जैसा कह रहे हो वैसा हम नहीं देख पा रहीं''

''तब उन श्रेष्ठ तीर्थों ने हाथ जोड़कर कहा:

''मैं लवण सागर हूँ।''

''मैं क्षीर सागर हूँ।''

''मैं अमर-दीर्घिका हूँ।''

शोणोऽपि सिन्धुरहमस्मि भवामि ताम्र-

पर्णी च पुष्करमहं च सरस्वती च।

गोदावरी रविसुता सरयुः प्रयागो

रेवास्मि पश्यत जलं कुरुत प्रतीतम्॥

''मैं शोण नदी हूँ'' ''मैं सिन्धु नदी हूँ'' ''मैं ताम्रपर्णी हूँ'' ''मैं पुष्कर तीर्थ हूँ'' ''मैं सरस्वती नदी हूँ'' ''और हम हैं गोदावरी, यमुना तथा रेवा नदियाँ और प्रयाग स्थित नदियों का संगम। जरा

हमारे जल को तो देखो।''

स्नात्वा ततो हरिरतिप्रजगल्भ एव

शुद्धः सरोऽप्यकरवं स्थितसर्वतीर्थम्।

युष्माभिरात्मजनुषीह कृतो न धर्मः

कोऽपि क्षितावथ सखीर्निजगाद राधा॥

''स्नान द्वारा शुद्ध हो लेने के बाद भगवान् हरि एकदम अक्खड़ बन गये और उन्होंने कहा, ''मैंने विभिन्न तीर्थों वाले एक सरोवर का निर्माण कर दिया किन्तु तुम गोपियों ने इस पृथ्वी पर ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए एक भी धार्मिक कृत्य कभी नहीं किया।'' तब श्रीमती राधारानी ने अपनी सखियों को इस तरह से सम्बोधित किया।''

कार्यं मयाप्यतिमनोहरकुण्डमेकं

तस्माद् यतध्वमिति तद्वचनेन ताभिः।

श्रीकृष्णकुण्डतटपश्चिमदिश्यमन्दो

गर्तः कृतो वृषभदैत्यखुरै व्यलोकि॥

''मैं इससे भी अधिक सुन्दर सरोवर बना डालूँगी। अतः तुम लोग चलकर कार्य शुरू करो।'' इन शब्दों को सुनकर गोपियों ने देखा कि अरिष्टासुर के खुरों से श्रीकृष्णकुण्ड के पश्चिम में एक उथला गड्ढा बन गया था।''

तत्रार्द्रमृन्मृदुलगोलततीः प्रतिस्व–

हस्तोद्धृता अनतिदूरगता विधाय।

दिव्यं सरः प्रकटितं घटिकाद्वयेन

ताभिर्विलोक्य सरसं स्मरते स्म कृष्णः॥

''वहीं पास में समस्त गोपियों ने अपने हाथों से मुलायम दलदल भूमि को कुरेदना शुरू कर दिया और इस तरह एक घंटे के थोड़े से समय में एक दिव्य कुण्ड प्रकट हो गया। उनके द्वारा बनाये गये इस सरोवर को देखकर कृष्ण चकित रह गए।''

प्रोचे च तीर्थसलिलै परिपूरयैतन्

मत्कुण्डतः सरसिजाक्षि सहालिभिस्त्वम्।

राधा तदा न न न नेति जगाद् यस्मात्

त्वत्कुण्डनीरम् उरुगोवधपातकाक्तम्॥

''उन्होंने कहा, ''हे कमल-नेत्रों वाली, आगे बढ़ो! तुम तथा तुम्हारी सखियाँ इस तालाब को मेरे तालाब के जल से भरो।''

किन्तु राधा ने उत्तर दिया, ''ना, ना, ना, ना! यह असम्भव है क्योंकि तुम्हारे तालाब का जल गो-वध के भीषण पाप से दूषित है।''

आहृत्य पुण्यसलिलं शतकोटिकुम्भै

सख्यर्बुदेन सह मानसजाह्नवीतः।

एतत् सरः स्वमधुना परिपूरयामि

तेनैव कीर्तिमतुलां तनवानि लोके॥

''मैं अपनी असंख्य गोपी सहेलियों से करोड़ों घड़ों में भराकर मानसगंगा का शुद्ध जल यहाँ मँगवाऊँगी। इस तरह मैं अपने जल से इस तालाब को भरूँगी और इसे सम्पूर्ण जगत में अप्रतिम प्रसिद्ध बना दूँगी।''

कृष्णेङ्गितेन सहसैत्य समस्त तीर्थ

सख्यस्तदीयसरसो धृतदिव्यमूर्तिः।

तुष्टाव तत्र वृषभानुसुतां प्रणम्य

भक्त्या कृताञ्जलिपुटः स्रवदस्रधारः॥

''तब कृष्ण ने उस दैवी पुरुष को इंगित किया जो समस्त तीर्थों का अन्तरंगी था। वह व्यक्ति सहसा कृष्णकुण्ड से उठ खड़ा हुआ और उसने श्रीवृषभानु की पुत्री (राधारानी) को नमस्कार किया। फिर दोनों हाथ जोड़े तथा आँखों से अश्रु ढुलकाते हुए उसने स्तुति करनी प्रारम्भ की।''

देवि त्वदीयमहिमानमवैति सर्व

शास्त्रार्थविन्न च विधिर्न हरो न लक्ष्मीः।

किन्त्वेक एव पुरुषार्थशिरोमणिस्त्वत्-

प्रस्वेदमार्जनपरः स्वयमेव कृष्णः ॥

''हे देवि! समस्त शास्त्रों के वेत्ता ब्रह्मा तक आपकी कीर्ति को नहीं समझ पाते, न ही शिवजी या लक्ष्मी। समस्त मानवीय उद्योग के चरमलक्ष्य केवल कृष्ण ही उसे समझ सकते हैं और जब आप थककर अपने पसीने को धो देती हैं, तो वे अपने को कृतकृत्य मानते हैं।''

यश्चारुयावकरसेन भवत्पदाब्जम्

आरज्य नूपुरमहो निदधाति नित्यम्।

प्राप्य त्वदीयनयनाब्जतटप्रसादं

स्वं मन्यते परमधन्यतमं प्रहृष्यन्॥

तस्याज्ञयैव सहसा वयमाजगाम

तत्पार्ष्णिघाटकृतकुण्डवरे वसामः।

त्वं चेत्प्रसीदसि करोषि कृपाकटाक्षं

तर्ह्येव तर्षविटपी फलितो भवेन्नः॥

''वे आपके चरणकमलों को सदैव अमृतमय चारु तथा यावक से लेपित करते रहते हैं और उन्हें घुंघरुओं से सजाते हैं। वे आपके चरणकमलों की अँगुलियों के अग्रभागों को तुष्ट करके हर्ष अनुभव करते हैं और अपने को परम धन्य मानते हैं। उन्हीं की आज्ञा से हम इस सर्वोत्तम कुण्ड में रहने तुरन्त आ गए हैं जिसे उन्होंने अपनी एडी के एक प्रहार से उत्पन्न कर दिया था। किन्तु यदि आप अब हम पर प्रसन्न हो जाँय और अपनी कृपा दृष्टि डालें तो हमारा इच्छा रूपी वृक्ष फलित हो सकता है।''

श्रुत्वा स्तुतिं निखिलतीर्थगणस्य तुष्टा

प्राह स्म तर्षमयि वेदयतेति राधा।

याम त्वदीयसरसीं सफला भवाम

इत्येव नो वर इति प्रकटं तदोचुः॥

''समस्त तीर्थों की सभा के प्रतिनिधि की यह स्तुति सुनकर श्रीराधा प्रसन्न हो उठीं और बोलीं, ''तुम कृपया अपनी इच्छा कह सुनाओ।''

तब उन्होंने स्पष्ट कहा, ''हमारा जीवन तभी धन्य होगा जब हम आपके कुण्ड में आ सकें यही वर

हम चाहते हैं।''

आगच्छतेति वृषभानुसुता स्मितास्या

प्रोवाच कान्तवदनाब्जधृताक्षिकोणा।

सख्योऽपि तत्र कृतसम्मतय: सुखाब्धौ

मग्ना विरेजुरखिला स्थिरजङ्गमाश्च॥

''वृषभानु सुता ने अपने प्रियतम को अपनी आँखों की कोरों से देखते हुए मुसकराकर उत्तर दिया, ''कृपया आप आयें।'' उनकी सारी सखियाँ उनके निर्णय को मान गईं और आनन्दमग्न हो गईं। निस्संदेह समस्त चर तथा अचर प्राणियों का सौन्दर्य बढ़ गया।''

प्राप्य प्रसादमथ ते वृषभानुजाया:

श्रीकृष्णकुण्डगततीर्थवरा: प्रसह्य।

भित्त्वेव भित्तिम् अतिवेगत एव राधा-

कुण्डं व्यधु: स्वसलिलै परिपूर्णमेव॥

''श्रीमती राधारानी की कृपा का प्रसाद पाकर श्रीकृष्णकुण्ड में स्थित पवित्र नदियों तथा सरोवरों ने सीमा की दीवारें बलपूर्वक तोड़ दीं और तेजी से अपने जल से राधाकुण्ड को लबालब भर दिया।''

प्रोचे हरि: प्रियतमे तव कुण्डमेतन्

मत्कुण्डतोऽपि महिमाधिकमस्तु लोके।

अत्रैव मे सलिल केलिरिहैव नित्यं

स्नानं यथा त्वमसि तद्वदिमं सरो मे॥

''तब भगवान् हरि बोले, ''हे राधा! तुम्हारा यह कुण्ड सारे विश्व में मेरे कुण्ड से भी अधिक विख्यात हो। मैं यहाँ पर नित्य ही स्नान करने और जल-लीलाएँ करने आया करूँगा। निस्सन्देह, यह सरोवर तुम्हारे समान ही मुझे प्रिय है।''

राधाब्रवीदहमपि स्वसखीभिरेत्य

स्नास्याम्यरिष्टशतमर्दनमस्तु तस्य।

योऽरिष्टमर्दनसरस्युरुभक्तिरत्र

स्नायाद् वसेन्मम स एव महाप्रियोऽस्तु॥

''राधा ने उत्तर दिया, ''मैं भी आपके कुंड में स्नान करने आया करूँगी भले ही आप यहाँ पर सैकड़ों अरिष्टासुरों का वध क्यों न करें। भविष्य में अरिष्टासुर को दंड दिये गये स्थान पर स्थित इस सरोवर में जिस किसी को उत्कट भक्ति होगी और जो भी इसमें स्नान करेगा या इसके पास निवास करेगा वह निश्चय ही मुझे अत्यन्त प्रिय होगा।''

रासोत्सवं प्रकुरुते स्म च तत्र रात्रौ

कृष्णाम्बुदः कृतमहारसहर्षवर्षः।

श्रीराधिकाप्रवरविद्युदलंकृतश्री-

स्त्रैलोक्यमध्यविततीकृतदिव्यकीर्तिः॥

''उस रात कृष्ण ने राधाकुण्ड पर रासनृत्य प्रारम्भ किया जिससे आनन्दधारा उमड़ पड़ी। श्रीकृष्ण बादल के समान लगते थे और श्रीमती राधारानी बिजली की तेज चमक के सदृश थीं जो अपने प्रभूत सौन्दर्य से आकाश को पूरित कर रही थीं। इस तरह उनकी दैवी महिमा तीनों लोकों में व्याप्त हो गई।''

अन्तिम टिप्पणी के रूप में यह बतला दिया जाय कि महामुनि होने के कारण नारद समझ गये थे कि अरिष्ट वध के साथ ही कृष्ण की वृन्दावन-लीलाओं का लगभग अन्त हो रहा है अतएव वे कृष्ण की लीलाओं को वृन्दावन से मथुरा में स्थानान्तरित होने को सुगम बनाने की दृष्टि से कंस के पास पहुँचे और उससे बोले।

यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च ।
रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ।
न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ॥१७॥

शब्दार्थ

यशोदायाः—यशोदा की; सुताम्—पुत्री को; कन्याम्—कन्या को; देवक्याः—देवकी के; कृष्णम्—कृष्ण को; एव च—भी; रामम्—बलराम को; च—तथा; रोहिणी-पुत्रम्—रोहिणी का पुत्र; वसुदेवेन—वसुदेव द्वारा; बिभ्यता—भयभीत; न्यस्तौ—रख दिया; स्व-मित्रे—अपने मित्र ने; नन्दे—नन्द महाराज के यहाँ; वै—निस्सन्देह; याभ्याम्—इन दो के द्वारा; ते—तुम्हारे; पुरुषाः—मनुष्य; हताः—मारे गये।

[नारद ने कंस से कहा]: यशोदा की सन्तान वस्तुतः कन्या थी और कृष्ण देवकी का पुत्र

है। यही नहीं, राम रोहिणी का पुत्र है। वसुदेव ने डरकर कृष्ण तथा बलराम को अपने मित्र नन्द महाराज के हाथों में सौंप दिया और इन्हीं दोनों बालकों ने तुम्हारे आदमियों को मारा है।

तात्पर्य : कंस को विश्वास दिलाया गया था कि कृष्ण यशोदा का पुत्र है और देवकी की आठवीं सन्तान कन्या थी। देवकी की आठवीं सन्तान की पहचान कंस के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि भविष्यवाणी हुई थी कि उसकी आठवीं सन्तान कंस का वध करेगी। यहाँ पर नारद कंस को सूचित करते हैं कि देवकी की आठवीं सन्तान दुर्जेय कृष्ण है, जिसका गूढ़ार्थ यह है कि भविष्यवाणी को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया जाय। इस समाचार को पाने के बाद अब कंस निश्चित रूप से कृष्ण तथा बलराम को मार डालने में कोई कसर नहीं उठा रखेगा।

निशम्य तद्भोजपतिः कोपात्प्रचलितेन्द्रियः ।
निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

निशम्य—सुनकर; तत्—वह; भोज-पतिः—भोज-वंश का स्वामी (कंस); कोपात्—क्रोध से; प्रचलित—विक्षुब्ध; इन्द्रियः—इन्द्रियाँ; निशातम्—तेज; असिम्—तलवार को; आदत्त—उठा लिया; वसुदेव-जिघांसया—वसुदेव को मार डालने की इच्छा से।.

यह सुनकर, भोजपति क्रुद्ध हो उठा और उसकी इन्द्रियाँ उसके वश में नहीं रह पाईं। उसने वसुदेव को मारने के लिए एक तेज तलवार उठा ली।

निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ।
ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबन्ध सह भार्यया ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

निवारितः—रोक दिया गया; नारदेन—नारद द्वारा; तत्-सुतौ—उसके दोनों पुत्र; मृत्युम्—मृत्यु; आत्मनः—अपनी ही; ज्ञात्वा—जानकर; लोह-मयैः—लोहे से बनी; पाशैः—जँजीरों से; बबन्ध—(वसुदेव) को बाँध दिया; सह—समेत; भार्यया—उसकी पत्नी।.

किन्तु नारद ने कंस को यह स्मरण दिलाते हुए रोका कि वसुदेव नहीं अपितु उसके दोनों पुत्र तुम्हारी मृत्यु के कारण बनेंगे। तब कंस ने वसुदेव तथा उसकी पत्नी को लोहे की जंजीरों से बँधवा दिया।

तात्पर्य : कंस को लगा कि वसुदेव को मारने से कोई लाभ नहीं है क्योंकि उसका वध तो वसुदेव के पुत्र कृष्ण तथा बलराम द्वारा होना है। आचार्यों के अनुसार नारद ने कंस को यह भी सलाह दी कि

यदि वह वसुदेव को मार देगा तो उसके दोनों युवा पुत्र भाग सकते हैं अतएव उसे न मारना ही श्रेयस्कर होगा। इसीलिए नारद ने संस्तुति की कि कंस को चाहिए कि वह कृष्ण तथा बलराम को अपनी राजधानी मथुरा में बुलाये।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि नारद ने कंस को यह सूचना देकर वसुदेव तथा देवकी जैसे महान् भक्तों के साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार नहीं किया। वस्तुत: जैसाकि ग्यारहवें स्कंध में बतलाया गया है वसुदेव नारद के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ थे क्योंकि वे कृष्ण के हाथों से कंस की मृत्यु की व्यवस्था करा रहे थे। यही नहीं, वे कृष्ण के मथुरा में आकर रहने और अपने प्रिय पिता से भेंट करने की भी व्यवस्था करा रहे थे।

प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ।
प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ॥ २० ॥

शब्दार्थ

प्रतियाते—चले जाने पर; तु—तब; देव-ऋषौ—देवर्षि के; कंस:—राजा कंस; आभाष्य—सम्बोधित करते हुए; केशिनम्—केशी नामक असुर को; प्रेषयाम् आस—उसे बुलाया; हन्येताम्—दोनों मारे जाने चाहिए; भवता—तुम्हारे द्वारा; राम-केशवौ—बलराम तथा कृष्ण।

नारद के चले जाने पर राजा कंस ने केशी को बुलाया और उसे आदेश दिया, ''जाओ राम तथा कृष्ण का वध करो।''

तात्पर्य : कृष्ण तथा बलराम को मथुरा लाये जाने के पूर्व कंस ने एक और असुर को वृन्दावन भेजने का प्रयत्न किया।

ततो मुष्टिकचाणूर शलतोशलकादिकान् ।
अमात्यान्हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तत:—तब; मुष्टिक-चाणूर-शल-तोशलक-आदिकान्—मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल इत्यादि; अमात्यान्—अपने मंत्रियों को; हस्ति-पान्—अपने महावतों को; च एव—भी; समाहूय—बुलाकर; आह—कहा; भोज-राट्—भोजों के राजा ने।

इसके बाद भोजराज ने मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल इत्यादि अपने मंत्रियों तथा अपने महावतों को भी बुलाया। राजा ने उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया।

भो भो निशम्यतामेतद्वीरचाणूरमुष्टिकौ ।

नन्दव्रजे किलासाते सुतावानकदुन्दुभेः ॥ २२॥
रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ।
भवद्‍भ्यामिह सम्प्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया ॥ २३॥

शब्दार्थ

भोः भोः—मेरे प्रिय (सलाहकारो); निशम्यताम्—सुनो; एतत्—यह; वीर—हे वीरो; चाणूर-मुष्टिकौ—चाणूर तथा मुष्टिक; नन्द-व्रजे—नन्द के ग्वाल-ग्राम में; किल—निस्सन्देह; आसाते—रह रहे हैं; सुतौ—दो पुत्र; आनकदुन्दुभेः—वसुदेव के; राम-कृष्णौ—राम तथा कृष्ण; ततः—उनसे; मह्यम्—मेरी; मृत्युः—मौत; किल—निस्सन्देह; निदर्शितः—सूचित की गई है; भवद्‍भ्याम्—तुम दोनों के द्वारा; इह—यहाँ; सम्प्राप्तौ—लाये जाकर; हन्येताम्—मार डाले जाने चाहिए; मल्ल—कुश्ती; लीलया—खेल के बहाने से।

मेरे वीरो, चाणूर तथा मुष्टिक, यह सुन लो। आनकदुन्दुभि (वसुदेव) के पुत्र राम तथा कृष्ण नन्द के व्रज में रह रहे हैं। यह भविष्यवाणी हुई है कि ये दोनों बालक मेरी मृत्यु के कारण होंगे। जब वे यहाँ लाए जायँ तो तुम उन्हें कुश्ती लड़ने के बहाने मार डालना।

मञ्चाः क्रियन्तां विविधा मल्लरङ्गपरिश्रिताः ।
पौरा जानपदाः सर्वे पश्यन्तु स्वैरसंयुगम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

मन्चाः—मंच; क्रियन्ताम्—बनाये जाँय; विविधाः—अनेक प्रकार के; मल्ल-रङ्ग—कुश्ती का अखाड़ा; परिश्रिताः—घिरा हुआ; पौराः—नगर के निवासी; जानपदाः—जनपदों के निवासी; सर्वे—सभी; पश्यन्तु—देखें; स्वैर—स्वेच्छापूर्वक; संयुगम्—प्रतिस्पर्द्धा, प्रतियोगिता।

तुम कुश्ती का अखाड़ा (रंगभूमि) तैयार करो जिसके चारों ओर देखने के अनेक मंच हों और नगर तथा जनपदों के सारे निवासियों को इस खुली प्रतियोगिता देखने के लिए ले आओ।

तात्पर्य : *मञ्चाः* शब्द बड़े बड़े ख भों से बनाये गये मंचन स्थल का द्योतक है। कंस उत्सवमय वातावरण चाहता था जिससे कृष्ण तथा बलराम आने से डरें नहीं।

महामात्र त्वया भद्र रङ्गद्वार्युपनीयताम् ।
द्विपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥ २५॥

शब्दार्थ

महा-मात्र—हे महावत; त्वया—तुम्हारे द्वारा; भद्र—मेरे अच्छे आदमी; रङ्ग—अखाड़े के; द्वारि—दरवाजे तक; उपनीयताम्—लाया जाये; द्विपः—हाथी; कुवलयापीडः—कुवलयापीड़ नामक; जहि—विनष्ट कर दो; तेन—उस (हाथी) से; मम—मेरे; अहितौ—शत्रुओं को।

हे महावत, मेरे अच्छे आदमी, तुम अपने हाथी कुवलयापीड को अखाड़े के प्रवेशद्वार पर खड़ा करना और उसके द्वारा मेरे दोनों शत्रुओं को मरवा डालना।

आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि ।
विशसन्तु पशून्मेध्यान्भूतराजाय मीढुषे ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

आरभ्यताम्—शुरू किया जाय; धनुः-यागः—धनुष-यज्ञ; चतुर्दश्याम्—चतुर्दशी के दिन; यथा-विधि—वैदिक आदेशानुसार; विशसन्तु—यज्ञ में भेंट; पशून्—पशुओं को; मेध्यान्—अर्पित करने योग्य; भूत-राजाय—भूतप्रेतों के राजा, शिव को; मीढुषे—वर देने वाले।

वैदिक आदेशों के अनुसार चतुर्दशी के दिन धनुष यज्ञ प्रारम्भ किया जाय। वर-दानी भगवान् शिव को पशु-मेध में उपयुक्त प्रकार के पशु भेंट किये जाँय।

इत्याज्ञाप्यार्थतन्त्रज्ञ आहूय यदुपुङ्गवम् ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

इति—इन शब्दों के साथ; आज्ञाप्य—आज्ञा देकर; अर्थ—स्वार्थ के; तन्त्र—सिद्धान्त का; ज्ञः—जानने वाला; आहूय—बुलाकर; यदु-पुङ्गवम्—यदुओं में सर्वाधिक अग्रणी; गृहीत्वा—पकड़कर; पाणिना—अपने हाथ से; पाणिम्—हाथ को; ततः—तब; अक्रूरम्—अक्रूर से; उवाच ह—उसने कहा।

अपने मंत्रियों को इस तरह आदेश दे चुकने के बाद कंस ने यदुश्रेष्ठ अक्रूर को बुलवाया। कंस निजी लाभ निकालने की कला जानता था अतः अक्रूर के हाथों को अपने हाथ में लेकर वह उससे इस प्रकार बोला।

भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः ।
नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

भोः भोः—हे प्रिय; दान—दान के; पते—स्वामी; मह्यम्—मेरे लिये; क्रियताम्—करें; मैत्रम्—मित्रोचित अनुग्रह; आदृतः—आदरवश; न—कोई नहीं; अन्यः—दूसरा; त्वत्तः—तुमसे बढ़कर; हित-तमः—अनुकूल कार्य करने वाला; विद्यते—है; भोज-वृष्णिषु—भोजों तथा वृष्णियों में।

हे सर्वश्रेष्ठ दानी अक्रूर, आप आदर के साथ मुझ पर मित्रोचित अनुग्रह करें। भोजों तथा वृष्णियों में आपसे बढ़कर कोई अन्य हम पर कृपालु नहीं है।

अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् ।
यथेन्द्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद्विभुः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

अतः—अतएव; त्वाम्—तुम पर; आश्रितः—(मैं) आश्रित हूँ; सौम्य—हे भद्र पुरुष; कार्य—कर्तव्य; गौरव—गम्भीरतापूर्वक; साधनम्—सम्पन्न करने वाला; यथा—जिस तरह; इन्द्रः—इन्द्र ने; विष्णुम्—विष्णु की; आश्रित्य—शरण ग्रहण करके; स्व-अर्थम्—अपना लक्ष्य; अध्यगमत्—प्राप्त किया; विभुः—स्वर्ग का शक्तिशाली राजा।

हे भद्र अक्रूर, आप सदैव अपना कर्तव्य गम्भीरतापूर्वक करने वाले हैं अतएव मैं आप पर उसी तरह आश्रित हूँ जिस तरह पराक्रमी इन्द्र ने अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए भगवान् विष्णु की शरण ली थी।

गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतावानकदुन्दुभेः ।
आसाते ताविहानेन रथेनानय मा चिरम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

गच्छ—जाओ; नन्द-व्रजम्—नन्द के गाँव; तत्र—वहाँ; सुतौ—पुत्रों को; आनकदुन्दुभेः—वसुदेव के; आसाते—रह रहे हैं; तौ—उन दोनों; इह—यहाँ; अनेन—इस; रथेन—रथ से; आनय—लाओ; मा चिरम्—बिना देर लगाये।

कृपया नन्द-ग्राम जाँय जहाँ पर आनकदुन्दुभि के दोनों पुत्र रह रहे हैं और अविलम्ब उन्हें इस रथ पर चढ़ाकर यहाँ ले आयें।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती एक रोचक टिप्पणी देते हैं—"जब कंस ने कहा, "इस रथ से" तो उसने अपनी छिगुनी से एकदम नवीन आकर्षक रथ की ओर इशारा किया। कंस ने सोचा कि अक्रूर स्वभाव से भोला-भाला है, अत: जब वह इस सुन्दर नये रथ को देखेगा तो उसे हाँक कर उन दो बालकों को तुरन्त ले आना चाहेगा। किन्तु सर्वथा नवीन रथ पर चढ़ कर अक्रूर के जाने का वास्तविक कारण यह था कि जिस रथ पर दुष्ट कंस चढ़ चुका हो उस पर भगवान् का चढ़ना उचित नहीं।"

निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः ।
तावानय समं गोपैर्नन्दाद्यैः साभ्युपायनैः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

निसृष्टः—भेजा है; किल—निस्सन्देह; मे—मेरी; मृत्युः—मृत्यु; देवैः—देवताओं द्वारा; वैकुण्ठ—भगवान् विष्णु के; संश्रयैः—शरणागत; तौ—उन दोनों को; आनय—लाओ; समम्—साथ में; गोपैः—ग्वालों; नन्द-आद्यैः—नन्द इत्यादि; स—सहित; अभ्युपायनैः—उपहारों।

विष्णु के संरक्षण में रहने वाले देवताओं ने इन दोनों बालकों को मेरी मृत्यु के रूप में भेजा है। उन्हें यहाँ ले आइये तथा उनके साथ नन्द तथा अन्य ग्वालों को अपने अपने उपहारों समेत आने दीजिये।

घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना ।
यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

घातयिष्ये—उन्हें मार डालूँगा; इह—यहाँ; आनीतौ—लाये गये; काल-कल्पेन—साक्षात् मृत्यु रूप; हस्तिना—हाथी के द्वारा; यदि—यदि; मुक्तौ—बच जाते हैं; ततः—तब; मल्लैः—पहलवानों से; घातये—मरवा डालूँगा; वैद्युत—बिजली; उपमैः—की तरह।

जब आप कृष्ण तथा बलराम को ले आयेंगे तो मैं उन्हें साक्षात् मृत्यु के समान बलशाली अपने हाथी से मरवा दूँगा। यदि कदाचित् वे उससे बच जाते हैं, तो मैं उन्हें बिजली के समान प्रबल अपने पहलवानों से मरवा दूँगा।

तयोर्निहतयोस्तप्तान्वसुदेवपुरोगमान् ।
तद्बन्धून्निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उन दोनों के; निहतयोः—मारे जाने पर; तप्तान्—शोकसंतप्त; वसुदेव-पुरोगमान्—वसुदेव द्वारा ले जाये गये; तद्-बन्धून्—उनके सम्बन्धियों को; निहनिष्यामि—मार डालूँगा; वृष्णि-भोज-दशार्हकान्—वृष्णियों, भोजों तथा दशार्हों को।

जब ये दोनों मार डाले जायेंगे तो मैं वसुदेव तथा उनके सभी शोकसंतप्त सम्बन्धियों—वृष्णियों, भोजों तथा दशार्हों—का वध कर दूँगा।

तात्पर्य : आज भी विश्व-भर में ऐसे दुष्ट राजनीतिक नेता हैं, जो ऐसी ऐसी योजनाएँ बनाकर उन पर अमल भी करते हैं।

उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकं ।
तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

उग्रसेनम्—राजा उग्रसेन को; च—और; पितरम्—पिता; स्थविरम्—वृद्ध; राज्य—राज्य के लिए; कामुकम्—लोभी; तत्-भ्रातरम्—उसके भाई; देवकम्—देवक; च—भी; ये—जो; च—तथा; अन्ये—अन्य; विद्विषः—शत्रुगण; मम—मेरे।

मैं अपने बूढ़े पिता उग्रसेन को भी मार डालूँगा क्योंकि वह मेरे साम्राज्य के लिए लालायित है। मैं उसके भाई देवक तथा अपने अन्य सारे शत्रुओं को भी मार डालूँगा।

ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; च—तथा; एषा—यह; मही—पृथ्वी; मित्र—हे मित्र; भवित्री—होगी; नष्ट—विनष्ट; कण्टका—अपने काँटे।

तब हे मित्र, यह पृथ्वी काँटों से मुक्त हो जायेगी।

जरासन्धो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ।
शम्बरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः ।
तैरहं सुरपक्षीयान्हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

जरासन्धः—जरासन्ध; मम—मेरा; गुरुः—गुरुजन (श्वसुर); द्विविदः—द्विविद; दयितः—मेरा प्रिय; सखा—मित्र; शम्बरः—शम्बर; नरकः—नरक; बाणः—बाण; मयि—मेरे लिए; एव—निस्सन्देह; कृत-सौहृदाः—प्रगाढ़ मैत्री रखने वाले; तैः—उनसे; अहम्—मैं; सुर—देवताओं के; पक्षीयान्—पक्ष वालों को; हत्वा—मारकर; भोक्ष्ये—भोगूँगा; महीम्—पृथ्वी को; नृपान्—राजागण।

मेरा ज्येष्ठ सम्बन्धी जरासन्ध तथा मेरा प्रिय मित्र द्विविद मेरे अतीव शुभचिन्तक हैं और वैसे ही शम्बर, नरक तथा बाण हैं। मैं इन सबों का उपयोग उन राजाओं का वध करने के लिए करूँगा जो देवताओं के पक्षधर हैं और तब मैं सारी पृथ्वी पर राज करूँगा।

एतज्ज्ञात्वानय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ ।
धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; ज्ञात्वा—जानकर; आनय—लाओ; क्षिप्रम्—शीघ्र; राम-कृष्णौ—राम तथा कृष्ण को; इह—यहाँ; अर्भकौ—बालकों को; धनुः-मख—धनुष यज्ञ; निरीक्षा-अर्थम्—निरीक्षण करने के लिए; द्रष्टुम्—देखने के लिए; यदु-पुर—यदुकुल की राजधानी के; श्रियम्—ऐश्वर्य को।

चूँकि अब आप मेरे मनोभावों को जान चुके हैं अतः तुरन्त जाइये और कृष्ण तथा बलराम को धनुष यज्ञ निहारने तथा यदुओं की राजधानी का ऐश्वर्य देखने के लिए ले आइये।

श्रीअक्रूर उवाच
राजन्मनीषितं सध्र्यक्तव स्वावद्यमार्जनम् ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद्दैवं हि फलसाधनम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

श्री-अक्रूरः उवाच—श्री अक्रूर ने कहा; राजन्—हे राजन्; मनीषितम्—विचार; सध्र्यक्—पूर्ण; तव—तुम्हारा; स्व—अपना; अवद्य—दुर्भाग्य; मार्जनम्—धोने वाला; सिद्धि-असिद्ध्योः—सफलता तथा विफलता दोनों में; समम्—समान; कुर्यात्—करना चाहिए; दैवम्—भाग्य; हि—अन्ततः; फल—फल, परिणाम; साधनम्—प्राप्त करने का साधन।

श्री अक्रूर ने कहा : हे राजन्, आपने अपने को दुर्भाग्य से मुक्त करने के लिए अच्छा उपाय ढूँढ निकाला है। फिर भी मनुष्य को सफलता तथा विफलता में समभाव रहना चाहिए क्योंकि निश्चित रूप से यह भाग्य ही है, जो किसी के कर्म के फलों को उत्पन्न करता है।

मनोरथान्करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ।

युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

मनः-रथान्—उसकी इच्छाएँ; करोति—पालन करती है; उच्चैः—उत्साहपूर्वक; जनः—सामान्य व्यक्ति; दैव—भाग्य से; हतान्—नष्ट किया हुआ; अपि—भी; युज्यते—सामना करता है; हर्ष-शोकाभ्याम्—सुख तथा दुख से; तथा अपि—फिर भी; आज्ञाम्—आज्ञा; करोमि—करूँगा; ते—तुम्हारी।

सामान्य व्यक्ति अपनी इच्छाओं के अनुसार कर्म करने के लिए कृतसंकल्प रहता है भले ही उसका भाग्य उन्हें पूरा न होने दे। अतः वह सुख तथा दुख दोनों का सामना करता है। इतने पर भी मैं आपके आदेश को पूरा करूँगा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि यद्यपि अक्रूर ने जो कुछ कहा था वह शिष्ट तथा उत्साहजनक था किन्तु उसका आशय भिन्न था। उनके कहने का अर्थ था, ''आपकी योजना पालन करने के योग्य नहीं है फिर भी मैं पालन करूँगा क्योंकि आप राजा हैं और मैं आपकी प्रजा हूँ। आपको हर हालत में मरना है ही।''

श्रीशुक उवाच

एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विसृज्य सः ।
प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; आदिश्य—आदेश देकर; च—तथा; अक्रूरम्—अक्रूर को; मन्त्रिणः—अपने मंत्रियों को; च—तथा; विसृज्य—विदा करके; सः—वह; प्रविवेश—प्रविष्ट हुआ; गृहम्—अपने घर में; कंसः—कंस; तथा—भी; अक्रूरः—अक्रूर; स्वम्—अपने; आलयम्—निवासस्थान को।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अक्रूर को इस तरह आदेश देकर कंस ने अपने मंत्रियों को विदा कर दिया और स्वयं अपने घर में चला गया तथा अक्रूर अपने घर लौट आया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''वृषभासुर अरिष्ट का वध'' नामक छत्तीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सैंतीस

केशी तथा व्योम असुरों का वध

इस अध्याय में घोड़े के रूप में केशी असुर के वध, नारदमुनि द्वारा भगवान् कृष्ण की भावी लीलाओं का महिमा-गायन तथा कृष्ण द्वारा व्योमासुर-वध का वर्णन हुआ है।

कंस के आदेश से केशी असुर ने विशाल घोड़े का रूप धारण किया और वह व्रज में गया।

पहुँचते ही जब उसने जोर की हिनहिनाहट की तो सारे निवासी डर गये और श्रीकृष्ण का मुँह जोहने लगे। उस असुर को देखकर कृष्ण ने आगे बढ़कर उसे निकट आने के लिए ललकारा। केशी ने कृष्ण पर आक्रमण कर दिया और अपने अगले पाँवों से उन पर प्रहार करने की कोशिश की किन्तु भगवान् ने उसे पावों से पकड़ लिया, फिर उसे कई बार चारों ओर घुमाया और तब एक सौ धनुष–दूरी पर फेंक दिया। केशी कुछ समय तक अचेत पड़ा रहा। जब उसे चेत हुआ तो उसने खुले मुँह पुनः कृष्ण पर आक्रमण किया। तब भगवान् ने अपनी बाईं भुजा उस अश्व असुर के मुख में डाल दी और जब केशी ने उस भुजा को काटना चाहा तो वह उसे गर्म लोहे की फाल जैसी प्रतीत हुई। कृष्ण की भुजा फैलती गई जिससे असुर का दम घुटने लगा और उसने अत्यधिक वेदना के कारण अपने प्राण त्याग दिये। तब कृष्ण ने अपनी भुजा निकाल ली। वे शान्त खड़े रहे। देवताओं ने आकाश से उन पर पुष्प–वर्षा की और उनका यशोगान किया किन्तु उनके मुख से असुर मारने से कोई अहंकार लक्षित नहीं हो रहा था।

इस के तुरन्त बाद देवर्षि नारद कृष्ण के पास आये और भगवान् की भावी लीलाओं की प्रशंसा करते हुए उन्होंने अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् नारद उन्हें प्रणाम करके प्रस्थान कर गये।

एक दिन गाय चराते समय कृष्ण, बलराम तथा ग्वालबाल लुकाछिपी (आँख–मिचौनी) के खेल में व्यस्त थे। कुछ बालक भेड़ बने थे, कुछ चोर और कुछ गडरिये। चोरों द्वारा भेड़ें चुराने पर गडरिये भेड़ों को ढूँढ़ते थे। इस खेल का लाभ उठाकर कंस द्वारा भेजा गया व्योम नामक असुर ग्वाले का वेश बनाकर चोरों के समूह में जा मिला। वह एकसाथ कुछ ग्वालों का हरण करके उन्हें एक पर्वत–गुफा में फेंक आया और गुफा के द्वार को एक बड़े पत्थर से ढक दिया। क्रमशः व्योमासुर चार या पाँच ग्वालों को छोड़ शेष सारे ग्वालों को चुरा ले गया। जब कृष्ण ने उस असुर की करतूत देखी तो वे उसके पीछे दौड़े, उसे जा दबोचा और बलि के पशु की तरह उसे मार डाला।

श्रीशुक उवाच

केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं
महाहयो निर्जरयन्मनोजवः ।
सटावधूताभ्रविमानसङ्कुलं
कुर्वन्नभो हेषितभीषिताखिलः ॥ १ ॥
तं त्रासयन्तं भगवान्स्वगोकुलं

तद्धेषितैर्वालविघूर्णिताम्बुदम् ।
आत्मानमाजौ मृगयन्तमग्रणी-
रुपाह्वयत्स व्यनदन्मृगेन्द्रवत् ॥ २॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; केशी—केशी नामक असुर; तु—और तब; कंस-प्रहितः—कंस द्वारा भेजा गया; खुरैः—खुरों से; महीम्—पृथ्वी को; महा-हयः—विशाल घोड़ा; निर्जरयन्—विदीर्ण करता; मनः—मन की तरह; जवः—गतिवान; सटा—अपने अयालों से; अवधूत—बिखरे हुए; अभ्र—बादलों के साथ; विमान—तथा (देवताओं के) यानों; सङ्कुलम्—समूहित; कुर्वन्—करता हुआ; नभः—आकाश को; हेषित—अपनी हिनहिनाहट से; भीषित—डराता हुआ; अखिलः—हर एक; तम्—उसको; त्रासयन्तम्—डराता हुआ; भगवान्—भगवान्; स्व-गोकुलम्—अपने ग्वाल-ग्राम को; तत्-हेषितैः—उस हिनहिनाहट से; वाल—अपनी पूँछ के बालों से; विघूर्णित—हिलाया हुआ; अम्बुदम्—बादल; आत्मानम्—स्वयं; आजौ—युद्ध के लिए; मृगयन्तम्—ढूँढ़ते हुए; अग्र-नीः—आगे आकर; उपाह्वयत्—पुकारा; सः—उसने, केशी ने; व्यनदन्—गर्जना की; मृगेन्द्र-वत्—सिंह की तरह।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कंस द्वारा भेजा गया केशी असुर व्रज में विशाल घोड़े के रूप में प्रकट हुआ। मन जैसे तेज वेग से दौड़ते हुए वह अपने खुरों से पृथ्वी को विदीर्ण करने लगा। उसकी गर्दन के बालों से सारे आकाश के बादल तथा देवताओं के विमान तितर-बितर हो गये। अपनी भारी हिनहिनाहट से उसने वहाँ पर उपस्थित सबों को भयभीत बना दिया।

जब भगवान् ने देखा कि यह असुर किस तरह अपनी भयानक हिनहिनाहट से पूरे गोकुल गाँव को डरा रहा है और अपनी पूँछ से बादलों को हिलाये दे रहा है, तो वे केशी से सामना करने आगे आये। युद्ध के लिए तो केशी कृष्ण को ढूँढ़ ही रहा था अत: जब भगवान् उसके समक्ष खड़े हो गये और उन्होंने उसे पास आने के लिए ललकारा तो उस घोड़े ने सिंह जैसी गर्जना द्वारा उसका उत्तर दिया।

स तं निशाम्याभिमुखो मखेन खं
पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः ।
जघान पद्भ्यामरविन्दलोचनं
दुरासदश्चण्डजवो दुरत्ययः ॥ ३॥

शब्दार्थ

सः—वह, केशी; तम्—उन्हें, कृष्ण को; निशाम्य—देखकर; अभिमुखः—अपने सामने; मुखेन—अपने मुख से; खम्—आकाश को; पिबन्—पीता हुआ; इव—मानो; अभ्यद्रवत्—आगे दौड़ा; अति-अमर्षणः—अत्यन्त क्रुद्ध; जघान—आक्रमण कर दिया; पद्भ्याम्—अपने दो पाँवों से; अरविन्द-लोचनम्—कमल-नेत्र वाले प्रभु को; दुरासदः—पार पाना कठिन; चण्ड—प्रचण्ड; जवः—वेग वाला; दुरत्ययः—अजेय।

भगवान् को अपने सामने खड़ा देखकर केशी अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपना मुह बाये उनकी ओर दौड़ा मानो वह आकाश को निगल जायेगा। प्रचण्ड वेग से दौड़ते हुए उस अजेय तथा दुर्धर्ष

घोड़ा-असुर ने अपने अगले दो पाँवों से कमलनयन भगवान् पर प्रहार करने का प्रयत्न किया।

तद्वञ्चयित्वा तमधोक्षजो रुषा
प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः ।
सावज्ञमुत्सृज्य धनुःशतान्तरे
यथोरगं तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः ॥ ४॥

शब्दार्थ

तत्—वह; वञ्चयित्वा—बचाते हुए; तम्—उसको; अधोक्षजः—दिव्य प्रभु; रुषा—क्रोधपूर्वक; प्रगृह्य—पकड़कर; दोर्भ्याम्—अपनी भुजाओं से; परिविध्य—चारों ओर घुमाकर; पादयोः—पाँव से पकड़कर; स-अवज्ञम्—घृणापूर्वक; उत्सृज्य—फेंकते हुए; धनुः—धनुष की लम्बाई के बराबर; शत—एक सौ; अन्तरे—दूरी पर; यथा—जिस तरह; उरगम्—साँप को; तार्क्ष्य—कर्दम मुनि का; सुतः—पुत्र (गरुड़); व्यवस्थितः—खड़े हो गये।.

किन्तु दिव्य भगवान् ने केशी के प्रहार से अपने को बचा लिया और तब क्रुद्ध होकर अपनी भुजाओं से असुर के पैरों को पकड़कर उसे आकाश में चारों ओर घुमाया और एक सौ धनुष-दूरी पर घृणापूर्वक उसी तरह फेंक दिया जिस प्रकार गरुड़ किसी सर्प को फेंक दे। तब भगवान् कृष्ण वहीं खड़े हो गये।

सः लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा
व्यादाय केशी तरसापतद्धरिम् ।
सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन्
प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥ ५॥

शब्दार्थ

सः—वह, केशी; लब्ध—पाकर; संज्ञः—चेतना; पुनः—फिर से; उत्थितः—उठ खड़ा हुआ; रुषा—क्रोध में; व्यादाय—(अपना मुख) फाड़ते हुए; केशी—केशी; तरसा—तेजी से; अपतत्—दौड़ा; हरिम्—कृष्ण की ओर; सः—वह, कृष्ण; अपि—तथा; अस्य—उसके; वक्त्रे—मुख में; भुजम्—अपनी भुजा; उत्तरम्—बाईं; स्मयन्—हँसने लगे; प्रवेशयाम् आस—भीतर डाल दिया; यथा—जिस तरह; उरगम्—साँप; बिले—छेद के भीतर (घुसता है)।.

पुनः चेतना लौट आने पर केशी क्रोधपूर्वक उठा। उसने अपना मुख पूरा खोल दिया और वह पुनः कृष्ण पर आक्रमण करने दौड़ा। किन्तु कृष्ण हँस दिये और अपनी बाईं भुजा उस घोड़े के मुँह में उसी सुगमता से डाल दी जिस तरह कोई साँप भूमि में बने छेद में घुसा जाता है।

दन्ता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृश-
स्ते केशिनस्तप्तमयस्पृशो यथा ।
बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो
यथामयः संववृधे उपेक्षितः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

दन्ताः—दाँत; निपेतुः—बाहर निकल आये; भगवत्—भगवान् का; भुज—बाँह; स्पृशः—छूने से; ते—वे; केशिनः—केशी के; तप्त-मय—गर्म लाल (लोहा); स्पृशः—छूने से; यथा—जिस तरह; बाहुः—बाँह; च—तथा; तत्—उस केशी के; देह—शरीर में; गतः—घुसने पर; महा-आत्मनः—परमात्मा का; यथा—जिस तरह; आमयः—रुग्णावस्था (पेट की बीमारी), जलोदर; संववृधे—आकार में बढ़ गया; उपेक्षितः—तिरस्कृत।

भगवान् के बाहु का स्पर्श होते ही केशी के सारे दाँत गिर पड़े क्योंकि उनका बाहु उस असुर को पिघले लोहे के समान गर्म लग रहा था। तत्पश्चात् केशी के शरीर में भगवान् का बाहु अत्यधिक फैल गया जिस तरह उपेक्षा करने से जलोदर रोग बढ़ जाता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि यद्यपि भगवान् कृष्ण की भुजा नीले कमल से भी कोमल और शीतल है किन्तु केशी को वह अत्यधिक गर्म प्रतीत हुई मानो वज्र की बनी हो।

समेधमानेन स कृष्णबाहुना
निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ।
प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः
पपात लण्डं विसृजन्क्षितौ व्यसुः ॥ ७॥

शब्दार्थ

समेधमानेन—बढ़ जाने से; सः—वह; कृष्ण-बाहुना—कृष्ण की भुजा से; निरुद्ध—रुक गई; वायुः—श्वास लेना; चरणान्—पैर; च—तथा; विक्षिपन्—इधर-उधर पटकता; प्रस्विन्न—पसीने से लथपथ; गात्रः—शरीर; परिवृत्त—उलटाते हुए; लोचनः—आँखें; पपात—गिर पड़ा; लण्डम्—मल; विसृजन्—निकालता हुआ; क्षितौ—पृथ्वी पर; व्यसुः—प्राणरहित।

ज्योंही कृष्ण की फैलती भुजा ने केशी के श्वास को पूरी तरह अवरुद्ध कर दिया, वह अपने पैर पटकने लगा, उसका शरीर पसीने से लथपथ हो गया और उसकी आँखें उलट गईं। तब उस असुर ने मल त्याग दिया और भूमि पर गिर कर निष्प्राण हो गया।

तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद्
व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः ।
अविस्मितोऽयत्नहतारिकः सुरैः
प्रसूनवर्षैर्वर्षद्भिरीडितः ॥ ८॥

शब्दार्थ

तत्-देहतः—केशी के शरीर से; कर्कटिका-फल—कर्कटिका फल, ककड़ी; उपमात्—के सदृश; व्यसोः—जिससे प्राण-वायु निकल चुकी थी; अपाकृष्य—निकालकर; भुजम्—अपनी बाँह को; महा-भुजः—बलिष्ठ भुजाओं वाले प्रभु; अविस्मितः—बिना किसी गर्व के; अयत्न—बिना प्रयास के; हत—मारकर; अरिकः—अपने शत्रु; सुरैः—देवताओं द्वारा; प्रसून—फूलों की; वर्षैः—वर्षा से; वर्षद्भिः—वर्षा करते हुए; ईडितः—पूजित।

महाबाहु कृष्ण ने अपनी बाँह केशी के उस शरीर से निकाल ली जो अब एक लम्बी ककड़ी

जैसा प्रतीत हो रहा था। अपने शत्रु को बिना प्रयास के ही मारने के बाद किसी प्रकार का गर्व दिखलाये बिना भगवान् ने ऊपर से फूलों की वर्षा के रूप में की गई देवताओं की पूजा स्वीकार की।

देवर्षिरुपसङ्गम्य भागवतप्रवरो नृप ।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

देव-ऋषिः—देवताओं में से ऋषि (नारदमुनि); उपसङ्गम्य—पास आकर; भागवत—भगवद्भक्तों के; प्रवरः—श्रेष्ठ; नृप—हे राजा (परीक्षित); कृष्णम्—कृष्ण को; अक्लिष्ट—बिना कष्ट के; कर्माणम्—जिसके कर्म; रहसि—एकान्त में; एतत्—यह; अभाषत—कहा।

हे राजन्, तत्पश्चात् देवर्षि नारद भगवान् कृष्ण के पास एकान्त स्थान में गये। इन महाभागवत ने बिना किसी प्रयास के लीला करने वाले भगवान् से इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : कंस से बातें कहकर नारद भगवान् कृष्ण के पास गये। भगवान् की वृन्दावन लीलाएँ समाप्तप्राय थीं और नारद मथुरा में होने वाली लीलाओं को देखना चाहते थे।

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्योगेश जगदीश्वर ।
वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥ १० ॥
त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ।
गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; अप्रमेय-आत्मन्—हे अगाध आत्मा; योग-ईश—हे समस्त योगशक्ति के स्रोत; जगत्-ईश्वर—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; वासुदेव—हे वसुदेव-पुत्र; अखिल-आवास—हे सबों के आश्रय; सात्वताम्—यदुकुल के; प्रवर—हे श्रेष्ठ; प्रभो—हे प्रभु; त्वम्—तुम; आत्मा—परमात्मा; सर्व—समस्त; भूतानाम्—जीवों के; एकः—एकमात्र; ज्योतिः—अग्नि; इव—सदृश; एधसाम्—समिधा में; गूढः—छिपी; गुहा—हृदय रूपी गुफा में; शयः—बैठे हुए, स्थित; साक्षी—गवाह; महा-पुरुषः—भगवान्; ईश्वरः—परमनियन्ता।

[नारदमुनि ने कहा]: हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे अनन्त प्रभु, हे समस्त योगशक्तियों के स्रोत, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, हे समस्त जीवों के आश्रय तथा यदुश्रेष्ठ वासुदेव, हे प्रभु, आप समस्त जीवों के परमात्मा हैं और हृदय की गुफा में उसी तरह अदृश्य होकर बैठे हुए हैं जिस तरह सुलगती हुई लकड़ी के भीतर अग्नि सुप्त रहती है। आप सबों के भीतर साक्षी स्वरूप, परम पुरुष तथा सर्वनियन्ता देव हैं।

आत्मनात्माश्रय: पूर्वं मायया ससृजे गुणान् ।
तैरिदं सत्यसङ्कल्प: सृजस्यत्स्यवसीश्वर: ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

आत्मना—अपनी निजी शक्ति से; आत्म—आत्मा के; आश्रय:—शरण; पूर्वम्—पहले; मायया—अपनी सृजन-शक्ति द्वारा; ससृजे—उत्पन्न किया; गुणान्—प्रकृति के मूलभूत गुणों को; तै:—उनके माध्यम से; इदम्—यह (ब्रह्माण्ड); सत्य—तथ्य रूप में अनुभवगम्य; सङ्कल्प:—जिसकी इच्छाएँ; सृजसि—उत्पन्न करते हो; अत्सि—संहार करते हो; अवसि—पालन करते हो; ईश्वर:—नियन्ता।

आप समस्त जीवों के आश्रय हैं और परमनियन्ता होने के कारण अपनी इच्छाशक्ति से अपनी सारी इच्छाएँ पूरी करते हैं। अपनी निजी सृजन-शक्ति से आपने प्रारम्भ में प्रकृति के आदि गुणों को प्रकट किया और आप उन्हीं के माध्यम से इस ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन तथा विनाश करते हैं।

स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ।
अवतीर्णो विनाशाय साधुनां रक्षणाय च ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

स:—वह; त्वम्—साक्षात् आप; भू-धर—राजाओं के रूप में; भूतानाम्—प्रकट होने वाले; दैत्य-प्रमथ-रक्षसाम्—विभिन्न प्रकार के असुरों के; अवतीर्ण:—अवतीर्ण हुए हो; विनाशाय—विनाश के लिए; साधूनाम्—सन्त पुरुषों की; रक्षणाय—रक्षा के लिए; च—तथा।

आप ही वह स्रष्टा हैं, जो अपने को राजा मानने वाले दैत्यों, प्रमथों तथा राक्षसों का विनाश करने के लिए तथा सन्त पुरुषों की रक्षा करने के लिए अब इस धरा पर अवतीर्ण हुए हैं।

दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयायं हयाकृति: ।
यस्य हेषितसन्त्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—(हमारे) सौभाग्य से; ते—तुम्हारे द्वारा; निहत:—मारा गया; दैत्य:—असुर; लीलया—खेल-खेल में; अयम्—यह; हय-आकृति:—घोड़े की आकृति वाला; यस्य—जिसकी; हेषित—हिनहिनाहट से; सन्त्रस्ता:—भयभीत; त्यजन्ति—छोड़ देते हैं; अनिमिषा:—देवतागण; दिवम्—स्वर्ग को।

यह घोड़े की आकृति वाला असुर इतना आतंक मचाये हुए था कि उसकी हिनहिनाहट से देवताओं ने भयभीत होकर अपने स्वर्ग के राज्य को छोड़ दिया था। किन्तु हमारे सौभाग्य से आपने खेल खेल में ही उसे मार डाला है।

चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ।
कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥ १५ ॥

तस्यानु शङ्ख्यवनमुराणां नरकस्य च ।
पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम् ॥ १६ ॥
उद्वाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् ।
नृगस्य मोक्षणं शापाद्द्वारकायां जगत्पते ॥ १७ ॥
स्यमन्तकस्य च मणेरादानं सह भार्यया ।
मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥ १८ ॥
पौण्ड्रकस्य वधं पश्चात्काशिपुर्याश्च दीपनम् ।
दन्तवक्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥ १९ ॥
यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन्भवान् ।
कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥ २० ॥

शब्दार्थ

चाणूरम्—चाणूर को; मुष्टिकम्—मुष्टिक को; च—तथा; एव—भी; मल्लान्—कुश्ती लड़ने वाले, पहलवानों को; अन्यान्—अन्य; च—तथा; हस्तिनम्—हाथी (कुवलयापीड) को; कंसम्—कंस को; च—तथा; निहतम्—मारा गया; द्रक्ष्ये—देखूँगा; पर-श्वः—परसों; अहनि—उस दिन; ते—तुम्हारे द्वारा; विभो—हे सर्वशक्तिमान; तस्य अनु—उसके बाद; शङ्ख-यवन-मुराणाम्—शंख (पञ्चजन), कालयवन तथा मुर नामक असुरों का; नरकस्य—नरकासुर का; च—भी; पारिजात—स्वर्ग के पारिजात पुष्प का; अपहरणम्—चुराया जाना; इन्द्रस्य—इन्द्र की; च—तथा; पराजयम्—हार; उद्वाहम्—विवाह; वीर—वीर राजाओं का; कन्यानाम्—कन्याओं के; वीर्य—आपके पराक्रम से; शुल्क—दहेज; आदि—इत्यादि; लक्षणम्—लक्षणों से युक्त; नृगस्य—राजा नृग का; मोक्षणम्—मोक्ष; शापात्—अपने शाप से; द्वारकायाम्—द्वारका नगरी में; जगत्-पते—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; स्यमन्तकस्य—स्यमन्तक नामक; च—तथा; मणेः—मणि का; आदानम्—ग्रहण किया जाना; सह—के साथ; भार्यया—पत्नी (जाम्बवती) के साथ; मृत—मरे हुए; पुत्र—बेटे का; प्रदानम्—लाकर देना; च—तथा; ब्राह्मणस्य—ब्राह्मण के; स्व-धामतः—अपने धाम (मृत्युधाम) से; पौण्ड्रकस्य—पौण्ड्रक का; वधम्—मारा जाना; पश्चात्—उसके बाद; काशि-पुर्याः—काशी नगरी (बनारस) के; च—तथा; दीपनम्—दहन; दन्तवक्रस्य—दन्तवक्र का; निधनम्—मरण; चैद्यस्य—चैद्य (शिशुपाल) का; च—तथा; महा-क्रतौ—महायज्ञ (महाराज युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ) के समय; यानि—जो; च—तथा; अन्यानि—अन्य; वीर्याणि—बड़े बड़े कौशल; द्वारकाम्—द्वारका में; आवसन्—रहते हुए; भवान्—आप; कर्ता—सम्पन्न करने जा रहे हैं; द्रक्ष्यामि—देखूँगा; अहम्—मैं; तानि—उनको; गेयानि—गाये जाने के लिए; कविभिः—कवियों द्वारा; भुवि—इस पृथ्वी पर।

हे सर्वशक्तिमान विभो, दो ही दिनों में मैं आपके हाथों चाणूर, मुष्टिक तथा अन्य पहलवानों के साथ साथ कुवलयापीड तथा राजा कंस की भी मृत्यु होते देखूँगा। इसके बाद मैं कालयवन, मुर, नरक तथा शंख असुर को आपके द्वारा मारा जाते देखूँगा। मैं आपको पारिजात पुष्प चुराते और इन्द्र को पराजित करते देखूँगा। तत्पश्चात् अपने पराक्रम से मूल्य चुकाते हुए वीर राजाओं की अनेक कन्याओं के साथ आपको विवाह करते देखूँगा। तब हे ब्रह्माण्डपति, आप द्वारका में राजा नृग का शाप से उद्धार करेंगे और एक अन्य पत्नी के साथ साथ आप अपने लिए स्यमन्तक मणि भी लेंगे। आप ब्राह्मण के मृत पुत्र को अपने दास यमराज के धाम से वापस लायेंगे और उसके बाद आप पौण्ड्रक का वध करेंगे तथा काशी नगरी को जला देंगे और राजसूय यज्ञ के समय दन्तवक्त्र तथा चेदिराज का संहार करेंगे। मैं इन सब वीरतापूर्ण लीलाओं को तो देखूँगा

ही, साथ ही द्वारका में अपने वास-काल में आप जो अन्य अनेक लीलाएँ करेंगे उन्हें भी देखूँगा। ये सारी लीलाएँ दिव्य कवियों के गीतों में इस धरा पर गाई जाती हैं।

अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै ।
अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; ते—आपके द्वारा; काल-रूपस्य—काल का रूप धारण करने वाले; क्षपयिष्णोः—संहार करने की इच्छा करने वाला; अमुष्य—इस जगत (के भार) का; वै—निस्सन्देह; अक्षौहिणीनाम्—सम्पूर्ण सेनाओं का; निधनम्—विनाश; द्रक्ष्यामि—देखूँगा; अर्जुन सारथेः—अर्जुन के सारथी द्वारा।

तत्पश्चात् मैं आपको साक्षात् काल के रूप में प्रकट होते, अर्जुन के सारथी के रूप में सेवा करते तथा धरती का भार उतारने के लिए सैनिकों की समस्त सेनाओं का विनाश करते देखूँगा।

विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया
समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम् ।
स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमाया-
गुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

विशुद्ध—पूर्णरूपेण शुद्ध; विज्ञान—आध्यात्मिक भिज्ञता; घनम्—से पूर्ण; स्व-संस्थया—अपने मूल रूप में; समाप्त—पहले ही पूर्ण; सर्व—समस्त; अर्थम्—उद्देश्यों में; अमोघ—कभी उद्विग्न न होने वाले; वाञ्छितम्—जिनकी इच्छाएँ; स्व-तेजसा—अपनी ही शक्ति से; नित्य—शाश्वत; निवृत्त—विरक्त; माया—भौतिक शक्ति या माया का; गुण—प्रकट गुणों के; प्रवाहम्—प्रवाह से; भगवन्तम्—भगवान्; ईमहि—शरण आने दें।

हे भगवान् हमें अपनी शरण में आने दें। आप शुद्ध आध्यात्मिक भिज्ञता से परिपूर्ण हैं और अपने मूल स्वरूप में सदैव स्थित रहते हैं। चूँकि आपकी इच्छा को कभी नकारा नहीं जा सकता, आपने पहले ही यथासम्भव इच्छित वस्तुएँ प्राप्त कर ली हैं और अपनी आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा आप माया के गुण प्रवाह से सतत पृथक् रहते हैं।

त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया
विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ।
क्रीडार्थमद्यात्तमनुष्यविग्रहं
नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

त्वाम्—तुमको; ईश्वरम्—परमनियन्ता को; स्व-आश्रयम्—आत्म-निर्भर; आत्म—निजी; मायया—सृजन-शक्ति द्वारा; विनिर्मित—बनाया हुआ; अशेष—असीम; विशेष—विशिष्ट; कल्पनम्—व्यवस्था; क्रीड—खेल के; अर्थम्—हेतु; अद्य—

अब; आत्त—लिया हुआ; मनुष्य—मनुष्यों के बीच; विग्रहम्—लड़ाई; नतः—नत; अस्मि—हूँ; धुर्यम्—महानतम, शिरोमणि; यदु-वृष्णि-सात्वताम्—यदु, वृष्टि तथा सात्वत कुलों के।

हे आत्म-निर्भर परमनियन्ता, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपने अपनी शक्ति से इस ब्रह्माण्ड की असीम विशिष्ट व्यवस्था की रचना की है। अब आप यदुओं, वृष्णियों तथा सात्वतों के बीच महानतम वीर के रूप में प्रकट हुए हैं और आपने मानवीय युद्ध में भाग लेने का निर्णय किया है।

श्रीशुक उवाच
एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ।
प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव ने कहा; एवम्—इस प्रकार; यदु-पतिम्—यदुओं में प्रमुख; कृष्णम्—कृष्ण को; भागवत—भक्तों के; प्रवरः—परम विख्यात; मुनिः—नारदमुनि ने; प्रणिपत्य—सादर नमस्कार करके; अभ्यनुज्ञातः—विदा किये गये; ययौ—चला गया; तत्—उन कृष्ण के; दर्शन—दर्शन करके; उत्सवः—परम हर्ष का अनुभव करते हुए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार यदुवंश के प्रधान भगवान् कृष्ण को सम्बोधित करने के बाद नारद ने झुककर सादर प्रणाम किया। तत्पश्चात् उस मुनियों में महान् तथा भक्तों में विख्यात नारद ने भगवान् से विदा ली और उनका साक्षात् दर्शन करने से उत्पन्न परम हर्ष का अनुभव करते हुए चले गये।

भगवानपि गोविन्दो हत्वा केशिनमाहवे ।
पशूनपालयत्पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; अपि—तथा; गोविन्दः—गोविन्द; हत्वा—मारकर; केशिनम्—केशी असुर को; आहवे—युद्ध में; पशून्—पशुओं का; अपालयत्—चराने लगे; पालैः—ग्वालबालों के साथ; प्रीतैः—अत्यन्त प्रसन्न; व्रज—वृन्दावन के वासियों को; सुख—सुख; आवहः—लाने वाले।

युद्ध में असुर केशी को मार डालने के बाद भगवान् कृष्ण अपने प्रमुदित ग्वालमित्रों के साथ गौवों तथा अन्य पशुओं को चराते रहे। इस तरह उन्होंने वृन्दावन के समस्त वासियों को हर्ष-उल्लास पहुँचाया।

एकदा ते पशून्पालाश्' चारयन्तोऽद्रिसानुषु ।
चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार; ते—उन; पशून्—पशुओं को; पालाः—ग्वालबालों ने; चारयन्तः—चराते हुए; अद्रि—पर्वत के; सानुषु—ढलानों पर; चक्रुः—खेला; निलायन—लुकाछिपी; क्रीडाः—खेल; चोर—चोरों के; पाल—तथा रक्षकों के; अपदेशतः—अभिनय करते हुए।

एक दिन पर्वत की ढलानों पर अपने पशु चराते हुए ग्वालबालों ने आपस में प्रतिद्वन्द्वी चोरों तथा मवेशि-पालकों (गड़ेरियों) का अभिनय करते हुए लुकाछिपी का खेल खेला।

तत्रासन्कतिचिच्चोराः पालाश्च कतिचिन्नृप ।
मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥ २७॥

शब्दार्थ

तत्र—उसमें; आसन्—थे; कतिचित्—कुछ; चोराः—चोर; पालाः—चराने वाले, पालक; च—तथा; कतिचित्—कुछ; नृप—हे राजा (परीक्षित); मेषायिताः—भेड़ का वेश बनाकर; च—तथा; तत्र—वहाँ; एके—कुछ ने; विजह्रुः—खेल खेला; अकुतः-भयाः—बिना किसी भय के।

हे राजन्, उस खेल में कुछ ग्वाले चोर बने, कुछ गडरिये तथा अन्य भेड़ बने। वे किसी संकट के भय के बिना सुखचैन से अपना खेल खेल रहे थे।

मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक् ।
मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥ २८॥

शब्दार्थ

मय-पुत्रः—मय असुर का पुत्र; महा मायः—बलशाली जादूगर; व्योमः—व्योम नामक; गोपाल—ग्वालबाल का; वेष—पहनावा, वेष; धृक्—धारण करके; मेषायितान्—भेड़ बनने वालों को; अपोवाह—भगा ले गया; प्रायः—लगभग सारे; चोरायितः—चोर बनकर खेलने के बहाने; बहून्—अनेक।

तब व्योम नामक एक शक्तिशाली जादूगर, जो असुर मय का पुत्र था, एक ग्वालबाल के वेश में वहाँ प्रकट हुआ। वह चोर के रूप में खेल में सम्मिलित होने का बहाना करते हुए, भेड़ बनने वाले अधिकांश ग्वालबालों को चुराने के लिए आगे बढ़ा।

गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतं नीतं महासुरः ।
शिलया पिदधे द्वारं चतु:पञ्चावशेषिताः ॥ २९॥

शब्दार्थ

गिरि—पर्वत की; दर्याम्—गुफा में; विनिक्षिप्य—फेंक कर; नीतम् नीतम्—क्रमशः ला लाकर; महा-असुरः—महान् असुर; शिलया—पत्थर से; पिदधे—बन्द कर दिया; द्वारम्—द्वार को; चतु:-पञ्च—चार या पाँच; अवशेषिताः—बचे रहे।

उस महा असुर ने धीरे धीरे अधिकाधिक ग्वालों का अपहरण कर लिया और उन्हें एक पर्वत-गुफा में ले जाकर फेंक दिया तथा उसके द्वार को एक बड़े पत्थर से बन्द कर दिया। अन्त

में केवल चार-पाँच बालक बचे जो खेल में भेड़ बने थे।

तस्य तत्कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् ।
गोपान्नयन्तं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका, व्योमासुर का; तत्—वह; कर्म—काम; विज्ञाय—पूरी तरह जानकर; कृष्णः—कृष्ण ने; शरण—शरण के; दः—दाता; सताम्—साधु भक्तों को; गोपान्—ग्वालबालों को; नयन्तम्—ले जाने वाले को; जग्राह—पकड़ लिया; वृकम्—भेड़िये को; हरिः—सिंह; इव—सदृश; ओजसा—बलपूर्वक।

समस्त सन्त भक्तों को शरण देने वाले भगवान् कृष्ण अच्छी तरह जान गये कि व्योमासुर कर क्या रहा है। जिस तरह कोई सिंह भेड़िये को दबोच लेता है उसी तरह कृष्ण ने उस असुर को जब वह अन्य ग्वालबालों को लिये जा रहा था बलपूर्वक धर दबोचा।

स निजं रूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशं बली ।
इच्छन्विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद्ग्रहणातुरः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

सः—वह असुर; निजम्—अपने मूल; रूपम्—रूप को; आस्थाय—धारण करके; गिरि-इन्द्र—राजसी पर्वत; सदृशम्—के सदृश; बली—शक्तिशाली; इच्छन्—चाहते हुए; विमोक्तुम्—मुक्त करने के लिए; आत्मानम्—स्वयं को; न अशक्नोत्—वह समर्थ नहीं था; ग्रहण—बलपूर्वक पकड़े जाने से; आतुरः—अशक्त हुआ।

वह असुर अपने मूल रूप में परिणत होकर विशाल पर्वत के समान बड़ा तथा बली बन गया। किन्तु वह कठोर प्रयास के बावजूद अपने को छुड़ा न पाया क्योंकि भगवान् की मजबूत पकड़ में होने से वह अपनी शक्ति खो चुका था।

तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ।
पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; निगृह्य—मजबूती से पकड़कर; अच्युतः—भगवान् कृष्ण ने; दोर्भ्याम्—अपनी भुजाओं से; पातयित्वा—गिरा कर; मही-तले—पृथ्वी पर; पश्यताम्—देखते देखते; दिवि—स्वर्गलोक में; देवानाम्—देवताओं के; पशु-मारम्—जिस तरह बलि-पशु का वध किया जाता है; अमारयत्—उसे मार डाला।

भगवान् अच्युत ने व्योमासुर को अपनी बाँहों के बीच में जकड़ कर पृथ्वी पर पदक दिया। तब स्वर्ग से देवताओं के देखते देखते कृष्ण ने उसे उसी तरह मार डाला जिस तरह कोई बलि-पशु का वध करता है।

तात्पर्य : आचार्यगण बतलाते हैं कि बलि-पशु को गला घोंटकर मारा जाता था।

गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निःसार्य कृच्छ्रतः ।
स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

गुहा—गुफा के; पिधानम्—अवरोध को; निर्भिद्य—तोड़कर; गोपान्—ग्वालबालों को; निःसार्य—बाहर निकालकर; कृच्छ्रतः—भयानक जगह से; स्तूयमानः—प्रशंसित होकर; सुरैः—देवताओं द्वारा; गोपैः—तथा ग्वालबालों द्वारा; प्रविवेश—प्रवेश किया; स्व—अपने; गोकुलम्—ग्वाल-ग्राम में।

तत्पश्चात् कृष्ण ने गुफा के दरवाजे को अवरुद्ध करने वाले शिलाखण्ड को चूर चूर कर दिया और बन्दी बनाये गये ग्वालबालों को वे सुरक्षित स्थान पर ले आये। इसके बाद देवताओं तथा ग्वालों द्वारा उनका यशोगान होने लगा और वे अपने ग्वाल-ग्राम, गोकुल, लौट गए।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''केशी तथा व्योम असुरों का वध'' नामक सैंतीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter अड़तीस

वृन्दावन में अक्रूर का आगमन

इस अध्याय में अक्रूर की मथुरा से वृन्दावन की यात्रा, उनके द्वारा मार्ग में कृष्ण तथा बलराम का ध्यान करने और उनके आगमन पर दोनों भाइयों द्वारा सम्मान प्रदर्शित किये जाने का वर्णन हुआ है।

जब कंस ने कृष्ण तथा बलराम को मथुरा में ले आने का आदेश अक्रूर को दे दिया तो एक दिन बड़े तड़के अक्रूर ने अपना रथ तैयार किया और गोकुल के लिए प्रस्थान कर दिया। यात्रा करते हुए उन्होंने सोचा, ''मुझे श्रीकृष्ण के उन चरणकमलों का दर्शन प्राप्त करने का परम सौभाग्य प्राप्त होने जा रहा है जिनकी पूजा ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य देवता करते हैं। यद्यपि कंस भगवान् तथा उनके भक्तों का शत्रु है किन्तु कंस की ही कृपा से मैं भगवान् के दर्शन पाने का महान् वरदान प्राप्त करूँगा। जब मैं उनके चरणकमलों को पहले पहल देखूँगा तो मेरे सारे पाप तुरन्त नष्ट हो जायेंगे। तब मैं अपने रथ से उतर कर कृष्ण तथा बलराम के पैरों पर गिर पड़ूँगा और यद्यपि मुझे कंस द्वारा भेजा गया है किन्तु तो भी सर्वज्ञ श्रीकृष्ण निश्चय ही मेरे प्रति शत्रुभाव नहीं रखेंगे।'' अक्रूर इस तरह मन ही मन सोचते हुए सूर्यास्त के समय गोकुल आ पहुँचे। वे अपने रथ से एक चरागाह में उतर पड़े और भाव-विभोर होकर

धूल में लोटने लगे।

तब अक्रूर व्रज की ओर बढ़े। जब उन्होंने कृष्ण तथा बलराम को देखा तो वे उनके चरणकमलों में गिर पड़े और दोनों भाइयों ने उनका आलिंगन किया। बाद में वे दोनों उन्हें अपने घर ले आये, उनसे यात्रा के सुखद के विषय में पूछा और नाना प्रकार से उनकी आवभगत की—उनके पाँव धोने के लिए जल, अर्घ्य तथा आसन आदि प्रदान किए, उनके चरण चापकर उनकी थकान दूर की तथा स्वादिष्ट भोजन कराया। महाराज नन्द ने भी अनेक मधुर वचनों से अक्रूर का सम्मान किया।

श्रीशुक उवाच
अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ।
उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अक्रूरः—अक्रूर; अपि च—तथा; ताम्—उस; रात्रिम्—रात; मधु-पुर्याम्—मथुरा नगरी में; महा-मतिः—उच्च विचार वाला; उषित्वा—रहकर; रथम्—अपना रथ; आस्थाय—चढ़ कर; प्रययौ—रवाना हुआ; नन्द-गोकुलम्—नन्द महाराज के ग्वाल-ग्राम के लिए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : महामति अक्रूर ने वह रात मथुरा में बिताई और तब अपने रथ पर सवार होकर नन्द महाराज के ग्वाल-ग्राम के लिए रवाना हुए।

तात्पर्य : कंस ने फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन अक्रूर को वृन्दावन जाने का आदेश दिया। अक्रूर मथुरा में रात बिताकर अगले दिन तड़के ही रवाना हो गये। उसी दिन प्रातः नारद ने वृन्दावन में कृष्ण की स्तुति की और दोपहर के बाद वहाँ व्योमासुर मारा गया। अक्रूर गोधूलि वेला में भगवान् के ग्राम में प्रविष्ट हुए।

गच्छन्पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे ।
भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिन्तयत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

गच्छन्—यात्रा करते हुए; पथि—मार्ग में; महा-भागः—परम भाग्यशाली; भगवति—भगवान् के प्रति; अम्बुज-ईक्षणे—कमल-नेत्र प्रभु; भक्तिम्—भक्ति; पराम्—अद्वितीय; उपगतः—अनुभव किया; एवम्—इस प्रकार; एतत्—यह; अचिन्तयत्—सोचा।

मार्ग में यात्रा करते हुए महात्मा अक्रूर को कमल-नेत्र भगवान् के प्रति अपार भक्ति का अनुभव हुआ अतः वे इस प्रकार सोचने लगे।

किं मयाचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ।
किं वाथाप्यर्हते दत्तं यद्द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥ ३॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; मया—मेरे द्वारा; आचरितम्—किया गया है; भद्रम्—अच्छा कार्य; किम्—क्या; तप्तम्—ताप सहा गया; परमम्—कठिन; तपः—तपस्या; किम्—क्या; वा—अथवा; अथ अपि—अन्यथा; अर्हते—की गई पूजा; दत्तम्—दिया गया दान; यत्—जिससे; द्रक्ष्यामि—देखने जा रहा हूँ; अद्य—आज; केशवम्—भगवान् कृष्ण को।

[श्री अक्रूर ने सोचा]: मैंने ऐसे कौन-से शुभ कर्म किये हैं, ऐसी कौन-सी कठिन तपस्या की है, ऐसी कौन-सी पूजा की है या ऐसा कौन-सा दान दिया है, जिससे आज मैं भगवान् केशव का दर्शन करूँगा?

ममैतद्दुर्लभं मन्य उत्तमःश्लोकदर्शनम् ।
विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥ ४॥

शब्दार्थ

मम—मेरा; एतत्—यह; दुर्लभम्—दुष्प्राप्य; मन्ये—मानता हूँ; उत्तमः-श्लोक—भगवान् का जिनकी प्रशंसा उत्तम श्लोकों द्वारा की जाती है; दर्शनम्—दर्शन; विषय-आत्मनः—विषय-भोगों में लिप्त रहने वाले के हेतु; यथा—जिस तरह; ब्रह्म—वेदों का; कीर्तनम्—कीर्तन; शूद्र—निम्न श्रेणी का व्यक्ति; जन्मनः—जन्म से, जन्मना।

चूँकि मैं विषय-भोगों में लीन रहने वाला भौतिकतावादी व्यक्ति हूँ अतः अपने लिए उत्तम श्लोक में स्तुति किए जाने वाले भगवान् का दर्शन करने का यह अवसर प्राप्त कर पाना मैं उसी तरह कठिन समझता हूँ जिस तरह शूद्र के रूप में जन्मे व्यक्ति के लिए वैदिक मंत्रों के उच्चारण करने की अनुमति प्राप्त करना होता है।

मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम् ।
ह्रियमाणः कलनद्या क्वचित्तरति कश्चन ॥ ५॥

शब्दार्थ

मा एवम्—मुझे ऐसा नहीं सोचना चाहिए; मम—मुझ; अधमस्य—अधम का; अपि—भी; स्यात्—हो सकता है; एव—निश्चय ही; अच्युत—अच्युत का; दर्शनम्—दर्शन; ह्रियमाणः—खींचा जाकर; काल—समय की; नद्या—नदी के द्वारा; क्वचित्—कभी; तरति—पार करके किनारा पा जाता है; कश्चन—कोई।

किन्तु बहुत हुआ, छोड़ो इन विचारों को, आखिर मुझ जैसे पतितात्मा को भी अच्युत भगवान् को देखने का अवसर प्राप्त हो सकता है क्योंकि काल रूपी नदी के प्रवाह में बह रहे बद्ध-आत्माओं में से कोई एक आत्मा तो कभी कभी किनारे तक पहुँच ही सकता है।

ममाद्यामङ्गलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः ।

यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

मम—मेरा; अद्य—आज; अमङ्गलम्—अशुभ पापकर्म; नष्टम्—उन्मूलित; फल-वान्—फलीभूत; च—तथा; एव—निस्सन्देह; मे—मेरा; भवः—जन्म; यत्—क्योंकि; नमस्ये—नमस्कार करने जा रहा हूँ; भगवतः—भगवान् के; योगि-ध्येय—योगियों द्वारा ध्यान किये जाने वाले; अङ्घ्रि—चरणों को; पङ्कजम्—कमलवत्।

आज मेरे समस्त पापकर्मों का उन्मूलन हो चुका है और मेरा जन्म सफल हो गया है क्योंकि मैं भगवान् के उन चरणकमलों को नमस्कार करूँगा जिनका ध्यान बड़े बड़े योगी करते हैं।

कंसो बताद्याकृत मेऽत्यनुग्रहं
द्रक्ष्येऽङ्घ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः ।
कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः
पूर्वेऽतरन्यन्नखमण्डलत्विषा ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

कंसः—राजा कंस ने; बत—निस्सन्देह; अद्य—आज; अकृत—किया है; मे—मेरे साथ; अति-अनुग्रहम्—अत्यन्त कृपा का कार्य; द्रक्ष्ये—देखूँगा; अङ्घ्रि-पद्मम्—चरणकमलों को; प्रहितः—भेजा गया; अमुना—उसके द्वारा; हरेः—भगवान् के; कृत—लिया; अवतारस्य—इस संसार में उनका अवतरण; दुरत्ययम्—दुर्लंघ्य; तमः—संसार का अंधकार; पूर्वे—भूतकाल के मनुष्य; अतरन्—तर गये, पार कर गये; यत्—जिसके; नख-मण्डल—पैर के नाखूनों के मण्डल के; त्विषा—तेज से।

निस्सन्देह, आज कंस ने मुझे उन भगवान् हरि के चरणकमलों का दर्शन करने के लिए भेजकर मेरे ऊपर महती कृपा की है, जिन्होंने अब इस संसार में अवतार लिया है। भूतकाल में उनके चरण-नखों के तेज से ही इस भौतिक संसार के दुर्लंघ्य अंधकार को अनेक आत्माओं ने पार करके मुक्ति प्राप्त की है।

तात्पर्य : अक्रूर ने देखा कि यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि ईर्ष्यालु आसुरी कंस ने उन्हें भगवान् कृष्ण का दर्शन करने के लिए भेजकर उन पर महती कृपा की है।

यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः
श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्वतैः ।
गोचारणायानुचरैश्चरद्वने
यद्गोपिकानां कुचकुङ्कुमाङ्कितम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो (चरणकमल); अर्चितम्—पूजित; ब्रह्म-भव—ब्रह्मा तथा शिव; आदिभिः—इत्यादि द्वारा; सुरैः—देवताओं द्वारा; श्रिया—श्री द्वारा; च—भी; देव्या—देवी; मुनिभिः—मुनियों द्वारा; स-सात्वतैः—भक्तों के समेत; गो—गौवें; चारणाय—चराने के लिए; अनुचरैः—अपने संगियों समेत; चरत्—विचरण करते; वने—जंगल में; यत्—जो; गोपिकानाम्—गोपिकाओं के; कुच—स्तन से; कुङ्कुम—लाल कुंकुम चूर्ण से; अङ्कितम्—चिन्हित।

उन्हीं चरणकमलों की ब्रह्मा, शिव तथा अन्य सारे देवता, लक्ष्मीजी तथा बड़े बड़े मुनि और

वैष्णव पूजा करते हैं। उन्हीं चरणकमलों से भगवान् अपने संगियों सहित गौवें चराते समय जंगल में विचरण करते हैं और वे ही चरण गोपियों के स्तनों पर लगे कुंकुम से सने रहते हैं।

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं
स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् ।
मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं
प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

द्रक्ष्यामि—देखूँगा; नूनम्—निश्चय ही; सु—सुन्दर; कपोल—गाल; नासिकम्—तथा नाक; स्मित—हँसी से युक्त; अवलोक—चितवन; अरुण—लाल; कञ्ज—कमल सदृश; लोचनम्—आँखें; मुखम्—मुख; मुकुन्दस्य—भगवान् कृष्ण के; गुड—घुँघराले; अलक—बाल; आवृतम्—चारों ओर से घिरा; प्रदक्षिणम्—परिक्रमा; मे—मेरा; प्रचरन्ति—सम्पन्न कर रहे हैं; वै—निस्सन्देह; मृगाः—मृगगण, हिरन।

अवश्य ही मैं भगवान् मुकुन्द के मुख को देखूँगा क्योंकि अब हिरन मेरी दाईं ओर से निकल रहे हैं। वह मुख घुँघराले बालों से घिरा है और उनके आकर्षक गालों तथा नाक, उनकी मन्द हासयुक्त चितवन तथा लाल कमल जैसी आँखों से शोभायमान है।

तात्पर्य : अक्रूर ने एक शुभ शकुन देखा—उनकी दाईं ओर से हिरन गुजर रहे थे अतः उन्हें विश्वास हो गया कि वे भगवान् कृष्ण का दर्शन पा सकेंगे।

अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो
भारावताराय भुवो निजेच्छया ।
लावण्यधाम्नो भवितोपलम्भनं
मह्यं न न स्यात्फलमञ्जसा दृशः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अपि—और भी; अद्य—आज; विष्णोः—भगवान् विष्णु के; मनुजत्वम्—मनुष्य रूप को; ईयुषः—धारण किये हुए; भार—भार; अवताराय—कम करने के लिए; भुवः—पृथ्वी की; निज—अपनी; इच्छया—इच्छा से; लावण्य—सौंदर्य के; धाम्नः—धाम की; भविता—होगी; उपलम्भनम्—अनुभूति; मह्यम्—मेरे लिए; न—ऐसा नहीं है कि; न स्यात्—नहीं होयेगा; फलम्—फल; अञ्जसा—प्रत्यक्ष; दृशः—दर्शन का।

मुझे समस्त सौन्दर्य के आगार उन भगवान् विष्णु के दर्शन होंगे जिन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए स्वेच्छा से मनुष्य जैसा स्वरूप धारण किया है। इस तरह इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरी आँखों को उनके अस्तित्व का फल प्राप्त हो जायेगा।

य ईक्षिताहंरहितोऽप्यसत्सतोः

स्वतेजसापास्ततमोभिदाभ्रमः ।
स्वमाययात्मन्रचितैस्तदीक्षया
प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; ईक्षिता—साक्षी; अहम्—मिथ्या अभिमान से; रहितः—रहित; अपि—फिर भी; असत्-सतोः—कारण-कार्य का; स्व-तेजसा—अपनी निजी शक्ति से; अपास्त—दूर करके; तमः—अज्ञान का अंधकार; भिदा—पृथकत्व का भाव; भ्रमः—तथा भ्रम; स्व-मायया—अपनी भौतिक सृजन-शक्ति द्वारा; आत्मन्—अपने भीतर; रचितैः—रचे हुए (जीवों) के द्वारा; तत्-ईक्षया—माया पर दृष्टि डालने से; प्राण—प्राण-वायु; अक्ष—इन्द्रियाँ; धीभिः—तथा बुद्धि से; सदनेषु—जीवों के शरीरों के भीतर; अभीयते—उनकी उपस्थिति की प्रतीति होती है।

वे भौतिक कार्य-कारण के साक्षी हैं फिर भी वे उनकी झूठी पहचान से अपने को सदैव पृथक् रखते हैं। वे अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा पृथकत्व तथा भ्रम के अंधकार को दूर करते हैं। जब वे अपनी भौतिक सृजन-शक्ति पर दृष्टि डालते हैं, तो इस जगत के जीव प्रकट होते हैं और ये जीव उन्हें अपनी प्राण-वायु, इन्द्रियों तथा बुद्धि कार्यों में अप्रत्यक्ष रूप से अनुभव करते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में अक्रूर ने उन भगवान् के सर्वशक्तिमान पद की स्थापना की है जिनका दर्शन करने वे वृन्दावन जा रहे हैं। भगवान् से पार्थक्य की मिथ्या धारणा का वर्णन भागवत के ग्यारहवें स्कंध (११.२.३७) में मिलता है—*भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्याद् ईशाद् अपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।* यद्यपि सारा जगत परब्रह्म कृष्ण से उद्भूत है किन्तु हम इस "द्वितीय वस्तु"—इस भौतिक जगत—को भगवान् के अस्तित्व से सर्वथा पृथक् मानते हैं। इस मनोवृत्ति से हम इस "द्वितीय वस्तु" का उपभोग निजी इन्द्रिय तृप्ति के लिए करने का प्रयास करते हैं। अतः भौतिक जीवन के पीछे जो मनोवैज्ञानिक भाव रहता है, वह यह भ्रम है कि यह जगत ईश्वर से किसी न किसी प्रकार भिन्न है, अतः हमारे भोग के निमित्त है।

विडम्बना यह है कि निर्विशेषवादी दार्शनिक इस जगत को नितान्त मिथ्या और ब्रह्म से पूरी तरह विलग (भिन्न) मानते हैं। दुर्भाग्यवश इस जगत को इसकी दैवी प्रकृति से या दूसरे शब्दों में ईश्वर के प्रति सम्बन्ध से विलग करने के कृत्रिम प्रयास से लोग इसका पूर्ण परित्याग नहीं करते अपितु इसको भोगना चाहते हैं। जहाँ एक ओर यह सत्य है कि यह संसार नश्वर है, अतः एक प्रकार से माया है किन्तु माया की क्रियाविधि तो भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति है। इसको मानते हुए हमें इस जगत के शोषण के किसी भी प्रयास से अपने को विलग कर लेना चाहिए। बल्कि हमें इसे ईश्वर की शक्ति

मानना चाहिए। वस्तुत: जब हम यह समझ लेंगे कि यह जगत ईश्वर का है और हमारी इन्द्रिय तृप्ति के लिए नहीं है तभी हम अपनी भौतिक इच्छाओं का परित्याग कर सकेंगे।

अभीयते शब्द ध्यान द्वारा भगवान् की उपस्थिति की अनुभूति की विधि का सूचक है। *श्रीमद्भागवत* के द्वितीय स्कंध में भी (२.२.३५) इस विधि का वर्णन हुआ है—

भगवान् सर्वभूतेषु लक्षित: स्वात्मना हरि: ।

दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकै ॥

"भगवान् श्रीकृष्ण आत्मा के साथ साथ प्रत्येक जीव में रहते हैं, इस तथ्य की अनुभूति और कल्पना हमारे देखने तथा बुद्धि से सहायता लेने की क्रियाओं से होती है।"

अक्रूर बतलाते हैं कि भगवान् तो सामान्य देहधारी जीवों को व्यापने वाले अहंकार से मुक्त हैं। फिर भी वे अन्यों की ही तरह देहधारी प्रतीत होते हैं इसलिए इस कथन के विरुद्ध आपत्ति उठाई जा सकती है कि वे अहंकार से मुक्त हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस पहेली पर अपनी टीका इस प्रकार की है : "हम यह कैसे अन्तर करें कि कोई अहंकार से मुक्त है या उससे ग्रस्त है? आपत्ति करने वाला यह तर्क दे सकता है कि यदि जीव शरीर के भीतर स्थित है, तो उसे उसी दुख तथा भ्रम का सामना करना होगा जो उसके भीतर होते हैं जिस तरह घर के भीतर रहने वाला व्यक्ति घर के भीतर के अंधेरे, गर्मी तथा सर्दी से अपने को बचा नहीं सकता चाहे वह घर से अनुरक्त हो या नहीं।" इस आपत्ति का उत्तर इस प्रकार है : भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति से अज्ञान के अंधकार के साथ ही इससे उत्पन्न पृथकत्व तथा मोह को दूर करते हैं।

यस्याखिलामीवहभि: सुमङ्गलै:-
वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभि: ।
प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगत्
यास्तद्विरक्ता: शवशोभना मता: ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; अखिल—सारा; अमीव—पाप; हभि:—नष्ट करने वाला; सु-मङ्गलै:—अत्यन्त शुभ; वाच:—शब्द; विमिश्रा:—जुड़े हुये; गुण—गुणों से; कर्म—कर्मों; जन्मभि:—तथा अवतारों से; प्राणन्ति—प्राण दे देते हैं; शुम्भन्ति—सुन्दर बनाते हैं; पुनन्ति—तथा शुद्ध करते हैं; वै—निस्सन्देह; जगत्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड; या:—जो (शब्द); तत्—इनके; विरक्ता:—रहित; शव—मृत शरीर का; शोभना:—सजाने जैसा; मता:—माना जाता है।

भगवान् के गुणों, कर्मों तथा अवतारों से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उत्पन्न समस्त

सौभाग्य एवं इन तीनों का वर्णन करने वाले शब्द संसार को जीवनदान देते हैं, उसे सुशोभित बनाते हैं और शुद्ध करते हैं। दूसरी ओर, उनकी महिमा से विहीन शब्द शव की सजावट करने जैसे होते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी यह सम्भव आपत्ति उठाते हैं: जो व्यक्ति सामान्य गर्व से रहित है, जो पूर्णतया आत्मतुष्ट है, वह लीलाओं में कैसे संलग्न हो सकता है? इसका उत्तर यहाँ दिया हुआ है। भगवान् कृष्ण अपने प्रिय भक्तों के आनन्द के लिए ही शुद्ध आध्यत्मिक धरातल पर कर्म करते हैं, किसी प्रकार की संसारी तुष्टि के लिए नहीं।

स चावतीर्णः किल सत्वतान्वये
स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् ।
यशो वितन्वन्व्रज आस्त ईश्वरो
गायन्ति देवा यदशेषमङ्गलम् ॥ १३॥

शब्दार्थ

सः—वह; च—तथा; अवतीर्णः—अवतरित होकर; किल—निस्सन्देह; सात्वत—सात्वतों के; अन्वये—कुल में; स्व—अपना; सेतु—धर्म के संकेत; पाल—पालने वाला; अमर-वर्य—मुख्य देवताओं का; शर्म—हर्ष; कृत्—उत्पन्न करके; यशः—अपनी ख्याति; वितन्वन्—फैलाते हुए; व्रजे—व्रज में; आस्ते—उपस्थित है; ईश्वरः—परमेश्वर; गायन्ति—गाते हैं; देवाः—देवतागण; यत्—जिसका; अशेष-मङ्गलम्—सर्व कल्याणप्रद।

वे ही भगवान् सात्वत वंश में प्रमुख देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अवतरित हुए हैं, जो उनके द्वारा निर्मित्त धर्म के नियमों को धारण करने वाले हैं। वे वृन्दावन में रहते हुए अपने यश का विस्तार करते हैं जिसकी महिमा देवतागण गाकर करते हैं और जो सबों को मंगल प्रदान करने वाला है।

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं
त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम् ।
रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं
द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः ॥ १४॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; तु—फिर भी; अद्य—आज; नूनम्—निश्चय ही; महताम्—महात्माओं के; गतिम्—गन्तव्य को; गुरुम्—तथा गुरु को; त्रै-लोक्य—तीनों जगतों की; कान्तम्—असली सुन्दरता; दृशि-मत्—आँख वालों के लिए; महा-उत्सवम्—महान् उत्सव; रूपम्—उनका साकार रूप; दधानम्—प्रकट करते हुए; श्रियः—लक्ष्मी का; ईप्सित—इच्छित; आस्पदम्—शरणस्थल; द्रक्ष्ये—देखूँगा; मम—मेरा; आसन्—आ चुके हैं; उषसः—सबेरे; सु-दर्शनाः—देखने में शुभ।

आज मैं उन्हें अवश्य देखूँगा, जो कि महात्माओं के गन्तव्य तथा आध्यात्मिक गुरु हैं। सभी

नेत्रवानों को उनके दर्शन से हर्ष होता है क्योंकि वे ब्रह्माण्ड के असली सौन्दर्य हैं। निस्सन्देह उनका साकार रूप लक्ष्मीजी द्वारा अभीप्सित आश्रय है। अब मेरे जीवन के समस्त प्रभात शुभ बन चुके हैं।

अथावरूढः सपदीशयो रथात्
प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये ।
धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं
नमस्य आभ्यां च सखीन्वनौकसः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; अवरूढः—उतरकर; सपदि—तुरन्त; ईशयोः—दोनों ईश्वरों के; रथात्—रथ से; प्रधान-पुंसोः—भगवान् के; चरणम्—चरणों को; स्व-लब्धये—आत्म-साक्षात्कार के लिए; धिया—उनकी बुद्धि से; धृतम्—पकड़े हुए; योगिभिः—योगियों द्वारा; अपि—भी; अहम्—मैं; ध्रुवम्—निश्चित रूप से; नमस्ये—नमस्कार करूँगा; आभ्याम्—उन दोनों को; च—भी; सखीन्—मित्रों; वन-ओकसः—वनवासियों को।

तब मैं तुरन्त अपने रथ से नीचे उतर आऊँगा और भगवान् कृष्ण तथा भगवान् बलराम दोनों के चरणकमलों को नमस्कार करूँगा। उनके पैर वही हैं, जिन्हें आत्मसाक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील बड़े बड़े योगी अपने मन के भीतर धारण करते हैं। मैं दोनों के बालमित्रों तथा वृन्दावन के अन्य समस्त वासियों को भी अपना नमस्कार निवेदित करूँगा।

अप्यङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः
शिरस्यधास्यन्निजहस्तपङ्कजम् ।
दत्ताभयं कालभुजाङ्गरंहसा
प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां णृनाम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

अपि—और भी; अङ्घ्रि—उनके चरणों के; मूले—के निकट; पतितस्य—गिरे हुए का; मे—मेरे; विभुः—शक्तिशाली प्रभु; शिरसि—सिर पर; अधास्यत्—रखेंगे; निज—अपना; हस्त—हाथ; पङ्कजम्—कमल सदृश; दत्त—देने वाला; अभयम्—अभय; काल—समय; भुज-अङ्ग—सर्प का; रंहसा—वेग से; प्रोद्वेजितानाम्—जो अत्यधिक व्यग्र हैं; शरण—शरण; एषिणाम्—ढूँढ़ने वाले; नृणाम्—मनुष्यों के लिए।

और जब मैं उनके चरणों पर गिर पड़ूँगा तो सर्वशक्तिमान प्रभु मेरे सिर पर अपना करकमल रख देंगे। जो लोग काल रूपी शक्तिशाली सर्प से अत्यन्त विचलित होकर उनकी शरण में जाते हैं, यह हाथ उनके सारे भय को दूर कर देता है।

समर्हणं यत्र निधाय कौशिक-

स्तथा बलिश्चाप जगत्त्रयेन्द्रताम् ।
यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं
स्पर्शेन सौगन्धिकगन्ध्यपानुदत् ॥ १७॥

शब्दार्थ

समर्हणम्—सादर भेंट; यत्र—जिसमें; निधाय—रखकर; कौशिकः—पुरन्दर; तथा—और; बलिः—बलि महाराज ने; च—भी; आप—प्राप्त किया; जगत्—लोकों का; त्रय—तीन; इन्द्रताम्—शासन (इन्द्र रूप में); यत्—जो (कर-कमल); वा—तथा; विहारे—लीला (रासनृत्य) के समय; व्रज-योषिताम्—व्रज की स्त्रियों की; श्रमम्—थकान को; स्पर्शेन—उनके स्पर्श से; सौगन्धिक—सुगन्धवान फूल की तरह; गन्धि—सुगन्धित; अपानुदत्—पोंछा।

उस कमल सदृश हाथ में दान देकर पुरन्दर तथा बलि ने स्वर्ग के राजा इन्द्र के पद को प्राप्त किया और रासनृत्य की आनन्द लीलाओं के समय जब भगवान् ने गोपियों के पसीने को पोंछकर उनकी थकान दूर की तो उनके मुखस्पर्श ने उस हाथ को मधुर फूल की तरह सुगन्धित बना दिया।

तात्पर्य : मानसरोवर में पाये जाने वाले कमल को पुराणों में *सौगन्धिक* कहा गया है। भगवान् कृष्ण के कमल जैसे हाथ ने गोपियों के सुन्दर मुखड़ों का स्पर्श करने से इसी फूल की सुगन्धि प्राप्त कर ली थी। रासलीला के समय घटित हुई इस विशिष्ट घटना का वर्णन दसवें स्कंध के तैंतीसवें अध्याय में हुआ है।

न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः
कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ।
योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं
क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥ १८॥

शब्दार्थ

न—नहीं; मयि—मेरी ओर; उपैष्यति—उत्पन्न करेगा; अरि—शत्रु होने की; बुद्धिम्—प्रवत्ति; अच्युतः—अच्युत भगवान्; कंसस्य—कंस का; दूतः—दूत; प्रहितः—भेजा गया; अपि—यद्यपि; विश्व—हर वस्तु का; दृक्—साक्षी; यः—जो; अन्तः—भीतर; बहिः—तथा बाहर; चेतसः—हृदय का; एतत्—यह; ईहितम्—जो भी किया जाता है; क्षेत्र—खेत का (भौतिक शरीर का); ज्ञः—ज्ञाता; ईक्षति—देखता है; अमलेन—पूर्ण; चक्षुषा—दृष्टि से।

यद्यपि कंस ने मुझे यहाँ अपना दूत बनाकर भेजा है किन्तु अच्युत भगवान् मुझे अपना शत्रु नहीं मानेंगे। आखिर, सर्वज्ञ प्रभु इस भौतिक शरीर रूपी क्षेत्र के वास्तविक ज्ञाता हैं (क्षेत्रज्ञ) और वे अपनी पूर्ण दृष्टि से बद्धजीवों के हृदय के सारे प्रयासों को अन्दर और बाहर से देखते हैं।

तात्पर्य : सर्वज्ञ होने से भगवान् कृष्ण जानते थे कि अक्रूर बाहर से कंस का मित्र था। भीतर से वह कृष्ण का नित्य भक्त था।

अप्यङ्घ्रिमूलेऽवहितं कृताञ्जलिं
मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा ।
सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो
वोढा मुदं वीतविशङ्क ऊर्जिताम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अपि—तथा; अङ्घ्रि—पैरों के; मूले—तल पर; अवहितम्—स्थिर; कृत-अञ्जलिम्—हाथ जोड़े; माम्—मुझको; ईक्षिता—देखेंगे; सस्मितम्—हँसी से युक्त; आर्द्रया—स्नेहपूर्ण; दृशा—चितवन से; सपदि—तुरन्त; अपध्वस्त—समूल नष्ट; समस्त—सारे; किल्बिषः—कल्मष; वोढा—प्राप्त करूँगा; मुदम्—सुख; वीत—मुक्त होकर; विशङ्कः—शंका से; ऊर्जिताम्—तीव्र।

इस तरह जब मैं हाथ जोड़कर उनके पैरों पर प्रणाम करने के लिए गिरकर पड़ा रहूँगा वे अपनी हँसीयुक्त स्नेहमयी चितवन मुझ पर डालेंगे। तब मेरा सारा कल्मष छू-मन्तर हो जायेगा। तब मेरे सारे संशय दूर हो जायेंगे और मैं गहन आनन्द का अनुभव करूँगा।

सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं
दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम् ।
आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव मे
बन्धश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सुहृत्-तमम्—सर्वश्रेष्ठ मित्र; ज्ञातिम्—परिवार का सदस्य; अनन्य—एकान्तिक; दैवतम्—पूजा के लक्ष्य के रूप में (आराध्य देव); दोर्भ्याम्—अपने दोनों बाहुओं में; बृहद्भ्याम्—विशाल; परिरप्स्यते—आलिंगन; अथ—तत्पश्चात्; माम्—मुझको; आत्मा—शरीर; हि—निस्सन्देह; तीर्थी—पवित्र; क्रियते—करेगा; तदा एव—तभी; मे—मेरा; बन्धः—बन्धन; च—तथा; कर्म-आत्मकः—सकाम कर्म के कारण; उच्छ्वसिति—शिथिल हो जायेगा; अतः—इसके फलस्वरूप।

मुझे अपने घनिष्ठ मित्र तथा सम्बन्धी के रूप में पहचान कर कृष्ण अपनी विशाल भुजाओं से मुझे अपने गले लगा लेंगे जिससे उसी क्षण मेरा शरीर पवित्र हो जायेगा और सकाम कर्मों से जनित मेरे भौतिक बन्धन शून्य हो जायेंगे।

लब्ध्वाङ्गसङ्गम्प्रणतम्कृताञ्जलिं
मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः ।
तदा वयं जन्मभृतो महीयसा
नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

लब्ध्वा—प्राप्त करके; अङ्ग-सङ्गम्—भौतिक सम्पर्क; प्रणतम्—सिर नीचा किये खड़ा हुआ; कृत-अञ्जलिम्—हाथ जोड़े; माम्—मुझसे; वक्ष्यते—बोलेंगे; अक्रूर—हे अक्रूर; तत—मेरे परिजन; इति—इन शब्दों में; उरुश्रवाः—कृष्ण, जिनकी ख्याति अपार है; तदा—तब; वयम्—हम; जन्म-भृतः—जन्म सफल हो जायेगा; महीयसा—पुरुष-श्रेष्ठ द्वारा; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; आदृतः—आदरित; यः—जो; धिक्—धिक्कार है; अमुष्य—उसका; जन्म—जन्म; तत्—वह।

सर्व-सुविख्यात कृष्ण द्वारा गले लगाये जाने के बाद मैं उनके समक्ष विनम्र भाव से सिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर खड़ा रहूँगा और वे मुझसे कहेंगे, ''मेरे प्रिय अक्रूर,'' उसी क्षण मेरे जीवन का उद्देश्य सफल हो जायेगा। दरअसल जिस व्यक्ति को भगवान् मान्यता नहीं देते उसका जीवन दयनीय है।

न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो
न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ।
तथापि भक्तान्भजते यथा तथा
सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

न तस्य—उसका नहीं है; कश्चित्—कोई; दयितः—प्रिय; सुहृत्तमः—सर्वश्रेष्ठ मित्र; न च—न तो; अप्रियः—अप्रिय; द्वेष्यः—जिससे द्वेष किया जा सके; उपेक्ष्यः—उपेक्षित; एव—निस्सन्देह; वा—अथवा; तथा अपि—फिर भी; भक्तान्—अपने भक्तों को; भजते—भजता है; यथा—वे जैसे हैं; तथा—उसी के अनुसार; सुर-द्रुमः—कल्पवृक्ष; यद्वत्—जिस प्रकार; उपाश्रितः—शरणागत; अर्थ—इच्छित फल; दः—देने वाला।

भगवान् का न तो कोई अप्रिय है, न सर्वश्रेष्ठ मित्र है, न ही वे किसी को अवांछनीय, घृणित या उपेक्षणीय मानते हैं। साथ ही साथ अपने भक्तों से, जीस भाव से पूजा करते हैं उसी तरह प्रेम का आदान-प्रदान करते हैं जिस तरह कल्प-वृक्ष अपने पास आने वालों की इच्छाएँ पूरी करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् ने ऐसी ही बात *भगवद्गीता* (९.२९) में कही है :

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥

''न तो मैं किसी से द्वेष करता हूँ, न मैं किसी का पक्षपात करता हूँ। मैं सबों के लिए एकसमान हूँ। किन्तु जो भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह मेरा मित्र है और वह मुझमें रहता है और मैं भी उसका मित्र हूँ।''

इसी प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु उन लोगों के लिए वज्र जैसे कठोर थे, जो उनसे ईर्ष्या करते थे किन्तु जो उनके दैवी उद्देश्य को समझते थे उनके लिए वे गुलाब के फूल की तरह कोमल थे।

किं चाग्रजो मावनतं यदूत्तमः

स्मयन्परिष्वज्य गृहीतमञ्जलौ ।
गृहं प्रवेष्याप्तसमस्तसत्कृतं
सम्प्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

किम् च—और तो और; अग्र-जः—उनके बड़े भाई (बलराम); मा—मुझको; अवनतम्—सिर झुकाये मुझको; यदु-उत्तमः—यदुओं में सर्वश्रेष्ठ; स्मयन्—हँसते हुए; परिष्वज्य—आलिंगन करके; गृहीतम्—पकड़े हुए; अञ्जलौ—मेरी हथेलियों से; गृहम्—घर में; प्रवेष्य—ले जाकर; आप्त—प्राप्त किया हुआ; समस्त—सारा; सत्-कृतम्—सत्कार; सम्प्रक्ष्यते—पूछेंगे; कंस—कंस द्वारा; कृतम्—किया गया; स्व-बन्धुषु—अपने परिवार वालों के प्रति।

और जब मैं अपना सिर झुकाये खड़ा होऊँगा तब कृष्ण के बड़े भाई, यदुश्रेष्ठ बलराम मेरे जुड़े हुए हाथों को थाम लेंगे और फिर मेरा आलिंगन करके वे मुझे अपने घर ले जायेंगे। वहाँ वे सभी प्रकार की अनुष्ठान-सामग्री से मेरा सत्कार करेंगे और मुझसे पूछेंगे कि कंस उनके परिवार वालों के साथ कैसा व्यवहार कर रहा है।

श्रीशुक उवाच
इति सञ्चिन्तयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ।
रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥ २४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; सञ्चिन्तयन्—गम्भीरतापूर्वक सोचते हुए; कृष्णम्—कृष्ण के विषय में; श्वफल्क-तनयः—श्वफल्कपुत्र, अक्रूर; अध्वनि—मार्ग में; रथेन—अपने रथ द्वारा; गोकुलम्—गोकुल गाँव; प्राप्तः—पहुँच गया; सूर्यः—सूर्य; च—तथा; अस्त-गिरिम्—अस्ताचल; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजन्, मार्ग पर जाते हुए श्वफल्कपुत्र (अक्रूर) कृष्ण के विषय में इस तरह गम्भीरतापूर्वक ध्यान करते करते जब गोकुल पहुँचे तो सूर्यअस्त होने को था।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की टीका है कि कृष्ण के ध्यान में मग्न होने के कारण यद्यपि अक्रूर को मार्ग भी नहीं सूझ रहा था फिर भी वे अपने रथ पर चढ़कर गोकुल पहुँच गये।

पदानि तस्याखिललोकपाल-
किरीटजुष्टामलपादरेणोः ।
ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि
विलक्षितान्यब्जयवाङ्कुशाद्यैः ॥ २५॥

शब्दार्थ

पदानि—पदचिह्न; तस्य—उसके; अखिल—समस्त; लोक—लोकों के; पाल—पालकों द्वारा; किरीट—अपने मुकुटों पर; जुष्ट—रखा; अमल—शुद्ध; पाद—पैरों की; रेणोः—धूलि का; ददर्श—(अक्रूर ने) देखा; गोष्ठे—चरागाह में; क्षिति—पृथ्वी

पर; कौतुकानि—अद्‌भुत ढंग से अलंकृत; विलक्षितानि—स्पष्ट दिख रहे; अब्ज—कमल; यव—जौ की बाल; अङ्कुश—हाथी का अंकुश; आद्यैः—इत्यादि से।

चरागाह में अक्रूर ने उन पैरों के चिन्ह देखे जिनकी शुद्ध धूल को समस्त ब्रह्माण्डों के लोकपाल अपने मुकुटों में धारण करते हैं। भगवान् के वे चरणचिन्ह जो कमल, वांकुर तथा अंकुश जैसे चिन्हों से पहचाने जा सकते थे, पृथ्वी की शोभा को बढ़ा रहे थे।

तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः
प्रेम्णोर्ध्वरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः ।
रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत
प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तत्—कृष्ण के चरणचिह्नों के; दर्शन—दर्शन से; आह्लाद—आनन्द से; विवृद्ध—अत्यधिक वर्धित; सम्भ्रमः—क्षोभ; प्रेम्णा—शुद्ध-प्रेमवश; ऊर्ध्व—सीधे खड़े; रोम—शरीर के रोएँ; अश्रु-कला—आँसुओं से; आकुल—पूरित; ईक्षणः—आँखें; रथात्—रथ से; अवस्कन्द्य—उतरकर; सः—वह, अक्रूर; तेषु—उन (चरणचिह्नों) के बीच; अचेष्टत—लोटने लगा; प्रभोः—प्रभु के; अमूनि—ये; अङ्घ्रि—पाँवों के; रजांसि—धूलकण; अहो—ओह; इति—इन शब्दों के साथ।

भगवान् के चरणचिन्हों को देखने से उत्पन्न आनन्द से अधिकाधिक विह्वल होने से शुद्ध-प्रेम के कारण अक्रूर के शरीर के रोंगटे खड़े हो गये और आँखें आँसुओं से भर आईं। वे अपने रथ से नीचे कूद पड़े और उन चरणचिन्हों पर यह चीखकर लोटने लगे, ''ओह, यह तो मेरे प्रभु के चरणों की धूल है।''

देहंभृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम् ।
सन्देशाद्यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥ २७॥

शब्दार्थ

देहम्-भृताम्—देहधारी जीवों के; इयान्—इतना; अर्थः—जीवन-लक्ष्य; हित्वा—त्यागकर; दम्भम्—गर्व; भियम्—भय; शुचम्—तथा शोक; सन्देशात्—(कंस द्वारा) आज्ञा दिये जाने से; यः—जो; हरेः—भगवान् कृष्ण के; लिङ्ग—चिह्न; दर्शन—देखने; श्रवण—सुनना; आदिभिः—इत्यादि के साथ।

समस्त जीवधारियों का जीवन-लक्ष्य यही आनन्द है, जिसे अक्रूर ने कंस का आदेश पाकर अपना सारा गर्व, भय तथा शोक त्यागकर अनुभव किया तथा अपने आपको भगवान् कृष्ण का स्मरण दिलाने वाली वस्तुओं को देखने, सुनने एवं वर्णन करने में लीन कर दिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि अक्रूर ने कृष्ण के प्रति मुक्त भाव से अपना प्रेम तथा सम्मान दिखलाते हुए सारा भय त्याग दिया, भले ही वह या उनके परिवार के लोग

क्रुद्ध कंस द्वारा दण्डित क्यों न किये गए हों। अक्रूर ने राज परिवार का सदस्य होते हुए भी अपना गर्व छोड़ा और वृन्दावन-निवासी ग्वालों की पूजा की। उन्होंने अपने घर, पत्नी तथा परिवार के लिए शोक करना छोड़ दिया जो राजा कंस के कारण संकट में थे। इन सबको त्यागकर वे ईश्वर के चरणकमलों की धूल में लोटने लगे।

ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ।
पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरहेक्षणौ ॥ २८ ॥
किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ ।
सुमुखौ सुन्दरवरौ बलद्विरदविक्रमौ ॥ २९ ॥
ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजैश्चिह्नितैरङ्घ्रिभिर्व्रजम् ।
शोभयन्तौ महात्मानौ सानुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥ ३० ॥
उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ ।
पुण्यगन्धानुलिप्ताङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ ॥ ३१ ॥
प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती ।
अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥ ३२ ॥
दिशो वितिमिरा राजन्कुर्वाणौ प्रभया स्वया ।
यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ददर्श—देखा; कृष्णम् रामम् च—कृष्ण तथा बलराम को; व्रजे—व्रज के ग्राम में; गो—गौवें; दोहनम्—गोशालाओं में; गतौ—गई हुई; पीत-नील—पीले तथा नीले; अम्बर—वस्त्र; धरौ—धारण किये; शरत्—शरदकालीन; अम्बुरुह—कमलों की तरह; ईक्षणौ—आँखें; किशोरौ—दोनों युवक; श्यामल-श्वेतौ—गहरा नीला तथा सफेद; श्री-निकेतौ—लक्ष्मी के आश्रयों; बृहत्—बलशाली; भुजौ—भुजाएँ; सु-मुखौ—दोनों के आकर्षक मुखों; सुन्दर-वरौ—अत्यन्त सुन्दर; बल—युवक; द्विरद—हाथी की तरह; विक्रमौ—चाल; ध्वज—पताका; वज्र—वज्र; अङ्कुश—अंकुश; अम्भोजैः—तथा कमल से; चिह्नितैः—चिन्हित; अङ्घ्रिभिः—पैरों से; व्रजम्—चरागाह; शोभयन्तौ—सुशोभित करते; महा-आत्मानौ—दोनों महान् आत्माएँ; स-अनुक्रोश—दयालु; स्मित—तथा हँसती हुई; ईक्षणौ—चितवनें; उदार—उदार; रुचिर—तथा आकर्षक; क्रीडौ—लीलाएँ; स्रक्-विनौ—मणिजटित माला पहने; वन-मालिनौ—तथा फूलों की माला पहने; पुण्य—शुभ; गन्ध—सुगन्धित पदार्थों से; अनुलिप्त—लेप किये; अङ्गौ—शरीर के अंग; स्नातौ—तुरन्त नहाए; विरज—निर्मल; वाससौ—वस्त्र; प्रधान—महान; पुरुषौ—दोनों पुरुष; आद्यौ—आदि; जगत्-धेतू—ब्रह्माण्ड के कारण; जगत्-पती—ब्रह्माण्ड के स्वामी; अवतीर्णौ—अवतरित होकर; जगति-अर्थे—ब्रह्माण्ड के लाभ हेतु; स्व-अंशेन—अपने अपने रूपों में; बल-केशवौ—बलराम तथा केशव; दिशः—सारी दिशाएँ; वितिमिराः—अंधकार रहित; राजन्—हे राजन्; कुर्वाणौ—करते हुए; प्रभया—तेज से; स्वया—अपने; यथा—जिस तरह; मारकतः—मरकत मणि से बना; शैलः—पर्वत; रौप्यः—चाँदी का बना; च—तथा; कनक—सोने से; अचितौ—दोनों सज्जित।

तत्पश्चात् अक्रूर ने व्रज-ग्राम में कृष्ण तथा बलराम को गौवें दुहने के लिए जाते देखा। कृष्ण पीले वस्त्र पहने थे और बलराम नीले वस्त्र पहने थे। उनकी आँखें शरदकालीन कमलों के समान थीं। इन दोनों बलशाली भुजाओं वाले, लक्ष्मी के आश्रयों में से एक का रंग गहरा नीला

था और दूसरे का श्वेत था। ये दोनों ही समस्त व्यक्तियों में सर्वाधिक सुन्दर थे। जब वे युवक हाथियों की-सी चाल से अपनी दयामय मुस्कानों से निहारते चलते तो ये दोनों महापुरुष अपने पदचिन्हों से चरागाह को सुशोभित बनाते जाते। ये पदचिन्ह पताका, वज्र, अंकुश तथा कमल चिन्हों से युक्त थे। ये अत्यन्त उदार तथा आकर्षक लीलाओं वाले दोनों प्रभु मणिजटित हार तथा फूल-मालाएँ पहने थे, इनके अंग शुभ सुगन्धित द्रव्यों से लेपित थे। ये अभी अभी स्नान करके आये थे और निर्मल वस्त्र पहने हुए थे। इन आदि महापुरुषों तथा ब्रह्माण्डों के आदि कारणों ने पृथ्वी के कल्याण हेतु अब केशव तथा बलराम के रूप में अवतार लिया था। हे राजा परीक्षित, वे दोनों दो स्वर्ण-आभूषित पर्वतों के समान लग रहे थे जिनमें से एक पर्वत मरकत मणि का था और दूसरा चाँदी का था क्योंकि वे अपने तेज से सारी दिशाओं में आकाश के अंधकार को दूर कर रहे थे।

रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ।
पपात चरणोपान्ते दण्डवद्रामकृष्णयोः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

रथात्—रथ से; तूर्णम्—शीघ्रतापूर्वक; अवप्लुत्य—उतरकर; सः—वह; अक्रूरः—अक्रूर; स्नेह—स्नेह से; विह्वलः—अभिभूत; पपात—गिर पड़ा; चरण-उपान्ते—चरणों के निकट; दण्ड-वत्—डंडे की तरह; राम-कृष्णयोः—बलराम तथा कृष्ण के।

स्नेह से अभिभूत अक्रूर तुरन्त अपने रथ से नीचे कूदकर बलराम तथा कृष्ण के चरणों पर डंडे के समान गिर पड़े।

भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
पुलकचिताङ्ग औत्कण्ठ्यात्स्वाख्याने नाशकन्नृप ॥ ३५॥

शब्दार्थ

भगवत्—भगवान् के; दर्शन—दर्शन से; आह्लाद—प्रसन्नता से; बाष्प—आँसुओं से; पर्याकुल—विह्वल; ईक्षणः—नेत्र; पुलक—उभाड़; आचित—अंकित; अङ्गः—अंग; औत्कण्ठ्यात्—उत्कण्ठा से; स्व-आख्याने—अपने आपको व्यक्त करने के लिए; न अशकत्—सक्षम नहीं था; नृप—हे राजन्।

भगवान् के दर्शन की प्रसन्नता से अक्रूर की आँखों में आँसू आ गये और अंगों में आनन्द का उभाड़ हो आया। उन्हें ऐसी उत्कण्ठा हुई कि हे राजन्, वे अपने आपको वाणी द्वारा व्यक्त नहीं कर सके।

भगवांस्तमभिप्रेत्य रथाङ्गाङ्कितपाणिना ।
परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; तम्—उसको, अक्रूर को; अभिप्रेत्य—पहचान कर; रथ-अङ्ग—रथ के पहिए से; अङ्कित—अंकित; पाणिना—अपने हाथ से; परिरेभे—आलिंगन किया; अभ्युपाकृष्य—पास खींचकर; प्रीतः—प्रसन्न; प्रणत—शरणागतों के प्रति; वत्सलः—स्नेहवान।

अक्रूर को पहचान कर भगवान् कृष्ण ने उन्हें रथ के चक्र से अंकित अपने हाथ से अपने निकट खींचा और तब उनका आलिंगन किया। कृष्ण को प्रसन्नता हुई क्योंकि वे अपने शरणागत भक्तों के प्रति सदैव स्नेहिल रहते हैं।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार, भगवान् कृष्ण ने चक्र से अंकित अपना हाथ बढ़ाकर यह इंगित किया कि कंस को मारने की उनमें क्षमता है।

सङ्कर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः ।
गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत्सानुजो गृहम् ॥ ३७ ॥
पृष्ट्वाथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ।
प्रक्षाल्य विधिवत्पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

सङ्कर्षणः—बलराम; च—तथा; प्रणतम्—सिर झुकाये खड़ा; उपगुह्य—आलिंगन करके; महा-मनाः—उदार; गृहीत्वा—पकड़कर; पाणिना—अपने हाथ से; पाणी—उसके दोनों हाथ; अनयत्—ले गया; स-अनुजः—अपने छोटे भाई (कृष्ण) समेत; गृहम्—घर को; पृष्ट्वा—पूछ कर; अथ—तब; सु-आगतम्—उसकी यात्रा की सुख-सुविधा के विषय में; तस्मै—उसको; निवेद्य—अर्पित करके; च—तथा; वर—श्रेष्ठ; आसनम्—आसन; प्रक्षाल्य—धोकर; विधि-वत्—शास्त्रों के आदेशानुसार; पादौ—उसके पाँव; मधु-पर्क—दूध मिश्रित शहद; अर्हणम्—सादर भेंट के रूप में; आहरत्—ले आया।

जब अक्रूर अपना सिर झुकाये खड़े थे तो भगवान् संकर्षण (बलराम) ने उनके जुड़े हुए हाथ पकड़ लिये और तब वे कृष्ण सहित उन्हें अपने घर ले गये। अक्रूर से यह पूछने के बाद कि उनकी यात्रा सुखद तो रही, बलराम ने उन्हें बैठने के लिए श्रेष्ठ आसन दिया, शास्त्रोचित विधि से उनके पाँव पखारे और आदरपूर्वक मधुमिश्रित दूध दिया।

निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रान्तमादृतः ।
अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

निवेद्य—दान में देते हुए; गाम्—गाय; च—तथा; अतिथये—मेहमान को; संवाह्य—पाँव दबाकर; श्रान्तम्—थके हुए; अदृतः—आदरपूर्वक; अन्नम्—भोजन; बहु-गुणम्—विविध स्वादों वाला; मेध्यम्—अर्पण योग्य; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; उपाहरत्—अर्पित किया; विभुः—सर्वशक्तिमान प्रभु ने।

सर्वशक्तिमान भगवान् बलराम ने अक्रूर को एक गाय भेंट की, उनकी थकान दूर करने के लिए उनके पाँव दबाये और तब परम आदर तथा श्रद्धा के साथ भाँति-भाँति के उत्तम स्वादों से युक्त और उचित विधि से पकाया भोजन खिलाया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार अक्रूर कृष्ण तथा बलराम के घर द्वादशी के दिन गये और उस दिन रात में उपवास नहीं तोड़ना चाहिए। किन्तु अक्रूर ने इस शिष्टाचार को छोड़ दिया क्योंकि वे भगवान् के घर का भोजन पाने के लिए उत्सुक थे।

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ।
मखवासैर्गन्धमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात्पुनः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उसे; भुक्तवते—खा चुकने के बाद; प्रीत्या—स्नेहपूर्वक; रामः—बलराम; परम—परम; धर्म-वित्—धर्म के ज्ञाता; मुख-वासैः—मुख को सुगंधित करने वाले द्रव्यों से; गन्ध—सुगंध से; माल्यैः—फूल की मालाओं से; पराम्—सर्वोच्च; प्रीतिम्—सन्तोष; व्यधात्—व्यवस्था की; पुनः—आगे भी।

जब अक्रूर भरपेट खा चुके तो धार्मिक कर्तव्यों के परम ज्ञाता भगवान् बलराम ने उन्हें मुख को मीठा करने वाले सुगंधित द्रव्य दिये और साथ ही सुगन्धियाँ तथा फूल-मालाएँ भेंट कीं। इस प्रकार अक्रूर ने एक बार फिर परम आनन्द प्राप्त किया।

पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निरनुग्रहे ।
कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

पप्रच्छ—पूछा; सत्-कृतम्—सत्कार किया गया; नन्दः—नन्द महाराज; कथम्—कैसे; स्थ—तुम रहे हो; निरनुग्रहे—निर्दय; कंसे—कंस के; जीवति—जीते हुए; दाशार्ह—हे दशार्ह वंशज; सौन—पशु की हत्या करने वाला, कसाई; पालाः—पालने वाला; इव—जिस तरह; अवयः—भेड़ की।

नन्द महाराज ने अक्रूर से पूछा: हे दशार्ह वंशज, उस निर्दयी कंस के जीवित होते हुए आप सभी किस तरह अपना पालन करते हैं? आप तो कसाई के संरक्षण में भेड़ जैसे हैं।

योऽवधीत्स्वस्वसुस्तोकान्क्रोशन्त्या असुतृप्खलः ।
किं नु स्वित्तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

यः—जिसने; अवधीत्—मारा; स्व—अपने; स्वसुः—बहन के; तोकान्—बच्चों को; क्रोशन्त्याः—चिल्लाती हुई; असु-तृप्—स्वार्थी; खलः—क्रूर; किम् नु—तो क्या; स्वित्—निस्सन्देह; तत्—उसको; प्रजानाम्—प्रजा का; वः—तुमसे; कुशलम्—कुशलता; विमृशामहे—हमें अनुमान लगा लेना चाहिए।

उस क्रूर स्वार्थी कंस ने अपनी बिलखती हुई दुखित बहन की उपस्थिति में ही उसके बच्चों को मार डाला। तो फिर हम तुमसे, जो कि उनकी प्रजा हो, कुशलता के विषय में पूछ ही क्या सकते हैं?

इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः ।
अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार; सू-नृतया—अत्यन्त सत्य तथा अच्छे; वाचा—शब्दों से; नन्देन—नन्द महाराज द्वारा; सु—अच्छी तरह; सभाजितः—सम्मानित; अक्रूरः—अक्रूर ने; परिपृष्टेन—पूछे जाने पर; जहौ—दूर कर दी; अध्व—मार्ग की; परिश्रमम्—थकावट।

पूछताछ के इन सत्य तथा मधुर वचनों से नन्द महाराज द्वारा सम्मानित होकर अक्रूर अपनी यात्रा की थकान भूल गये।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''वृन्दावन में अक्रूर का आगमन'' नामक अड़तीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter उनतालीस

अक्रूर द्वारा दर्शन

इस अध्याय में बतलाया गया है कि अक्रूर ने किस तरह भगवान् कृष्ण तथा भगवान् बलराम को कंस की योजनाओं तथा मथुरा में उसके कार्यों की सूचना दी, कृष्ण द्वारा मथुरा छोड़ने पर गोपियाँ किस तरह व्यथित होकर क्रन्दन करने लगी और अक्रूर ने यमुना के जल में विष्णु-धाम का किस तरह दर्शन किया।

जब कृष्ण तथा बलराम ने अक्रूर का खूब सत्कार किया और आराम से आसन पर बिठाया तो अक्रूर को लगा कि वृन्दावन की यात्रा करते समय उनके मन में जितनी इच्छाएँ उत्पन्न हुई थीं वे अब सब पूरी हो गईं। शाम को भोजन करने के बाद कृष्ण ने अक्रूर से पूछा कि उनकी यात्रा सुखद तो रही

और वे ठीक से तो हैं ? भगवान् ने यह भी पूछा कि कंस उनके परिवार वालों के साथ कैसा व्यवहार कर रहा है और अन्त में यह पूछा कि वे क्यों आये हैं।

अक्रूर ने बतलाया कि कंस किस तरह यादवों को सता रहा है, नारद ने कंस से क्या कहा है और कंस किस तरह वसुदेव के साथ क्रूरता का व्यवहार कर रहा है। अक्रूर ने कंस की यह इच्छा भी बतलाई कि कृष्ण तथा बलराम को मथुरा लाकर धनुष यज्ञ देखने के बहाने और एक मल्लयुद्ध में फँसाकर उनका वध करा दिया जाय। जब कृष्ण तथा बलराम ने यह सुना, तो वे जोर से हँस पड़े। वे अपने पिता नन्द के पास गये और उनसे कंस का आदेश कह सुनाया। तब नन्द ने समस्त व्रजवासियों को यह आदेश दिया कि वे राजा कंस के लिए विविध भेंटें लेकर मथुरा चलने की तैयारी करें।

बेचारी युवा गोपियों ने जब यह सुना कि कृष्ण तथा बलराम मथुरा जा रहे हैं, तो वे अत्यन्त व्यग्र हो उठीं। उनकी सुधि-बुधि जाती रही और वे कृष्ण की लीलाओं का स्मरण करने लगीं। अपने को कृष्ण से विलग किये जाने के लिए वे विधाता को कोसने लगीं और विलाप करने लगीं। वे कहने लगीं कि अक्रूर अपने नाम (अ—नहीं, क्रूर—क्रूर) के योग्य नहीं है क्योंकि वह इतना क्रूर है कि वह उनके प्यारे कृष्ण को लिये जा रहा है। वे विलाप करने लगीं कि "हो सकता है कि हमारा भाग्य विपरीत हो गया हो अन्यथा व्रज के बूढ़े लोग कृष्ण को जाने से रोकते। अत: हमें अपनी लाज-शर्म भूलकर भगवान् माधव को जाने से रोकना चाहिए।" ये शब्द कह कर गोपियाँ कृष्ण का नाम ले ले कर क्रन्दन करने लगीं।

उनके इतना रोने पर भी कृष्ण तथा बलराम को अक्रूर अपने रथ पर मथुरा लिये जा रहे थे। गोकुल के ग्वाले अपनी अपनी गाड़ियों में उनके पीछे हो लिये और युवा गोपियाँ भी कुछ दूर तक पीछे लगी रहीं किन्तु बाद में वे कृष्ण की चितवन तथा इशारों से आश्वस्त हुईं और जब उन्हें कृष्ण से संदेश मिला कि "मैं लौटकर आऊँगा" तो उन्हें ढाढ़स बँधा। कृष्ण के विचारों में पूरी तरह डूबी गोपियाँ तब तक चित्रित आकृतियों-सी खड़ी रहीं जब तक रथ की ध्वजा अथवा सड़क पर उठने वाली धूल के बादल उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गए। तब वे रास्ते भर कृष्ण का यशोगान करतीं निराश होकर अपने अपने घरों को लौट आईं।

अक्रूर ने यमुना के किनारे अपना रथ रोक दिया जिससे कृष्ण तथा बलराम मार्जन करके जल पी

सकें। जब दोनों भाई रथ में बैठ गये तो अक्रूर ने उनसे यमुना-स्नान करने की अनुमति ली। ज्योंही उन्होंने वैदिक मंत्रोच्चार किया, तो वे यह देखकर स्तम्भित हो गये कि दोनों भाई जल में खड़े हैं। अक्रूर नदी से बाहर निकल कर रथ के पास लौटकर आये तो देखा कि दोनों भाई रथ में ही आसीन हैं। तत्पश्चात् वे पुन: नदी में यह पता लगाने के लिए लौट आये कि उन्होंने जो दो आकृतियाँ देखी थीं वे असली हैं या नहीं।

अक्रूर ने जल में जो रूप देखा था वह चतुर्भुज भगवान् वासुदेव का था। उनका रंग वर्षा के नवीन बादल की तरह गहरा नीला था। वे पीताम्बर धारण किये थे और सहस्र फनों वाले अनन्त शेष की गोद में लेटे थे। सिद्धपुरुष, दैवी नाग तथा असुर उनकी स्तुति कर रहे थे और वे अपने पार्षदों से घिरे थे। उनकी सेवा में श्री, पुष्टि तथा इला जैसी शक्तियाँ लगी थीं तथा ब्रह्मा एवं अन्य देवता उनकी प्रशंसा का गान कर रहे थे। अक्रूर को यह दृश्य खूब भाया और वे अपने हाथ जोड़कर भावविह्वल स्वर में भगवान् की प्रार्थना करने लगे।

श्रीशुक उवाच
सुखोपविष्टः पर्यङ्के रमकृष्णोरुमानितः ।
लेभे मनोरथान्सर्वान्पथि यान्स चकार ह ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; सुख—सुखपूर्वक; उपविष्टः—बैठे हुए; पर्यङ्के—पलंग पर; राम-कृष्ण—बलराम तथा कृष्ण द्वारा; उरु—अत्यन्त; मानितः—सम्मान किया गया; लेभे—प्राप्त किया; मनः-रथान्—इच्छाओं को; सर्वान्—समस्त; पथि—मार्ग में; यान्—जो; सः—उसने; चकार ह—प्रकट किया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् बलराम तथा भगवान् कृष्ण द्वारा इतना अधिक सम्मानित किये जाने पर पलंग में सुखपूर्वक बैठे अक्रूर को लगा कि उन्होंने रास्ते में जितनी इच्छाएँ की थीं वे सभी अब पूरी हो गई हैं।

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ।
तथापि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किञ्चन ॥ २ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; अलभ्यम्—अप्राप्य है; भगवति—भगवान् के; प्रसन्ने—प्रसन्न होने पर; श्री—लक्ष्मी के; निकेतने—विश्रामस्थल में; तथा अपि—फिर भी; तत्-पराः—उनके भक्तगण; राजन्—हे राजा (परीक्षित); न—नहीं; हि—निस्सन्देह; वाञ्छन्ति—चाहते हैं; किञ्चन—कुछ भी।

हे राजन्, जिसने लक्ष्मी के आश्रय पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को सन्तुष्ट कर लिया हो भला

उसके लिए क्या अलभ्य है? ऐसा होने पर भी जो उनकी भक्ति में समर्पित हैं, वे कभी भी उनसे कुछ नहीं चाहते।

सायन्तनाशनं कृत्वा भगवान्देवकीसुतः ।
सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सायन्तन—शाम का; अशनम्—भोजन; कृत्वा—करके; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकीपुत्र; सुहृत्सु—अपने शुभचिन्तक सम्बन्धियों तथा मित्रों के प्रति; वृत्तम्—आचरण के विषय में; कंसस्य—कंस के; पप्रच्छ—पूछा; अन्यत्—अन्य; चिकीर्षितम्—इरादे।

शाम के भोजन के बाद देवकीपुत्र भगवान् कृष्ण ने अक्रूर से पूछा कि कंस अपने प्रिय सम्बन्धियों तथा मित्रों के साथ कैसा बर्ताव कर रहा है और वह क्या करने की योजना बना रहा है।

श्रीभगवानुवाच
तात सौम्यागतः कच्चित्स्वागतं भद्रमस्तु वः ।
अपि स्वज्ञातिबन्धूनामनमीवमनामयम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; तात—हे चाचा; सौम्य—हे सदय; आगतः—आया हुआ; कच्चित्—क्या; सु-आगतम्—स्वागत; भद्रम्—मंगल; अस्तु—होए; वः—तुम्हारे लिए; अपि—क्या; स्व—अपने शुभचिन्तक मित्रों; ज्ञाति—सगे-सम्बन्धी; बन्धूनाम्—तथा अन्य पारिवारिक सदस्यों के लिए; अनमीवम्—दुख से छुटकारा; अनामयर्न्—रोग से मुक्ति।

भगवान् ने कहा : हे भद्र पुरुष, प्रिय चाचा अक्रूर, यहाँ की आपकी यात्रा सुखद तो रही? आपका कल्याण हो। हमारे शुभचिन्तक मित्र तथा हमारे निकट और दूर के सम्बन्धी सुखी तथा स्वस्थ तो हैं?

किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये ।
कंसे मातुलनाम्नाङ्ग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; नु—प्रत्युत; नः—हमारी; कुशलम्—कुशलता के बारे में; पृच्छे—मैं पूछूँगा; एधमाने—जब वह सम्पन्न हो रहा हो; कुल—हमारे परिवार का; आमये—रोग; कंसे—राजा कंस; मातुल-नाम्ना—मामा नाम से पुकारा जाने वाला; अङ्ग—मेरा प्रिय; स्वानाम्—सम्बन्धियों का; नः—हमारा; तत्—उसके; प्रजासु—नागरिकों का; च—तथा।

किन्तु हे अक्रूर, जब तक मामा कहलाने वाला तथा हमारे परिवार के लिए रोगस्वरूप राजा कंस समृद्ध हो रहे हैं, तब तक मैं अपने परिवार वालों तथा उसकी अन्य प्रजा के विषय में पूछने

की झंझट में पड़ूँ ही क्यों?

अहो अस्मदभूद्भूरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः ।
यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बन्धनं तयोः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; अस्मत्—मेरे कारण; अभूत्—था; भूरि—महान; पित्रोः—मेरे माता-पिता के लिए; वृजिनम्—कष्ट; आर्ययोः—निरपराध; यत्-हेतोः—जिसके कारण; पुत्र—उनके पुत्रों की; मरणम्—मृत्यु; यत्-हेतोः—जिसके कारण; बन्धनम्—बन्धन; तयोः—उनके।

जरा देखिये न, कि मैंने अपने निरपराध माता-पिता के लिए कितना कष्ट उत्पन्न कर दिया है! मेरे ही कारण उनके कई पुत्र मारे गये और वे स्वयं बन्दी हैं।

तात्पर्य : चूँकि कंस ने यह भविष्यवाणी सुनी थी कि देवकी का आठवाँ पुत्र उसका वध करेगा इसलिए वह उनके सभी पुत्रों को मारने का प्रयास करता रहा। इसीलिए उसने देवकी तथा उनके पति वसुदेव को बन्दीगृह में डाल दिया था।

दिष्ट्याद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य काङ्क्षितम् ।
सञ्जातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—सौभाग्य से; अद्य—आज; दर्शनम्—दर्शन; स्वानाम्—अपने सगे-सम्बन्धी का; मह्यम्—मेरे लिए; वः—तुम; सौम्य—हे भद्र पुरुष; काङ्क्षितम्—इच्छित; सञ्जातम्—घटित हुआ है; वर्ण्यताम्—कृपा करके बतलाइये; तात—हे चाचा; तव—तुम्हारे; आगमन—आने का; कारणम्—कारण।

हे प्रिय स्वजन, सौभाग्यवश आपको देखने की हमारी इच्छा आज पूरी हुई है। हे सदय चाचा, कृपा करके यह बतलायें कि आप आये क्यों हैं?

श्रीशुक उवाच
पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः ।
वैरानुबन्धं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पृष्टः—पूछे जाने पर; भगवता—भगवान् द्वारा; सर्वम्—हर बात; वर्णयाम् आस—बतलाया; माधवः—मधु का वंशज, अक्रूर ने; वैर-अनुबन्धम्—शत्रुवत् मनोभाव; यदुषु—यदुओं के प्रति; वसुदेव—वसुदेव की; वध—हत्या करने का; उद्यमम्—प्रयास।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् के पूछे जाने पर मधुवंशी अक्रूर ने सारी परिस्थिति कह सुनाई जिसमें यदुओं के प्रति कंस की शत्रुता तथा उसके द्वारा वसुदेव के वध का प्रयास भी

सम्मिलित था।

यत्सन्देशो यदर्थं वा दूतः सम्प्रेषितः स्वयम् ।
यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुन्दुभेः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिस; सन्देशः—सन्देश सहित; यत्—जिस; अर्थम्—उद्देश्य से; वा—तथा; दूतः—दूत के रूप में; सम्प्रेषितः—भेजा; स्वयम्—अक्रूर; यत्—जो; उक्तम्—कहा गया था; नारदेन—नारद द्वारा; अस्य—उस (कंस) से; स्व—उसका (कृष्ण का); जन्म—जन्म; आनकदुन्दुभेः—वसुदेव से।

अक्रूर को जिस सन्देश को देने के लिए भेजा गया था उसे उन्होंने कह सुनाया। उसने कंस के असली इरादे भी बतला दिये और (यह भी बतला दिया कि) नारद ने किस तरह कंस को सूचित किया कि कृष्ण ने वसुदेव के पुत्र रूप में जन्म लिया है।

श्रुत्वाक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ।
प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञा दिष्टं विजज्ञतुः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; अक्रूर-वचः—अक्रूर के वचन; कृष्णः—भगवान् कृष्ण; बलः—बलराम; च—तथा; पर-वीर—प्रतियोगी वीरों का; हा—नष्ट करने वाला; प्रहस्य—हँस कर; नन्दम्—नन्द महाराज से; पितरम्—अपने पिता; राज्ञा—राजा द्वारा; दिष्टम्—आदेश दिया गया; विजज्ञतुः—उन्होंने सूचित किया।

अक्रूर के वचनों को सुनकर वीर प्रतिद्वन्द्वियों का विनाश करने वाले भगवान् कृष्ण तथा भगवान् बलराम हँस पड़े। तब उन्होंने अपने पिता नन्द महाराज को राजा कंस का आदेश बतलाया।

गोपान्समादिशत्सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः ।
उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ।
यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् ॥ ११ ॥
द्रक्ष्यामः सुमहत्पर्व यान्ति जानपदाः किल ।
एवमाघोषयत्क्षत्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

गोपान्—ग्वालों को; समादिशात्—आदेश दिया; सः—उस (नन्द महाराज) ने; अपि—भी; गृह्यताम्—एकत्र कर लिया है; सर्व—सारा; गो-रसः—दुग्ध के बने पदार्थ; उपायनानि—उत्तम उपहार; गृह्णीध्वम्—ले लो; युज्यन्ताम्—जोत दो; शकटानि—छकड़े; च—तथा; यास्यामः—हम चलेंगे; श्वः—कल; मधु-पुरीम्—मथुरा को; दास्यामः—हम देंगे; नृपतेः—राजा को; रसान्—दुग्ध उत्पाद; द्रक्ष्यामः—हम देखेंगे; सु-महत्—अत्यन्त महान; पर्व—उत्सव; यान्ति—जा रहे हैं; जानपदाः—सुदूर जिलों के निवासी; किल—निस्सन्देह; एवम्—इस प्रकार; आघोषयत्—उसने घोषणा करा दी थी; क्षत्रा—गाँव के मुखिया द्वारा; नन्द-गोपः—नन्द महाराज; स्व-गोकुले—अपने गोकुल के लोगों से।

तब नन्द महाराज ने गाँव के मुखिया को बुलाकर नन्द के व्रज मंडल में ग्वालों के लिए निम्नलिखित घोषणा करने के लिए आदेश दिया, ''जाओ और जितना दूध-दही उपलब्ध हो सके एकत्र करो। बहुमूल्य उपहार ले लो और अपने-अपने छकड़े जोत लो। कल हम लोग मथुरा जायेंगे और राजा को अपना दूध-दही भेंट करेंगे तथा महान् उत्सव देखेंगे। समस्त पड़ोसी जिलों के निवासी भी इसमें जा रहे हैं।''

तात्पर्य : नन्द चाहते थे कि राजा के लिए कर के रूप में घी तथा दूध से बनी दूसरी वस्तुएँ ले जाई जाँय।

गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ।
रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियाँ; ताः—वे; तत्—तब; उपश्रुत्य—सुनकर; बभूवुः—हो गईं; व्यथिताः—खिन्न; भृशम्—अत्यधिक; राम-कृष्णौ—बलराम तथा कृष्ण; पुरीम्—नगर में; नेतुम्—ले जाने के लिए; अक्रूरम्—अक्रूर को; व्रजम्—वृन्दावन में; आगतम्—आया हुआ।

जब गोपियों ने सुना कि अक्रूर कृष्ण तथा बलराम को नगर ले जाने के लिए व्रज में आये हैं, तो वे अत्यन्त खिन्न हो उठीं।

काश्चित्तत्कृतहृत्ताप श्वासम्लानमुखश्रियः ।
स्त्रंसद्दुकूलवलय केशग्रन्थ्यश्च काश्चन ॥ १४॥

शब्दार्थ

काश्चित्—उनमें से कुछ; तत्—उससे (सुनने से); कृत—उत्पन्न; हृत्—हृदयों में; ताप—पीड़ा से; श्वास—सिसकने से; म्लान—पीली हुई; मुख—उनके मुखों की; श्रियः—कान्ति; स्त्रंसत्—शिथिल हुए; दुकूल—वस्त्र; वलय—कंगन; केश—बालों में; ग्रन्थ्यः—लटें; च—तथा; काश्चन—अन्य।

कुछ गोपियों ने अपने हृदय में इतनी पीड़ा का अनुभव किया कि सिसकियाँ ले लेकर उनके मुख पीले पड़ गये। अन्य गोपियाँ इतनी अधिक पीड़ित थीं कि उनके वस्त्र, बाजूबंद तथा जूड़े शिथिल पड़ गये।

अन्याश्च तदनुध्यान निवृत्ताशेषवृत्तयः ।
नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥ १५॥

शब्दार्थ

अन्याः—दूसरी; च—तथा; तत्—उनका; अनुध्यान—स्थिर ध्यान करने से; निवृत्त—बन्द किया हुआ; अशेष—सारे; वृत्तयः—इन्द्रियों के कार्य; न अभ्यजानन्—न जानती हुईं; इमम्—इस; लोकम्—लोक का; आत्म—आत्म-साक्षात्कार के; लोकम्—लोक में; गताः—प्राप्त हुईं; इव—मानो।

अन्य गोपियों की चित्तवृत्तियाँ पूरी तरह रुक गईं और वे कृष्ण के ध्यान में स्थिर हो गईं। उन्हें आत्मसाक्षात्कार-पद प्राप्त करने वालों की भाँति बाह्य-जगत की सारी सुधि-बुधि भूल गईं।

तात्पर्य : गोपियाँ पहले से ही आत्म-साक्षात्कार-पद को प्राप्त थीं। *श्रीचैतन्य-चरितामृत* (मध्य २०.१०८) में कहा गया है—*जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य-दास*—आत्मा या जीव कृष्ण का नित्य दास है। चूँकि गोपियाँ कृष्ण की गहनतम प्रेमाभक्ति कर रही थीं अतएव वे आत्म-साक्षात्कार के सर्वोच्च पद पर स्थित थीं।

स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः ।
हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरः सम्मुमुहुः स्त्रियः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

स्मरन्त्यः—स्मरण करतीं; च—तथा; अपराः—अन्य; शौरेः—कृष्ण का; अनुराग—स्नेहिल; स्मित—उनकी हँसी से; ईरिताः—भेजी गई; हृदि—हृदय में; स्पृशः—स्पर्श करती; चित्र—विचित्र; पदाः—वाक्यांशों से; गिरः—वाणी; सम्मुमुहुः—अचेत; स्त्रियः—स्त्रियाँ।

और कुछ तरुणियाँ भगवान् शौरि (कृष्ण) के शब्दों का स्मरण करके ही अचेत हो गईं। ये शब्द विचित्र पदों से अलंकृत तथा स्नेहमयी मुसकान से व्यक्त होने से उन तरुणियों के हृदयों का गम्भीरता से स्पर्श करने वाले होते थे।

गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम् ।
शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च ॥ १७॥
चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य भीता विरहकातराः ।
समेताः सङ्घशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥ १८॥

शब्दार्थ

गतिम्—चाल; सु-ललिताम्—अत्यन्त आकर्षक; चेष्टाम्—चेष्टाएँ; स्निग्ध—स्नेहिल; हास—हँसी; अवलोकनम्—चितवनें; शोक—दुख; अपहानि—दूर करने वाली; नर्माणि—ठिठोलियाँ; प्रोद्दाम—विशाल; चरितानि—कार्यकलाप; च—तथा; चिन्तयन्त्यः—सोचती हुई; मुकुन्दस्य—भगवान् कृष्ण के; भीतः—भयभीत; विरह—विरह के कारण; कातराः—अत्यन्त दुखी; समेताः—एकसाथ मिलकर; सङ्घशः—टोली में; प्रोचुः—बोलीं; अश्रु—आँसू से युक्त; मुख्यः—मुख; अच्युत-आशयाः—भगवान् अच्युत में लीन मन वाली।

गोपियाँ भगवान् मुकुन्द के क्षणमात्र वियोग की आशंका से भी भयातुर थीं अतः जब उन्हें उनकी ललित चाल, उनकी लीलाओं, उनकी स्नेहिल हँसीली चितवन, उनके वीरतापूर्ण कार्यों

तथा दुख हरने वाली ठिठोलियों का स्मरण हो आया तो वे सम्भाव्य परम विरह के विचार से उत्पन्न चिंता में अपने आपे के बाहर हो गईं। वे झुंड की झुंड एकत्र होकर एक-दूसरे से बातें करने लगीं। उनके मुख आँसुओं से पूरित थे तथा उनके मन अच्युत में पूर्णतया लीन थे।

श्रीगोप्य ऊचुः
अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया
संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ।
तांश्चाकृतार्थान्वियुनङ्क्ष्यपार्थकं
विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

श्री-गोप्यः ऊचुः—गोपियों ने कहा; अहो—ओह; विधातः—विधाता; तव—तुम्हारा; न—नहीं है; क्वचित्—कहीं भी; दया—दया; संयोज्य—मिलाकर; मैत्र्या—मित्रता से; प्रणयेन—तथा प्रेम से; देहिनः—देहधारी जीवों को; तान्—उन; च—तथा; अकृत—अधूरे; अर्थान्—उद्देश्य; वियुनङ्क्षि—विलग कर देते हो; अपार्थकम्—व्यर्थ ही; विक्रीडितम्—खेल; ते—तुम्हारा; अर्भक—बच्चे की; चेष्टितम्—चेष्टा; यथा—जिस तरह।

गोपियों ने कहा : हे विधाता, आपमें तनिक भी दया नहीं है। आप देहधारी प्राणियों को मैत्री तथा प्रेम द्वारा एक-दूसरे के पास लाते हैं और तब उनकी इच्छाओं के पूरा होने के पूर्व ही व्यर्थ में उन्हें विलग कर देते हैं। आपका यह भ्रमपूर्ण खेलवाड़ बच्चों की चेष्टा के समान है।

यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं
मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम् ।
शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं
करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यः—जो; त्वम्—तुम; प्रदर्श्य—दिखलाकर; असित—श्याम; कुन्तल—घुँघराले बालों से; आवृतम्—ढका; मुकुन्द—कृष्ण का; वक्त्रम्—मुखमण्डल; सु-कपोलम्—सुन्दर कपोलों से युक्त; उत्-नसम्—तथा उठी हुई नाक; शोक—शोक; अपनोद—समूल नष्ट करने वाली; स्मित—अपनी हँसी से; लेश—तनिक; सुन्दरम्—सुन्दर; करोषि—करते हो; पारोक्ष्यम्—अदृष्ट; असाधु—बुरा; ते—तुम्हारे द्वारा; कृतम्—किया गया।

श्याम घुँघराले बालों से घिरा तथा सुन्दर गालों से सुशोभित, उठी हुई नाक तथा समस्त कष्टों को हरने वाली मृदु हँसी से युक्त, मुकुन्द के मुख को दिखलाने के बाद अब आप उस मुख को हमसे ओझल करने जा रहे हैं। आपका यह वर्ताव तनिक भी अच्छा नहीं है।

क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म न-

श्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ।
येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं
त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

क्रूरः—क्रूर; त्वम्—तुम (हो); अक्रूर-समाख्यया—अक्रूर नाम से जाने जाने वाले (जिसका अर्थ है, जो क्रूर नहीं है); स्म—निश्चय ही; नः—हमारी; चक्षुः—आँखें; हि—निस्सन्देह; दत्तम्—दिया गया; हरसे—छीने ले रहे हो; बत—हाय; अज्ञ—मूर्ख; वत्—सदृश; येन—जिन (आँखों) से; एक—एक; देशे—स्थान में; अखिल—समस्त; सर्ग—सृष्टि की; सौष्ठवम्—पूर्णता; त्वदीयम्—आपका; अद्राक्ष्म—देख चुकीं; वयम्—हम; मधुद्विषः—मधु असुर के शत्रु, भगवान् कृष्ण का।

हे विधाता, यद्यपि आप यहाँ अक्रूर के नाम से आये हैं किन्तु हैं आप क्रूर क्योंकि आप मूर्खों के समान हमसे उन्हें ही छीने ले रहे हैं, जिन्हें कभी आपने हमें दिया था—हमारी वे आँखें जिनसे हमने भगवान् मधुद्विष के रूप के उस एक में भी आपकी सम्पूर्ण सृष्टि की पूर्णता देखी है।

तात्पर्य : गोपियाँ कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को देखने की परवाह नहीं करती थीं। अतएव यदि कृष्ण वृन्दावन से चले जायेंगे तो उनके नेत्रों के लिए कोई कार्य ही नहीं रह जायेगा। इस तरह कृष्ण का जाना बेचारी गोपियों को अंधा बनाये दे रहा था और अपने शोक के कारण वे अक्रूर को जिनके नाम का अर्थ है ''क्रूर नहीं'' क्रूर कहे डाल रही थीं।

न नन्दसूनुः क्षणभङ्गसौहृदः
समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत ।
विहाय गेहान्स्वजनान्सुतान्पतीं-
स्तद्दास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; नन्द-सूनुः—नन्द महाराज का पुत्र; क्षण—एक क्षण में; भङ्ग—तोड़ना; सौहृदः—जिसकी मैत्री का; समीक्षते—देखते हैं; नः—हमको; स्व—अपने द्वारा; कृत—बनाया गया; आतुराः—अपने वश में; बत—हाय; विहाय—छोड़कर; गेहान्—हमारे घरों को; स्व-जनान्—सम्बन्धियों को; सुतान्—बालकों को; पतीन्—पतियों को; तत्—उसके प्रति; दास्यम्—दासता; अद्धा—प्रत्यक्ष; उपगताः—ग्रहण की हुई; नव—नये नये; प्रियः—प्रेमी।

हाय! क्षण-भर में प्रेमपूर्ण मैत्री को भंग करने वाला नन्द का बेटा अब हमको सीधे एकटक देख भी नहीं सकेगा। उसके वशीभूत होकर उसकी सेवा करने के लिए हमने अपने घरों, सम्बन्धियों, बच्चों तथा पतियों तक का परित्याग कर दिया किन्तु वह सदैव नितनये प्रेमियों की खोज में रहता है।

सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः
सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् ।
याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः
पास्यन्त्यपाङ्गोत्कलितस्मितासवम् ॥ २३॥

शब्दार्थ

सुखम्—सुखमय; प्रभाता—प्रातःकाल; रजनी—रात का; इयम्—यह; आशिषः—आशाएँ; सत्याः—सच; बभूवुः—हो चुकी हैं; पुर—नगर की; योषिताम्—स्त्रियों के; ध्रुवम्—निश्चय ही; याः—जो; संप्रविष्टस्य—(मथुरा में) प्रवेश किये हुए का; मुखम्—मुख; व्रजः-पतेः—व्रज के स्वामी का; पास्यन्ति—पीयेंगी; अपाङ्ग—तिरछी चितवन; उत्कलित—फैली हुई; स्मित—हँसी; आसवम्—अमृत।

इस रात्रि के बाद का प्रातःकाल निश्चित रूप से मथुरा की स्त्रियों के लिए मंगलमय होगा। अब उनकी सारी आशाएँ पूरी हो जायेंगी क्योंकि जैसे ही व्रजपति उनके नगर में प्रवेश करेंगे वे उनके मुख की तिरछी चितवन से निकलने वाली हँसी के अमृत का पान कर सकेंगी।

तासां मुकुन्दो मधुमञ्जुभाषितै-
र्गृहीतचित्तः परवान्मनस्व्यपि ।
कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला
ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥ २४॥

शब्दार्थ

तासाम्—उनके; मुकुन्दः—कृष्ण; मधु—शहद सदृश; मञ्जु—मीठी; भाषितैः—वाणी से; गृहीत—वशीभूत; चित्तः—मन; परवान्—पराधीन; मनस्वी—बुद्धिमान; अपि—यद्यपि; कथम्—कैसे; पुनः—फिर; नः—हमको; प्रतियास्यते—लौटेगा; अबलाः—हे बालाओं; ग्राम्याः—ग्रामीण; स-लज्ज—लजीली; स्मित—हँसती हुई; विभ्रमैः—वशीकरण से; भ्रमन्—मुग्ध हुई।

हे गोपियो, यद्यपि हमारा मुकुन्द बुद्धिमान तथा अपने माता-पिता का अत्यन्त आज्ञाकारी है किन्तु एक बार मथुरा की स्त्रियों के मधु सदृश मीठे शब्दों के जादू में आ जाने और उनकी आकर्षक लजीली मुसकानों से मुग्ध हो जाने पर भला वह हम गँवार देहाती अबलाओं के पास फिर कभी क्यों लौटने लगा?

अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते
दाशार्हभोजान्धकवृष्णिसात्वताम् ।
महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं
द्रक्ष्यन्ति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; ध्रुवम्—निश्चय ही; तत्र—वहाँ; दृशः—आँखों के लिए; भविष्यते—होगा; दाशार्ह-भोज-अन्धक-वृष्णि-सात्वताम्—दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि तथा सात्वत वंशों के सदस्यों के; महा-उत्सवः—महान् उत्सव; श्री—लक्ष्मीजी का; रमणम्—प्रिय; गुण—सारे दिव्य गुणों का; आस्पदम्—आगार, भण्डार; द्रक्ष्यन्ति—देखेंगे; ये—जो; च—भी; अध्वनि—मार्ग पर; देवकी-सुतम्—देवकीपुत्र, श्रीकृष्ण को।

जब दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि तथा सात्वत लोग मथुरा में देवकी के पुत्र को देखेंगे तो उनके नेत्रों के लिए महान् उत्सव तो होगा ही, साथ ही साथ नगर के मार्ग में यात्रा करते हुए जो लोग उन्हें देखेंगे उनके लिए भी महान् उत्सव होगा। आखिर, वे श्री लक्ष्मीजी के प्रियतम और समस्त दिव्य गुणों के आगार जो हैं।

मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भू-
दक्रूर इत्येतदतीव दारुणः ।
योऽसावनाश्वास्य सुदु:खितम्जनं
प्रियात्प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥ २६॥

शब्दार्थ

मा—मत; एतत्-विधस्य—ऐसे; अकरुणस्य—क्रूर व्यक्ति का; नाम—नाम; भूत्—होये; अक्रूरः इति—अक्रूर; एतत्—यह; अतीव—अत्यन्त; दारुणः—क्रूर; यः—जो; असौ—वह; अनाश्वास्य—धीरज धराते हुए; सु-दु:खितम्—अत्यन्त दुखी; जनम्—लोगों को; प्रियात्—प्रियतम् से अधिक; प्रियम्—प्रिय (कृष्ण); नेष्यति—ले जायेगा; पारम् अध्वनः—हमारी दृष्टि से परे।

जो ऐसा निर्दय कार्य कर रहा हो उसे अक्रूर नहीं कहलाया जाना चाहिए। वह इतना क्रूर है कि व्रज के दुखी निवासियों को धीरज धराने का प्रयास किए बिना ही उस कृष्ण को लिये जा रहा है, जो हमारे प्राणों से भी हमें अधिक प्रिय है।

अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं
तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः ।
गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं
दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥ २७॥

शब्दार्थ

अनार्द्र-धीः—निष्ठुर; एषः—यह (कृष्ण); समास्थितः—आसीन होकर; रथम्—रथ में; तम्—उसको; अनु—पीछे चलने वाले; अमी—ये; च—तथा; त्वरयन्ति—जल्दबाजी; दुर्मदाः—बेवकूफ बनाये गये; गोपाः—ग्वाले; अनोभिः—अपनी बैलगाड़ियों में; स्थविरैः—वृद्धजनों द्वारा; उपेक्षितम्—उपेक्षित; दैवम्—भाग्य को; च—तथा; नः—हमारे साथ; अद्य—आज; प्रतिकूलम्—विपरीत; ईहते—कार्य कर रहा है।

निष्ठुर कृष्ण पहले ही रथ पर चढ़ चुके हैं और अब ये मूर्ख ग्वाले अपनी बैलगाड़ियों में उनके पीछे पीछे जाने की जल्दी मचा रहे हैं। यहाँ तक कि बड़े-बूढ़े भी उन्हें रोकने के लिए कुछ भी नहीं कह रहे। आज भाग्य हमारे विपरीत कार्य कर रहा है।

तात्पर्य : गोपियों ने जो कुछ सोचा उसे श्रील श्रीधर स्वामी इस प्रकार उदघाटित करते हैं: ''ये मूर्ख ग्वाले तथा बड़े-बूढ़े कृष्ण को रोकने का प्रयास तक नहीं कर रहे हैं। क्या उन्हें ऐसा नहीं लगता

कि वे आत्महत्या कर रहे हैं? वे कृष्ण के मथुरा जाने में सहायक बन रहे हैं किन्तु उन्हें वृन्दावन लौटकर आना पड़ेगा। तब वे निश्चित रूप से कृष्ण की अनुपस्थिति में मर जायेंगे। सारे जगत की मति मारी गई है।''

निवारयामः समुपेत्य माधवं
किं नोऽकरिष्यन्कुलवृद्धबान्धवाः ।
मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्धदुस्त्यजाद्
दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

निवारयामः—चलो हम रोकें; समुपेत्य—पास जाकर; माधवम्—कृष्ण को; किम्—क्या; नः—हमारा; अकरिष्यन्—करेंगे; कुल—परिवार के; वृद्ध—बूढ़े लोग; बान्धवाः—तथा हमारे सम्बन्धीजन; मुकुन्द-सङ्गात्—भगवान् मुकुन्द के साथ से; निमिष—पलक झाँपने के; अर्ध—आधा; दुस्त्यजात्—जिसे त्यागना असम्भव है; दैवेन—भाग्य द्वारा; विध्वंसित—विलग किया गया; दीन—दुखियारा; चेतसाम्—हृदयों वाले।

चलो हम सीधे माधव के पास चलें और उन्हें जाने से रोकें। हमारे परिवार के बड़े-बूढ़े तथा अन्य सम्बन्धीजन हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं? अब जबकि भाग्य हमें मुकुन्द से विलग कर रहा है, हमारे हृदय पहले से ही दुखित हैं क्योंकि हम एक पल के एक अंश के लिए भी उनके संग के त्याग को सहन नहीं कर सकतीं।

तात्पर्य : गोपियों ने जो कुछ सोचा उसका वर्णन श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती करते हैं: ''चलो सीधे कृष्ण के पास चलें और उनके वस्त्र तथा हाथ पकड़कर खींचें तथा हठ करें कि वे रथ से नीचे उतर आयें और हमारे साथ यहीं ठहरें। हम उनसे कहेंगी, ''आप इतनी सारी स्त्रियों की हत्या करने का पाप अपने ऊपर न लें।''

अन्य गोपियों ने कहा, ''यदि हम ऐसा करेंगी तो हमारे सम्बन्धी तथा गाँव के बड़े-बूढ़े कृष्ण के प्रति हमारे गुप्त प्रेम को जान जायेंगे और हमें छोड़ देंगे।''

लेकिन वे हमारा कर ही क्या सकते हैं?''

''हाँ, कृष्ण के जाने से अब हमारे जीवन दुखी बन ही चुके हैं। हमारा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा।''

''यह तो ठीक है। हम वृन्दावन के जंगल में अधिष्ठात्री देवियों की तरह रहेंगी और तब हम अपनी सच्ची इच्छा—जंगल में कृष्ण के साथ रहने की इच्छा—पूरी कर सकती हैं।''

''हाँ! यदि हमारे सम्बन्धी तथा बड़े-बूढ़े हमें मार-पीट कर या ताले के भीतर रखकर हमें दण्डित

भी करते हैं, तो भी हम यह जानकर सुखपूर्वक जीवित रह सकती हैं कि कृष्ण हमारे गाँव में रह रहे हैं। हमारी कुछ सहेलियाँ जो बन्दी नहीं हुई हैं, वे हमारे पास तक कृष्ण का जूठन लाने का चतुरता से कोई उपाय ढूँढ़ निकालेंगी और हम जीवित रह सकेंगी। किन्तु यदि कृष्ण को रोका नहीं जाता तो हम अवश्य मर जायेंगी।''

यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्र-
लीलावलोकपरिरम्भणरासगोष्ठाम् ।
नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं
गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; अनुराग—स्नेह से; ललित—मनोहर; स्मित—(जहाँ) हँसी (थी); वल्गु—आकर्षक; मन्त्र—घुलमिलकर बातचीत; लीला—क्रीड़ापूर्ण; अवलोक—चितवन; परिरम्भण—तथा आलिंगन; रास—रासनृत्य की; गोष्ठाम्—गोष्ठी को; नीताः स्म—लाई गई; नः—हमारे लिए; क्षणम्—क्षण; इव—सदृश; क्षणदाः—रातें; विना—रहित; तम्—उसके; गोप्यः—हे गोपियो; कथम्—कैसे; नु—निस्सन्देह; अतितरेम—हम पार कर जायेंगी; तमः—अंधकार; दुरन्तम्—दुर्लंघ्य।

जब वे हमें रासनृत्य की गोष्ठी में ले आये जहाँ हमने उनकी स्नेहपूर्ण तथा मनोहर मुसकानें का, उनकी आह्लादकारी गुप्त बातों, उनकी लीलापूर्ण चितवनों तथा उनके आलिंगनों का आनन्द लूटा तब हमने अनेक रात्रियाँ बितायी जो मात्र एक क्षण के तुल्य लगी। हे गोपियो, तो भला हम उनकी अनुपस्थिति के दुर्लंघ्य अंधकार को कैसे पार कर सकती हैं?

तात्पर्य : गोपियों को कृष्ण के संग में दीर्घकाल एक क्षण तुल्य बीत जाता था और उनकी अनुपस्थिति में एक क्षण अत्यन्त दीर्घकाल-सा लग रहा था।

योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो
गोपैर्विशन्खुररजश्छुरितालकस्रक् ।
वेणुं क्वणन्स्मितकताक्षनिरीक्षणेन
चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यः—जो; अह्नः—दिन के; क्षये—अन्त होने पर; व्रजम्—व्रज-ग्राम में; अनन्त—अनन्त या बलराम का; सखः—मित्र, कृष्ण; परीतः—चारों ओर से घिरा; गोपैः—ग्वालबालों से; विशन्—प्रवेश करते हुए; खुर—गो-खुरों की; रजः—धूल से; छुरित—धूसरित; अलक—घुँघराले बाल; स्रक्—तथा माला; वेणुम्—बाँसुरी को; क्वणन्—बजाते हुए; स्मित—मन्द हास करते हुए; कट-अक्ष—बाँकी चितवन से; निरीक्षणेन—देखने से; चित्तम्—हमारे मन को; क्षिणोति—नष्ट करता है; अमुम्—उसके; ऋते—बिना; नु—निस्सन्देह; कथम्—कैसे; भवेम—हम जीवित रह सकती हैं।

हम अनन्त के मित्र कृष्ण के बिना भला कैसे जीवित रह सकती हैं? वे शाम को ग्वालबालों

के साथ व्रज लौटा करते थे तो उनके बाल तथा उनकी माला गौवों के खुरों से उठती धूल से धूसरित हो जाते थे। जब वे बाँसुरी बजाते तो वे अपनी हँसीली बाँकी चितवन से हमारे मन को मोह लेते थे।

श्रीशुक उवाच
एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं
व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; ब्रुवाणाः—बोलती हुई; विरह—वियोग की भावनाओं से; आतुराः—व्याकुल; भृशम्—नितान्त; व्रज-स्त्रियः—व्रज की स्त्रियाँ; कृष्ण—कृष्ण से; विषक्त—अनुरक्त; मानसाः—मन वाली; विसृज्य—त्यागकर; लज्जाम्—लज्जा; रुरुदुः स्म—चिल्लाने लगीं; सु-स्वरम्—जोर जोर से; गोविन्द दामोदर माधव इति—हे गोविन्द, हे दामोदर, हे माधव।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इन शब्दों को कहने के बाद व्रज की स्त्रियाँ, जो कृष्ण के प्रति इतनी अनुरक्त थीं, उनके आसन्न वियोग से अत्यन्त क्षुब्ध हो उठीं। वे सारी लाज-हया भूल गईं और जोरों से "हे गोविन्द, हे दामोदर, हे माधव," चिल्ला उठीं।

तात्पर्य : दीर्घकाल तक गोपियों ने कृष्ण के प्रति अपने माधुर्य-प्रेम को छिपा रखा था। किन्तु अब जब कृष्ण विदा हो रहे थे तो गापियाँ इतनी व्यग्र हो उठी थीं कि वे अपने मनोभावों को छिपा न पाईं।

स्त्रीणामेवं रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ ।
अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; एवम्—इस प्रकार से; रुदन्तीनाम्—रुदन करती हुई; उदिते—उदय होते हुए; सवितरि—सूर्य; अथ—तब; अक्रूरः—अक्रूर; चोदयाम् आस—चल पड़ा; कृत—पूरा करके; मैत्र-आदिकः—प्रातःकालीन पूजा तथा नैतिक कार्य; रथम्—रथ पर।

किन्तु गोपियों द्वारा इस प्रकार क्रन्दन करते रहने पर भी अक्रूर प्रातःकालीन पूजा तथा अन्य कार्य समाप्त करके अपना रथ हाँकने लगे।

तात्पर्य : कुछ वैष्णव आचार्यों के अनुसार कृष्ण को मथुरा ले जाते समय अक्रूर ने गोपियों को सान्त्वना न देकर अपराध किया। इसी अपराध के कारण अक्रूर को बाद में जबरन द्वारका छोड़ना पड़ा और स्यमन्तक मणि की घटना के समय कृष्ण से विलग होना पड़ा। उस समय अक्रूर को वाराणसी के

एक घृणित स्थान में वास करना पड़ा था।

देखने में आया कि माता यशोदा तथा वृन्दावन के अन्य वासी इन गोपियों की तरह चिल्ला नहीं रहे थे क्योंकि उनका दृढ़ विश्वास था कि कृष्ण कुछ ही दिनों में लौट आयेंगे।

गोपास्तमन्वसज्जन्त नन्दाद्याः शकटैस्ततः ।
आदायोपायनं भूरि कुम्भान्गोरससम्भृतान् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

गोपाः—ग्वालों ने; तम्—उसका; अन्वसज्जन्त—पीछा किया; नन्द-आद्याः—नन्द इत्यादि; शकटैः—अपने छकड़ों में; ततः—तब; आदाय—ले लेकर; उपायनम्—भेंटें; भूरि—प्रचुर; कुम्भान्—घड़े; गो-रस—दूध की बनी वस्तुएँ; सम्भृतान्—भरी हुई।

नन्द महाराज को आगे करके ग्वाले अपने अपने छकड़ों में भगवान् कृष्ण के पीछे पीछे हो लिये। ये लोग अपने साथ राजा के लिए अनेक भेंटें लिये हुए थे जिनमें घी तथा अन्य दुग्ध उत्पादों से भरे हुए मिट्टी के घड़े सम्मिलित थे।

गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरञ्जिताः ।
प्रत्यादेशं भगवतः काङ्क्षन्त्यश्चावतस्थिरे ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियाँ; च—तथा; दयितम्—अपने प्रियतम; कृष्णम्—कृष्ण के; अनुव्रज्य—पीछे पीछे चलकर; अनुरञ्जिताः—प्रसन्न; प्रत्यादेशम्—बदले में कुछ आदेश; भगवतः—भगवान् से; काङ्क्षन्त्यः—आकांक्षा करती हुईं; च—तथा; अवतस्थिरे—खड़ी रहीं।

भगवान् कृष्ण ने (अपनी चितवन से) गोपियों को कुछ कुछ ढाढस बँधाया और वे भी कुछ देर तक उनके पीछे पीछे चलीं। फिर इस आशा से वे बिना हिले-डुले खड़ी रहीं कि वे उन्हें कुछ आदेश देंगे।

तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाणे यदूत्तमः ।
सान्त्वयामस सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

ताः—उन्हें (गोपियों को); तथा—इस तरह; तप्यतीः—विलाप करती; वीक्ष्य—देखकर; स्व-प्रस्थाने—अपने विदा होते समय; यदु-उत्तमः—यदुओं में श्रेष्ठ; सान्त्वयाम् आस—उन्हें ढाढ़स बँधाया; स-प्रेमैः—प्रेम से युक्त होकर; आयास्ये इति—''मैं वापस आऊँगा''; दौत्यकैः—दूत से भेजे गये शब्दों से।

जब वे विदा होने लगे तो उन यदुश्रेष्ठ ने देखा कि गोपियाँ किस तरह विलाप कर रही थीं। अतः उन्होंने एक दूत भेजकर यह प्रेमपूर्ण वादा भेजा कि ''मैं वापस आऊँगा'' इस प्रकार उन्हें

सान्त्वना प्रदान की।

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च ।
अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; आलक्ष्यते—दिखाई देता रहा; केतुः—ध्वजा; यावत्—जब तक; रेणुः—धूल; रथस्य—रथ की; च—तथा; अनुप्रस्थापित—पीछे पीछे भेजती हुईं; आत्मानः—अपने मनों को; लेख्यानि—लिखित चित्रों; इव—सदृश; उपलक्षिताः—प्रकट हो रही थीं।

गोपियाँ अपने अपने मन को कृष्ण के साथ भेजकर, किसी चित्र में बनी आकृतियों की भाँति निश्चेष्ट खड़ी रहीं। वे वहाँ तब तक खड़ी रहीं जब तक रथ के ऊपर की पताक दिखती रही और जब तक रथ के पहियों से उठी हुई धूल उन्हें दिखलाई पड़ती रही।

ता निराशा निववृतुर्गोविन्दविनिवर्तने ।
विशोका अहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

ताः—वे; निराशाः—आशारहित; निववृतुः—लौट आईं; गोविन्द-विनिवर्तने—गोविन्द की वापसी का; विशोकाः—अत्यन्त दुखी; अहनी—दिन तथा रात; निन्युः—बिताया; गायन्त्यः—कीर्तन करते; प्रिय—अपने प्रियतम की; चेष्टितम्—लीलाओं या कार्यकलापों के विषय में।

तब गोपियाँ निराश होकर लौट गईं। उन्हें इसकी आशा नहीं रही कि गोविन्द उनके पास कभी लौटेंगे भी। वे शोकाकुल होकर अपने प्रिय की लीलाओं का कीर्तन करती हुईं अपने दिन और रातें बिताने लगीं।

भगवानपि सम्प्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप ।
रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; अपि—तथा; सम्प्राप्तः—पहुँचे; राम-अक्रूर-युतः—बलराम तथा अक्रूर के साथ; नृप—हे राजा (परीक्षित); रथेन—रथ के द्वारा; वायु—वायु जैसे; वेगेन—तेज; कालिन्दीम्—कालिन्दी (यमुना) पर; अघ—पाप; नाशिनीम्—नष्ट करने वाली।

हे राजन्, भगवान् कृष्ण भगवान् बलराम तथा अक्रूर समेत उस रथ में वायु जैसी तेजी से यात्रा करते हुए सारे पापों को विनष्ट करने वाली कालिन्दी नदी पर पहुँचे।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी की टीका है कि भगवान् कृष्ण चुपके-चुपके गोपियों से अपने विरह पर पछताते रहे। भगवान् की ये दिव्य अनुभूतियाँ उनकी परम ह्लादिनी शक्ति की अंश रूप हैं।

तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् ।
वृक्षषण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; उपस्पृश्य—जल का स्पर्श करके; पानीयम्—अपने हाथ में; पीत्वा—पीकर; मृष्टम्—मधुर; मणि—मणियों के तुल्य; प्रभम्—तेजयुक्त; वृक्ष—वृक्षों के; षण्डम्—कुंज; उपव्रज्य—के पास चलकर; स-रामः—बलराम सहित; रथम्—रथ में; आविशत्—सवार हो गये।

नदी का मधुर जल चमकीली मणियों से भी अधिक तेजवान था। भगवान् कृष्ण ने शुद्धि के लिए जल से मार्जन किया और हाथ में लेकर आचमन किया। तत्पश्चात् अपने रथ को एक वृक्ष-कुंज के पास मँगाकर बलराम सहित उस पर पुनः सवार हो गये।

अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य निवेश्य च रथोपरि ।
कालिन्द्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

अक्रूरः—अक्रूर; तौ—उन दोनों से; उपामन्त्र्य—अनुमति लेकर; निवेश्य—उन्हें बैठाकर; च—तथा; रथ-उपरि—रथ पर; कालिन्द्याः—यमुना के; ह्रदम्—कुंड में; आगत्य—जाकर; स्नानम्—स्नान; विधि-वत्—शास्त्रीय विधि के अनुसार; आचरत्—पूरा किया।

अक्रूर ने दोनों भाइयों से रथ पर बैठने के लिये कहा। तत्पश्चात् उनसे अनुमति लेकर वे यमुना कुंड में गये और शास्त्रों में निर्दिष्ट विधि के अनुसार स्नान किया।

निमज्ज्य तस्मिन्सलिले जपन्ब्रह्म सनातनम् ।
तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

निमज्ज्य—घुसकर; तस्मिन्—उस; सलिले—जल में; जपन्—उच्चारण करते हुए; ब्रह्म—वैदिक मंत्र; सनातनम्—नित्य; तौ—दोनों ने; एव—निस्सन्देह; ददृशे—देखा; अक्रूरः—अक्रूर ने; राम-कृष्णौ—बलराम तथा कृष्ण; समन्वितौ—साथ साथ।

जल में प्रविष्ट होकर वेदों से नित्य मंत्रों का जप करते हुए अक्रूर ने सहसा बलराम तथा कृष्ण को अपने सम्मुख देखा।

तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुन्दुभेः ।
तर्हि स्वित्स्यन्दने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥ ४२ ॥
तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः ।
न्यमज्जद्दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तौ—वे दोनों; रथ-स्थौ—रथ पर आसीन; कथम्—कैसे; इह—यहाँ; सुतौ—दोनों पुत्र; आनकदुन्दुभेः—वसुदेव के; तर्हि—तब; स्वित्—क्या; स्यन्दने—रथ पर; न स्तः—नहीं हैं; इति—यह सोचते हुए; उन्मज्य—जल से निकलकर; व्यचष्ट—देखा; सः—उसने; तत्र अपि—उसी स्थान पर; च—तथा; यथा—जिस तरह; पूर्वम्—पहले; आसीनौ—बैठे हुए; पुनः—फिर से; एव—निस्सन्देह; सः—वह; न्यमज्जत्—जल में घुस गया; दर्शनम्—दर्शन; यत्—यदि; मे—मेरा; मृषा—झूठ; किम्—शायद; सलिले—जल में; तयोः—उन दोनों का।

अक्रूर ने सोचा: ''आनकदुन्दुभि के दोनों पुत्र, जो कि रथ पर बैठे हैं यहाँ जल में किस तरह खड़े हो सकते हैं? अवश्य ही उन्होंने रथ छोड़ दिया होगा।'' किन्तु जब वे नदी से निकलकर बाहर आये तो वे दोनों पहले की तरह रथ पर थे। अपने आप यह प्रश्न करते हुए कि ''क्या जल में मैने उनका जो दर्शन किया वह भ्रम था?'' अक्रूर पुनः कुंड में प्रविष्ट हो गये।

भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत्स्तूयमानमहीश्वरम् ।
सिद्धचारणगन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ॥ ४४॥
सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् ।
नीलाम्बरं विसश्वेतं शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम् ॥ ४५॥

शब्दार्थ

भूयः—पुनः; तत्र अपि—उसी स्थान पर; सः—उसने; अद्राक्षीत्—देखा; स्तूयमानम्—स्तुति किये जाते; अहि-ईश्वरम्—सर्पों के स्वामी (अनन्त शेष जो कि बलराम के स्वांश हैं और विष्णु की शय्या रूप हैं); सिद्ध-चारण-गन्धर्वैः—सिद्धों, चारणों तथा गन्धर्वों द्वारा; असुरैः—तथा असुरों द्वारा; नत—झुका हुआ; कन्धरैः—गर्दनों से; सहस्र—हजारों; शिरसम्—सिर वाले; देवम्—भगवान् को; सहस्र—हजारों; फण—फणों से; मौलिनम्—और मुकुट; नील—नीला; अम्बरम्—वस्त्र; विस—कमल-नालके तन्तु जैसा; श्वेतम्—सफेद; शृङ्गैः—चोटियों समेत; श्वेतम्—कैलाश पर्वत; इव—सदृश; स्थितम्—स्थित।

अब अक्रूर ने वहाँ सर्पराज अनन्त शेष को देखा जिनकी प्रशंसा सिद्ध, चारण, गन्धर्व तथा असुरगण अपना अपना शीश झुकाकर कर रहे थे। अक्रूर ने जिन भगवान् को देखा उनके हजारों सिर, हजारों फन तथा हजारों मुकुट थे। उनका नीला वस्त्र तथा कमल-नाल के तन्तुओं-सा श्वेत गौर वर्ण ऐसा लग रहा था मानो अनेक चोटियों वाला श्वेत कैलाश पर्वत हो।

तस्योत्सङ्गे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥ ४६॥
चारुप्रसन्नवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ।
सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥ ४७॥
प्रलम्बपीवरभुजं तुङ्गांसोरःस्थलश्रियम् ।
कम्बुकण्ठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ॥ ४८॥

शब्दार्थ

तस्य—उस (अनन्त शेष) की; उत्सङ्गे—गोद में; घन—वर्षा के बादल की तरह; श्यामम्—गहरा नीला; पीत—पीला; कौशेय—रेशमी; वाससम्—वस्त्र; पुरुषम्—परमेश्वर को; चतुः-भुजम्—चार भुजाओं वाले; शान्तम्—शान्त; पद्म—कमल

के; पत्र—पत्ते के समान; अरुण—लाल; ईक्षणम्—आँखें; चारु—आकर्षक; प्रसन्न—प्रसन्न; वदनम्—मुखमण्डल; चारु—आकर्षक; हास—हँसी; निरीक्षणम्—जिसकी चितवन; सु—सुन्दर; भ्रू—भौंहें; उत्—उठी; नसम्—नाक; चारु—आकर्षक; कर्णम्—कान; सु—सुन्दर; कपोल—गाल; अरुण—लाल; अधरम्—होंठों को; प्रलम्ब—बड़ी; पीवर—मजबूत; भुजम्—भुजाओं को; तुङ्ग—उठी; अंस—कंधे; उरः-स्थल—तथा छाती; श्रियम्—सुन्दर; कम्बु—शंख की तरह; कण्ठम्—गला; निम्न—गहरी; नाभिम्—नाभि; वलि—रेखाएँ, सिलवटें; मत्—से युक्त; पल्लव—पत्ती के समान; उदरम्—उदर।

तब अक्रूर ने भगवान् को अनन्त शेष की गोद में शान्तिपूर्वक शयन करते देखा। उस परम पुरुष का रंग गहरे नीले बादल के समान था। वे पीताम्बर पहने थे, उनके चार भुजाएँ थीं और उनकी आँखें लाल कमल की पंखुड़ियों जैसी थीं। उनका मुख आकर्षक एवं हँसी से युक्त होने से प्रसन्न लग रहा था। उनकी चितवन मोहक थी, भौंहें सुन्दर थीं, नाक उठी हुई, कान सुडौल तथा गाल सुन्दर और होंठ लाल लाल थे। भगवान् के चौड़े कंधे तथा विशाल वक्षस्थल सुन्दर लग रहे थे और उनकी भुजाएँ लम्बी तथा बलिष्ठ थीं। उनकी गर्दन शंख जैसी, नाभि गहरी तथा उनके पेट में वटवृक्ष के पत्तों जैसी रेखाएँ थीं।

बृहत्कटितटश्रोणि करभोरुद्वयान्वितम् ।
चारुजानुयुगं चारु जङ्घायुगलसंयुतम् ॥ ४९ ॥
तुङ्गगुल्फारुणनख व्रातदीधितिभिर्वृतम् ।
नवाङ्गुल्यङ्गुष्ठदलैर्विलसत्पादपङ्कजम् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

बृहत्—विशाल; कटि-तट—कमर का भाग; श्रोणि—तथा कूल्हे; करभ—हाथी के सूँड़ जैसे; ऊरु—जाँघों का; द्वय—जोड़ा; अन्वितम्—युक्त; चारु—आकर्षक; जानु-युगम्—दो घुटने; चारु—आकर्षक; जङ्घा—जाँघों का; युगल—जोड़ा; संयुतम्—से युक्त; तुङ्ग—ऊँचा; गुल्फ—टखने; अरुण—लाल; नख-व्रात—नाखूनों से; दीधितिभिः—तेजस्वी किरणों से; वृतम्—घिरा हुआ; नव—कोमल; अङ्गुलि-अङ्गुष्ठ—अँगूठे तथा अँगुलियाँ; दलैः—फूलों की पंखड़ियों की तरह; विलसत्—चमकती; पाद-पङ्कजम्—चरणकमल।

उनकी कमर तथा कूल्हे विशाल थे, जाँघें हाथी की सूँड़ जैसी तथा घुटने और रानें सुगठित थे। उनके उठे हुए टखनों से उनके फूलों पंखड़ियों जैसी पाँव की उंगलियों के नाखूनों से निकलने वाला चमकीला तेज परावर्तित होकर उनके चरणकमलों को सुन्दर बना रहा था।

सुमहार्हमणिव्रात किरीटकटकाङ्गदैः ।
कटिसूत्रब्रह्मसूत्र हारनूपुरकुण्डलैः ॥ ५१ ॥
भ्राजमानं पद्मकरं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

सु-महा—अत्यधिक; अर्ह—मूल्यवान; मणि-व्रात—अनेक मणियों; किरीट—मुकुट; कटक—कड़े; अङ्गदैः—बाजूबंदों से युक्त; कटि-सूत्र—करधनी से; ब्रह्म-सूत्र—जनेऊ; हार—गले का हार; नूपुर—पायल; कुण्डलैः—तथा कान के कुंडलों से; भ्राजमानम्—तेजयुक्त; पद्म—कमल; करम्—हाथ में; शङ्ख—शंख; चक्र—चक्र; गदा—तथा गदा; धरम्—धारण किये; श्रीवत्स—श्रीवत्स चिह्न; वक्षसम्—छाती पर; भ्राजत्—सुशोभित; कौस्तुभम्—कौस्तुभ मणि से; वन-मालिनम्—फूलों की माला धारण किये।

अनेक बहुमूल्य मणियों से युक्त मुकुट, कड़े तथा बाजूबंदों से सुशोभित तथा करधनी, जनेऊ, गले का हार, नूपुर तथा कुण्डल धारण किये भगवान् चमचमाते तेज से युक्त थे। वे एक हाथ में कमल का फूल लिये थे और अन्यों में शंख, चक्र तथा गदा धारण किये थे। उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह, देदीप्यमान कौस्तुभ मणि तथा फूलों की माला शोभायमान थी।

सुनन्दनन्दप्रमुखैः पर्षदैः सनकादिभिः ।
सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥ ५३ ॥
प्रह्लादनारदवसु प्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ।
स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥ ५४ ॥
श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ।
विद्ययाविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

सुनन्द-नन्द-प्रमुखैः—सुनन्द, नन्द इत्यादि; पर्षदैः—अपने पार्षदों सहित; सनक-आदिभिः—सनक कुमार तथा उनके भाइयों सहित; सुर-ईशैः—मुख्य देवताओं से; ब्रह्म-रुद्र-आद्यैः—ब्रह्म, रुद्र इत्यादि से; नवभिः—नौ; च—तथा; द्विज-उत्तमैः—मुख्य ब्राह्मणों (मरीचि आदि) से; प्रह्लाद-नारद-वसु-प्रमुखैः—प्रह्लाद, नारद, उपरिचर वसु इत्यादि से; भागवत-उत्तमैः—सर्वश्रेष्ठ भक्तों द्वारा; स्तूयमानम्—प्रशंसित; पृथक्-भावैः—प्रत्येक द्वारा भिन्न भावों से; वचोभिः—शब्दों से; अमल-आत्मभिः—पवित्र कृत; श्रीया पुष्ट्या गीरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्या इलया ऊर्जया—श्री, पुष्टि, गीर, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा नामक अन्तरंगा शक्तियों से; विद्यया अविद्यया—विद्या तथा अविद्या नामक शक्तियों से; शक्त्या—अपनी ह्लादिनी शक्ति से; मायया—अपनी सृजनात्मक शक्ति से; च—तथा; निषेवितम्—सेवित होकर।

भगवान् के चारों ओर घेरा बनाकर पूजा करने वालों में नन्द, सुनन्द तथा उनके अन्य निजी पार्षद, सनक तथा अन्य कुमारगण, ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य प्रमुख देवता, नौ मुख्य ब्राह्मण तथा प्रह्लाद, नारद, उपरिचर वसु इत्यादि महाभागवत थे। इनमें से प्रत्येक महापुरुष अपने अपने विशिष्टभाव में भगवान् की प्रशंसा में पवित्र शब्दोच्चार करके पूजा कर रहा था। यही नहीं, भगवान् की सेवा में उनकी मुख्य अन्तरंगा शक्तियों—श्री, पुष्टि, गीर, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला तथा ऊर्जा—के साथ साथ भौतिक शक्तियाँ विद्या, अविद्या, माया तथा उनकी अंतरंगा ह्लादिनी शक्ति जुटी हुई थीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इन श्लोकों में उल्लिखित भगवान् की शक्तियों की व्याख्या

की है : ''श्री धन की, पुष्टि बल की, गीर ज्ञान की, कान्ति सौन्दर्य की, कीर्ति यश की तथा तुष्टि त्याग की शक्ति है। ये ही भगवान् के छह ऐश्वर्य हैं। इला उनकी *भूशक्ति* है, जो *सन्धिनी* भी कहलाती है— (सन्धिनी अन्तरंगा शक्ति है, जिसका अंश पृथ्वी है)। ऊर्जा उनकी अन्तरंगा शक्ति है, जिससे लीलाएँ सम्पन्न होती हैं और यही विस्तार करके इस जगत में तुलसी का पौधा बनती है। विद्या तथा अविद्या बहिरंगा शक्तियाँ हैं, जो जीवों को क्रमशः मुक्ति तथा बन्धन प्रदान करने वाली हैं। शक्ति उनकी *ह्लादिनी* शक्ति है और माया वह अन्तरंगा शक्ति है, जो विद्या तथा अविद्या का आधार है। *च* शब्द भगवान् की तटस्था शक्ति— *जीव शक्ति* के लिए आया है। यह शक्ति माया के अधीन है। ये सभी शक्तियाँ साक्षात् होकर भगवान् विष्णु की सेवा कर रही थीं।''

विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ।
हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥ ५६ ॥
गिरा गद्गदयास्तौषीत्सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः ।
प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

विलोक्य—(अक्रूर ने) देखकर; सु-भृशम्—अत्यधिक; प्रीतः—प्रसन्न; भक्त्या—भक्ति से; परमया—परम; युतः—युक्त; हृष्यत्—खड़े हुए; तनू-रुहः—शरीर के रोम; भाव—प्रेमानन्द से; परिक्लिन्न—आर्द्र, नम; आत्म—शरीर; लोचनः—तथा आँखें; गिरा—वाणी से; गद्गदया—अवरुद्ध; अस्तौषीत्—स्तुति की; सत्त्वम्—गम्भीरता; आलम्ब्य—सहारा लेकर; सात्वतः—महाभागवत; प्रणम्य—झुककर; मूर्ध्ना—सिर के बल; अवहितः—ध्यानपूर्वक; कृत-अञ्जलि-पुटः—आदरपूर्वक हाथ जोड़कर; शनैः—धीरे धीरे।

ज्योंही महाभागवत अक्रूर ने यह दृश्य देखा, वे अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और उनमें दिव्य शक्ति जाग उठी। तीव्र आनन्द से उन्हें रोमांच हो आया और नेत्रों से अश्रु बह चले जिससे उनका सारा शरीर भीग गया। किसी तरह अपने को सँभालते हुए अक्रूर ने पृथ्वी पर अपना सिर झुका दिया। तत्पश्चात् सम्मान में अपने हाथ जोड़े और भावविभोर वाणी से अत्यन्त धीमे धीमे तथा ध्यानपूर्वक भगवान् की स्तुति करने लगे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''अक्रूर द्वारा दर्शन'' नामक उन्तालिसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चालीस

अक्रूर द्वारा स्तुति

इस अध्याय में अक्रूर द्वारा भगवान् की स्तुति की गई है। अक्रूर ने प्रार्थना की, ''इस दृश्य जगत का सृजन करने वाले ब्रह्मा की उत्पत्ति भगवान् की कमल-नाभि से हुई। भौतिक प्रकृति के पाँचों तत्त्व, पाँचों सम्बन्धित इन्द्रिय विषय, दस इन्द्रियाँ, अहंकार, सम्पूर्ण प्रकृति, इत्यादि सृष्टा तथा सारे देवता उनके शरीर के अंगों से उद्भूत होते हैं। उन्हें इन्द्रिय-ज्ञान से नहीं जाना जा सकता अत: ब्रह्मा तथा अन्य देवता तक उनके असली स्वरूप से अनजान रहते हैं।''

विभिन्न श्रेणियों के लोग भगवान् की पूजा भिन्न-भिन्न प्रकारों से करते हैं। सकाम कर्मी वैदिक यज्ञों द्वारा उनकी पूजा करते हैं, दार्शनिक भौतिक कर्म का परित्याग करके और आध्यात्मिक ज्ञान का अनुसरण करके, योगीजन ध्यान द्वारा, शैवगण शिवजी की पूजा करके, वैष्णवजन पञ्चरात्र जैसे शास्त्रों के आदेशों का पालन करते हुए तथा अन्य सन्त-महात्मा उनकी पूजा आत्मा के रूप में, भौतिक पदार्थ के रूप में तथा अधिष्ठाता देवताओं के रूप में करते हैं। जिस प्रकार नदियाँ विभिन्न दिशाओं से बहकर समुद्र में आ मिलती हैं उसी तरह इन विविध सत्ताओं को अपने को समर्पित करने वालों की पूजा का परम लक्ष्य भगवान् विष्णु में ही मिलता है।''

''सम्पूर्ण विश्व का रूप—विराट रूप—भगवान् विष्णु का ही रूप माना जाता है। जिस प्रकार जलचर जल में विचरते हैं या जिस तरह उदुम्बर फल के भीतर छोटे छोटे कीड़े चलते हैं उसी तरह सारे जीव भगवान् के भीतर इधर उधर घूमते रहते हैं। ये सारे जीव उनकी माया के वशीभूत होकर अपने को असत्य में शरीर, घर आदि मानकर भौतिक कर्म के पथ पर घूमते रहते हैं। भ्रमवश मूर्ख व्यक्ति घास और पत्तियों से ढके जल के आगार की उपेक्षा करके मृगतृष्णा के पीछे दौड़ता फिरता है। इसी तरह अविद्या के पाश में पड़े हुए जीव भगवान् विष्णु को छोड़कर अपने शरीरों एवं घरों आदि के प्रति अनुरक्त रहते हैं। अपनी इन्द्रियों के ऐसे आज्ञाकारी दास कभी भी भगवान् के चरणकमलों की शरण प्राप्त नहीं कर पाते। एकमात्र उनकी कृपा से यदि उन्हें किसी सन्त-भक्त की संगति प्राप्त हो जाती है, तो यह भव-पाश कट जाता है। तभी वे लोग भगवान् के शुद्ध भक्तों की सेवा करके कृष्णभावनामृत उत्पन्न कर सकते हैं।''

श्रीअक्रूर उवाच
नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं

नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ।
यन्नाभिजातादरविन्दकोषाद्
ब्रह्माविरासीद्यत एष लोकः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-अक्रूरः उवाच—श्री अक्रूर ने कहा; नतः—विनत; अस्मि—हूँ; अहम्—मैं; त्वा—आपके प्रति; अखिल—समस्त; हेतु—कारणों के; हेतुम्—कारण; नारायणम्—नारायण को; पूरुषम्—परम पुरुष; आद्यम्—आदि; अव्ययम्—अव्यय; यत्—जिससे; नाभि—नाभि; जातात्—से उत्पन्न; अरविन्द—कमल के; कोषात्—कोष से; ब्रह्मा—ब्रह्मा; अविरासीत्—प्रकट हुआ; यतः—जिससे; एषः—यह; लोकः—जगत।

श्री अक्रूर ने कहा : हे समस्त कारणों के कारण, आदि तथा अव्यय महापुरुष नारायण, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी नाभि से उत्पन्न कमल के कोष से ब्रह्मा प्रकट हुए हैं और उनसे यह ब्रह्माण्ड अस्तित्व में आया है।

भूस्तोयमग्निः पवनं खमादि-
र्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि ।
सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे
ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

भूः—पृथ्वी; तोयम्—जल; अग्निः—अग्नि; पवनम्—वायु; खम्—आकाश; आदिः—तथा इसका उद्गम, मिथ्या अहंकार; महान्—महत-तत्त्व; अजा—सम्पूर्ण भौतिक प्रकृति; आदिः—उसका उद्गम, परमेश्वर; मनः—मन; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; सर्व-इन्द्रिय—सारी इन्द्रियों के; अर्थाः—विषय, वस्तुएँ; विबुधाः—देवतागण; च—तथा; सर्वे—सभी; ये—जो; हेतवः—कारण; ते—तुम्हारा; जगतः—जगत के; अङ्ग—शरीर से; भूताः—उत्पन्न।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश एवं इसका स्रोत तथा मिथ्या अहंकार, महत्-तत्त्व, समस्त भौतिक प्रकृति और उसका उद्गम तथा भगवान् का पुरुष अंश, मन, इन्द्रियाँ, इन्द्रिय विषय तथा इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता—ये सब विराट जगत के कारण आपके दिव्य शरीर से उत्पन्न हैं।

नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते
ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीतः ।
अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया
गुणात्परं वेद न ते स्वरूपम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एते—ये (सृष्टि के तत्त्व); स्वरूपम्—असली पहचान; विदुः—जानते हैं; आत्मनः—परमात्मा का; ते—तुम; हि—निस्सन्देह; अजा-आदयः—पूर्ण प्रकृति इत्यादि; अनात्मतया—निर्जीव पदार्थ होने से; गृहीताः—पकड़े हुए, बद्ध; अजः—ब्रह्मा; अनुबद्धः—बँधा हुआ; सः—वह; गुणैः—गुणों से; अजायाः—प्रकृति के; गुणात्—इन गुणों से; परम्—दिव्य; वेद न—नहीं जानता; ते—आपके; स्वरूपम्—असली रूप को।

सम्पूर्ण भौतिक प्रकृति तथा ये अन्य सृजन-तत्त्व निश्चय ही आपको यथा-रूप में नहीं जान सकते क्योंकि ये निर्जीव पदार्थ के परिमण्डल में प्रकट होते हैं। चूँकि आप प्रकृति के गुणों से परे हैं, अतः इन गुणों से बद्ध ब्रह्माजी भी आपके असली रूप को नहीं जान पाते।

तात्पर्य : ईश्वर भौतिक प्रकृति से परे हैं। जब तक हम भी सीमित सांसारिक चेतना को लाँघ नहीं जाते तब तक उन्हें जान नहीं सकते। यहाँ तक कि ब्रह्माण्ड के सबसे बड़े जीव ब्रह्मा भी परमेश्वर को तब तक समझ नहीं सकते जब तक वे शुद्ध कृष्णभावनामृत के पद को प्राप्त नहीं हो लेते।

त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् ।
साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः ॥ ४॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम्हारे लिए; योगिनः—योगीजन; यजन्ति—यज्ञ करते हैं; अद्धा—निश्चय ही; महा-पुरुषम्—परम पुरुष के लिए; ईश्वरम्—ईश्वर के लिए; स-अध्यात्मम्—जीवों (का साक्षी); स-अधिभुतम्—भौतिक तत्त्वों का; च—तथा; स-अधिदैवम्—नियंत्रक देवताओं का; च—तथा; साधवः—शुद्ध पुरुष।

शुद्ध योगीजन आप की अर्थात् परमेश्वर की तीन रूपों में अनुभूति करते हुए पूजा करते हैं। ये तीन हैं—जीव, भौतिक तत्त्व जिनसे जीवों के शरीर बने हैं तथा इन तत्त्वों के नियंत्रक देवता (अधिदेव)।

त्रय्या च विद्यया केचित्त्वां वै वैतानिका द्विजाः ।
यजन्ते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥ ५॥

शब्दार्थ

त्रय्या—तीन वेदों के; च—तथा; विद्यया—मंत्रों से; केचित्—कुछ; त्वाम्—तुमको; वै—निस्सन्देह; वैतानिकाः—तीनों अग्नियों के विधानों का समादर करने वाले; द्विजाः—ब्राह्मण; यजन्ते—पूजा करते हैं; विततैः—विस्तृत; यज्ञैः—यज्ञों के द्वारा; नाना—विविध; रूप—रूप वाले; अमर—देवताओं की; आख्यया—उपाधियों से।

तीन पवित्र अग्नियों से सम्बद्ध नियमों का पालन करने वाले ब्राह्मण तीनों वेदों से मंत्रोचार करके तथा अनेक रूपों और नामों वाले विविध देवताओं के लिए व्यापक अग्नि यज्ञ करके पूजा करते हैं।

तात्पर्य : अब अक्रूर यह बतलाते हैं कि जो सांख्य, योग तथा तीनों वेदों के मार्गों का पालन करते हैं वे भगवान् की पूजा विविध प्रकारों से करते हैं। जहाँ इन्द्र, वरुण तथा अन्य देवताओं की पूजा किये जाने की वेदों द्वारा संस्तुति की जाती है, वहीं वे इन देवताओं को सर्वोच्च भी बतलाते हैं। किन्तु उसी

के साथ वेदों का कहना है कि एक परम नियन्ता परब्रह्म ही है। वह भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो भौतिक सृजन द्वारा विविध देवताओं के रूप में अपनी शक्ति का विस्तार करते हैं। इस तरह देवताओं की पूजा *कर्मकाण्ड* की अप्रत्यक्ष विधि से या सकाम धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा उन तक पहुँचती है। किन्तु अन्ततोगत्वा नित्य सिद्धि चाहने वाले को पूर्ण कृष्णभावनामृत में रहकर प्रत्यक्षत: भगवान् की पूजा करनी चाहिए।

एके त्वाखिलकर्माणि सन्न्यस्योपशमं गताः ।
ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

एके—कुछ लोग; त्वा—तुमको; अखिल—समस्त; कर्माणि—कार्य; सन्न्यस्य—त्यागकर; उपशमम्—शान्ति; गताः—प्राप्त करके; ज्ञानिनः—ज्ञानीजन; ज्ञान-यज्ञेन—ज्ञान-अनुशील के यज्ञ द्वारा; यजन्ति—पूजा करते हैं; ज्ञान-विग्रहम्—साक्षात् ज्ञान को।

आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में कुछ लोग सारे भौतिक कार्यों का परित्याग कर देते हैं और इस तरह शान्त होकर समस्त ज्ञान के आदि रूप आपकी पूजा करने के लिए ज्ञान-यज्ञ करते हैं।

तात्पर्य : आधुनिक दार्शनिकजन भगवान् की पूजा की परवाह किये बिना ही ज्ञान का अनुसरण करते हैं फलत: स्वाभाविक है कि उन्हें बहुत ही कम लाभ हो पाता है।

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते ।
यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

अन्ये—अन्य लोग; च—तथा; संस्कृत—शुद्ध किये हुए; आत्मानः—जिनकी बुद्धि; विधिना—(पञ्चरात्र जैसे शास्त्रों के) आदेशों से; अभिहितेन—प्रस्तुत किये गये; ते—तुम्हारे द्वारा; यजन्ति—पूजा करते हैं; त्वत्-मयाः—तुम्हारे विचार से पूरित; त्वाम्—तुमको; वै—निस्सन्देह; बहु-मूर्ति—अनेक रूपों वाले; एक-मूर्तिकम्—एक स्वरूप वाला।

और अन्य लोग जिनकी बुद्धि शुद्ध है वे आपके द्वारा लागू किये गये वैष्णव शास्त्रों के आदेशों का पालन करते हैं। वे आपके चिन्तन में अपने मन को लीन करके आपकी पूजा परमेश्वर रूप में करते हैं, जो अनेक रूपों में प्रकट होता है।

तात्पर्य : यहाँ *संस्कृतात्मान:* (वे जिनकी बुद्धि शुद्ध है) शब्द सार्थक है। इसका अर्थ यह हुआ कि इसके पूर्व जिन पूजकों का उल्लेख हुआ है उनकी बुद्धि भौतिक कल्मष से शुद्ध नहीं हुई है, अत: वे भगवान् की अप्रत्यक्ष पूजा करते हैं। किन्तु जो शुद्ध हैं, वे भगवान् की प्रत्यक्ष पूजा या तो भगवान्

कृष्ण के रूप में या उनके विविध स्वांश रूपों यथा वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न या अनिरुद्ध के रूप में करते हैं जैसाकि यहाँ इंगित किया गया है।

**त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् ।
बह्वाचार्यविभेदेन भगवन्तर्नुपासते ॥ ८ ॥**

शब्दार्थ

त्वाम्—तुम; एव—भी; अन्ये—अन्य; शिव—शिव द्वारा; उक्तेन—कहे गये; मार्गेण—मार्ग से; शिव-रूपिणम्—शिव के रूप में; बहु-आचार्य—अनेक शिक्षकों के; विभेदेन—विभिन्न भेदों से; भगवन्तम्—भगवान् को; उपासते—पूजा करते हैं।

कुछ अन्य लोग भी हैं, जो आपकी पूजा भगवान् शिव के रूप में करते हैं। वे उनके द्वारा बताये गये तथा अनेक उपदेशकों द्वारा नाना प्रकार से व्याख्यायित मार्ग का अनुसरण करते हैं।

तात्पर्य : *त्वाम् एव* शब्द (''तुम भी'') सूचित करते हैं कि शिवजी के पूजन का मार्ग अप्रत्यक्ष है अतएव निकृष्ट है। अक्रूर कृष्ण या विष्णु की प्रत्यक्ष पूजा अपनी स्तुति द्वारा करने के कारण श्रेष्ठ विधि का पालन कर रहे हैं।

**सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ।
येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥ ९ ॥**

शब्दार्थ

सर्वे—सभी; एव—निस्सन्देह; यजन्ति—पूजा करते हैं; त्वम्—तुम्हारी; सर्व-देव—समस्त देवता; मय—हे वही आप, जो युक्त हो; ईश्वरम्—भगवान्; ये—वे; अपि—भी; अन्य—दूसरे; देवता—देवताओं का; भक्ताः—भक्तों; यदि अपि—यद्यपि; अन्य—अन्यत्र मुड़े; धियः—ध्यान; प्रभो—हे प्रभो।

किन्तु हे प्रभु, ये सारे लोग, यहाँ तक कि जिन्होंने आपसे अपना ध्यान मोड़ रखा है और जो अन्य देवताओं की पूजा कर रहे हैं, वे वास्तव में, हे समस्त देवमय, आपकी ही पूजा कर रहे हैं।

तात्पर्य : यहाँ भाव यह है कि जो देवताओं को पूजते हैं, वे भी अप्रत्यक्ष रूप से भगवान् विष्णु की ही पूजा करते हैं। लेकिन ऐसे पूजकों का ज्ञान अधूरा है।

**यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ।
विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥ १० ॥**

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; अद्रि—पर्वतों से; प्रभवाः—उत्पन्न; नद्यः—नदियाँ; पर्जन्य—वर्षा से; आपूरिताः—पूरित; प्रभो—हे प्रभु; विशन्ति—प्रवेश करती हैं; सर्वतः—सभी दिशाओं से; सिन्धुम्—समुद्र में; तद्वत्—उसी तरह; त्वाम्—तुम में; गतयः—मार्ग; अन्ततः—अन्त में।

हे प्रभो, जिस प्रकार पर्वतों से उत्पन्न तथा वर्षा से पूरित नदियाँ सभी ओर से समुद्र में आकर मिलती हैं उसी तरह ये सारे मार्ग अन्त में आप तक पहुँचते हैं।

तात्पर्य : स्वयं भगवान् कृष्ण इस पूजा प्रकरण को *भगवद्गीता* (९.२३-२५) में इस प्रकार बतलाते हैं—

येऽप्य अन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विता: ।

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।

न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥

यान्ति देवव्रता देवान् पित्न् यान्ति पितृव्रता: ।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

''हे कुन्तीपुत्र! जो लोग अन्य देवताओं के भक्त हैं और उनकी श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं वास्तव में वे भी मेरी ही पूजा करते हैं किन्तु वे ऐसा गलत ढंग से करते हैं। मैं ही समस्त यज्ञों का एकमात्र भोक्ता तथा स्वामी हूँ। अत: जो लोग मेरी वास्तविक दिव्य प्रकृति को नहीं पहचान पाते उनका पतन हो जाता है। जो देवताओं की पूजा करते हैं, वे देवताओं के बीच जन्म लेंगे। जो पितरों की पूजा करते हैं, वे पितरों के पास जाते हैं। जो भूतप्रेतों की उपासना करते हैं, वे उन्हीं के बीच जन्म लेंगे और जो मेरी पूजा करते हैं, वे मेरे साथ निवास करेंगे।

सत्त्वं रजस्तम इति भवत: प्रकृतेर्गुणा: ।
तेषु हि प्राकृता: प्रोता आब्रह्मस्थावरादय: ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—सत्, अच्छाई; रज:—काम, रज; तम:—तम, अज्ञान; इति—इस प्रकार विख्यात; भवत:—आपकी; प्रकृते:—प्रकृति के; गुणा:—गुण; तेषु—उनमें; हि—निस्सन्देह; प्राकृता:—बद्धजीव; प्रोता:—बिने हुए, उलझे; आ-ब्रह्म—ब्रह्मा तक; स्थावर-आदय:—अचर प्राणी इत्यादि।

आपकी भौतिक प्रकृति के सतो, रजो तथा तमो गुण ब्रह्मा से लेकर अचर प्राणियों तक के समस्त बद्धजीवों को पाशबद्ध किये रहते हैं।

तुभ्यं नमस्ते त्वविषक्तदृष्टये

सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे ।
गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः
प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥ १२॥

शब्दार्थ

तुभ्यम्—तुम्हें; नमः—नमस्कार; ते—तुम्हारा; तु—तथा; अविषक्त—पृथक्, विलग; दृष्टये—दृष्टि वाले; सर्व-आत्मने—सबों की आत्मा को; सर्व—हरएक की; धियाम्—चेतना के; च—तथा; साक्षिणे—साक्षी को; गुण—गुणों की; प्रवाहः—धारा; अयम्—यह; अविद्यया—अज्ञान के कारण; कृतः—उत्पन्न; प्रवर्तते—चलता रहता है; देव—देवताओं के रूप में; नृ—मनुष्य; तिर्यक्—तथा पशु; आत्मसु—उनमें जिनका स्वरुप है।

मैं आपको नमस्कार करता हूँ, जो समस्त जीवों के परमात्मा रूप होकर निष्पक्ष दृष्टि से हर एक की चेतना के साक्षी हैं। अज्ञान से उत्पन्न आपके भौतिक गुणों का प्रवाह उन जीवों के बीच प्रबलता के साथ प्रवाहित होता है, जो देवताओं, मनुष्यों तथा पशुओं का रूप धारण करते हैं।

अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं
सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ।
द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः
कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥ १३॥
रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा
मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ।
निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापति-
र्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥ १४॥

शब्दार्थ

अग्निः—अग्नि; मुखम्—मुख; ते—तुम्हारा; अवनिः—पृथ्वी; अङ्घ्रिः—पाँव; इक्षणम्—आँखें; सूर्यः—सूर्य; नभः—आकाश; नाभिः—नाभि; अथ उ—तथा भी; दिशः—दिशाएँ; श्रुतिः—श्रवणेन्द्रिय; द्यौः—स्वर्ग; कम्—सिर; सुर-इन्द्राः—प्रमुख देवता; तव—तुम्हारी; बाहवः—बाँहें; अर्णवाः—समुद्र; कुक्षिः—उदर; मरुत्—वायु; प्राण—प्राण-वायु; बलम्—तथा शारीरिक बल; प्रकल्पितम्—कल्पना किया हुआ; रोमाणि—शरीर के रोएँ; वृक्ष—पेड़; ओषधयः—जड़ी-बूटियाँ; शिरः-रुहाः—सिर के ऊपर के बाल; मेघाः—बादल; परस्य—परमेश्वर की; अस्थि—हड्डियाँ; नखानि—तथा नाखून; ते—तुम्हारा; अद्रयः—पर्वत; निमेषणम्—पलक झाँपना; रात्रि-अहनी—दिन तथा रात; प्रजापतिः—मनुष्य को जन्म देने वाला; मेढ्रः—गुप्तांग, जननेन्द्रिय; तु—तथा; वृष्टिः—वर्षा; तव—तुम्हारा; वीर्यम्—वीर्य; इष्यते—माना जाता है।

अग्नि आपका मुख कही जाती है, पृथ्वी आपके पाँव हैं, सूर्य आपकी आँख है और आकाश आपकी नाभि है। दिशाएँ आपकी श्रवणेन्द्रिय हैं, प्रमुख देवता आपकी बाँहें हैं और समुद्र आपका उदर है। स्वर्ग आपका सिर समझा जाता है और वायु आपकी प्राण-वायु तथा शारीरिक बल है। वृक्ष तथा जड़ी-बूटियाँ आपके शरीर के रोम हैं, बादल आपके सिर के बाल हैं तथा पर्वत आपकी अस्थियाँ तथा नाखून हैं। दिन तथा रात का गुजरना आपकी पलकों का झपकना है, प्रजापति आपकी जननेन्द्रिय है और वर्षा आपका वीर्य है।

त्वय्यव्ययात्मन्पुरुषे प्रकल्पिता
लोकाः सपाला बहुजीवसङ्कुलाः ।
यथा जले सञ्जिहते जलौकसो-
ऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

त्वयि—तुम्हारे भीतर; अव्यय-आत्मन्—अविनाशी; पुरुषे—भगवान्; प्रकल्पिताः—उत्पन्न; लोकाः—जगत; स-पालाः—पालनकर्ता देवताओं समेत; बहु—अनेक; जीव—जीवों समेत; सङ्कुलाः—एकत्र; यथा—जिस तरह; जले—जल में; सञ्जिहते—इधर उधर घूमते हैं; जल-ओकसः—जल के प्राणी; अपि—निस्सन्देह; उदुम्बरे—उदुम्बर फल (गूलर) में; वा—अथवा; मशकाः—छोटे छोटे कीट; मनः—मन (तथा अन्य इन्द्रियाँ); मये—से युक्त आपमें।

अपने अपने अधिष्ठातृ देवताओं तथा असंख्य जीवों समेत सारे जगत आप परम अविनाशी से उद्भूत हैं। ये सारे जगत मन तथा इन्द्रियों पर आधारित होकर आपके भीतर घूमते रहते हैं जिस प्रकार समुद्र में जलचर तैरते हैं अथवा छोटे छोटे कीट गूलर फल के भीतर छेदते रहते हैं।

यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि ।
तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

यानि यानि—जो जो; इह—इस जगत में; रूपाणि—रूप; क्रीडन—खेल के; अर्थम्—हेतु; बिभर्षि—प्रकट करते हो; हि—निस्सन्देह; तैः—उनके द्वारा; आमृष्ट—धुला हुआ; शुचः—उनके दुखों का; लोकाः—लोग; मुदा—हर्षपूर्वक; गायन्ति—गाते हैं; ते—तुम्हारा; यशः—यश।

आप अपनी लीलाओं का आनन्द लेने के लिए इस भौतिक जगत में नाना रूपों में अपने को प्रकट करते हैं और ये अवतार उन लोगों के सारे दुखों को धो डालते हैं, जो हर्षपूर्वक आपके यश का गान करते हैं।

नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च ।
हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥ १७ ॥
अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे ।
क्षित्युद्धारविहाराय नमः शूकरमूर्तये ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; कारण—सृष्टि के आदि कारण; मत्स्याय—मत्स्य के रूप में भगवान् के प्राकट्य को; प्रलय—संहार के; अब्धि—सागर में; चराय—इधर उधर विचरण करने वाले; च—तथा; हय-शीर्ष्णे—घोड़े के सिर से युक्त अवतार को; नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—तुमको; मधु-कैटभ—मधु तथा कैटभ नामक असुरों के; मृत्यवे—मारने वाले को; अकूपाराय—कच्छप को; बृहते—विशाल; नमः—नमस्कार; मन्दर—मन्दराचल के; धारिणे—धारण करने वाले को; क्षिति—पृथ्वी के; उद्धार—ऊपर उठाने; विहाराय—विहार के लिए; नमः—नमस्कार; शूकर—सुअर के; मूर्तये—रूप को।

मैं सृष्टि के कारण भगवान् मत्स्य रूप आपको नमस्कार करता हूँ जो प्रलय के सागर में इधर

उधर तैरते रहे। मैं मधु तथा कैटभ के संहारक हयग्रीव को, मन्दराचल को धारण करने वाले विशाल कच्छप (भगवान् कूर्म) को तथा पृथ्वी को उठाने में आनन्द का अनुभव करने वाले सूकर अवतार (भगवान् वराह) रूप आपको नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : *विश्वकोश* में *अकूपाराय* शब्द का अर्थ कूर्मराज दिया हुआ है।

नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ।
वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; ते—तुमको; अद्भुत—आश्चर्यजनक; सिंहाय—सिंह को; सधु-लोक—सारे साधु-भक्तों के; भय—डर के; अपह—हटाने वाले; वामनाय—वामन को; नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—तुमको; क्रान्त—पग सेनापा; त्रि-भुवनाय—ब्रह्माण्ड के तीनों लोकों के; च—तथा।

अपने सन्त-भक्तों के भय को भगाने वाले अद्भुत सिंह (भगवान् नृसिंह) तथा तीनों जगतों को अपने पगों से नापने वाले वामन मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

नमो भृगुणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ।
नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च ॥ २० ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; भृगूणाम्—भृगुवंशियों के; पतये—स्वामी को (परशुराम को); दृप्त—घमंडी; क्षत्र—राज-परिवार वालों के; वन—जंगल; छिदे—काटने वाला; नमः—नमस्कार; ते—तुम्हें; रघु-वर्याय—रघुवंशियों में श्रेष्ठ; रावण—रावण का; अन्त-कराय—अन्त करने वाले; च—तथा।

घमंडी राजाओं रूपी जंगल को काट डालने वाले भृगुपति तथा राक्षस रावण का अन्त करने वाले रघुकुल शिरोमणि भगवान् राम, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; ते—तुम्हें; वासुदेवाय—श्री वासुदेव को; नमः—नमस्कार; सङ्कर्षणाय—संकर्षण को; च—तथा; प्रद्युम्नाय—प्रद्युम्न को; अनिरुद्धाय—तथा अनिरुद्ध को; सात्वताम्—यादवों के; पतये—प्रधान को; नमः—नमस्कार।

सात्वतों के स्वामी आपको नमस्कार है। आपके वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध रूपों को नमस्कार है।

नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ।
म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥ २२॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; बुद्धाय—बुद्ध को; शुद्धाय—शुद्ध; दैत्य-दानव—दिति तथा दानु की सन्तानों के; मोहिने—मोहने वाले को; म्लेच्छ—मांस-भक्षक अछूत के; प्राय—समान; क्षत्र—राजाओं; हन्त्रे—मारने वाले को; नमः—नमस्कार; ते—तुम्हें; कल्कि-रूपिणे—कल्कि के रूप में।

आपके शुद्ध रूप भगवान् बुद्ध को नमस्कार है, जो दैत्यों तथा दानवों को मोह लेगा। आपके कल्कि रूप को नमस्कार है, जो राजा बनने वाले मांस-भक्षकों का संहार करने वाला है।

भगवन्जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया ।
अहं ममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥ २३॥

शब्दार्थ

भगवन्—हे भगवन्; जीव—जीवों का; लोकः—लोक; अयम्—यह; मोहितः—मोहग्रस्त; तव—तुम्हारी; मायया—माया द्वारा; अहम् मम इति—मैं तथा मेरी धारणा पर आधारित; असत्—मिथ्या; ग्राहः—जिसकी अनुभूति; भ्राम्यते—घुमाती है; कर्म—सकाम कर्म के; वर्त्मसु—मार्गों पर।

हे परमेश्वर, इस जगत में सारे जीव आपकी शक्ति माया से भ्रमित हैं। वे "मैं" तथा "मेरा" की मिथ्या धारणाओं में फँसकर सकाम कर्मों के मार्गों पर भटकते रहने के लिए बाध्य होते रहते हैं।

अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ।
भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥ २४॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; च—भी; आत्म—शरीर सम्बन्धी; आत्म-ज—सन्तानें; अगार—घर; दार—पत्नी; अर्थ—धन; स्व-जन—अनुयायियों; आदिषु—इत्यादि में; भ्रमामि—भ्रम में पड़ा हूँ; स्वप्न—स्वप्न; कल्पेषु—के सदृश; मूढः—मूर्ख; सत्य—चूँकि वे असली हैं; धिया—भावना से; विभो—हे सर्वशक्तिमान प्रभु।

हे शक्तिशाली विभो, मैं भी अपने शरीर, सन्तानों, घर, पत्नी, धन तथा अनुयायियों को मूर्खता से वास्तविक मानकर इस प्रकार से भ्रमित हो रहा हूँ यद्यपि ये सभी स्वप्न के समान असत्य हैं।

अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ।
द्वन्द्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वात्मनः प्रियम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

अनित्य—नित्य नहीं; अनात्म—आत्मा नहीं; दुःखेषु—कष्ट के साधनों में; विपर्यय—उल्टी; मतिः—मनोवृत्ति; हि—निस्सन्देह; अहम्—मैं; द्वन्द्व—द्वैत में; आरामः—आनन्द लेता हुआ; तमः—अज्ञान में; विष्टः—मग्न; न जाने—पहचान नहीं पा रहा; त्वा—आपको; आत्मनः—अपने; प्रियम्—प्रियतम को।

इस तरह नश्वर को नित्य, अपने शरीर को आत्मा तथा कष्ट के साधनों को सुख के साधन मानते हुए मैंने भौतिक द्वन्द्वों में आनन्द उठाने का प्रयत्न किया है। इस तरह अज्ञान से आवृत होकर मैं यह नहीं पहचान सका कि आप ही मेरे प्रेम के असली लक्ष्य हैं।

यथाबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः ।
अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाहं पराङ्मुखः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; अबुधः—कोई अज्ञानी; जलम्—जल की; हित्वा—उपेक्षा करके; प्रतिच्छन्नम्—प्रच्छन्न; तत्-उद्भवैः—उसमें उगे हुए वृक्षों से; अभ्येति—पास पहुँचता है; मृग-तृष्णाम्—मृगतृष्णा; वै—निस्सन्देह; तद्वत्—उसी तरह; त्वा—तुमसे; अहम्—मैंने; पराक्-मुखः—मुख मोड़ लिया।

जिस तरह कोई मूर्ख व्यक्ति जल के अन्दर उगी हुई वनस्पति से ढके हुए जल की उपेक्षा करके मृगतृष्णा के पीछे दौड़ता है उसी तरह मैंने आपसे मुख मोड़ रखा है।

नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ।
रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

न उत्सहे—शक्ति नहीं पा रहा; अहम्—मैं; कृपण—कुंठित; धीः—बुद्धि; काम—भौतिक इच्छा; कर्म—तथा भौतिक कार्यों से; हतम्—विचलित; मनः—मेरा मन; रोद्धुम्—रोके रखने के लिए; प्रमाथिभिः—अत्यन्त शक्तिशाली तथा इच्छा करने वाले; च—तथा; अक्षैः—इन्द्रियों से; ह्रियमाणम्—घसीटा जाकर; इतः ततः—इधर उधर।

मेरी बुद्धि इतनी कुंठित है कि मैं अपने मन को रोक पाने की शक्ति नहीं जुटा पा रहा जो भौतिक इच्छाओं तथा कार्यों से विचलित होता रहता है और मेरी जिद्दी इन्द्रियों द्वारा निरन्तर इधर उधर घसीटा जाता है।

सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं
तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ।
पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्ग-
स्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

सः—ऐसा; अहम्—मैं; तव—तुम्हारे; अङ्घ्रि—चरणों के; उपगतः अस्मि—पास आया हूँ; असताम्—अशुद्धों के लिए; दुरापम्—प्राप्त करना असम्भव; तत्—वह; च—और; अपि—भी; अहम्—मैं; भवत्—आपकी; अनुग्रहः—दया; ईश—हे ईश्वर; मन्ये—सोचता हूँ; पुंसः—मनुष्य का; भवेत्—होए; यर्हि—जब; संसरण—भव-चक्र का; अपवर्गः—अन्त; त्वयि—तुम में; अब्ज—कमल के समान; नाभ—नाभि वाले; सत्—शुद्ध भक्तों की; उपासनया—पूजा से; मतिः—चेतना; स्यात्—उत्पन्न होती है।

हे प्रभु, इस तरह पतित हुआ मैं आपके चरणों में शरण लेने आया हूँ, क्योंकि, यद्यपि अशुद्ध लोग आपके चरणों को कभी भी प्राप्त नहीं कर पाते, मेरा विचार है कि आपकी कृपा से तो यह संभव हो सका है। हे कमल-नाभ भगवान्, जब किसी का भौतिक जीवन समाप्त हो जाता है तभी वह आपके शुद्ध भक्तों की सेवा करके आपके प्रति चेतना उत्पन्न कर सकता है।

नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे ।
पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; विज्ञान—शुद्ध ज्ञान के; मात्राय—स्वरूप को; सर्व—समस्त; प्रत्यय—ज्ञान के रूपों के; हेतवे—कारण को; पुरुष—पुरुष की; ईश—नियंत्रण करने वाली शक्ति के; प्रधानाय—सर्वेसर्वा को; ब्रह्मणे—परब्रह्म को; अनन्त—असीम; शक्तये—शक्ति।

असीम शक्तियों के स्वामी परम सत्य को नमस्कार है। वे शुद्ध दिव्य-ज्ञान स्वरूप हैं, समस्त चेतनाओं के स्त्रोत हैं और जीव पर शासन चलाने वाली प्रकृति की शक्तियों के अधिपति हैं।

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ।
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; ते—तुम्हें; वासुदेवाय—वसुदेव के पुत्र को; सर्व—समस्त; भूत—जीवों के; क्षयाय—निवास को; च—तथा; हृषीक-ईश—मन तथा इन्द्रियों के स्वामी; नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—तुम्हें; प्रपन्नम्—शरणागत हूँ; पाहि—कृपया बचायें; माम्—मुझको; प्रभो—हे स्वामी।

हे वसुदेवपुत्र आपको नमस्कार है। आपमें सारे जीवों का निवास है। हे मन तथा इन्द्रियों के स्वामी, मैं पुनः आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभु, मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत "अक्रूर द्वारा स्तुति" नामक चालीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter इकतालीस

कृष्ण तथा बलराम का मथुरा में प्रवेश

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह भगवान् कृष्ण ने मथुरा नगरी में प्रवेश किया, धोबी को मारा और किस तरह एक जुलाहे तथा सुदामा नामक माली को वर दिए।

यमुना के जल में अक्रूर को अपना विष्णुरूप प्रदर्शित करने तथा अक्रूर की स्तुतियाँ स्वीकार करने के बाद भगवान् कृष्ण ने अपना वह दृश्य छिपा लिया ठीक वैसे ही जैसे कोई रंगकर्मी अपने नाटक का पटाक्षेप करता है। अक्रूर जल से निकल कर बाहर आये और अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर भगवान् के पास गये तो उन्होंने पूछा कि क्या उन्हें स्नान करते समय कोई अद्‌भुत वस्तु दिखी। इस पर अक्रूर ने कहा, ''जल, स्थल या आकाश लोकों में जितनी भी अद्‌भुत वस्तुएँ हैं उन सबका अस्तित्व आप में है। अत: जब किसी ने आपको देख लिया तो फिर देखने को बचा ही क्या?'' इसके बाद अक्रूर फिर से रथ हाँकने लगे।

कृष्ण, बलराम तथा अक्रूर दिन ढले मथुरा पहुँचे। नन्द महाराज तथा अन्य ग्वाले पहले ही वहाँ पहुँच चुके थे। उनसे मिलने के बाद कृष्ण ने अक्रूर से घर लौट जाने के लिए कहा और यह वादा किया कि वे कंस का वध करने के बाद उनसे वहाँ मिलेंगे। अक्रूर ने दुखित होकर कृष्ण से विदा ली और कंस के पास यह बतलाने गये कि कृष्ण तथा बलराम मथुरा आ गये हैं। इसके बाद वे अपने घर चले गये।

कृष्ण तथा बलराम ग्वालबालों को अपने संग लेकर भव्य नगरी देखने गये। जब उन्होंने मथुरा में प्रवेश किया, तो नगरी की सारी स्त्रियाँ कृष्ण को देखने के लिए अपने अपने घरों से उत्सुकता से बाहर निकल आईं। वे उनके विषय में अक्सर सुना करती थीं और दीर्घकाल से उनके प्रति प्रगाढ़ आकर्षण उत्पन्न कर चुकी थीं। किन्तु अब जबकि वे उन्हें सचमुच देख रही थीं वे सुख से भावविभोर हो गईं और कृष्ण की अनुपस्थिति से उत्पन्न उनके सारे कष्ट समूल नष्ट हो गये।

तत्पश्चात् कृष्ण तथा बलराम कंस के दुष्ट धोबी के पास आये। कृष्ण ने उससे लिए जा रहे कुछ उत्तम वस्त्र माँगे किन्तु उसने देने से न केवल इनकार किया अपितु दोनों विभूतियों का अपमान भी किया। इससे कृष्ण अत्यधिक क्रुद्ध हो उठे और अपनी अँगुली के अग्रभाग से उसका सिर काट लिया। उसका असामयिक अन्त देखकर धोबी के नौकर अपना कपड़ों का गट्ठर वहीं छोड़कर विभिन्न दिशाओं

में भाग गये। इसके बाद कृष्ण तथा बलराम ने उनमें से अपनी पसन्द के कुछ वस्त्र ले लिये।

इसके बाद एक जुलाहा उन दोनों विभूतियों के पास पहुँचा जिसने उन्हें खूब सँवार दिया जिसके एवज में कृष्ण ने उसे इस जन्म में ऐश्वर्य प्रदान किया और अगले जन्म में मोक्ष। तब दोनों भाई सुदामा नामक माली के घर गये। सुदामा ने उन्हें नमस्कार किया, उनके पाँव धोकर उनकी पूजा की, अर्घ्य प्रदान किया, चंदन का लेप लगाया और उनके सम्मान में स्तुति गाई। तत्पश्चात् उसने उन्हें सुगन्धित फूलों की मालाओं से सजाया-सँवारा। दोनों ने प्रसन्न होकर उसे मुँहमाँगे वर दिए और फिर आगे निकल गये।

श्रीशुक उवाच
स्तुवतस्तस्य भगवान्दर्शयित्वा जले वपुः ।
भूयः समाहरत्कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; स्तुवतः—स्तुति करते समय; तस्य—अक्रूर का; भगवान्—भगवान् ने; दर्शयित्वा—दिखलाने के बाद; जले—जल में; वपुः—अपना साकार रूप; भूयः—फिर; समाहरत्—छिपा लिया; कृष्णः—श्रीकृष्ण ने; नटः—अभिनेता; नाट्यम्—नाटक, प्रदर्शन; इव—सदृश; आत्मनः—अपना।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अभी अक्रूर स्तुति कर ही रहे थे कि भगवान् कृष्ण ने अपना वह रूप जिसे उन्होंने जल के भीतर प्रकट किया था, उसी तरह छिपा लिया जिस तरह कोई नट अपना खेल समाप्त कर देता है।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने अक्रूर की आँखों के सामने से विष्णुरूप के साथ साथ स्वर्ग तथा वहाँ के नित्य वासियों के दृश्य को छिपा लिया।

सोऽपि चान्तर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्य सत्वरः ।
कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, अक्रूर; अपि—निस्सन्देह; च—तथा; अन्तर्हितम्—अप्रकट हुआ; वीक्ष्य—देखकर; जलात्—जल से; उन्मज्य—निकल कर; सत्वरः—तुरन्त; कृत्वा—पूरा करके; च—तथा; आवश्यकम्—नियतकर्म; सर्वम्—समस्त; विस्मितः—चकित; रथम्—रथ के पास; आगमत्—गया।

जब अक्रूर ने उस दृश्य को अन्तर्धान होते देखा तो वे जल के बाहर आ गये और उन्होंने जल्दी जल्दी अपने विविध अनुष्ठान-कर्म सम्पन्न किये। तत्पश्चात् वे विस्मित होकर अपने रथ पर लौट आये।

तमपृच्छद्धृषीकेशः किं ते दृष्टमिवाद्भुतम् ।
भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे ॥ ३॥

शब्दार्थ

तम्—उससे; अपृच्छत्—पूछा; हृषीकशः—कृष्ण ने; किम्—क्या; ते—तुम्हारे द्वारा; दृष्टम्—देखा गया; इव—निस्सन्देह; अद्भुतम्—कुछ असाधारण; भूमौ—पृथ्वी पर; वियति—आकाश में; तोये—जल में; व—अथवा; तथा—उसी तरह; त्वाम्—तुमको; लक्षयामहे—हम अटकल लगाते हैं।

भगवान् कृष्ण ने अक्रूर से पूछाः क्या आपने पृथ्वी पर, या आकाश में या जल में कोई अद्भुत वस्तु देखी है? आपकी सूरत से हमें लगता है कि आपने देखी है।

श्रीअक्रूर उवाच
अद्भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले ।
त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-अक्रूरः उवाच—श्री अक्रूर ने कहा; अद्भुतानि—अद्भुत वस्तुएँ; इह—इस लोक में; यावन्ति—जितनी भी; भूमौ—पृथ्वी पर; वियति—आकाश में; वा—अथवा; जले—जल में; त्वयि—तुम में; विश्व-आत्मके—हरवस्तु से युक्त; तानि—वे; किम्—क्या; मे—मेरे द्वारा; अदृष्टम्—नहीं देखा गया; विपश्यतः—आपको देखकर।

श्री अक्रूर ने कहा : पृथ्वी, आकाश या जल में जो भी अद्भुत वस्तुएँ हैं, वे सभी आपमें विद्यमान हैं। चूँकि आप हर वस्तु से ओतप्रोत हैं अतः जब मैं आपका दर्शन कर रहा हूँ तो फिर वह कौन सी वस्तु है, जिसे मैंने नहीं देखा है?

यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले ।
तं त्वानुपश्यतो ब्रह्मन्किं मे दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

यत्र—जिसमें; अद्भुतानि—अद्भुत वस्तुएँ; सर्वाणि—समस्त; भूमौ—पृथ्वी पर; वियति—आकाश में; वा—अथवा; जले—जल में; तम्—उस; त्वा—तुमको; अनुपश्यतः—देखते हुए; ब्रह्मन्—हे परम सत्य; किम्—क्या; मे—मेरे द्वारा; दृष्टम्—देखा गया; इह—इस संसार में; अद्भुतम्—आश्चर्यजनक।

और अब जबकि हे परम सत्य, मैं आपको देख रहा हूँ जिनमें पृथ्वी, आकाश तथा जल की सारी अद्भुत वस्तुएँ निवास करती हैं, तो फिर भला मैं इस जगत में और कौन सी अद्भुत् वस्तुएँ देख सकता था?

तात्पर्य : अब अक्रूर को बोध हुआ कि कृष्ण उनके भतीजे मात्र नहीं हैं।

इत्युक्त्वा चोदयामास स्यन्दनं गान्दिनीसुतः ।
मथुरामनयद्रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; चोदयाम् आस—आगे हाँका; स्यन्दनम्—रथ को; गान्दिनी-सुतः—गान्दिनी पुत्र, अक्रूर ने; मथुराम्—मथुरा में; अनयत्—ले आया; रामम्—बलराम को; कृष्णम्—कृष्ण को; च—तथा; एव—भी; दिन—दिन के; अत्यये—समाप्त होते।

इन शब्दों के साथ गान्दिनीपुत्र अक्रूर ने रथ आगे हाँकना शुरू कर दिया। दिन ढलते ढलते वे भगवान् बलराम तथा भगवान् कृष्ण को लेकर मथुरा जा पहुँचे।

मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्र तत्रोपसङ्गताः ।
वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाददुः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

मार्गे—रास्ते में; ग्राम—गाँवों के; जनाः—लोग; राजन्—हे राजा (परीक्षित); तत्र तत्र—जहाँ तहाँ; उपसङ्गताः—पास आकर; वसुदेव-सुतौ—वसुदेव के दोनों पुत्रों को; वीक्ष्य—देखकर; प्रीताः—प्रसन्न; दृष्टिम्—दृष्टि; न—नहीं; च—तथा; आददुः—हटा पाते।

हे राजन्, वे मार्ग में जहाँ जहाँ से गुजरते, गाँव के लोग पास आकर वसुदेव के इन दोनों पुत्रों को बड़े ही हर्ष से निहारते। वस्तुतः ग्रामीणजन उनसे अपनी दृष्टि हटा नहीं पाते थे।

तावद्व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः ।
पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तावत्—तब तक; व्रज-ओकसः—ब्रजवासी; तत्र—वहाँ; नन्द-गोप-आदयः—ग्वालों के राजा नन्द इत्यादि; अग्रतः—आगे आगे; पुर—नगर के; उपवनम्—उद्यान में; आसाद्य—आकर; प्रतीक्षन्तः—प्रतीक्षा में; अवतस्थिरे—रुके रहे।

नन्द महाराज तथा वृन्दावन के अन्य वासी रथ से पहले ही मथुरा पहुँच गये थे और कृष्ण तथा बलराम की प्रतीक्षा करने के लिए नगर के बाहरी उद्यान में रुके हुए थे।

तात्पर्य : नन्द इत्यादि मथुरा पहले पहुँच चुके थे क्योंकि अक्रूर के स्नान के कारण कृष्ण तथा बलराम के रथ को देरी हो गई थी।

तान्समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तान्—उनके साथ; समेत्य—मिलकर; आह—कहा; भगवान्—भगवान् ने; अक्रूरम्—अक्रूर से; जगत्-ईश्वरः—ब्रह्माण्ड के स्वामी; गृहीत्वा—पकड़ कर; पाणिना—अपने हाथ से; पाणिम्—उसके हाथ को; प्रश्रितम्—विनीत; प्रहसन्—हँसते हुए; इव—सदृश।

नन्द तथा अन्य लोगों से मिलने के बाद ब्रह्माण्ड के नियन्ता भगवान् कृष्ण ने विनीत अक्रूर के हाथ को अपने हाथ में लेकर हँसते हुए इस प्रकार कहा।

भवान्प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम् ।
वयं त्विहावमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

भवान्—आप; प्रविशताम्—प्रवेश करें; अग्रे—आगे; सह—साथ में; यानः—रथ में; पुरीम्—नगर में; गृहम्—तथा अपने घर में; वयम्—हम; तु—तो; इह—यहाँ; अवमुच्य—उतर कर; अथ—तब; ततः—तत्पश्चात्; द्रक्ष्यामहे—देखेंगे; पुरीम्—नगरी को।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] आप रथ लेकर हमसे पहले नगरी में प्रवेश करें। तत्पश्चात् आप अपने घर जाँय। हम यहाँ पर कुछ समय तक ठहर कर बाद में नगरी देखने जायेंगे।

श्रीअक्रूर उवाच
नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो ।
त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्री-अक्रूरः उवाच—श्री अक्रूर ने कहा; न—नहीं; अहम्—मैं; भवद्भ्याम्—आप दोनों के; रहितः—बिना; प्रवेक्ष्ये—प्रवेश करूँगा; मथुराम्—मथुरा में; प्रभो—हे प्रभु; त्यक्तुम्—परित्याग करना; न अर्हसि—आपको नहीं चाहिए; माम्—मुझ; नाथ—हे नाथ; भक्तम्—भक्त को; ते—तुम्हारा; भक्त-वत्सल—अपने भक्तों पर पितृवत् स्नेह रखने वाले।

श्री अक्रूर ने कहा : हे प्रभु, मैं आप दोनों के बिना मथुरा में प्रवेश नहीं करूँगा। हे नाथ, मैं आपका भक्त हूँ अतः यह उचित नहीं होगा कि आप मेरा परित्याग कर दें क्योंकि आप अपने भक्तों के प्रति सदैव वत्सल रहते हैं।

आगच्छ याम गेहान्नः सनाथान्कुर्वधोक्षज ।
सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

आगच्छ—कृपया आइये; याम—चलें; गेहान्—घर; नः—हमारे; स—सहित; नाथान्—स्वामी; कुरु—कीजिये; अधोक्षज—हे दिव्य प्रभु; सह—साथ; अग्र-जः—अपने बड़े भाई; स-गोपालैः—ग्वालों के साथ; सुहृद्भिः—अपने मित्रों के साथ; च—तथा; सुहृत्-तम—हे परम शुभचिन्तक।

आइये, आप अपने बड़े भाई, ग्वालों तथा अपने संगियों समेत मेरे घर चलिये। हे मित्रश्रेष्ठ, हे दिव्य प्रभु, इस तरह कृपया मेरे घर को कृतार्थ कीजिये।

पुनीहि पादरजसा गृहान्नो गृहमेधिनाम् ।
यच्छौचेनानुतृप्यन्ति पितरः साग्नयः सुराः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

पुनीहि—पवित्र कीजिये; पाद—अपने पाँवों की; रजसा—धूल से; गृहान्—घर को; नः—हमारे; गृह-मेधिनाम्—जो गृहस्थों के द्वारा किये जाने वाले अनुष्ठानों में आसक्त हैं; यत्—जिससे; शौचेन—शुद्धि से; अनुतृप्यन्ति—तुष्ट हो जायेंगे; पितरः—मेरे पितृगण; स—सहित; अग्नयः—यज्ञ की अग्नियाँ; सुराः—तथा देवता।

मैं एक सामान्य गृहस्थ हूँ और विधिवत् यज्ञों का पालन करने वाला हूँ। अतः आप अपने चरणकमलों की धूलि से मेरे घर को पवित्र कीजिये। इस शुद्धि कर्म से मेरे पितर, यज्ञ-अग्नियाँ तथा सारे देवता तुष्ट हो जायेंगे।

अवनिज्याङ्घ्रियुगलमासीत्श्लोक्यो बलिर्महान् ।
ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकान्तिनां तु या ॥ १४॥

शब्दार्थ

अवनिज्य—पखार करके; अङ्घ्रि-युगलम्—दोनों पाँव; आसीत्—बन गया; श्लोक्यः—यशस्वी; बलिः—राजा बलि; महान्—महान; ऐश्वर्यम्—शक्ति; अतुलम्—अनुपम; लेभे—प्राप्त किया; गतीम्—लक्ष्य; च—तथा; एकान्तिनाम्—भगवान् के अनन्य भक्तों के; तु—निस्सन्देह; या—जो।

आपके चरणों को पखार कर यशस्वी बलि महाराज ने न केवल यश तथा अनुपम शक्ति प्राप्त की अपितु शुद्धभक्तों की अन्तिम गति भी प्राप्त की।

आपस्तेऽङ्घ्र्यवनेजन्यस्त्रींल्लोकान्शुचयोऽपुनन् ।
शिरसाधत्त याः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

आपः—जल (यथा गंगा नदी); ते—तुम्हारे; अङ्घ्रि—पाँवों के; अवनेजन्यः—पखारने से प्राप्त; त्रीन्—तीनों; लोकान्—लोकों को; शुचयः—नितान्त आध्यात्मिक होने से; अपुनन्—पवित्र बना दिया है; शिरसा—सिर पर; आधत्त—धारण कर लिया; याः—जिसे; शर्वः—शिव ने; स्वः—स्वर्ग को; याताः—गये; सगर-आत्मजाः—राजा सगर के पुत्र।

आपके चरणों के पखारने से दिव्य होकर गंगा नदी के जल ने तीनों लोकों को पवित्र बना दिया है। शिवजी ने उसी जल को अपने शिर पर धारण किया और उसी जल की कृपा से राजा सगर के पुत्र स्वर्ग गये।

देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ।
यदूत्तमोत्तमःश्लोक नारायण नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

देव-देव—हे स्वामियों के स्वामी; जगत्-नाथ—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; पुण्य—पवित्र; श्रवण—सुनना; कीर्तन—तथा कीर्तन करना; यदु-उत्तम—यदुश्रेष्ठ; उत्तमः-श्लोक—उत्तम श्लोकों से स्तुति किये जाने वाले; नारायण—हे नारायण; नमः—नमस्कार; अस्तु—होवे; ते—आपको।

हे देवों के देव, हे जगन्नाथ, हे आप जिनके यश को सुनना और गायन करना अत्यन्त पवित्र है! हे यदुश्रेष्ठ, हे पुण्यश्लोक, हे परम भगवान् नारायण, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

श्रीभगवनुवाच
आयास्ये भवतो गेहमहमर्यसमन्वितः ।
यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; आयास्ये—आऊँगा; भवतः—आपके; गेहम्—घर; अहम्—मैं; आर्य—अपने अग्रज (बलराम); समन्वितः—सहित; यदु-चक्र—यदुओं के चक्र (मंडल) के; द्रुहम्—शत्रु (कंस) को; हत्वा—मारकर; वितरिष्ये—प्रदान करूँगा; सुहृत्—अपने शुभचिन्तकों को; प्रियम्—सन्तोष।

परमेश्वर ने कहा : मैं अपने बड़े भाई के साथ आपके घर आऊँगा किन्तु पहले मुझे यदु जाति के शत्रु को मारकर अपने मित्रों तथा शुभचिन्तकों को तुष्ट करना है।

तात्पर्य : अक्रूर ने श्लोक १६ में कृष्ण की प्रशंसा *यदूत्तम* कहकर की है। यहाँ पर श्रीकृष्ण यह कहकर उसकी पुष्टि करते हैं ''चूँकि में यदुश्रेष्ठ हूँ अतः सर्वप्रथम मुझे यदुओं के शत्रु कंस को मारना चाहिए। तब मैं आपके घर आऊँगा।''

श्रीशुक उवाच
एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव ।
पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्मावेद्य गृहं ययौ ॥ १८॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; उक्तः—सम्बोधित करने पर; भगवता—भगवान् द्वारा; सः—उस; अक्रूरः—अक्रूर ने; विमनाः—निराश; इव—सदृश; पुरीम्—नगर मे; प्रविष्टः—प्रवेश किया; कंसाय—कंस को; कर्म—कार्यकलापों के विषय में; आवेद्य—सूचित करके; गृहम्—अपने घर; ययौ—चला गया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् द्वारा ऐसे सम्बोधित किये जाने पर अक्रूर भारी मन से नगर में प्रविष्ट हुए। उन्होंने राजा कंस को अपने ध्येय की सफलता से सूचित किया और तब वे अपने घर चले गये।

अथापराह्ने भगवान्कृष्णः सङ्कर्षणान्वितः ।

मथुरां प्राविशद्‌गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; अपर-अह्ने—तीसरे पहर, दोपहर के बाद; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण ने; सङ्कर्षण-अन्वितः—बलराम सहित; मथुराम्—मथुरा में; प्राविशत्—प्रवेश किया; गोपैः—ग्वालबालों द्वारा; दिदृक्षुः—देखने की इच्छा वाले; परिवारितः—घिरे हुए।

भगवान् कृष्ण मथुरा देखना चाहते थे अतः संध्या समय अपने साथ बलराम तथा ग्वालबालों को लेकर उन्होंने नगर में प्रवेश किया।

ददर्श तां स्फाटिकतुङ्गगोपुर-
द्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् ।
ताम्रारकोष्ठां परिखादुरासदा-
मुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥ २० ॥
सौवर्णशृङ्गाटकहर्म्यनिष्कुटैः
श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् ।
वैदूर्यवज्रामलनीलविद्रुमै-
र्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु ॥ २१ ॥
जुष्टेषु जालामुखरन्ध्रकुट्टिमे-
ष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् ।
संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां
प्रकीर्णमाल्याङ्कुरलाजतण्डुलाम् ॥ २२ ॥
आपूर्णकुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः
प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः ।
सवृन्दरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः
स्वलङ्कृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ददर्श—देखा; ताम्—उस (नगरी) को; स्फाटिक—स्फटिक से बने; तुङ्ग—ऊँचा; गोपुर—मुख्य द्वार; द्वाराम्—घरों के दरवाजे; बृहत्—विशाल; हेम—स्वर्ण; कपाट—किंवाड़; तोरणाम्—तथा सजावटी मेहराब; ताम्र—ताँबे; आर—तथा पीतल के; कोष्ठाम्—भंडारघर; परिखा—खाइयों समेत; दुरासदाम्—दुर्लंघ्य; उद्यान—सार्वजनिक बगीचे; रम्य—आकर्षक; उपवन—तथा उपवन; उपशोभिताम्—सजाये गये; सौवर्ण—सोना; शृङ्गाटक—चौराहे; हर्म्य—अन्तःपुर, महल; निष्कुटैः—तथा आराम उद्यानों से; श्रेणी—व्यापारियों के; सभाभिः—सभाभवनों से; भवनैः—तथा घरों से; उपस्कृताम्—अलंकृत; वैदूर्य—वैदूर्य मणियों से; वज्र—हीरा; अमल—खेदार क्वाट्र्ज (स्फटिक); नील—नीलमों; विद्रुमैः—तथा मूँगों से; मुक्ता—मोतियों; हरिद्भिः—तथा हरितमणि से; वलभीषु—घरों के दरवाजों पर; वेदिषु—स्तम्भयुक्त छज्जों पर; जुष्टेषु—खचित; जाल-आमुख—जालीदार खिड़कियों के; रन्ध्र—छेदों में; कुट्टिमेषु—तथा रत्नजड़ित फर्श पर; आविष्ट—बैठकर; पारावत—पालतू कबूतरों; बर्हि—तथा मोरों से; नादिताम्—प्रतिध्वनित; संसिक्त—जल से छिड़की हुई; रथ्या—राजसी गलियों; आपण—व्यापारिक मार्गों से; मार्ग—तथा अन्य सड़कों; चत्वराम्—तथा आँगन या चौतरा; प्रकीर्ण—बिखरे हुए; माल्य—फूल की मालाओं से; अङ्कुर—नवीन कोपलें; लाज—लावा; तण्डुलाम्—तथा चावल; आपूर्ण—पूर्ण; कुम्भैः—घड़ों से; दधि—दही से; चन्दन—तथा चन्दनलेप से; उक्षितैः—लेप किया; प्रसून—फूलों की पंखड़ियों से; दीप-आवलिभिः—दीपों की पंक्तियों से; स-पल्लवैः—पत्तियों सहित; स-वृन्द—फूलों के गुच्छों सहित; रम्भा—केला के तनों से; क्रमुकैः—तथा सुपाड़ी के वृक्ष के तनों

से; स-केतुभिः—झंडों से; सु-अलङ्कृत—सुन्दर सजाया हुआ; द्वार—द्वारों से युक्त; गृहाम्—घरों को; स-पट्टिकैः—पन्नियों से, झंडियों से।

भगवान् ने देखा कि मथुरा के ऊँचे ऊँचे दरवाजे तथा घरों के प्रवेशद्वार स्फटिक के बने हैं, इसके विशाल तोरण तथा मुख्य द्वार सोने के हैं, इसके अन्न गोदाम तथा अन्य भण्डार ताँबे तथा पीतल के बने हैं और इसकी परिखा (खाईं) अप्रवेश्य है। मनोहर उद्यान तथा उपवन इस शहर की शोभा बढ़ा रहे थे। मुख्य चौराहे सोने से बनाये गये थे और इसकी इमारतों के साथ निजी विश्राम-उद्यान थे, साथ ही व्यापारिकों के सभाभवन तथा अन्य अनेक इमारतें थीं। मथुरा उन मोर तथा पालतू कबूतरों की बोलियों से गूँज रहा था, जो जालीदार खिड़कियों के छेदों पर, रत्नजटित फर्शों पर तथा ख भेदार छज्जों और घरों के सामने के सज्जित धरनों पर बैठे थे। ये छज्जे तथा धरने वैदूर्य मणियों, हीरों, स्फटिकों, नीलमों, मूँगों, मोतियों तथा हरित मणियों से सजाये गये थे। समस्त राजमार्गों तथा व्यापारिक गलियों में जल का छिड़काव हुआ था। इसी तरह पार्श्वगलियों तथा चबूतरों को भी सींचा गया था। सर्वत्र फूल मालाएँ, नव अंकुरित जौ, लावा तथा अक्षत बिखेरे हुए थे। घरों के दरवाजों के प्रवेशमार्ग पर जल से भरे सुसज्जित घड़े शोभा दे रहे थे जिन्हें आम की पत्तियों से अलंकृत किया गया था और दही तथा चन्दनलेप से पोता गया था। उनके चारों ओर फूल की पंखड़ियाँ तथा फीते लपेटे हुए थे। इन घड़ों के पास झंडियाँ, दीपों की पंक्ति, फूलों के गुच्छे, केलों के तथा सुपारी के वृक्षों के तने थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने अलंकृत घड़ों का विस्तृत वर्णन किया है—"प्रत्येक दरवाजे के दोनों ओर भूमि पर बिखेरे अक्षतों के ऊपर एक घड़ा है। हर घड़े के चारों ओर फूल की पंखड़ियाँ हैं, इसकी गर्दन पर फीते हैं तथा इसके मुँह पर आम तथा अन्य वृक्षों की पत्तियाँ रखी हैं। प्रत्येक घड़े के ऊपर एक सोने के थाल में दीपकों की पंक्तियाँ हैं। हर घड़े की बगल में केले का एक तना खड़ा है और सामने तथा पीछे भी सुपारी वृक्ष का एक-एक तना है। झंडियाँ इन घड़ों पर टिकी हैं।"

तां सम्प्रविष्टौ वसुदेवनन्दनौ
वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना ।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो

हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥ २४॥

शब्दार्थ

ताम्—उस (मथुरा में); सम्प्रविष्टौ—घुसकर; वसुदेव—वसुदेव के; नन्दनौ—दोनों पुत्र; वृतौ—घिरे हुए; वयस्यैः—अपने तरुण मित्रों से; नर-देव—राजा की; वर्त्मना—सड़क से; द्रष्टुम्—देखने के लिए; समीयुः—निकल आईं; त्वरिताः—तेजी से; पुर—नगर की; स्त्रियः—स्त्रियाँ; हर्म्याणि—अपने अपने घरों पर; च—तथा; एव—भी; आरुरुहुः—ऊपर चढ़ गईं; नृप—हे राजा (परीक्षित); उत्सुकाः—उत्सुक।

मथुरा की स्त्रियाँ जल्दी-जल्दी एकत्र हुईं और ज्योंही वसुदेव के दोनों पुत्र अपने ग्वाल-बाल मित्रों से घिरे हुए राजमार्ग द्वारा नगर में प्रविष्ट हुए वे उन्हें देखने निकल आईं। हे राजन्, कुछ स्त्रियाँ उन्हें देखने की उत्सुकता से अपने घरों की छतों पर चढ़ गईं।

काश्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा
विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः ।
कृतैकपत्रश्रवनैकनूपुरा
नाङ्क्त्वा द्वितीयं त्वपराश्च लोचनम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

कश्चित्—उनमें से कुछ; विपर्यक्—उल्टा; धृत—पहन कर; वस्त्र—अपने वस्त्र; भूषणः—तथा गहने; विस्मृत्य—भूल कर; च—तथा; एकम्—एक; युगलेषु—जोड़ी की; अथ—तथा; अपराः—अन्य; कृत—धारण करके; एक—केवल एक; पत्र—कुंडल; श्रवण—कान में; एक—या एक; नूपुराः—नूपुरों की जोड़ी; न अङ्क्त्वा—बिना आँजे; द्वितीयम्—दूसरी; तु—लेकिन; अपराः—अन्य स्त्रियाँ; च—तथा; लोचनम्—एक आँख।

कुछ स्त्रियों ने अपने वस्त्र तथा गहने उल्टे पहन लिये, कुछ अपना एक कुंडल या पायल पहनना भूल गईं और अन्यों ने केवल एक आँख में अंजन लगाया, दूसरी में लगा ही न पाईं।

तात्पर्य : स्त्रियाँ कृष्ण का दर्शन पाने के लिए अत्यन्त उत्सुक थीं और वे हड़बड़ी तथा उत्तेजनावश अपने आपको भूल गईं।

अश्नन्त्य एकास्तदपास्य सोत्सवा
अभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः ।
स्वपन्त्य उत्थाय निशम्य निःस्वनं
प्रपाययन्त्योऽर्भमपोह्य मातरः ॥ २६॥

शब्दार्थ

अश्नन्त्यः—भोजन कर रहीं; एकः—कुछ; तत्—उसे; अपास्य—छोड़कर; स-उत्सवः—हर्षपूर्वक; अभ्यज्यमानाः—मालिश की जाती; अकृत—बिना पूरा किये; उपमज्जनाः—अपना स्नान करना; स्वपन्त्यः—सोती हुईं; उत्थाय—उठकर; निशम्य—सुनकर; निःस्वनम्—तेज आवाजें; प्रपाययन्त्यः—दूध पिलाती; अर्भम्—अपने बच्चे को; अपोह्य—एक तरफ रखकर; मातरः—माताएँ।

जो भोजन कर रही थीं उन्होंने भोजन करना छोड़ दिया, अन्य स्त्रियाँ अधनहाई या उबटन

पूरी तरह लगाये बिना ही चली आईं। जो स्त्रियाँ सो रही थीं वे शोर सुनकर तुरन्त उठ गईं और माताओं ने दूध पीते बच्चों को अपनी गोदों से उतारकर अलग रख दिया।

मनांसि तासामरविन्दलोचनः
प्रगल्भलीलाहसितावलोकैः ।
जहार मत्तद्विरदेन्द्रविक्रमो
दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

मनांसि—मन; तासाम्—उनके; अरविन्द—कमल जैसे; लोचनः—आँखें; प्रगल्भ—उद्धत; लीला—अपनी लीलाएँ; हसित—हँसते हुए; अवलोकैः—चितवनों से; जहार—हर लिया; मत्त—मतवाली; द्विरद-इन्द्र—शाही हाथी (जैसी); विक्रमः—चाल; दृशाम्—उनकी आँखों के लिए; ददत्—देते हुए; श्री—लक्ष्मी की; रमण—आनन्द स्रोत; आत्मना—अपने शरीर से; उत्सवम्—उत्सव।

अपनी साहसिक लीलाओं का स्मरण करके मुसकाते हुए कमल-नेत्रों वाले भगवान् ने अपनी चितवनों से स्त्रियों के मनों को मोह लिया। वे शाही हाथी की तरह मतवाली चाल से अपने दिव्य शरीर से उन स्त्रियों के नेत्रों के लिए उत्सव उत्पन्न करते हुए चल रहे थे। उनका यह शरीर दिव्य देवी लक्ष्मी के लिए आनन्द का स्रोत है।

दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं
तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः ।
आनन्दमूर्तिमुपगुह्य दृशात्मलब्धं
हृष्यत्त्वचो जहुरनन्तमरिन्दमाधिम् ॥ २८॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; मुहुः—बारम्बार; श्रुतम्—सुना गया; अनुद्रुत—पिघले हुए; चेतसः—हृदय; तम्—उसको; तत्—उसकी; प्रेक्षण—चितवनों के; उत्-स्मित—तथा अट्टहास; सुधा—अमृत; उक्षण—छिड़कने से; लब्ध—प्राप्त करके; मानाः—सम्मान; आनन्द—आनन्द की; मूर्तिम्—साकार रूप को; उपगुह्य—आलिंगन करके; दृशा—आँखों से होकर; आत्म—अपने भीतर; लब्धम्—प्राप्त किया गया; हृष्यत्—फूटकर; त्वचः—उनकी चमड़ी; जहुः—त्याग दिया; अनन्तम्—असीम; अरिम्-दम—हे शत्रुओं के दमनकर्ता (परीक्षित); आधिम्—मानसिक क्लेश।

मथुरा की स्त्रियों ने कृष्ण के विषय में बारम्बार सुन रखा था अतः उनका दर्शन पाते ही उनके हृदय द्रवित हो उठे। वे अपने को सम्मानित अनुभव कर रही थीं कि कृष्ण ने उन पर अपनी चितवन तथा हँसी रूपी अमृत का छिड़काव किया है। अपने नेत्रों के द्वारा उन्हें अपने हृदयों में ग्रहण करके उन सबों ने समस्त आनन्द की मूर्ति का आलिंगन किया और हे अरिन्दम! ज्योंही उन्हें रोमांच हो आया वे उनकी अनुपस्थिति से जन्य असीम कष्ट को भूल गईं।

प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखाम्बुजाः ।
अभ्यवर्षन्सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

प्रासाद—महलों की; शिखर—छतों पर; आरूढाः—चढ़कर; प्रीति—स्नेह से; उत्फुल्ल—खिले हुए; मुख—मुँह; अम्बुजाः—जो कमलों जैसे थे; अभ्यवर्षन्—वर्षा की; सौमनस्यैः—फूलों से; प्रमदाः—सुन्दर स्त्रियों ने; बल-केशवौ—बलराम तथा कृष्ण पर।

स्नेह से प्रफुल्लित कमल सदृश मुखों वाली स्त्रियों ने जो अपने महलों की छतों पर चढ़ी हुई थीं, भगवान् बलराम तथा भगवान् कृष्ण पर फूलों की वर्षा की।

दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गन्धैरभ्युपायनैः ।
तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

दधि—दही; अक्षतैः—तथा अखण्डित जौ के बीजों से; स—तथा; उद-पात्रैः—जल से पूरित घड़ों से; स्रक्—मालाओं; गन्धैः—तथा सुगन्धित द्रव्यों से; अभ्युपायनैः—पूजा की अन्य सामग्री से; तौ—दोनों ने; आनर्चुः—पूजा की; प्रमुदिताः—प्रसन्नचित्त; तत्र तत्र—विभिन्न स्थानों पर; द्वि-जातयः—ब्राह्मणों ने।

रास्ते के किनारे खड़े ब्राह्मणों ने दही, अक्षत (जौ), जल-भरे कलशों, फूल-मालाओं, सुगन्धित द्रव्यों यथा चन्दन के लेप तथा पूजा की अन्य वस्तुओं की भेंटों से दोनों भाइयों का सम्मान किया।

ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन्महत् ।
या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

ऊचुः—कहा; पौराः—नगर की स्त्रियों ने; अहो—हाय; गोप्यः—(वृन्दावन की) गोपियों ने; तपः—तपस्या; किम्—कौन-सी; अचरन्—की है; महत्—महान; याः—जो; हि—निस्सन्देह; एतौ—इन दोनों को; अनुपश्यन्ति—निरन्तर देखती हैं; नर-लोक—मानव-समाज के लिए; महा-उत्सवौ—आनन्द के महान् स्रोत हैं।

मथुरा की स्त्रियाँ चिल्ला पड़ीं: अहा! समस्त मानव-जाति को अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाले कृष्ण तथा बलराम को निरन्तर देखते रहने के लिए गोपियों ने कौन-सी कठोर तपस्याएँ की होंगी?

रजकं कञ्चिदायान्तं रङ्गकारं गदाग्रजः ।
दृष्ट्वायाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

रजकम्—धोबी को; कञ्चित्—किसी; आयान्तम्—आते हुए; रङ्ग-कारम्—रँगाई करने वाले को; गद-अग्रज:—गद के बड़े भाई कृष्ण ने; दृष्ट्वा—देखकर; अयाचत—याचना की; वासांसि—वस्त्रों की; धौतानि—धुले; अति-उत्तमानि—अत्युत्तम; च—तथा।

कपड़ा रँगने वाले एक धोबी को अपनी ओर आते देखकर कृष्ण ने उससे उत्तमोत्तम धुले वस्त्र माँगे।

देह्यावयो: समुचितान्यङ्ग वासांसि चार्हतो: ।
भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशय: ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

देहि—दो; आवयो:—हम दोनों को; समुचितानि—उपयुक्त; अङ्ग—हे प्रिय; वासांसि—वस्त्र; च—तथा; अर्हतो:—दोनों सुपात्रों को; भविष्यति—होगा; परम्—अत्यन्त; श्रेय:—लाभ; दातु:—दाता के लिए; ते—तुम; न—नहीं है; अत्र—इसमें; संशय:—सन्देह।

[भगवान् कृष्ण ने कहा]: कृपया हम दोनों को उपयुक्त वस्त्र दे दीजिये क्योंकि हम इनके योग्य हैं। यदि आप यह दान देंगे तो इसमें सन्देह नहीं कि आपको सबसे बड़ा लाभ प्राप्त होगा।

स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वत: ।
साक्षेपं रुषित: प्राह भृत्यो राज्ञ: सुदुर्मद: ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

स:—वह; याचित:—याचना किया गया; भगवता—भगवान् द्वारा; परिपूर्णेन—परम पूर्ण; सर्वत:—सभी प्रकार से; स-आक्षेपम्—अपमान करते हुए; रुषित:—क्रुद्ध; प्राह—बोला; भृत्य:—नौकर; राज्ञ:—राजा का; सु—अत्यधिक; दुर्मद:—घमंडी।

सभी प्रकार से परिपूर्ण भगवान् द्वारा इस प्रकार याचना किये जाने पर राजा का वह घमंडी नौकर क्रुद्ध हो उठा और अपमान-भरे वचनों में बोला।

ईदृशान्येव वासांसी नित्यं गिरिवनेचर: ।
परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

ईदृशानि—इस तरह के; एव—निस्सन्देह; वासांसि—वस्त्र; नित्यम्—सदैव; गिरि—पर्वतों पर; वने—तथा जंगलों में; चरा:—विचरण करने वाले; परिधत्त—पहनेंगे; किम्—क्या; उद्वृत्ता:—उद्दंड; राज—राजा की; द्रव्याणि—वस्तुएँ; अभीप्सथ—तुम चाहते हो।

[धोबी ने कहा]: अरे उद्दंड बालको! तुम पर्वतों तथा जंगलों में घूमने के आदी हो फिर भी तुम इस तरह के वस्त्रों को पहनने का साहस कर रहे हो। तुम जिन्हें माँग रहे हो वे राजा की सम्पत्ति हैं।

याताशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा ।
बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

यात—जाओ; आशु—शीघ्र; बालिशः—मूर्खो; मा—मत; एवम्—इस तरह; प्रार्थ्यम्—माँगो; यदि—यदि; जिजीविषा—जीवित रहना चाहते हो; बध्नन्ति—बाँध देते हैं; घ्नन्ति—मार डालते हैं; लुम्पन्ति—लूट लेते हैं; दृप्तम्—उच्छृंखल; राज-कुलानि—राजा के लोग; वै—निस्सन्देह।

मूर्खो, यहाँ से तुरन्त निकल जाओ। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो इस तरह मत माँगो। जब कोई अत्यधिक उच्छृंखल हो जाता है, तो राजा के कर्मचारी उसे बन्दी बना लेते हैं और जान से मार डालते हैं। और उसकी सारी सम्पत्ति छीन लेते हैं।

एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः ।
रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विकत्थमानस्य—इस तरह बहककर बोलने वाले; कुपितः—क्रुद्ध; देवकी-सुतः—देवकी-पुत्र, कृष्ण ने; रजकस्य—धोबी का; कर—एक हाथ के; अग्रेण—अगले भाग से; शिरः—सिर; कायात्—शरीर से; अपातयत्—गिरा दिया।

जब वह धोबी इस तरह बहकी बातें बोला तो देवकी-पुत्र क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने अपनी अँगुलियों के अगले भाग से ही उसके शरीर से उसका सिर अलग कर दिया।

तस्यानुजीविनः सर्वे वासःकोशान्विसृज्य वै ।
दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; अनुजीविनः—कर्मचारी; सर्वे—सभी; वासः—वस्त्रों के; कोशान्—गट्ठरों को; विसृज्य—छोड़कर; वै—निश्चय ही; दद्रुवुः—भाग गये; सर्वतः—चारों ओर; मार्गम्—रास्ते में; वासांसि—वस्त्र; जगृहे—ले लिया; अच्युतः—भगवान् कृष्ण ने।

धोबी के नौकरों ने अपने अपने वस्त्रों के गट्ठर गिरा दिये और मार्ग से भागकर चारों ओर तितर-बितर हो गये। तब भगवान् कृष्ण ने उन वस्त्रों को ले लिया।

वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः सङ्कर्षणस्तथा ।
शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

वसित्वा—वस्त्र पहनकर; आत्म-प्रिये—अपनी इच्छानुसार; वस्त्रे—वस्त्रों की जोड़ी में; कृष्णः—कृष्ण; सङ्कर्षणः—बलराम; तथा—भी; शेषाणि—शेष; आदत्त—दे दिया; गोपेभ्यः—ग्वालबालों को; विसृज्य—फेंकते हुए; भुवि—भूमि पर; कानिचित्—अनेक।

कृष्ण तथा बलराम ने अपनी मनपसंद के वस्त्रों की जोड़ी पहन ली और तब कृष्ण ने शेष वस्त्रों को ग्वालबालों में वितरित करते हुए कुछ को भूमि पर बिखेर दिया।

ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् ।
विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; तु—और भी; वायकः—बुनकर (दर्जी) ने; प्रीतः—स्नेहवान्; तयोः—दोनों के लिए; वेषम्—पोशाक; अकल्पयत्—व्यवस्था की; विचित्र—विविध; वर्णैः—रंगों से; चैलेयैः—वस्त्र से बने; आकल्पैः—गहनों से; अनुरूपतः—उपयुक्त।

तत्पश्चात् एक बुनकर आया और दोनों विभूतियों के प्रति स्नेह से वशीभूत होकर विविध रंगों वाले वस्त्र-आभूषणों से उनकी पोशाकें सजा दीं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि उस बुनकर ने दोनों भाइयों को वस्त्र के कंगनों तथा कुण्डलों से सजाया जो मणियों की तरह लग रहे थे। *अनुरूपतः* शब्द सूचित करता है कि रंगों का सुन्दर मेल था।

नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः ।
स्वलङ्कृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

नाना—विविध; लक्षण—उत्तम गुणों से युक्त; वेषाभ्याम्—अपने अपने वस्त्रों से; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम; विरेजतुः—भव्य लग रहे थे; सु-अलङ्कृतौ—अच्छी तरह से आभूषित; बाल—बच्चा; गजौ—हाथी; पर्वणि—उत्सव में; इव—मानो; सित—श्वेत; इतरौ—तथा उसके विपरीत (श्याम)।

कृष्ण तथा बलराम अपनी अपनी अद्भुत रीति से सजाई गई विशिष्ट पोशाक में शोभायमान दिखने लगे। वे उत्सव के समय सजाये गये श्वेत तथा श्याम हाथी के बच्चों की जोड़ी के समान लग रहे थे।

तस्य प्रसन्नो भगवान्प्रादात्सारूप्यमात्मनः ।
श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उससे; प्रसन्नः—तुष्ट; भगवान्—भगवान् ने; प्रादात्—प्रदान किया; सारूप्यम्—उसी रूप से युक्त मुक्ति; आत्मनः—जैसाकि अपना था; श्रियम्—ऐश्वर्य; च—तथा; परमाम्—परम; लोके—इस जगत में; बल—शारीरिक बल; ऐश्वर्य—प्रभाव; स्मृति—स्मरणशक्ति; इन्द्रियम्—इन्द्रिय दक्षता।

उस बुनकर से प्रसन्न होकर भगवान् कृष्ण ने उसे आशीर्वाद दिया कि वह मृत्यु के बाद भगवान् जैसा स्वरूप प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करे और जब तक इस लोक में रहे तब तक वह परम ऐश्वर्य, शारीरिक बल, प्रभाव, स्मृति तथा एन्द्रिय शक्ति का भोग करे।

ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ।
तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; सुदाम्नः—सुदामा के; भवनम्—घर; माला-कारस्य—माली के; जग्मतुः—दोनों गये; तौ—उन दोनों को; दृष्ट्वा—देखकर; सः—उसने; समुत्थाय—उठकर; ननाम—नमस्कार किया; शिरसा—सिर के बल; भुवि—भूमि पर।

तत्पश्चात् दोनों भाई सुदामा माली के घर गये। जब सुदामा ने उन्हें देखा तो वह तुरन्त खड़ा हो गया और भूमि पर मस्तक नवाकर उसने उन्हें प्रणाम किया।

तयोरासनमानीय पाद्यं चार्घ्यार्हणादिभिः ।
पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उन दोनों के लिए; आसनम्—आसन; आनीय—जाकर; पाद्यम्—पाँव धोने के लिये जल; च—तथा; अर्घ्य—हाथ धोने के लिए पानी; अर्हण—भेंट; आदिभिः—इत्यादि से युक्त; पूजाम्—पूजा; स-अनुगयोः—दोनों की, उनके संगियों समेत; चक्रे—सम्पन्न की; स्रक्—मालाओं से; ताम्बूल—पान से; अनुलेपनैः—तथा चन्दन-लेप से।

उन्हें आसन प्रदान करके तथा उनके पाँव परवारकर सुदामा ने उनकी तथा उनके साथियों की अर्घ्य, माला, पान, चन्दन-लेप तथा अन्य उपहारों के साथ पूजा की।

प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो ।
पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

प्राह—उसने कहा; नः—हमारा; स-अर्थकम्—सफल; जन्म—जन्म; पावितम्—पवित्र किया गया; च—तथा; कुलम्—परिवार; प्रभो—हे प्रभु; पितृ—मेरे पितरगण; देव—देवतागण; ऋषयः—तथा ऋषिगण; मह्यम्—मुझसे; तुष्टाः—प्रसन्न हैं; हि—निस्सन्देह; आगमनेन—आगमन से; वाम्—तुम दोनों के।

[सुदामा ने कहा]: हे प्रभु, अब मेरा जन्म पवित्र हो गया और मेरा परिवार निष्कलुष हो गया। चूँकि अब आप दोनों मेरे यहाँ आये हैं अतः मेरे पितर, देवता तथा ऋषिगण सभी मुझसे निश्चय ही संतुष्ट हुये हैं।

भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् ।
अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

भवन्तौ—आप दोनों; किल—निस्सन्देह; विश्वस्य—सम्पूर्ण; जगतः—ब्रह्माण्ड के; कारणम्—कारण; परम्—चरम; अवतीर्णौ—अवतरित होकर; इह—यहाँ; अंशेन—अपने अंशों समेत; क्षेमाय—लाभ के लिए; च—तथा; भवाय—समृद्धि के लिए; च—भी।

आप दोनों भगवान् इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के परम कारण हैं। इस जगत को भरण-पोषण तथा समृद्धि प्रदान करने के लिए आप अपने अंशों समेत अवतरित हुए हैं।

न हि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः ।
समयोः सर्वभूतेषु भजन्तं भजतोरपि ॥ ४७॥

शब्दार्थ

न—नहीं है; हि—निस्सन्देह; वाम्—तुम दोनों को; विषमा—पक्षपातपूर्ण; दृष्टिः—दृष्टि; सुहृदोः—शुभचिन्तक मित्र; जगत्—ब्रह्माण्ड का; आत्मनोः—आत्मा; समयोः—समान; सर्व—सभी; भूतेषु—जीवों के प्रति; भजन्तम्—आपकी पूजा करने वाले; भजतोः—पूजा करते हुए; अपि—भी।

चूँकि आप शुभचिन्तक मित्र तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के परमात्मा हैं अतः आप सबों को निष्पक्ष दृष्टि से देखते हैं। अतः यद्यपि आप अपने भक्तों से प्रेमपूर्ण पूजा का आदान-प्रदान करते हैं फिर भी आप सभी प्राणियों पर सदा समभाव रखते हैं।

तावज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम् ।
पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

तौ—वे दोनों; आज्ञापयतम्—आज्ञा दें; भृत्यम्—अपने सेवक को; किम्—क्या; अहम्—मैं; करवाणि—करूँ; वाम्—तुम दोनों को; पुंसः—किसी पुरुष के लिए; अति—अत्यधिक; अनुग्रहः—कृपा; हि—निस्सन्देह; एषः—यह; भवद्भिः—आपके द्वारा; यत्—जिसमें; नियुज्यते—उसे लगाया जाता है।

कृपया इस अपने दास को आप जो चाहते हों वह करने का आदेश दें। आपके द्वारा किसी सेवा में लगाया जाना किसी के लिए भी महान् वरदान है।

इत्यभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः ।
शस्तैः सुगन्धैः कुसुमैर्माला विरचिता ददौ ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार बोलते हुए; अभिप्रेत्य—उनके अभिप्राय को समझकर; राज-इन्द्र—हे राजाओं में श्रेष्ठ (परीक्षित); सुदामा—सुदामा; प्रीत-मानसः—हृदय में प्रसन्न; शस्तैः—ताजे; सु-गन्धैः—तथा सुगन्धित; कुसुमैः—फूलों से; मलः—मालाएँ; विरचिताः—बनाई गईं; ददौ—दिया।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा]: हे राजाओं में श्रेष्ठ, ये शब्द कहकर सुदामा ने यह जान लिया कि कृष्ण तथा बलराम क्या चाह रहे थे। इस तरह उसने अतीव प्रसन्नतापूर्वक उन्हें ताजे सुगन्धित फूलों की मालाएँ अर्पित कीं।

ताभिः स्वलङ्कृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ ।
प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

ताभिः—उन (मालाओं) से; सु-अलङ्कृतौ—सुन्दर ढंग से सजकर; प्रीतौ—तुष्ट; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम; सह—साथ; अनुगौ—अपने संगियों के; प्रणताय—नतमस्तक; प्रपन्नाय—शरणागत (सुदामा) को; ददतुः—दिया; वरदौ—वरदान देने वाले दोनों ने; वरान्—इच्छित वरों को।

इन मालाओं से सुसज्जित होकर कृष्ण तथा बलराम अतीव प्रसन्न हुए और उसी तरह उनके संगी भी। तब दोनों विभूतियों ने अपने समक्ष विनत शरणागत सुदामा को उसके मनवांछित वर प्रदान किये।

सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि ।
तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने; अपि—तथा; वव्रे—चुना; अचलाम्—अचल; भक्तिम्—भक्ति; तस्मिन्—उन; एव—एकमात्र; अखिल—हरएक के; आत्मनि—परमात्मा के प्रति; तत्—उसके; भक्तेषु—भक्तों के प्रति; च—तथा; सौहार्दम्—मैत्री; भूतेषु—सामान्य जीवों के प्रति; च—तथा; दयाम्—दया; पराम्—दिव्य।

सुदामा ने समस्त जगत के परमात्मा कृष्ण की अचल भक्ति, उनके भक्तों के साथ मित्रता तथा समस्त जीवों के प्रति दिव्य दया को चुना।

इति तस्मै वरं दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ।
बलमायुर्यशः कान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; तस्मै—उसको; वरम्—वर; दत्त्वा—देकर; श्रियम्—ऐश्वर्य; च—तथा; अन्वय—उसका परिवार; वर्धिनीम्—वृद्धि करते हुए; बलम्—बलम; आयुः—दीर्घ-आयु; यशः—यश; कान्तिम्—सौन्दर्य; निर्जगाम—चले गये; सह—साथ; अग्र-जः—अपने बड़े भाई बलराम के।

भगवान् कृष्ण ने सुदामा को न केवल ये वर दिये अपितु उन्होंने उसे बल, दीर्घायु, यश,

कान्ति तथा उसके परिवार की सतत बुद्धिमान हुई समृद्धि भी प्रदान की। तत्पश्चात् कृष्ण तथा उनके बड़े भाई ने उससे विदा ली।

तात्पर्य : हम यहाँ पर दुष्ट धोबी तथा भक्त माली सुदामा के साथ भगवान् कृष्ण के व्यवहारों का स्पष्ट अन्तर पाते हैं। भगवान् अपने विरोधियों के लिए वज्र के समान कठोर हैं और शरणागतों के लिए गुलाब के समान कोमल। इसलिए हमें निष्ठापूर्वक भगवान् कृष्ण की शरण में जाना चाहिए क्योंकि यही हमारे हित में है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण तथा बलराम का मथुरा में प्रवेश'' नामक एकतालीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बयालीस

यज्ञ के धनुष का टूटना

इस अध्याय में त्रिवक्रा द्वारा वर प्राप्त करने, यज्ञ-धनुष के टूटने, कंस के सैनिकों के विनाश, कंस द्वारा देखे गये अपशकुनों एवं अखाड़े के उत्सवों का वर्णन हुआ है।

सुदामा का घर छोड़ने के बाद भगवान् कृष्ण को कंस की एक तरुणी कुबड़ी दासी त्रिवक्रा मिली जो उत्तम लेपों का थाल लिये हुए थी। भगवान् ने उससे पूछा कि तुम कौन हो और तब उससे कुछ लेप माँगा। भगवान् के सौन्दर्य तथा विनोदी वचनों से ललचाकर त्रिवक्रा ने कृष्ण तथा बलराम दोनों को प्रचुर लेप प्रदान किया। बदले में, कृष्ण ने उसके पैर के अँगूठों पर अपने चरणकमल रखे, उसकी ठुड्डी पकड़ी और ऊपर उठाया तो उसका कूबड़ ठीक हो गया। अब इस सुन्दर तथा मनोहर त्रिवक्रा ने कृष्ण के ऊपरी वस्त्र का छोर पकड़ लिया और उनसे अपने घर चलने के लिए कहा। कृष्ण ने उत्तर दिया कि कुछ कार्य करने के बाद वे अवश्य ही उसके घर आकर उसकी मानसिक पीड़ा दूर करेंगे। तत्पश्चात् दोनों भगवानों ने मथुरा का दृश्य देखना जारी रखा।

जब कृष्ण तथा बलराम राजमार्ग से होकर जा रहे थे तो व्यापारियों ने विविध उपहारों के साथ उनकी पूजा की। कृष्ण ने पूछा कि धनुष-यज्ञ कहाँ हो रहा है और जब वे रंगभूमि पर पहुँचे तो एक

विचित्र धनुष देखा जो इन्द्र के धनुष जैसा था। रक्षकों के मना करने पर भी कृष्ण ने बलपूर्वक उस धनुष को उठा लिया, उसकी डोरी चढ़ाई और क्षण-भर में उसके दो खण्ड कर दिये। इससे इतना भयानक कान फाड़ने वाला शब्द हुआ कि स्वर्गलोक तक गूँज उठे और कंस के हृदय में भय का संचार हो उठा। तब बहुत से रक्षकों ने ''इसे पकड़ो, इसे मारो'' शोर मचाते हुए कृष्ण पर आक्रमण किया। किन्तु कृष्ण तथा बलराम ने धनुष के केवल दोनों खण्ड उठाकर इन रक्षकों की खूब पिटाई की जिससे वे मर गये। इसके बाद दोनों भगवानों ने कंस द्वारा भेजे गये सैनिकों की एक टोली का संहार किया और इसके बाद वे अखाड़े से चले गए और उन्होंने अपना पर्यटन जारी रखा।

जब नगरवासियों ने कृष्ण तथा बलराम के पराक्रम तथा सौन्दर्य को देखा तो उन्होंने सोचा कि हो न हो ये दोनों प्रमुख देवता हैं। निस्सन्देह मथुरावासियों द्वारा दोनों पर दृष्टिपात करने से उन्हें गोपियों द्वारा भविष्यवाणी किये गये सारे आशीष प्राप्त हो गये।

सूर्यास्त होने पर कृष्ण तथा बलराम शाम का भोजन करने अपने ग्वाल-डेरे पर लौट आये। उन्होंने सुखपूर्वक विश्राम करते हुए रात बिताई। किन्तु राजा कंस इतना भाग्यशाली न था। जब उसने यह सुना कि कृष्ण तथा बलराम ने कितनी आसानी से विशाल धनुष को तोड़ डाला है और उसके सैनिकों का संहार कर दिया है, तो उसकी रात अतीव चिन्ता में बीती। उसने जगते-सोते अनेक अपशकुन देखे जिनसे उसकी आसन्न मृत्यु का आभास हो रहा था। उसके ही भय ने उसकी नींद हराम कर दी थी।

प्रात: होते ही मल्ल-उत्सव (दंगल) प्रारम्भ हुआ। शहर से तथा पड़ोसी जिलों से लोग रंगशाला में आकर अत्यन्त अलंकृत दीर्घाओं में अपना स्थान ग्रहण करने लगे। काँपते हृदय से कंस अपने राजसी मंच पर आसीन हुआ। उसने नन्द महाराज तथा अन्य ग्वालों को अपने अपने आसन ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया और वे अपनी अपनी भेंटें देने के बाद बैठ गये। तत्पश्चात् कुश्ती लड़ने वालों ने जब ताल ठोंकी तो संगीत का समाँ बँध गया।

श्रीशुक उवाच

अथ व्रजन्राजपथेन माधवः
स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम् ।
विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां
पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन्रसप्रदः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—तब; व्रजन्—टहलते हुए; राज-पथेन—राजमार्ग से; माधवः—कृष्ण; स्त्रियम्—स्त्री को; गृहीत—पकड़े; अङ्ग—शरीर के; विलेप—लेप का; भाजनाम्—थाल; विलोक्य—देखकर; कुब्जाम्—कुबड़ी को; युवतीम्—युवती; वर-आननाम्—सुन्दर मुख वाली; पप्रच्छ—पूछा; यान्तीम्—जाते हुए; प्रहसन्—हँसते हुए; रस—प्रेम के आनन्द का; प्रदः—देने वाला।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब भगवान् माधव राजमार्ग पर जा रहे थे तो उन्होंने एक युवा कुबड़ी स्त्री को देखा जिसका मुख आकर्षक था और वह सुगन्धित लेपों का थाल लिए हुए जा रही थी। प्रेमानन्द दाता ने हँसकर उससे इस प्रकार पूछा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार यह युवा कुबड़ी स्त्री वास्तव में भगवान् की पत्नी सत्यभामा की अंश-रूपा थी। सत्यभामा तो भगवान् की अन्तरंगा शक्ति हैं, जो भू-शक्ति कहलाती है और उनकी अंश-रूपा पृथिवी धरती की प्रतिनिधि है, जो असंख्य दुष्ट शासकों के भारी बोझ से झुक गई थी। भगवान् कृष्ण इन दुष्ट शासकों को नष्ट करने के लिए अवतरित हुए थे अतः इन श्लोकों में वर्णित कुबड़ी त्रिवक्रा को सीधा करने की भगवान् की लीला पृथ्वी के भार उतारने की सूचक है। साथ ही भगवान् ने त्रिवक्रा को अपना माधुर्य सम्बन्ध प्रदान किया।

इस अर्थ के अतिरिक्त *रसप्रदः* शब्द सूचित करता है कि भगवान् ने इस तरुण कुबड़ी के साथ जो व्यवहार किया उससे उन्होंने अपने ग्वालमित्रों का मनोरंजन किया।

का त्वं वरोर्वेतदु हानुलेपनं
कस्याङ्गने वा कथयस्व साधु नः ।
देह्यावयोरङ्गविलेपमुत्तमं
श्रेयस्ततस्ते न चिराद्भविष्यति ॥ २॥

शब्दार्थ

का—कौन; त्वम्—तुम; वर-ऊरु—सुन्दर जंघाओं वाली; एतत्—यह; उ ह—आह, निस्सन्देह; अनुलेपनम्—लेप; कस्य—किसके लिए; अङ्गने—हे स्त्री; वा—अथवा; कथयस्व—कहो; साधु—सच सच; नः—हमको; देहि—दो; आवयोः—हम दोनों को; अङ्ग-विलेपम्—शरीर का लेप; उत्तमम्—सर्वश्रेष्ठ; श्रेयः—लाभ, कल्याण; ततः—तत्पश्चात्; ते—तुम्हारा; न चिरात्—शीघ्र ही; भविष्यति—होगा।

[भगवान् कृष्ण ने कहा]: हे सुन्दर जंघाओं वाली, तुम कौन हो? ओह, लेप! हे सुन्दरी, यह किसके लिए है? हमें सच सच बता दो। हम दोनों को अपना कोई उत्तम लेप दो तो तुम्हें शीघ्र ही महान् वर प्राप्त होगा।

तात्पर्य : भगवान् ने परिहास में उस स्त्री को *वरोरु* (सुन्दर जंघाओं वाली) कहकर सम्बोधित

किया। उनका यह मजाक परिहास दुर्भावनापूर्ण नहीं था क्योंकि वे सचमुच उसे सुन्दर बनाने वाले थे।

सैरन्ध्युवाच
दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससम्मता
त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ।
मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं
विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥ ३॥

शब्दार्थ

सैरन्ध्री उवाच—दासी ने कहा; दासी—दासी; अस्मि—हूँ; अहम्—मैं; सुन्दर—हे सुन्दर; कंस—कंस द्वारा; सम्मता—आदरित; त्रिवक्र-नामा—त्रिवक्रा (तीन स्थान से टेढ़ी) नामक; हि—निस्सन्देह; अनुलेप—लेप; कर्मणि—मेरे कार्य के लिए; मत्—मेरे द्वारा; भावितम्—तैयार किया हुआ; भोज-पतेः—भोजों के प्रमुख के लिए; अति-प्रियम्—अत्यन्त प्रिय; विना—के बिना; युवाम्—तुम दोनों; कः—कौन; अन्यतमः—कोई दूसरा; तत्—वह; अर्हति—पा सकता है, योग्य है।

दासी ने उत्तर दिया: हे सुन्दर, मैं राजा कंस की दासी हूँ। वे मेरे द्वारा तैयार किये गये लेपों का अतीव सम्मान करते हैं। मेरा नाम त्रिवक्रा है। जिन लेपों को भोजराज इतना अधिक चाहता है, भला उनका पात्र आप दोनों के अतिरिक्त कौन हो सकता है?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि त्रिवक्रा का अन्य नाम कुब्जा था। वह एकवचन *सुन्दर* सम्बोधन का प्रयोग करती है, जो यह संकेत करता है कि उसे केवल कृष्ण से कामेच्छा थी। किन्तु उसने अपने इस माधुर्य भाव को छिपाने के लिए द्विवचन रूप *युवाम्* "तुम दोनों के लिए" का प्रयोग किया। कुबड़ी का नाम त्रिवक्रा शब्द सूचित करता है कि उसका शरीर गर्दन, वक्षस्थल तथा कमर तीन स्थानों से मुड़ा था।

रूपपेशलमाधुर्य हसितालापवीक्षितैः ।
धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

रूप—उनसे सौंदर्य; पेशल—आकर्षण; माधुर्य—मिठास; हसित—मन्द हँसी; आलाप—बातचीत; वीक्षितैः—तथा चितवनों से; धर्षित—अभिभूत; आत्मा—अपना मन; ददौ—दे दिया; सान्द्रम्—अत्यधिक; उभयोः—दोनों को; अनुलेपनम्—लेप।

कृष्ण के सौन्दर्य, आकर्षण, मिठास, हँसी, वाणी तथा चितवनों से अभिभूत मन वाली त्रिवक्रा ने कृष्ण तथा बलराम को पर्याप्त मात्रा में लेप दे दिया।

तात्पर्य : यह घटना *विष्णु पुराण* में भी (५.२०.७) वर्णित है—

श्रुत्वा तमाह सा कृष्णं गृह्यतामिति सादरम्।

अनुलेपनं प्रददौ गात्रयोगमथोभयो: ॥

''यह सुनकर उसने आदरपूर्वक कृष्ण को उत्तर दिया, ''कृपया इसे लें'' और उन दोनों को शरीर में लगाने के लिए उपयुक्त लेप प्रदान किया।''

ततस्तावङ्गरागेण स्ववर्णेतरशोभिना ।
सम्प्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरञ्जितौ ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; तौ—वे दोनों; अङ्ग—अपने शरीरों के; रागेण—रंगीन प्रसाधनों से; स्व—अपने; वर्ण—रंगों से; इतर—इसके अतिरिक्त; शोभिना—अलंकृत करके; सम्प्राप्त—जिससे दिखने लगा; पर—सर्वोच्च; भगेन—श्रेष्ठता; शुशुभाते—सुन्दर लगने लगे; अनुरञ्जितौ—लेप करके।

इन सर्वोत्तम अंगरागों का लेप करके, जिनसे उनके शरीर अपने रंगों से विपरीत रंगों से सज गए, दोनों भगवान् अत्यधिक सुन्दर लगने लगे।

तात्पर्य : आचार्यों का सुझाव है कि कृष्ण ने अपने शरीर पर पीला लेप लगाया और बलराम ने नीला लेप।

प्रसन्नो भगवान्कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम् ।
ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन्दर्शने फलम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

प्रसन्नः—तुष्ट; भगवान्—भगवान् ने; कुब्जाम्—कुबड़ी; त्रिवक्रा—त्रिवक्रा को; रुचिर—आकर्षक; आननाम्—मुख वाली; ऋज्वीम्—सीधी; कर्तुम्—करने के लिए; मनः चक्रे—निश्चय किया; दर्शयन्—दिखलाते हुए; दर्शने—उन्हें देखने का; फलम्—फल।

भगवान् कृष्ण त्रिवक्रा से प्रसन्न हो गये अतः उन्होंने उस सुन्दर मुखड़े वाली कुबड़ी लड़की को अपने दर्शन का फल दिखलाने मात्र के लिए उसे सीधा करने का निश्चय किया।

पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्र्‌यङ्गुल्युत्तानपाणिना ।
प्रगृह्य चिबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

पद्भ्याम्—अपने दोनों पैरों से; आक्रम्य—दबाकर; प्रपदे—उसके अँगूठों पर; द्वि—दो; अङ्गुलि—अँगुलियाँ; उत्तान—ऊपर उठाकर; पाणिना—अपने हाथों से; प्रगृह्य—पकड़कर; चिबुके—उसकी ठुड्डी; अध्यात्मम्—उसके शरीर को; उदनीनमत्—उठाया; अच्युतः—कृष्ण ने।

उसके पैरों के अँगूठों को अपने दोनों पाँवों से दबाते हुए भगवान् अच्युत ने उसकी ठुड्डी के नीचे अपने दोनों हाथों की ऊपर उठी एक एक अँगुली रखी और उसके शरीर को सीधा कर

दिया।

सा तदर्जुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा ।
मुकुन्दस्पर्शनात्सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ॥ ८॥

शब्दार्थ

सा—वह; तदा—तब; ऋजु—सीधी; समान—समतल; अङ्गी—अंग वाली; बृहत्—विशाल; श्रोणि—कूल्हे (नितम्ब); पयः-धरा—तथा स्तन वाली; मुकुन्द-स्पर्शनात्—मुकुन्द के स्पर्श से; सद्यः—सहसा; बभूव—हो गई; प्रमदा—स्त्री; उत्तमा—अत्यन्त सधी हुई।

भगवान् मुकुंद के स्पर्श मात्र से त्रिवक्रा सहसा एक अतीव सुन्दर स्त्री में बदल गई जिसके अंग सधे हुए तथा सम-अनुपात वाले थे और नितम्ब तथा स्तन बड़े-बड़े थे।

ततो रूपगुणौदार्यसम्पन्ना प्राह केशवम् ।
उत्तरीयान्तमकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया ॥ ९॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; रूप—सौन्दर्य; गुण—उत्तम आचरण; औदार्य—तथा उदारता से; सम्पन्ना—युक्त; प्राह—बोली; केशवम्—कृष्ण से; उत्तरीय—अंगौछे का; अन्तम्—छोर; आकृष्य—खींचकर; स्मयन्ती—हँसती हुई; जात—उत्पन्न करके; हृत्-शया—काम-भावनाएँ।

अब सौन्दर्य, आचरण तथा उदारता से युक्त त्रिवक्रा को भगवान् केशव के प्रति कामेच्छाओं का अनुभव होने लगा। वह उनके अंगवस्त्र के छोर को पकड़कर हँसने लगी और उनसे इस प्रकार बोली।

एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ।
त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥ १०॥

शब्दार्थ

एहि—आओ; वीर—हे वीर; गृहम्—मेरे घर; यामः—चलें; न—नहीं; त्वाम्—तुमको; त्यक्तुम्—छोड़ना; इह—यहाँ; उत्सहे—सह सकती हूँ; त्वया—आपके द्वारा; उन्मथित—उत्तेजित, मथा गया; चित्तायाः—चित्त वाली पर; प्रसीद—कृपा करें; पुरुष-ऋषभ—हे पुरुष-श्रेष्ठ।

[त्रिवक्रा ने कहा]: हे वीर, आओ, मेरे घर चलो। मैं आपको यहाँ छोड़कर जा नहीं सकती। हे नर-श्रेष्ठ, मुझ पर तरस खाओ क्योंकि आपने मेरे चित्त को उद्वेलित कर डाला है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती निम्नलिखित बातचीत प्रस्तुत करते हैं—

कृष्ण : क्या तुम मुझे अपने घर भोजन करने के लिए बुला रही हो?

त्रिवक्रा : बस, मैं आपको यहाँ छोड़ नहीं सकती।

कृष्ण : किन्तु यहाँ राजमार्ग पर चलने वाले लोग तुम्हारे कहने का कुछ और अर्थ लगाकर हँसेंगे। अत: तुम तो ऐसा मत कहो।

त्रिवक्रा : मन उद्वेलित होने से मुझसे रहा नहीं जा रहा है। आपने मेरा स्पर्श करने की भूल जो कर दी। यह मेरा दोष नहीं है।

एवं स्त्रिया याच्यमान: कृष्णो रामस्य पश्यत: ।
मुखं वीक्ष्यानु गोपानां प्रहसंस्तामुवाच ह ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; स्त्रिया—स्त्री द्वारा; याच्य नान:—अनुनय-विनय किये जाने पर; कृष्ण:—कृष्ण ने; रामस्य—बलराम के; पश्यत:—देखते हुए; मुखम्—मुख को; वीक्ष्य—देखकर; अनु—तब; गोपानाम्—ग्वालबालों का; प्रहसन्—हँसते हुए; ताम्—उससे; उवाच ह—कहा।

स्त्री द्वारा इस प्रकार अनुनय-विनय किये जाने पर भगवान् कृष्ण ने सर्वप्रथम बलराम के मुख की ओर देखा, जो इस घटना को देख रहे थे और तब ग्वालमित्रों के मुखों पर दृष्टि डाली। तब हँसते हुए कृष्ण ने उसे इस प्रकार उत्तर दिया।

एष्यामि ते गृहं सुभ्रु पुंसामाधिविकर्शनम् ।
साधितार्थोऽगृहाणां न: पान्थानां त्वं परायणम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

एष्यामि—जाऊँगा; ते—तुम्हारे; गृहम्—घर; सु-भ्रु—हे सुन्दर भौंहों वाली; पुंसाम्—मनुष्यों की; आधि—मानसिक व्यथा; विकर्शनम्—नष्ट करने वाली; साधित—पूरा करके; अर्थ:—अपना कार्य; अगृहाणाम्—बिना घर वाले, बेघर; न:—हमारे लिए; पान्थानाम्—पथिकों के लिए; त्वम्—तुम; पर—सर्वश्रेष्ठ; अयनम्—आश्रय।

[भगवान् कृष्ण ने कहा]: हे सुन्दर भौंहों वाली स्त्री, अपना कार्य पूरा करते ही मैं अवश्य तुम्हारे घर आऊँगा जहाँ लोगों को चिन्ता से मुक्ति मिल सकती है। निस्सन्देह तुम हम जैसे बेघर पथिकों के लिए सर्वोत्तम आश्रय हो।

तात्पर्य : *अगृहाणाम्* शब्द से श्रीकृष्ण न केवल यह इंगित करते हैं कि उनका कोई स्थायी निवास नहीं है अपितु यह भी कि वे अभी विवाहित नहीं हैं।

विसृज्य माध्व्या वाण्या ताम्व्रजन्मार्गे वणिक्पथै: ।
नानोपायनताम्बूलस्त्रग्गन्धै: साग्रजोऽर्चित: ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

विसृज्य—छोड़कर; माध्व्या—मधुर; वाण्या—वाणी से; ताम्—उसको; व्रजन्—चलते हुए; मार्गे—मार्ग पर; वणिक्-पथैः—व्यापारियों द्वारा; नाना—विविध; उपायन—सादर भेंटें; ताम्बूल—पान; स्रक्—मालाएँ; गन्धैः—तथा सुगन्धित द्रव्यों से; स—सहित; अग्र-जः—अपने बड़े भाई; अर्चितः—पूजा किया गया।

इस प्रकार मीठी बातें करके उससे विदा लेकर भगवान् कृष्ण मार्ग पर आगे बढ़े। रास्ते-भर व्यापारियों ने पान, मालाएँ तथा सुगन्धित द्रव्य से युक्त नाना प्रकार की सादर भेंटें अर्पित करके उनकी तथा उनके बड़े भाई की पूजा की।

तद्दर्शनस्मरक्षोभादात्मानं नाविदन्स्त्रियः ।
विस्रस्तवासःकवर वलया लेख्यमूर्तयः ॥ १४॥

शब्दार्थ

तत्—उसको; दर्शन—देखने से; स्मर—कामदेव के प्रभाव से; क्षोभात्—उद्वेलित होने से; आत्मानम्—स्वयं को; न अविदन्—नहीं पहचान पाईं; स्त्रियः—स्त्रियाँ; विस्रस्त—ढीले हुए; वासः—वस्त्र; कवर—चोटियाँ; वलयाः—तथा उनकी चूड़ियाँ; लेख्य—मानो चित्रित; मूर्तयः—आकृतियाँ।

कृष्ण के दर्शन से नगर की नारियों के हृदय में कामदेव जाग उठा। इस प्रकार क्षुब्ध होकर वे अपनी सुध-बुध खो दीं। उनके परिधान, लट तथा उनके कंगन ढीले पड़ जाते और वे चित्र में बनी आकृति सी स्तब्ध खड़ी रह जातीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि चूँकि कृष्ण को देखते ही मथुरा की स्त्रियों में माधुर्य आकर्षण के लक्षण प्रकट हो आये थे क्योंकि वे नगर में सर्वोच्च भक्त थीं। कामदेव के दस लक्षण इस प्रकार बताए गये हैं—*चक्षुरागः प्रथमं चित्तासंगस्ततोऽथ संकल्पः निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः/ उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः*—सर्वप्रथम आँखों के माध्यम से व्यक्त आकर्षण, तब मन में गहन आसक्ति, तब संकल्प, निद्रा का ह्रास, दुर्बल होना, बाह्य वस्तुओं में अरुचि, निर्लज्जता, उन्माद, मूर्च्छा तथा मृत्यु—ये कामदेव के प्रभाव की दस दशाएँ हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यह भी इंगित करते हैं कि जिन भक्तों में शुद्ध भगवत्प्रेम होता है उनमें सामान्यतया मृत्यु लक्षण प्रकट नहीं होता क्योंकि कृष्ण के सम्बन्ध में यह अशुभ है। किन्तु उनमें अन्य नव-लक्षण प्रकट होते हैं जिनकी परिणति परम आनन्दमय मूर्च्छा में होती है।

ततः पौरान्पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः ।
तस्मिन्प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

ततः—तब; पौरान्—नगरवासियों से; पृच्छमानः—पूछते-पाछते; धनुषः—धनुष के; स्थानम्—स्थान को; अच्युतः—अच्युत भगवान् ने; तस्मिन्—वहाँ; प्रविष्टः—घुसते हुए; ददृशे—देखा; धनुः—धनुष; ऐन्द्रम्—इन्द्र का; इव—सदृश; अद्भुतम्—विस्मयकारी।

तत्पश्चात् कृष्ण ने स्थानीय लोगों से वह स्थान पूछा जहाँ धनुष-यज्ञ होना था। जब वे वहाँ गये तो उन्होंने विस्मयकारी धनुष देखा जो इन्द्र के धनुष जैसा था।

पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् ।
वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

पुरुषैः—लोगों द्वारा; बहुभिः—अनेक; गुप्तम्—रक्षित; अर्चितम्—पूजित; परम—परम; ऋद्धि—ऐश्वर्य से; मत्—युक्त; वार्यमाणः—मना किये गये; नृभिः—रक्षकों द्वारा; कृष्णः—कृष्ण ने; प्रसह्य—बलपूर्वक; धनुः—धनुष को; आददे—उठा लिया।

उस अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त धनुष की लोगों की विशाल टोली द्वारा निगरानी की जा रही थी और वे लोग उसकी आदर भाव से पूजा कर रहे थे। तो भी कृष्ण आगे बढ़ते गये और रक्षकों के मना करने के बावजूद उन्होंने उस धनुष को उठा लिया।

करेण वामेन सलीलमुद्धृतं
सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् ।
नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतो
यथेक्षुदण्डं मदकर्युरुक्रमः ॥ १७॥

शब्दार्थ

करेण—हाथ से; वामेन—बाएँ; स-लीलम्—खेल खेल में; उद्धृतम्—उठाया; सज्यम्—डोरी चढ़ाकर; च—तथा; कृत्वा—करके; निमिषेण—पलक मारते; पश्यताम्—देखते देखते; नृणाम्—रक्षकों के; विकृष्य—खींचकर; प्रबभञ्ज—तोड़ डाला; मध्यतः—बीच से; यथा—जिस तरह; इक्षु—ईख के; दण्डम्—तने को; मद-करी—मतवाला हाथी; उरुक्रमः—कृष्ण ने।

अपने बाएँ हाथ से उस धनुष को आसानी से उठाकर भगवान् उरुक्रम ने राजा के रक्षकों के देखते देखते एक क्षण से भी कम समय में डोरी चढ़ा दी। तत्पश्चात् उन्होंने बलपूर्वक डोरी खींची और उस धनुष को बीच से तोड़ डाला जिस तरह मतवाला हाथी गन्ने को तोड़ दे।

धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः ।
पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

धनुषः—धनुष के; भज्यमानस्य—टूटने से; शब्दः—ध्वनि; खम्—पृथ्वी; रोदसी—आकाश; दिशः—तथा सारी दिशाएँ; पूरयाम् आस—भर गई; यम्—जिसे; श्रुत्वा—सुनकर; कंसः—राजा कंस ने; त्रासम्—भय; उपागमत्—अनुभव किया।

धनुष के टूटने की ध्वनि पृथ्वी तथा आकाश की सारी दिशाओं में भर गई। इसे सुनकर कंस भयभीत हो उठा।

तद्रक्षिणः सानुचरं कुपिता आततायिनः ।
गृहीतुकामा आवव्रुर्गृह्यतां वध्यतामिति ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसके; रक्षिणः—रक्षक; स—सहित; अनुचरम्—अपने संगी जनों; कुपिताः—क्रुद्ध; आततायिनः—हथियार लिए; गृहीतु—पकड़ने के लिए; कामाः—चाहते हुए; आवव्रुः—घेर लिया; गृह्यताम्—पकड़ लो; वध्यताम्—मार डालो; इति—ऐसा कहते हुए।

तब क्रुद्ध रक्षकों ने अपने अपने हथियार उठा लिये और कृष्ण तथा उनके संगियों को पकड़ने की इच्छा से उन्हें घेर लिया और "पकड़ लो, मार डालो" कहकर चिल्लाने लगे।

अथ तान्दुरभिप्रायान्विलोक्य बलकेशवौ ।
क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; तान्—उनको; दुरभिप्रायान्—दुष्ट अभिप्राय वाले; विलोक्य—देखकर; बल-केशवौ—बलराम तथा कृष्ण ने; क्रुद्धौ—क्रुद्ध; धन्वनः—धनुष के; आदाय—लेकर; शकले—दोनों टूटे खंड; तान्—उनको; च—तथा; जघ्नतुः—प्रहार किया।

दुर्भावना से रक्षकों को अपनी ओर आते देखकर बलराम तथा कृष्ण ने धनुष के दोनों खण्डों को अपने हाथों में ले लिया और वे उन सबों को इन्हीं से मारने लगे।

बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात्ततः ।
निष्क्रम्य चेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसम्पदः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

बलम्—सेना; च—तथा; कंस-प्रहितम्—कंस द्वारा भेजी; हत्वा—मारकर; शाला—यज्ञस्थल के; मुखात्—द्वार से; ततः—तब; निष्क्रम्य—निकलकर; चेरतुः—दोनों विचरण करने लगे; हृष्टौ—प्रसन्न; निरीक्ष्य—देखकर; पुर—नगर की; सम्पदः—सम्पदा।

कंस द्वारा भेजी गई सैन्य-टुकड़ी को भी मारकर कृष्ण तथा बलराम यज्ञशाला के मुख्य द्वार से निकल आये और सुखपूर्वक ऐश्वर्यमय दृश्य देखते हुए नगर में घूमते रहे।

तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशाम्य पुरवासिनः ।
तेजः प्रागल्भ्यं रूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उन दोनों के; तत्—उस; अद्भुतम्—अद्‌भुत; वीर्यम्—वीरतापूर्ण कार्य को; निशाम्य—देखकर; पुर-वासिनः—नगर निवासी; तेजः—उनके तेज; प्रागल्भ्यम्—प्रगल्भता, साहस; रूपम्—सौन्दर्य को; च—तथा; मेनिरे—उन्होंने सोचा; विबुध—देवता; उत्तमौ—दो श्रेष्ठ।

कृष्ण तथा बलराम द्वारा किये गये अद्‌भुत कार्य तथा उनके बल, साहस एवं सौन्दर्य को देखकर नगरवासियों ने सोचा कि वे अवश्य ही दो मुख्य देवता हैं।

तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् ।
कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥ २३॥

शब्दार्थ

तयोः—उन दोनों के; विचरतोः—विचरण करते; स्वैरम्—इच्छानुसार; आदित्यः—सूर्य; अस्तम्—डूबने के; उपेयिवान्—निकट हो आया; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम; वृतौ—घिरे; गोपैः—ग्वालों से; पुरात्—नगरसे; शकटम्—जहाँ पर बैलगाड़ियाँ खड़ी थीं; ईयतुः—गये।

जब वे इच्छानुसार विचरण कर रहे थे तब सूर्य अस्त होने लगा था अतः वे ग्वालबालों के साथ नगर को छोड़कर ग्वालों के बैलगाड़ी वाले खेमे में लौट आये।

गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या
आशासताशिष ऋता मधुपुर्यभूवन् ।
सम्पश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं
हित्वेतरान्नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः ॥ २४॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियाँ; मुकुन्द-विगमे—मुकुन्द के विदा होते समय; विरह—वियोग की भावना से; आतुराः—शोकाकुल; याः—जो; आशासत—बोली थीं; आशिषः—वर, आशीर्वाद; ऋताः—सच; मधु-पुरि—मथुरा में; अभूवन्—हो गये; सम्पश्यताम्—देखने वालों के लिए; पुरुष—मनुष्यों के; भूषण—आभूषण के; गात्र—शरीर के; लक्ष्मीम्—सौन्दर्य; हित्वा—त्यागकर; इतरान्—अन्य लोग; नु—निस्सन्देह; भजतः—उनकी पूजा करने वाले; चकमे—लालसा करने लगे; अयनम्—शरण के लिए; श्रीः—लक्ष्मी।

वृन्दावन से मुकुन्द (कृष्ण) के विदा होते समय गोपियों ने भविष्यवाणी की थी कि मथुरावासी अनेक वरों का भोग करेंगे और अब उन गोपियों की भविष्यवाणी सत्य उतर रही थी क्योंकि मथुरा के वासी पुरुष-रत्न कृष्ण के सौन्दर्य को एकटक देख रहे थे। निस्सन्देह लक्ष्मीजी उस सौन्दर्य का आश्रय इतना चाहती थीं कि उन्होंने अनेक अन्य लोगों का परित्याग कर दिया, यद्यपि वे उनकी पूजा करते थे।

अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम् ।

ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

अवनिक्त—धुलाकर; अङ्घ्रि-युगलौ—दोनों के पाँव; भुक्त्वा—खाने के बाद; क्षीर-उपसेचनम्—खीर; ऊषतु:—वहाँ टिके रहे; ताम्—उस; सुखम्—सुखपूर्वक; रात्रिम्—रात; ज्ञात्वा—जानकर; कंस-चिकीर्षितम्—कंस के लिए जो चाह रहा था।

कृष्ण तथा बलराम के पाँव धोये जाने के बाद दोनों भाइयों ने खीर खाई। तत्पश्चात् यह जानते हुए ही कि कंस क्या करना चाहता है, उन दोनों ने वहाँ सुखपूर्वक रात बिताई।

कंसस्तु धनुषो भङ्गं रक्षिणां स्वबलस्य च ।
वधं निशम्य गोविन्दरामविक्रीडितं परम् ॥ २६॥
दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः ।
बहून्यचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च ॥ २७॥

शब्दार्थ

कंसः—कंस; तु—लेकिन; धनुषः—धनुष का; भङ्गम्—टूटना; रक्षिणाम्—रक्षकों का; स्व—अपने; बलस्य—सेना का; च—तथा; वधम्—मारा जाना; निशम्य—सुनकर; गोविन्द-राम—कृष्ण तथा राम का; विक्रीडितम्—खेलना; परम्—मात्र; दीर्घ—दीर्घकाल तक; प्रजागरः—जगा रहा; भीतः—डरा हुआ; दुर्निमित्तानि—अपशकुन; दुर्मतिः—दुष्टबुद्धि; बहूनि—अनेक; अचष्ट—देखा; उभयथा—दोनों ही दशाओं (जगते-सोते) में; मृत्योः—मृत्यु के; दौत्य-कराणि—दूतों को; च—तथा।

दूसरी ओर दुर्भति राजा कंस ने जब यह सुना कि किस तरह खेल की भान्ति कृष्ण तथा बलराम ने धनुष तोड़ डाला है और उसके रक्षकों तथा सैनिकों को मार डाला है, तो वह अत्यधिक भयभीत हो उठा। वह काफी समय तक जागता रहा और जागते तथा सोते हुए उसने मृत्यु के दूतों वाले कई अपशकुन देखे।

अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि ।
असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ॥ २८॥
छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः ।
स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥ २९॥
स्वप्ने प्रेतपरिष्वङ्गः खरयानं विषादनम् ।
यायान्नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥ ३०॥
अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि च ।
पश्यन्मरणसन्त्रस्तो निद्रां लेभे न चिन्तया ॥ ३१॥

शब्दार्थ

अदर्शनम्—न दिखाई पड़ना; स्व—अपना; शिरसः—सिर; प्रतिरूपे—परछाईं में; च—तथा; सति—उपस्थित रहकर; अपि—भी; असति—नहीं होना; अपि—भी; द्वितीये—दो-दो का कारण; च—तथा; द्वै-रूप्यम्—दो प्रतिबिम्ब; ज्योतिषाम्—नक्षत्रों के; तथा—भी; छिद्र—छेद का; प्रतीतिः—दिखना; छायायाम्—अपनी छाया में; प्राण—अपनी प्राण-वायु की; घोष—अनुगूँज; अनुपश्रुतिः—न सुनाई पड़ना; स्वर्ण—सुनहले रंग की; प्रतीतिः—अनुभूति; वृक्षेषु—वृक्षों में; स्व—अपना; पदानाम्—पदचिह्न; अदर्शनम्—न दिखना; स्वप्ने—सोते हुए; प्रेत—भूत-प्रेतों से; परिष्वङ्गः—आलिंगित; खर—गधे पर;

यानम्—सवारी करते; विष—जहर; अदनम्—भक्षण करते; यायात्—जा रहा था; नलद—एक फूल, अडहुल; माली—माला पहने; एकः—कोई; तैल—तेल से; अभ्यक्तः—चपोड़े; दिक्-अम्बरः—नग्न; अन्यानि—अन्य (शकुन); च—तथा; इत्थम्-भूतानि—इस तरह के; स्वप्न—सोते समय; जागरितानि—जगते हुए; च—भी; पश्यन्—देखते हुए; मरण—मृत्यु से; सन्त्रस्तः—भयभीत; निद्राम्—नींद; लेभे—प्राप्त कर सका; न—नहीं; चिन्तया—चिन्ता के कारण।

जब उसने अपनी परछाईं देखी तो उसमें उसे अपना सिर नहीं दिखा, अकारण ही चन्द्रमा तथा तारे दो-दो लगने लगे; उसे अपनी छाया में छेद दिखा, उसे अपनी प्राण-वायु की ध्वनि सुनाई नहीं पड़ी, वृक्ष सुनहली आभा से प्रच्छन्न लगने लगे और वह अपने पदचिन्हों को न देख सका। उसने स्वप्न में देखा कि भूत-प्रेत उसका आलिंगन कर रहे हैं, वह गधे पर सवार है और विष पी रहा है। यही नहीं, नलद (अडहुल) फूलों की माला पहने और तेल पोते एक नंगा व्यक्ति उधर से जा रहा है। इन तथा अन्य ऐसे अपशकुनों को स्वप्न में तथा जागते हुए देखकर कंस अपनी मृत्यु की सम्भावना से भयभीत था और चिन्ता के कारण वह सो न सका।

व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्यः समुत्थिते ।
कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

व्युष्टायाम्—बीत जाने पर; निशि—रात; कौरव्य—हे कुरुवंशी (परीक्षित); सूर्ये—सूर्य; च—तथा; अद्भ्यः—जल से; समुत्थिते—उदय होने पर; कारयाम् आस—पूरा कराया; वै—निस्सन्देह; कंसः—कंस; मल्ल—पहलवानों के; क्रीडा—खेल का; महा-उत्सवम्—बहुत विशाल उत्सव।

जब अन्ततः रात बीत गई और सूर्य पुनः जल में से ऊपर निकला तो कंस विशाल कुश्ती-उत्सव (दंगल) का आयोजन करने लगा।

आनर्चुः पुरुषा रङ्गं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ।
मञ्चाश्चालङ्कृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

आनर्चुः—पूजा की; पुरुषाः—राजा के लोगों ने; रङ्गम्—रंगभूमि या शाला की; तूर्य—तुरही; भेर्यः—ढोल; च—तथा; जघ्निरे—बजने लगे; मञ्चाः—देखने के मचान, चबूतरे; च—तथा; अलङ्कृताः—सजाये गये थे; स्रग्भिः—मालाओं से; पताका—झंडियों से; चैल—वस्त्र के फीतों से; तोरणैः—द्वारों से, बन्दनवारों से।

राजा के लोगों ने मल्लस्थल (दंगल) की विधिवत् पूजा की, अपने ढोल तथा अन्य वाद्य बजाये और दर्शकदीर्घाओं को मालाओं, झंडियों, फीतों तथा बन्दनवारों से खूब सजाया गया।

तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः ।

यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तेषु—इन (मंचों) पर; पौराः—नगरनिवासी; जानपदाः—आसपास से आये लोग; ब्रह्म—ब्राह्मणों; क्षत्र—क्षत्रियों के साथ; पुरः-गमाः—इत्यादि; यथा-उपजोषम्—सुविधानुसार; विविशुः—आकर बैठ गये; राजानः—राजागण; च—भी; कृत—दिये गये; असनाः—विशेष बैठने के स्थान।

नगरनिवासी तथा पड़ोसी जिलों के निवासी ब्राह्मण तथा क्षत्रियों इत्यादि के साथ आये और दीर्घाओं में सुखपूर्वक बैठ गये। राजसी अतिथियों को विशिष्ट स्थान दिये गये।

कंसः परिवृतोऽमात्यै राजमञ्च उपाविशत् ।
मण्डलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

कंसः—कंस; परिवृतः—घिरा हुआ; अमात्यैः—अपने मंत्रियों से; राज-मञ्चे—राजसी मंच पर; उपाविशति—बैठा; मण्डल-ईश्वर—विभिन्न मण्डलों के गौण शासक; मध्य—बीच में; स्थः—स्थित; हृदयेन—हृदय से; विदूयता—थरथराता, काँपता।

अपने मंत्रियों से घिरा हुआ कंस अपने राजमंच पर आसीन हुआ। किन्तु अपने विविध मण्डलेश्वरों के बीच में बैठे हुए भी उसका हृदय काँप रहा था।

वाद्यमानेसु तूर्येषु मल्लतालोत्तरेषु च ।
मल्लाः स्वलङ्कृताः दृप्ताः सोपाध्यायाः समासत ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

वाद्यमानेषु—बजाये जाने पर; तूर्येषु—तुरही पर; मल्ल—कुश्ती के उपयुक्त; ताल—ताल, थाप; उत्तरेषु—प्रमुख; च—तथा; मल्लाः—पहलवान; सु-अलङ्कृताः—सुसज्जित; दृप्ताः—गर्वित; स-उपाध्यायाः—अपने अपने प्रशिक्षकों सहित; समासत—आकर बैठ गये।

जब कुश्ती के उपयुक्त ताल पर वाद्य यंत्र जोर जोर से बजने लगे तो खूब सजे गर्वीले पहलवान अपने अपने प्रशिक्षकों समेत अखाड़े में प्रविष्ट हुए और बैठ गये।

चाणूरो मुष्टिकः कूतः शलस्तोशल एव च ।
त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

चाणूरः मुष्टिकः कूटः—चाणूर, मुष्टिक तथा कूट नामक पहलवान; शलः तोशलः—शल तथा तोशल; एव च—भी; ते—वे; आसेदुः—बैठ गये; उपस्थानम्—अखाड़े की चटाई पर; वल्गु—मोहक; वाद्य—संगीत से; प्रहर्षिताः—हर्षित, उत्साहित।

आनंददायक संगीत से उल्लासित होकर चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल तथा तोशल अखाड़े की चटाई पर बैठ गये।

नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ।
निवेदितोपायनास्त एकस्मिन्मञ्च आविशन् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

नन्द-गोप-आदयः—नन्द गोप इत्यादि; **गोपाः**—ग्वाले; **भोज-राज**—कंस द्वारा; **समाहुताः**—आगे बुलाये जाने पर; **निवेदित**—प्रस्तुत करते हुए; **उपायनाः**—अपनी भेंटें; **ते**—वे; **एकस्मिन्**—एक; **मञ्चे**—दर्शक दीर्घा में; **आविशन्**—बैठ गये।

भोजराज (कंस) द्वारा बुलाये जाने पर नंद महाराज तथा अन्य ग्वालों ने उसे अपनी अपनी भेंटें पेश कीं और तब वे एक दीर्घा में जाकर बैठ गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार *समाहुताः* शब्द सूचित करता है कि कंस ने व्रज के प्रधान व्यक्तियों को आदर समेत आगे बुलाया जिससे केन्द्रीय सरकार को अपनी भेंटें अर्पित कर सकें। आचार्य के अनुसार कंस ने नंद को यह कहकर आश्वस्त किया, "हे व्रजराज! आप मेरे ग्राम-शासकों में सर्वोपरि हैं। आप अपने गोप-ग्राम से मथुरा तो आये हैं किन्तु आप मुझसे भेंट करने नहीं आये। क्या इसलिए कि आप डरे हुए हैं? आप यह न सोचें कि आपके दोनों पुत्रों ने धनुष तोड़ डाला है इसलिए वे बुरे हैं। मैंने उन्हें इसलिए यहाँ आमंत्रित किया था क्योंकि मैंने सुन रखा था कि वे अतीव बलशाली हैं। मैंने यह मल्ल-प्रतियोगिता उनके शक्ति-परीक्षण के लिए ही आयोजित की है। अतः आप बिना किसी संकोच के आगे आयें। डरें नहीं।"

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती आगे बतलाते हैं कि नन्द महाराज ने देखा कि उनके दोनों पुत्र वहाँ उपस्थित नहीं हैं। स्पष्ट था कि राजा कंस के आदेश की अवहेलना करके उन्होंने प्रातःकाल के समय को अवकाश के रूप में ले लिया था और वे कहीं चले गये थे। अतः कंस ने कुछ ग्वालों को उनकी खोज करने के लिए तथा उन्हें ढंग से व्यवहार करने और अखाड़े में वापस आने की सलाह देने के लिए नियुक्त कर दिया था। श्रील विश्वनाथ आचार्य यह भी कहते हैं कि दीर्घाओं में नन्द तथा ग्वालों के बैठने का दूसरा कारण यह भी था कि राजमंच पर बैठने के लिए उन्हें स्थान नहीं मिल सका।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत "यज्ञ के धनुष का टूटना" नामक बयालिसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तैंतालीस

कृष्ण द्वारा कुवलयापीड हाथी का वध

इस अध्याय में बतलाया गया है कि भगवान् कृष्ण ने किस तरह राजसी हाथी कुवलयापीड को मारा, किस तरह कृष्ण तथा बलराम कुश्ती के अखाड़े में घुसे और कृष्ण ने चाणूर नामक मल्ल से क्या कहा।

प्रात:कालीन कर्म समाप्त करने के बाद कृष्ण तथा बलराम ने दंगल (कुश्ती) शुरू होने का नगाड़ा सुना और वे इस उत्सव को देखने गये। अखाड़े के द्वार पर उन्हें कुवलयापीड नामक एक हाथी मिला जिसने अपने महावत के इशारे पर कृष्ण पर आक्रमण कर दिया। उस बलशाली हाथी ने कृष्ण को अपनी सूँड़ में लपेट लिया किन्तु कृष्ण उस पशु की दृष्टि से ओझल होकर उसके पाँवों के बीच में छुप गये। कृष्ण को न देख सकने के कारण क्रुद्ध होकर उस पशु ने अपनी घ्राण-शक्ति से उन्हें ढूँढ़ निकाला और पकड़ लिया किन्तु भगवान् ने अपने को ढीला छोड़ दिया। इस तरह कृष्ण कुवलयापीड को तंग करते रहे और सताते रहे और अन्त में उसका ही एक दाँत निकाल कर इससे उसे तथा उसके महावत को पीट-पीट कर मार डाला।

जब कृष्ण हाथी के रक्त से सने और उसका एक दाँत अपने कंधे पर हथियार की तरह धारण किये हुए अखाड़े में प्रविष्ट हुए तो वे अभूतपूर्व सुन्दर लग रहे थे। वहाँ पर विभिन्न वर्गों के लोगों ने अपने अपने विशिष्ट सम्बन्ध के अनुसार उन्हें विभिन्न प्रकार से देखा।

जब कंस ने सुना कि कृष्ण तथा बलराम ने कुवलयापीड का कैसे वध कर दिया है, तो वह समझ गया कि वे दोनों अजेय हैं अत: वह चिन्ता से घिर गया। किन्तु दर्शकगण एक-दूसरे से भगवान् की अद्भुत लीलाओं का उल्लेख करते हुए परम प्रसन्न हुए। लोगों ने कहा कि कृष्ण तथा बलराम अवश्य ही भगवान् नारायण के दो अंश हैं, जो वसुदेव के घर में अवतरित हुए हैं।

तब चाणूर मैदान में उतरा और उसने कृष्ण तथा बलराम को कुश्ती के लिए यह कहकर ललकारा कि राजा कंस इस प्रतियोगिता को देखना चाहते हैं। इस पर कृष्ण बोले, ‘‘यद्यपि हम केवल जंगलवासी घुमक्कड़ लोग हैं फिर भी राजा की प्रजा हैं अत: हम कुश्ती-प्रदर्शन द्वारा उनको प्रसन्न करने से पीछे नहीं रहेंगे।'' ज्योंही चाणूर ने यह बात सुनी त्योंही उसने प्रस्ताव रखा कि कृष्ण उससे लड़ें और बलराम मुष्टिक से।

श्रीशुक उवाच

अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परन्तप ।
मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—इसके बाद; कृष्णः—कृष्ण; च—तथा; रामः—बलराम; च—भी; कृत—पूरा करके, निवृत्त; शौचौ—शौच कर्म; परम्-तप—हे शत्रुओं को दण्ड देने वाले; मल्ल—कुश्ती की; दुन्दुभि—नगाड़े की; निर्घोषम्—ध्वनि; श्रुत्वा—सुनकर; द्रष्टुम्—देखने के लिए; उपेयतः—पास पहुँचे।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे परन्तप, नित्य शौच कर्मों से निवृत्त होकर जब कृष्ण तथा बलराम ने अखाड़े (रंगशाला) में बजने वाले नगाड़े की ध्वनि सुनी तो वे वहाँ यह देखने गये कि हो क्या रहा है।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर गोस्वामी ने *कृतशौचौ* शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है, ''कृष्ण तथा बलराम ने दो दिन पूर्व शुद्धि की थी और अपने अपराध से मुक्ति पाई थी (वीरतापूर्ण कार्य करने से) अत: उन्होंने तर्क किया, 'यद्यपि हमने धनुष भंग द्वारा तथा अन्य साहसिक कार्यों से अपनी शक्ति का परिचय दे दिया है फिर भी हमारे माता-पिता बन्दीगृह से मुक्त नहीं हो पाये। कंस पुन: उन्हें मारने का प्रयत्न कर रहा है। अत: भले ही वह हमारा मामा क्यों न हो, उसका वध कर देना हमारे लिए अनुचित न होगा।' उन्होंने इस प्रकार के तर्क द्वारा अपनी निरपराधिता व्यक्त की।''

रङ्गद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् ।
अपश्यत्कुवलयापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

रङ्ग—अखाड़े के; द्वारम्—द्वार पर; समासाद्य—पहुँचकर; तस्मिन्—उस स्थान पर; नागम्—हाथी को; अवस्थितम्—खड़ा; अपश्यत्—देखा; कुवलयापीडम्—कुवलयापीड नामक; कृष्णः—कृष्ण ने; अम्बष्ठ—महावत द्वारा; प्रचोदितम्—प्रेरित।

जब भगवान् कृष्ण अखाड़े के प्रवेशद्वार पर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि कुवलयापीड नामक हाथी अपने महावत की उत्प्रेरणा से उनका रास्ता रोक रहा है।

तात्पर्य : महावत ने अखाड़े में कृष्ण के प्रवेश को रोक कर अपना दुर्भावनापूर्ण मनोभाव व्यक्त किया।

बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् ।
उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगभीरया ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

बद्ध्वा—बाँधकर; परिकरम्—फेंटा; शौरिः—कृष्ण ने; समुह्य—समेट कर; कुटिल—घुँघराले; अलकान्—बालों को; उवाच—कहा; हस्ति-पम्—महावत से; वाचा—शब्दों से; मेघ—बादल जैसे; नाद—गर्जन की तरह; गभीरया—गम्भीर।

भगवान् कृष्ण ने अपना फेंटा कसकर तथा अपने घुँघराले बालों को पीछे बाँधकर महावत से बादलों जैसी गम्भीर गर्जना में ये शब्द कहे।

तात्पर्य : स्पष्ट है कि कृष्ण लड़ने की तैयारी कर रहे थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार भगवान् ने अपना अँगरखा उतार दिया, अपनी पेटी कसी और अपने बालों को पीछे बाँध लिया।

अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम् ।
नो चेत्सकुञ्जरं त्वाद्य नयामि यमसादनम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

अम्बष्ठ अम्बष्ठ—रे महावत, रे महावत; मार्गम्—रास्ता; नौ—हम दोनों को; देहि—दो; अपक्रम—एक ओर हट जाओ; मा चिरम्—बिना देरी किये; न उ चेत्—यदि नहीं; स-कुञ्जरम्—हाथी समेत; त्व—तुमको; अद्य—आज; नयामि—भेज दूँगा; यम—मृत्यु के स्वामी, यमराज के; सादनम्—घर में।

[कृष्ण ने कहा]: रे महावत, रे महावत, तुरन्त एक ओर हो जा और हमें निकलने दे। यदि तू ऐसा नहीं करता तो आज ही मैं तुम्हारे हाथी समेत तुम्हें यमराज के धाम भेज दूँगा।

एवं निर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजम् ।
चोदयामास कृष्णाय कालान्तकयमोपमम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; निर्भर्त्सितः—धमकाया गया; अम्बष्ठः—महावत ने; कुपितः—क्रुद्ध; कोपितम्—कुपित हुए; गजम्—हाथी को; चोदयाम् आस—अंकुश मारा; कृष्णाय—कृष्ण की ओर; काल—समय; अन्तक—मृत्यु; यम—तथा यमराज; उपमम्—के सदृश।

इस प्रकार धमकाये जाने पर महावत क्रुद्ध हो उठा। उसने अपने उग्र हाथी को अंकुश जमाई। वह आक्रमण करने वाले कृष्ण पर काल, मृत्यु तथा यमराज के समान प्रतीत हुआ।

करीन्द्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाग्रहीत् ।
कराद्विगलितः सोऽमुं निहत्याङ्घ्रिष्वलीयत ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

करि—हाथियों के; इन्द्रः—स्वामी ने; तम्—उसको; अभिद्रुत्य—की ओर दौड़ते हुए; करेण—सूँड़ से; तरसा—वेग से; अग्रहीत्—पकड़ लिया; करात्—सूँड़ से; विगलितः—छटक कर; सः—वह, कृष्ण; अमुम्—उस कुवलयापीड को; निहत्य—प्रहार करके; अङ्घ्रिषु—उसके पाँवों के बीच; अलीयत—ओझल हो गया।

उस हस्तिराज ने कृष्ण पर आक्रमण कर दिया और अपनी सूँड़ से तेजी से उन्हें पकड़

लिया। किन्तु कृष्ण सरक गये, उस पर एक घूँसा जमाया और उसके पैरों के बीच जाकर उसकी दृष्टि से ओझल हो गये।

तात्पर्य : कृष्ण ने उस पर मुक्के से प्रहार किया और तब उसके पैरों के बीच में छिप गये।

सङ्क्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम् ।
परामृशत्पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥ ७॥

शब्दार्थ

सङ्क्रुद्धः—क्रुद्ध हुआ; तम्—उसको; अचक्षाणः—न देखकर; घ्राण—अपनी घ्राण-इन्द्रिय से; दृष्टिः—दृष्टि; सः—उस हाथी ने; केशवम्—भगवान् केशव को; परामृशत्—पकड़ लिया; पुष्करेण—अपने सूँड़ के अग्र भाग से; सः—कृष्ण; प्रसह्य—बलपूर्वक; विनिर्गतः—छूट गया।.

भगवान् केशव को न देख पाने से क्रुद्ध हुए उस हाथी ने अपनी घ्राण-इन्द्रिय से उन्हें खोज निकाला। कुवलयापीड ने एक बार फिर भगवान् को अपनी सूँड़ के अग्र भाग से पकड़ा किन्तु उन्होंने बलपूर्वक अपने को छुड़ा लिया।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने हाथी को अपने को पकड़ने दिया जिससे वह उनसे लड़ता रहने के लिए प्रोत्साहित हो। एक बार जब कुवलयापीड इस तरह गर्वित हो उठा तो कृष्ण ने अपनी पराशक्ति से उसे फिर निष्फल बना दिया।

पुच्छे प्रगृह्यातिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम् ।
विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥ ८॥

शब्दार्थ

पुच्छे—उसकी पूँछ से; प्रगृह्य—पकड़कर; अति-बलम्—अत्यन्त शक्तिशाली (हाथी); धनुषः—धनुष के बराबर दूरी; पञ्च-विंशतिम्—पच्चीस; विचकर्ष—घसीटा; यथा—जिस तरह; नागम्—साँप को; सुपर्णः—गरुड़; इव—सदृश; लीलया—खेल खेल में।.

तब भगवान् कृष्ण ने बलशाली कुवलयापीड को पूँछ से पकड़ा और खेल खेल में वे उसे पच्चीस धनुष-दूरी तक वैसे ही घसीट ले गये जिस तरह गरुड़ किसी साँप को घसीटता है।

स पर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः ।
बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥ ९॥

शब्दार्थ

सः—वह; पर्यावर्तमानेन—घुमाये जाते हाथी के साथ; सव्य-दक्षिणतः—कभी बाएँ तो कभी दाएँ; अच्युतः—भगवान् कृष्ण; बभ्राम—घूमने लगे; भ्राम्यमाणेन—घुमाये जाने वाले के साथ साथ; गो-वत्सेन—बछड़े सहित; इव—जिस तरह; बालकः—कोई बालक।

जब भगवान् अच्युत ने हाथी की पूँछ पकड़ी तो वह बाएँ और फिर दाएँ घूमने का प्रयास करने लगा, जिससे भगवान् उल्टी दिशा में घूमने लगे जिस तरह कि कोई बालक किसी बछड़े की पूँछ खींचने पर घूमता है।

ततोऽभिमखमभ्येत्य पाणिनाहत्य वारणम् ।
प्राद्रवन्पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे ॥ १० ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अभिमुखम्—समक्ष; अभ्येत्य—आकर; पाणिना—हाथ से; आहत्य—थप्पड़ लगाकर; वारणम्—हाथी को; प्राद्रवन्—भगते हुए; पातयाम् आस—गिरा दिया; स्पृश्यमानः—स्पर्श किया जाकर; पदे पदे—पग पग पर।

तब कृष्ण उस हाथी के सामने आये और उसे चपत लगाकर भाग गये। कुवलयापीड उनका पीछा करने लगा, वह उन्हें प्रत्येक पग पर बारम्बार छूने का इस तरह का प्रयास करता किन्तु कृष्ण बचकर निकल जाते। उन्होंने उसे झाँसा देकर गिरा दिया।

स धावन्क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः ।
तम्मत्वा पतितं क्रुद्धो दन्ताभ्यां सोऽहनत्क्षितिम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; धावन्—दौड़ते हुए; क्रीडया—खेल खेल में; भूमौ—भूमि पर; पतित्वा—गिरकर; सहसा—एकाएक; उत्थितः—उठकर; तम्—उसको; मत्वा—मानते हुए; पतितम्—गिरा हुआ; क्रुद्धः—क्रुद्ध; दन्ताभ्याम्—उसके दाँतों सहित; सः—वह, कुवलयापीड; अहनत्—टकराये; क्षितिम्—पृथ्वी पर।

कृष्ण झुठलाते हुए खेल खेल में पृथ्वी पर गिर पड़ते और पुनः तेजी से उठ जाते। क्रुद्ध हाथी ने कृष्ण को गिरा समझकर उन पर अपने दाँत चुभोने चाहे किन्तु उल्टे वे दाँत धरती से जा टकराये।

स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जरेन्द्रोऽत्यमर्षितः ।
चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

स्व—अपने; विक्रमे—पराक्रम में; प्रतिहते—असफल होने पर; कुञ्जर-इन्द्रः—हाथियों का राजा; अति—अत्यधिक; अमर्षितः—क्रोध से विचलित; चोद्यमानः—प्रेरित किया गया; महामात्रैः—महावत द्वारा; कृष्णम्—कृष्ण पर; अभ्यद्रवत्—आक्रमण किया; रुषा—क्रोध से।

जब हस्तिराज कुवलयापीड का पराक्रम व्यर्थ गया तो वह निराशा-जनित क्रोध से जलभुन

उठा। किन्तु महावत ने उसे अंकुश मारा और उसने पुनः एक बार कृष्ण पर क्रुद्ध होकर आक्रमण कर दिया।

तमापतन्तमासाद्य भगवान्मधुसूदनः ।
निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; आपतन्तम्—आक्रमण करते; आसाद्य—सामना करके; भगवान्—भगवान्; मधु-सूदनः—मधु नामक असुर का वध करने वाले ने; निगृह्य—मजबूती से पकड़ कर; पाणिना—अपने हाथ से; हस्तम्—उसके सूँड़ को; पातयाम् आस—गिरा दिया; भू-तले—पृथ्वी पर।

भगवान् मधुसूदन ने अपने ऊपर आक्रमण करते हुए हाथी का सामना किया। एक हाथ से उसकी सूँड़ पकड़ कर कृष्ण ने उसे धरती पर पटक दिया।

पतितस्य पदाक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया ।
दन्तमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

पतितस्य—गिरे हुए (हाथी) का; पदा—अपने पाँव से; आक्रम्य—चढ़कर; मृगेन्द्रः—सिंह; इव—सदृश; लीलया—सहज ही; दन्तम्—एक दाँत को; उत्पाट्य—उखाड़ कर; तेन—उसी से; इभम्—हाथी को; हस्ति-पान्—महावतों को; च—भी; अहनत्—मार डाला; हरिः—भगवान् कृष्ण ने।

तब भगवान् हरि शक्तिशाली सिंह के ही समान आसानी से हाथी के ऊपर चढ़ गये, उसका एक दाँत उखाड़ लिया और उसी से उस जानवर को तथा उसके महावतों को मार डाला।

मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत् ।
अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिन्दुभिरङ्कितः ।
विरूढस्वेदकणिका वदनाम्बुरुहो बभौ ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

मृतकम्—मृत; द्विपम्—हाथी को; उत्सृज्य—फेंक कर, छोड़ कर; दन्त—उसका दाँत; पाणिः—अपने हाथ में; समाविशत्—(अखाड़े में) घुसे; अंस—कंधे पर; न्यस्त—रखकर; विषाणः—दाँत; असृक्—रक्त की; मद—तथा हाथी के पसीने की; बिन्दुभिः—बूँदों से; अङ्कितः—छिड़की हुई; विरूढ—निकालते हुए; स्वेद—अपने पसीने की; कणिका—सूक्ष्म बूँदों से; वदन—मुख; अम्बु-रुहः—कमल जैसा; बभौ—चमक रहा था।

मरे हुए हाथी को वहीं छोड़कर भगवान् कृष्ण हाथी का दाँत लिये अखाड़े में प्रविष्ट हुए। अपने कंधे पर हाथी का दाँत रखे, उस हाथी के रक्त तथा पसीने के छींटे पड़े हुए शरीर और अपने ही पसीने की छोटी छोटी बूँदों से आच्छादित कमलमुख भगवान् परम सुशोभित लग रहे थे।

वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ ।
रङ्गं विविशतू राजन्गजदन्तवरायुधौ ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

वृतौ—घिरे हुए; गोपैः—ग्वालबालों से; कतिपयैः—अनेक; बलदेव-जनार्दनौ—बलराम तथा कृष्ण; रङ्गम्—अखाड़े में; विविशतुः—प्रविष्ट हुए; राजन्—हे राजन् (परीक्षित); गज-दन्त—हाथी के दाँतों; वर—चुने हुए; आयुधौ—हथियार वाले।

हे राजन्, भगवान् बलदेव तथा भगवान् जनार्दन दोनों ही उस हाथी के एक एक दाँत को अपने चुने हुए हथियार के रूप में लिये हुए अनेक ग्वालबालों के साथ अखाड़े में प्रविष्ट हुए।

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

मल्लानाम्—पहलवानों के लिए; अशनिः—वज्र; नृणाम्—पुरुषों के लिए; नर-वरः—श्रेष्ठ-पुरुष; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के लिए; स्मरः—कामदेव; मूर्ति-मान्—अवतार; गोपानाम्—ग्वालों के लिए; स्व-जनः—उनके सम्बन्धी; असताम्—दुष्ट; क्षिति-भुजाम्—राजाओं के लिए; शास्ता—दण्ड देने वाला; स्व-पित्रोः—अपने माता-पिता के लिए; शिशुः—बालक; मृत्युः—मृत्यु; भोज-पतेः—भोजों के राजा कंस के लिए; विराट्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड; अविदुषाम्—मूर्खों के लिए; तत्त्वम्—सत्य; परम्—परम; योगिनाम्—योगियों के लिए; वृष्णीनाम्—वृष्टिकुल के सदस्यों के लिए; पर-देवता—परम पूज्य देव; इति—इस तरह; विदितः—समझा; रङ्गम्—अखाड़े में; गतः—प्रविष्ट हुए; स—सहित; अग्र-जः—बड़े भाई।

जब कृष्ण अपने बड़े भाई के साथ अखाड़े में प्रविष्ट हुए तो विभिन्न वर्गों के लोगों ने कृष्ण को भिन्न भिन्न रूपों में देखा। पहलवानों ने कृष्ण को वज्र के समान देखा, मथुरावासियों ने श्रेष्ठ-पुरुष के रूप में, स्त्रियों ने साक्षात् कामदेव के रूप में, ग्वालों ने अपने सम्बन्धी के रूप में, दुष्ट शासकों ने दण्ड देने वाले के रूप में, उनके माता-पिता ने अपने शिशु के रूप में, भोजराज ने मृत्यु के रूप में, मूर्खों ने भगवान् के विराट रूप में, योगियों ने परम ब्रह्म के रूप में तथा वृष्णियों ने अपने परम आराध्य देव के रूप में देखा।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने निम्नलिखित श्लोक उद्‌धृत किया है, जिसमें कृष्ण के प्रति १० विभिन्न रसों की व्याख्या मिलती है—

रौद्रऽद्‌भुतश्च शृंगारो हास्यं वीरो दया तथा।

भयानकश्च बीभत्सः शान्तः स-प्रेमभक्तिकः॥

“[दस विभिन्न रस हैं]: रौद्र (पहलवानों द्वारा अनुभूत), अद्‌भुत (पुरुषों द्वारा), शृंगार (स्त्रियों

द्वारा), हास्य (ग्वालों द्वारा), वीर (राजाओं द्वारा) दया (माता-पिता द्वारा), भय (कंस द्वारा), वीभत्स (मूर्खों द्वारा), शान्त (योगियों द्वारा) तथा प्रेमाभक्ति (वृष्णियों द्वारा)।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि पहलवानों, कंस तथा दुष्ट राजाओं जैसे व्यक्तियों ने कृष्ण को घातक, क्रुद्ध या धमकी देने वाले के रूप में देखा क्योंकि वे भगवान् के वास्तविक पद को समझ पाने में असमर्थ थे। वस्तुत: कृष्ण हरएक के मित्र तथा शुभचिन्तक हैं किन्तु वे हमें दण्ड देते हैं क्योंकि हम उनके विरुद्ध उत्पात करते हैं। इस तरह हम उन्हें दण्ड देने वाले के रूप में देख सकते हैं। कृष्ण अथवा ईश्वर तो वास्तव में दयालु हैं और जब वे हमें दण्ड देते हैं, तो वह भी उनकी कृपा होती है।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने निम्नलिखित वैदिक वाक्य उद्धृत किया है—*रसो वै स: रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति*—वे साक्षात् रस हैं—विशिष्ट सम्बन्ध का रस—और जो इस रस को प्राप्त कर लेता है, वह *आनन्दी* अर्थात् आनन्द से पूरित हो जाता है। (तैत्तिरीय उपानिषद २.७.१)

रस शब्द की व्याख्या के लिए उन्होंने एक और श्लोक उद्धृत किया है—

व्यतीत्य भावनावर्त्म यश्चमत्कारभारभू: ।

हृदि सत्त्वोज्ज्वले बाढं स्वदते स रसो मत: ॥

''जो कल्पना से परे है, आश्चर्य से बोझिल है और जिसका सतोगुण से चमत्कृत हृदय में आस्वाद लिया जाता है, वह *रस* है।''

जैसाकि श्रील रूप गोस्वामी ने *भक्तिरसामृतसिन्धु* में विस्तार से विवेचना की है, मुख्य रस पाँच हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। गौण रस सात हैं—आश्चर्य, हास्य, वीर, दया, रौद्र, भयानक तथा बीभत्स। इस प्रकार कुल १२ रस हैं और इन सबका चरमलक्ष्य साक्षात् श्रीकृष्ण हैं। दूसरे शब्दों में, हमारा प्रेम तथा वात्सल्य वास्तव में कृष्ण के निमित्त होता हैं। दुर्भाग्यवश अपने अज्ञान के कारण जिद्द में आकर हम भौतिक सम्बन्धों से जो कृष्ण से जुड़े हुए नहीं हैं सुख तथा प्रेम प्राप्त करने का प्रयास करते हैं और इस तरह जीवन में निरन्तर हताशा आ जाती है। इसका सरल उपाय है कृष्ण की शरण में जाएँ, कृष्ण से प्रेम करें, कृष्ण-भक्तों से प्रेम करें और सदा के लिए सुखी बनें।

हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ ।
कंसो मनस्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

हतम्—मारा गया; कुवलयापीडम्—कुवलयापीड हाथी को; दृष्ट्वा—देखकर; तौ—दोनों, कृष्ण तथा बलराम; अपि—तथा; दुर्जयौ—दुर्जय, न जीते जा सकने योग्य; कंसः—कंस ने; मनसि—अपने मन में; अपि—निस्सन्देह; तदा—तब; भृशम्—अत्यधिक; उद्विविजे—उद्विग्न हो उठा; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

जब कंस ने देखा कि कुवलयापीड मारा गया है और दोनों भाई अजेय हैं, तो हे राजन्, वह चिन्ता से उद्विग्न हो उठा।

तौ रेजतू रङ्गगतौ महाभुजौ
विचित्रवेषाभरणस्रगम्बरौ ।
यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ
मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तौ—दोनों; रेजतुः—चमक रहे थे; रङ्ग-गतौ—अखाड़े में उपस्थित; महा-भुजौ—विशाल भुजाओं वाले; विचित्र—नाना प्रकार का; वेष—वेशभूषा; आभरण—गहने; स्रक्—मालाएँ; अम्बरौ—तथा वस्त्र; यथा—जिस तरह; नटौ—दो अभिनेता; उत्तम—उत्तम; वेष—पोशाक; धारिणौ—धारण किये; मनः—मनों को; क्षिपन्तौ—प्रहार करते हुए; प्रभया—अपने तेज से; निरीक्षताम्—देखने वालों के।

नाना प्रकार के गहनों, मालाओं तथा वस्त्रों से सुसज्जित विशाल भुजाओं वाले वे दोनों (भगवान्) उत्तम वेश धारण किये अभिनेताओं की तरह अखाड़े में शोभायमान हो रहे थे। निस्सन्देह उन्होंने अपने तेज से समस्त देखने वालों के मन को अभिभूत कर लिया।

निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना
मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप ।
प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणानना:
पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

निरीक्ष्य—देखकर; तौ—दोनों; उत्तम-पूरुषौ—परम पुरुषों को; जनाः—लोग; मञ्च—दर्शक-दीर्घाओं में; स्थिताः—बैठे हुए; नागर—नगरनिवासी; राष्ट्रकाः—बाहरी जिलों के लोग; नृप—हे राजन्; प्रहर्ष—अपने हर्ष के; वेग—वेग से; उत्कलित—विस्तीर्ण हुई, फैली हुई; ईक्षण—आँखें; आननाः—मुख; पपुः—पिया; न—नहीं; तृप्ताः—तृप्त; नयनैः—आँखों से; तत्—उनके; आननम्—मुखों को।

हे राजन्, जब नगरवासियों तथा पास पड़ोस के जिलों से आये लोगों ने दीर्घाओं में बैठे अपने अपने स्थानों से दोनों परम पुरुषों को देखा तो प्रसन्नता रूपी शक्ति से उनकी आँखें खुली की खुली रह गईं और उनके मुखमंडल खिल उठे। वे अतृप्त होकर उनके मुखों के दर्शन का पान

करते रहे।

पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ।
जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः ॥ २१ ॥
ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथाश्रुतम् ।
तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

पिबन्तः—पीते हुये; इव—मानो; चक्षुर्भ्याम्—आँखों से; लिहन्तः—चाटते हुए; इव—मानो; जिह्वया—अपनी अपनी जीभों से; जिघ्रन्तः—सूँघते हुए; इव—मानो; नासाभ्याम्—अपने नथुनों से; स्लिष्यन्तः—आलिंगन करते हुए; इव—मानो; बाहुभिः—अपनी बाहों से; ऊचुः—कहा; परस्परम्—एक-दूसरे से; ते—वे; वै—निस्सन्देह; यथा—जिस प्रकार; दृष्टम्—उन्होंने देखा था; यथा—जिस तरह; श्रुतम्—सुना था; तत्—उनके; रूप—सौन्दर्य; गुण—गुण; माधुर्य—माधुरी; प्रागल्भ्य—तथा बहादुरी; स्मारिताः—स्मरण कराया; इव—मानो।

ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो लोग अपनी आँखों से कृष्ण तथा बलराम का पान कर रहे हों, अपनी जीभों से उन्हें चाट रहे हों, अपने नथुनों से उन्हें ही सूँघ रहे हों तथा अपनी बाहों से उनका आलिंगन कर रहे हों। भगवान् के सौन्दर्य, चरित्र, माधुर्य तथा बहादुरी का स्मरण करके दर्शकगण देखे तथा सुने गये इन लक्षणों का वर्णन एक-दूसरे से करने लगे।

तात्पर्य : स्वाभाविक है कि जो लोग मल्ल-उत्सव देखने के लिए मथुरा में एकत्रित हुए थे उन्होंने नगर में कृष्ण तथा बलराम के कार्यकलापों की ताजी खबरें सुन रखी थीं—कि किस तरह उन दोनों ने यज्ञ-धनुष को तोड़ा था और किस तरह रक्षकों को हराकर कुवलयापीड हाथी का वध किया था। अब जबकि वे सभी कृष्ण तथा बलराम को अखाड़े में प्रवेश करते देख रहे थे तो उनकी महाती अपेक्षाओं की पुष्टि हो गई थी। कृष्ण समस्त सौन्दर्य, यश तथा ऐश्वर्य की साकार मूर्ति थे अत: अखाड़े में एकत्रित सारे लोगों ने उनके विषय में जो कुछ सुन रखा था और अब जो कुछ देख रहे थे उसका गुणगान करते हुए परम संतुष्ट हो रहे थे।

एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि ।
अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

एतौ—ये दोनों; भगवतः—भगवान्; साक्षात्—प्रत्यक्ष; हरेः—हरि का; नारायणस्य—नारायण का; हि—निश्चय ही; अवतीर्णौ—अवतरित हुए हैं; इह—इस जगत में; अंशेन—अंश रूप में; वसुदेवस्य—वसुदेव के; वेश्मनि—घर में।

[लोगों ने कहा] ये दोनों बालक निश्चय ही भगवान् नारायण के अंश हैं, जो इस जगत में

वसुदेव के घर में अवतरित हुए हैं।

एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम् ।
कालमेतं वसन्गूढो ववृधे नन्दवेश्मनि ॥ २४॥

शब्दार्थ

एषः—यह (कृष्ण); वै—निश्चय ही; किल—निस्सन्देह; देवक्याम्—देवकी के गर्भ से; जातः—उत्पन्न; नीतः—लाया गया; च—तथा; गोकुलम्—गोकुल में; कालम्—समय तक; एतम्—इतना; वसन्—रहते हुए; गूढः—छिपा हुआ; ववृधे—बड़ा हुआ; नन्द-वेश्मनि—नन्द महाराज के घर में।

उन्होंने (कृष्ण ने) माता देवकी से जन्म लिया और गोकुल ले जाये गए जहाँ वे इतने समय तक राजा नन्द के घर में छिपकर बढ़ते रहे।

पूतनानेन नीतान्तं चक्रवातश्च दानवः ।
अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः ॥ २५॥

शब्दार्थ

पूतना—पूतना राक्षसी; अनेन—इसके द्वारा; नीता—लाया गया; अन्तम्—प्राणान्त; चक्रवातः—बवंडर; च—तथा; दानवः—असुर; अर्जुनौ—यमलार्जुन वृक्ष; गुह्यकः—शंखचूड़; केशी—घोड़ा असुर; धेनुकः—धेनुक असुर; अन्ये—अन्य; च—तथा; तत्-विधाः—उन्हीं की तरह।

इन्होंने पूतना तथा चक्रवात असुर का प्राणान्त कर दिया, यमलार्जुन वृक्षों को गिरा दिया और शंखचूड़, केशी, धेनुक तथा ऐसे ही असुरों का वध कर दिया।

गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः ।
कालियो दमितः सर्प इन्द्रश्च विमदः कृतः ॥ २६॥
सप्ताहमेकहस्तेन धृतोऽद्रिप्रवरोऽमुना ।
वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

गावः—गौवें; स—सहित; पालाः—इनके पालक; एतेन—उसके द्वारा; दाव-अग्नेः—जंगल की आग से; परिमोचिताः—बचाये गये; कालियः—कालिय; दमितः—दमन किया गया; सर्पः—सर्प; इन्द्रः—इन्द्र; च—तथा; विमदः—गर्वरहित; कृतः—किया हुआ; सप्त-अहम्—सात दिनों तक; एक-हस्तेन—एक हाथ से; धृतः—धारण किये; अद्रि—पर्वत; प्रवरः—विख्यात; अमुना—इसके द्वारा; वर्ष—वर्षा; वात—हवा; अशनिभ्यः—तथा ओले से; च—भी; परित्रातम्—उद्धार किया; च—तथा; गोकुलम्—गोकुलवासियों को।

इन्होंने गौवों तथा ग्वालों को जंगल की आग से बचाया और कालिय सर्प का दमन किया। इन्होंने अपने एक हाथ में सर्वश्रेष्ठ पर्वत को एक सप्ताह तक धारण किये रखकर इन्द्र देव के मिथ्या गर्व को चूर किया और इस तरह वर्षा, हवा तथा ओलों से गोकुलवासियों की रक्षा की।

गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम् ।
पश्यन्त्यो विविधांस्तापांस्तरन्ति स्माश्रमं मुदा ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—युवा गोपियों ने; अस्य—इसके; नित्य—सदैव; मुदित—प्रसन्न; हसित—हँसी से पूर्ण; प्रेक्षणम्—चितवन को; मुखम्—मुख को; पश्यन्त्यः—देखती हुई; विविधान्—अनेक प्रकार के; तापान्—कष्ट; तरन्ति स्म—पार कर लिया; अश्रमम्—बिना थकान के; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक।

निरन्तर हँसीली चितवन से प्रसन्न तथा थकान से मुक्त इनके मुखमण्डल को निहार-निहार कर गोपियों ने समस्त प्रकार के कष्टों को पार कर लिया और परम सुख का अनुभव किया।

वदन्त्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः ।
श्रियं यशो महत्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

वदन्ति—कहते हैं; अनेन—इसके द्वारा; वंशः—कुल; अयम्—यह; यदोः—राजा यदु के; सु-बहु—अत्यधिक; विश्रुतः—प्रसिद्ध; श्रियम्—धन; यशः—यश; महत्वम्—शक्ति; च—तथा; लप्स्यते—प्राप्त करेगा; परिरक्षितः—सभी प्रकार से रक्षित।

कहा जाता है कि इनके संरक्षण में यदुकुल अत्यधिक विख्यात होगा और संपदा, यश तथा शक्ति अर्जित करेगा।

अयं चास्याग्रजः श्रीमान्रामः कमललोचनः ।
प्रलम्बो निहतो येन वत्सको ये बकादयः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

अयम्—यह; च—तथा; अस्य—इसका; अग्र-जः—बड़ा भाई; श्री-मन्—समस्त ऐश्वर्य से युक्त; रामः—बलराम; कमल-लोचनः—कमल जैसे नेत्रों वाला; प्रलम्बः—प्रलम्बासुर; निहतः—मारे गये; येन—जिसके द्वारा; वत्सकः—वत्सासुर; ये—जो; बक—बकासुर; आदयः—इत्यादि।

ये कमलनेत्रों वाले उनके ज्येष्ठ भाई भगवान् बलराम समस्त दिव्य ऐश्वर्यों के स्वामी हैं। इन्होंने प्रलम्ब, वत्सक, बक तथा अन्य असुरों का वध किया है।

तात्पर्य : वस्तुतः यहाँ पर उल्लिखित असुरों में से दो का वध श्रीकृष्ण ने किया था, बलराम ने नहीं। इसका कारण यह है कि जब आम जनता में कृष्ण के कार्यों की खबर फैलने लगी तो तथ्य अस्पष्ट होने लगे। ऐसी ही प्रवृत्ति आधुनिक समाचार-माध्यमों में देखी जा सकती है।

जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च ।
कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

जनेषु—लोगों में; एवम्—इस तरह; ब्रुवाणेषु—बातें करते; तूर्येषु—तुरहियों के; निनदत्सु—निनाद करती हुई; च—तथा; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम; समाभाष्य—सम्बोधित करके; चानूरः—चाणूर नामक पहलवान ने; वाक्यम्—शब्द; अब्रवीत्—कहे।

जिस समय लोग इस तरह बातें कर रहे थे और तुरहियाँ गूँजने लगीं थी तो पहलवान चाणूर ने कृष्ण तथा बलराम से ये शब्द कहे।

तात्पर्य : दर्शकों द्वारा कृष्ण की इतनी अधिक प्रशंसा चाणूर से सहन नहीं हुई अत: उसे दोनों भाइयों से कुछ कहना पड़ा।

हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीरसम्मतौ ।
नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाहूतौ दिदृक्षुणा ॥ ३२॥

शब्दार्थ

हे नन्द-सूनो—अरे नन्द के पुत्र; हे राम—हे राम; भवन्तौ—तुम दोनों को; वीर—वीरों से; सम्मतौ—आदरित; नियुद्ध—कुश्ती में; कुशलौ—दक्ष; श्रुत्वा—सुनकर; राज्ञा—राजा द्वारा; आहूतौ—बुलाये गये; दिदृक्षुणा—देखने का इच्छुक।

[चाणूर ने कहा]: हे नन्दपुत्र, हे राम, तुम दोनों ही साहसी पुरुषों द्वारा समादरित हो और दोनों ही कुश्ती लड़ने में दक्ष हो। तुम्हारे पराक्रम को सुनकर राजा ने स्वत: देखने के उद्देश्य से तुम दोनों को यहाँ बुलाया है।

प्रियं राज्ञः प्रकुर्वत्यः श्रेयो विन्दन्ति वै प्रजाः ।
मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ३३॥

शब्दार्थ

प्रियम्—प्रसन्नता; राज्ञः—राजा की; प्रकुर्वत्यः—सम्पन्न करते हुए; श्रेयः—सौभाग्य; विन्दन्ति—प्राप्त करते हैं; वै—निस्सन्देह; प्रजाः—लोग, जनता; मनसा—उनके मनों से; कर्मणा—उनके कर्मों से; वाचा—उनके शब्दों से; विपरीतम्—उल्टा; अतः—इसके; अन्यथा—अन्यथा।

जो प्रजा राजा को अपने विचारों, कर्मों तथा शब्दों से प्रसन्न रखने का प्रयास करती है उसे अवश्य ही सौभाग्य प्राप्त होता है किन्तु जो लोग ऐसा नहीं कर पाते उन्हें विपरीत भाग्य का सामना करना पड़ता है।

नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथास्फुटम् ।
वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयन्ति गाः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

नित्यम्—सदैव; प्रमुदिताः—अत्यन्त सुखी; गोपाः—ग्वाले; वत्सपालाः—बछड़े चराते; यथा-स्फुटम्—स्पष्टतः; वनेषु—जंगलों में; मल्ल-युद्धेन—कुश्ती से; क्रीडन्तः—खेलते हुए; चारयन्ति—चराते हैं; गाः—गौवें।

यह सर्वविदित है कि ग्वालों के बालक अपने बछड़ों को चराते हुए सदैव प्रमुदित रहते हैं और विविध जंगलों में अपने पशुओं को चराते हुए खेल खेल में कुश्ती लड़ते रहते हैं।

तात्पर्य : यहाँ चाणूर बतलाता है कि किस तरह दोनों भाई कुश्ती में दक्ष बने।

तस्माद्राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवाम हे ।
भूतानि नः प्रसीदन्ति सर्वभूतमयो नृपः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; राज्ञः—राजा की; प्रियम्—प्रसन्नता; यूयम्—तुम दोनों; वयम्—हम; च—भी; करवाम हे—करें; भूतानि—सारे जीव; नः—हमारे साथ; प्रसीदन्ति—प्रसन्न होंगे; सर्व-भूत—सारे जीवों से; मयः—युक्त; नृपः—राजा।

अतः जो राजा चाहता है हम वही करें। इससे हमारे साथ सारे लोग प्रसन्न होंगे, क्योंकि राजा सारे जीवों से समन्वित रूप होता है।

तन्निशम्याब्रवीत्कृष्णो देशकालोचितं वचः ।
नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनन्द्य च ॥ ३६॥

शब्दार्थ

तत्—वह; निशम्य—सुनकर; अब्रवीत्—बोले; कृष्णः—कृष्ण; देश—स्थान; काल—तथा समय के; उचितम्—उपयुक्त; वचः—शब्द; नियुद्धम्—कुश्ती; आत्मनः—अपना; अभीष्टम्—वाञ्छित; मन्यमानः—विचार करते हुए; अभिनन्द्य—स्वागत करते हुए; च—तथा।

यह सुनकर भगवान् कृष्ण ने, जो कि कुश्ती लड़ना चाहते थे और इस चुनौती का स्वागत कर रहे थे, समय तथा स्थान के अनुसार यह बात कही।

प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः ।
करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

प्रजाः—जनता; भोज-पतेः—भोजों के राजा के; अस्य—इस; वयम्—हम; च—भी; अपि—होते हुए; वने-चराः—जंगल में घूमते हुए; करवाम—हमें करना चाहिए; प्रियम्—उसकी प्रसन्नता; नित्यम्—सदैव; तत्—वह; नः—हमारे लिए; परम्—सर्वाधिक; अनुग्रहः—लाभ।

[भगवान् कृष्ण ने कहा]: यद्यपि हम वनवासी हैं किन्तु हम भी भोजराज की प्रजा हैं। हमें उनकी इच्छा पूरी करनी चाहिए, क्योंकि ऐसे व्यवहार से हमें अत्यधिक लाभ होगा।

बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम् ।
भवेन्नियुद्धं माधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

बालाः—बालक; वयम्—हम; तुल्य—समान; बलैः—बल वालों के साथ; क्रीडिष्यामः—खेलेंगे; यथा उचितम्—उपयुक्त ढंग से; भवेत्—होना चाहिए; नियुद्धम्—कुश्ती प्रतियोगिता; मा—नहीं; अधर्मः—अधर्म; स्पृशेत्—चाहिए; मल्ल-सभा—अखाड़े के; सदः—सदस्य।

हम तो निरे बालक ठहरें और हमें समान बल वालों के साथ खेलना चाहिए। इस कुश्ती प्रतियोगिता को उचित ढंग से चलना चाहिए जिससे सम्माननीय दर्शक वर्ग को किसी प्रकार से अधर्म का कलंक न लगे।

चाणूर उवाच
न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः ।
लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

चाणूरः उवाच—चाणूर ने कहा; न—नहीं; बालः—बालक; न—न तो; किशोरः—किशोर; त्वम्—तुम; बलः—बलराम; च—तथा; बलिनाम्—बलशालियों में; वरः—सर्वश्रेष्ठ; लीलया—खेल खेल में; इभः—हाथी; हतः—मारा गया; येन—जिसके द्वारा; सहस्र—एक हजार; द्विप—हाथियों के; सत्त्व—बल का; भृत्—वाहक।

चाणूर ने कहा : वास्तव में तुम न ही बलशालियों में सर्वश्रेष्ठ बलराम, न तो बालक हो, न ही किशोर हो। तुमने खेल खेल में एक हाथी को मारा है, जिसमें एक हजार अन्य हाथियों का बल था।

तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नानयोऽत्र वै ।
मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतएव; भवद्भ्याम्—तुम दोनों; बलिभिः—बलशालियों से; योद्धव्यम्—लड़ना चाहिए; न—नहीं है; अनयः—अनीति; अत्र—इसमें; वै—निश्चय ही; मयि—मुझमें; विक्रम—अपना पराक्रम; वार्ष्णेय—हे वृष्णि-वंशी; बलेन सह—बलराम के साथ; मुष्टिकः—मुष्टिक (लड़ेगा)।

अतः तुम दोनों को बलशाली पहलवानों से लड़ना चाहिए। इसमें निश्चय ही कुछ भी अनीति नहीं है। हे वृष्णि-वंशी, तुम अपना पराक्रम मुझ पर आजमा सकते हो और बलराम मुष्टिक के साथ लड़ सकता है।

इस तरह श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण द्वारा कुवलयापीड का वध'' नामक तैंतालिसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित

तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चवालीस

कंस वध

इस अध्याय में बतलाया गया है कि कृष्ण तथा बलराम ने किस तरह पहलवानों को मारा, कृष्ण ने किस तरह कंस को मारा और कैसे उसकी पत्नियों को ढाढ़स बँधाया और किस तरह दोनों भाई अपने माता-पिता से मिल सके।

कुश्ती लड़ने का निश्चय करके भगवान् कृष्ण चाणूर से भिड़ गये और भगवान् बलराम मुष्टिक से। वे बाँह से बाँह, सिर से सिर, घुटने से घुटना और छाती से छाती भिड़ा कर एक-दूसरे पर इतने कठोर प्रहार कर रहे थे कि ऐसा लगता था जैसे वे अपने शरीरों को भी क्षति पहुँचा रहे हों। अखाड़े में उपस्थित स्त्रियाँ इस भयंकर कुश्ती को देखकर राजा की तथा सारी सभा के सदस्यों की भर्त्सना यह कहकर करने लगीं, ''सम्माननीय दर्शकों को कभी भी ऐसी कुश्ती-प्रतियोगिता की अनुमति नहीं देनी चाहिए थी जिसमें वज्र जैसे देहधारी बड़े बड़े पहलवान ऐसे सुकुमार बालकों से जो युवावस्था में अभी पग धर रहे हों, लड़ने जा रहे हों। किसी भी बुद्धिमान मनुष्य को ऐसी किसी सभा में प्रवेश नहीं करना चाहिए जहाँ उसे अन्याय होता दिखाई दे।'' चूँकि वसुदेव तथा देवकी को कृष्ण तथा बलराम की शक्ति का पूरा-पूरा पता न था अत:जब उन्होंने स्त्रियों को इस तरह बातें करते सुना तो वे अत्यन्त दुखी हो उठे।

तब श्रीकृष्ण ने चाणूर की बाँहें पकड़कर कई बार घुमाकर जमीन पर पटक दिया जिससे वह मर गया। मुष्टिक का भी ऐसा ही अन्त हुआ—वह भगवान् बलराम की हथेली की जोरदार चोट खाकर रक्त वमन करता हुआ पृथ्वी पर गिरकर मर गया। तत्पश्चात् कूट, शल तथा तोशल नामक पहलवान आगे बढ़े किन्तु कृष्ण तथा बलराम ने मुक्कों तथा पाँवों से उन सबका वध कर दिया। जो पहलवान बचे रहे वे अपनी जान बचाकर भाग निकले।

कंस के अतिरिक्त वहाँ उपस्थित सबों ने कृष्ण तथा बलराम की जय-जयकार की। क्रुद्ध होकर कंस ने बज रहे बाजे को रोक दिया और आदेश दिया कि वसुदेव, नन्द, उग्रसेन तथा सारे ग्वालों को

कठोर दण्ड दिया जाय तथा कृष्ण तथा बलराम को सभा से खदेड़ दिया जाय। जब कृष्ण ने सुना कि कंस इस तरह बोल रहा है, तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और वे तुरन्त उच्च राजमंच पर कूद पड़े। उन्होंने कंस के बालों को पकड़ लिया और अखाड़े की फर्श पर पटक कर उसके ऊपर चढ़ गये। इस तरह कंस की मृत्यु हो गई। चूँकि कंस भयवश सदैव कृष्ण का स्मरण करता था अत: मृत्यु के बाद उसे सारूप्य मुक्ति प्राप्त हुई।

तब कंस के आठ भाइयों ने कृष्ण पर धावा बोल दिया किन्तु बलराम ने उन सबों को अपनी गदा से उसी तरह मार डाला जिस तरह सिंह निरीह पशुओं को मार डालता है। जब हर्षित देवों ने कृष्ण तथा बलराम पर फूलों की वर्षा की और उनके गुणों का कीर्तन करना शुरू किया, तो नगाड़ों की ध्वनि आकाश को गुँजा रही थी।

अपने पति के लिए शोक करती कंस-पत्नियाँ पछता रही थीं कि अन्य जीवों के प्रति हिंसा तथा समस्त ब्रह्माण्ड के सर्जक, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता कृष्ण के प्रति अनादर के कारण ही कंस को इस तरह मरना पड़ा। भगवान् ने इन विधवाओं को ढाढ़स बँधाया, कंस तथा उसके भाइयों का दाह-संस्कार कराया और तब अपने माता-पिता को बन्दी-गृह से मुक्त किया। कृष्ण ने उनके चरणों को नमस्कार किया किन्तु वे अब समझ गये कि कृष्ण भगवान् हैं अत: उन्होंने उनका आलिंगन नहीं किया।

श्रीशुक उवाच
एवं चर्चितसङ्कल्पो भगवान्मधुसूदनः ।
आससादाथ चणूरं मुष्टितकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; चर्चित—स्थिर करते हुए; सङ्कल्पः—अपना संकल्प; भगवान्—भगवान्; मधुसूदनः—कृष्ण ने; आससाद—मुठभेड़ की; अथ—तत्पश्चात्; चाणूरम्—चाणूर से; मुष्टिकम्—मुष्टिक से; रोहिणी-सुतः—रोहिणी के पुत्र, बलराम ने।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह सम्बोधित किये जाने पर कृष्ण ने इस चुनौती को स्वीकार करने का मन बना लिया। उन्होंने चाणूर को और भगवान् बलराम ने मुष्टिक को अपना प्रतिद्वन्द्वी चुना।

हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः ।

विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥ २॥

शब्दार्थ

हस्ताभ्याम्—हाथों से; हस्तयोः—हाथों द्वारा; बद्ध्वा—पकड़कर; पद्भ्याम्—पाँवों से; एव च—भी; पादयोः—अपने पैरों से; विचकर्षतुः—वे घसीटने लगे (कृष्ण चाणूर को तथा बलराम मुष्टिक को); अन्योन्यम्—एक-दूसरे को; प्रसह्य—बलपूर्वक; विजिगीषया—विजय की इच्छा से।

एक-दूसरे के हाथों को पकड़ कर और एक-दूसरे के पाँवों को फँसा कर ये प्रतिद्वन्द्वी विजय की अभिलाषा से बलपूर्वक संघर्ष करने लगे।

अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी ।
शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३॥

शब्दार्थ

अरत्नी—मुट्ठियों के विरुद्ध; द्वे—दो; अरत्निभ्याम्—उनकी मुट्ठियों से; जानुभ्याम्—उनके घुटनों से; च एव—भी; जानुनी—विपक्षी के घुटनों के विरुद्ध; शिरः—सिर; शीर्ष्णा—सिर से; उरसा—छाती से; उरः—छाती; तौ—वे जोड़ियाँ; अन्योन्यम्—एक-दूसरे पर; अभिजघ्नतुः—प्रहार करने लगीं।

वे एक-दूसरे से मुट्ठियों से मुट्ठियाँ, घुटनों से घुटनें, सिर से सिर तथा छाती से छाती भिड़ा कर प्रहार करने लगे।

तात्पर्य : इस श्लोक में आया हुआ *अरत्नी* शब्द कुहनी तथा मुट्ठी दोनों का सूचक हो सकता है। इस तरह शायद कुहनियों से भी प्रहार किया गया जैसाकि आज विविध सैन्य-कलाओं में देखा जाता है।

परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनैः ।
उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यं प्रत्यरुन्धताम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

परिभ्रामण—एक-दूसरे के चारों ओर घूमते हुए; विक्षेप—धक्का देते; परिरम्भ—कुचलते; अवपातनैः—तथा नीचे गिराते हुए; उत्सर्पण—छोड़कर फिर दौड़ना; अपसर्पणैः—पीछे जाकर; च—तथा; अन्योन्यम्—एक-दूसरे को; प्रत्यरुन्धताम्—प्रतिरोध या बचाव करने लगे।

प्रत्येक कुश्ती लड़ने वाला अपने विपक्षी को खींचकर चक्कर लगवाता, धक्के देकर उसे नीचे गिरा देता (पटक देता) और उसके आगे तथा पीछे दौड़ता।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि *परिरम्भ* शब्द सूचित करता है प्रतिपक्षी को बाहुओं के बीच में पकड़कर मसल देना।

उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि ।
परस्परं जिगीषन्तावपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

उत्थापनैः—ऊपर उठा लेने से; उन्नयनैः—कंधे पर उठाने से; चालनैः—आगे धकेलने से; स्थापनैः—एक स्थान पर अटका देने से; अपि—भी; परस्परम्—एक-दूसरे को; जिगीषन्तौ—विजय चाहते हुए; अपचक्रतुः—हानि पहुँचाया; आत्मनः—अपने आप तक को।

एक-दूसरे को बलपूर्वक उठाकर, ले जाकर, धकेलकर तथा पकड़कर, कुश्ती लड़ने वाले विजय की महती आकांक्षा से अपने शरीरों को भी चोट पहुँचा बैठते।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि यद्यपि कृष्ण तथा बलराम ने निश्चय ही अपने शरीरों को चोट नहीं आने दी किन्तु चाणूर, मुष्टिक तथा अन्य संसारी लोगों को उन्हें चोट लगती दिख रही थी। दूसरे शब्दों में, दोनों ही भाई कुश्ती की लीला में मग्न थे।

तद्बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः ।
ऊचुः परस्परं राजन्सानुकम्पा वरूथशः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; बल-अबल—बली तथा निर्बल; वत्—के बीच; युद्धम्—लड़ाई; समेताः—एकत्र; सर्व—सभी; योषितः—स्त्रियों ने; ऊचुः—कहा; परस्परम्—एक-दूसरे से; राजन्—हे राजन् (परीक्षित); स-अनुकम्पाः—दया का अनुभव करती; वरूथशः—झुंड की झुंड।

हे राजन्, वहाँ पर उपस्थित सारी स्त्रियों ने बलवान् तथा निर्बल के बीच होने वाली इस अनुचित लड़ाई पर विचार करते हुए दया के कारण अत्यधिक चिन्ता का अनुभव किया। वे अखाड़े के चारों ओर झुंड की झुंड एकत्र हो गईं और परस्पर इस तरह बातें करने लगीं।

महानयं बताधर्म एषां राजसभासदाम् ।
ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छन्ति पश्यतः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

महान्—महान; अयम्—यह; बत—हाय; अधर्मः—अधर्म का कार्य; एषाम्—इनके लिए; राज-सभा—राजा की सभा में; सदाम्—उपस्थित लोग; ये—जो; बल-अबल-वत्—बली तथा निर्बल के बीच; युद्धम्—युद्ध; राज्ञः—जबकि राजा; अन्विच्छन्ति—वे भी चाहते हैं; पश्यतः—देख रहा है।

[स्त्रियों ने कहा] हाय! इस राजसभा के सदस्य यह कितना बड़ा अधर्म कर रहे हैं! जिस तरह राजा बलवान् तथा निर्बल के मध्य इस युद्ध को देख रहा है, वे भी उसी तरह इसे देखना चाहते हैं।

तात्पर्य : स्त्रियाँ जो भाव व्यक्त कर रही हैं वह यह है कि यदि राजा किसी कारणवश ऐसी

अन्यायपूर्ण प्रतियोगिता को देखना चाहता था, परंतु इस सभा के सम्मानित सदस्य उसे क्यों देखना चाह रहे हैं? ये भाव स्वाभाविक हैं। आज भी किसी सार्वजनिक स्थान में जब हम किसी हृष्ट-पुष्ट, लम्बे-चौड़े व्यक्ति को किसी दुर्बल छोटे-से व्यक्ति से लड़ते देखते हैं, तो वितृष्णा उत्पन्न होती है। विशेष रूप से दयालु स्त्रियाँ ऐसी अनीतिपूर्ण हिंसा से तिलमिला उठती हैं।

क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ मल्लौ शैलेन्द्रसन्निभौ ।
क्व चातिसुकुमाराङ्गौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

क्व—कहाँ तो; वज्र—वज्र के; सार—बल से; सर्व—सभी; अङ्गौ—अंग वाले; मल्लौ—कुश्ती लड़ने वाले दोनों; शैल—पर्वत; इन्द्र—प्रधान की तरह; सन्निभौ—जिनके स्वरूप; क्व—कहाँ; च—तथा; अति—अत्यन्त; सु-कुमार—कोमल; अङ्गौ—अंग वाले; किशोरौ—दोनों किशोर; न आप्त—अभी भी प्राप्त नहीं किया; यौवनौ—युवावस्था।

कहाँ ये वज्र जैसे पुष्ट अंगों वाले तथा शक्तिशाली पर्वतों जैसे शरीर वाले दोनों पेशेवर पहलवान और कहाँ ये सुकुमार अंगों वाले किशोर अल्प-वयस्क बालक?

धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् ।
यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

धर्म—धर्म का; व्यतिक्रमः—उल्लंघन; हि—निस्सन्देह; अस्य—इस; समाजस्य—समाज का; ध्रुवम्—निश्चित रूप से; भवेत्—होगा; यत्र—जिसमें; अधर्मः—अधर्म; समुत्तिष्ठेत्—पूरी तरह उदित हुआ है; न स्थेयम्—नहीं रहना चाहिए; तत्र—वहाँ; कर्हिचित्—क्षण-भर भी।

इस सभा में धर्म का निश्चय ही अति-क्रमण हो चुका है। जहाँ अधर्म पल रहा हो उस स्थान में एक पल भी नहीं रुकना चाहिए।

न सभां प्रविशेत्प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् ।
अब्रुवन्विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥ १० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; सभाम्—सभा में; प्रविशेत्—प्रवेश करे; प्राज्ञः—चतुर व्यक्ति; सभ्य—सभा के सदस्यों की; दोषान्—पापपूर्ण त्रुटियों को; अनुस्मरन्—मन में लाते हुए; अब्रुवन्—न बोलते हुए; विब्रुवन्—गलत बोलते हुए; अज्ञः—अज्ञानी (या बनने वाला); नरः—मनुष्य; किल्बिषम्—पाप; अश्नुते—करता है।

बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि यदि वह जान ले कि किसी सभा के सभासद अनुचित कार्य कर रहे हैं, तो वह उस सभा में प्रवेश न करे। और यदि ऐसी सभा में प्रवेश कर लेने पर वह सत्यभाषण करने से चूक जाता है, या मिथ्या भाषण करता है या अज्ञानता की दुहाई देता है, तो

वह निश्चित ही पाप का भागी बनता है।

वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजम् ।
वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवाम्बुभिः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

वल्गतः—कूदते हुए; शत्रुम्—अपने शत्रु को; अभितः—चारों ओर; कृष्णस्य—कृष्ण का; वदन—मुख; अम्बुजम्—कमलवत्; वीक्ष्यताम्—जरा देखो तो; श्रम—थकान के; वारि—जल से; उप्तम्—आच्छादित; पद्म—कमल के फूल के; कोशम्—दलपुंज; इव—सदृश; अम्बुभिः—जल की बूँदों से।

अपने शत्रु के चारों ओर उछलते-कूदते कृष्ण के कमलमुख को तो जरा देखो! भीषण लड़ाई लड़ने से आये हुए पसीने की बूँदों से ढका यह मुख ओस से आच्छादित कमल जैसा लग रहा है।

किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम् ।
मुष्टिकं प्रति सामर्षं हाससंरम्भशोभितम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्यों; न पश्यत—नहीं देखती; रामस्य—बलराम के; मुखम्—मुख को; आताम्र—ताँबे जैसी; लोचनम्—आँखों वाले; मुष्टिकम्—मुष्टिक के; प्रति—प्रति; स-अमर्षम्—क्रोध से युक्त; हास—अपनी हँसी; संरम्भ—तथा अपनी तल्लीनता से; शोभितम्—शोभा पा रहे।

क्या तुम भगवान् बलराम के मुख को नहीं देख रही हो जो मुष्टिक के प्रति उनके क्रोध के कारण ताँबे जैसी लाल लाल आँखों से युक्त है और जिसकी शोभा उनकी हँसी तथा युद्ध में उनकी तल्लीनता के कारण बढ़ी हुई है?

पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिङ्ग-
गूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ।
गाः पालयन्सहबलः क्वणयंश्च वेणुं
विक्रीदयाञ्चति गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

पुण्याः—पवित्र; बत—निस्सन्देह; व्रज-भुवः—व्रज-भूमि के विविध भाग; यत्—जिसमें; अयम्—यह; नृ—मनुष्य के; लिङ्ग—गुणों से; गूढः—छिपा; पुराण-पुरुषः—आदि-भगवान्; वन—फूलों तथा वनस्पतियों से बनी; चित्र—अद्भुत प्रकार की; माल्यः—मालाएँ; गाः—गौवें; पालयन्—चराते हुए; सह—साथ में; बलः—बलराम; क्वणयन्—बजाते; च—तथा; वेणुम्—अपनी वंशी; विक्रीडया—विविध लीलाओं से; अञ्चति—इधर-उधर घूमता है; गिरित्र—शिवजी; रमा—लक्ष्मीजी द्वारा; अर्चित—पूजित; अङ्घ्रिः—चरण।

व्रज के भूमि-खण्ड कितने पवित्र हैं जहाँ आदि-भगवान् मनुष्य के वेश में विचरण करते

हुए अनेक लीलाएँ करते हैं। जो नाना प्रकार की वनमालाओं से अद्भुत ढंग से विभूषित हैं एवं जिनके चरण शिवजी तथा देवी रमा द्वारा पूजित हैं, वे बलराम के साथ गौवें चराते हुए अपनी वंशी बजाते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में दर्शकों में से भक्त महिलाएँ मथुरा तथा वृन्दावन के अन्तर को इंगित कर रही हैं। वे यह बताना चाह रही हैं कि वृन्दावन में कृष्ण अपनी सखियों तथा मित्रों के साथ केवल आनन्द लूटते हैं जबकि यहाँ मथुरा में उन्हें पेशेवर पहलवानों के साथ भिड़ाकर सताया जा रहा है। इस तरह ये स्त्रियाँ मथुरा नगरी की भर्त्सना कर रही हैं क्योंकि अनैतिक कुश्ती-प्रतियोगिता में कृष्ण को देखकर उन्हें पीड़ा हो रही है। निस्सन्देह मथुरा भी भगवान् के नित्य धामों में से एक है किन्तु इस सभा में स्त्रियाँ अपना प्रेम आलोचनात्मक मनोभावों में अभिव्यक्त कर रही हैं।

गोप्यस्तपः किमचरन्यदमुष्य रूपं
लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ।
दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुराप-
मेकान्तधाम यशसः श्रीय ऐश्वरस्य ॥ १४॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियों ने; तपः—तपस्या; किम्—कौन-सी; अचरन्—सम्पन्न की; यत्—जिससे; अमुष्य—ऐसे (कृष्ण) के; रूपम्—स्वरूप को; लावण्य-सारम्—सुन्दरता के सार; असम-ऊर्ध्वम्—जिसकी समता न की जा सके या जिसको पछाड़ा न जा सके; अनन्य-सिद्धम्—किसी अन्य आभूषण से पूरा न होने वाला (आत्म-सिद्ध); दृग्भिः—आँखों से; पिबन्ति—पीती हैं; अनुसव-अभिनवम्—निरन्तर नवीन; दुरापम्—प्राप्त करना कठिन; एकान्त-धाम—एकमात्र धाम; यशसः—यश का; श्रियः—सौन्दर्य का; ऐश्वरस्य—ऐश्वर्य का।.

आखिर गोपियों ने कौन-सी तपस्याएँ की होंगी? वे निरन्तर अपनी आँखों से कृष्ण के उस रूप का अमृत-पान करती हैं, जो लावण्य का सार है और जिसकी न तो बराबरी हो सकती है न ही जिससे बढ़कर और कुछ है। वही लावण्य सौन्दर्य, यश तथा ऐश्वर्य का एकमात्र धाम है। यह स्वयंसिद्ध, नित्य नवीन तथा अत्यन्त दुर्लभ है।

तात्पर्य : इस श्लोक के शब्दार्थ तथा भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत *श्रीचैतन्य-चरितामृत* (आदि ४.१५६) से लिये गये हैं।

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।

गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

याः—जो (गोपियाँ); दोहने—दुहते समय; अवहनने—कूटते; मथन—मथते हुए; उपलेप—लेप करते; प्रेङ्ख—झूलों पर; इङ्खन—झूलते; अर्भ-रुदित—रोते शिशुओं (की देखभाल करते); उक्षण—छिड़कते; मार्जन—धोते हुए; आदौ—इत्यादि; गायन्ति—गाती हैं; च—तथा; एनम्—उससे; अनुरक्त—अत्यधिक अनुरक्त; धियः—मन; अश्रु—अश्रु सहित; कण्ठ्यः—गले; धन्याः—भाग्यशाली; व्रज-स्त्रियः—व्रज की स्त्रियाँ; उरुक्रम—कृष्ण की; चित्त—चेतना से; यानाः—इच्छित की प्राप्ति।

व्रज की स्त्रियाँ परम भाग्यशाली हैं क्योंकि कृष्ण के प्रति पूर्णतया अनुरक्त चित्तों से तथा अश्रुओं से सदैव अवरुद्ध कण्ठों से वे गौवें दुहते, अनाज कूटते, मक्खन मथते, ईंधन के लिए गोबर एकत्र करते, झूलों पर झूलते, अपने रोते बालकों की देखरेख करते, फर्श पर जल छिड़कते, अपने घरों को बुहारते इत्यादि के समय निरन्तर उनके गुणों का गान करती हैं। अपनी उच्च कृष्ण-चेतना के कारण वे समस्त वाँछित वस्तुएँ स्वतः प्राप्त कर लेती हैं।

प्रातर्व्रजाद्व्रजत आविशतश्च सायं
गोभिः समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम् ।
निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः
पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

प्रातः—प्रातःकाल; व्रजात्—व्रज से; व्रजतः—जाने वाले का; आविशतः—प्रवेश करते; च—तथा; सायम्—संध्या-समय; गोभिः समम्—गौवों के साथ; क्वणयतः—बजाते हुए; अस्य—इसकी; निशम्य—सुनकर; वेणुम्—बाँसुरी को; निर्गम्य—बाहर निकलकर; तूर्णम्—तेजी से; अबलाः—स्त्रियाँ; पथि—मार्ग पर; भूरि—अत्यन्त; पुण्याः—पवित्र; पश्यन्ति—देखती हैं; स—सहित; स्मित—हँसते हुए; मुखम्—मुख को; स-दय—दयामय; अवलोकम्—चितवनों से।

प्रातःकाल कृष्ण को अपनी गौवों के साथ व्रज से बाहर जाते या संध्या-समय उनके साथ लौटते हुए और अपनी बाँसुरी को बजाते हुए जब गोपियाँ सुनती हैं, तो उन्हें देखने के लिए वे अपने अपने घरों से तुरन्त बाहर निकल आती हैं। मार्ग पर चलते समय, उन पर दयापूर्ण दृष्टि डालते हुए उनके हँसी से पूर्ण मुख को देखने में सक्षम होने के लिए, उन सबों ने अवश्य ही अनेक पुण्य-कर्म किये होंगे।

एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः ।
शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान्भरतर्षभ ॥ १७॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; प्रभाषमाणासु—बोलती हुई; स्त्रीषु—स्त्रियों के; योग-ईश्वरः—समस्त योग-शक्ति के स्वामी; हरिः—कृष्ण ने; शत्रुम्—अपने शत्रु को; हन्तुम्—मारने के लिए; मनः चक्रे—अपना मन बनाया; भगवान्—भगवान्; भरत-ऋषभ—हे भरत-श्रेष्ठ।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा] हे भरत-श्रेष्ठ, जब स्त्रियाँ इस तरह बोल रही थीं तो समस्त योग-शक्ति के स्वामी भगवान् कृष्ण ने अपने शत्रु को मार डालने का निश्चय कर लिया।

सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ ।
पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ॥ १८॥

शब्दार्थ

स-भयाः—भयभीत; स्त्री—स्त्रियों के; गिरः—शब्द; श्रुत्वा—सुनकर; पुत्र—अपने पुत्रों के; स्नेह—स्नेह से; शुच—शोक से; आतुरौ—विह्वल; पितरौ—उनके माता-पिता (देवकी तथा वसुदेव); अन्वतप्येताम्—सन्ताप का अनुभव करते; पुत्रयोः—अपने दोनों पुत्रों के; अबुधौ—न जानते हुए; बलम्—बल को।

दोनों भगवानों पर स्नेह होने के कारण उनके माता-पिता (देवकी तथा वसुदेव) ने जब स्त्रियों के भयपूर्ण वचन सुने तो वे शोक से विह्वल हो उठे। वे अपने पुत्रों के बल को न जानने के कारण सन्तप्त हो गए।

तात्पर्य : इस परिस्थिति में स्वाभाविक था, कृष्ण के माता-पिता द्वारा यह सोच रहे थे कि "हमने अपने पुत्रों को घर में क्यों नहीं रखा? हमने उन्हें इस भ्रष्ट प्रदर्शन में भाग लेने की अनुमति क्यों दी" पश्चाताप करने लगे।

तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ ।
युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ ॥ १९॥

शब्दार्थ

तैः तैः—इन सबों से; नियुद्ध—कुश्ती लड़ने की; विधिभिः—विधियों से; विविधैः—नाना प्रकार की; अच्युत-इतरौ—अच्युत तथा उसके प्रतिद्वन्द्वी ने; युयुधाते—युद्ध किया; यथा—जिस तरह; अन्योन्यम्—एक-दूसरे से; तथा एव—उसी तरह; बल-मुष्टिकौ—बलराम तथा मुष्टिक।

भगवान् बलराम तथा मुष्टिक ने मल्लयुद्ध की अनेक शैलियों का कुशलतापूर्वक प्रदर्शन करते हुए एक-दूसरे से उसी तरह युद्ध किया जिस तरह कृष्ण तथा उनके प्रतिपक्षी ने किया।

भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनीष्पेषनिष्ठुरैः ।
चाणूरो भज्यमानाङ्गो मुहुर्ग्लानिमवाप ह ॥ २०॥

शब्दार्थ

भगवत्—भगवान् का; गात्र—अंगों द्वारा; निष्पातैः—वारों से; वज्र—वज्र के; निष्पेष—धमाके की तरह; निष्ठुरैः—कठोर; चाणूरः—चाणूर; भज्यमान—भंग किया गया; अङ्गः—सारा शरीर; मुहुः—अधिकाधिक; ग्लानिम्—पीड़ा तथा थकान; अवाप ह—अनुभव किया।

भगवान् के अंगों से होने वाले कठोर वार चाणूर पर वज्रपात सदृश लग रहे थे जिससे उसके शरीर का अंग-प्रत्यंग चूर हो रहे थे और उसे अधिकाधिक पीड़ा तथा थकान उत्पन्न हो रही थी।

तात्पर्य : चाणूर की कुहनियाँ, भुजाएँ, घुटने तथा अन्य भाग निर्बल होते जा रहे थे।

स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ ।
भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यबाधत ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, चाणूर; श्येन—बाज की; वेगः—चाल से; उत्पत्य—उसपर टूटते हुए; मुष्टी—मुट्ठी, मुक्का; कृत्य—बाँधकर; करौ—हाथ; उभौ—दोनों; भगवन्तम्—भगवान्; वासुदेवम्—कृष्ण की; क्रुद्धः—क्रोधित; वक्षसि—वक्षस्थल पर; अबाधत—प्रहार किया।

क्रुद्ध चाणूर ने बाज की गति से भगवान् वासुदेव पर आक्रमण किया और उनकी छाती पर अपनी दोनों मुट्ठियों (घूँसों) से प्रहार किया।

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि अपने को पराजित हुआ समझकर चाणूर क्रुद्ध हो उठा और भगवान् कृष्ण को हराने के लिए उसने अन्तिम प्रयास किया। उस असुर में अच्छे योद्धा का उत्साह तो था किन्तु उसके द्वारा यदि वह विजय की आशा कर रहा था, तो वह निश्चय ही ग़लत स्थान पर, ग़लत समय पर तथा ग़लत व्यक्ति से ऐसी आशा करता था॥

नाचलत्तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः ।
बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन्हरिः ॥ २२ ॥
भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीण जीवितम् ।
विस्रस्ताकल्पकेशस्रगिन्द्रध्वज इवापतत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

न अचलत्—(कृष्ण) टस से मस नहीं हुए; तत्-प्रहारेण—उसके प्रहार से; माला—मालाओं से; आहत—मारा गया; इव—सदृश; द्विपः—हाथी; बाह्वोः—दो भुजाओं द्वारा; निगृह्य—पकड़कर; चाणूरम्—चाणूर को; बहुशः—अनेक बार; भ्रामयन्—घुमाकर; हरिः—भगवान् कृष्ण ने; भू—पृथ्वी के; पृष्ठे—ऊपर; पोथयाम् आस—फेंक दिया; तरसा—बलपूर्वक; क्षीण—रहित; जीवितम्—अपना जीवन; विस्रस्त—बिखरे; आकल्प—वस्त्र; केश—बाल; स्रक्—तथा फूल की माला; इन्द्र-ध्वजः—ऊँचा लट्ठा; इव—मानो; अपतत्—वह गिर पड़ा।

जिस तरह फूल की माला से मारने से हाथी कुछ भी नहीं होता उसी तरह असुर के बलशाली वारों से विचलित न होते हुए भगवान् कृष्ण ने चाणूर की भुजाओं को पकड़कर कई बार चारों

ओर घुमाया और उसे बड़े वेग से पृथ्वी पर पटक दिया। उसके वस्त्र, केश तथा माला बिखर गये और वह पहलवान पृथ्वी पर गिरकर मर गया मानो कोई विशाल उत्सव-स्तम्भ गिर पड़ा हो।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने *इन्द्रध्वज* शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है : "एक विशेष उत्सव पर बंगाल में आदमी के रूप में एक ऊँचा स्तम्भ खड़ा करके लोग उसे झंडियों आदि से सजाते हैं। चाणूर उसी तरह गिरा जिस तरह यह स्तम्भ गिरा हो।"

तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै ।
बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥ २४॥
प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः ।
व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवाङ्घ्रिपः ॥ २५॥

शब्दार्थ

तथा—भी; एव—इसी तरह; मुष्टिकः—मुष्टिक; पूर्वम्—इसके पहले; स्व-मुष्ट्या—अपने ही घूँसे से; अभिहतेन—प्रहार किया गया; वै—निस्सन्देह; बलभद्रेण—बलराम द्वारा; बलिना—बलशाली; तलेन—हथेली से; अभिहतः—प्रहार किया गया; भृशम्—तेजी से; प्रवेपितः—काँपते हुए; सः—वह, मुष्टिक; रुधिरम्—रक्त; उद्वमन्—वमन करता; मुखतः—मुँह से; अर्दितः—व्यथित; व्यसुः—प्राणरहित; पपात—गिर पड़ा; उर्वी—भूमि की; उपस्थे—गोद में; वात—वायु द्वारा; आहतः—गिराया गया; इव—सदृश; अङ्घ्रिपः—वृक्ष।

इसी प्रकार मुष्टिक पर भगवान् बलभद्र ने अपने मुक्के से प्रहार किया और उसका वध कर दिया। बलशाली भगवान् बलभद्र के हाथ का करारा थप्पड़ खाकर वह असुर भारी पीड़ा से काँपने लगा और रक्त वमन करने लगा। तत्पश्चात् निष्प्राण होकर जमीन पर उसी तरह गिर पड़ा जिस तरह हवा के झोंके से कोई वृक्ष धराशायी होता है।

ततः कूटमनुप्राप्तं रामः प्रहरतां वरः ।
अवधील्लीलया राजन्सावज्ञं वाममुष्टिना ॥ २६॥

शब्दार्थ

ततः—तब; कूटम्—कूट नामक असुर मल्ल; अनुप्राप्तम्—वहाँ पर प्रकट हुआ; रामः—बलराम ने; प्रहरताम्—योद्धाओं में; वरः—श्रेष्ठ; अवधीत्—मार डाला; लीलया—खेल खेल में; राजन्—हे राजा, परीक्षित; स-अवज्ञम्—उपेक्षित होकर; वाम—बायीं; मुष्टिना—मुट्ठी से।

इसके बाद कूट नामक पहलवान से योद्धाओं में श्रेष्ठ बलराम का सामना हुआ जिसे हे राजन्, उन्होंने अपनी बाईं मुट्ठी से खेल खेल में यों ही मार डाला।

तर्ह्येव हि शलः कृष्णप्रपदाहतशीर्षकः ।

द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः ॥ २७॥

शब्दार्थ

तर्हि एव—और तब; हि—निस्सन्देह; शलः—शल नामक मल्ल; कृष्ण—कृष्ण के; प्रपद—अँगूठे से; आहत—चोट खाकर; शीर्षकः—उसका सिर; द्विधा—दो टूक; विदीर्नः—फटा हुआ; तोशलक—तोशल; उभौ अपि—दोनों ही; निपेततुः—गिर पड़े।

तत्पश्चात् कृष्ण ने अपने पाँव के अँगूठों से शल पहलवान के सिर पर प्रहार करके उसे दो फाड़ कर दिया। भगवान् ने तोशल के साथ भी इसी तरह किया और वे दोनों मल्ल धराशायी हो गये।

चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते ।
शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥ २८॥

शब्दार्थ

चाणूरे मुष्टिके कूटे—चाणूर, मुष्टिक तथा कूट के; शले तोशलके—शल तथा तोशल के; हते—मारे जाने पर; शेषाः—बचे हुए; प्रदुद्रुवुः—भाग गये; मल्लाः—पहलवान; सर्वे—सभी; प्राण—अपने प्राण; परीप्सवः—बचाने की आशा से।

चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल तथा तोशल के मारे जाने के बाद बचे हुए पहलवान अपनी जान बचाकर भाग लिये।

गोपान्वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः ।
वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ रुतनूपुरौ ॥ २९॥

शब्दार्थ

गोपान्—ग्वालबाल; वयस्यान्—उनके वयस्क मित्रगण; आकृष्य—एकत्र करके; तैः—उनके साथ; संसृज्य—मिलकर; विजह्रतुः—खेला-कूदा; वाद्यमानेषु—बजाते हुए; तूर्येषु—तुरहियों में; वल्गन्तौ—दोनों नाचते हुए; रुत—प्रतिध्वनित करते हुए; नूपुरौ—अपने घुंघरू।

तब कृष्ण तथा बलराम ने अपने समवयस्क ग्वालबाल सखाओं को अपने पास बुलाया और उनके साथ दोनों भगवानों ने खूब नाच किया और खेला। उनके घुंघरू वाद्य-यंत्रों की भान्ति ध्वनि करने लगे।

तात्पर्य : आजकल हम देखते हैं कि मुक्केबाजी-प्रतियोगिता में ज्योंही विजय की घोषणा की जाती है, विजयी मुक्केबाज के सभी मित्र तथा सम्बन्धी उसे बधाई देने के लिए उसके पास दौड़े आते हैं और प्रायः विजयी व्यक्ति परम हर्ष से नाचने लगता है। ठीक ऐसे ही कृष्ण तथा बलराम अपनी विजय मनाते हुए अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों के साथ मिलकर खूब नाचे।

जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ।
ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधु साध्विति ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

जनाः—लोगों ने; प्रजहृषुः—खुशी मनाई; सर्वे—सभी; कर्मणा—इस कार्य से; राम-कृष्णयोः—बलराम तथा कृष्ण के; ऋते—सिवाय, अतिरिक्त; कंसम्—कंस के; विप्र—ब्राह्मणों के; मुख्याः—सर्वश्रेष्ठ; साधवः—सन्तपुरुष; साधु साधु इति—बहुत अच्छा! बहुत अच्छा! (कहकर चिल्ला पड़े)।

कंस के अतिरिक्त सभी व्यक्तियों ने कृष्ण तथा बलराम द्वारा सम्पन्न इस अद्‌भुत कृत्य पर हर्ष प्रकट किया। पूज्य ब्राह्मणों तथा महान् सन्तपुरुषों ने "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा," कहा।

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि जब पूज्य ब्राह्मण तथा सन्तपुरुष "बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!" कह रहे थे तो ब्राह्मणों में अधम, कंस के पुरोहित, भारीमन से शोक मना रहे थे।

हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् ।
न्यवारयत्स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

हतेषु—मारे गये; मल्ल-वर्येषु—श्रेष्ठ पहलवान; विद्रुतेषु—भगे हुए; च—तथा; भोज-राट्—भोजराज, कंस ने; न्यवारयत्—रोका; स्व—अपना; तूर्याणि—तुरहियाँ; वाक्यम्—शब्द; च—तथा; इदम्—यह; उवाच ह—कहा।

जब भोजराज ने देखा कि उसके सर्वश्रेष्ठ पहलवान या तो मारे जा चुके हैं अथवा भाग गये हैं, तो उसने वाद्य-यंत्रों को बजाना रूकवा दिया जो मूलतः उसके मनोविनोद के लिए बजाये जा रहे थे और इस प्रकार के शब्द कहे।

निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् ।
धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

निःसारयत—निकाल दो; दुर्वृत्तौ—दुर्व्यवहार करने वाले; वसुदेव-आत्मजौ—वसुदेव के दोनों पुत्रों को; पुरात्—नगरी से; धनम्—धन; हरत—छीन लो; गोपानाम्—ग्वालों का; नन्दम्—नन्द महाराज को; बध्नीत—बाँध दो; दुर्मतिम्—मूर्ख, दुष्ट।

[कंस ने कहा]: वसुदेव के दोनों दुष्ट पुत्रों को नगरी से बाहर निकाल दो। ग्वालों की सम्पत्ति छीन लो और उस मूर्ख नन्द को बन्दी बना लो।

वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाश्वसत्तमः ।
उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

वसुदेवः—वसुदेव; तु—भी; दुर्मेधा—दुर्बुद्धि; हन्यताम्—मार डाला जाय; आशु—तुरन्त; असत्-तमः—अशुद्ध में निकृष्ट; उग्रसेनः—उग्रसेन; पिता—मेरा पिता; च अपि—भी; स—सहित; अनुगः—अपने अनुचरों; पर—शत्रु का; पक्ष-गः—पक्ष लेने वाला।

उस अत्यन्त दुष्ट मूर्ख वसुदेव को मार डालो! और मेरे पिता उग्रसेन को भी उसके अनुयायियों सहित मार डालो क्योंकि उन सब ने हमारे शत्रुओं का पक्ष लिया है।

एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः ।
लघिम्नोत्पत्य तरसा मञ्चमुत्तुङ्गमारुहत् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विकत्थमाने—बढ़-बढ़कर बातें कर रहे; वै—निस्सन्देह; कंसे—कंस पर; प्रकुपितः—अत्यन्त क्रुद्ध हुए; अव्ययः—अच्युत भगवान् ने; लघिम्ना—आसानी से; उत्पत्य—उछलकर; तरसा—तेजी से; मञ्चम्—राजमंच पर; उत्तुङ्गम्—ऊँचे; आरुहत्—चढ़ गये।

जब कंस इस तरह दम्भ से गरज रहा था, तो अच्युत भगवान् कृष्ण अत्यन्त क्रुद्ध होकर तेजी के साथ सरलता से उछलकर ऊँचे राजमंच पर जा पहुँचे।

तमाविशन्तमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् ।
मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी ॥ ३५॥

शब्दार्थ

तम्—उसे, कृष्ण को; आविशन्तम्—(निजी बैठक में) प्रवेश करते हुए; आलोक्य—देखकर; मृत्युम्—मृत्यु को; आत्मनः—अपनी; आसनात्—अपने आसन से; मनस्वी—प्रखर बुद्धिवाला; सहसा—तुरन्त; उत्थाय—उठकर; जगृहे—ले ली; सः—उसने; असि—अपनी तलवार; चर्मणी—तथा अपनी ढाल।

भगवान् कृष्ण को साक्षात् मृत्यु के समान आते देखकर प्रखर बुद्धिवाला कंस तुरन्त अपने आसन से उठ खड़ा हुआ और उसने अपनी तलवार तथा ढाल उठा ली।

तं खड्गपाणिं विचरन्तमाशु
श्येनं यथा दक्षिणसव्यमम्बरे ।
समग्रहीद्दुर्विषहोग्रतेजा
यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ॥ ३६॥

शब्दार्थ

तम्—उसे, कंस को; खड्ग—तलवार; पाणिम्—हाथ में लिए; विचरन्तम्—इधर-उधर घूमते; आशु—तेजी से; श्येनम्—बाज को; यथा—जिस तरह; दक्षिण-सव्यम्—दाएँ तथा बाएँ; अम्बरे—आकाश में; समग्रहीत्—पकड़ ले; दुर्विषह—दुस्सह; उग्र—तथा भयानक; तेजाः—जिनकी शक्ति; यथा—जिस तरह; उरगम्—साँप को; तार्क्ष्य-सुतः—तार्क्ष्य का पुत्र, गरुड़; प्रसह्य—बलपूर्वक।

हाथ में तलवार लिए कंस तेजी से एक ओर से दूसरी ओर भाग रहा था जिस तरह आकाश

में बाज हो। किन्तु दुस्सह भयानक शक्ति वाले भगवान् कृष्ण ने उस असुर को बलपूर्वक उसी तरह पकड़ लिया जिस तरह तार्क्ष्य-पुत्र (गरुड़) किसी साँप को पकड़ लेता है।

प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीतं
निपात्य रङ्गोपरि तुङ्गमञ्चात् ।
तस्योपरिष्टात्स्वयमब्जनाभः
पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

प्रगृह्य—पकड़कर; केशेषु—बालों से; चलत्—ठोकर मार कर; किरीटम्—मुकुट को; निपात्य—फेंककर; रङ्ग-उपरि—अखाड़े के ऊपर; तुङ्ग—ऊँचे; मञ्चात्—मंच से; तस्य—उसके; उपरिष्टात्—ऊपर से; स्वयम्—स्वयं; अब्ज-नाभः—कमल-नाभ भगवान् ने; पपात—फेंक दिया; विश्व—ब्रह्माण्ड-भर के; आश्रयः—आधार; आत्म-तन्त्रः—स्वतंत्र।

कंस के बालों को पकड़कर तथा उसके मुकुट को ठोकर मारते हुए कमल-नाभ भगवान् ने उसे ऊँचे मंच से अखाड़े के फर्श पर फेंक दिया। तत्पश्चात् समस्त ब्रह्माण्ड के आश्रय, स्वतंत्र भगवान् उस राजा के ऊपर कूद पड़े।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने ''भगवान् कृष्ण'' में कंस की मृत्यु का वर्णन इस प्रकार दिया है : ''कृष्ण ने तुरन्त अपना सीना तान लिया और बारम्बार उस पर प्रहार करने लगे। उनके घूँसे के प्रहारों से ही कंस के प्राण छूट गये।''

तं सम्परेतं विचकर्ष भूमौ
हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः ।
हा हेति शब्दः सुमहांस्तदाभू-
दुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र ॥ ३८॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; सम्परेतम्—मृत; विचकर्ष—घसीटा; भूमौ—पृथ्वी पर; हरिः—सिंह; यथा—जिस तरह; इभम्—हाथी को; जगतः—सारे लोगों के; विपश्यतः—देखते देखते; हा हा इति—''हाय हाय'' इस प्रकार; शब्दः—ध्वनि; सु-महान्—विशाल; तदा—तब; अभूत्—उठी; उदीरितः—बोला गया; सर्व-जनैः—सभी लोगों के द्वारा; नर-इन्द्र—हे मनुष्यों के शासक (राजा परीक्षित)।

जिस तरह सिंह मृत हाथी को घसीटता है उसी तरह भगवान् ने वहाँ पर उपस्थित सारे लोगों के समक्ष जमीन पर कंस के मृत शरीर को घसीटा। हे राजन्, अखाड़े के सारे लोग तुमुल स्वर में ''हाय हाय'' चिल्ला उठे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि दर्शकों में से अनेक लोगों ने सोचा कि उच्च मंच

से फेंके जाने से कंस केवल मूर्छित हुआ है। इसलिए भगवान् कृष्ण उसके शव को घसीटने लगे जिससे सारे लोग जान लें कि वह दुष्ट राजा मर चुका है। इस तरह *हा हा* सम्बोधन सूचित करता है कि लोग कितने चकित थे कि राजा सहसा मर गया है।

दर्शकों के आश्चर्य का उल्लेख विष्णु पुराण में भी मिलता है—

ततो हाहाकृतं सर्वमासीत् तद्रङ्गमण्डलम्।

अवज्ञया हतं दृष्ट्वा कृष्णेन मथुरेश्वरम्॥

"जब लोगों ने देखा कि कृष्ण द्वारा मथुरा-पति अवज्ञापूर्वक मार डाला गया है, तो सारा अखाड़ा आश्चर्य की चीत्कार से भर गया।"

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं
पिबन्नदन्वा विचरन्स्वपन्श्वसन् ।
ददर्श चक्रायुधमग्रतो यत-
स्तदेव रूपं दुरवापमाप ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने, कंस ने; नित्यदा—निरन्तर; उद्विग्न—चिन्तित; धिया—मन से; तम्—उस; ईश्वरम्—ईश्वर को; पिबन्—पानी पीते; अदन्—भोजन करते; वा—अथवा; विचरन्—घूमते हुए; स्वपन्—सोते हुए; श्वसन्—साँस लेते; ददर्श—देखा; चक्र—चक्र; आयुधम्—अपने हाथ में; अग्रतः—अपने समक्ष; यतः—क्योंकि; तत्—वह; एव—वही; रूपम्—साकार रूप को; दुरवापम्—दुर्लभ; आप—प्राप्त किया।

कंस इस विचार से सदैव विचलित रहता था कि भगवान् द्वारा उसका वध होने वाला है। अतः वह खाते, पीते, चलते, सोते, यहाँ तक कि साँस लेते समय भी भगवान् को अपने समक्ष हाथ में चक्र धारण किये देखा करता था। इस तरह कंस ने भगवान् जैसा रूप (सारूप्य) प्राप्त करने का दुर्लभ वर प्राप्त किया।

तात्पर्य : यद्यपि कंस द्वारा भगवान् का निरन्तर ध्यान भय से उत्पन्न था किन्तु इससे उसके सारे अपराध निर्मूल हो चुके थे अतः भगवान् के हाथों से मृत्यु होने के कारण उस असुर को मोक्ष प्राप्त हुआ।

तस्यानुजा भ्रातरोऽष्टौ कङ्कन्यग्रोधकादयः ।
अभ्यधावन्नतिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके, कंस के; अनुजाः—छोटे; भ्रातरः—भाई; अष्टौ—आठ; कङ्क-न्यग्रोधक-आदयः—कंक, न्यग्रोधक इत्यादि; अभ्यधावन्—आक्रमण करने दौड़े; अति-क्रुद्धाः—अत्यन्त क्रुद्ध होकर; भ्रातुः—अपने भाई के प्रति; निर्वेश—उऋण; कारिणः—होने के लिए।

तत्पश्चात् कंक, न्यग्रोधक इत्यादि कंस के आठ भाइयों ने क्रोध में आकर अपने भाई का बदला लेने के लिए उन दोनों भगवानों पर आक्रमण कर दिया।

तथातिरभसांस्तांस्तु संयत्तान्रोहिणीसुतः ।
अहन्परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

तथा—इस तरह से; अति-रभसान्—तेजी से दौड़ते; तान्—उन्हें; तु—तथा; संयत्तान्—प्रहार करने के लिए उद्यत; रोहिणी-सुतः—रोहिणी-पुत्र बलराम ने; अहन्—मार गिराया; परिघम्—अपनी गदा; उद्यम्य—भाँज कर; पशून्—पशुओं को; इव—सदृश; मृग-अधिपः—पशुओं का राजा, सिंह।

ज्योंही आक्रमण करने के लिए तैयार होकर वे सभी उन दोनों भगवानों की ओर तेजी से दौड़े तो रोहिणी-पुत्र ने अपनी गदा से उन सबों को उसी तरह मार डाला जिस तरह सिंह अन्य पशुओं को आसानी से मार डालता है।

नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः ।
पुष्पैः किरन्तस्तं प्रीताः शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

नेदुः—बज उठीं; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; व्योम्नि—आकाश में; ब्रह्म-ईश-आद्याः—ब्रह्मा, शिव इत्यादि देवतागण; विभूतयः—अपने अंश; पुष्पैः—फूलों के द्वारा; किरन्तः—बिखेरते हुए; तम्—उस पर; प्रीताः—प्रसन्न; शशंसुः—उनकी प्रशंसा में गाना गाया; ननृतुः—नाचीं; स्त्रियः—उनकी पत्नियाँ।

जिस समय ब्रह्मा, शिव तथा भगवान् के अंश-रूप अन्य देवताओं ने हर्षित होकर उन पर फूलों की वर्षा की उस समय आकाश में दुन्दुभियाँ बज उठीं। वे सभी उनका यश-गान करने लगे और उनकी पत्नियाँ नाचने लगीं।

तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः ।
तत्राभीयुर्विनिघ्नन्त्यः शीर्षाण्यश्रुविलोचनाः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उनकी (कंस तथा उसके भाइयों की); स्त्रियः—पत्नियाँ; महाराज—हे राजन् (परीक्षित); सुहृत्—शुभचिन्तकों (पत्नियों) के; मरण—मृत्यु के कारण; दुःखिताः—दुखित; तत्र—उस स्थान पर; अभीयुः—पहुँचे; विनिघ्नन्त्यः—पीटते हुए; शीर्षाणि—अपने सिर; अश्रु—आँसू से युक्त; विलोचनाः—उनकी आँखें।

हे राजन्, कंस तथा उसके भाइयों की पत्नियाँ अपने अपने शुभचिन्तक पतियों की मृत्यु से

शोकाकुल होकर अपने सिर पीटती हुई तथा आँखों में आँसू भरे वहाँ पर आईं।

शयानान्वीरशयायां पतीनालिङ्ग्य शोचतीः ।
विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजन्त्यो मुहुः शुचः ॥ ४४॥

शब्दार्थ

शयानान्—लेटे हुए; वीर—वीर की; शयायाम्—शय्या पर (भूमि पर); पतीन्—अपने अपने पतियों को; आलिङ्ग्य—चूमकर; शोचतीः—शोक का अनुभव करतीं; विलेपुः—विलाप करने लगीं; सु-स्वरम्—जोर-जोर से; नार्यः—स्त्रियाँ; विसृजन्त्यः—गिराती हुई; मुहुः—बारम्बार; शुचः—आँसू।

वीरों की मृत्यु शय्या पर लेटे अपने पतियों का आलिंगन करते हुए शोकमग्न स्त्रियाँ आँखों से निरन्तर अश्रु गिराती हुईं जोर-जोर से विलाप करने लगीं।

हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथवत्सल ।
त्वया हतेन निहता वयं ते सगृहप्रजाः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

ह—हाय; नाथ—हे स्वामी; प्रिय—हे प्यारे; धर्म-ज्ञ—धर्म के ज्ञाता; करुण—हे दयावान्; अनाथ—बिना रक्षकों वाले के; वत्सल—हे दयालु; त्वया—तुम्हारे द्वारा; हतेन—मारे जाकर; निहताः—मारी जाती हैं; वयम्—हम; ते—तुम्हारे; स—सहित; गृह—घर; प्रजाः—तथा सन्तानों।

[स्त्रियाँ विलाप करने लगीं]: हाय! हे नाथ, हे प्रिय, हे धर्मज्ञ, हे आश्रयहीनों के दयालु रक्षक, तुम्हारा वध हो जाने से हम भी तुम्हारे घर तथा सन्तानों समेत मारी जा चुकी हैं।

त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ ।
न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमङ्गला ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

त्वया—तुमसे; विरहिता—बिछुड़कर; पत्या—स्वामी से; पुरी—नगरी; इयम्—यह; पुरुष—पुरुषों में; ऋषभ—श्रेष्ठ वीर; न शोभते—शोभा नहीं देता; वयम्—हमको; इव—जिस तरह; निवृत्त—समाप्त; उत्सव—उत्सव; मङ्गला—तथा सौभाग्य।

हे पुरुषों में श्रेष्ठ वीर, यह नगरी अपने स्वामी तुमसे बिछुड़कर अपना सौन्दर्य उसी प्रकार खो चुकी है, जिस तरह हम खो चुकी हैं और इसके भीतर के सारे हर्षोल्लास तथा सौभाग्य का अन्त हो चुका है।

अनागसां त्वं भूतानां कृतवान्द्रोहमुल्बणम् ।
तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक्को लभेत शम् ॥ ४७॥

शब्दार्थ

अनागसाम्—निष्पाप, निरपराध; त्वम्—तुमने; भूतानाम्—प्राणियों के प्रति; कृतवान्—किया था; द्रोहम्—हिंसा; उल्बणम्—घोर; तेन—उसी से; इमाम्—इस; भो—हे प्रिय; दशाम्—दशा को; नीतः—लाये गये; भूत—जीवों के प्रति; ध्रुक्—क्षति पहुँचाते हुए; कः—कौन; लभेत—प्राप्त कर सकता है; शम्—सुख।

हे प्रिय, तुम्हारी यह दशा इसीलिए हुई है क्योंकि तुमने निर्दोष प्राणियों के प्रति घोर हिंसा की है। भला दूसरों को क्षति पहुँचाने वाला कैसे सुख पा सकता है?

तात्पर्य : अपनी भावपूर्ण व्यथा व्यक्त करने के पश्चात् स्त्रियाँ अब व्यावहारिक बुद्धिमत्ता की बात करने लगती हैं। अब वे सभी वस्तुओं को वास्तविकता से देखने लगी हैं क्योंकि उनके मन हाल की घटनाओं के दु:ख से और भगवान् की संगति से शुद्ध हो गए थे।

सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः ।
गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित्सुखमेधते ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

सर्वेषाम्—समस्त; इह—इस जगत में; भूतानाम्—जीवों का; एषः—यह (कृष्ण); हि—निश्चय ही; प्रभव—उद्गम; अप्ययः—तथा तिरोधान; गोप्ता—पालक; च—तथा; तत्—उसका; अवध्यायी—उपेक्षा करने वाला; न क्वचित्—कभी नहीं; सुखम्—सुखपूर्वक; एधते—फूलता-फलता है।

भगवान् कृष्ण इस जगत में सारे जीवों को प्रकट करते हैं और उनका संहार करने वाले हैं। साथ ही वे उनके पालनकर्ता भी हैं। जो उनका अनादर करता है, वह कभी भी सुखपूर्वक फल-फूल नहीं सकता।

श्रीशुक उवाच
राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः ।
यामाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; राज—राजा (तथा उसके भाइयों) की; योषितः—पत्नियों को; आश्वास्य—आश्वासन देकर; भगवान्—भगवान्; लोक—समस्त लोकों के; भावनः—पोषणकर्ता; याम्—जो; आहुः—वे (वेदादि) आदेश देते हैं; लौकिकीम् संस्थाम्—लोकरीति, दाह-संस्कार; हतानाम्—मृतकों के लिए; समकारयत्—किये जाने की व्यवस्था की।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : रानियों को सान्त्वना देने के बाद समस्त जगतों के पालनकर्ता भगवान् कृष्ण ने नियत दाह-संस्कार सम्पन्न किये जाने की व्यवस्था की।

मातरं पितरं चैव मोचयित्वाथ बन्धनात् ।
कृष्णरामौ ववन्दाते शिरसा स्पृश्य पादयोः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

मातरम्—अपनी माता को; पितरम्—पिता को; च—तथा; एव—भी; मोचयित्वा—छुड़ाकर; अथ—तब; बन्धनात्—हथकड़ी, बेड़ी से; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम ने; ववन्दाते—नमस्कार किया; शिरसा—सिर से; स्पृश्य—छूकर; पादयोः—उनके पैर।

तत्पश्चात् कृष्ण तथा बलराम ने अपने माता-पिता को बन्धन से छुड़ाया और अपने सिर से उनके पैरों को छूकर उन्हें नमस्कार किया।

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ।
कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

देवकी—देवकी; वसुदेवः—वसुदेव; च—तथा; विज्ञाय—पहचान कर; जगत्—ब्रह्माण्ड के; ईश्वरौ—दो ईश्वरों के रूप में; कृत—किया गया; संवन्दनौ—हाथ जोड़कर की गई वन्दना; पुत्रौ—अपने दोनों पुत्रों को; सस्वजाते न—आलिंगन नहीं किया; शङ्कितौ—शंकालु।

अब कृष्ण तथा बलराम को ब्रह्माण्ड के विभुओं के रूप में जानकर देवकी तथा वसुदेव केवल हाथ जोड़े खड़े रहे। शंकित होने के कारण उन्होंने अपने पुत्रों का आलिंगन नहीं किया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''कंस वध'' नामक चवालीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

Preliminary page 1

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

कृष्णद्वैपायन व्यास

कृत

श्रीमद्भागवतम्

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव

जीवन्ति सम्मुखरितां भवदीयवार्ताम्।

स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्

ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥३ ॥

(श्रीमद्भागवत १०.१४.३)

Preliminary page 3

श्रीमद्भागवतम्

(भगवत्-सन्देश)

दसवाँ स्कन्ध

''परम पुरुषार्थ''

(भाग दो—अध्याय १४—४४)

मूल संस्कृत पाठ, शब्दार्थ,

तथा विस्तृत तात्पर्य कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य: अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

के शिष्यों द्वारा

Preliminary page 5

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

श्रीमद्भागवतम् एवं सम्पादकीय बोर्ड

(संस्कृत से अंग्रेजी)

हृदयानन्द दास गोस्वामी

प्रोजेक्ट डायरेक्टर, क, तात्पर्य लेखक एवं प्रधान संपादक

गोपीप्राणधन दास अधिकारी

क, तात्पर्य लेखक एवं संस्कृत संपादक

द्रविड़ दास ब्रह्मचारी

अंग्रेजी संपादक

Prelimianry page 6

विषय–सूची

श्रीमद्भागवतम्

विषय–सूची

आमुख

प्राक्कथन

प्रस्तावना

अध्याय चौदह

ब्रह्मा द्वारा कृष्ण की स्तुति

अध्याय का सारांश

शुद्धात्माओं से भगवान् का श्रवण करना ही उन्हें जीतने का एकमात्र साधन

कृष्ण के दिव्य गुणों की गणना सम्भव नहीं

भगवान् के शरीर से असंख्य ब्रह्माण्डों का उद्भास

हर वस्तु कृष्ण की शक्तियों की अभिव्यक्ति

भगवान् का शरीर भौतिक विकारों से सर्वथा मुक्त

अपनी दया से भगवान् का प्राकट्य

ब्रह्मा द्वारा वृन्दावन के जंगल में वृक्ष रूप में जन्म लेने की प्रार्थना

कृष्ण तथा उनके ग्वालमित्र पुन: अपनी क्रीड़ा में मग्न

कृष्ण हरएक के स्नेह की सर्वप्रिय वस्तु क्यों ?

कृष्ण के चरणकमलों की नाव माया के समुद्र को गोखुर में बदलने वाली है

अध्याय पन्द्रह

धेनुकासुर वध

अध्याय का सारांश

भगवान् कृष्ण द्वारा भगवान् बलराम का यशोगान

ग्वालबालों का दोनों दिव्य भाइयों के साथ खेलना

ग्वालबालों का कृष्ण तथा बलराम से धेनुक का वध करने का आग्रह

बलराम द्वारा धेनुक को मारकर तालवृक्ष के ऊपर फेंका जाना

कृष्ण तथा बलराम द्वारा अन्य गर्दभ असुरों का संहार

गोपियों द्वारा कृष्ण के मुखकमल के मधु-रूपी सौन्दर्य का पान

कृष्ण द्वारा गौवों तथा ग्वालबालों को पुनः जीवन-दान

अध्याय सोलह

कृष्ण द्वारा कालिय नाग को प्रताड़ना

अध्याय का सारांश

कालिय सरोवर का उग्र विष

कृष्ण का कालिय को ललकारना तथा उसकी कुंडली में बाँधा जाना

ग्वालसमुदाय का किंकर्तव्यविमूढ होना

कालिय के अनेक फनों पर भगवान् द्वारा नृत्य

कालिय की पत्नियों द्वारा कृष्ण की स्तुति

अपने पति को क्षमा करने के लिए कालिय की पत्नियों द्वारा कृष्ण से प्रार्थना

कृष्ण द्वारा कालिय तथा उसके परिजनों को यमुना त्यागने का आदेश

कालिय द्वारा कृष्ण की पूजा और उसका रमणक द्वीप को लौट जाना

अध्याय सत्रह

कालिय का इतिहास

अध्याय का सारांश

कालिय ने रमणक द्वीप क्यों छोड़ा

कृष्ण को यमुना में से ऊपर आते देखकर वृन्दावन वासियों का अत्यधिक हर्षित होना

दावाग्नि से व्रजवासियों के लिए संकट उपस्थित होना

कृष्ण द्वारा दावाग्नि का निगला जाना

अध्याय अठारह

भगवान् बलराम द्वारा प्रलम्बासुर का वध

अध्याय का सारांश

वृन्दावन में वसन्त ऋतु जैसा ग्रीष्म

कृष्ण, बलराम तथा ग्वालबालों का जंगल में खेलना

ग्वालबाल के वेश में प्रलम्ब का खेल में सम्मिलित होना

असुर द्वारा बलराम का अपहरण

बलराम द्वारा प्रलम्ब का वध

अध्याय उन्नीस

दावानल पान

अध्याय का सारांश

कृष्ण, बलराम तथा ग्वालबालों को उनकी गौवें मिलना

बालकों द्वारा दावाग्नि से बचाये जाने के लिए कृष्ण तथा राम को पुकारा जाना

कृष्ण द्वारा दावाग्नि का निगला जाना

गोपियों का कृष्ण को व्रज लौटते देखकर परम प्रसन्न होना

अध्याय बीस

वृन्दावन में वर्षाऋतु तथा शरद

अध्याय का सारांश

वर्षाऋतु का शुभारम्भ और वृन्दावन का हरा भरा होना

मेढकों की टर्र टर्र, मानो ब्राह्मण-छात्रों द्वारा अपने पाठों को बाँचना

खेतों से अन्न-सम्पदा का प्राप्त होना, और किसानों को पुनर्जीवन-दान

बादलों द्वारा चन्द्रमा का ढका जाना मानो मिथ्या अहंकार आत्मा को ढक रहा हो

कृष्ण द्वारा अपने मित्रों के साथ हरे-भरे जंगल का विहार करना

शरद का आगमन

वृन्दावन के जंगल की मन्द वायु से सारे कष्टों का शमन

कृष्ण के अंश रूप में समृद्ध पृथ्वी का सुन्दरता से चमकना

अध्याय इक्कीस

गोपियों द्वारा कृष्ण के वेणुगीत की सराहना

अध्याय का सारांश

मधुमक्खियों, पक्षियों तथा कृष्ण की वंशी से गुंजरित वृन्दावन

कृष्ण का अपने होंठों के अमृत से अपनी वंशी को पूरित करना

भाग्यशाली नेत्रों द्वारा कृष्ण तथा बलराम के मुखड़ों का दर्शन

समस्त नारियों के लिए हर्षोल्लास कृष्ण का सौंदर्य तथा चरित्र

नदियों द्वारा मुरारी के चरणों का आलिंगन

कृष्ण के भक्तों में गोवर्धन सर्वश्रेष्ठ

अध्याय बाईस

कृष्ण द्वारा अविवाहिता गोपियों का चीर–हरण

अध्याय का सारांश

गोपियों द्वारा कात्यायनी की पूजा

कृष्ण द्वारा युवा कुमारियों का वस्त्र–हरण

हास–परिहास द्वारा कृष्ण का गोपियों को मोहित करना

आकुल, कंपित तथा आनन्द से पूर्ण गोपियों का जल से बाहर आना

कृष्ण का गोपियों को ठगना और उनकी इच्छापूर्ति करना

कृष्ण पर मन एकाग्र करने से भौतिक इच्छाओं का विनाश

कृष्ण द्वारा व्रज के वृक्षों की प्रशंसा

अन्यों को लाभ पहुँचाने के लिए ही जीवन

अध्याय तेईस

ब्राह्मण–पत्नियों को आशीर्वाद

अध्याय का सारांश

भोजन माँगने के लिए कृष्ण द्वारा अपने भूखे मित्रों को भेजना

ग्वालबालों द्वारा निवेदन

गर्वित ब्राह्मणों द्वारा बालकों का तिरस्कार

ब्राह्मणों की पत्नियों का भोजन लेकर कृष्ण के पास जाना

कृष्ण का नाटक के नर्तक की भाँति दिखना

बुद्धिमानों द्वारा कृष्ण की सेवा

ब्राह्मणों की पत्नियों की कृष्ण के पास रुकने की इच्छा

कृष्ण द्वारा ब्राह्मण–पत्नियों को लौटने की सलाह

ग्वालबालों तथा कृष्ण द्वारा प्रिति–भोज का आनन्द लूटा जाना

ब्राह्मणों द्वारा अपने आपको कोसा जाना

कृष्ण द्वारा याचना किया जाना आश्चर्य–जनक

ब्राह्मणों द्वारा क्षमा–याचना के लिए प्रार्थना

अध्याय चौबीस

गोवर्धन पूजा

अध्याय का सारांश

आने वाले यज्ञ के विषय में कृष्ण द्वारा पूछताछ

नन्द द्वारा यह बताया जाना कि ग्वाले इन्द्र की पूजा क्यों करें

कृष्ण द्वारा इन्द्र की अपेक्षा कर्म की श्रेष्ठता की घोषणा

मनुष्य का बद्ध स्वभाव ही प्रधान

कर्म पूज्य है

गोरक्षा वृन्दावन का धर्म

कृष्ण द्वारा इन्द्र के पराक्रम का उपहास

गोवर्धन पूजा कैसे की जाय

चढ़ावा खाने के लिए कृष्ण द्वारा विराट रूप धारण किया जाना

ग्वालों तथा कृष्ण का व्रज में वापस आना

अध्याय पचीस

कृष्ण द्वारा गोवर्धन–धारण

अध्याय का सारांश

क्रुद्ध इन्द्र द्वारा ब्रह्माण्ड का विनाश करने वाले बादलों का भेजा जाना

इन्द्र द्वारा कृष्ण को छोटा करके आँकना

बादलों द्वारा वृन्दावन पर वर्षा तथा ओले बरसाना

शरण के लिए गौवों तथा ग्वालों का कृष्ण के पास आना

कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत का उठाया जाना

पर्वत के नीचे सब का शरण लेना

नम्र होकर इन्द्र द्वारा आप्लावन बन्द

गौवों तथा ग्वालों का पर्वत के नीचे से बाहर आना

यशोदा, रोहिणी तथा अन्यों द्वारा आनन्दित होकर कृष्ण का आलिंगन

गोपियों द्वारा कृष्ण की महिमा का गायन

अध्याय छब्बीस

अद्‌भुत कृष्ण

अध्याय का सारांश

सात वर्षीय कृष्ण किस तरह पर्वत को उठाये रहे ?

बालक कृष्ण द्वारा तृणावर्त का गला घोटा जाना

बालक कृष्ण द्वारा वत्सासुर का वध

भगवान् द्वारा कालिय को नीचा दिखाया जाना

गर्गमुनि द्वारा कृष्ण की पहचान की व्याख्या

भगवान् के अनेक नाम

नारायण के ही समान कृष्ण

गोवर्धनधारी कृष्ण की स्तुति

अध्याय सत्ताईस

इन्द्र–देव तथा माता सुरभि द्वारा स्तुति

अध्याय का सारांश

कृष्ण के चरणों पर इन्द्र का शीश झुकाना

लोभ, द्वेष तथा क्रोध का कृष्ण में अभाव

पापियों को ठीक करने के लिए कृष्ण द्वारा दण्ड

इन्द्र द्वारा क्षमा–याचना

इन्द्र के यज्ञ को रोकना कृष्ण का अनुग्रह

कृष्ण उसके इन्द्र बनें:सुरभि की प्रार्थना

सुरभि द्वारा अपने दूध से कृष्ण को स्नान कराना

ब्रह्माण्ड भर में सन्तोष तथा हर्ष

अध्याय अट्ठाईस

कृष्ण द्वारा वरुणलोक से नन्द महाराज की रक्षा

अध्याय का सारांश

वरुण के सेवक द्वारा नन्द महाराज का पकड़ा जाना

वरुणदेव द्वारा कृष्ण का यशोगान

वरुण द्वारा भगवान् से क्षमा–याचना

नन्द समेत कृष्ण का घर वापस आना

सर्व दयामय भगवान् द्वारा ग्वालों को अपना धाम दिखलाया जाना

अध्याय उन्तीस

रास नृत्य के लिए कृष्ण तथा गोपियों का मिलन

अध्याय का सारांश

गोपियों को बुलाने के लिए कृष्ण द्वारा वंशी वादन

कृष्ण से मिलने के लिए युवतियों का वन की ओर दौड़ा आना

गोपियों की विभिन्न टोलियों का वर्णन

गोपियों द्वारा अपने अपने भौतिक शरीरों का परित्याग

राजा परीक्षित का आश्चर्यचकित प्रतीत होना

भगवान् प्रकृति के गुणों से सदैव अछूते

कृष्ण द्वारा युवा गोपियों का सत्कार

पति-सेवा स्त्री का परम कर्तव्य

कृष्ण के श्रवण, ध्यान तथा कीर्तन से उनके प्रेम का उदय

कृष्ण के वचनों से गोपियाँ मर्माहत

युवतियों की याचना

लक्ष्मी देवी द्वारा भगवान् के चरणकमलों की धूलि की स्पृहा

गोपियों की घोषणा: ''हे कृष्ण! हम आपकी दासियाँ बनें''

कृष्ण तथा गोपियों का रासनृत्य प्रारम्भ

गोपियों के गर्व को चूर करने के लिए भगवान् का अन्तर्धान होना

अध्याय तीस

गोपियों द्वारा कृष्ण की खोज

अध्याय का सारांश

कृष्ण के विछोह से गोपियाँ किंकर्तव्य विमूढ़

जंगल के वृक्षों तथा पशुओं से युवतियों द्वारा पूछा जाना कि कृष्ण कहाँ हैं

कृष्ण के चरणकमलों का स्पर्श करके धरती आनन्दित

गोपियों द्वारा कृष्णलीलाओं का अनुकरण

गोपियों को जंगल में कृष्ण के पदचिह्नों का मिलना

भगवान् के चरणकमलों का विस्तृत वर्णन

गुप्तचरों की तरह, गोपियों द्वारा कृष्ण की राधारानी के

साथ हुई लीलाओं का अनुमान लगाना

राधा का गर्व चूर करने के लिए कृष्ण का अन्तर्धान होना

गोपियों द्वारा कृष्ण की खोज तथा उनके यश का गायन

अध्याय इकतीस

गोपियों के विरह–गीत

अध्याय का सारांश

गोपियाँ गाती हैं हे वर दाता, आप अपनी दासियों को मार रहे हैं

''कृपया इच्छापूर्ण करने वाले अपने हाथ को हमारे सिर पर रखें''

''कृपया अपने अधरामृत से अपनी दासियों को जीवनदान दें''

''हे छलिया, तुम्हारी मुसकान तथा प्रेमभरी चितवन

हमें अत्यन्त चंचल बनाती हैं''

''आपके बिना एक क्षण भी युग जैसा लगता है''

''हे प्रिय, हमें चिन्ता है कि आपके कोमल चरण

जंगल के मार्ग में आहत हो जायेंगे''

अध्याय बत्तीस

पुन: मिलाप

अध्याय का सारांश

गोपियों के समक्ष कृष्ण का पुन: प्रकट होना

एक गोपी द्वारा कृष्ण के हाथ को अपनी हथेलियों में लिया जाना

श्रीमती राधारानी अग्रगण्य गोपी

गोपियाँ केशव का पुनर्दर्शन पाने के लिए हर्षित

गोपियों के मध्य कृष्ण द्वारा आसन ग्रहण करना

प्रेम आदान–प्रदान के विषय में तरुणियों द्वारा कृष्ण से प्रश्न

कृष्ण प्रेम का आदान–प्रदान क्यों रोकते हैं ?

भगवान् गोपियों के चिरऋणी

अध्याय तैंतीस

रास नृत्य

अध्याय का सारांश

यमुना तटपर रास नृत्य का शुभारम्भ

दुन्दुभियों का बजना और फूलों की वर्षा

गोपियों के मध्य कृष्ण वैसे ही लगते हैं जैसे स्वर्ण आभूषणों के बीच नीलमणि

आह्लाद पूरित गोपियों द्वारा गायन तथा नृत्य

एक गोपी द्वारा कृष्ण की सुगन्धित बाँह का चुंबन

गोपियों के साथ कृष्ण की क्रीड़ा मानों परछाई के साथ बाल–क्रीड़ा

प्रत्येक गोपी का साथ देने के लिए भगवान् द्वारा विस्तार

कृष्ण द्वारा सामान्य नैतिक आचार संहिता का अतिक्रमण

संसारी विषय वासना से कृष्ण मुक्त

परीक्षित भगवान् कृष्ण की बाह्य अश्लीलता से चकित

सामान्य शक्तिशाली नियन्ता भी पापों से बचे हुए

तो फिर भगवान् किस तरह पवित्रता तथा अपवित्रता के

अधीन हो सकते हैं

कृष्ण द्वारा दयावश अपनी दाम्पत्य लीलाओं का अभिनय

ब्रह्मा की रात्रि के बाद गोपियों का घर वापस जाना

श्रोताओं को आशीष

अध्याय चौंतीस

नन्द महाराज की रक्षा तथा शंखचूड का वध

अध्याय का सारांश

विशाल सर्प द्वारा नन्द महाराज को निगलने का प्रयास

कृष्ण द्वारा अपने चरणकमल के स्पर्श से सर्प का उद्धार

सुदर्शन विद्याधर द्वारा अपनी कथा का वर्णन

कृष्ण नाम का कीर्तन करने वाला अपने को

तथा श्रवण करने वाले को पवित्र बनाने वाला

कृष्ण और बलराम रात्रि के समय गोपियों के

साथ आनन्द मनाते हैं

भगवान् के गायन से गोपियाँ मोहित और चकित हो जाती हैं

शंखचूड़ गोपियों का हरण करने का प्रयास करता है

कृष्ण असुर को मारकर उसका शीर्षमणि ले लेते हैं

अध्याय पैंतीस

कृष्ण के वन–विहार के समय गोपियों द्वारा कृष्ण का गायन

अध्याय का सारांश

कृष्ण के वेणुगीत से देवपत्नियाँ भी चकित

कृष्ण के वंशीवादन से व्रज के बैल, हिरन तथा गौवें स्तम्भित

वृक्षों तथा लताओं द्वारा मधुरस की वर्षा

कृष्ण द्वारा अपनी लीलाओं से सारे विश्व को प्रफुल्लित किया जाना

भगवान् द्वारा अपनी मणि–माला पर गौवों की गणना

मन्द समीर द्वारा कृष्ण का सत्कार

माता यशोदा के गर्भ से उदित चन्द्रमा

गोपियाँ प्रतिदिन कृष्ण की लीलाओं का निरन्तर गान करते हुए आनन्द मनाती हैं

अध्याय छत्तीस

वृषभासुर अरिष्ट का वध

अध्याय का सारांश

अरिष्ट द्वारा व्रज की चारदीवारियों का तोड़ा जाना

व्रजवासियों का कृष्ण की शरण में जाना

वृषभासुर द्वारा कृष्ण पर भयानक प्रहार

भगवान् कृष्ण द्वारा अरिष्टासुर का वध

राधाकुण्ड तथा श्याम-कुण्ड की कथा

नारद द्वारा कंस को बताया जाना कि कृष्ण वास्तव में कौन हैं

कृष्ण का वध करने के लिए कंस द्वारा अश्र्वासुर केशी को आदेश

मल्लयुद्ध की योजना

कृष्ण तथा बलराम को वृन्दावन से लाने के लिए कंस द्वारा अक्रूर का भेजा जाना

अध्याय सैंतीस

केशी तथा व्योम असुरों का वध

अध्याय का सारांश

अश्वासुर केशी द्वारा गोकुल पर आंतक

कृष्ण का केशी के मुँह में अपनी बाईं भुजा डालना

केशी का वध करने पर देवताओं द्वारा कृष्ण की पूजा

नारद मुनि द्वारा कृष्ण की पूजा

नारद द्वारा कृष्णलीलाओं की भविष्यवाणी

कृष्ण, बलराम तथा ग्वालबालों का आँख-मिचौनी खेलना

व्योमासुर द्वारा अनेक ग्वालबालों का अपहरण

कृष्ण द्वारा व्योम का गला घोंटा जाना

अध्याय अड़तीस

वृन्दावन में अक्रूर का आगमन

अध्याय का सारांश

कृष्ण के प्रति अनुरक्ति से अक्रूर अभिभूत

अक्रूर द्वारा कंस की दया की सराहना

कृष्ण के विषय में कहे गये शब्द संसार को चेतन, सुन्दर तथा शुद्ध बनाने वाले

कृष्ण तथा बलराम से भेंट करने की अक्रूर की पूर्व दृष्टि

कृष्ण के करकमल की महिमा

कृष्ण के आलिंगन से अक्रूर के भवबन्धन कट जायेंगे

कल्पतरु के समान कृष्ण

कृष्ण के पदचिह्नों को देखकर अक्रूर परम आह्लादित

कृष्ण तथा बलराम दो स्वर्णमंडित पर्वतों की भाँति जाज्वल्य मान

कृष्ण द्वारा भावमग्न अक्रूर का आलिंगन

बलराम द्वारा अक्रूर का सत्कार

नन्द द्वारा अक्रूर से मथुरा के जीवन के विषय में पूछताछ

अध्याय उन्तालीस

अक्रूर द्वारा दर्शन

अध्याय का सारांश

कृष्ण द्वारा अक्रूर से कंस की योजना के विषय में पूछा जाना

अक्रूर द्वारा कंस के आसुरी कृत्यों का कृष्ण को बताना

नन्द द्वारा मथुरा चलने की तैयारी करने के लिए गोपों को आदेश

कृष्ण के आसन्न विछोह पर गोपियाँ किंकर्तव्य विमूढ़

गोपियों द्वारा विधाता को कोसना

युवतियाँ मथुरा की स्त्रियों से ईर्ष्यालु

अक्रूर (''क्रूर नहीं'') नाम सही नहीं गोपियों का कथन

रास नृत्य का स्मरण करके गोपियाँ शोकाकुल

अक्रूर द्वारा शोकमग्न गोपियों की उपेक्षा

कृष्ण द्वारा गोपियों को धैर्य दिलाना कि मैं फिर आऊँगा

यमुना के भीतर अक्रूर को कृष्ण तथा बलराम के दर्शन

अक्रूर का भगवान् विष्णु को अनंत शेष नाग पर लेटे देखना

भगवान् विष्णु के सुंदर रूप का वर्णन

अध्याय चालीस

अक्रूर द्वारा स्तुति

अध्याय का सारांश

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भगवान् विष्णु से उद्भूत

मंत्रोच्चार द्वारा विष्णु की पूजा

शुद्ध बुद्धि वाले लोगों द्वारा वैष्णव शास्त्रों का परिपालन

जिस तरह नदियाँ समुद्र में गिरती हैं उसी तरह सारे मार्ग अन्त में विष्णु के पास जाते हैं

भगवान् के विराट रूप का वर्णन

नृसिंह तथा वामन रूप भगवान् को नमस्कार

बुद्ध तथा कल्कि रूप में भगवान् को नमस्कार

शरण के लिए अक्रूर का भगवान् के चरणकमलों के पास जाना

अध्याय इकतालीस

कृष्ण तथा बलराम का मथुरा में प्रवेश

अध्याय का सारांश

यमुना में जो कुछ देखा उससे अक्रूर का चकित होना

कृष्ण को देखने वाले को और क्या देखना शेष

अक्रूर की कृष्ण तथा बलराम से याचना कि वे उसके घर चलें

भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की महिमा

कंस को मारने के बाद अक्रूर के यहाँ जाने का कृष्ण द्वारा वादा

कृष्ण तथा बलराम का अपने मित्रों सहित मथुरा में प्रवेश

कृष्ण तथा बलराम को देखने के लिए मथुरा की स्त्रियों का झटपट चले आना

कृष्ण का अपनी अमृतमय मुसकान–युक्त चितवन से स्त्रियों के हृदय को द्रवित करना

एक उद्धत धोबी का मार्ग में आना

कृष्ण का अपनी अँगुली के अग्रभाग से धोबी का सिर काटना

पवित्र जुलाहे का वस्त्राभूषणों से भगवान् को अलंकृत करना

सुदामा माली द्वारा अपने घर में भगवान् का भव्य स्वागत

सुदामा द्वारा कृष्ण तथा बलराम को सुगंधित मालाएँ दिया जाना

कृष्ण द्वारा सुदामा को कई वरदान

अध्याय बयालीस

यज्ञ के धनुष का टूटना

अध्याय का सारांश

कृष्ण का त्रिवक्रा कुबड़ी से चन्दन–लेप माँगना

भगवान् द्वारा कुबड़ी लड़की का सीधा किया जाना

त्रिवक्रा द्वारा कृष्ण को अपने घर बुलाया जाना

कृष्ण के देखते ही मथुरा की स्त्रियों के हृदयों में

कामदेव का जागृत होना

कृष्ण द्वारा यज्ञ के विशाल धनुष का तोड़ा जाना

कृष्ण तथा बलराम द्वारा धनुष के रखवालों का वध

श्रीलक्ष्मी का कृष्ण के सौन्दर्य की शरण चाहना

सोते जागते कंस का भयावने दृश्य देखना

दर्शकों का कुश्ती के अखाड़े में आसन ग्रहण करना

अध्याय तैतालीस

कृष्ण द्वारा कुवलयापीड का वध

अध्याय का सारांश

कुवलयापीड से लड़ने के लिए कृष्ण द्वारा तैयारी

कृष्ण पर आक्रमण करने के लिए महावत द्वारा

कुवलयापीड़ पर अंकुश की मार

कृष्ण द्वारा हाथी को पच्चीस बाण–दूरी तक घसीटा जाना

कृष्ण द्वारा कुवलयापीड़ का तंग किया जाना

कृष्ण का हाथी दाँत लेकर अखाड़े में प्रवेश

दर्शकों द्वारा कृष्ण को विभिन्न प्रकारों से देखा जाना

कृष्ण तथा बलराम द्वारा अपने तेजोमय सौन्दर्य से

सबों को मोहित करना

दर्शकों में से स्त्रियों द्वारा कृष्णलीलाओं का पुन: स्मरण

कृष्ण तथा बलराम को कुशती लड़ने के लिए चाणूर का ललकारना

कृष्ण द्वारा इस ललकार का स्वागत

अध्याय चवालीस

कंस वध

अध्याय का सारांश

चाणूर तथा मुष्टिक से कृष्ण तथा बलराम की कुश्ती

प्रतियोगियों द्वारा एक दूसरे को पीटना, पकड़ना,

खेंचना, धकेलना, कुचलना और फेंकना

दर्शकों में से स्त्रियों द्वारा इस असमान जोड़ी की कुशती की भर्त्सना

मथुरा की स्त्रियों द्वारा दोनों भाइयों के मुखमंडल के सौन्दर्य की प्रशंसा

कृष्ण का निरंतर दर्शन पाने के लिए गोपियों ने

कौन सी तपस्याएँ की होंगी ?

कुश्ती प्रतिद्वंदिता से देवकी तथा वसुदेव त्रस्त

कृष्ण द्वारा चाणूर का वध

कृष्ण द्वारा अपने पाँव के एक ही प्रहार से शल तथा

तोशल का वध

राजा कंस का कृष्ण तथा उनके मित्रों पर रोष

कृष्ण द्वारा कंस को राजसिंहासन से गिराकर जान से मार डालना

कंस द्वारा मोक्ष–प्राप्ति

कंस की मृत्यु पर देवताओं का हर्षित होना

कंस की पत्नियों का विलाप

कृष्ण तथा बलराम का अपने माता–पिता से पुनर्मिलन

परिशिष्ट

लेखक परिचय